भारत विखण्डन

द्रविड़ और दलित दरारों में पश्चिमी हस्तक्षेप

राजीव मल्होत्रा
अरविन्दन नीलकन्दन

आवरण पर दर्शाया गया भारत का मानचित्र अधिकारिक मानचित्र नहीं है जिस पर लेखक विश्वास करता है; यह वह मानचित्र है जिसके सम्बन्ध में इस पुस्तक में चेतावनी दी गई है।

भारत विखण्डन

द्रविड़ और दलित दरारों में पश्चिमी हस्तक्षेप

राजीव मल्होत्रा
अरविन्दन नीलकन्दन

आवरण पर दर्शाया गया भारत का मानचित्र अधिकारिक मानचित्र नहीं है जिस पर लेखक विश्वास करता है; यह वह मानचित्र है जिसके सम्बन्ध में इस पुस्तक में चेतावनी दी गई है।

भारत विखण्डन

द्रविड़ और दलित दरारों में पश्चिमी हस्तक्षेप

राजीव मल्होत्रा
अरविन्दन नीलकन्दन

अनुवादक
देवेन्द्र सिंह, हिन्दी यू.एस.ए.
सुरेश चिपलूणकर

मुख्य निरीक्षक
जगदीश चंद्र पन्त

हार्परकॉलिंस पब्लिशर्स इंडिया

विषय-सूची

परिचय

1. महाशक्ति या विखण्डित युद्ध क्षेत्र?

विखण्डित होने की भारतीय अन्तर्निहित प्रवृत्तियाँ

बाहरी शक्तियाँ

2. यूरोप द्वारा परिकल्पित प्रजातियाँ : एक सिंहावलोकन

हिंसा की ओर ले जाती पश्चिमी शिक्षाविदों की काल्पनिक कथा

यूरोप

भारत

श्री लंका

अफ्रीका

3. आर्य नस्ल का अविष्कार

यूरोप पर भारत के प्रभाव का सिंहावलोकन : पुनर्जागरण से नस्लवाद तक

हर्डर का स्वच्छन्दतावाद (Romanticism)

कार्ल विल्हेल्म फ्रेडेरिक श्लेगेल (1772-1829)

श्लेगेल की भारत सम्बन्धी मनगढ़ंत धारणाओं के आधार पर जर्मन अतीत की कल्पना

यूरोप में 'आर्य' एक नस्ल बनी

अर्नेस्ट रेनान और आर्य ईसा मसीह

फ्रेडरिक मैक्स मूलर

एडोल्फ पिक्टेट

रूडोल्फ फ्रेडरिक ग्राऊ (Grau)

गोबिनो और नस्ल विज्ञान

आर्य सिद्धान्तकार और सुजनन विज्ञान

चेम्बरलेन : आर्य-ईसाई नस्लवाद

नाजी और उनके बाद

भारतीय सभ्यता पर दोषारोपण

4. साम्राज्यवादी बाइबल प्रचार भारतीय मानव जाति विज्ञान का स्वरूप निर्धारण
मूसा का मानव जाति विज्ञान
हैम का मिथक और अफ्रीकी उपनिवेश निर्माता
बेबल का मिथक और भारतविद
संस्थागत तन्त्र
बाइबल का प्रजाति सिद्धान्त और हैम मिथक
विलियम जोन्स द्वारा बाइबल के मानव जाति विज्ञान के अनुरूप भारतीयों का मानचित्र बनाना
अंग्रेज़ भारतशास्त्रीय संस्थानों के एक सौ वर्ष

5. लॉर्ड रिस्ली द्वारा नस्ल में जाति-वर्ण का रूपान्तरण
मैक्स मूलर के काम को आगे बढ़ाना
रिस्ली का नस्ल विज्ञान
रिस्ली द्वारा वर्णों को रूढ़िबद्ध करना
अम्बेडकर द्वारा नासिक तालिका आधारित नस्लवाद का खण्डन

6. ‘द्रविड़’ नस्ल का अविष्कार
हॉजसन का ‘तमुलियन’ आविष्कार
कॉल्डवेल : मानवजाति विज्ञान में भाषाविज्ञान का रूपान्तरण
एक षडयन्त्र सम्बन्धी सिद्धान्त का जन्म : ‘धूर्त आर्य ब्राह्मणों ने किया भोले-भाले द्रविड़ों का शोषण’
तमिल परम्पराओं का अ-भारतीयकरण
तिरुकुरल
शैव सिद्धान्त
तमिल भक्ति साहित्य
तिरुकुरल का ईसाईकरण
कुरल की हिन्दू प्रकृति को मिटाना
ईसाई मत के अनुसार शैवमत की रूपरेखा तैयार करना
प्राचीन कालजयी तमिल साहित्य का संशोधनवादी इतिहास
‘तमिल धर्म’ बना ‘प्रारम्भिक भारतीय ईसाइयत’

7. द्रविड़ नस्लवाद और श्रीलंका

सिंहली-आर्य-बौद्ध पहचान

श्रीलंकाई द्रविड़ पहचान

पहचानों का टकराव

धर्मशास्त्रीय कपोल-कल्पना में पुराने भूगर्भ विज्ञान का मिलन

बिशप कॉल्डवेल से लिमुरियन उत्पत्ति का नाता

थियोसॉफी—ईसाई मत-प्रचार के खण्डन के लिए बौद्ध धर्म द्वारा आर्यों का उपयोग

औपनिवेशिक संरचनाओं के बीच टकराव : आर्य-बौद्ध-सिंहली बनाम द्रविड़-शैव-तमिल

8. हिन्दूधर्म को 'द्रविड़' ईसाइयत में पचाना

सन्त टॉमस का मिथक

भारतीय ईसाई विद्वानों द्वारा अस्वीकार किया जाना

सन्त टॉमस मिथक का पुनरुज्जीवित होना

पुरातत्व के साक्ष्यों का गढ़ा जाना

इंस्टीटच्यूट ऑफ़ एशियन स्टडीज

ईसाई प्रचार और द्रविड़ आन्दोलन

ईसाई प्रचारकों की छद्म-विद्वता

प्रारम्भिक अस्वीकृति और अन्ततः चर्च का अनुमोदन

धोखे : पुरातात्विक और साहित्यिक

सन्त टॉमस के इतिहास को गढ़ना

सान थोम गिरजे से जुड़े पुरातात्विक साक्ष्य

फिल्मों में सन्त टॉमस

हिन्दू धर्म आर्य-अंग्रेजी षडयन्त्र घोषित

इंस्टीटच्यूट ऑफ़ एशियन स्टडीज

शिव और नटराज 'द्रविड़' घोषित

स्कन्द-मुरुगा का समायोजन

'पंचम वेद' का गढ़ा जाना

हिन्दू लोकप्रिय संस्कृति का ईसाईकरण
हिन्दू कला का ईसाईकरण
भारतीय आध्यात्मिक नृत्य का ईसाई अपमान
रणनीतिगत परिवर्तन : हिन्दू नृत्य का सूक्ष्म ईसाई समायोजन
भरत नाट्यम के ईसाईकरण के साथ-साथ हिन्दू धर्म को धृष्टतापूर्वक अस्वीकार करना
लीला सैमसन प्रवाद
तमिल लोक-कलाओं का ईसाईकरण

9. 'द्रविड़' ईसाइयत का प्रचार
2000 : 'वर्ण-व्यवस्था के उन्मूलन के लिए द्रविड़ धर्म' पर गोष्ठी
2001 : भारत अन्तर्राष्ट्रीय प्रजातिवाद की जननी घोषित
2004 : 'भारत एक द्रविड़ ईसाई राष्ट्र है, और ईसाइयों ने संस्कृत बनायी'
2005 : सन्त टॉमस द्रविड़ ईसाइयत के रूप में हिन्दू धर्म की पुनर्कल्पना पर न्यू यॉर्क सम्मेलन
तमिल साहित्य में 'ईसाई सारतत्व'
तमिल वैवाहिक रहस्यवाद के ईसाई मूल
2006 : द्रविड़ ईसाइयत एक अन्तर्राष्ट्रीय अभियान बना
राष्ट्रपति बुश के सलाहकार द्वारा द्रविड़ ईसाइयत प्रचार
भारत में और आगे विस्तार
पोप द्वारा विषय में विभ्रम पैदा करना
2007 : भारत में प्रारम्भिक ईसाइयत के इतिहास पर दूसरा अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन
शक्ति बनीं पवित्र आत्मा (Holy Ghost)
2008 : तमिलों के धर्म पर पहला अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन
लिमुरियाई-तमिल उद्भव के सिद्धान्त की वापसी
संस्कृत, डार्विन और वेदान्त का दानवीकरण
भारतीय कला के इतिहास का बपतिस्मा
सामाजिक विषमताओं को केवल हिन्दुओं में ही देखा जाना
ईसाई-द्रविड़ बनाम आधुनिक पुरातत्व विज्ञान

टॉमस मिथक की मजबूती का आकलन
ईसाईकरण के लिए अन्तरिम चरण के रूप में द्रविड़ आध्यात्मिकता

10. भारत के बाहर द्रविड़वादी शैक्षणिक संस्थान-कार्यकर्ता नेटवर्क
येल
हार्वर्ड
बर्कले
द्रविड़ भाषा प्रतिमान के ऑक्सफोर्ड-येल मूल
देर से उत्पन्न सन्देह
शैक्षिक चिन्तन द्वारा भारतीय राजनीति का संचालन : अन्नादुरै
सर्व (SARVA) परियोजना और पहचान की राजनीति
तमिल अलगाववादी सम्मेलन के लिए शैक्षिक समर्थन
बर्कले तमिल पीठ
फेटना (FeTNA)
यूरोप स्थित तमिल अध्ययन संस्थान

11. भारत के खण्डों पर पश्चिमी चिन्तन
सरकार
धनदाता एजेन्सियाँ
अकादमी
चर्च
समाचार माध्यम
भारत का सुनियोजित विखण्डन
उत्पीड़न साहित्य एक विधा के रूप में
भारत के विखण्डन का पोषण करता उत्पीड़न साहित्य
भारत : पश्चिमी हस्तक्षेप के लिए सीमाक्षेत्र
मानवाधिकार में पश्चिमी हस्तक्षेप
वैश्विक बहुसंख्यकों की सेवा में भारतीय अल्पसंख्यक
एक उदाहरण : अफ्रीकी-दलित परियोजना
पश्चिमी हस्तक्षेप के लिए पहचान की दरारें

भारत का पुनः औपनिवेशीकरण
एक ‘ईसाई उम्मत’

12. अफ्रीकी-दलित आन्दोलन
आर्य/द्रविड़ और हुटु/टुट्सी समानान्तर (Hutu-Tutsi Parallels)
अफ्रीकी-द्रविड़ आन्दोलन को अमरीकी इतिहास द्वारा परिभाषित करना
अमरीका की अश्वेत मुक्ति का धर्मशास्त्र
भारत में अश्वेत मुक्ति के धर्मशास्त्र का दुरुपयोग
अफ्रीकी-दलित और हिन्दुओं के नस्लवादी ईश्वर
पश्चिमी सरकार—चर्च गठजोड़ द्वारा अफ्रीकी-द्रविड़-दलित को प्रभावित करना
एक नस्लवादी महाकाव्य के रूप में रामायण की व्याख्या

13. भारत : एक नवसंरक्षणवादी मोर्चा1
हिन्दुओं के धर्मान्तरण के लिए बहुराष्ट्रीय निगम
भारत की शक्तियों की पहचान धर्मान्तरण के लिए और अवरोधक के रूप में
ईसाई प्रचार के हथियार के रूप में विकास
ईसाई प्रचारक सामग्री : पैट रॉबर्टसन
अमरीकी दक्षिणपन्थी ईसाइयों द्वारा दलित आन्दोलन
दलित फ्रीडम नेटवर्क (डी.एफ.एन.)
डी.एफ.एन. के राजनीतिक पक्षपोषण के उदाहरण
कांचा इलाइया : ‘हम संस्कृत की हत्या कर देना चाहते हैं’
डी.एफ.एन. की हाल की गतिविधियाँ
ऑल इण्डिया क्रिश्चियन काउंसिल (ए.आई.सी.सी.)
भारत के विरुद्ध ईसाई लॉबिंग के साथ संयुक्त राज्य अमरीका के राजनीतिज्ञों और अधिकारियों के सम्बन्धों के उदाहरण
दक्षिणपन्थी विचार मंच और नीति केन्द्र
पॉलिसी इंस्टीटयूट फ़ॉर रिलिजन एण्ड स्टेट (पी.आई.एफ.आर.ए.एस.)
पिफ्रास के सम्मेलन
भारत में प्रभाव
फ्रीडम हाउस

न्यू यॉर्क में एशिया सोसाइटी
पूर्वाग्रहपूर्ण अवधारणाओं का बनाया जाना और उन्हें पोषित करना
जंगली भारत के रूप में गुजरात
एथिक्स ऐण्ड पब्लिक पॉलिसी सेंटर (ई.पी.पी.सी.)
अनेक मार्ग

14. भारत : एक वामपन्थी मोर्चा
उदारवादी-वामपन्थी विचार मंच
शैक्षिक दक्षिण एशियाई अध्ययन
पन्थ-निरपेक्ष चश्मा
वॉशिंगटन में वामपन्थी-दक्षिणपन्थी साझेदारी का उदाहरण
अमरीका स्थित शिक्षाविदों द्वारा भारत का विखण्डन
मार्था नसबॉम (Martha Nussbaum)
लीसे मैककिन (Lise McKean)
रोमिला थापर
मीरा नन्दा
विजय प्रसाद
अंगना पी. चटर्जी
पन्थ-निरपेक्ष चश्मे का इस्लामी रंग

15. संयुक्त राज्य अमरीका की सरकार की सीधी संलग्नता
अन्तर्राष्ट्रीय धार्मिक स्वतन्त्रता अधिनियम
अन्तर्राष्ट्रीय धार्मिक स्वतन्त्रता पर अमरीकी आयोग
प्रारम्भिक भारतीय विरोध की उपेक्षा
2000
2001
2002
2003
2004
2005

2006

2007

2008

2009

प्यू ट्रस्ट (Pew Trust) के नये पुलिन्दे और प्रचार : ‘भारत सिर्फ ईराक से पीछे है’

अन्तर्राष्ट्रीय विकास के लिए संयुक्त राज्य सरकार की एजेन्सी (USAID)

ओबामा और संयुक्त राज्य विदेशी ईसाई धर्मान्तरण

16. वर्तमान भारत में ब्रितानी हस्तक्षेप

क्रिश्चियन सॉलिडैरिटी वर्ल्डवाइड (Christian Solidarity Worldwide) (सी.एस.डब्ल्यू.)

दलित सॉलिडैरिटी नेटवर्क—यू.के.

इंटरनेशनल दलित सॉलिडैरिटी नेटवर्क

चर्चों से सम्बन्ध वाले भारत स्थित दलित संस्थान और व्यक्ति

ब्रिटेन में भारत विरोधी धुरी

क्रिश्चियन सॉलिडैरिटी वर्ल्डवाइड

दलित सॉलिडैरिटी नेटवर्क—यू.के.

लिसा (LISA)

ऑक्सफार्ड धार्मिक और सार्वजनिक जीवन केन्द्र (ओ.सी.आर.पी.एल.)

17. यूरोपीय महाद्वीप का हस्तक्षेप

इंटरनेशनल दलित सॉलिडैरिटी नेटवर्क (IDSN)

संयुक्त राष्ट्र संघ में भारत के विरुद्ध वकालत

यूरोपीय यूनियन में भारत के विरुद्ध वकालत

‘भारत के विरुद्ध प्रतिबन्ध नहीं, मगर कम-से-कम ... ’

लुथेरन वर्ल्ड फेडरेशन और वर्ल्ड काउंसिल ऑफ चर्चेज द्वारा वामपन्थियों और दक्षिणपन्थियों को मिलाना

भारत में दलित असहमति से सम्बद्ध संगठन

नेशनल कैम्पेन फॉर दलित ह्यूमन राइट्स (एन.सी.डी.एच.आर.)

नैशनल फेडरेशन ऑफ दलित विमेन (एन.एफ.डी.डब्ल्यू.)

दलित पंचायत + दलितशास्त्र + दलित धर्मशास्त्र · दलितस्तान
शैक्षिक दलित अध्ययनों का नेटवर्क
इण्डियन इंस्टीटयूट ऑफ दलित स्टडीज
स्वीडिश साउथ एशियन स्टडीज नेटवर्क (एस.ए.एस.नेट.)
तमिलनाडु थियोलॉजिकल सेमिनरी
गुरुकुल लुथेरन थियोलॉजिकल कॉलेज एण्ड रिसर्च इंस्टीटयूट, चेन्नई
दलित अलगाववाद का प्रचार करने वाले व्यक्तिगत विद्वान
क्रिस्टोफी जाफ्रीलॉट (Christophe Jaffrelot)
गेल ऑमवेट (Gail Omvedt) : द्रविड़ों और दलितों को इकट्ठा करना
पराकाष्ठा

18. भारत की ईसाई उम्मत
संस्थाओं को धन देना और उन्हें बनाना
समाचार माध्यम
गुप्तचरी
संयुक्त राज्य अमरीका आधारित भारतीय ईसाइयत का विस्तार
विशाल मंगलवादी : भारत के पैट रॉबर्टसन
रवि जकारियाज इंटरनैशनल मिनिस्ट्रीज
इंटरनैशनल इंस्टीटयूट ऑफ चर्च मैनेजमेंट
वर्ल्ड विजन (World Vision)
गॉस्पल फॉर एशिया (Gospel for Asia)
अतिसूक्ष्म तरीके से शिक्षण
मार्क्सवादी आड़
ईसाई समाचार माध्यम
एसिस्ट न्यूज सर्विस (Assist News Service)
मिशन नेटवर्क न्यूज
क्रिश्चियन ब्रॉडकास्टिंग नेटवर्क
'ईसाई दृष्टिकोण से समाचार'
गेग्राफा (Gegrapha) और भारतीय ईसाई पत्रकार

गुप्तचर सूचना एकत्रीकरण गतिविधियाँ

जोशुआ परियोजना : आत्माओं की फसल के लिए बाज़ार अनुसंधान

10/40 विण्डो (Window) और आँकड़ा भण्डार की मार्किटंग

शैक्षिक संस्थानों का उदाहरण : बोस्टन थियोलॉजिकल इंस्टीटच्यूट

जमीनी सतह पर प्रभाव

कन्या कुमारी का नाम बदलकर 'कन्नी मेरी' करना

बार-बार होने वाले ईसाई प्रचारक उकसावे

19. सभ्यताओं के टकराव में भारत

आवरण पृष्ठ का मानचित्र

भारत से होते हुए माओवादी लाल गलियारा

नेपाल में नागालैण्ड प्रारूप और भारत का लाल गलियारा

उड़ीसा में ईसाई कॉमरेड

नेपाल में ईसाई कॉमरेड

असम : माओवादी-उल्फा-आई.एस.आई.

प्रसिद्ध बुद्धिजीवियों का उपयोग

माओवादी 'बन्दूकधारी गाँधीवादी' और गाँधी 'धार्मिक पाखण्डी' हैं

उभरते हुए गठजोड़

द्रविड़िस्तान का इस्लामी हिस्सा

तमिलनाडु

ऑल इण्डिया जिहाद कमेटी (ए.आई.जे.सी.)

अल उम्मा और टी.एम.एम.के.

केरल

अब्दुल नासिर मदनी, दक्षिण भारतीय जिहाद के धर्म-पिता

मराड नरसंहार

तमिलनाडु—केरल जिहादी गठजोड़

उग्र परिवर्तनवादी इस्लाम द्वारा उदारवादी इस्लाम को आतंकित करना

मदनी की रिहाई और केरल को जिहाद की आउटसोर्सिंग

कर्नाटक

कर्नाटक में आतंक का उदय
तमिलनाडु में हाल की स्थिति
वोट बैंक राजनीति
2010 में नये घटनाक्रम
तीन सभ्यताओं के केन्द्रीय निशाने पर
चीन
अखिल-इस्लाम
अमरीकी बाज की दोहरी दृष्टि

परिशिष्ट

क. प्रजातिवाद का संक्षिप्त इतिहास नासिक तालिका से वाई-गुणसूत्र (Y-Chromosom) तक

ख. संगम साहित्य में प्राचीन तमिल धर्म

ग. अफ्रीका में समानान्तर उभार

घ. मूलवासी अमेरिकियों को टॉमस चकमा

ङ. न्यू यॉर्क कान्फ्रेंस 2005 में प्रस्तुत शोध-पत्र

च. त्याज्य पुरालेखवेत्ता का मामला

छ. विदेशी धन की निगरानी

ज. लुथेरन वर्ल्ड फेडरेशन ने बनाया भारत को निशाना

अन्तिम टिप्पणी

परिचय

यह पुस्तक मेरे उन अनुभवों के बाद सामने आयी है जिन्होंने पिछले दशक में मेरे अध्ययन और अनुसन्धान पर गहरा प्रभाव डाला है। 1990 के दशक में प्रिंस्टन विश्वविद्यालय में अफ्रीकी मूल के एक अमरीकी शोधार्थी ने बातों-बातों में मुझे बताया कि वह भारत की यात्रा से अभी-अभी लौटा है जहाँ वह एक 'अफ्रीकी-दलित परियोजना' में काम कर रहा था। मुझे तब पता चला कि अमरीका इस परियोजना को संचालित कर रहा है और उसे धन भी दे रहा है। यह परियोजना अन्तर-जाति/वर्ण सम्बन्धों और दलित आन्दोलन को अमरीका के सांस्कृतिक और ऐतिहासिक चश्मे से देख कर भारतीय सामाजिक ढाँचे को उसी चौखटे में मढ़ने की कोशिश कर रहा है। यह अफ्रीकी-दलित परियोजना दलितों को भारत के 'अश्वेतों' के रूप में और गैर-दलितों को भारत के 'श्वेतों' के रूप में चित्रित करना चाहती है। इस तरह, अमरीकी नस्लवाद, गुलामी और श्वेत/अश्वेत सम्बन्धों का इतिहास भारतीय समाज पर थोपा जा रहा है। हालाँकि आधुनिक जाति-व्यवस्था की बुनावट और उसके अन्तर-सम्बन्धों में ऐसे कई चरण रहे हैं जिनमें दलितों के प्रति पूर्वाग्रह रहा है, लेकिन भारतीय दलितों के अनुभवों और अमरीका के अफ्रीकी गुलामों के अनुभवों में थोड़ी-सी भी समानता नहीं है। फिर भी अमरीकी अनुभव के आधार पर, अफ्रीकी-दलित परियोजना, भारत के दलितों को 'एक भिन्न नस्ल के लोगों के हाथों पीड़ित हुए समुदाय' के रूप में चित्रित करते हुए उन्हें एक विशेष तरह से 'सशक्त' बनाने का प्रयास कर रहा है।

वैसे, मैं स्वयं अलग से इस बारे में अध्ययन और लेखन कर रहा था कि 'आर्य' कौन थे, कि क्या संस्कृत और वेदों का उद्‌भव भारत में हुआ था या फिर वे 'आक्रमणकारियों' द्वारा भारत में लाये गये थे। इस सन्दर्भ में मैंने अनेक पुरातात्विक, भाषा-वैज्ञानिक और ऐतिहासिक सम्मेलन करवाये और पुस्तक लेखन परियोजनाएँ भी चलायीं ताकि इस वाद-प्रतिवाद में सत्य की गहराई तक पहुँचा जा सके। यह सिलसिला मुझे औपनिवेशिक काल में निर्मित द्रविड़ पहचान के शोध तक ले गया, जिसका उन्नीसवीं शताब्दी के पूर्व कोई अस्तित्व ही नहीं था और जिसे आर्यों के विरुद्ध एक पहचान के रूप में गढ़ा गया था। इसका बना रहना आर्यों के विदेशी होने और उनके कुकर्मों के सिद्धान्त में विश्वास पर निर्भर करता है।

मैं अमरीकी चर्च द्वारा भारत में चल रही गतिविधियों को पैसे दिये जाने का भी अध्ययन कर रहा था, मसलन गरीब बच्चों की 'रक्षा' के लिए उन्हें भोजन, कपड़े और शिक्षा देने के बहुप्रचारित अभियान। दरअसल, अपने जीवन के तीसरे दशक में जब मैं अमरीका में रह रहा था तब मैं दक्षिण भारत के ऐसे ही एक बालक का प्रायोजक बना था। जो भी हो, भारत यात्राओं के दौरान मैंने अक्सर यह अनुभव किया कि जो धन प्रायोजकों को बताये गये उद्देश्यों पर जमा किया जा रहा था, वह उन उद्देश्यों पर

उतना नहीं खर्च किया जा रहा था जितना धर्मान्तरण और ईसाई मत के प्रचार जैसी गतिविधियों पर।

इसके अलावा मैं अमरीका में विचार-मंचों, स्वतन्त्र विद्वानों, मानवाधिकार गुटों और शिक्षाविदों के साथ अनेक वाद-विवादों में शामिल हुआ हूँ, ख़ास तौर पर भारतीय समाज के बारे में उनकी इस धारणा पर कि यह एक ऐसा अनिष्टकारी समाज है जिसे पश्चिम को ही 'सभ्य' बनाना है। मैंने एक शब्दावली गढ़ी—''जाति, गौ, और रसेदार सालन'' ताकि विदेशियों द्वारा भारत की सामाजिक और आर्थिक समस्याओं को आकर्षक और सनसनीखेज तरीके से चित्रित करते हुए इनकी व्याख्या 'मानवाधिकार' सम्बन्धी विषयों के रूप में करने की जो कोशिशें होती हैं, उनके पीछे छिपे सच को सामने लाया जा सके।

मैंने ऐसे विभिन्न सिद्धान्तों को प्रतिपादित करने में जुटे प्रमुख संगठनों का पता लगाने का फैसला किया और साथ ही उन राजनीतिक दबावों का भी जो इनकी अगुवाई कर रहे हैं, और जो भारत पर मानवाधिकार उल्लंघन का अभियोग लगाते हैं। मेरे शोध में अमरीका की वित्तीय सहायता के प्रावधानों की घोषणा का उपयोग करते हुए यह पता लगाना शामिल था कि यह धन किन-किन रास्तों से कहाँ-कहाँ जा रहा है। साथ ही, ऐसे अधिकांश संगठनों द्वारा बाँटी जाने वाली प्रचार सामग्री का अध्ययन करना, तथा उनके सम्मेलनों, कार्यशालाओं और प्रकाशनों पर निगरानी रखना भी। मैंने ऐसी गतिविधियों में लगे हुए लोगों और जिन संस्थाओं से वे सम्बद्ध थे उनकी छान-बीन की।

इस क्रम में मैंने जो पाया वह उन सभी भारतीयों को ख़तरे की घण्टी की तरह सुनायी देगा जो हमारी राष्ट्रीय अखण्डता के प्रति चिन्तित हैं। भारत एक बड़ी कारगुज़ारी के निशाने पर है—एक ऐसे नेटवर्क के जिसमें संगठन, व्यक्ति विशेष और चर्च शामिल हैं—जो लगता है भारत के कमजोर वर्गों के लिए एक अलगाववादी पहचान, इतिहास और यहाँ तक कि धर्म भी रचने के काम में जोर-शोर से जुटे हुए हैं। खिलाड़ियों के इस गठजोड़ में न केवल चर्चों के विभिन्न गुट, सरकारी संस्थाएँ और सम्बद्ध संगठन, बल्कि गैर-सरकारी विचार-मंच और शिक्षाविद भी शामिल हैं। बाहर से वे अलग-थलग और एक-दूसरे से असम्बद्ध लगते हैं, लेकिन वास्तव में, जैसा कि मैंने पाया, उनकी गतिविधियाँ बहुत अच्छी तरह से संयोजित हैं और अमरीका तथा यूरोप द्वारा उन्हें बहुत धन भी मिलता है। वे अन्दर से जिस सीमा तक जुड़े हुए हैं और जिस तरह से वे एक-दूसरे को सहयोग करते हैं, इसे देखकर मैं बहुत प्रभावित हुआ। उनके प्रस्ताव, दृष्टिकोण सम्बन्धी दस्तावेज और रणनीतियाँ बहुत अच्छी तरह से तैयार की हुई थीं, और दबे-कुचले लोगों की मदद करने के लिबास के नीचे उनके उन उद्देश्यों का आभास होता था जो भारत की एकता और सम्प्रभुता के प्रतिकूल हैं।

जिन समुदायों को विशेष प्रकार से 'सशक्त' बनाया जा रहा है उनमें से कुछ हिन्दुस्तानी इन पश्चिमी संगठनों में उच्च पदों पर थे, जबकि सारी गतिविधियों की

प्रारम्भिक संकल्पना, उनका वित्त पोषण और रणनीतियों का प्रबन्धन पश्चिम के लोग ही कर रहे थे। लेकिन अब भारत में ही ऐसे व्यक्तियों और एन.जी.ओ. यानी गैरसरकारी संगठनों की संख्या लगातार बढ़ रही है जिनको इन पश्चिमी संस्थाओं ने अंगीकार कर लिया है और जो पश्चिम से धन और संरक्षण ले रहे हैं। अमरीका में दक्षिण भारतीय अध्ययन केन्द्र और यूरोपीय विश्वविद्यालय बराबर ऐसे सक्रिय 'कार्यकर्ताओं' और 'आन्दोलनकारियों' को आमन्त्रित करते हैं और उन्हें वरीयता देते हैं। ये संगठन ही खालिस्तानियों, कश्मीरी आतंकवादियों, माओवादियों और भारत में सक्रिय अन्य विघटनकारी तत्वों को पहले आमन्त्रित करते रहे थे। इसलिए मुझे आशंका होने लगी कि कहीं दलितों, द्रविड़ों और भारत के अन्य अल्पसंख्यकों को एकजुट करने के ये अभियान किसी-न-किसी रूप में पश्चिम के कुछ देशों की विदेश नीतियों का अंग तो नहीं बन गये हैं, अगर स्पष्ट रूप से नहीं तो कम-से-कम सँजोकर रखे गये एक विकल्प के रूप में। अभी मुझे किसी दूसरे बड़े देश की जानकारी नहीं है जहाँ ऐसी प्रक्रियाएँ, बिना स्थानीय अधिकारियों की निगरानी और देख-रेख के, व्यापक रूप से चलायी जा रही हों। कोई आश्चर्य नहीं कि भारत में उस सीमा तक धन खर्च किया जाना है जहाँ तक पहुँच कर ऐसी अलगाववादी पहचान पूरी तरह आतंकवाद या राजनीतिक विखण्डन का स्वरूप न ग्रहण कर ले तथा एक हथियार न बन जाये।

शैक्षिक हेर-फेर और उसके परिणामस्वरूप हिंसा के बीच सम्बन्ध श्रीलंका में भी साफ़ दिखायी देता है, जहाँ तैयार की गयी विभाजनकारी मानसिकता ने एक अत्यधिक ख़ूनी गृह युद्ध को जन्म दिया। ऐसा ही अफ्रीका में हुआ जहाँ विदेशियों द्वारा स्थापित और संचालित पहचान के संघर्षों ने उसे विश्व के अब तक के सबसे बुरे नस्ली जनसंहार की घटनाओं तक पहुँचा दिया।

लगभग तीन वर्ष पहले मैंने अपने शोध कार्य और उससे सम्बन्धित आँकड़ों के रूप में काफ़ी सामग्री जुटा ली थी। अनेक भारतीय उन विघटनकारी शक्तियों से अपरिचित हैं जो उनके देश के खिलाफ़ सक्रिय हैं। मैंने अनुभव किया कि इन्हें सिलसिलेवार ढंग से तैयार करना चाहिए ताकि जानकारियों का व्यापक प्रसार हो सके और उन पर विचार-विमर्श हो। मैंने अरविन्दन नीलकन्दन के साथ मिलकर काम करना प्रारम्भ कर दिया, जो तमिलनाडु में रहते हैं, ताकि मैंने जो विदेशी आँकड़े जुटाये थे उनका वापस भारतीय इलाकों में जमीनी सच्चाई तक नीलकन्दन की पहुँच के साथ मिलान करके एक रूप-रेखा तैयार की जा सके।

यह पुस्तक द्रविड़ आन्दोलन और दलित पहचान, दोनों के ऐतिहासिक उद्भवों पर प्रकाश डालती है, और साथ ही उन वर्तमान खिलाड़ियों पर भी, जो इन अलगाववादी पहचानों को एक विशेष स्वरूप देने में लगे हैं। इसमें उन व्यक्तियों और संस्थानों का विश्लेषण भी शामिल है जो ऐसी गतिविधियों में लगे हैं और उनके प्रेरणा-स्रोतों, कारगुजारियों और वांछित उद्देश्यों पर भी। जहाँ एक ओर अमरीका और

यूरोपीय महासंघ, अनेक ऐसे लोग और संगठन में हैं, वहीं दूसरी ओर भारत में भी इनकी संख्या लगातार बढ़ रही है। ऐसे भारतीय संगठन आम तौर पर इन विदेशी व्यक्तियों और संगठनों की स्थानीय शाखाओं की तरह काम करते हैं।

इस पुस्तक का उद्देश्य सनसनी पैदा करना नहीं है और न ही किसी भी तरह के परिणाम की भविष्यवाणी करना; बल्कि इसका उद्देश्य भारत और उसके भविष्य के बारे में विचार-विमर्श को और विस्तार देना है। आर्थिक दृष्टिकोण से भारत के उद्‌भव और विकास पर बहुत कुछ लिखा गया है और भारत के समूचे दबदबे पर, उसके प्रभाव पर भी। लेकिन तेजी से फैलायी जा रही जिन विदेशी योजनाओं का उद्‌घाटन इस पुस्तक में किया गया है, और जिस तरह से भारत की दुखती रगों और अनपटी दरारों पर दबाव डाला जा रहा है, उससे क्या-क्या गड़बड़ियाँ हो सकती हैं, इस बात पर काफ़ी कुछ नहीं लिखा गया है। मुझे आशा है कि यह पुस्तक इस कमी को बहुत हद तक दूर कर सकेगी।

राजीव मल्होत्रा

प्रिंस्टन, संयुक्त राज्य अमरीका
जनवरी 2011

1
महाशक्ति या विखण्डित युद्ध क्षेत्र?

सभ्यता हमें एक साझी पहचान देती है, जो जन समुदाय के रूप में हमारी छवि, इतिहास के एक समेकित दृष्टिकोण, और एक साझी नियति को मिलाकर बनती है। यह एक निश्चित समझ देती है कि 'हम' कौन हैं, और हमारे बीच एक गहरा मानसिक सम्बन्ध सुनिश्चित करने के साथ यह भाव भी उपजाती है कि यह देश रक्षा करने योग्य है। बिना इस गहरे सम्बन्ध के ऐसे प्रश्न उपस्थित ही नहीं होते कि कौन है यह 'हम' जिसकी रक्षा की जानी है, और बलिदान किसलिए करने हैं? किसी सभ्यता को विखण्डित करना व्यक्ति के मेरुदण्ड को तोड़ने के समान है। एक विखण्डित सभ्यता बिखर कर टुकड़े-टुकड़े हो सकती है, और जिन क्षेत्रों को विखण्डित किया गया है वे अन्धकार-भरे रूपान्तरण के माध्यम से दुष्ट राज्यों में बदल सकते हैं—एक सम्पूर्ण क्षेत्र को विराट हिंसा और उपद्रव से ग्रस्त विनाशकारी स्थितियों में डालते हुए।

क्या भारतीय सभ्यता का मेरुदण्ड ऐसे ही विखण्डन का शिकार हो सकता है? और वे कौन-सी शक्तियाँ हैं, अगर हैं, जो ऐसा करने का प्रयास कर रही हैं? वे बाहरी हैं या आन्तरिक, या दोनों? उनका स्रोत कहाँ है? वे कैसे विकसित होती हैं? उनका प्रबन्धन कैसे होता है? यह पुस्तक ऐसे ही प्रश्नों पर विचार करती है, विशेषकर द्रविड़ और दलित पहचान के सन्दर्भ में, और इनका लाभ उठाने में लगे पश्चिम के देशों की भूमिका के बारे में।

भारत की केन्द्राभिसारी शक्तियाँ—आर्थिक वृद्धि, कॉरपोरेट और ढाँचागत विकास और उन्नत राष्ट्रीय लोकतान्त्रिक शासन व्यवस्था—राष्ट्र को एकजुट करती हैं। इन सकारात्मक शक्तियों पर बहुत कुछ लिखा जा रहा है। अपकेन्द्रीय यानी बिखराव पैदा करने वाली शक्तियों पर कम ही विचार किया जाता है और कभी-कभार ही इनका अध्ययन होता है, आन्तरिक और बाहरी दोनों मामलों में। आन्तरिक शक्तियों में साम्प्रदायिकता और विभिन्न प्रकार की सामाजिक-आर्थिक विषमताएँ शामिल हैं। बाहरी शक्तियाँ जो भारतीयों में विभाजन पैदा करती हैं, अधिक जटिल हैं, और वे भारत की आन्तरिक दरारों से जुड़ गयी हैं। इससे पता चलता है कि किस तरह विभिन्न वैश्विक गठजोड़ अपनी-अपनी कार्यसूचियों के साथ अब इन आन्तरिक शक्तियों को अभूतपूर्व मात्रा में नियन्त्रित कर रहे हैं। फिर भी यह पुस्तक किसी महाविनाश के परिदृश्य के आ धमकने का शोर नहीं मचा रही, बल्कि इस समय राष्ट्र जिस विपत्ति का सामना कर रहा है, उसका एक मौलिक विश्लेषण प्रस्तुत करती है।

सिर्फ़ पाकिस्तान ही भारत में विध्वंसकारी शक्तियों को नहीं उकसा रहा, न चीन जो भारतीय माओवादियों से जुड़ा है, और न ही यूरोप और उत्तर-अमरीका के ईसाई संस्थान जो अलगाववाद को बढ़ावा दे रहे हैं। यह संकट इन सबकी मिली-जुली शक्ति

से भी अधिक है। बिखराव पैदा करने वाली ये शक्तियाँ गहराई तक, सूक्ष्मता से, जटिल ढंग से, एक-दूसरे से जुड़ी हुई हैं, और सूक्ष्म तथा गुप्त रूप से जुड़े रहने वाले बहुराष्ट्रीय नेटवर्कों की तरह अपने कार्यों को संचालित कर रही हैं।

जिस गठजोड़ का उद्‌घाटन यह पुस्तक करती है, वह सम्भव है, हिंसा और अराजकता की उन छवियों से बहुत दूर जान पड़े, जिन्हें बहुधा 'अलगाववाद', 'उग्रवाद' और 'विद्रोह' की धारणाएँ सामने ला खड़ा करती हैं। फिर भी, यह स्थापित करती है कि पश्चिम के कुछ शैक्षिक केन्द्र इन्हें नियन्त्रित करते हैं, या कम-से-कम भारत के सामाजिक-आर्थिक चिन्तन पर गहरा प्रभाव डालते हैं। ये राजनीतिक विचार-मंचों, चर्च और सामाजिक संगठनों से मिले हुए हैं जो भारत में बिखराववादी शक्तियों को संसाधन उपलब्ध कराते हैं। वे नयी दरारों को जन्म देते हैं और पुरानी दरारों का पोषण करते हैं। आश्चर्यजनक यह है कि भारत की एकता के पक्ष में जवाबी-विमर्श बहुत कम होता है।

भारत में विखण्डन की अन्तर्निहित प्रवृत्तियाँ

जहाँ एक ओर सभी समस्याओं के लिए बाहरी शक्तियों पर दोषारोपण आकर्षक है, वहीं हमें भारत की अपनी कमजोरियों और विखण्डित होने की शताब्दियों पुरानी प्रवृत्तियों का सामना अवश्य करना होगा। परेशानी में डालने वाले इस पक्ष पर उन लोगों ने पर्याप्त ध्यान नहीं दिया है जो हाल की जीवन्त अर्थव्यवस्था की सफलता का आनन्द उठा रहे हैं। कुछ कठोर वास्तविकताएँ इस प्रकार हैं—

- भारत में गरीब नागरिकों की संख्या विश्व में सर्वाधिक है। विद्यालय नहीं जाने वाले बच्चों की संख्या भी सर्वाधिक है। सुदूर क्षेत्रों में जीवन बनाये रखने के लिए आवश्यक जल का गम्भीर संकट बना हुआ है और इसकी कमी लगातार बढ़ती जा रही है। अनेकानेक मानव समूहों के बीच देश भर में झड़पें होती रहती हैं।
- सामाजिक विषमताएँ भी मौजूद हैं—आंशिक रूप से ऐतिहासिक और आंशिक रूप से आधुनिक। इनमें से कुछ भारतीय समाज के अन्दर से उपजी हैं जबकि दूसरी विषमताएँ विदेशी असर के तहत पैदा की और पोसी जा रही हैं ताकि वे भारत में बहुत कुछ कर पाने की शक्ति प्राप्त कर सकें।
- आर्थिक सफलता का लाभ पर्याप्त रूप से छन कर सबसे निचले स्तर तक नहीं आ पाया है, जहाँ इसकी सबसे ज्यादा और फौरन जरूरत है। जहाँ एक ओर भारतीय जन-समुदाय द्वारा दिये जा रहे धन पर चल रहे तकनीकी शिक्षा संस्थानों में शिक्षित लाखों भारतीय तकनीकी शिक्षा का लाभ उठा रहे हैं, वहीं इससे बड़ी संख्या को बुनियादी शिक्षा भी नहीं मिल पायी है। मध्यवर्ग, जो आधुनिक और अमरीकी बनने की आकांक्षा रखते हैं, मोटरकार उद्योग में नये

उछाल की डींग हाँक रहे हैं, फिर भी कृषि और जल संसाधनों में बहुत कम पूँजी लगायी जा रही है। भारत की सार्वजनिक स्वास्थ्य प्रणाली अत्यन्त दुखदायी स्थिति में है।[1]

- अलगाववादी अभियानों ने कश्मीर, पूर्वोत्तर भारत के कुछ क्षेत्रों और गाँवों में माओवादी आतंकवाद से पीड़ित अनेक भारतीय राज्यों में दैनन्दिन जन-जीवन को संकट में डाल दिया है। बीच-बीच में भारत के विभिन्न भागों में इस्लामी आतंकी हमले भी हो रहे हैं, और हिन्दू-मुस्लिम दंगे भी भड़कते रहे हैं। सम्पूर्ण दक्षिण भारत में द्रविड़ों और दलितों द्वारा चलाये जा रहे अलगाववादी अभियान भी हिंसा को जन्म देते हैं, और ये ही इस पुस्तक के विषय हैं।

- साइबर स्पेस भी, जिसे एक भारतीय शरणस्थली के रूप में देखा गया था, अब भारत की कमजोरी बन गयी है। साइबर जासूसी पर हाल के एक बहुप्रचारित अध्ययन में भारत को एक 'सर्वाधिक पीड़ित राज्य' बताया गया जिसके संवेदनशील रक्षा नेटवर्क और देश-विदेश में उसके दूतावासों के सूचना तन्त्रों को चीन के गुप्तचर एजेंटों ने बहुत सीमा तक अपने प्रभाव क्षेत्र में ले रखा है।[2] इस तरह चीन के गुप्तचरों द्वारा प्राप्त महत्वपूर्ण सूचनाएँ माओवादी उग्रवादियों तक पहुँचाई जा सकती हैं जो खनिज सम्पदा सम्पन्न भारत के हृदयस्थल में जोर पकड़ रहे हैं, जहाँ राज्यों की उदासीनता, विदेशी हस्तक्षेप और माओ आतंकवाद का दुश्चक्र भारत को लहूलुहान कर रहा है।

- भारत अस्थिर और अतिवादी राष्ट्रों से घिरा हुआ है, जिनमें वे राष्ट्र शामिल हैं जो विफल राज्य बनते जा रहे हैं; सीमा-पार से भारत में हिंसा आयातित हो रही है जो महत्वपूर्ण आर्थिक और सैनिक संसाधनों को फँसाये रखती है।[3] लोकतन्त्र के भारतीय अनुभव ने बहुत बड़ी संख्या में राजनीतिक पार्टियों को जन्म दिया है, जिसकी वजह से वोट बैंकों और सामाजिक ताने-बाने के स्वरों में बिखराव पैदा हुआ है। इसके साथ अवसरवादिता और अदूरदर्शिता पनपी है जिसका नतीजा है दीर्घकालीन नीतियों के क्षेत्र में समझौते करने की प्रवृत्ति और ढुलमुल नीतियाँ। समझ नहीं आता कि भारत में जरूरत से ज्यादा लोकतन्त्र है, या कहा जाय, शासन की कमी।

- इसके बावजूद भारत का जीवट भी उल्लेखनीय है। उदाहरण के लिए :
  जहाँ अमरीका आतंकवाद से अपने वतन की रक्षा के लिए अपनी फौजी ताकत बहुत बढ़ा चुका है, भारत ने उस सीमा तक ऐसा नहीं किया है, इसके बावजूद कि आतंकवादियों ने कम समय के अन्तराल में यहाँ अधिक हमले किये हैं। 'भारत की किलेबन्दी' जैसी कोई धारणा नहीं है। वर्ष 2008 में मुम्बई के आतंकी हमले में 166 लोगों के मारे जाने के कुछ ही दिनों बाद ट्रेनें चलनी शुरू हो गयीं, दुकानें फिर से खुल गयीं, और जन-जीवन सामान्य हो गया।

- विश्व की दूसरी सर्वाधिक मुस्लिम आबादी भारत में ही है, और इन मुसलमानों की बहुत बड़ी तादाद की जड़ें स्थानीय संस्कृति में गहरे जमी हुई हैं, और वे अपने पड़ोसी हिन्दुओं के साथ भारतीय समाज में घुलेमिले हैं। अब तक इन्होंने अन्तर्राष्ट्रीय अखिल इस्लामी कार्यक्रमों में शामिल किये जाने के प्रयासों का विरोध किया है, और इस तरह भारतीय मुसलमान दुनिया भर के मुसलमानों के लिए एक आदर्श उपस्थित करते हुए उन्हें अन्य धर्म के अनुयायियों के साथ सांस्कृतिक समन्वय और सामंजस्यपूर्ण सह-अस्तित्व कायम करने की प्रेरणा देते हैं।
- नुकसान के बाद फिर से उठ खड़े होने की जो क्षमता भारत में है, वह आंशिक रूप से इसकी सभ्यता की ताल-मेल और सामंजस्य बैठाने की शक्ति और लचीलेपन पर आधारित है, साथ ही उन कठिन नीतिगत फ़ैसलों पर भी जो इसके नेताओं ने 1947 में अंग्रेज़ी राज से मुक्ति के बाद अपनाये और लागू किये हैं। भारत के 'आरक्षण' नामक सकारात्मक कदमों ने, जिन्हें सरकार दर सरकार पिछले साठ बरसों से लागू किया गया है, दरिद्र दलितों और अन्य पिछड़े लोगों की दुर्दशा में बहुत सुधार किया है। लेकिन समस्या की विकटता को देखते हुए यह बहुत कम और बहुत देर से है। अनेक योग्य भारतीय गैर-सरकारी संगठनों (एन.जी.ओ.) ने सरकार द्वारा छोड़े गये इस रिक्त स्थान को भरा है और सफलतापूर्वक सहायता प्रदान की है।

बाहरी शक्तियाँ

भारत के आन्तरिक प्रदर्शन का मूल्यांकन इस आधार पर ही करना चाहिए कि यह किस प्रकार अपने सर्वाधिक विपन्न नागरिकों को लाभ पहुँचाता है, और इस समय यह निश्चय ही कठोर आलोचना के योग्य है। फिर भी अगर अन्य बाहरी शक्तियों से निपटने की क्षमता को बहुत कम कर दिया गया तो इसके नतीजे के तौर पर हमलों, फिर से उपनिवेशीकरण, सांस्कृतिक और मनोवैज्ञानिक साम्राज्यवाद और ऐसे ही दूसरे हस्तक्षेपों के लिए जमीन तैयार हो सकती है, उन्हें न्योता मिल सकता है। भारत के इतिहास में ऐसा अनेक बार हुआ है; उदाहरण के लिए, जब ब्रिटिश सरकार ने अनेक भारतीय शासकों के विरुद्ध कार्रवाई करने के लिए मानवाधिकार के मामलों को बहाना बनाया।

विडम्बना है कि अंग्रेज़ों ने स्वयं भयंकर अत्याचार किये, साथ ही उनको न्यायपूर्ण साबित करने के लिए ऐसा साहित्य लिखा और लिखवाया, जिन्हें नृशंस साहित्य[4] (atrocity literature) के नाम से जाना जाता है, ताकि भारतीयों की कथित अमानवीयता का चित्रण किया जा सके। उन्होंने दावा किया कि उनके अपने कार्य इस ढंग से सुनियोजित हैं कि भारतीयों को 'सभ्य' बनाया जा सके। उदाहरण के लिए :

- 1871 में भारतीय आपराधिक जनजाति अधिनियम पारित किया गया और उसकी सूची में शामिल उन भारतीय जनजातियों के जनसंहार को वैध कर दिया गया जिन्हें 'आपराधिक' यानी जरायमपेशा माना जाता था; इनमें उन जनजातियों के सभी सदस्य जन्म ही से शामिल थे। अनेक जनजातियों को दोषी करार दिया गया, इसलिए नहीं कि वे 'अपराधी' थे (अगर किसी समूचे समुदाय को जरायमपेशा ठहराना सम्भव हो), बल्कि इसलिए कि वे ब्रिटिशों द्वारा उनके जंगलों और अन्य निवास स्थलों को तहस-नहस किये जाने के विरुद्ध संघर्षरत थे। ठग (बटमार) ऐसे ही समुदायों में से एक था जो नृशंस साहित्य के माध्यम से इतना बदनाम हुआ कि उनका नाम अंग्रेज़ी भाषा में अपराधियों के पर्यायवाची के रूप में शामिल हो गया।
- नृशंस साहित्य ने महिलाओं के अधिकार को कम करने में भी अपनी भूमिका निभायी। वीणा ओल्डेनबर्ग की अत्यन्त प्रभावशाली पुस्तक, डाउरी मर्डर, विस्तार से बताती है कि किस तरह अंग्रेज़ों ने भारतीयों को महिला उत्पीड़न के मामलों को सामने लाने के लिए प्रोत्साहित किया ताकि उनके आधार पर भारत की देशी संस्कृति पर दोष मढ़ा जा सके।[5] उन्होंने सुनियोजित तरीके से इन किस्सों को संकलित किया, जिनमें से अधिकांश अप्रमाणित, अतिरंजित और इकतरफ़ा थे। यह ऐसे कानूनों को लागू करने का आधार बना जिन्होंने आम नागरिकों के अधिकारों में कटौती की। यह पुस्तक दिखाती है कि किस प्रकार दहेज की माँग, जो आज के मध्यवर्गीय भारतीयों में इतनी आम हो गयी है, वास्तव में तब शुरू हुई जब सम्पत्ति में महिलाओं के पारम्परिक अधिकार ब्रिटिश राज ने जटिल तर्कों के माध्यम से छीन लिए।
- निकोलस डर्क्स उन बहुत-से विद्वानों में से एक हैं जिन्होंने यह दिखाया कि किस तरह ब्रिटिश राज ने नृशंस साहित्य का उपयोग विभिन्न जातियों के बीच संघर्षों को बढ़ावा देने के लिए किया ताकि वे हस्तक्षेप कर उनकी समस्याएँ 'सुलझा' सकें। इससे ब्रिटिश राज को और अधिक शक्ति प्राप्त करने तथा भारतीय सम्पदा को दुहने में सहायता मिली।[6]
- श्रमिकों के उत्पीड़न के दावों का उपयोग विभिन्न भारतीय उद्योगों को प्रतिबन्धित करने के लिए किया गया, जिनमें कपड़ा और इस्पात उद्योग भी शामिल हैं, और जिनमें भारत ने ब्रिटेन पर बढ़त हासिल कर ली थी। इस बीच भारत को एक बन्धक बाज़ार के रूप में इनकी आपूर्ति करने के लिए ब्रिटिश राज ने अपनी ही औद्योगिक क्रान्ति शुरू की और भारतीयों को विश्व स्तर के उत्पादकों और निर्यातकों की पाँत से हटाकर आयातक और कंगाल बना दिया। ब्रिटिश लेखक विलियम डिग्बी के अनुसार 1757 और 1812 के बीच भारत से ब्रिटेन की तरफ़ मुनाफ़े का बहाव को 5000 लाख से एक अरब पौंड के बीच आँका गया था।[7] आज इस राशि की क्रय क्षमता एक खरब डॉलर से

अधिक मूल्य की होगी। अर्थशास्त्री अमिय बागची द्वारा और हाल में किये गये एक अध्ययन ने स्थापित कर दिया है कि ब्रिटिश राज ने भारत पर इतना बोझ लाद दिया था और ऐसी व्यवस्था कर दी थी कि भारत से ब्रिटेन की ओर बहने वाली राशि 'वर्तमान भारतीय सकल घरेलू उत्पाद' (1984) के लगभग पाँच-छह[8] प्रतिशत के बराबर होगी। भारतीय उद्योगपतियों द्वारा, जो उनके प्रतिस्पर्धी थे, श्रमिकों के कथित उत्पीड़न की घटनाओं के दस्तावेज बनाने का श्रमसाध्य काम करने में वे बड़े सावधान थे, और उन्होंने बाद में श्रमिकों के अधिकारों का उल्लंघन करने के आरोप में अनेक भारतीय उद्योगों को प्रतिबन्धित कर दिया। उसके परिणामस्वरूप जो व्यापक निर्धनता और बेरोजगारी आयी, उसने श्रमिकों को और अधिक दुर्दशाग्रस्त ही बनाया।

लगभग एक शताब्दी से पूर्व लिखी गयी ऐतिहासिक पुस्तिका, हिन्द स्वराज, में महात्मा गाँधी ने चर्चा की है कि किस प्रकार ब्रिटिश साम्राज्य में काम कर रहे भारतीय अजाने ही उसे बनाए रखने में सहायक थे। वे लोग स्वयं को देशभक्त भारतीय मानते थे क्योंकि वे जिनकी सेवा में थे उन अंग्रेज़ों के व्यापक परिदृश्य और उद्देश्यों से अनभिज्ञ थे। उपनिवेशित भारतीयों के बारे में गाँधी के इन विख्यात निष्कर्षों के लिखे जाने के सौ साल बाद भी हमें आत्म-निरीक्षण करने की आवश्यकता है कि—

- क्या अपने पूर्ववर्ती ब्रिटिश शासकों की तुलना में आज का पश्चिमी जगत हमारे भारतीय सिपाहियों का पोषण करने और उन्हें तैनात करने के मामले में और अधिक परिष्कृत हो गया है। वह भारतीय बुद्धिजीवियों को विभिन्न स्तरों पर अपने साथ शामिल कर लेता है—निचले स्तर पर आँकड़े इकट्ठा करने वालों से लेकर गैरसरकारी संगठनों के दबे-छिपे कोनों में सन्दिग्ध पहचान बनाने वाले पहचान-इंजीनियरिंग कार्यक्रमों तक, और भारत में बीच के स्तर के विद्वानों से लेकर भारतीय आइवी लीग प्रोफेसरों और दुनिया भर में घूमने-फिरने वाले पुरस्कृत विशेषज्ञों तक।
- पश्चिमी ईसाई संस्थानों के साथ हमारे समाज और सरकार के क्या सम्बन्ध हैं।
- राजनीतिक विरोधियों को चुन-चुन कर निशाना बनाने और नीचे लाने में मानवाधिकार उद्योग की क्या भूमिका है जो लगभग गद्दारों और घुसपैठियों जैसी जान पड़ती है।
- अग्रणी निजी फाउण्डेशन जैसे कि—फोर्ड फाउण्डेशन, कार्नेगी फाउण्डेशन, रॉकफेलर फाउण्डेशन, ल्यूस फाउण्डेशन, प्यू ट्रस्ट, टेम्पलटन फाउण्डेशन, आदि—किस तरह अमरीकी सरकार और अरबपतियों के माध्यम बनकर उनकी सेवा करते हैं ताकि उस उद्देश्य को हासिल करने में योगदान कर सकें जिसे अनेक अमरीकियों ने प्रकट अमरीकी नियति की तरह देखे हैं।

यह पुस्तक दर्शाती है कि भारतीय बिखराववादी शक्तियाँ न केवल अन्तर्राष्ट्रीय प्रभावशाली शक्तियों से जुड़ गयी हैं, बल्कि अधिक-से-अधिक तालमेल के लिए एक रणनीति के तहत आपस में भी जुड़ी हैं। ऐसी स्थिति में 'अल्पसंख्यक' की समुचित परिभाषा क्या हो जब ऐसा समूह आज वैश्विक बहुसंख्यकों के साथ अभिन्न अंग की तरह कार्य कर रहा हो? विशेष रूप से, यह पुस्तक पिछले दो सौ वर्षों से अधिक समय से द्रविड़ और दलित पहचानों के सृजन के सच का, और उसमें पश्चिमी गठजोड़ द्वारा निभायी गयी भूमिका का भी पर्दाफाश करती है।

2
यूरोप द्वारा परिकल्पित नस्लें : एक सिंहावलोकन

हिंसा की ओर ले जाती पश्चिमी शिक्षाविदों की काल्पनिक कथा

पिछली पाँच शताब्दियों में यूरोपीय राष्ट्रों ने एशिया, अफ्रीका और अमरीका के अनेक क्षेत्रों को अपना उपनिवेश बनाया। इन पश्चिमी शक्तियों ने जिन सभ्यताओं को अपना उपनिवेश बनाया उन पर तरह-तरह से एक यूरोकेन्द्रित वैश्विक दृष्टिकोण थोपा। उपनिवेशीकरण को सही ठहराने के लिए स्थानीय सभ्यताओं के इतिहास का, और उसके साथ-साथ विश्व के एक ऐतिहासिक वृत्तान्त का सृजन किया। हालाँकि उनमें से अनेक पूर्वाग्रहों की पोल खोल दी गयी है, शिक्षा और सामाजिक-आर्थिक विमर्शों में उनका आज भी बहुत प्रभाव है। अगले कई अध्यायों में हम उन शक्तियों पर दृष्टि डालेंगे जिन्होंने ये औपनिवेशिक मनगढ़ंत कहानियाँ गढ़ीं और इनके लगातार बने रहने के कारणों की जाँच करेंगे। चित्र 2.1 के आलोक में यहाँ उन घटकों में से हरेक का संक्षिप्त विवरण दिया गया है।

यूरोप

अट्ठारहवीं शताब्दी में, जब यूरोप के पारम्परिक धार्मिक किले पर ज्ञानोदय का ख़तरा मण्डराने लगा तब यूरोपीय लोग अपने स्वर्णिम अतीत की खोज करने लगे। बहुतों को आशा थी कि वे इसे भारत में पा सकते हैं, जो शताब्दियों से यूरोप के आयात का एक बड़ा स्रोत रहा था। पहचान की इस खोज में उन्होंने भारतीय ग्रन्थों के विकृत अध्ययन के माध्यम से एक आदर्श के रूप में 'आर्य नस्ल' की धारणा बनायी और उसका सृजन शुरू कर दिया। विषाक्त जर्मन राष्ट्रवाद, यहूदी-विरोध और नस्ल सम्बन्धी विज्ञान द्वारा पोषित इस तिकड़म ने अन्ततः नाजीवाद के उदय और यहूदियों के जनसंहार का रास्ता खोल दिया।

भारत

अट्ठारहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में भारतविद मैक्स मूलर ने आर्यों को एक भाषिक कोटि में रखने का प्रस्ताव रखा, लेकिन औपनिवेशिक प्रशासकों द्वारा, जिन्होंने नस्ली विज्ञान का उपयोग पारम्परिक भारतीय समुदायों के वर्गीकृत विभाजन के लिए किया था, इसे शीघ्र ही आर्य नस्ल में बदल दिया। जिन जातियों को 'अनार्य' घोषित किया गया उनको या तो हाशिये पर धकेल दिया गया या फिर हिन्दू समाज की खानेबन्दियों से बाहर रखा गया। इसके समानान्तर, दक्षिण भारत में सक्रिय ईसाई मत प्रचारकों ने द्रविड़ नस्ल की पहचान खड़ी की। उन्होंने तमिल संस्कृति को इसके अखिल भारतीय

सांस्कृतिक ताने-बाने से अलग कर दिया, और दावा किया कि इसकी आध्यात्मिकता उत्तर भारतीय आर्य संस्कृति की तुलना में ईसाइयत के अधिक निकट है।
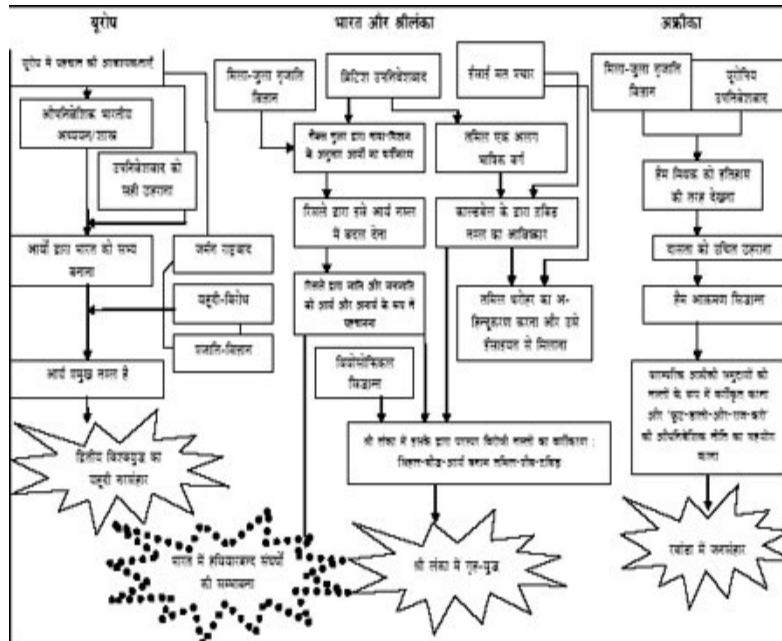
श्रीलंका

श्रीलंका में थियोसॉफिकल सोसाइटी (Theosophical Society) द्वारा प्रोत्साहित बौद्ध पुनरुत्थान ने भी आर्य नस्ल के सिद्धान्त की परिकल्पना को विस्तार दिया। बिशप रॉबर्ट कॉल्डवेल (Robert Caldwell) और मैक्स मूलर (Max Muller) ने तमिलों को द्रविड़ के रूप में और सिंहलियों को आर्य के रूप में श्रेणीबद्ध किया। औपनिवेशिक प्रशासकों ने इस विभाजन को प्रोत्साहित किया। धीरे-धीरे अनेक दक्षिण भारतीयों ने, जिन्होंने द्रविड़ पहचान को स्वीकार कर लिया था, इस विभाजन को आत्मसात कर लिया और फिर तथाकथित आर्यों के प्रति विद्वेष से भर गये। इसके परिणामस्वरूप विनाशकारी नस्ली गृह युद्ध शुरू हुआ जो श्रीलंका में कई दशकों तक चलता रहा।

अफ्रीका

गुलामों के व्यापारियों और मालिकों ने गुलामी को सही ठहराने के लिए बाइबल की हैमिटिक पुराकथा का उपयोग किया, जिसमें नूह के पुत्र हैम के वंशजों को शाप दिया गया था। हैमिटिक भाषायी समूहों की पहचान की गयी और उन्हें अन्य अफ्रीकियों से अलग कर दिया गया। अफ्रीकी सभ्यता के योगदान की व्याख्या इस रूप में की गयी कि गोरों की एक काल्पनिक नस्ल ने अफ्रीका पर हमला करके उसे सभ्य बनाया था। पारम्परिक अफ्रीकी समुदायों को नस्लों के रूप में वर्गीकृत करने की पश्चिमी करतूत

ने कटु और हिंसक संघर्षों को जन्म दिया, जिनमें जनसंहार भी शामिल हैं, जैसा कि रवाण्डा में हो रहा है।

अगले छह अध्यायों में हम विस्तार से देखेंगे कि दो शताब्दियों से भी कम समय में वर्तमान द्रविड़ पहचान किस तरह उभर कर सामने आयी है।

3
आर्य नस्ल का अविष्कार

संस्कृत की 'खोज' का ऐलान करते हुए सर विलियम जोन्स ने सन 1799 में अपने यूरोपीय सहचरों को लिखा :

> संस्कृत भाषा...की वाक्य संरचना अद्भुत है; यूनानी से अधिक सटीक, लैटिन से अधिक बिपुल, और परिष्कार में दोनों से अधिक सूक्ष्म, फिर भी दोनों से इसकी इतनी गहरी समानता है...जितनी संयोग मात्र से सम्भव नहीं हो सकती।[1]

यह कथन भारत के प्रति ठेठ आदर्शवादी और रूमानी दृष्टिकोण को ध्वनित करता है, जो लगभग पूरी अट्ठारहवीं सदी और उन्नीसवीं सदी के शुरुआती बरसों के यूरोप में व्याप्त था। यह अध्याय स्पष्ट करता है कि किस तरह भारतीय सामग्री की पश्चिमी व्याख्या और उसके साथ किये गये सलूक ने संस्कृत के अध्ययन को एक विशेष स्वरूप दिया, और उससे मथ कर 'आर्य' जाति की नस्ली संरचना को निकाला, जो स्वयं पश्चिमी चेतना में नाटकीय रूपान्तरणों से होकर गुजरने वाली थी। आने वाले अध्यायों में हम देखेंगे कि किस तरह इन औपनिवेशिक परिकल्पनाओं ने उपनिवेशित राष्ट्रों पर पश्चिमी दबदबे को सही ठहराया और उसे बल दिया।

उस विरासत का विशेष महत्व है जिसके तहत वे आज भी भूतपूर्व उपनिवेशित राष्ट्रों में चल रहे जातीय संघर्षों और जनसंहारी युद्धों के माध्यम से भारी कीमत वसूल रहे हैं। यह जाँच इन परिकल्पनाओं को स्वयं 'पूर्व' के वस्तुनिष्ठ शैक्षणिक अध्ययन के नतीजों के रूप में नहीं, बल्कि यूरोप की जरूरतों और राजनीति के सिलसिलेवार हस्तान्तरण के रूप में देखती है। अगला अध्याय इन मनगढ़ंत बातों पर विस्तार से बतायेगा और यूरोपीय विद्वानों के बीच उनके उपयोग का पता लगायेगा। उसके बाद के अध्याय इस बात की खोज-बीन करेंगे कि किस तरह आज भी ये पुराने और अधिकांशत: विश्वसनीयता खो चुके विचार आधुनिक भारत पर अपना असर डाल रहे हैं।

चित्र 3.1 'भारत का अध्ययन' प्रस्तुत करता है जैसा कि वह यूरोपीय रूमानी और औपनिवेशिक भारतविदों से प्रभावित रहा। भारत से जुड़े यूरोपीय बौद्धिक इतिहास के निम्न चरणों को इसमें शामिल किया गया है और यह भी कि किस तरह इन अवधारणाओं ने यूरोपीय श्रेष्ठता को आकार दिया :

- रूमानी सोच वाले यूरोपीय को यहूदी-ईसाई एकेश्वरवाद के कठोर ढाँचे से बच निकलने के लिए, जो पहले से ही आधुनिक काल की नयी चुनौतियों की वहज से संकट में था, एक ऐतिहासिक आधार की आवश्यकता थी। एक ऐसी आध्यात्मिकता की बहुत गर्मा-गरम खोज की जा रही थी जो उनके इतिहास के अनुकूल बैठायी जा सके, ताकि वे अपने ही अतीत में अपनी रूमानी

अवधारणाओं को ढूँढ सकें। भारत की खोज की गयी, और शीघ्र ही यह उनके अपने स्वर्णिम स्रोत की इस खोज का प्रमुख वाहन बन गया।

- भारतविदों ने इस तरह से प्राचीन भारत का ऐतिहासीकरण किया कि उससे औपनिवेशिक आवश्यकताओं के साथ-साथ यूरोप में उभर रहे राष्ट्रों की आवश्यकताएँ भी पूरी हुईं। उन्होंने इस अवधारणा को रचा कि आर्यों ने ही समूची मानवता को सभ्य बनाया था। आदर्श के रूप में प्रस्तुत किये गये आर्यों में एक महिमामण्डित यूरोपीय वंशावली ढूँढ निकाली गयी। यूरोपीय आर्यों को एक नस्ली तौर पर ज्यादा शुद्ध और आध्यात्मिक रूप से श्रेष्ठ ईसाइयत से अभिमण्डित देखा गया, जबकि उत्तर भारतीय आर्यों को निम्नस्तरीय भारतवासियों के साथ यूरोपीय आर्यों के संसर्ग के परिणामस्वरूप मिश्रित नस्ल के रूप में, जिसका नतीजा हुआ—मूर्तिपूजा, बहुईश्वरवाद और नस्ली मिलावट।
- उसके बाद व्यापक आर्य श्रेणी में से एक श्रेष्ठ आर्य जाति का सृजन किया गया, मुख्य रूप से जर्मनी के राष्ट्रवादी चिन्तकों द्वारा। इन मनगढ़ंत बातों को विश्वसनीयता प्रदान करने के लिए नवजात नस्ल सम्बन्धी विज्ञान का आवाहन किया गया। यूरोपीय यहूदी विरोधी अभियान ने यूरोपीयों को यहूदियों से अलग करने के लिए इस आर्य परिकल्पना का उपयोग किया। फिर यूरोप में 'आर्य ईसा मसीह' की अवधारणा लोकप्रिय हो गयी।

जर्मनी में श्रेष्ठ आर्य जाति के सिद्धान्त ने जो राष्ट्रवादी गर्व की भावना पैदा की, उसने नाजीवाद के उदय और यहूदियों के जनसंहार में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभायी। द्वितीय विश्व युद्ध के बाद यूरोपीय शैक्षणिक और सामाजिक संस्थानों ने यूरोपीय जन-मानस से आर्य प्रजाति के सिद्धान्त को झाड़-फूँक कर बाहर निकालने का बहुत प्रयास किया, लेकिन वे अब भी भारत के अध्ययन के लिए उन्हीं परिकल्पनाओं को लागू किये हुए हैं।

यह अध्याय इस बात की खोज करता है कि आर्य जाति के सिद्धान्त को गहरी जड़ें जमाये यूरोपीय ज़रूरतों ने किस तरह एक स्वरूप प्रदान किया, और यह अन्तत: किस तरह यूरोप में आपदा लायी। बाद के अध्याय इस बात की खोज करेंगे कि उपनिवेशित समाजों पर इन नस्ली रूढ़ियों का आज भी क्या प्रभाव पड़ रहा है।

यूरोप पर भारत के प्रभाव का सिंहावलोकन : पुनर्जागरण से नस्लवाद तक

रेमण्ड स्वैब की मौलिक पुस्तक, 'प्राच्य पुनर्जागरण' (The Oriental Renaissance, 1984), उन अनेक महत्वपूर्ण एशियाई प्रभावों की चर्चा करती है जिन्होंने पुनर्जागरण और ज्ञानोदय काल में यूरोप को प्रभावित किया, वह काल जो अट्ठारहवीं शताब्दी के उपनिवेशवाद के ठीक पहले आया और कुछ समय तक उसके साथ-साथ चला। स्वैब स्पष्ट करते हैं कि सत्रहवीं सदी के उत्तरार्द्ध में जरथुष्ट्रवाद (Zoroastrianism)

की मूल पुस्तक—जेन्द अवेस्ता—और भगवद् गीता के अनुवाद आये और व्यापक रूप से प्रसारित हुए। इन्होंने 'बाइबल और प्राचीन परम्परा डयानी यूनानी-रोमन परम्परा से बिलकुल अलग एक एशियाई मूल पाठ का पहला दृष्टिकोण प्रदान किया'।[2] 1765 में जॉन हॉलवेल की पुस्तक, 'बंगाल से सम्बन्धित दिलचस्प ऐतिहासिक घटनाएँ' (Interesting Historical Events Relating to Bengal)[3] के प्रकाशन के साथ ही शिक्षाविदों में भारत लोकप्रिय हो गया। आध्यात्मविद्या सम्बन्धी चर्चाओं में ईसाई शास्त्रियों के बीच हिन्दू धर्म महत्वपूर्ण तर्कों का स्रोत बना। विलियम जोन्स द्वारा अनूदित और 1789 में प्रकाशित कालिदास के नाटक शकुन्तला का फिर 1791 में जर्मन में अनुवाद हुआ, और उसने हर्डर, गोएटे, और शिलर जैसे महत्वपूर्ण बुद्धिजीवियों को प्रभावित किया।
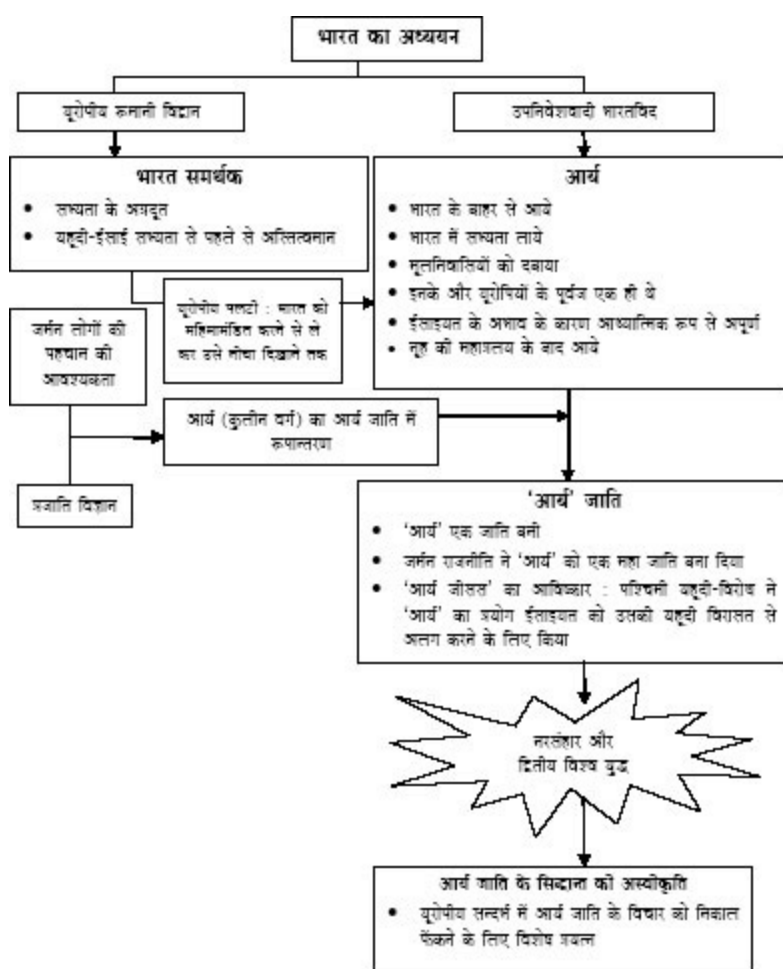
Fig 3.1 यूरोपीय पहचान की राजनीति के लिए आर्य जाति के सिद्धान्त का सृजन और इसके परिणाम

यूरोपीय नस्लवाद के उद्भव के दो चरण थे, दोनों एक ही प्रकार के कारकों द्वारा संचालित थे : पहला, जर्मन राष्ट्रीय अस्मिता का उद्भव और विकास जो अन्य

नवजात यूरोपीय जातीय और राष्ट्रीय पहचानों के साथ होड़ बद रहा था; और दूसरा यूरोपीय उपनिवेशवाद, विशेषकर ब्रिटिश, जो मिशनरी उद्देश्यों और कार्यक्रमों के आवरण में था।

पहला चरण उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य तक रहा। यूरोपीय विद्वानों पर यूरोपीय संस्कृति के लिए एक भाषायी मूल के निर्माण में संस्कृत का उपयोग करने का भूत सवार था। अध्ययन के एक नये विभाग, भाषा-विज्ञान, का जन्म हुआ, और इसके शुरू होने का श्रेय मूलत: संस्कृत के अध्ययन को जाता है। मानव उत्पत्ति की यूरोपीय खोज को इसने बहुत गति दी।[4] भाषाविज्ञान के आधार पर अपने पुरखों की नयी खोज को लेकर विभिन्न देशों के यूरोपीय जनों में झगड़े हुए, जिन्होंने अपने पूर्वजों का नामकरण आर्य, इण्डो-जर्मन, इण्डो-यूरोपियन, और कॉकेशियन जैसे विविध नामों से किया था। उन्होंने इन शब्दावलियों का उपयोग बड़े ढीले-ढाले ढंग से एक जन समुदाय, एक नस्ल, या एक राष्ट्र, और कई बार एक भाषा-परिवार जैसी विविध धारणाओं को इंगित करने के लिए किया। फ्रैंज बॉप (Franz Bopp, 1791-1867) ने, जो संस्कृत के प्रमुख विद्वान और तुलनात्मक भाषाविज्ञान के संस्थापक थे, संस्कृत से जुड़े हुए भाषा परिवार को 'इण्डो-जर्मैनिक' कहे जाने के विरुद्ध तर्क दिया, क्योंकि उससे जर्मन और गैर-जर्मन यूरोपीय लोगों के बीच खाई पैदा हो सकती थी। उन्होंने 'इण्डो-यूरोपियन' शब्दावली को वरीयता दी क्योंकि इसने यूरोपीय जनों को एकजुट करती थी।

भारत-प्रेरित यूरोपीय शैक्षणिक गतिविधियों के प्रथम चरण के इस काल का समापन मैक्स मूलर की 'पूरब के पवित्र ग्रन्थ' (Sacred Books of the East) श्रृंखला के 1875 में प्रकाशन के साथ हुआ। पिछली शताब्दी ने भूगोल की ईसाई परिकल्पनाओं को नया रूप दिया था, क्योंकि संस्कृत की उनकी खोज ने यूरोपीय जनों को अपनी सांस्कृतिक विरासत के स्रोत भूमध्यसागरीय क्षेत्र में ही खोजने के प्रयासों से मुक्ति दे दी थी। संस्कृत के अध्ययन ने कार्टेसियन परमशक्तिवाद का विकल्प दिया, और असीम, अचेतन और नेति या नकारवाद की दार्शनिक भूमिका की खोज-बीन का रास्ता खोला। भारतविद्या सम्बन्धी मन्थन ने यूरोप के अन्दर जातीय-राजनीतिक अन्तर्संघर्षों को भी जन्म दिया, जिन्होंने फ्रांसीसी और जर्मन उग्र सुधारवाद को जन्म दिया। इस बीच, ब्रिटिश विद्वानों ने भारतीय समाज के 'रहस्यपूर्ण' चरित्र पर बल दिया, जिसे प्राय: ईसाइयों के सन्दर्भ में रूमानी ढंग से आदिम और पारलौकिक बना कर पेश किया गया था। इसने उन्हें इस लायक बनाया कि वे यह दावा कर सकें कि सांसारिक मामलों में पश्चिम श्रेष्ठ है और फिर अपनी सभ्यता के विस्तार को उचित ठहरा सकें।

दूसरा चरण, जो कम-से-कम द्वितीय विश्व युद्ध तक चला, एक आर्य जाति के सिद्धान्त के प्रति बौद्धिक सनक से भरा हुआ था। इस सिद्धान्त ने यहूदी विरोधी अभियानों को उचित ठहराया और उकसाया। ऐसे कल्पित दर्शन और इतिहास लेखन

का विस्फोट हुआ जिसका ध्यान मूलत: आर्यों और यहूदियों पर था, जो आर्य और सामी भाषा समूहों (Semitic Language Groups) के कल्पित बोलने वाले थे। इन दो प्राचीन (लेकिन आंशिक रूप से काल्पनिक) सभ्य लोगों की पहचान ने अनेक बौद्धिक और राजनीतिक ज्वार पैदा किये, जिनके अन्तिम प्रभाव ने न केवल यूरोप को एक स्वरूप दिया, बल्कि उसका प्रभाव उससे परे जाकर भी पड़ा। पौराणिक काल के आर्यों और हीब्रूओं का अध्ययन भाषा शास्त्रीय अध्ययन से आगे चला गया, क्योंकि विद्वानों ने जातिशास्त्र के आधार पर रूप-रेखाएँ और परिचय तैयार करने शुरू कर दिये।

उदाहरण के लिए, दार्शनिक अर्नेस्ट रेनान (Ernest Renan, 1823-92) ने दावा किया कि हीब्रू लोग विश्व के लिए एकेश्वरवाद का उपहार लाये, और यह कि यहूदी आत्मकेन्द्रित, उपद्रवी और एक ही स्थान पर बने रहने वाले थे। आर्यों के पास परिकल्पना, तर्क, विज्ञान, कला और राजनीति जैसे भद्र नैतिक सद्‌गुण थे, और इसलिए वे गतिशील थे, और ये गुण बहुदेववाद और सर्वेश्वरवाद से जुड़ गये।[5] आर्य बहुदेववाद गतिशील था और सामी एकेश्वरवादी ठहराव के विपरीत था। इस तरह की रूप-रेखा तैयार करने से आर्य पक्षधर विद्वानों और ईसाई प्रतिष्ठानों के बीच तनाव उत्पन्न हुआ।

एक-दूसरे से गम्भीर मतभेद के बावजूद उन्नीसवीं शताब्दी के अधिकांश विद्वान ईश्वरीय या बाइबल में उद्‌घाटित इतिहास के सूत्रों और नियमों से बँधे हुए थे, जिनमें यह मान लिया गया था कि यूरोपीय ईसाइयों पर ईश्वर का अदृश्य हाथ होने की वजह से वे लाजिमी तौर पर अन्य सभ्यताओं से श्रेष्ठ हैं। यूरोपीय चिन्तकों के सकारात्मकतावाद, प्राकृतिक विज्ञान और तुलनात्मक अध्ययनों के तरीकों को अपनाने के बाद भी यह मूल आस्था बनी रही।[6] यूरोपीय जन यह मानना चाहते थे कि वे सामी और आर्य, दोनों के सर्वोच्च पक्षों से उभर कर सामने आये हैं। जाति के रूप में आर्य के वंशज होने की उनकी पुनर्परिकल्पना बाइबल के दोनों भागों—पुराना और नया धर्मनियम—के बीच ऐतिहासिक सम्बन्धों की समकालीन बौद्धिक खोज और हीब्रू, यूनानी और लैटिन के बीच भाषायी सम्बन्ध की तलाश के साथ-साथ चलती रही। दाँव पर था उस इतिहास का नियन्त्रण जो ईश्वर के हाथों एक विशेष समाज के पक्ष में काम करता था। रेनान ने आर्य और सामी विरासत, दोनों का उपयोग यूरोपीय जनों के दो माता-पिता के रूप में करने का प्रयत्न किया, इस उद्देश्य के साथ कि दोनों की सर्वोत्तम विशिष्टताएँ यूरोप की विरासत के रूप में प्राप्त की जा सकें।

संस्कृत के अध्ययन ने इतिहास से पुराण और तुलनात्मक धर्म से 'नस्ल विज्ञान' तक—समाज विज्ञान के समूचे क्षेत्र में क्रान्ति कर दी। यूरोपीय पहचान की राजनीति सदा के लिए रूपान्तरित हो गयी, और वह भी बहुत अलग ढंग से जिसकी उस समय परिकल्पना भी नहीं की जा सकती थी। विलियम जोन्स (William Jones) के लगभग

एक शताब्दी बाद, फ्रेडरिक मैक्स मूलर (1823-1900) ने, जो अपने समय के सर्वाधिक प्रभावशाली यूरोपीय विद्वानों में से एक थे, लिखा :

> भला हो भारत की प्राचीन भाषा संस्कृत का जैसा कि इसे कहा जाता है, और इसकी खोज का ... और धन्य है इस भाषा और यूरोप की प्रमुख प्रजातियों की बोलियों के बीच की नजदीकी रिश्तेदारी की खोज का ... जिसके कारण विश्व के आदिम इतिहास के अध्ययन के तरीकों में एक सम्पूर्ण क्रान्ति आ गयी है।[7]

एक बार जब भारतीय मौलिक ग्रन्थों के ख़जाने का उत्खनन किया गया, और उनको अनुवाद, गलत-अनुवाद, साहित्यिक चोरी, खण्डन, और प्रक्षेपों की प्रक्रिया से गुजार कर पेश किया गया, और भारतीय ज्ञान को 'पश्चिमी' ज्ञान के रूप में बदल कर उसका स्थानान्तरण कर दिया गया, तो भारतीय स्रोत अपना पुराना वैभव खो बैठे। अब काव्यात्मक और दार्शनिक तत्वों समेत इन छवियों और प्रतीकों का उपयोग, जिन्हें भारत से ही आत्मसात किया गया था, ठीक उसी तरह किया जा रहा है जैसा कि आधुनिक कम्प्यूटर चित्र बनाने वाले कलाकार क्लिप-आर्ट के तत्वों का उपयोग करते है। अब उन पर कैंची और गोंद (Cut and Paste) का इस्तेमाल किया जा सकता है, उन्हें कट-पेस्ट किया जा सकता है ताकि जिसे यूरोपीय सभ्यता के इतिहास के रूप में गढ़ा जा रहा है, उसे रंगों से सज्जित और विदेशी आकर्षण से युक्त किया जा सके। भारतीय सभ्यता यूरोपीयजनों की सजावट, स्मारिका, और स्मृति चिह्न बन गयी। फलस्वरूप, भारत का प्रवेश यूरोप के संग्रहालयों में 'एक रूमानी लेकिन आदिम अतीत' के रूप में हुआ। यूरोपियनों पर इसका 'जादू' समाप्त हो गया, क्योंकि यह उनका अतीत था। इस प्रक्रिया में, भारतीय सभ्यता अपनी अखण्डता और एकता खो बैठी, अनेकानेक अंगों का संग्रह बन गयी जिन्हें एक-दूसरे से अलग किया जा सकता था, उन्हें उनके देशी भूमि और परिवेश के सन्दर्भों से भिन्न दर्शाया जा सकता था, और उसके बाद उन्हें यूरोपीय परिस्थितियों में फिर से सन्दर्भ युक्त करके रखा जा सकता था। इस सम्पूर्ण प्रक्रिया के काल में, परस्पर प्रतिद्वंद्वी यूरोपीय राष्ट्रीय हितों—मुख्यत: इंगलैंड, फ्रांस और जर्मनी—ने अपने-अपने जातीय विश्व दृष्टिकोणों का नवीनीकरण किया।[8]

हर्डर का स्वछन्दतावाद (Romanticism)

जर्मनी में भारत-शास्त्र के प्रारम्भिक स्वरों में से एक थे जोहान गॉटफ्रेड हर्डर (1744-1803), जो जर्मन स्वछन्दतावाद के अग्रदूत थे जिन्होंने अनेक विषयों पर बहुत कुछ लिखा। वे विभिन्न मानव समूहों, जैसे यहूदी, मिस्त्र निवासी, और ब्राह्मण, को आदर्श बनाने और फिर उनका दानवीकरण करने के बीच पैंतरे बदलते रहे। उनका लेखन नस्लवाद और बहुलतावाद के बीच डोलता रहा। हर्डर के लिए भारत ने मानव सभ्यता के मासूम बचपन को दर्शाया—प्रकृति के बीच एक आदिम धर्म। भारत की ऐसी ही ठप्पेदार छवि बाद में स्वछन्दतावादियों द्वारा भलि-भाँति स्वीकार कर ली

गयी,[9] जिनमें श्लेगेल (नीचे चर्चा की गयी है) जैसे भारतविद और शेलिंग जैसे दार्शनिक शामिल थे। इन स्वच्छन्दतावादियों ने भारत को साहित्यिक और सांस्कृतिक 'पुनर्नवीकरण' के लिए एक स्रोत के रूप में लिया ताकि उसे आत्मसात करके और गलत ढंग से आत्मसात करके भी वे अपनी यूरोपीय पहचान को सहारा दे सकें।

हर्डर ने मानव चिन्तन में संस्कृत के योगदान को महत्व दिया। उन्होंने दावा किया कि संस्कृत उनके इण्डो-यूरोपियन ('आर्य') अतीत का अंग थी। यूरोप की भारत की 'खोज' यूरोप के अपने आधार की 'पुनः खोज' थी जिसे उसने भुला दिया था। इस मार्ग का उपयोग करते हुए कहा गया कि पूर्व पश्चिम से 'पराया' नहीं था, बल्कि उसका स्रोत था। इसी तर्क के आधार पर हर्डर बड़ी गम्भीरता से जी.डब्ल्यू.एफ. हेगेल (1770-1831) से असहमत हुए। हेगेल ने इतिहास को अतीत से दूर जाते हुए भविष्यगामी रूप में देखा, और इस तरह वह उन लोगों के आलोचक हो गये जिन्होंने मानव उद्भव के एक गौरवशाली स्रोत के रूप में आदिमता का समर्थन किया था। हेगेल के व्यापक प्रभाव के बाद भी पुरातनता को गौरवशाली बनाने का हर्डर का दर्शन उनके निधन के पचास साल बाद तक चलता रहा, और जिसे बाद में अर्नेस्ट रेनान और मैक्स मूलर जैसे विचारकों ने उठाया।

कार्ल विल्हेल्म फ्रेडेरिक श्लेगेल (1772-1829)

भारतशास्त्र में फ्रेडेरिक श्लेगेल (Frederich Schlegel) के कार्य ने पश्चिम के बौद्धिक इतिहास में एक नया अध्याय जोड़ा, क्योंकि बाद में यह पश्चिम के आर्य उद्भव की 'पुनः खोज' के दावे तक ले गया। जर्मन परिकल्पना में भारत को रूमानी नज़रिये से देखने के कारण यूरोपीय राष्ट्रों के कल्पित स्रोत को मानवता के काव्यात्मक उषाकाल में रख देना आसान हो गया।

श्लेगेल एक ऐसे समय में रह रहे थे जब जर्मनी और फ्रांस एक-दूसरे के घोर शत्रु थे, न सिर्फ सैनिक और राजनीतिक रूप से, बल्कि सांस्कृतिक रूप से भी। पुनर्जागरण काल से निकले एक राष्ट्र के रूप में और यूनान तथा रोम की महान प्राचीन सभ्यताओं के उत्तराधिकारी की तरह देखे जाने के कारण फ्रांस को बढ़त हासिल थी। स्पेन और पुर्तगाल की अपनी ही गौरवमयी पहचान अमरीका को अपना उपनिवेश बनाने वाले राष्ट्रों के रूप में थी। ब्रिटेन के पास भारत, उसके मुकुट में एक रत्न की तरह, और उसके आस-पास निर्मित एक समृद्ध साम्राज्य था। लेकिन जर्मनी के पास ऐसा कुछ भी नहीं था। बल्कि जर्मनीवासियों को फ्रांसीसी तथा अन्य पाठ्य पुस्तकों में एक बर्बर जनजाति के रूप में वर्णित किया गया था जिन्होंने प्रचण्ड आक्रमण कर महान रोमन सभ्यता को नष्ट कर दिया था।

नस्ली श्रेणियों के सिद्धान्त को विकसित करने में श्लेगेल ने एक अग्रणी भूमिका निभायी थी, आन्तरिक (यूरोपियनों के बीच) और बाहरी (गैर-यूरोपियनों के सन्दर्भ में)

दोनों रूपों में। वे भारतीय धर्मों पर विलियम जोन्स के लेखन से अवगत थे। जोन्स ने सारी मानवता के नस्ली वर्गीकरण का प्रस्ताव किया था, लेकिन यह दावा नहीं किया था कि इण्डो-यूरोपियन परिवार का उद्‌भव भारत में हुआ था।[10] शुरुआती दौर में भारत के साथ रूमानी गलबहियाँ कर लेने के बाद, श्लेगेल ने भारतीय आध्यात्मिकता को अस्वीकार किया, जिसे उनके ईसाई सिद्धान्तों में, सर्वेश्वरवाद का नाम दिया गया।

हालाँकि उन्होंने नस्ल पर जोन्स के विशिष्ट विचारों को अस्वीकृत कर दिया, श्लेगेल ने भारतीय जातीय अस्मिता से सम्बन्धित कुछ मान्यताओं को चुन भी लिया, जो 1802 से पेरिस में संस्कृत के उनके अध्ययन के साथ जा मिलीं।[11] भारत के प्रति उनकी रूमानियत जब भारतीय धर्मों की कटुतापूर्ण अस्वीकृति में बदल गयी तो उसके बाद, श्लेगेल का भारत अध्ययन, मुख्य रूप से जर्मनी के अतीत और सामन्तवाद के उद्‌भव में उनकी रुचि द्वारा संचालित रहा। उन पर सवार भारतशास्त्र का भूत अब यह प्रदर्शित करने का एक वाहन बन गया कि जर्मन संस्कृति और उसके समाजों के ढाँचे प्राचीन यूनान की तुलना में, जिसके साथ फ्रांसीसी संस्कृति और गणतन्त्रवाद गर्व से जुड़े हुए थे, अधिक न्यायसंगत और परिष्कृत थे। भारतशास्त्र ने श्लेगेल को यह दावा करने योग्य बनाया कि जर्मन संस्कृति और सामन्ती सामाजिक ढाँचे प्राचीन भारत में शुरू हुए, और इसने उन्हें एक प्रतिष्ठित प्राचीनता से मण्डित करके पुनर्जागरण-आधारित फ्रांसीसी श्रेष्ठता का प्रतिवाद करने के योग्य बनाया।

श्लेगेल की भारत सम्बन्धी मनगढ़ंत धारणाओं के आधार पर जर्मन अतीत की कल्पना

भारत के धर्मों को अस्वीकर करने और ईसाई कैथोलिक सम्प्रदाय में शामिल होने के बाद भी, श्लेगेल का भारत सम्बन्धी अध्ययन जर्मनी के बारे में उनकी नये गढ़े मिथक में जर्मन राष्ट्रवाद, मध्ययुगीनवाद, और कैथोलिकवाद को मिलाकर शामिल करने का एक महत्वपूर्ण रास्ता बना रहा।

भारत अब धार्मिक प्रेरणा का स्रोत नहीं रहा, लेकिन उसने जर्मनीवासियों और उनके मध्यकालीन सामन्तवाद को एक आदरणीय ऐतिहासिक पूर्वज प्रदान किया। जर्मन स्वच्छन्दतावाद ने भारत के प्रभाव की जो परिकल्पना गढ़ी थी, उसके पुराने संस्करण में भारत की आधारभूत प्राचीनता और 'सभ्यता के पालने' के रूप में इसकी भूमिका से जुड़ा हर्डर का विश्वास भी शामिल था। जहाँ एक ओर भारत के सन्दर्भ में पहले वाला मिथक सौन्दर्यपरक और धार्मिक था, वहीं नया मिथक जर्मन राजनीतिक श्रेष्ठता के अहंकार द्वारा संचालित था। दोनों का प्रमुख उद्देश्य यूरोपीय संस्कृति के यूनानी उद्‌भव का एक विकल्प खोजना था। एक ओर जहाँ भारत का रूमानी मिथक नव-पुरातनवाद[12] के विरुद्ध था, वहीं दूसरी ओर नया मिथक फ्रांसीसी संस्कृति की प्रतिस्पर्द्धा में जर्मन संस्कृति के स्तर को ऊँचा उठाने के लिए बनाया गया था। नया

मिथक फ्रांस और यूनानी-रोमन प्राचीनता के साथ जुड़े राजनीतिक संरचनाओं के भी विरुद्ध था।

श्लेगेल का पहला मिथक जर्मन महानता के स्रोत के रूप में भारत की ऐतिहासिक भूमिका पर निर्मित था। उन्होंने दावा किया कि आधुनिक जर्मनी के पूर्वज भारत से आये थे। उन्होंने भारत का वर्णन यूरोप के उत्तर की सुदूर और बसने में कठिन भूमि की तुलना में 'धरती के सर्वाधिक खुशहाल और उर्वर भूमि' के रूप में की। उन्होंने विख्यात उत्तरी पहाड़ों के प्रति भारतीय श्रद्धा को देखा और निष्कर्ष निकाला कि पवित्र हृदय वाले लोगों के नेतृत्व में इस स्थानान्तरण और प्रवास का उद्देश्य सिर्फ भौतिक नहीं हो सकता।[13] उत्तर की ओर जाते समय रास्ते में दूसरे बहुत-से कबीले उनसे अनुमानतः आ मिले होंगे, जिसके परिणामस्वरूप उत्तरी यूरोपियनों में जातीय विविधता पैदा हुई।

भारतीय प्रवास की दूसरी लहर पश्चिम की ओर गयी और उन्होंने यूनान और रोम की सभ्यताओं की स्थापना की। वे विधर्मी सम्प्रदाय थे जो प्रकृति की पूजा करते थे और अनुमान है कि उन्हें भयंकर धार्मिक संघर्षों के कारण भारत की धरती छोड़नी पड़ी थी।[14] श्लेगेल के लिए प्राचीन जर्मनीवासियों को एक अति सभ्य राष्ट्र के रूप में देखना महत्वपूर्ण था, प्राचीन यूनानियों और रोमवासियों से श्रेष्ठ। तभी जर्मनों के भारतीय मूल के होने का उनका मिथक उनकी सेवा कर सकता था। जहाँ एक ओर अधिकांश इतिहासकारों ने प्राचीन जर्मनों को प्राचीन यूनानी-रोमन सभ्यता को विध्वंस करने वाले बर्बरों के रूप में देखा, वहीं श्लेगेल के मिथक ने प्रस्तावित किया कि जर्मन जनजाति वास्तव में 'भद्र जंगली' थे जो यूरोप के जंगलों में प्राकृतिक भोलेपन की स्थिति में रहते हुए पतनशील रोमनों से अपनी स्वतन्त्रता का बचाव कर रहे थे। उनके पूर्वजों के चरित्र में जो भद्रता थी वह उनके भारतीय आर्य मूल से आयी। नेपोलियन-युगीन फ्रांस के अन्यायों का मुकाबला करने के श्लेगेल के राष्ट्रवादी आह्वान में इसने अच्छी भूमिका निभायी।

Fig 3.2: श्लेगेल के संशोधित सिद्धान्त के अनुसार सभ्यताओं की उत्पत्ति
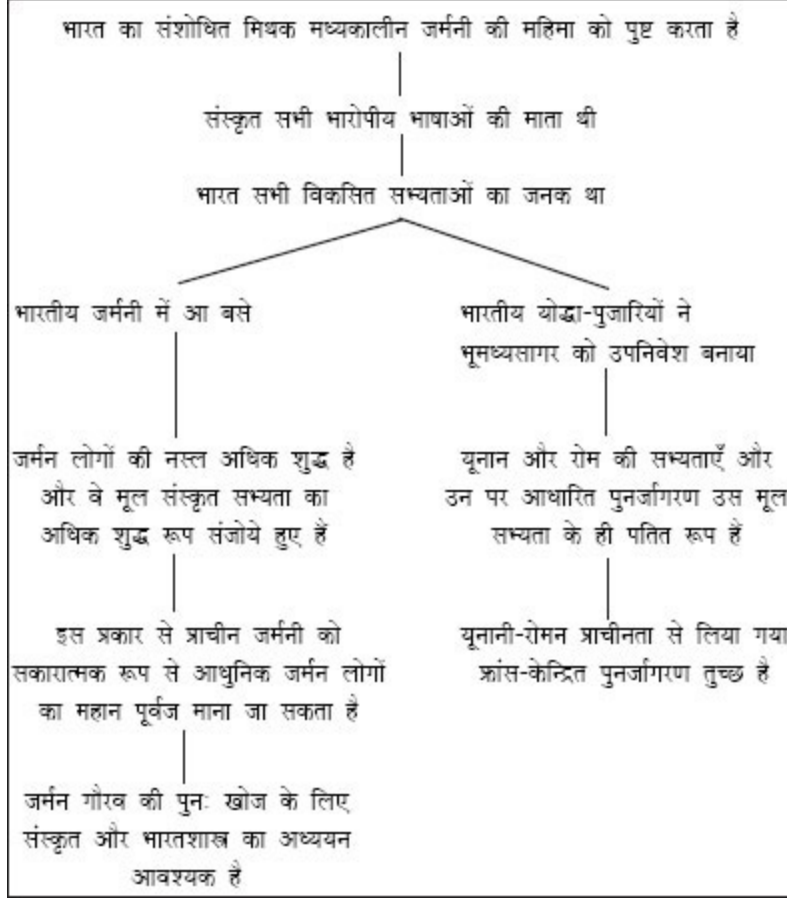
यूरोप में 'आर्य' एक नस्ल बनी

संस्कृत साहित्य में हालाँकि 'आर्य' शब्द पहले से ही उपलब्ध था, उसे मैक्स मूलर ने ही सबसे पहले एक भाषा परिवार और उसे बोलने वाले लोगों के लिए एक नाम के रूप में इस्तेमाल किया। आर्य जाति की अवधारणा जल्द ही स्वयं अपना जीवन जीने लगी और बीसवीं शताब्दी के नाजीवाद के लिए आधार बन गयी। मैक्स मूलर ने यह प्रस्ताव अवश्य किया कि भाषाशास्त्रीय और जातिशास्त्रीय अध्ययनों को एक-दूसरे से दोस्ताना ढंग से अलग कर दिया जाये, लेकिन यह विचार तब आया जब उनके अध्ययनों ने नस्ल सम्बन्धी विज्ञान में घुसपैठ कर ली थी; उसके बाद भी उन्होंने स्वयं को इसके अभिप्रायों से आंशिक रूप से ही अलग रखा, जिनके बीज सबसे पहले उन्होंने ही बोये थे। नस्लवाद (और अन्ततः नाजीवाद) के लिए आधार तैयार करने में प्रख्यात विद्वानों ने लगभग एक शताब्दी से ज्यादा समय से भूमिका निभायी थी जो भारतशास्त्र और/या दक्षिण एशियाई अध्ययनों के इतिहास का एक महत्वपूर्ण अध्याय है, जिसमें अब 'आर्य' की जगह बड़े पैमाने पर 'भारोपीय' शब्द इस्तेमाल होने लगा है। जो भी हो, जैसा कि हम छठे अध्याय में देखेंगे, आर्य परिकल्पना के साथ-

साथ इसके विपरीत द्रविड़ परिकल्पना का विचार गहरी जड़ें जमाये हुए है और यही इस पुस्तक का केन्द्र बिन्दु है।

लेकिन जहाँ एक ओर जर्मनवासियों ने आर्य पहचान को अपने राष्ट्रवादी सार तत्व के रूप में अपनाया और इसे अन्तिम सीमा तक खींचा, वहीं अंग्रेज़ों का, इस तथ्य के आलोक में कि उन्होंने भारतीयों पर शासन किया, इसके साथ एक भिन्न सम्बन्ध था। अंग्रेज़ों के लिए आर्य एक परिवार था या सगोत्रीय समूहों का एक संगठन, जिसका उपयोग परिवारों के मिलन या प्रेम सम्बन्धों की तरह भारतीयों पर ब्रिटिश शासन को वैध ठहराने के लिए किया जा सकता था, जिसमें परिवार के श्रेष्ठ सदस्य (यहाँ अंग्रेज़) परिवार के अन्य सदस्यों (यहाँ भारतीयों) की मदद कर रहे थे। अंग्रेज़ों के दृष्टिकोण में ऐसा कोई समय नहीं रहा जब इसे समान लोगों के एक परिवार की तरह देखा गया।

एक शताब्दी से कम समय में, भाषाशास्त्र नस्लवाद के एक स्रोत में बदल गया। भारत में 18वीं सदी के उत्तर काल में रह रहे अंग्रेज़ न्यायविद, सर एच.एस. मेन, ने इसे इस प्रकार स्पष्ट किया :

> भाषा के नये सिद्धान्त ने निश्चित रूप से नस्ल के एक नये सिद्धान्त को जन्म दिया है ... अगर आप उन आधारों की जाँच-पड़ताल करेंगे जिनका प्रस्ताव यूरोप में संस्कृत के अध्ययन से निकले नये ज्ञान के उदय से पहले साझी राष्ट्रीयता के लिए किया गया था तो आप उन्हें आज की दलीलों और यहाँ तक कि इस उपमहाद्वीप के एक हिस्से में बड़े जोर-शोर से दिये जा रहे तर्कों से बिल्कुल अलग पायेंगे।[15]

अर्नेस्ट रेनान और आर्य ईसा मसीह[16]

अर्नेस्ट रेनान ने अपनी शुरुआत हीब्रू विद्वान के रूप में की थी, एक ऐसे समय में जब हीब्रू प्रचलन से बाहर हो गयी थी और भारोपीय अध्ययन का बोलबाला था। जब एक बार वे सामी भाषाओं के आधिकारिक विशेषज्ञ के रूप में स्थापित हो गये, तब उन्होंने अपने ज्ञान को दोनों सभ्यताओं की तुलना, उनकी अपनी-अपनी भाषाओं के माध्यम से करने के लिए एक शक्तिशाली हथियार में बदल दिया। उन्होंने कहा कि सामी भाषाएँ कठोर एकेश्वरवाद को अभिव्यक्त करती हैं, क्योंकि काल (tense) और क्रियापद की अवस्था बतलाने वाले रूप (mood) के साथ उनके क्रियापद संयुग्मित होने में सक्षम नहीं थी। वे बहुलता निर्मित करने में असमर्थ थे; इसलिए सामी समुदाय ने कभी विविधता या बहुलता की कल्पना नहीं की, और वे प्रकृति के विविध स्वरूपों को अभिव्यक्ति देने में अक्षम रहे। दूसरे शब्दों में, रेनान के अनुसार, सामी लोगों की सरल भाषा ने उनके तर्कसंगत निष्कर्षों, पराभौतिक और रचनात्मक बौद्धिक गतिविधि को सीमित कर दिया था। इसके विपरीत, आर्यों ने अपने उन्नत व्याकरण और वाक्य विन्यास के सहारे प्रकृति में अन्तर्निहित गतिशीलता और

बहुलता को समझा। मैक्स मूलर को उद्धृत करते हुए रेनान ने आर्य देवताओं के नामों के माध्यम से प्रस्तुत प्राकृतिक घटनाक्रम की बहुलता की ओर इंगित किया। प्रत्येक शब्द के मूल में 'छिपे हैं एक देवता'। सामी और भारोपीय लोगों के बीच आश्चर्यजनक अन्तर न सिर्फ भाषा में, बल्कि धर्म में भी है : आर्य धर्म 'प्रकृति की एक प्रतिध्वनि' बनकर उभरा है और इसलिए सामी एकेश्वरवाद के विपरीत अनेक विशिष्ट देवताओं की पूजा होती है।

रेनान ने परिकल्पना पेश की कि आर्य अपनी पुरा कथाओं के कारण और देवताओं की बहुलता के कारण अधिक रचनात्मक थे, और यह रचनात्मकता उनके लिए लाभदायी बन गयी, क्योंकि इसने उन्हें बाद में पराभौतिक शास्त्र और विज्ञान की खोज करने की स्थिति तक पहुँचाया। सामी एकेश्वरवाद, जो शुरू में एक बड़ा संसाधन था, इस तरह 'मानव विकास में एक अवरोध' में बदल गया। सामी जाति के प्रारम्भिक वैभव ने अन्ततः इसके विरुद्ध काम किया। जहाँ एक ओर वे एक अद्वितीय, अकेले और निर्दोष ईश्वरत्व को सबसे पहले जानने-मानने वालों में थे, उनकी नियति प्रारम्भिक बाल्यावस्था में ही कैद हो गयी। उनके 'स्वभाव कम उपजाऊ थे जो एक सुखी बचपन के बाद सिर्फ एक औसत पौरुषता ही हासिल कर पाये'। उनकी भाषाओं की तरह उनका धर्म भी एकरस था और इसलिए गतिहीन था जिसने उन्हें मानव विकास की बाल्यावस्था से बाँधे रखा। इस तरह सामी लोगों को मानवता की प्रारम्भिक सेवा का श्रेय जाता है, लेकिन वे अन्ततः निश्चित तौर पर सभी सभ्यताओं के भारोपीय 'आधार' से कम परिष्कृत रहे।[17]

दूसरे शब्दों में, सभ्यता में प्रारम्भिक सामी योगदान को आर्य योगदान ने दबा दिया। यहाँ तक की सामी एकेश्वरवाद को एक आर्य दर्पण में प्रतिबिम्बित देखा जा सकता है। इस तरह सामी लोगों को आर्य इतिहास में शामिल कर लिया गया। रेनान ने ईसा मसीह को यहूदी धर्म से अलग कर दिया और उन्हें 'आर्य' ईसा मसीह बना दिया जिसकी परिकल्पना उन्होंने इस प्रकार की :

- आर्यों ने अपनी यात्रा बहुदेववाद से प्रारम्भ की लेकिन बाद में वे ईसाई एकेश्वरवाद में परिवर्तित हो गये।
- आर्य/ईसाई आकस्मिक भेंट की उपज के रूप में ईसाइयत ने उन विविध रूपी आर्य जनों की मनोवृत्तियों और आन्तरिक विशेषताओं को आत्मसात किया जिनका उसने धर्मान्तरण कराया था। रेनान ने लिखा कि नयी ईसाइयत 'पूरी तरह सामी भावनाओं की सीमाओं को लाँघ गयी'।
- रेनान ने सोचा कि ईसाइयत इसी कारण यहूदी धर्म से अलग हो गयी, और इस तरह यहूदी धर्म और इस्लाम की तुलना में ईसाइयत की 'सामी शुद्धता कम हो गयी', और (एक आदि पुरुष) अब्राहम से निकले तीनों पन्थों की तुलना में यह 'सबसे कम एकेश्वरवादी' रह गया।

कॉलेज दि फ्रांस (College de France) में अपने उद्घाटन भाषण में रेनान ने कहा, 'ईसाइयत की विजय तब तक सुरक्षित नहीं है जब तक यह अपने यहूदी खोखे से पूरी तरह बाहर नहीं निकलती और फिर उस स्थिति को प्राप्त नहीं कर लेती जैसा कि इसकी स्थापना करने वाले की उदात्त चेतना में था, यानी ऐसी संरचना जो सामी भावना के संकीर्ण बन्धनों से मुक्त हो।' उन्होंने यह भी लिखा : 'प्रारम्भ में मूलत: यहूदी भावना से ओत-प्रोत ईसाइयत ने समय बीतने के साथ स्वयं को उस सबसे मुक्त कर लिया जो उसने यहूदी प्रजाति से लिया था, इस हद तक कि जो ईसाइयत को अति उत्तम आर्य धर्म मानते हैं वे कई पहलुओं से सही हैं'। उन्होंने अनुभव किया कि वास्तव में ईसाइयत ने यहूदी धर्म का खण्डन किया : 'ईसाइयत ने यहूदी धर्म से अलग हटकर दूर होते हुए स्वयं को परिष्कृत किया और यह सुनिश्चित किया कि भारोपीय जाति की तेजस्विता इसके दायरे के भीतर विजयी हो'।[18]

विभिन्न सभ्यताओं के विकास पर रेनान के दृष्टिकोण को चित्र 3.3 में दर्शाया गया है।

Fig. 3.3 रेनान के तहत विभिन्न सभ्यताओं का विकास

सामी
- भाषा विज्ञान की दृष्टि से सरल और सीमित
- अपने प्रयासों और योग्यता के बिना सरल एकेश्वरवाद को परमेश्वर के उपहार के रूप में स्वीकार करने के लिए उपयुक्त
- बाल्यावस्था में ठहरा हुआ

→ **इनके उत्तराधिकारी मुसलमान हुए**

आर्य
- भाषा वैज्ञानिक रूप से जटिल, काल में गतिशील और भौगोलिक रूप से विविध
- आश्चर्यजनक रचनात्मकता; बहुदेववाद में खोया हुआ
- अमूर्त, पारभौतिक और तर्कात्मक → विज्ञान

→ **भारोपीय**

ईसाइयत (सामी + आर्य)
- जीसस 'आर्यीकृत क्राइस्ट' हैं और ईसाइयत यहूदी धर्म से अलग चला जाता है
- आर्य एकेश्वरवादी हो जाते हैं
- ईसाइकृत यूरो-आर्य विजयी होते हैं

(ईसाइयत + भारोपीय) → पिक्टल की अतिरिक्त अवधारणा : यूरो-आर्यों ने अपने 'भाइयों' पर औपनिवेशिक कब्जा किया ताकि उन्हें 'धार्मिक प्रकाश और विश्वव्यापी प्रगति' का उपहार दिया जा सके

इस प्रकार रेनान का मानव इतिहास सभ्यता की प्रगति का इतिहास है जिसमें आर्य और सामी, दो धाराएँ शामिल हैं। वंशावली सम्बन्धी इस आर्य-सामी नाटक के

लिए, रेनान और उनके समकालीन ईसाई विजय की खोज कर रहे थे जिसमें आर्य भाषायी और सांस्कृतिक पूर्वज थे, और सामी एकेश्वरवाद के शिशु-सरीखे संस्थापक।

ईसाइयत को उसकी वंशानुगत सामी त्रुटियों से मुक्त करके उसका आर्यकरण करना आवश्यक हो गया था, ताकि प्रगति की जा सके। और इस क्रम में आगे चलकर ईसा मसीह को सम्मानित करना सम्भव हो सका जबकि इस बात को अनदेखा कर दिया गया कि वे जन्म से यहूदी थे। इस तरह रेनान ने भाषाशास्त्र का उपयोग ईसाइयत को वैज्ञानिक आधार देने के लिए किया, अन्धविश्वास को खारिज करते हुए और इसे 'ज्ञानोदय' के साथ जोड़ते हुए।

फ्रेडरिक मैक्स मूलर

> जहाँ हम वेद में आर्य मानस के बाल्यकाल का अध्ययन कर सकते हैं, काण्ट के 'क्रिटीक' (Critique) में आर्य मानस की निर्दोष प्रौढ़ता का अध्ययन कर सकते हैं। —मैक्स मूलर[19]

मैक्स मूलर (1823-1900) रूमानी आन्दोलन और सभ्यता के स्रोत तक पहुँचने की उसकी चाह के वंशज थे। उन्होंने भी भाषाविज्ञान और धार्मिक शोध में प्रभावी योगदान किया था। रेनान की तरह उनके लेखन का विशाल भण्डार व्यापक रूप से पाठकों तक पहुँचा। चालीस वर्षों से अधिक समय तक दोनों विद्वानों ने आर्य और सामी खानेबन्दियों का इस्तेमाल करते हुए नस्ल की परिकल्पना पर काम किया।[20] लेकिन दोनों में काफी मतभेद भी रहे। मैक्स मूलर इस बात पर अड़े रहे कि ऐसी कोई एक संस्कृति नहीं थी जो एकेश्वरवाद के साथ अकेले उभरकर सामने आयी, यह तो मानवों की साझी सम्पदा थी, और यह भी कि भाषावैज्ञानिक ढाँचों ने इसे विविध धर्मों में ढाला जिनमें एकेश्वरवादी और बहुदेववादी स्वरूप शामिल थे।

मैक्स मूलर भारतीय सभ्यता का उपयोग ईसाइयत के विकास में बहुदेववाद को शामिल करने के लिए नहीं करना चाहते थे, जैसी रेनान की इच्छा थी। न ही उन्होंने पिक्टेट की तरह (इस पर आगे चर्चा है) दूसरा रास्ता अपनाते हुए आर्यों को एकेश्वरवादी दिखाने का प्रयत्न किया। इसके बदले उन्होंने विभिन्न धार्मिक विचारों को स्पष्ट करने के लिए भाषाशास्त्रीय भिन्नताओं पर बल दिया। सभी चीजों में देवत्व को प्रकट करने के लिए मूलर धर्मों का एक विज्ञान चाहते थे। वे चाहते थे कि तुलनात्मक तरीकों का उपयोग, जो उस समय अध्ययन का नया विभाग था, अन्य प्रकृति-विज्ञानों की तरह किया जाये और विविधता वाले इस संसार में जो कुछ प्रकट है, उसे रेखांकित करने वाली एकेश्वरता को उजागर करने का प्रयत्न किया जाये। यह दैवी व्यवस्था काल के प्रारम्भ में प्रकृति में ही अंकित थी, और अब यह तुलनात्मक भाषाशास्त्र और पौराणिक अध्ययनों का काम है कि वे इसके स्रोत पौराणिक ग्रन्थों और धर्मों में ढूँढ निकालें, जिनमें नि:सन्देह ईसाइयत की एक अनोखी जगह है।[21]

प्राचीन भारतीय ग्रन्थों में गहन रुचि रखने के साथ-साथ मैक्स मूलर औपनिवेशिक शासकों और ईसाइयत के प्रचारकों के लिए एक अधिकारी की तरह भी काम करते रहे। उनकी यह मनोदशा ओर्गोइल के ड्यूक को लिखे उनके एक पत्र में प्रतिबिम्बित होती है, जो ब्रिटेन में भारत के लिए विदेश मन्त्री थे। मूलर ने 16 दिसम्बर 1868 को लिखा : 'भारत का प्राचीन धर्म पूरी तरह ध्वस्त हो गया है और अगर ईसाइयत ऐसे समय में वहाँ प्रवेश नहीं करती तो यह किसकी गलती होगी?' अपनी पत्नी को 1868 में लिखे एक पत्र में मूलर ने यह भी लिखा : 'मैं उम्मीद करता हूँ कि मैं उस कार्य को सम्पन्न करूँगा और आश्वस्त हूँ कि मैं वह दिन देखने के लिए जीवित नहीं रहूँगा, फिर भी मेरा यह संस्करण और वेदों का अनुवाद आज के बाद भारत के भविष्य और इस देश में लाखों मनुष्यों के विकास को बहुत सीमा तक प्रभावित करेगा'। उसी पत्र में उन्होंने आगे कहा : '[वेद] उनके धर्म का मूल है और वह मूल क्या है इसे उन्हें दिखाने के लिए मैं आश्वस्त हूँ, सिर्फ एक रास्ता है कि पिछले तीन हज़ार वर्षों के अन्तर्गत जो कुछ भी इससे निकला है उसे उखाड़ दिया जाये'।[22] दूसरे शब्दों में, उन्होंने समकालीन भारतीय सभ्यता को, विशेषकर इसके अनेक देवताओं को प्राचीन वैभव के एक भ्रष्ट रूप में देखा।

एडोल्फ पिक्टेट

स्विस भाषाविद् एडोल्फ पिक्टेट (Adolphe Pictet) (1799-1875) एक अन्य बहुभाषाविद थे जो ईसाई यूरोप में आर्य विरासत की प्रशंसा करने के प्रति संकल्पबद्ध थे। वे यूरोपीय आर्य मूल और उसकी श्रेष्ठता की अवधारणा के प्रति पूरी तरह सर्मिपत थे। उनके अनुसार एक कृपा-प्राप्त नस्ल के रूप में 'जन्मजात सौन्दर्य' और 'बुद्धिमत्ता के उपहार' से धन्य और समृद्ध होकर विश्व विजयी बनना आर्यों के भाग्य में था। इस बात पर विशेष बल देने, यहाँ तक कि इससे अभिभूत हो जाने, का सम्बन्ध इस अवधारणा से था कि आर्यों की मानक धार्मिक मनोवृत्ति एकेश्वरवादी थी, जो उनमें पूरी तरह तब फलीभूत हुई जब ईसाई शासनकाल आया। उन्होंने आगे और तर्क दिया कि भारतीयों में मूलत: एकेश्वरवाद की समझ थी, लेकिन वह एकेश्वरवाद अल्पविकसित था और बाद में बहुदेववाद में बदल गया। पिक्टेट ने निष्कर्ष निकाला कि आर्य मानस की उचित धार्मिक अनुकूलता एकेश्वरवादी थी, और इस अवधारणा ने ईसाई यूरोपीय आर्यों को भारतीय आर्यों को, जो एकेश्वरवाद से नीचे गिर गये थे, अपने उपनिवेश में लाने का एक औचित्य प्रदान किया।

उनका उद्देश्य, जैसा कि रेनान और मूलर का था, भाषाशास्त्र के माध्यम से यूरोपियनों तक 'विश्व की सर्वाधिक शक्तिशाली नस्ल की जन्मस्थली, जो वही नस्ल थी जिसके हम वंशज हैं'[23] की अवधारणा और इसकी विवेचना को पहुँचाना था। उन्होंने आर्यों की विवेचना करनी चाही ताकि वे अधिकाधिक एकेश्वरवादी लगें, यह दावा करते हुए कि 'काव्यात्मक बहुदेववाद' के होने के बाद भी उनके पास एक

'आदिम एकेश्वरवाद' भी था। संस्कृत पर भाषावैज्ञानिक विश्लेषण लागू करते हुए उन्होंने दावा किया कि प्राचीन भारतीयों में आदिम एकेश्वरवाद था जिसमें जीवन्तता की कमी थी, इसीलिए वे 'प्राकृतिक परिघटनाओं की बहुलता को समझने-समझाने के एक तरीके के तौर पर' बहुदेववाद में जा गिरे। एकेश्वरवाद के उस बीज को पुनर्जीवित करने में ईसाइयत को महत्वपूर्ण भूमिका निभानी चाहिए जिसे सबसे पहले आर्यों ने बोया था।

पिक्टेट के अनुसार, भारोपीय विरासत में अनेकता में एकता अन्र्तनिहित थी : शुरू ही से आर्यों की बोलियों में विविधता थी, और भारोपीय लोगों में प्रागैतिहासिक राजनीतिक एकता थी। वे महसूस करते थे कि इतिहासकार का काम ईश्वर द्वारा दुनिया की हर नस्ल को सौंपी गयी भूमिका को उजागर करना है। रेनान की तरह, उन्होंने अनुभव किया कि हीब्रू और आर्यों के अपने-अपने गुण हैं।[24] स्वतन्त्रता और मुक्ति से अपने प्रेम के कारण (जो सामी लोगों के गुणों के विपरीत गुण था) पहले आर्य बहुदेववाद में रास्ता खो बैठे थे, लेकिन बाद में उन्होंने प्रकृति के भौतिक जगत पर महारत हासिल कर ली, और वे पूरे विश्वास के साथ ईसाई एकेश्वरवाद की ओर बड़े। ईसाइयत सभी धाराओं का सर्वोत्तम संयोजन है, और इसलिए मानव के भविष्य के रूप में यह मनोनीत है। ईसाइयों की नियति पूरी पृथ्वी पर शासन करने के लिए निर्धारित है।

इस प्रक्रिया में, भारत के लोग जो 'प्रारम्भिक आर्यों' की सन्तानें थीं, और जो मूल मातृभूमि का प्रतिनिधित्व करते थे, अब आधुनिक सभ्यता के 'लाभकारी प्रभावों' को हासिल करने के लिए यूरो-आर्यों द्वारा उपनिवेशित हो गये थे। यूरो-आर्य तो भारो-आर्यों के भाई हैं, और उनके लिए वे 'धार्मिक प्रकाश तथा समान प्रगति' ला रहे हैं। पिक्टेट यूरोप द्वारा भारत को उपनिवेश बनाने का महिमामण्डन करते हैं, यह टिप्पणी करते हुए कि 'यह आश्चर्य की बात नहीं, और इससे भी बड़ी बात यह देखना है कि यूरोप के आर्यों को चार-पाँच हज़ार वर्ष के बिलगाव के बाद अपने अनजान भारतीय भाइयों तक पहुँचने का वापसी का रास्ता मिला, भले ही मार्ग घुमावदार था, ताकि वे उन पर अधिकार करके उनके बीच उच्चतर सभ्यता के तत्व लायें और उनके बीच साझे मूल के प्राचीन प्रमाण की खोज करें?'[25] इसलिए भारत को उपनिवेश बनाना नैतिक है, क्योंकि ऐसा ही नियति-निर्धारित है। सभ्यता का विस्तार ईसाई उपनिवेशन के माध्यम से ही किया जाना है।

रूडोल्फ फ्रेडरिक ग्राऊ (Grau)

आर.एफ. ग्राऊ (1835-93) के साथ ही बल लगभग पूरी तरह बदल गया। एक समेकित बाइबल परम्परा को प्रस्तुत किया जाने लगा जो ईसाइयत की सामी विरासत को समुचित तौर पर स्वीकार करती है ताकि ईसाई खेमे में असहमति को घटाया जा

सके। ऐसा करके, उन्होंने तर्क दिया कि गैर-ईसाइयों, विशेषकर भारतीयों को धर्मान्तरित करने का कार्य बहुत आसान हो जायेगा।

ग्राऊ जर्मन मन्त्री थे और लूथेरन पक्षधर जो आर्यों की (जिनको उन्होंने इण्डो-जर्मन कहा) भरपूर प्रशंसा का प्रतिरोध करना चाहते थे, क्योंकि आर्यों का पक्ष लेने में ईसा मसीह को भुला देने का ख़तरा था। इसलिए उन्होंने ईश्वर और उसके द्वारा चुने गये नये लोगों (ईसाई श्रद्धालुओं) के बीच एकमात्र सम्पर्क-सूत्र के रूप में सामी लोगों को महत्व दिया। चर्च के सामी आधार से इण्डो-जर्मन समुदाय को अलग करने से आधुनिक विश्व का सन्तुलन ख़तरे में पड़ सकता था। उनके समय के अनेक यूरोपीय लोगों की तरह उन्होंने भी सामी एकेश्वरवाद अपना लिया था, लेकिन उसे यहूदियों से अलग कर दिया था, जिनसे वे घृणा करते थे। सबसे अच्छी रणनीति थी सामी लोगों के एकेश्वरवाद को ईसाई सन्दर्भ में इण्डो-जर्मन (आर्यों की) गतिशीलता से मिलाना।

ग्राऊ ने घोषित किया : 'सामी आत्मा और इण्डो-जर्मन प्रकृति का मिलन स्वर्ग में ही तय हो गया है'।[26] अलग-अलग रूपों में, दोनों में से किसी में भी वह रीढ़ नहीं थी जो ऐसा माना जाता था कि ईसाइयत ने उन्हें दी थी, लेकिन इस मिलन की कृपा से वे दुनिया पर शासन करने के लिए नियति द्वारा निर्धारित हैं। कला और विज्ञान में साकार हुई असाधारण इण्डो-जर्मन गतिशीलता ने ईसाई चर्च में ही सार्थकता हासिल की। ईसाइयत के बिना वे बर्बरता में डूब जाते। इस बिन्दु को दर्शाने के लिए उन्होंने व्याख्या की कि भारत में बहुत अधिक रचनात्मकता थी पर वह अनियन्त्रित थी और 'सामी दिलचस्पी' की ईसाइयत ही उसको अराजकता से बचा सकती थी। सांस्कृतिक समझदारी के किसी भी प्रयास के केन्द्र में सलीब को ही दृढ़ता से गाड़ना पड़ा। ग्राऊ की अनेक पुस्तकें अंग्रेज़ी में अनूदित हुईं और मिशनरियों द्वारा उनका उपयोग ईसाई प्रतीकों में वैदिक चिन्तन का समावेश करने के प्रयासों में किया गया ताकि उसे हिन्दुओं और भारत के अन्य धार्मिक लोगों का धर्मान्तरण करने के लिए लागू किया जाये।

गोबिनो और नस्ल विज्ञान

फ्रांसीसी राजदूत, दार्शनिक, इतिहासकार और उपन्यासकार जोजेफ आर्थर कॉमटे डी गोबिनो (Comte de Gobineau, 1816-82) ने दावा किया कि भारत पर आक्रमण करने के बाद यूरोपीय आर्य अपेक्षाकृत काले मूल निवासियों के साथ घुल-मिलकर दूषित हो गये थे। गोबिनो के लिए भारत का महत्व उनके अपने नस्लवादी सिद्धान्तों की पुष्टि करने के लिए एक नमूने का अध्ययन मात्र था।

सन 1853 में, उसी साल जब कार्ल मार्क्स ने व्याख्या की थी कि विदेशी आक्रमणों से अलग भारत का अपना कोई इतिहास नहीं है, गोबिनो ने अपने नस्लवादी सिद्धान्तों को चार खण्डों में पुस्तकाकार प्रकाशित करना शुरू किया

जिसका नाम था— एसे ऑन द इनइक्वॉलिटी ऑफ ह्यूमन रेसेज। उनकी इस कृति का अनुवाद कई यूरोपीय भाषाओं में हुआ, और बाद में यह नस्ल विज्ञान को सामग्री मुहैया कराने वाला मुख्य स्रोत बन गया। गोबिनो के सिद्धान्तों में भारत ने नमूने की भूमिका निभायी, क्योंकि वे आर्यों के आक्रमणों को वर्ण-व्यवस्था की व्याख्या करने के लिए उद्धृत कर सकते थे। वे उन लोगों में से थे जिन्होंने भारतशास्त्र सम्बन्धी साहित्य को अच्छी तरह पढ़ा था। उन्होंने नस्लों के भाषावैज्ञानिक वर्गीकरण को अस्वीकार कर दिया और उसके बदले में बल देकर कहा कि विश्व की सभी सभ्यताएँ गोरी नस्ल से निकली हैं, लेकिन उत्तरी यूरोप को छोड़कर सभी भौगोलिक क्षेत्र अन्तर-विवाहों के कारण पतित हो गये।[27]

गोबिनो ने बाइबल के ढाँचे के अन्दर रहकर कार्य किया, इस मान्यता से प्रारम्भ करते हुए कि 'हमारी गोरी नस्ल के जनक आदम थे' ('Adam soit l'auteur de notre espèce blanche')। उन्होंने 'गोरी श्रेणी, और उस श्रेणी में, आर्य परिवार की श्रेष्ठता' के बारे में लिखा। उनकी परिकल्पना के अनुसार तीन नस्लें थीं—श्वेत, पीत, और श्याम। उन्होंने श्वेतों को सबसे ऊपर रखा, क्योंकि उनमें संस्कृति को रचने और फैलाने की क्षमता थी। लेकिन, निम्नतर नस्लों के निवास क्षेत्रों में सांस्कृतिक विस्तार अन्तर-प्रजनन का कारक बना और इस तरह इसने श्रेष्ठ मान ली गयी नस्ल की शुद्धता में गिरावट ला दी।

अपनी परिकल्पना को सत्य प्रमाणित करने के लिए गोबिनो ने भारत का उदाहरण एक आधार के रूप में दिया। हॉबफास ने गोबिनो के सिद्धान्त को संक्षेप में इस तरह लिखा : 'आर्यों ने, जो 'गोरी नस्ल' की सर्वोच्च सम्भावना का प्रतिनिधित्व करते थे, भारतीय उपमहाद्वीप पर आक्रमण किया और मूल निवासियों के साथ घुलनामिलना शुरू कर दिया। इसके ख़तरों को भाँपते हुए, आर्य विधान बनाने वालों ने आत्म-संरक्षण के साधन के रूप में वर्ण-व्यवस्था को लागू किया। यही कारण है कि विश्व की अन्य सभ्यताओं की तुलना में भारत में अवैध सन्तानोत्पत्ति और पतन की प्रक्रियाएँ बहुत धीमी रही हैं'।[28]

दूसरे शब्दों में, शुद्ध गोरों ने निम्नतर लोगों के साथ अपनी ऊँची नस्ल के घुलने-मिलने की प्रक्रिया को धीमा करने के लिए वर्ण-व्यवस्था बनायी थी। गोबिनो ने व्याख्या की कि भारतीय ब्राह्मण इसी अन्तर-मिश्रण के कारण पतित आर्य थे। फिर भी उन्होंने तर्क दिया कि वर्ण-विलगाव न होने की स्थिति में यह पतन और ख़राब होता। गोबिनो ने भारत का उदाहरण फ्रांस की क्रान्ति के पीछे मौजूद धारणाओं, और साथ-ही-साथ मार्क्सवादी वर्ग-संघर्ष के उभरते विरुद्ध के विरुद्ध तर्क देने के लिए प्रस्तुत किया था।

विल्हेम हॉबफास ने बताया कि किस तरह मनगढ़ंत आर्य परिकल्पना इस तरह समय के साथ सरकती गयी :

गोबिनो के जीवनकाल में, यूरोपीय भाषाओं और परम्पराओं के एशियाइ मूल के पुराने सिद्धान्त, और पूर्व से पश्चिम की ओर सांस्कृतिक प्रवाह के सिद्धान्त ने पश्चिम से पूर्व की ओर प्रवाह के आदिम सिद्धान्त के बारे में अटकलों को अधिक-से-अधिक स्थान देना शुरू किया जिनमें था यूरोप, विशेषकर उत्तरी यूरोप, से आर्यों का प्रवास। यह सिद्धान्त यहाँ तक बढ़ाया गया कि इसमें उत्तरी ध्रुव से भारत की ओर प्रवास की परिकल्पना थी। इन अटकलों के अनुसार, यूरोपीय या उत्तर के आक्रमणकारियों ने अपनी श्रेष्ठ संस्कृति भारत को दी और फिर स्थानीय निवासियों के साथ घुल-मिलकर अपनी श्रेष्ठता खो दी और ऐसे वातावरण में नष्ट हो गये जो उनके लिए अनुकूल नहीं था। सन 1903 में ई.डी. मिशेलिस ने इस दृष्टिकोण का सारांश इस कथन से किया कि एशिया, और विशेषकर भारत, 'पालना' नहीं, बल्कि 'आर्यों की कब्र' था।[29]

आर्य सिद्धान्तकार और सुजनन विज्ञान

गोबिनो का नस्ल सिद्धान्त कोई अकेली परिघटना नहीं था। सन 1870 के दशक में, ऑक्सफोर्ड के व्याख्याता जॉन रस्किन ने सेसिल रोड्स जैसे अपने शिष्यों में इस अवधारणा को स्थापित कर दिया कि यूरोपीय 'सर्वोत्तम उत्तरी रक्त' के थे और उन्हें विश्व पर शासन करना चाहिए। रोड्स ने आगे चल कर अफ्रीका से लूटी गयी अपनी प्रचुर सम्पदा का उपयोग अपनी विख्यात रोड्स छात्रवृत्ति को धन देने में किया, जिसका प्रारम्भिक उद्देश्य सिर्फ गोरे युवजनों को प्रोत्साहित करना था। ऐसी नस्लवादी अवधारणाएँ सुजनन विज्ञान की लहरों पर सवार थीं जो उपनिवेशवादी यूरोप के आरामदेह कक्षों और राजधानियों में उठ रही थीं। उन्नीसवीं शताब्दी में शैक्षणिक क्षेत्रों में सुजनन विज्ञान जैसे सिद्धान्तों की बाढ़ आ गयी थी।

'सुजनन विज्ञान' या यूजेनिक्स पारिभाषिक शब्द का प्रयोग पहली बार फ्रांसिस गॉल्टन द्वारा 1883 में किया गया, जो रिश्ते में चार्ल्स डार्विन के भाई थे। डार्विन ने लिखा था कि 'मानव की सभ्य नस्लें निश्चित रूप से विश्व भर की असभ्य नस्लों को लगभग पूरी तरह समाप्त कर देंगी या बदल देंगी'।[30] सुजनन विज्ञान 'निकृष्ट नस्लों' में जन्म रोककर चुनिन्दा प्रजनन और 'श्रेष्ठ' प्रजातियों में जन्म को बढ़ावा देने की तरफ़ इशारा करता है ताकि मानव जाति की गुणवत्ता बढ़ायी जा सके। कोई नस्ल कितनी 'सभ्य' है इसे नापने के लिए गॉल्टन ने अंग्रेज़ी उच्च-वर्ग के आधार का उपयोग किया। किसी भी नस्ल का 'जंगलीपन' इस आधार पर तय किया गया कि वह ऊपर दिये गये मानदण्ड से कितना अलग है।

यह योजना सुजनन विज्ञान के एक सिद्धान्तकार जॉर्जेज वाशर डी लापॉज (1854-1936) द्वारा मानव-जातियों के वर्गीकरण के लिए एक अधिक 'वैज्ञानिक' वर्गीकरण-सिद्धान्त में बदल दी गयी। सन 1899 में, डी लापॉज ने 'आर्य और उसकी सामाजिक भूमिका' नामक अपनी पुस्तक प्रकाशित की। उनके अनुक्रम ने 'आर्य गोरी नस्ल' को

मानवों में सबसे ऊपर रखा। बाद में वे नाजी नस्लवादी अवधारणा के प्रमुख प्रेरणा स्रोतों में से एक बने। हार्वर्ड के प्राध्यापक विलियम जेड. रिप्ले ने 1899 में छपी अपनी पुस्तक, द रेसेज ऑफ यूरोप, में डी लापॉज के वर्गीकरण का उपयोग किया जिसका अमरीका में गोरे श्रेष्ठतावादियों पर भारी प्रभाव पड़ा था। मैडम ब्लावत्सकी ने, जो थियोसॉफिकल सोसाइटी की करिश्माई संस्थापक और उस समय के पश्चिम की अग्रणी रहस्यवेत्ता थीं, जिस आर्य सिद्धान्त का प्रतिपादन किया, उसका विस्तार सम्पूर्ण जर्मनी और ऑस्ट्रिया में हुआ।[31]

चेम्बरलेन : आर्य-ईसाई नस्लवाद

हूस्टन स्टीवर्ट चेम्बरलेन (1855-1927) एक ब्रिटिश लेखक थे जिन्होंने दर्शनशास्त्र, इतिहास और संस्कृति पर पुस्तकें लिखीं। वे गोबिनो की अवधारणाओं को इस प्रयास में और आगे ले गये कि उन सिद्धान्तों को अधिक 'वैज्ञानिक' और दार्शनिक आधार दिया जा सके। ऐसा करने के क्रम में नाजी नेतृत्व पर उनका आधिकारिक प्रभाव पड़ा। द फाउण्डेशन्स ऑफ द नाइन्टीन्थ सेन्चुरी (1899) उनका एक बड़ा काम था। हालाँकि वे अंग्रेज़ थे, चेम्बरलेन ने यह पुस्तक जर्मन में लिखी ताकि वे अपनी आर्य-ट्यूटॉनिक (Aryan-Teutonic) विरासत[32] पर बल दे सकें। यह पुस्तक यूरोप में तत्काल सर्वाधिक बिकने वाली पुस्तक बन गयी, और 1942 तक आते-आते इसके अट्ठाईस संस्करण छप गये। प्रोटेस्टेंट उदारवादी धर्मशास्त्रीय पत्रिका डाइ क्रिस्टलिश वेल्ट ने इस पुस्तक का वर्णन एक ऐसी पुस्तक के रूप में किया जिसके लिए 'हमारे ईसाई जगत को बहुत धन्यवाद देना होगा'।[33]

द फाउण्डेशन्स ऑफ द नाइनटीन्थ सेन्चुरी ने भारत के वर्णों यानी जात-पाँत को नस्ल से जोड़ दिया, और ट्यूटॉनिक विरासत को आर्य नस्लों में सर्वाधिक विकसित के रूप में सामने रखा :

> .....आर्य जहाँ भी गये, वहाँ के स्वामी बन गये। यूनानी, लैटिन, केल्ट, ट्यूटॉन, स्लाव—ये सभी आर्य थे : जिन देशों पर उन्होंने विजय पाई उनके मूल निवासियों का शायद ही कोई अवशेष रह गया। भारत में भी ऐसा ही हुआ, यह रंग ही था जिसने विजेता गोरे आर्यों को हारे हुए अश्वेतों, दस्युओं, से अलग किया और इस तरह वर्ण का आधार तैयार किया। यह आर्य परिवार की ट्यूटॉनिक शाखा ही है जो कि सर्वप्रमुख है, और उन्नीसवीं शताब्दी की कथा ट्यूटॉन शाखा के विजय की ही कथा है।[34]

चेम्बरलेन ने भारत को एक ऐसे राष्ट्र के उदाहरण के रूप में देखा जहाँ आर्यों की 'शक्ति का मूल' सड़ गया था।[35] उनके लिए भारत के आध्यात्मिक जगत में भी ऐसा ही हुआ। ब्राह्मण की परिकल्पना इतनी 'उदात्त हो गयी कि ऐसा कुछ नहीं बचा जिससे नये जीवन की रचना हो सके'।[36] बौद्ध धर्म ने 'बुढ़ापे की मारी ऐसी संस्कृति की जीर्ण-शीर्ण अवस्था का प्रतिनिधित्व किया जो पहले से ही अपनी सम्भावनाओं

की सीमा तक पहुँच चुकी थी'।[37] आध्यात्मिक और नस्ली तौर पर पूरी तरह थक चुकी शक्ति के रूप में पूर्व की ऐसी तस्वीर के विरुद्ध, द फाउण्डेशन्स ने ईसा मसीह को 'एक नये दिन के जन्म, सलीब चिह्न की छाया में एक नयी सभ्यता के उषा काल, पुराने विश्व के अवशेषों पर खड़ी की गयी एक सभ्यता के रूप में किया जिसके लिए हमें बहुत समय तक काम करना ही चाहिए, उस आने वाले समय से पहले तक जब यह उनके नाम से जानने योग्य हो जाये'।[38] चेम्बरलेन ईसा मसीह वाले अध्याय का प्रारम्भ महाभारत से उद्धरण देते हुए करते हैं, इस तरह मानो प्राचीन भारतीय पवित्र साहित्य किसी-न-किसी रूप में ईसाइयत के आगमन की आशा रखता था।[39] यह युक्ति बाद में भारत में ईसाइयत के प्रचार के लिए पसन्दीदा हथियार बन गयी जिसका प्रयोग मिशनरी विद्वज्जनों द्वारा किया गया।

चेम्बरलेन ने ईसाइयत को एक अखिल-यूरोपीय और मूलत: ट्यूटॉनिक घटना के रूप में देखा। उन्होंने उदारवाद के खिलाफ, जिसे यहूदी षडयन्त्र के रूप में देखा गया था, एक रोक के तौर पर रोमन कैथोलिक ईसाइयत की प्रशंसा की। उन्होंने जर्मन राष्ट्रीय चर्च के सैद्धान्तिक आधार के लिए लूथारनिज्म (Lutheranism) की ओर देखा। यहूदी धर्म को अस्वीकृत करने के लिए उन्होंने संत पॉल की प्रशंसा की।[40] लेकिन गोबिनो के विपरीत चेम्बरलेन आर्य मिथक के सिलसिले में बाइबल के आधार की सीमाओं से अवगत थे, और उन्हें पूर्वाभास भी था कि एक दिन ऐतिहासिक आर्य नस्ल की अवधारणा पूरी तरह अस्वीकृत की जा सकती है। फिर भी उन्होंने अनुभव किया कि ऐसी अवधारणा यूरोप के लिए महत्वपूर्ण थी, और उन्होंने लिखा :

> हालाँकि यह प्रमाणित हो भी जाय कि अतीत में कभी आर्य जाति नहीं रही, फिर भी हम आकांक्षा रखते हैं कि भविष्य में वह होगी। यही कर्मशील आदमियों के लिए निर्णायक दृष्टिकोण है।[41]

आर्यों के वर्णन में चैम्बरलेन ने 'वैज्ञानिक', 'दार्शनिक' और ईसाई तत्वों का समावेश किया। उन्होंने विस्तार से बताया कि स्वयं को एक अखिल-यूरोपीय घटना की तरह प्रस्तुत करके, जिसने जर्मनों की नस्ली श्रेष्ठता का समर्थन किया, ईसाइयत को क्या लाभ मिलेगा। ऐसे दृष्टिकोण ने गोबिनो के खुल्लम-खुल्ला घोर आर्य नस्लवाद को सम्पूर्ण यूरोप के प्रभावी हलकों में स्वीकार्य बना दिया। मानवशास्त्री केनेथ ए.आर. केनेडी ने निष्कर्ष निकाला :

> गोबिनो और चेम्बरलेन दोनों ने आर्य परिकल्पना को, जिसकी बहुत सहज और तुच्छ-सी शुरुआत अट्ठारहवीं सदी के अन्त में जोन्स के भाषाशास्त्रीय शोध से हुई थी, ऐडॉल्फ हिटलर के जर्मन साम्राज्य के राजनीतिक और नस्लवादी सिद्धान्तों में रूपान्तरित कर दिया।[42]

नाजी जर्मनी ने चेम्बरलेन को मरणोपरान्त सम्मान दिया कि उन्होंने 'थर्ड राइख (यानी जर्मन साम्राज्य) की अवधारणा की परिकल्पना' कर ली थी।[43]

नाजी और उनके बाद

ऐसे सिद्धान्त पूरी उन्नीसवीं शताब्दी और बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ तक लगातार और विकसित होते रहे, और 1900 के आस-पास हाशिये पर चलने वाले राजनीतिक और बौद्धिक आन्दोलनों पर उनका बहुत प्रभाव रहा। सभ्यताओं और नस्लों के इतिहास की रचना करने के लिए उन्होंने भारतशास्त्र से चुनिन्दा तौर पर जानकारियाँ लीं कुछ इस तरह कि वे यूरोपीय श्रेष्ठता से मेल खायें।

इस सबने हिटलर को प्रभावित किया। जी लैन्ज-लिबेनफेल्स (1874-1954) ने ओस्टारा नामक एक पत्रिका शुरू की जिसमें उन्होंने काली-चमड़ी वाले चाण्डाल (उनके लेखन में tschandlas का प्रयोग हुआ है) और सुनहरे बालों वाले आर्यों के बारे में अपना नस्लवादी सिद्धान्त विकसित किया। सन 1908 में पत्रिका के दो अंक मनुस्मृति और प्राचीन 'इण्डो-आर्य' समुदाय में नस्ली विकास पर केन्द्रित थे।[44] हिटलर इस पत्रिका का नियमित पाठक था। ऐसी अनेक सामग्री हिटलर के तीसरे साम्राज्य के लिए आधारभूत पाठ्यसामग्री की तरह उपयोग में आयी। हॉबफास ने व्याख्या की, "भारत को बीच में लाया गया है ताकि अद्वितीय हेकड़ी वाले और विनाशकारी विचारों और कार्यक्रमों में स्पष्टता लायी जा सके और उन्हें उचित ठहराया जा सके"।[45]

जब नस्लवादी विचार जर्मनी से फासीवादी इटली में आये, तो वे वहाँ और उलझ गये। केट कोहेन ने फासीवादी इटली में यहूदियों की स्थिति पर इस प्रकार लिखा :

> आर्य शब्द जब फासीवादी इटली पर लागू किया गया तो उसने उतना ही बेतुका अर्थ ग्रहण कर लिया था : साँवले दक्षिणी कैथोलिक आर्य थे जबकि सुनहरे बालों और नीली आँखों वाले मिलानवासी यहूदी आर्य नहीं थे... फासीवादी शब्दों ने निश्चित रूप से हास्यास्पद स्थितियों को अन्तिम छोर तक धकेला : कोई भी आर्य हो सकता था, चाहे जैविक रूप से उसका ऐसा होना असम्भव ही जान पड़े। मिश्रित विवाहों से पैदा हुए बच्चे जिनका बचपन में ही बप्तिस्मा किया गया था, आधिकारिक तौर पर आर्य हो गये ... लेकिन आर्य बनने की कोशिश करना और इस आधार पर भेद करने का अपना मूल्य था... एक इतालवी आर्य का विचार, जो पहले से ही हास्यास्पद था, आर्य बनाये जाने की सम्भावनाओं के कारण और अधिक बेतुका हो गया। किसी को मात्र यही प्रमाणित करना रह गया था कि उसके पिता यहूदी नहीं, बल्कि आर्य थे और लोगों ने ऐसा यह दावा करते हुए किया कि उनका जन्म उनकी माता के व्यभिचार के परिणामस्वरूप हुआ था।[46]

इटली के एक प्राध्यापक गिऊलियो कॉग्नी ने नाजी आर्य विचारों को इटली में लाने में अत्यधिक महत्वपूर्ण भूमिका निभायी थी। हालाँकि बाद में वह मुसोलिनी (Mussolini) के कृपापात्र नहीं रह गये थे, इस फासीवादी तानाशाह के विचारों को

एक स्वरूप देने में वह काफी प्रभावी रहे। उन्होंने यहूदियों के बारे में कैथोलिक धर्मशास्त्रियों के रुख को जर्मन नाजीवादियों से मिलाया। जैसा कि इतिहासकार ऐरॉन जिलेट बताते हैं :

> कॉग्नी ने दावा किया कि 'अगर एक यहूदी ने ईसा मसीह से प्रेम किया ... वह सिर्फ़ इसी तथ्य के आधार पर यहूदी धर्म से बाहर हो जायेगा; उसका रूपान्तरण हो जायेगा, उसकी रगों में आर्य रक्त का बहना प्रारम्भ हो जायेगा'। यहूदी के बारे में यह धारणा मूल रूप से कैथोलिक चर्च की थी ...[47]

द्वितीय विश्व युद्ध के बाद हिटलर और जनसंहार के प्रति घृणा ने नस्ल विज्ञान और सुजनन विज्ञान को यूरोपीय मुख्यधारा से समाप्त कर दिया, और आर्य नस्ल की अवधारणा को हटाने के लिए विशेष प्रयास किये गये, सिर्फ शैक्षणिक शब्दभण्डार से ही नहीं बल्कि यूरोप के जनमानस से भी।

भारतीय सभ्यता पर दोषारोपण

इस तथ्य के बाद भी कि वह यूरोपीय विद्वता ही थी जिसने भारतीय परम्पराओं को गलत ढंग से आत्मसात और विकृत करते हुए यूरोपीय राजनीतिक पहचान को लाभ पहुँचाने के लिए उनका दुरुपयोग किया, अभी तक कुछ यूरोपीय विद्वानों की प्रवृत्ति यह आरोप लगाने की है कि यूरोपीय नस्लवाद और नाजीवाद भारत की देहरी से ही आया है। कोलम्बिया विश्वविद्यालय के प्राध्यापक शेल्डन पॉलक इसी विचार को बढ़ावा देते हैं। पॉलक के अनुसार, मीमांसा स्कूल द्वारा प्रस्तुत 'उच्च ब्राह्मणवाद' ने 'उपनिवेश बनने से पहले की भारतीय विचारधारा' में योगदान किया, और नाजीवाद ने इसे अपने 'घर'-जर्मनी-में लागू करने का प्रयत्न किया।[48] पॉलक तर्क देते हैं कि यही वह कारण है जिसने अन्ततः 'जनसंहार को वैध ठहराने' तक पहुँचा दिया।[49] जो भी हो, सत्य बिलकुल अलग है। इतिहासकार राउल हिलबर्ग ने अपने तीन खण्डों में प्रकाशित मौलिक ग्रन्थ, 'यूरोपीय यहूदियों का विनाश' (The Destruction of the European Jews) में जो पेश किया था वह इतिहासकार विलियम निकोल्स (William Nicholls) के अनुसार :

> 'मध्य काल में चर्च के धार्मिक कानूनों और नाजियों के उत्तरकालीन कदमों के बीच तुलना के लिए एक अनूठी तालिका है जो असन्दिग्ध रूप से यह दिखाती है कि नाजी मौलिक नहीं थे, बल्कि उन्होंने जानी-मानी नजीर पर अमल किया'।[50]

[2010 में पॉलक (Pollock) को भारत सरकार ने पद्मश्री सम्मान दिया था।]

विल्हेल्म हॉबफास ने पॉलक के शोध ग्रन्थ का उपयोग दूरगामी प्रभाव वाली अटकलों को गढ़ने के लिए किया :

> क्या इस अन्र्तनिहित ढाँचे की पहचान 'घोर नाजीवाद' या 'गहन मीमांसा' के रूप में करने की उतनी ही छूट नहीं ली जा सकती? और हमें कुमारिल और

जोन्स को 'घोर नाजी' और एडॉल्फ हिटलर को 'गहन मीमांसक' कहने से कौन रोकेगा?[51]

हम पश्चिमी भारतविदों द्वारा 'आर्यों के आक्रमण' आदि का हवाला देते हुए भारतीय सन्दर्भ में अब भी आर्य अवधारणा का उपयोग करते रहने के अभिप्रायों को देख सकते हैं। जैसा कि अगले अध्यायों में दिखाया जायेगा। यूरोपीय नस्लवादी परिकल्पनाएँ कितनी आसानी से भारत में प्रवेश कर गयी हैं, जहाँ गोरी चमड़ी वाले 'आर्यों' और काली चमड़ी वाले 'द्रविड़ों' के सन्दर्भ में इसे पुनर्परिभाषित किया गया है। इस तरह के भेदों को सबसे पहले उपनिवेश काल में प्रोत्साहित किया गया, लेकिन भारत के विभिन्न अध्ययनों में ये आज भी मजबूती से पैर जमाने हुए हैं।

4
साम्राज्यवादी बाइबल प्रचार भारतीय मानव जाति विज्ञान का स्वरूप निर्धारण

इस अध्याय में चर्चा होगी कि किस तरह बाइबल की कहानियों को उपनिवेशित समुदायों पर ऐतिहासिक तथ्यों के रूप में थोपा गया और उनका उपयोग उपनिवेशवादी प्रभुत्व को उचित ठहराने के लिए किया गया। बाद के अध्याय यह दिखायेंगे कि किस तरह एक झूठा इतिहास भारत पर सांस्कृतिक और धर्मशास्त्रीय प्रभुत्व अब भी थोप रहा है। चित्र 4.1 इस विकासक्रम को दिखाता है। इसके प्रमुख घटक निम्न प्रकार हैं :

मूसा का मानव जाति विज्ञान

यूरोपीय विद्वानों और शोधकर्ताओं ने एशियाई और अफ्रीकी समाजों की व्याख्या नूह के जल-प्रलय, हैम के अभिशाप, और बेबल की मीनार से सम्बन्धित बाइबल के मिथकों के माध्यम से की। इसके परिणामस्वरूप जो हुआ उसे ट्राऊटमैन (Trautmann) ने 'मूसा का मानव जाति विज्ञान' कहा, जो फिर विभिन्न प्रकार के उपनिवेशित लोगों के इतिहासों और उनकी संस्कृतियों की व्याख्या करने का पैमाना बन गया। इससे मतभेद रखने वाले स्वर भी बने रहे, लेकिन उनको अनदेखा कर दिया गया या दबा दिया गया।

हैम का मिथक और अफ्रीकी उपनिवेश निर्माता

अफ्रीका ने यूरोप के सशस्त्र अभियानों के साथ-साथ दास-व्यापार के सिलसिले में किये गये धावों को भी भुगता जिसके तहत बड़ी तादाद में कैदी बनाये गये अफ्रीकी लोगों को दूरस्थ स्थानों में भेजा गया था। दासता की संस्था यूरोपीय और अमरीकी अर्थव्यवस्थाओं का एक प्रमुख घटक बन गयी। बाइबल के हैमी मिथक का उपयोग, जिसमें नूह द्वारा हैम की सन्तानों को अनन्त दासता का अभिशाप दिया गया था, यूरोपियनों ने अश्वेतों के चमड़े के रंग की व्याख्या करने और दासता की संस्था को उचित ठहराने के लिए एक स्थापित सत्य के रूप में किया। इस हैमी मिथक को आर्य आक्रमण के सिद्धान्तों से मिला दिया गया, और फिर यह भारत में जातीय विविधता के लिए प्रमुख व्याख्या बन गया। परिशिष्ट 'ग' इस वृत्तान्त में हैमी मिथक की केन्द्रीयता का रेखांकन करता है जो हाल के अफ्रीकी नरसंहारों का कारण बना।

बेबल का मिथक और भारतविद

अट्ठारहवीं शती के उत्तर के अग्रणी भारतविद, सर विलियम जोन्स, ने बाइबल की कहानी बेबल की मीनार के माध्यम से संस्कृत और यूरोपीय भाषाओं के बीच के सम्बन्ध की व्याख्या की। हिन्दू पुराणों और धर्मग्रन्थों को 'ईसाई सत्य' के भ्रष्ट रूप में वर्गीकृत किया गया, और भारत के मूल निवासियों का वर्णन हैम की सन्तानों के रूप में किया गया जो नूह के जल-प्लावन के बाद भारत गये थे। बाइबल का यह मिथक बाद में भारतीय समाज की नस्लवादी घिसी-पिटी कहानियाँ गढ़ने और नस्लवादी व्याख्याएँ करने का साँचा या मूल आधार बन गया। इसने भारत में अंग्रेज़ी राज को भी भारतीयों को जिन्होंने 'बाइबल के मौलिक सत्य' को भ्रष्ट कर दिया था, बचाने और सभ्य बनाने वाले एक मिशन के रूप में उचित ठहराया।

Fig 4.1 बाइबल के मिथकों द्वारा उपनिवेशवादी नृजाती विज्ञान का गठन होना
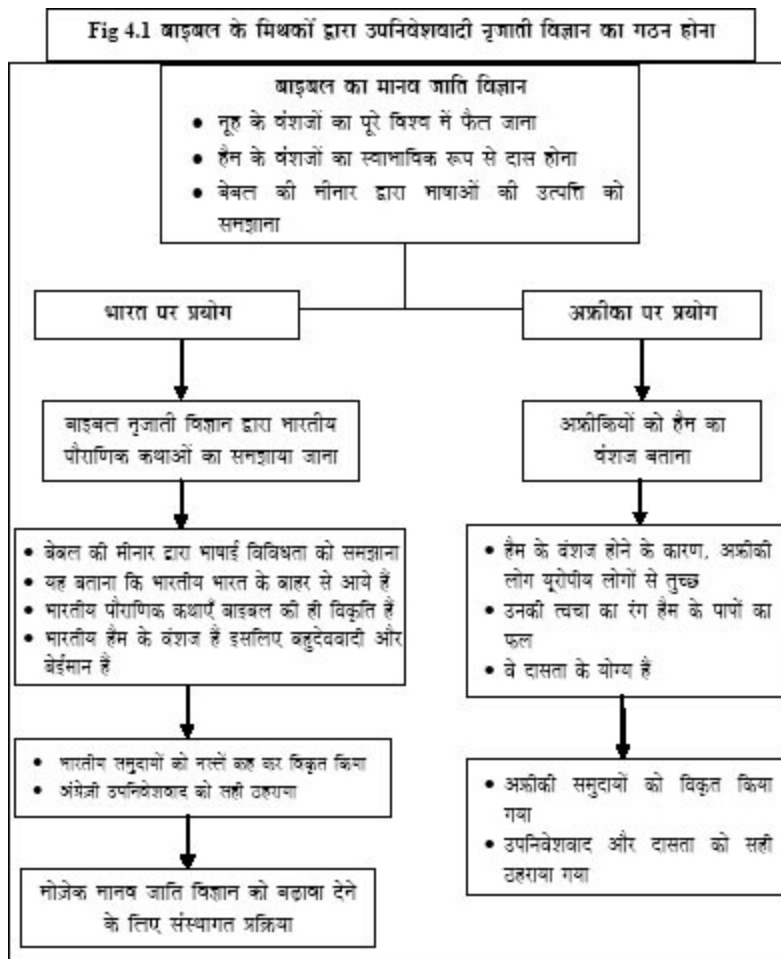
संस्थागत तन्त्र

शैक्षणिक संस्थानों में से अनेक, जो आज भारतीय संस्कृति का अध्ययन कर रहे हैं, उपनिवेश काल में खड़े किये गये थे। बाइबल आधारित मानव जाति विज्ञान की प्रमुख स्थापनाओं में से कई आज भी अस्तित्व में बनी हुई हैं और इससे सम्बन्धित अध्ययनों में आज भी प्रभावी हैं।

बाइबल का प्रजाति सिद्धान्त और हैम मिथक

बाइबल के अनुसार, प्राचीन काल में एक महाजलप्रलय हुआ था जिसके बाद नूह की सन्तानों ने धरती को फिर से आबाद किया। नूह के तीन पुत्र थे हैम, शेम और जाफेथ। एक बार नूह की नग्नता पर हैम हँस पड़ा, जिससे अपमानित महसूस करके उन्होंने हैम की सन्तानों को अभिशाप दे दिया कि वे हमेशा के लिए अन्य दो पुत्रों की सन्तानों के दासत्व में जीवन व्यतीत करेंगे।[1] नूह की तीन सन्तानों द्वारा विश्व को किस तरह आबाद किया गया उसके बारे में बाइबल के इस वर्णन को यूरोप में वास्तविक इतिहास के रूप में स्वीकार किया गया।

जब यूरोप के औपनिवेशकों ने विश्व के विभिन्न भागों पर कब्जा किया तब उनके मिशनरियों और व्यापारियों का सामना अपरिचित गैर-पश्चिमी संस्कृतियों से हुआ। शीघ्र ही यूरोपीय कहानियाँ गढ़ी गयीं ताकि अन्य संस्कृतियों की सम्पूर्ण जनसंख्या को नूह के तीन पुत्रों में से किसी एक की सन्तानों के रूप में बाइबल के ढाँचे में रखा जा सके। परस्पर विरोधी यूरोपीय बुद्धिजीवियों के बीच इसको लेकर बहुत विवाद हुआ कि प्रत्येक गैर-यूरोपीय समुदाय किस तरह से इस ढाँचे में आयेगा, क्योंकि तब उस समुदाय के स्थान का निर्धारण बाइबल के अनुक्रम के अनुरूप हो जायेगा। मूल निवासियों द्वारा वर्णित वृत्तान्तों को 'मिथक' और 'अंधविश्वास' कहकर अस्वीकृत कर दिया गया। यूरोपीयों ने माना कि यह उनका नैतिक अधिकार है, और वास्तव में दायित्व भी कि वे सभी संस्कृतियों का 'सही इतिहास' लिखें। ऐसे अधिकांश वर्णनों में काली चमड़ी वाले लोगों की पहचान हैम की सन्तानों के रूप में की गयी। और किसी भी संस्कृति को, जिसे हैमी कहा गया, बर्बर, असभ्य, अनैतिक, और समय-समय पर चालाकी से बुद्धिमान बताते हुए वर्गीकृत कर दिया गया और इसलिए उन्हें दासत्व के लायक बताया गया।

बाइबल के एक इतिहासकार, स्टीफन आर. हेन्स इसकी व्याख्या करते हैं कि लोगों के चरित्र को उनकी चमड़ी के रंग से जोड़ने की इस प्रवृत्ति—विशेषकर ईसाइयत स्वीकार करने की उनकी क्षमता—को शुरू से ही ईसाइयत में संस्थागत बना दिया गया था :

> दो सहस्त्राब्दियों से अधिक समय से बाइबल के पाठकों ने हैम और उनकी सन्तानों पर हर बात के लिए दोष मढ़ा है—दासता के अस्तित्व से लेकर बँधुआ प्रथा, यौन दुराचार और विकृति, जादू-मन्त्र, ज्योतिष, मूर्ति पूजा, जादूटोना और बुतपरस्ती तक। उन्होंने हैम की सन्तानों को अत्याचार, चोरी, विधर्मी गतिविधियों, ईश-निन्दा, विद्रोह, युद्ध और यहाँ तक कि देवहत्या से जोड़ दिया है।[2]

प्रोटेस्टेंट अभियान के संस्थापक मार्टिन लूथर, इसके बावजूद कि वे कट्टर यहूदी विरोधी थे,[3] स्पष्ट रूप से विश्वास करते थे कि हैम और उनकी सन्तानें 'शैतानी और

कटु घृणा' के चंगुल में थीं। बाइबल ने, इस तरह से, शरीर की विशेषताओं को नैतिक पतन के आधार के रूप में प्रयुक्त करने और दासत्व को उचित ठहराने के लिए धर्मशास्त्रीय आधार उपलब्ध कराया।

ओरिगेन ऑफ अलेग्जैंड्रिया (Origen of Alexandria, 185-254) ने, जो प्रारम्भिक ईसाई चर्च के संस्थापकों और प्रमुख धर्मशास्त्रियों में से एक थे, लिखा कि मिस्त्र के निवासी बन्धक बने, क्योंकि वे 'पतित जीवन की ओर उन्मुख हैं' और पापाचार में लिप्त हैं। उन्होंने लिखा :

> इस नस्ल के उद्भव की ओर देखें तो आप पायेंगे कि उनका पिता हैम, जो अपने पिता की नग्नता पर हँसा था, इस तरह का न्याय पाने का अधिकारी था कि उसका पुत्र चनान अपने भाइयों का नौकर बने। ऐसी स्थिति में बन्धक होने की शर्त उसके व्यवहार की दुष्टता के पहले आयेगी। इसलिए ऐसा अकारण नहीं कि बाद की बदरंग सन्तानें अपनी नस्ल की अकुलीनता का अनुकरण करें।[4]

गोल्डेनबर्ग त्वचा के रंग के प्रति ओरिगेन के दृष्टिकोण का विश्लेषण करते हुए 'बदरंग' शब्द के उपयोग की व्याख्या करते हैं :

> हमें पूछना ही चाहिए कि ओरिगेन ने मिस्त्र के लोगों के बन्धक होने का वर्णन करते हुए उनकी त्वचा के रंग का उल्लेख क्यों किया ... मैं सोचता हूँ बाइबल में दूसरी जगह काली त्वचा के उल्लेख के सन्दर्भ में ओरिगेन के व्यापक भाष्य से निकाला जा सकता है। वे व्याख्या करते हैं कि सोन की युवती के साँवले रंग 1:5 का कारण पहले की पापपूर्ण स्थिति है... 'जन्म की अकुलीनता के कारण काला'।[5]

1517 और 1840 के बीच, आकलन किया गया है कि दो करोड़ अफ्रीकियों को बन्धक बना कर और अमरीका भेज दिया गया और इस तरह से दास बनाया गया कि उसे सिर्फ एक महाविनाश ही माना जा सकता है।[6] अट्ठारहवीं शताब्दी तक आते-आते, यूरोप की अर्थव्यवस्था को सहारा देने वाली दासता के मूल संस्थान बन जाने के कारण, हैमी मिथक दासता को उचित ठहरा कर नस्ली सम्बन्धों के विमर्श पर हावी रहा। हेन्स लिखते हैं कि दासता का समर्थन करने वालों में 'डॉक्टर, वकील, राजनीतिज्ञ, पादरी और प्राध्यापक जैसे सम्माननीय पेशेवर' शामिल थे, जिन्होंने 'हैम के अभिशाप' को एक ऐतिहासिक तथ्य माना।[7]

इससे भी महत्वपूर्ण यह कि धर्मान्तरण कर ईसाई बनने वाले अफ्रीकियों ने भी स्वयं अपने इतिहास के इस विवरण को स्वीकार कर लिया, जैसा कि यूरोपीय स्वामियों द्वारा उन्हें पढ़ाया गया। इस तरह, अश्वेत दास कवयित्री फिलिस ह्वीटली ने 1773 में लिखा : 'ईसाई ध्यान रखें, केन जैसे निग्रो अश्वेत परिष्कृत किये जा सकते हैं और फरिश्तों की कतार में शामिल हो सकते हैं'।[8] सन 1843 में अमरीका में 'गुलामी जैसी कि वह नीग्रो या अफ्रीकी नस्ल से सम्बन्धित है' (Slavery as it Relates to the Negro or the African Race) शीर्षक से एक पुस्तक प्रकाशित हुई। इसके लेखक

जोसिया प्रीस्ट ने नूह द्वारा हैम को शाप दिये जाने की घटना का नाटकीकरण करते हुए अश्वेतों की गुलामी को उचित ठहराया :

> ओह हैम, मेरे पुत्र, मैंने तुम्हें और तुम्हारी नस्ल को ईश्वर के आदेश से जो शाप दिया है वह सिर्फ इस अकेले कृत्य के लिए नहीं दिया जिसे तुमने अभी-अभी किया है; बल्कि ईश्वर ने मुझे दिखाया है कि तुम्हारी सभी सन्तानें इस प्रकरण में तुम जैसे पिता के समान हो जायेंगी, सृष्टि करने वाले द्वारा यह निर्धारित कर दिया गया है कि तुम और तुम्हारे लोग मानवों के सभी परिवारों में सबसे नीचे की दशा को प्राप्त होंगे, यहाँ तक कि जंगली पशुओं की तरह बन्दी बनाये जायेंगे, और मानव समाज के दर्जे में नीचे गिर जायेंगे, भौतिक अस्तित्व की अनिवार्य स्थिति से भी परे और नीचे ... और शान्ति और युद्ध दोनों स्थितियों में उन्हें तिरस्कृत, अपमानित और दलित नस्लों की तरह रहना पड़ेगा।[9]
>
> यह पुस्तक अमरीका में उस समय की सर्वाधिक बिकने वाली पुस्तक हो गयी :

वर्ष 1843-45 के दौरान इसे न्यू यॉर्क में तीन बार पुनर्मुद्रित किया गया, और 1852-64 में अकेले केन्टकी में इसके छह संस्करण छपे थे।[10] बाद में इस पुस्तक को 'गुलामी का बाइबल आधारित बचाव' (Bible Defense of Slavery) कहा गया, और इसके लेखक जोसिया प्रीस्ट एक प्रसिद्ध व्यक्ति बन गये।

1895 में एक और सच्चे ईसाई टूप टेलर ने एक छोटी पुस्तिका लिखी जो बहुत लोकप्रिय हुई और उसके अनेक पुनर्मुद्रण हुए। इसका शीर्षक था—The Prophetic Families or The Negro – His Origin, Destiny and Status। इसमें बताया गया कि किस तरह हैम का अभिशाप कैनान से होते हुए समूची नीग्रो नस्ल पर आया :

> कैनान, जो निश्चित ही नीग्रो परिवार के पिता हैं, एक ऐसी नियति को आत्मसात कर चुके थे जो सिर्फ किसी निकृष्ट व्यक्ति के ही अनुकूल था। भविष्यवाणी इस कथन के साथ शुरू होती है, 'कैनान अभिशप्त हो; वह अपनी बिरादरी में नौकरों का एक नौकर बने' ... हम देखें कि किस तरह इस काव्य में अन्तर्निहित दैव विधान को नीग्रो और सिर्फ नीग्रो द्वारा पूरा किया गया।[11]

विलियम जोन्स द्वारा बाइबल के मानव जाति विज्ञान के अनुरूप भारतीयों का मानचित्र बनाना

नस्लों के लिए एक 'पारिवारिक वृक्ष' के ढाँचे की अनुक्रमणिका बनाने के विचार के पश्चिमी मानस में आने का एक लम्बा इतिहास है। मूसा या मोजेज को पारम्परिक रूप से 'उत्पत्ति ग्रन्थ' (The Book of Genesis) का लेखक माना जाता है, जो राष्ट्रों और नूह की सन्तानों से निकली नस्लों का वर्णन करता है। ट्राऊटमन इस विचार के सन्दर्भ में 'बाइबल मानव जाति विज्ञान' कहकर बात करते हैं।[12]

अरस्तू के 'सभ्यताओं के पैमाने' को जब बाइबल के मानव जाति विज्ञान से मिला दिया गया तो इसने पश्चिम को एक ऐसे क्रम को स्वीकार करने के लिए तैयार कर दिया जिसमें गोरे लोग स्वाभाविक रूप से सबसे ऊपर रखे गये थे। सन 1780 से लगभग 1850 तक यह सामान्य यूरोपीय नमूना बन गया, जैसे-जैसे उपनिवेशवादी भारतविद सिद्धान्त गढ़ते गये और विवेचना करते गये कि किस तरह बाइबल के ढाँचे में भारतीयों का मानचित्र सबसे अच्छे तरीके से बनाया जा सकता है। इन विद्वज्जनों में अन्य और कई भारतविदों के अलावा विलियम जोन्स, मैक्स मूलर, ब्रायन हाऊटन हॉजसन, और बिशप रॉबर्ट कॉल्डवेल थे। जैसा कि आगे दिखाया जायेगा, उनके गहरे प्रभाव ने आधुनिक भारतीय अस्मिताओं को विभाजित और विखण्डित करके छोड़ा।

विलियम जोन्स ने इस ढाँचे को एक साँचे की तरह अपनाया जिसके अनुरूप उन्होंने विश्व की भाषाओं का मानचित्र तैयार किया।[13] इस प्रकार भारतीय भाषाविज्ञान का मानचित्र बाइबल के मानव जाति विज्ञान के अनुरूप तैयार किया गया। संस्कृत की प्रशंसा करने और यह तर्क देने के लिए जोन्स विख्यात हैं कि यूरोपीय पुनर्जागरण आंशिक रूप से प्राचीन भारतीय ग्रन्थों के अध्ययन के माध्यम से आया। लेकिन भारतीयों के नस्ली विवरण तैयार करने की उनकी परियोजना के लिए उन्हें कम ही जाना जाता है, जो, जैसा कि ट्राउटमन ने बताया, 'प्राच्य विद्या विशारदों द्वारा एकत्रित की गयी सामग्री से बाइबल का तर्कसंगत बचाव ...'[14] बन गया। नूह के तीन पुत्र— हैम, शेम और जाफेथ—बाइबल के ढाँचे में सभी सभ्य लोगों के पूर्वज माने गये। जोन्स से हैम की सन्तानों के रूप में भारतीयों का, शेम की सन्तानों के रूप में अरब वासियों का, और जाफेथ की सन्तानों के रूप में टार्टर जनों का मानचित्र तैयार किया।[15] जोन्स ने यह दावा करने के लिए संस्कृत की सामग्री की अपनी नयी-नयी खोज का उपयोग किया कि हिन्दुओं का चरित्र हैम जैसा था, और यह कि संस्कृत साहित्य बाइबल की घटनाओं से जुड़ा है।

शब्दों की ध्वनियों में संयोग से प्रकट होने वाली समानता के बाहरी आकलन के माध्यम से जोन्स ने हिन्दू देवता राम को बाइबल के रामा से जोड़ा, और राम के पुत्र कुश को बाइबल में हैम के पौत्र कुसा से, आदि-आदि। समान ध्वनि वाले नामों और संयोगवश आये समध्वनीय शब्दों का उपयोग करते हुए जोन्स ने उनके बाइबल मूल के बाहरी आकलन की कोशिश की। उनका सिद्धान्त था कि नूह के जलप्लावन के बाद शीघ्र ही राम ने भारतीय समाज का पुनर्गठन किया। इसलिए भारत बाइबल से जुड़ी सबसे पुरानी सभ्यताओं में से एक है। उनकी परियोजना के तहत भारतीय अवधारणाओं और शब्दावलियों की पुष्टि करने के लिए बाइबल से सम्बन्ध ढूँढ निकाले गये। उनका उद्देश्य यह प्रमाणित करना था कि संस्कृत ग्रन्थों ने बाइबल में दिये गये मोजेज के वर्णन की पुष्टि की है।

ऐसा करने के क्रम में, जोन्स ने मनु को आदम माना और विष्णु के प्रथम तीन अवतारों को नूह के जलप्लावन की कहानी में ढूँढा। उसके बाद जोन्स ने एक अन्य

मनु का सृजन किया, जिसके बारे में उन्होंने दावा किया कि वे नूह ही थे। इस विलक्षण विवरण में, नाव पर सवार आठ मनुष्यों की बाइबल की कहानी वास्तव में मनु के साथ जलयान में जा रहे सात ऋषियों के बारे में है।[16] विष्णु के चौथे अवतार नरसिंह को नमरूद के रूप में अनूदित किया गया, जो हैम के वंशज थे और बेबल की मीनार से सम्बद्ध थे। दूसरे शब्दों में, संस्कृत साहित्य की वैधता और प्रासंगिकता को मापा गया और आधार यह बनाया गया कि बाइबल की मूल कथा में संयोगवश यह कहाँ और कितना मेल खाता है।[17]

वे भारतीय तत्व जो बाइबल में स्वाभाविक रूप से सटीक नहीं बैठे, उनको या तो जबरन सटीक बैठाने के लिए तोड़ा-मरोड़ा गया, या सीधे अस्वीकृत कर दिया गया। उदाहरण के लिए, जोन्स ने बाइबल के समय के पैमाने का उपयोग किया जिसे पहले के ब्रिटिश प्रोटेस्टेंट लोगों द्वारा स्थापित किया गया था, जैसे आर्चबिशप यूशर के सत्रहवीं शताब्दी का ऐलान कि ईश्वर ने विश्व की रचना ईसा पूर्व 4004 में की थी, और नूह का जलप्लावन ईसा पूर्व 2349 में हुआ था। इसका प्रयोजन था भारतीय युग गणना को अस्वीकृत कर देना क्योंकि उसमें बड़ी अवधि शामिल है जो लाखों और अरबों वर्षों के बारे में बताती है (जो, संयोगवश, ब्रह्माण्ड की आयु के सन्दर्भ में समकालीन वैज्ञानिक आकलनों के काफी निकट है)। अगर संस्कृत ग्रन्थों में किसी बात का उल्लेख था जो किसी तरह बाइबल में सटीक नहीं बैठा तो उस पर मिथक का ठप्पा लगा दिया गया। जिस किसी बात को 'सटीक' बैठा दिया गया वह जोन्स के अनुसार भारतीयों का इतिहास हो गया। इसी तरह से वैदिक और पौराणिक ग्रन्थों को बाइबल के कालक्रम में पचा लिया गया। काल पैमाने के बाइबल केन्द्रित ढाँचे ने ही कई दशकों बाद मैक्स मूलर को भारत पर कथित आर्य आक्रमण की तिथि को तय करने तक पहुँचा दिया, जो आज तक विद्वानों को प्रभावित करता है।

यूरोपीय विद्वानों ने प्राचीन यूनान और रोम को भी पश्चिमी सभ्यता के स्रोत के रूप में देखा। जोन्स ने संस्कृत के अपने अनुवादों को कुछ इस तरह से करने का प्रयास किया कि वे यूनानी-रोमी ढाँचे में सटीक बैठें। उन्होंने हिन्दू देवताओं और यूनानी-रोमी काल में मूर्तिपूजकों (pagan) के देवताओं के बीच अनेक समानान्तरों की श्रृंखला बनायी। उन्होंने समझाया कि ये सभी सभ्यताएँ हैम की वंशज थीं जो पतित होकर मूर्तिपूजक बन गयीं। अन्ततः यूरोपीय ईसाइयत द्वारा यूनानी-रोमी लोगों को बचा लिया गया, लेकिन हिन्दू मूर्तिपूजक ही बने रहे। हिन्दू और यूनानी-रोमी देवी-देवताओं के बीच जोन्स द्वारा बताया गया सम्बन्ध आज भी टिका हुआ है, और उन्हें हिन्दू और गैर-हिन्दू दोनों सच्चा मानते हैं।

बाइबल के ढाँचे में प्राचीन भारत का जोन्स का मानचित्र उन अनीश्वरवादियों के विरुद्ध भी एक साक्ष्य की तरह काम आया जो ईसाइयत का विरोध करते थे। उन्होंने हिन्दू धर्म का उपयोग उस महाजलप्लावन के बाद के बाइबल के इतिहास के एक स्वतन्त्र पुष्टिकरण के रूप में किया। अपने उद्देश्य को आगे बढ़ाने के लिए हिन्दू धर्म

और इसाइयत के बीच समानता के क्षेत्रों का उपयोग उन्होंने बढ़ा-चढ़ाकर किया। वास्तव में, उनके द्वारा हिन्दू धर्मग्रन्थों का उपयोग ईसाइयत के समर्थन में तर्क देने के लिए किया गया। इस व्यापक उद्देश्य के कारण जोन्स ने हिन्दू धर्म को एक ऐसा स्थान दिया जहाँ वह ईसाइयत के लिए ख़तरा न होकर उसकी पुष्टि करता था।

भारतीय ईसाइयत के विद्वान रसिया एस. सुगिर्थराजा ने टिप्पणी की है कि किस तरह विलियम जोन्स का भाषाशास्त्र हिन्दू ग्रन्थों के पाठ को बाइबल के मिथक में सटीक बैठाने के लिए एक धर्मशास्त्रीय परियोजना बन गया। सुगिर्थराजा लिखते हैं :

> ईसाइयत को पुनः सुदृढ़ करने की चिन्ता के साथ जोन्स की व्याख्या-सम्बन्धी रणनीति विश्व का कालानुक्रमिक मानचित्र फिर से तैयार करने की थी। उनके कालक्रम के ढाँचे में सटीक न बैठने वाले बोझिल और लम्बे भारतीय इतिहास को उन्होंने सीधे-सीधे खारिज कर दिया। [....] बाइबल के खण्ड जेनेसिस में जो इतिहास है वह अन्य इतिहासों के निर्णय के लिए आधारभूत मानदण्ड बन गया, और जो सटीक नहीं बैठा उसे जबरन ठूँस कर अन्दर बैठाना, नामोनिशान हटाना अनियन्त्रित व्यंजनापूर्ण परिकल्पनाएँ मानकर खारिज कर देना पड़ा था।[18]

जोन्स के मन में कोई सन्देह नहीं था कि ईसाइयत ही एकमात्र सत्य था। उन्होंने हिन्दू त्रिदेव ब्रह्मा, विष्णु और महेश का चित्रण ईसाई ट्रिनिटी के पतित संस्करण के रूप में किया, जो ईसाई ट्रिनिटी की कृपा से पतित होकर मूर्तिपूजकों के बहुदेववादी हो जाने के कारण हुआ था। उनका विश्वास था कि यूरोपीय जनों के पास श्रेष्ठतर तार्किक दक्षता थी और सभ्यता में वे एशियाइयों से बहुत आगे थे। विज्ञान के क्षेत्र में एशियाई 'केवल बच्चे' थे। भारतीय खगोलशास्त्र और विज्ञान के अध्ययन में उनकी रुचि इतिहास को समझने के लिए थी, इसलिए नहीं कि उनमें वर्तमान या भविष्य के लिए प्रासंगिक कोई महत्वपूर्ण गणितीय या वैज्ञानिक योगदान करने की सम्भावना थी।[19] संस्कृत के उनके ऐसे सभी विद्वतापूर्ण अध्ययनों के बाद भी, जोन्स ने भारतीयों के प्रति तीव्र घृणा अभिव्यक्त की, और उनके बारे में इस प्रकार लिखा :

> ... मोहित और मूढ़ ... जो स्वतन्त्रता को एक वरदान मानने के बदले एक अभिशाप की तरह स्वीकार करेगा, अगर इन्हें ऐसी स्वतन्त्रता देना सम्भव हुआ, और उसे जहर भरी सुराही मानकर अस्वीकार कर देगा...[20]

ट्राउटमन ने दिखाया कि किस तरह जोन्स ने बाइबल के मानव जाति विज्ञान के भीतर भारतीय समाज को बैठाने के लिए समझौते किये। उदाहरण के लिए, 1794 में मनुस्मृति का अनुवाद करने के बाद वे इससे भली-भाँती परिचित थे। फिर भी, वर्ण-व्यवस्था का उनका वर्णन मूल मनुस्मृति के वर्णन की एक विकृति मात्र था, और इस प्रकार बाइबल के मानव जाति विज्ञान में भारतीयों को बैठाने में उन्हें सहायता मिली। उनके निधन के बाद, ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने इंग्लैंड के सेंट पॉल कथीड्रल में उनकी एक प्रतिमा खड़ी की जिसमें उन्हें मनु की पुस्तकों को थामे दिखाया गया था। संस्कृत ग्रन्थों को तब तक बाइबल सम्बन्धी इतिहास को बल देने के लिए स्थापित किया जा

चुका था, न कि गैर-ईसाइयों से ख़तरे के रूप में। जोन्स उन पहले-पहले लोगों में से थे जिन्होंने ईसाइयत की विश्वसनीयता को बढ़ाने के लिए हिन्दू धर्म का उपयोग किया था। रूढ़िवादी प्रोटेस्टेंट प्रतिष्ठान ने उनकी जटिल और पेचीदा भूमिका के लिए उन्हें सम्मानित स्थान दिया।[21]

भारत के प्रति प्रारम्भिक भारतविदों के आकर्षण का एक अन्य कारण लॉर्ड मोनबोडो (Lord Monboddo, 1714-99) की पुस्तक थी। लॉर्ड मोनबोडो ने प्राचीन भारत को मिस्त्र से जोड़ा था। लेकिन, मिस्त्र की चित्रलिपियों को अन्तत: पढ़ लिये जाने पर और संस्कृत की एकता का उनका सिद्धान्त मिथ्या प्रमाणित हो गया। उस समय पौराणिक वर्णनों में आये भारतीय स्थानों को बाइबल के भूगोल और यूरोपीय दृश्यावली में घुसाकर देखने का प्रचलन शैक्षणिक क्षेत्रों में था।[22] संस्कृत ग्रन्थों से साक्ष्य के आधार पर प्राचीन आयरलैंड के इतिहास का 'सत्यापन' किया गया जिसमें बाइबल मानव जाति विज्ञान आधारभूत प्रतिमान के रूप में काम आया।[23] दूसरे शब्दों में, भारतीय सभ्यता की समेकित एकता की बलि चढ़ा दी गयी, क्योंकि इसके विभिन्न अवयवों को एक-दूसरे से और भारतीय सन्दर्भ से अलग कर दिया गया था और उनका उपयोग चुनिन्दा तौर पर बाइबल और यूरोपीय श्रेष्ठता को बल देने वाले हथियारों के रूप में किया गया।

सार यह है कि जोन्स के कृतित्व ने तीन अन्तर्निहित सिद्धान्तों को एक किया :

1. विश्व के सभी लोगों के उद्भव से सम्बन्धित बाइबल में वर्णित मोजेज की कहानी का उपयोग उन्होंने अपने मानव जाति विज्ञान के रूप में किया ताकि वे सभी का वर्गीकरण कर सकें।
2. गैर-पश्चिमी ग्रन्थों में पायी जाने वाली घटनाओं के कालानुक्रम को ईसाई अधिकारियों द्वारा निर्धारित काल-खण्ड में पिरोना ही था। जो उसमें सही रूप से नहीं समा सका उन्हें या तो तोड़-मरोड़ कर बैठाया गया, या मिथक कहकर खारिज कर दिया गया, या सीधे अनदेखा कर दिया गया।
3. संस्कृत ग्रन्थों में पाये गये प्राचीन ज्ञान को मानव की साझी विरासत के सन्दर्भ में अत्यधिक सम्मान दिया गया, और ईसाइयत के पक्ष में तर्क देने के लिए उसे चुनिन्दा तौर पर आत्मसात या साक्ष्य के रूप में प्रयुक्त किया गया।

जोन्स के कार्य के बाद, भारतशास्त्र की जर्मन और अंग्रेज़ शाखाओं ने भारत के सम्बन्ध में विक्टोरिया काल के विचारों और राजनीति को स्वरूप दिया। अंग्रेज़ों के विपरीत, जर्मन विचारकों पर उपनिवेशवाद का भूत सवार नहीं था, लेकिन वे एक जर्मन अस्मिता निर्मित करने के लिए भारतीय ज्ञान के उत्खनन में रुचि रखते थे। कुछ जर्मन विद्वानों ने भारतीय चिन्तन की चोरी की जबकि दूसरों ने उसके विरोध में तर्क दिये, और दोनों पक्षों ने जो स्वरूप प्रदान किया उसी को जर्मन चिन्तन के रूप में जाना जाता है।

कुछ अंग्रेज़ इसाइ प्रचारकों ने, जैसे प्रिचर्ड स्कूल में थे, भारतीयों की नस्ली हीनता की अपनी अवधारणाओं में जोन्स के कृतित्व को शामिल कर लिया। अन्य ईसाई प्रचारकों, जैसे रॉबर्ट कॉल्डवेल, ने उत्तर भारतीयों को दक्षिण भारतीयों से अलग करने और उत्तर विरोधी द्रविड़ अस्मिता को प्रोत्साहित करने की माँग की (इसकी विवेचना छठे अध्याय में की गयी है)। भारत के सम्बन्ध में ब्रिटिश अवधारणा पर अंग्रेज़ संस्कृतज्ञों का चिरस्थायी प्रभाव था और इसने बाद में भी भारतीय इतिहास की यूरोप केन्द्रित रचना और मानव जाति विज्ञान को प्रभावित किया। ट्राउटमन वर्णन करते हैं कि किस तरह उन्होंने 'सामान्यीकरण के सर्वोच्च स्तर पर वर्गीकरण और व्याख्या के सिद्धान्त को एक स्वरूप दिया, जिसने भारत के अंग्रेज़ प्रशासकों द्वारा उत्पादित मानव जाति विज्ञान से सम्बद्ध विशाल सामग्री को एक सीमा तक व्यवस्थित किया तथा उसे समझने लायक बनाया'।[24] इस प्रक्रिया को भारतशास्त्र सम्बन्धी विरासत के रूप में देखा जा सकता है, जिसने भारत के बारे में व्यापक श्रेणियाँ और परिकल्पनाएँ स्थापित कीं जो विद्वानों की पीढ़ियों तक हस्तान्तरित होती आयी हैं।

येल (Yale) के भाषाविज्ञानी जोजेफ एिंरगटन (Joseph Errington) की हालिया पुस्तक 'औपनिवेशिक संसार में भाषा विज्ञान' (Linguistics in a Colonial World),[25] इस दावे का, कि आर्य 'नस्ल' के लोग संस्कृत बोलने वालों में सबसे पुराने थे, रास्ता तैयार करने में विलियम जोन्स की भूमिका की व्याख्या करती है। उस समय के कुछ यूरोपीय वैज्ञानिकों द्वारा इस दृष्टिकोण की निन्दा की गयी थी, लेकिन यह अवधारणा मुख्यधारा में आने में सफल हो गयी जिसका कारण था प्रारम्भिक उपनिवेशवादी भारतविदों की लफ्फाजी की ताकत, जो बिना चुनौती के कार्य करते रहे और उपनिवेशवादी अधिकारियों द्वारा उन्हें गौरवान्वित किया जाता रहा। धीरे-धीरे, कुछ हलकों में एक आर्य नस्ल की परिकल्पना को अनुपयुक्त माना गया और परिणामस्वरूप 'इण्डो-यूरोपियन' या 'प्रोटो-इण्डो-यूरोपियन' शब्दावली परिकल्पित नस्ल के लिए घुमा-फिरा कर या मुलायम शब्दों में कही गयी उक्ति बन गयी। इन्हें रचने में उपनिवेशवादी भाषावैज्ञानिकों की अमित शक्ति के बारे में एिंरगटन लिखते हैं :

> तब, विश्वव्यापी ऐतिहासिक घटना के रूप में उपनिवेशवाद के प्रति एक प्रभावशाली दृष्टिकोण यह है कि चार शताब्दियों की छितरी और उलझी हुई घटनाओं को इस रूप में पढ़ा जाना है कि वे धरती पर सभी ओर लोगों, वस्तुओं, पूँजी, और प्रौद्योगिकी के अधिक मात्रा में और अधिक शक्तिशाली प्रवाह के नमूने पेश करती हैं ... इस दृष्टिकोण से भाषावैज्ञानिकों को एक छोटे, बल्कि औपनिवेशिक एजेंटों के एक विशेष समूह के रूप में माना जा सकता है जिन्होंने ... औपनिवेशिक शक्ति की सीमा रेखा के पार तक संचार के लिए आवश्यक वाहन तैयार किये। चाहे जितने भी विभिन्न तरीकों का उन्होंने उपयोग किया या विषय-वस्तुओं का वर्णन किया, उन्होंने जाने-पहचाने अक्षरों को विस्मयकारी

भाषा की छवियों में रूपान्तरित कर दिया : उनकी लेखन प्रणालियाँ, या वर्तनी, व्याकरण, भाषा कोष, निर्देशपरक ग्रन्थ आदि लेखन के उनके कार्य के लिए समान प्रारम्भ बिन्दु थे।[26]

औपनिवेशिक भारतविदों ने यह चिन्तन विकसित किया कि हालाँकि भारतीय उपमहाद्वीप पर यूरोप से हुए प्रारम्भिक आर्य आक्रमण ने सभ्यता का सम्मिश्रण किया था, बाद में भारतीय नीचे गिर गये। इसलिए उपनिवेशवाद को एक अच्छी वस्तु के रूप में देखा गया, क्योंकि यह सभ्य आर्य-यूरोपीय संस्कृति और भ्रष्ट एशियाई परिवेश में पहले की मिलावट की निरन्तरता थी। नीचे गिरे भारतीय भाइयों को उनके अतीत के गौरव तक उठाने के लिए यूरोपीय जनों की आवश्यकता थी। बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ तक इसे एक तथ्य के रूप में देखा जाने लगा कि अंग्रेज़ उपनिवेशक भारत में पहले प्रवेश करने वाले श्रेष्ठ यूरोपीय-आर्यों के पदचिह्नों का केवल अनुकरण कर रहे थे। भारतीय लोक सेवा और उच्चतर शिक्षा के उम्मीदवारों के लिए एक मानक पाठ्य पुस्तक माने जाने वाले 'ऑक्सफोर्ड भारत का इतिहास' (Oxford History of India) ने नस्ल की परिकल्पना को स्पष्ट रूप से लिखा :

वैदिक ऋचाओं से उनकी कड़ियों को जोड़कर आर्य आक्रमणकारियों की और काले, नाक विहीन डसपाट नाक वाले दस्युओं पर उनके प्रथम प्रभावों की एक उचित सुसंगत छवि बनाना सम्भव हो गया है जिनमें उनके विरोधी मूल निवासी और शासित जन शामिल थे।[27]

अंग्रेज़ भारतशास्त्रीय संस्थानों के एक सौ वर्ष

नया-नया उपलब्ध भारतशास्त्रीय ज्ञान भारतीय सभ्यता को समझने और अंग्रेज़ों की श्रेष्ठता को स्थापित करने के लिए एक प्रभावी उपकरण के रूप में स्वीकार हो गया। भारत के बारे में विशेषकर औपनिवेशिक दृष्टिकोण से जानकारियाँ तैयार करने और उन्हें प्रसारित करने के लिए भारत और ब्रिटेन दोनों में व्यापक शैक्षणिक अन्दरूनी ढाँचा स्थापित किया गया। भारतीय ग्रन्थों और संस्कृत शब्दावलियों को यूरोपीय ढाँचे में बैठाने के उनके प्रयास के क्रम में इन संस्थानों में भारतवासियों को सहयोगियों के रूप में नियुक्त किया गया ताकि उनके पास जो ज्ञान था उसे वे ले सकें। इतना ही नहीं, उपनिवेशवादी चाहते थे कि भारतीय जानकारियों का उपयोग अन्य भारतीय विद्वानों को प्रभावित करने के लिए किया जाये, और दीर्घावधि में भारतीय विद्वता की गतिशीलता को बदलने के लिए उन्हें मध्यवर्तियों के रूप में प्रयुक्त किया जाये।

प्रोटेस्टेंट ईसाई मत-प्रचारकों और ईस्ट इण्डिया कम्पनी के उपनिवेशवादियों ने अलग-अलग भारतशास्त्रीय संस्थानों की स्थापना की।[28] इन संस्थानों में से अनेक की स्थापना इस शासनादेश के साथ की गयी कि भारतीय सभ्यता को कमजोर किया जाये तथा अंग्रेज़ पक्ष को बल दिया जाये। भारतशास्त्र के प्रारम्भिक वर्षों में ब्रिटेन

द्वारा जिन प्राथमिक संस्थानों की स्थापना की गयी थी उनमें से कुछ चित्र 4.2 में दशाये गये हैं।

Fig. 4.2 : ईसाइ प्रचारक-भारतविद गठजोड़ के लिए उपनिवेशवादी केन्द्र

वर्ष	**संस्था**	**लक्ष्य**
1784	एशियाटिक सोसाइटी, कलकत्ता	उस प्राच्यविद्या को बढ़ावा दिया जाना जिसका प्रतिनिधित्व विलियम जोन्स करते थे। उनकी कुछ प्रमुख उपलब्धियों में से एक है अशोक के ब्राह्मी शिलालेखों को पढ़ लिया जाना। पर इसने केवल 1829 में ही भारतीयों को सदस्यता दी; तब तक भारतीयों को सहायकों/मूल सूचना देने वालों की तरह इस्तेमाल किया जाता था, जिनकी कोई आवाज़ नहीं थी।
1800	फोर्ट विलियम कॉलेज, कलकत्ता	ईस्ट इण्डिया कम्पनी के सभी 'लेखकों' की तीन वर्ष की आवश्यक शिक्षा इससे पहले कि उन्हें भिन्न-भिन्न पदों पर भेजा जाए।
1806	ईस्ट इण्डिया कॉलेज, इंग्लैंड (जिसमें चार्ल्स ग्रांट की प्रमुख भूमिका थी)	युवा इंग्लिश लड़कों को 'देसी' हो जाने से और इंग्लिश तौर-तरीके भूल जाने से बचाना। लक्ष्य था युवा इंग्लिश लोगों को भारत में स्थित विश्वविद्यालयों और पदों पर भेजने से पहले भारतीय संस्कृति के विरुद्ध शिक्षा देना।[29]
1814	कॉलेज ऑफ़ फोर्ट सेंट जॉर्ज, मद्रास	उपनिवेशवादी प्रशासक फ्रांसिस वाइट एलिस द्वारा स्थापित, जो कि तमिल की पहचान एक विभिन्न भाषाई परिवार के रूप में करने वाले महत्वपूर्ण व्यक्ति थे। कॉलेज ऑफ़ फोर्ट सेंट जॉर्ज तमिल और तेलुगू पाण्डु-लिपियों को एकत्र और उनका अनुवाद करता था।
1818	सेरमपोर सेमिनरी, कलकत्ता	भारतीयों को ईसाई मत प्रचार के लिए प्रशिक्षित करने के लिए मिशनरियों द्वारा खोला गया।
1823	रॉयल एशियाटिक सोसाइटी,	विलियम जोन्स की एशियाटिक सोसाइटी ऑफ़ कलकत्ता के ब्रिटिश प्रतिरूप में स्थापित।

	लन्दन, जिसकी शाखाएँ मद्रास और बम्बई में भी थीं	
1827	बोडेन चेयर, ऑक्सफ़ोर्ड, इंग्लैंड	भारतियों पर राज करने के लिए ईस्ट इण्डिया कम्पनी के अधिकारियों को भारतीय भाषाओं और संस्कृति में परिशिक्षित करने के लिए। संस्कृत अकादमिक अध्ययन के क्षेत्र के रूप में उभरी। यूनिवर्सिटी कॉलेज, लन्दन, एडिनबरा और केम्ब्रिज में क्रमश: 1852, 1862 और 1867 में संस्कृत के आचार्य नियुक्त किये गये।
1862	हेलीवेरी ऐण्ड इम्पीरियलिस्ट सर्विस कॉलेज	सामाजिक विज्ञान के कई अग्रगामियों ने इस विश्वविद्यालय में शिक्षा पायी, जिसे केवल इस लक्ष्य से बनाया गया था कि ईस्ट इण्डिया कम्पनी के जनसेवकों को भारत के लोगों के बारे में प्रशिक्षित किया जाए। इन अग्रगामियों में माल्थस और बेन्थम भी थे।
1888	इण्डियन इंस्टिटयूट, ऑक्सफ़ोर्ड	मोनियर-विलियम्स द्वारा स्थापित।

भारत के बारे में तोड़-मरोड़कर ज्ञान उत्पादित करने में ऐसे संस्थानों की भूमिका को एक टिप्पणी के माध्यम से आगे और दर्शाया गया है। सर मोनियर विलियम्स (Sir Monier Williams, 1819-99) द्वारा विख्यात संस्कृत-अंग्रेज़ी कोश की भूमिका में। ऑक्सफोर्ड में संस्कृत अध्ययन के लिए स्थापित प्रतिष्ठित बोडेन पीठ पर बैठे एक प्राध्यापक के रूप में मोनियर विलियम्स ने कर्नल जोजेफ बोडेन के उद्देश्य के बारे में बताया, जिन्होंने वह पीठ स्थापित की थी।[30] मोनियर विलियम्स ने लिखा :

> कर्नल बोडेन ने अपनी वसीयत (दिनांक अगस्त 15, 1811) में बिलकुल साफ़-साफ़ कहा कि उनके उदार अनुदान का विशेष लक्ष्य था—संस्कृत में धार्मिक ग्रन्थों के अनुवाद को प्रोत्साहन; ताकि उनके देशवासी भारतवासियों को ईसाइयत में परिवतर्तित करने की दिशा में आगे बढ़ने के योग्य बन जायें।[31]

मोनियर विलियम्स ने ये प्रसिद्ध पंक्तियाँ भी लिखीं :

> जब ब्राह्मणवाद के सशक्त किले की दीवारों को घेर लिया जायेगा, दुर्बल कर दिया जायेगा, और सलीब के सिपाहियों द्वारा अन्तत: धावा बोल दिया जायेगा,

तब ईसाइयत की विजय पताका अवश्य ही लहरायेगी और यह अभियान पूरा हो जायेगा।[32]

उपनिवेशवादी भारतशास्त्र पश्चिमी शिक्षाविदों और भारतीय विद्वानों के बीच सहयोग पर आधारित था।[33] इस दृष्टिकोण की तुलना आज के दक्षिण एशियाई अध्ययनों में इसी तरह की व्यवस्था से की जा सकती है, जिसमें अमरीकी सरकार, निगम, निजी फाउण्डेशन, विश्वविद्यालय और मानवाधिकार गुटों के बीच मिली-भगत है। इन सम्पर्क-सूत्रों और भारतीय संस्थानों को नियन्त्रित करने की उनकी क्षमता के बारे में विस्तार से विचार इस पुस्तक के अगले अध्यायों में किया जायेगा।

5
लॉर्ड रिस्ली द्वारा नस्ल में जाति-वर्ण का रूपान्तरण

अट्ठारहवीं शताब्दी में यूरोपीय विद्वानों ने 'नस्ल विज्ञान' का आविष्कार करके उपनिवेशवादी प्रशासकों को एक हथियार दे दिया। उन्होंने तुरन्त ही इस उभरते हुए क्षेत्र की भावी क्षमताओं को पहचान कर इसका उपयोग शासन के एक प्रभावी उपकरण के रूप में करना शुरू कर दिया। बाइबल के अस्पष्ट सन्दर्भ बिन्दुओं पर आधारित काल्पनिक नस्ली कोटियों का उपयोग करते हुए उन्होंने इनको भारत के अनेक विशिष्ट क्षेत्रीय और भाषायी समुदायों पर इस तरह थोप दिया जैसे कोई संकेतचिह्न लगाया जाता है। इन विदेशी वर्गीकरणों ने देश को विखण्डन और संघर्ष के मार्ग पर धकेल दिया। मैक्स मूलर वैदिक साहित्य की व्याख्या दो नस्लों के आपसी संघर्ष के रूप में करते थे। इस आधार पर उन्होंने वेदों में शारीरिक विशिष्टताओं को ढूँढना शुरू कर दिया जिससे विभिन्न समूहों को शारीरिक विशिष्टताओं के आधार पर पहचाना जा सके। और इस तरह मुलर ने वक्ती तौर पर नाक की लम्बाई को इन विशिष्टताओं का सबसे प्रमुख भेद माना।

सर हर्बर्ट होप रिस्ली (Sir Herbert Hope Risley, 1851-1911) रॉयल एन्थ्रोपॉलॉजिकल इंस्टीटयूट (Royal Anthropological Institute) में एक प्रभावशाली औपनिवेशिक अधिकारी थे। उन्होंने मैक्स मूलर की अटकलों पर आधारित एक नासिक तालिका विकसित की। यह नासिक तालिका, बहुत कुछ कपालविद्या (Phrenology) की तरह, भारतीय समुदायों के लक्षणों को वर्गीकृत करने के प्रयास में नस्लवाद का एक हथियार बन गयी। भारत में चार दशकों के अपने प्रवास के दौरान रिस्ली ने नासिक तालिका को आधार बनाकर भारतीय समुदायों का गहन अध्ययन किया। उनका उद्देश्य आर्य समुदायों को अनार्य समुदायों के अलग करना था।

रिसली ने भारतीय जातियों का विशाल वर्गीकरण और इतिवृत्त तैयार किया जिससे वर्ण-व्यवस्था के भीतर जाति व्यवस्था में जो जीवन्त गुण और गतिशीलता थी, वह ठहरकर जम गयी।[1] उपनिवेशवाद से प्रेरित विभिन्न अध्ययनों ने जातियों को पेशों के आधार पर पहचान के रूप में नहीं, बल्कि नस्ली श्रेणियों में रूपान्तरित कर दिया। नासिक तालिका ने न सिर्फ जातियों को आर्य और अनार्यों की श्रेणियों में विभाजित कर दिया, बल्कि अनार्य समझे जाने वालों को हिन्दू समाज की मुख्यधारा से अलग एक विशिष्ट श्रेणी में वर्गीकृत भी कर दिया। रिस्ली ने भारत के कथिक अनार्य समुदायों की तुलना उन अश्वेत मजदूरों से की जो अमरीका के खेतों और बागों में काम करते थे। आज जो अफ्रीकी-दलित-द्रविड़ परियोजनाएँ चलायी जा रही हैं,

उनकी यह पूर्व झलक थी, जो भारत के जातीय विभाजन की रिस्ली की परियोजना के अनुसार है।

मैक्स मूलर के काम को आगे बढ़ाना

औपनिवेशिक काल से पहले भारत में नस्ल, जातीयता, या अनुवांशिकी से जाति-वर्ण-व्यवस्था का कोई खास लेना-देना नहीं था। जाति-वर्ण-व्यवस्था को विशिष्टताओं के उस ढाँचे के रूप में समझा जाता था जो कि जीविका से उत्पन्न पारम्परिक या विरासती सामाजिक हैसियत पर आधारित था। जाति अत्यन्त स्थानीय और गहन रूप से संगठित सामाजिक ढाँचा है। जाति की महत्वपूर्ण विशिष्टताओं में से एक थी उसकी गतिशीलता, जिसे पश्चिमी भारतविदों ने स्पष्ट रूप से उपेक्षित कर दिया। यह सामाजिक गतिशीलता के साथ-साथ पेशे की विविधता को बनाये रखता था।[2] ये ग्रामीण सामाजिक ढाँचे क्षैतिज रूप से संगठित थे, न कि एक के ऊपर एक वर्गीकृत थे। जाति-वर्ण-व्यवस्था की यही मूलभूत विशिष्टता थी जिसने गाँधी को आदर्श भारतीय ग्राम समाज के लिए 'महासागरीय दायरे' के नमूने की परिकल्पना करने के लिए प्रेरित किया, न कि पश्चिमी पिरामिडीय प्रारूप की ओर।[3]

जो भी हो, जाति पर जो सीढ़ी जैसा श्रेणीबद्ध दृष्टिकोण औपनिवेशकों द्वारा थोपा गया उसने जाति में उत्पन्न विकृतियों के साथ मिलकर एक नस्लवादी ढाँचे को जन्म दिया जिसने जाति की विशेषताओं को पूरी तरह विकृत कर दिया और उसके नकारात्मक लक्षणों को बहुत बढ़ा दिया। मैक्स मूलर का, जो जाति के अध्ययन के लिए नस्ली ढाँचा तैयार करने के लिए मुख्य रूप से जिम्मेदार थे, अपना ईसाई उद्देश्य था। उनके दृष्टिकोण में, जाति :

> ... जो हिन्दुओं के धर्मान्तरण के मार्ग में अब तक एक रुकावट सिद्ध हुई है, भविष्य में धर्मान्तरण के लिए सर्वाधिक शक्तिशाली इंजन बन सकती है, सिर्फ व्यक्तियों के लिए नहीं, बल्कि भारतीय समाज के समूचे वर्गों के लिए।[4]

मैक्स मूलर ने ऋग वेद की जो व्याख्या की उसमें दावा किया गया कि पहले सिर्फ़ तीन वर्ण आर्य थे, जबकि चौथा वर्ण, शूद्र आर्य नहीं था। पर चाहे जो हो, उन्होंने स्पष्टतः स्वीकार किया कि संस्कृत ग्रन्थों में आर्यों और अनार्यों के बीच शारीरिक अन्तर होने का कोई प्रमाण नहीं है। संयोग से उन्होंने शारीरिक अन्तरों का केवल एक सन्दर्भ दिया—कि ऋग वेद में विभिन्न जनजातियों के लिए उनकी नाकों का वर्णन अलग-अलग ढंग से किया गया था। उन्होंने अपनी यह धारणा केवल एक संस्कृत शब्द, अनास (ऋग वेद : खण्ड 29.10) के आधार पर बनायी, जिसका उपयोग ऋग वेद में बार-बार किया गया है। स्वयं मूलर ने इस सामान्य टिप्पणी से कोई महत्वपूर्ण निष्कर्ष नहीं निकाला। लेकिन उनका पूर्वाग्रह उन लोगों के माध्यम से हस्तान्तरित हुआ, जो यह घृणित काम खुले रूप से करने के लिए उतावले थे। भारत का जो भी पश्चिमी अध्ययन किया गया है उसमें जो सूत्र सर्वत्र व्याप्त है वो है वह तरीका जिसके

अन्तर्गत लेखक या विद्वान अपने से पहले के विद्वानों के लेखन से चुनिन्दा तौर पर सामग्री उठाते हैं, अधिकतर बिना प्रासंगिकता के और वह भी अपनी इच्छा से निर्धारित प्राथमिकताओं के साथ। मैक्स मूलर के लेखन और वर्षों बाद रिस्ली द्वारा उसका तोड़-मरोड़कर उपयोग करने का प्रसंग कुछ ऐसा ही है।

अपेक्षाकृत युवा रिस्ली वरिष्ठ और प्रसिद्ध मैक्स मूलर के व्यक्तित्व से बहुत प्रभावित थे। इन दोनों ने जिन नस्लवादी सिद्धान्तों का विकास किया वह भारत भर में लोगों की भावी पहचान को एक स्वरूप देने में एक महत्वपूर्ण कदम था। मुलर सार्वजनिक रूप से सतर्क थे और अपनी छवि की रक्षा करना चाहते थे, इसलिए उन्होंने नस्ली रूपरेखा तैयार करने के लिए भाषा विज्ञान का उपयोग करने की आलोचना की। लेकिन परोक्ष और निजी तौर पर उन्होंने इसे कई तरीकों से प्रोत्साहित किया। उदाहरण के लिए, 1901 की रिस्ली को जनगणना के पहले मूलर ने रिस्ली को लिखे एक निजी पत्र में यह सामग्री दी :

> ऐसा हो सकता है कि खोपड़ियों, बालों, नेत्रों और त्वचा के वर्गीकरण का मेल समय के साथ भाषा के वर्गीकरण के साथ बिठाया जा सके। हम यहाँ तक आगे बढ़ कर एक परिकल्पना के तौर पर यह स्वीकार कर सकते हैं कि दोनों अवश्य ही समानान्तर चले होंगे, कम-से-कम शुरुआती दौर में।[5]

उसी पत्र में उन्होंने रिस्ली को यह कहकर प्रोत्साहित किया कि मानव जाति विज्ञान के छात्रों ने 'खोपड़ी को मस्तिष्क का एक कवच' माना है जो किसी व्यक्ति के 'आध्यात्मिक सार' का एक सूचक है।[6] दूसरे शब्दों में, जब सांस्कृतिक और भाषावैज्ञानिक तत्वों के नस्ली अभिप्राय की बात आयी तो मैक्स मूलर ने दोमुँही बातें कीं। इस अस्पष्टता को अक्सर विधिबद्ध शब्दावली में जान-बूझकर बड़ी सूक्ष्मता से पिरोया गया जिसने रिस्ली जैसे अधिक खुले नस्लवादी लोगों को और आगे बढ़ने के योग्य बनाया।

रॉनल्ड इन्डेन (Ronald Inden) ने इशारा किया है कि भाषा को नस्ल के साथ मिलाने के खिलाफ मैक्स मूलर की चेतावनी एक पाखण्ड थी :

> हमें इस चेतावनी के कारण भटककर यह नहीं सोचना चाहिए कि वे विद्वान नस्लवाद विरोधी थे। उन्हें नस्ल के सिद्धान्त पर भरोसा करने की ऐसी कोई आवश्यकता नहीं थी, क्योंकि उनके पास उनका अपना वैश्विक सिद्धान्त था जो भाषा के आधार पर अन्य भाषाओं को (और प्रकारान्तर से सम्बद्ध संस्कृतियों को) नीचा दिखाने में पूरी तरह सक्षम था। मैक्स मूलर का भाषावैज्ञानिक वर्गीकरण हेगेल का स्तरीकरण था जिसमें ... सांस्कृतिक भूगोल ही विश्व इतिहास डबन गया था।[7]

रिस्ली का नस्ल विज्ञान

रिस्ली ने मूलर के लेखन में संयोग से आये नासिका के वैदिक सन्दर्भ को लिया और भारत के अपने नस्लवादी मानव जाति विज्ञान की केन्द्रीय विषय-वस्तु बना दिया। उन्होंने मूलर के ऋग वेद की व्याख्या को आगे और विकृत कर दिया। संस्कृत की बिना किसी जानकारी के और पूरी तरह मूलर के कृतित्व पर निर्भर रहते हुए उन्होंने गलत ढंग से कहा कि 'उन लोगों की नासिकाओं के सन्दर्भ वेदों में बारम्बार आये हैं जो आर्यों को मैदानी जमीन पर काबिज मिले थे'। उन्होंने टिप्पणी की कि वेदों पर सरसरी नजर डालने वालों में कोई ऐसा नहीं होगा जिसका ध्यान इस वर्णन पर नहीं गया होगा। उन्होंने लिखा कि आर्यों ने आदिम निवासियों की नासिकाओं की 'अक्सर चर्चा' की। लेकिन ऐसा बिलकुल नहीं था।

रिस्ली भारतीय मानव जाति विज्ञान के प्रमुख आधिकारिक विद्वान बन गये। भारत में ब्रितानी लोक सेवा के अपने लम्बे और शक्तिशाली कार्यकाल ने उनके विचारों को बल दिया। ब्रितानी साम्राज्य की कार्यप्रणाली में उनका लेखन शास्त्रबद्ध हो गया। उन्हें भारत की जनगणनाओं के लिए आयुक्त बनाया गया और इस पद का प्रयोग करके उन्होंने भारतीयों के सन्दर्भ में अपने वर्गीकरण और नस्ली ढाँचे को थोपा। उन्होंने पारस्परिक भेदभाव वाली जातीय श्रेणियों का सृजन किया और जनगणना का उपयोग करते हुए उन्हें वैधानिक महत्व दिया। वर्ष 1910 में, रिस्ली रॉयल एन्थ्रोपॉलॉजिकल इन्स्टीटच्यूट के अध्यक्ष बने।[8] आज भी भारतीय समुदायों का जो कानूनी ढाँचा है, वह रिस्ली का बनाया हुआ है, और भारतीय समुदायों का उनका वर्गीकरण आज के वर्ण-संघर्षों में प्रभावी है और भारतीय राजनीति का एक स्वरूप गढ़ता है।

रिस्ली ने लिखा कि वे अपने 'वैज्ञानिक' अनुसंधान की सहायता से 'हिन्दू जन समुदाय से अनार्यों की एक बड़ी तादाद को अलग कर देना' चाहते थे।[9] उन्होंने नस्ल विज्ञान के उन लोकप्रिय पैमानों को अपनाया जिनका उपयोग फ्रांसीसी विशेषज्ञ करते थे, और जिनके अनुसार नाक के आकार जैसी शारीरिक विशिष्टताएँ त्वचा के रंग के मुकाबले ज्यादा भरोसे-योग्य पैमाना थीं। रिस्ली नये-नये चलन में आ रहे विज्ञान मानवमिति (Anthropometry) के एक उत्साही पक्षपाती थे, जिसके तहत विभिन्न प्रकार के लोगों का वर्गीकरण करने के लिए सिर के विभिन्न भागों को मापा जाता था। उन्होंने भारत में स्वयं जो नाप लिये, उनके बल पर निष्कर्ष निकाला कि दो तरह के आँकड़ों में उल्लेखनीय समानताएँ थीं। ये दोनों आँकड़े थे—(1) 'किस्मों का श्रेणीकरण' जैसा कि मस्तकों की माप के विशेष सूचकों द्वारा सामने आया था, और (2) 'सामाजिक प्राथमिकता का श्रेणीकरण'। उन्होंने लिखा कि यह 'हमें इस निष्कर्ष को निकालने में सक्षम बनाता है कि वर्ण-व्यवस्था का निर्णायक सिद्धान्त नस्ली समुदाय हैं, न कि जीविका पर आधारित समूह, जैसा कि प्राय: तर्क दिया जाता रहा है।[10] बंगाल का उनका 1891 का मानव जाति वैज्ञानिक (ethnographic) अध्ययन भारत भर में उसी तरह के अध्ययनों के लिए आदर्श बन गया। उनके कार्यक्रम के अनुसार

बंगालियों के मस्तकों और उनकी नासिकाओं को कैलिपरों से नापा गया ताकि शारीरिक नाप के आधार पर वंशानुक्रम स्थापित किया जा सके।

अंग्रेज़ों द्वारा भारतीयों के वर्गीकरण के लिए मानवमिति के विज्ञान में रिस्ली की नासिक तालिका मानक बन गयी, और इसके साथ ही नाकों की नाप के आधार पर द्रविड़ों, सन्थालियों, और अन्य समुदायों के बीच तुलना के लिए काफी आँकड़े भी आ गये। रिस्ली ने इन लाक्षणिक आँकड़ों का उपयोग दूरगामी निष्कर्षों की घोषणा करने के लिए किया। भारत में आर्य और अनार्य आबादी के अपनी दो नस्लों के सिद्धान्त की पुष्टि का दावा करने के अलावा उन्होंने नासिक तालिका के आधार पर विभिन्न जातियों का श्रेणीकरण किया। उन्होंने लिखा : 'किसी जाति की सामाजिक हैसियत उसकी नासिक तालिका के विलोम अनुपात में बदलती है'।[11] अपनी नासिक तालिका के आँकड़ों का उपयोग करते हुए वे और आगे बढ़े और जातियों को हिन्दू और जनजातियों को गैर-हिन्दू के रूप में वर्गीकृत किया। इसी तरह से 'जनजाति' की श्रेणी आधिकारिक तौर पर संस्थाबद्ध हो गयी, जिसकी परिभाषा भारत में अब भी कानूनी उद्देश्यों के लिए इस्तेमाल की जाती है। रिस्ली की विशेष रुचि भारत की उन जनजातियों की नाप में थी जिन्हें उन्होंने 'जंगली जनजातियाँ' कहा। उन्होंने दावा किया कि विभिन्न जातियाँ जीववैज्ञानिक रूप से अलग-अलग नस्लें हैं। भारत में अंग्रेज़ों की जनगणनाओं के माध्यम से इन वर्गीकरणों को जबरन लागू किया गया, जो हर दस वर्ष के अन्तराल पर की जाती थीं और प्रत्येक जाति के लिए यह अनिवार्य था कि वह अपने आँकड़े अंग्रेज़ों की आधिकारिक वर्गीकरण प्रणाली के अनुसार दे।

वेदों की एक अलग ही व्याख्या की गयी जिससे आर्यों और आदिवासियों के बीच स्पष्ट रूप से अन्तर दिखाया जा सके। वर्ष 1912 के एक प्रमुख सन्दर्भ ग्रन्थ ने वैदिक दासों और दस्युओं को 'काली त्वचा वाले जंगलियों' के रूप में अनुदित किया, जबकि सायण जैसे प्राचीन भारतीय भाष्यकारों ने उनके अन्तर की व्याख्या केवल धार्मिक आस्था और भाषा के अन्तर के रूप में ही की थी।[12] उपनिवेशवादी भारतविदों ने मैक्स मूलर की वर्ण की व्याख्या को और भी खींच-तान और तोड़-मरोड़ कर उसका उपयोग गोरी/काली नस्लों के अर्थ में किया। इसके लिए उन्होंने संयुक्त राज्य अमरीका के दक्षिणी हिस्से के इतिहास के साथ-साथ दक्षिण अफ्रीका के इतिहास को उद्धृत किया। ऐसा उन्होंने यह दावा करने के लिए किया कि भारत में भी उसी तरह का उत्तर/दक्षिण नस्ली विभाजन है। आर्य/अनार्य भारतीयों का मानचित्र पश्चिमी नस्लवाद की तर्ज पर गोरे/काले के रूप में खींचकर सुस्पष्ट और निर्णायक बना दिया गया। ट्राउटमैन ने वैदिक साहित्य में 'अत्यधिक अर्थ निकालकर' और 'पठन सामग्री को तोड़-मरोड़कर' पश्चिमी नस्लवाद से उसका मेल बैठाने की आलोचना की है। उन्होंने निष्कर्ष निकाला :

> भारतीय सभ्यता का नस्लवादी सिद्धान्त अश्वेतों के प्रति श्वेतों के नस्ली व्यवहार की तरफ़ इशारा करता है जो गृह युद्ध के बाद संयुक्त राज्य अमरीका के भेद-

भावग्रस्त दक्षिणी हिस्से और दक्षिण अफ्रीका में इतिहास के एक अवयव के रूप में पाया जाता है, या फिर एक ऐसे दुर्बोध सत्य की तरह जो ऐतिहासिक परिवर्तनों से प्रभावित नहीं होता और जो वैदिक काल के सन्दर्भ में उतना ही असरदार है जितना कि वह इस समय है।[13]

रिस्ली द्वारा वर्णों को रूढ़िबद्ध करना

रिस्ली ने मैक्स मूलर के भाषावैज्ञानिक सोपानों को लेकर उन्हें भाषा तथा नस्ल के बीच एक ठोस सम्बन्ध में बदल दिया। उन्होंने तर्क दिया : 'यह तथ्य सामान्य अवलोकन का मामला है कि कुछ नस्लें ऐसी ध्वनियाँ उत्पन्न करती हैं जिनका अनुकरण अन्य नस्लें केवल अशुद्ध ढंग से ही कर सकती हैं और इसे तर्कसंगत ढंग से ध्वनि उत्पन्न करने वाली शारीरिक मशीनरी के बीच के अन्तर से जोड़ा जा सकता है।'[14] उनका आर्य/अनार्य विभाजन काफी ठोस था और भाषाशास्त्रीय नहीं, बल्कि मानवमितीय साक्ष्यों पर आधारित था।[15] अंग्रेज़ी औपनिवेशिक प्रशासन ने दावा किया कि भारतीयों को विभिन्न खेमों में बाँटने के लिए वैज्ञानिक आधार का उपयोग किया जा रहा है।

उनके शोध के आधार पर, भारतीयों को कतारबन्द पैमाने पर सात प्रमुख नस्लों में वर्गीकृत किया गया, जिनमें आर्यों और द्रविड़ों को दो परस्पर विपरीत छोरों पर रखा गया था। उन्होंने 'सामाजिक नमूनों' को भी सात समूहों में संयोजित किया। अपने बचाव के लिए उन्होंने कट्टर नस्लवाद और वस्तुस्थिति को बहुत ज्यादा खींचने के विरोध में अनेक इनकारनामे लिखे। फिर भी उन्होंने ठीक वही किया—यानी कट्टर नस्लवाद और हालत को बहुत ज्यादा खींचना और चाहा कि अन्य लोग भी वैसा ही करें। उन्होंने दावा किया कि आँकड़ों के अनुसार, 'समूहों के दोनों समुच्चयों के बीच समानता'—यानी सात नस्लें और सात समाजिक नमूने—काफी निकट की थी। इस तरह उन्होंने निष्कर्ष निकाला कि भारतीय जनजातियाँ वर्णों में बदल गयी थीं। उन्होंने विभिन्न जनजातीय नमूनों का वर्णन क्रमबद्धता से उनकी आदिमता को आधार बनाकर किया जिसमें द्रविड़ों को सबसे नीचे रखा और शारीरिक श्रम को उनका 'जन्मसिद्ध अधिकार' बताते हुए देवी को मानव बलि देने वाला बताया।[16] जिन जनजातियों ने पेशेवर विशेषज्ञता विकसित कर ली थीं वे वर्ण बन गयीं, जबकि एक सीमित भौगोलिक क्षेत्र में सिमटी रहीं जनजातियों को अब भी जनजातियों के रूप में ही वर्गीकृत किया गया।

रिस्ली जैसे विद्वानों ने दावा किया कि यूरोपीय समाज अलग ही ढंग से विकसित हुआ था। उन्होंने लिखा कि : 'यूरोप में, वास्तव में, यह गति बिल्कुल विपरीत दिशा में रही। जनजातियाँ सुदृढ़ होकर राष्ट्रों में बदल गयीं; वे वर्ण की राजनीतिक नपुंसकता में नहीं डूबीं'।[17] चित्र 5.1 रिस्ली के सिद्धान्त को दर्शाता है कि किस तरह यूरोप में

नस्लों का समापन राष्ट्र निर्माण में हुआ, जबकि वर्ण-व्यवस्था के कारण भारत में राष्ट्रीयता की किसी भी भावना की कमी रही।

Fig 5.1 रिसले के अनुसार भारत और यूरोप में नस्लों का भिन्न विकास
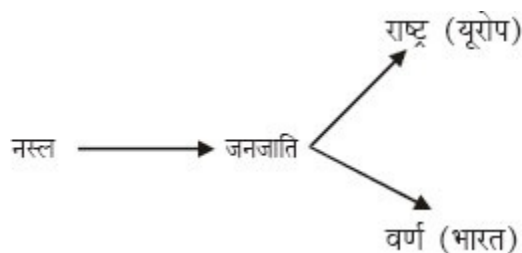
भारत में कभी वैभवशाली रहे आर्य निम्न द्रविड़ों के साथ घुल-मिलकर प्रदूषित हो गये थे, जिससे वर्ण-व्यवस्था का निर्माण हुआ। रिस्ली ने लिखा : 'सिर्फ भारत में ही आर्यों का निकट सम्पर्क एक विशुद्ध काली नस्ल के साथ हुआ'।[18] 'प्रमुख नस्ल के विजेता लोगों' के 'उन महिलाओं के साथ यौन सम्बन्ध बने जिनको उन्होंने कैद किया था'। लेकिन 'यह प्रश्न ही नहीं उठता' कि 'जिन पुरुषों को उन्होंने जीता' उनको 'विवाह के मामले में समान अधिकार' दिया गया होगा। इसलिए ये गोरे लोग ही थे जिनके काले रंग वाली महिलाओं के साथ यौन सम्बन्ध रहे जिसके कारण विभिन्न प्रकार की घटिया संकर नस्लें पैदा हुईं।[19] रिस्ली की धारणा का अभिप्राय था 'निचली नस्ल के प्रति ऊँची नस्ल अर्थात काले द्रविड़ों के प्रति गोरी चमड़ी वाले आर्यों का विरोधभाव', जिसके बारे में उन्होंने दावा किया कि वह वास्तव में अक्षरश: वेदों पर आधारित था।[20] उनके अनुसार इसी तरह भारत में वर्ण-व्यवस्था आयी। उनके वर्ण सम्बन्धी सिद्धान्तों के प्रकाशित करने के बाद शीघ्र ही उनको ब्रिटेन द्वारा नाइट की पदवी दी गयी। भारत पर उनका शोध ग्रन्थ सामाजिक डार्विनवाद (Social Darwinism) से मिलता-जुलता था, इस मामले में कि श्रेष्ठतर नस्ली समूह स्वाभाविक और उचित रूप से समाज के शीर्ष पर थे, जहाँ वे स्वाभाविक चयन की प्रक्रिया के माध्यम से पहुँचे।[21] उन्होंने तर्क दिया कि एक भारतीय के लिए 'वर्ण, कबीला और नस्ल' अपनी पहचान का सबसे विश्वसनीय रूप है, जिसे जानने की अपेक्षा उससे रखी जा सकती है।

1901 की भारत की जनगणना के आयुक्त के रूप में रिस्ली ने जाति पर एक खण्ड लिखा, जिसे अत्यन्त प्रभावी 'इम्पीरियल गजेटियर ऑफ इण्डिया' (Imperial Gazetteer of India) में प्रकाशित किया गया,[22] और यह शिक्षाविदों तथा औपनिवेशिक प्रशासकों के अध्ययन के लिए एक आधारभूत नमूना बन गया। उन्होंने तय किया कि भारतीयों में 2,378 प्रमुख वर्ण और जनजातियाँ हैं (उपजातियों समेत), तथा 43 नस्लें हैं। वर्ण-व्यवस्था के अपने सोपानों को लागू करने के लिए उन्होंने फैसला किया कि जनगणना के प्रपत्र में वे वर्णों को अक्षरों के अनुक्रम में नहीं रखेंगे। इसके बदले उन्होंने इनको उस प्रकार रखा जिसे उन्होंने 'सामाजिक प्राथमिकता' माना

जिसका आधार था 'मूल निवासी जनों की मान्यताओं' का वह मूल्यांकन जो उन्होंने किया था।[23] इस प्रकार वर्ण-व्यवस्था का एक सीढ़ी-नुमा अनुक्रम तैयार किया गया और उसे आधिकारिक बना दिया गया।

उन्होंने वर्णों की जो विस्मयकारी सूची बनायी, जिसमें से हर व्यक्ति को सरकारी प्रपत्र भरते समय चुनना अनिवार्य था, वह इतने अधिक पृष्ठों में थी कि 'उससे गणना करने वाले और उसकी पुष्टि करने वाले कर्मचारियों तथा परिणाम तैयार करने वाले केन्द्रीय अधिकारियों को बेहद मुश्किलों का सामना करना पड़ रहा था'।[24] आँकड़े एकत्र करने में गलतियों के प्रशासनिक स्रोतों को उन्होंने स्वीकार किया, क्योंकि लोगों द्वारा चुनी गयी अपनी वर्ण सम्बन्धी पहचानें :

> ... कमोबेश अनपढ़ जनगणना कर्मचारियों के हाथों रूपान्तर के एक सिलसिले से गुजरेगी, जो अपनी-अपनी भाषाओं में उन्हें लिखते हैं, और उन लोगों के हाथों से भी जो उनकी छँटाई, सन्दर्भ निर्धारण, परस्पर सन्दर्भ-निर्धारण की केन्द्रीय प्रक्रिया में सार संकलन करते हैं, और स्थानीय अधिकारियों से पत्राचार के दौरान भी, जिसके परिणामस्वरूप अन्ततः एक सारणी तैयार होगी...[25]

औपनिवेशिक अधिकारीतन्त्र में एक बार जब उनका ढाँचा स्थापित हो गया, तो फिर रिस्ली ने स्वयं को उसके नस्ली अभिप्रायों से अलग रखना चाहा, जिन्हें उन्होंने ही गति दी थी, और सभी बातों का दोष भारतीय मन-मस्तिष्क की विचित्रताओं के मत्थे मढ़ना चाहा। हास्यास्पद ढंग से उलझी हुई और प्रशासनिक तौर पर अव्यावहारिक इस प्रणाली की रचना करने के बाद उन्होंने भारतीयों पर दोषारोपण किया कि उनमें इसे लागू करने की बौद्धिक क्षमता का अभाव था। उदारहण के लिए, उन्होंने दावा किया

कि भारत की नकारात्मक स्थिति ऐसी रही थी :

> ... जो भारतीय मानस की कुछ विशिष्टताओं द्वारा बढ़ायी और उकसाई गयी थी —तथ्यों पर उसकी ढीली पकड़, कार्य के प्रति उसकी उदासीनता, सपनों में उसका खो जाना, परम्पराओं के प्रति उसका अत्यधिक सम्मान, अनन्त विभाजन और उपविभाजन के प्रति उसका अनुराग, सूक्ष्म तकनीकी विशिष्टताओं के प्रति उसकी गहरी संवेदनशीलता, किसी भी सिद्धान्त को उसके दूरस्थ तार्किक निष्कर्ष तक पहुँचाने का उसका विद्वतापूर्ण रुझान, और किसी भी स्रोत से आयी सामाजिक अवधारणाओं और उनके उपयोगों का अनुकरण करने और उनको अपनाने की उल्लेखनीय क्षमता'।[26]

रिस्ली ने विभिन्न जातियों के धर्मों का अनुवाद 'नस्ली भावनाओं' के रूप में किया, और उन्होंने वैज्ञानिक ढंग से यह प्रमाणित करने को अपना लक्ष्य बना लिया कि उत्तर भारत में एक अपेक्षाकृत शुद्ध 'आर्य प्रारूप' का अस्तित्व था।[27] नाक को लेकर उनकी सनक अन्य औपनिवेशिक प्रशासकों को भी भा गयी। उदाहरण के लिए, भारतीयों की नाक एडगर थर्सटन (Edgar Thruston) के वैज्ञानिक अध्ययन का

विषय बन गयी, जो 'कास्ट्स ऐण्ड ट्राइटज ऑफ सदर्न इण्डिया' (1909) के लेखक थे। थर्सटन ने तो 'लोविबोन्ड टिन्टोमीटर' (जो प्रारम्भ में शराब के चुलाईघरों में गुणवत्ता की जाँच करने में प्रयुक्त होने वाला एक उपकरण था) तक का उपयोग भारतीय ग्रामीणों की नस्ली विशिष्टताओं को नापने में किया।[28]

कुछ विद्वानों ने वैज्ञानिक तर्कों और आँकड़ों के आधार पर रिस्ली के इन विचारों का विरोध किया कि 'वर्ण ही नस्ल है' और 'वर्ण की सामाजिक स्थिति नासिक सूचकांक के विलोम अनुपात में बदलती है'। लेकिन ऐसे आलोचकों को हाशिये पर धकेल दिया गया और उनकी उपेक्षा कर दी गयी, यहाँ तक कि उन्हें रिस्ली जैसे शक्तिशाली अधिकारी की व्यक्तिगत शत्रुता भी झेलनी पड़ी।[29] रिस्ली के कार्य की भारतीय आलोचना भी हुई थी जिसकी उन्होंने साफ़-साफ़ उपेक्षा कर दी।[30]

यहाँ इस बात पर ध्यान देना होगा कि रिस्ली ने मूल निवासी द्रविड़ों के साथ आर्य आक्रमणकारियों की परस्पर अन्तरक्रिया को दिखाने के लिए एक ढाँचे के रूप में अमरीकी दास प्रथा का उपयोग किया, यह कहते हुए कि यह 'उसी तरह का व्यवहार था जैसा कि कुछ अमरीकी अपने अफ्रीकी दासों के साथ करते थे जिन्हें उन्होंने आयातित किया था'।[31] उन्होंने व्याख्या की कि यही नस्ली अन्तरक्रिया 'वर्ण का अन्तिम आधार बन गया'।[32] जैसा कि हम आगे बारहवें अध्याय में देखेंगे, इन गलत नस्ली श्रेणियों ने बाद के अफ्रीकी-दलित-द्रविड़ आन्दोलनों के लिए रास्ता साफ़ किया। इसने ब्राह्मण विरोधी आन्दोलनों की लपटों को भी हवा दी।

अम्बेडकर द्वारा नासिक तालिका आधारित नस्लवाद का खण्डन

डॉ. अम्बेडकर (1891-1956), जो एक दलित नेता और भारतीय संविधान के निर्माता भी थे, प्राचीन भारतीय समाज के इतिहासकार और विद्वान थे। मानवशास्त्रियों द्वारा प्रकाशित भारत भर की विभिन्न जातियों की विशाल नासिक तालिका के आँकड़ों का अध्ययन करने के बाद वे एक उल्लेखनीय निष्कर्ष पर पहुँचे, जिसके लिए उन्होंने रिस्ली के ही आँकड़ों का उपयोग उनके शोध को गलत प्रमाणित करने के लिए किया :

[नाकों के] नाप यह स्थापित करते हैं कि ब्राह्मण और अछूत एक ही नस्ल के हैं। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि अगर ब्राह्मण आर्य हैं तो अछूत भी आर्य हैं। अगर ब्राह्मण द्रविड़ हैं तो अछूत भी द्रविड़ हैं। अगर ब्राह्मण नागा हैं, तो अछूत भी नागा हैं। अगर ऐसा ही तथ्य है तो इस सिद्धान्त को ... बेशक झूठी बुनियाद पर आधारित कहा जाना चाहिए।[33]

परिशिष्ट 'क' में रिस्ली की नासिक तालिका के बारे में अतिरिक्त विवरण दिये गये हैं और साथ ही में दिया गया है अम्बेडकर का खण्डन। इससे कोई विशेष अन्तर नहीं पड़ता कि ऐसी अवधारणाओं का आधार कोई तथ्य है या नहीं। जब कोई अवधारणा

संस्थाबद्ध तन्त्र में घुस जाती है और अन्ततः सामूहिक जन मानस में बैठ जाती है तो इसका उपयोग अनेक प्रकार के दोहनों के लिए किया जा सकता है।

6
‘द्रविड़’ नस्ल का अविष्कार

औपनिवेशिक प्रशासक और ईसाई मत-प्रचारक मनघड़न्त इतिहास और नस्ली परिकल्पनाओं के आधार पर भारतीय उपमहाद्वीप के लोगों को इस हद तक विभाजित कर उन पर शासन करने में सक्षम रहे कि उन्होंने ‘द्रविड़’ नाम की एक नस्ल का ही अविष्कार कर डाला। नस्ल विज्ञान को इस तरह भारत में लागू करने में अनेक परस्पर विरोधी अवधारणाएँ और अन्तर्विरोध शामिल थे जिनकी संख्या इतनी ज्यादा है कि यहाँ बहुत विस्तार से उनका जायजा नहीं लिया जा सकता। इसके बदले यह अध्याय इस बात की खोज करता है कि किस तरह ईसाई मत-प्रचारकों और औपनिवेशिक हितों ने द्रविड़ पहचान गढ़ने के लिए जाति-भाषावैज्ञानिक विद्वता के साथ गठजोड़ करके काम किया।

फ्रांसिस वाइट एलिस (Francis Whyte Ellis) और अलेक्जैंडर डी. कैम्पबेल (Alexander D. Campbell) जैसे अंग्रेज़ औपनिवेशिक प्रशासकों ने तमिल और तेलुगू के व्याकरणों का अध्ययन किया और प्रस्तावित किया कि ये भाषाएँ अन्य भारतीय भाषाओं से अलग भाषा परिवार की रही होंगी। एक अन्य अंग्रेज़ प्रशासक ब्रायन हाउटन हॉजसन ने ‘तमुलियन’ शब्द उन लोगों की तरफ़ इशारा करने के लिए गढ़ा जिन्हें उन्होंने भारत की अनार्य स्वदेशी जनसंख्या माना। जहाँ एक ओर एलिस और कैम्पबेल ने भाषावैज्ञानिक सिद्धान्त प्रस्तावित किया, वहीं हॉजसन का दृष्टिकोण नस्ल आधारित था।

लेकिन जिस उत्प्रेरक को ‘द्रविड़ नस्ल’ गढ़ने का श्रेय दिया जाता है, वे ऐंग्लिकन चर्च (Anglican Church) के एक मिशनरी विद्वान, बिशप रॉबर्ट कॉल्डवेल (Bishop Robert Caldwell, 1814-91) थे। कॉल्डवेल ने, जो ‘सोसाइटी फॉर द प्रोपेगेशन ऑफ द गॉस्पल’ के लिए ईसाई मत-प्रचारक मिशनरी थे, एलिस के भाषावैज्ञानिक सिद्धान्त को एक मज़बूत नस्ली वृत्तान्त से जोड़ दिया। उन्होंने अपनी पुस्तक ‘कम्पैरेटिव ग्रैमर ऑफ द ड्रैविडियन रेस’ में द्रविड़ नस्ल का अस्तित्व प्रस्तावित किया, जो आज भी द्रविड़वादियों के बीच अत्यन्त लोकप्रिय है। बिशप कॉल्डवेल ने प्रस्तावित किया कि द्रविड़ भारत में आर्यों से पहले से थे, लेकिन ब्राह्मणों द्वारा ठगे गये, जो आर्यों के धूर्त प्रतिनिधि थे। उन्होंने तर्क दिया कि भोले-भाले द्रविड़ों को आर्यों ने धार्मिक शोषण द्वारा बन्धनों में रखा। इस तरह द्रविड़ों को उनके जैसे यूरोपीय जनों द्वारा मुक्त कराये जाने की आवश्यकता थी। उन्होंने तमिल से संस्कृत शब्दों को पूरी तरह हटाने का प्रस्ताव रखा। जैसे ही आर्यों द्वारा थोपे गये अंधविश्वासों से द्रविड़ मानस मुक्त हो जाएगा, ईसाई धर्म-प्रचार द्रविड़ों की आत्मा का उद्धार करेगा।

चित्र 6.1 इस नस्लवादी उद्यम में औपनिवेशिक प्रशासकों और ऐंग्लेकन चर्च द्वारा निभायी गयी भूमिकाओं का सार प्रस्तुत करता है।

Fig 6.1 अंग्रेज़ उपनिवेशवादी ईसाई प्रचारकों द्वारा प्रोत्साहित द्रविड़ पहचान की संरचना
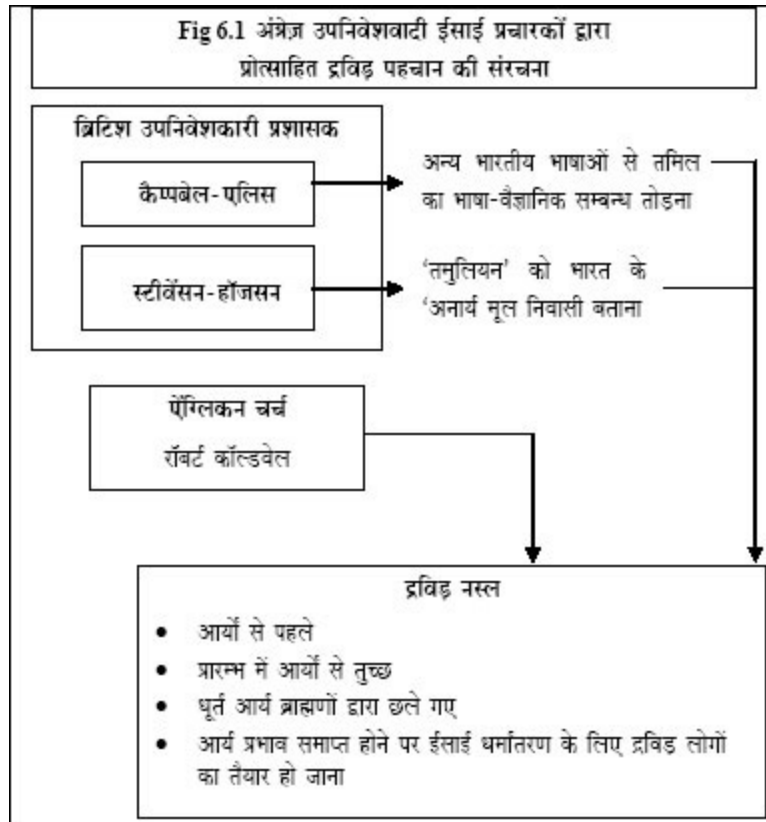
हॉजसन का 'तमुलियन' आविष्कार

सन 1801 में, एच.टी. कोलब्रुक (H.T. Colebrooke, 1765-1837) ने एक महत्वपूर्ण आलेख प्रकाशित किया जिसने दावा किया कि सभी भारतीय भाषाएँ संस्कृत से ही उत्पन्न हुई हैं। लेकिन 1816 तक, जब फ्रेंज बॉप (Franz Bopp, 1791-1867) तुलनात्मक भाषाशास्त्र का आधार स्थापित कर रहे थे, अलेक्जैंडर डी. कैम्पबेल और मद्रास के कलेक्टर, फ्रांसिस वाइट एलिस ने यह दावा करके एक महत्वपूर्ण भूमिका निभायी कि दक्षिण भारतीय भाषा परिवार संस्कृत से नहीं निकला था। मद्रास के कॉलेज ऑफ फोर्ट सेंट जॉर्ज में एलिस के प्रभावशाली मित्र थे, जो भारत के बारे में औपनिवेशिक ज्ञान पैदा करने तथा भारत में आने वाले नये अधिकारियों को शिक्षा देने का एक सक्रिय केन्द्र था। ट्राउटमैन इसे 'मद्रास स्कूल ऑफ ओरिएन्टलिज्म' कहते हैं।[1] कलकत्ता और मद्रास के औपनिवेशिक प्राच्यवादी स्कूलों के बीच होड़ थी। एलिस ने कलकत्ता कॉलेज ऑफ फोर्ट विलियम के मिशनरी विद्वान विलियम केरी द्वारा समर्थित सिद्धान्त से स्पष्ट रूप से अपना नाता तोड़ लिया जिसमें कहा गया था कि संस्कृत सभी भारतीय भाषाओं को एकीकृत करती है। कैम्पबेल-एलिस की

पुस्तक, 'तेलुगू भाषा का व्याकरण' (Grammar of the Teloogoo Language, 1816) ने भारत के आन्तरिक सामाजिक-राजनैतिक ढाँचों में बाद के हस्तक्षेप के लिए दरवाजा खोल दिया। इसने तर्क दिया कि तमिल और तेलुगू का एक ही गैर-संस्कृत पूर्वज था। इसके पहले किसी भी भारतीय चिन्तक ने ऐसा दावा नहीं किया था।

बाइबल मानव जाति विज्ञान की अवधारणाओं के अच्छी तरह स्थापित हो जाने के कारण यह सुनिश्चित करना महत्वपूर्ण था कि दोनों भाषाएँ उसी ढाँचे में आयें। एलिस ने दावा किया कि तमिल हीब्रू से जुड़ी है और प्राचीन अरबी से भी। उनका तर्क था कि चूँकि विलियम जोन्स ने संस्कृत को हैम की भाषा माना था, और अन्य विद्वानों ने दावा किया था कि संस्कृत नूह के सबसे बड़े पुत्र जाफेथ से निकलकर आयी थी, तो नूह के पुत्र शेम अवश्य ही द्रविड़ों के पूर्वज रहे होंगे। इस तर्क ने द्रविड़ों को शकों की एक शाखा बना दिया या यहूदियों के ही परिवार में रखा।[2]

अगला प्रमुख पड़ाव 1840 के दशक में आया, जब रेवरेंड जॉन स्टीवेंसन (Reverend John Stevenson, 1798-1858) ने, जिन्हें स्कॉटिश मिशनरी सोसाइटी[3] द्वारा भेजा गया था, और ब्रायन हाउटन हॉजसन (Brian Houghton Hodgson, 1800-94) ने, 'आदिम' भाषाओं की एक श्रेणी प्रस्तावित की। इस श्रेणी में उन्होंने उन सभी भाषाओं को रखा जिन्हें आज द्रविड़ तथा मुण्डा परिवार के रूप में वर्गीकृत किया गया है, और जिसका कथित अस्तित्व संस्कृत के भारत के बाहर से आने से भी पहले का बताया गया है। सन 1848-49 में हॉजसन तमिलों के बारे में एक सुस्पष्ट सिद्धान्त के साथ सामने आये कि वे भारत के आदिम निवासी थे जिनकी अनेक भाषाएँ आर्यों के आक्रमण के पूर्व सम्पूर्ण राष्ट्र में फैली हुई थीं।

सन 1856 में आदिम सिद्धान्त को बिशप कॉल्डवेल की पुस्तक 'द्रविड़ भाषाओं का तुलनात्मक व्याकरण' के प्रकाशन के साथ ही विद्वानों के बीच एक जोरदार बढ़ावा मिला।[4] इस पुस्तक ने दावा किया कि द्रविड़ विश्व का एक प्रमुख भाषा-समूह था।[5] कॉल्डवेल ने संस्कृत के द्रविड़ शब्द से पारिभाषिक शब्द ड्रेविडियन (Dravidian) गढ़ा, जिसका उपयोग सातवीं शताब्दी के एक ग्रन्थ में भारत के दक्षिण की भाषाओं को इंगित करने के लिए किया गया था।[6]

कॉल्डवेल : मानवजाति विज्ञान में भाषाविज्ञान का रूपान्तरण

बिशप कॉल्डवेल दक्षिण भारत में अग्रणी मिशनरियों में से एक बन गये जिन्होंने उस पहचान को जन्म दिया जो आज द्रविड़ पहचान के रूप में फल-फूल रही है।[7] चौबीस वर्ष की आयु में वे लन्दन मिशनरी सोसाइटी के साथ मद्रास पहुँचे थे, और बाद में सोसाइटी फ़ॉर द प्रोपेगेशन ऑफ़ द गॉस्पल में शामिल हो गये थे। उन्होंने भारतीयों को भाषा और धर्म के आधार पर विभाजित किया, और इन धर्मों में से कुछ की रूपरेखा बाइबल के चौखटों में तैयार की। वे तिरुनेलवेली के बिशप बने, और उनके व्यापक

शोध का परिणाम दक्षिण भारतीय पहचान पर एक सर्वाधिक प्रभावशाली पुस्तक 'ए पोलिटिकल ऐण्ड जेनरल हिस्टरी ऑफ द डिस्ट्रिक्ट ऑफ तिनेवेली' (A Political and General History of the District of Tinnevely, 1881) के रूप में आया, जिसका प्रकाशन ईस्ट इण्डिया कम्पनी की मद्रास प्रेजिडेंसी द्वारा किया गया था।

उनके कार्य के दूरगामी परिणाम हुए। उसने हिन्दू धर्म से द्रविड़ अलगाववाद के लिए धर्मशास्त्रीय आधार की स्थापना की, जिसे चर्च का समर्थन प्राप्त था। इसके साथ-साथ दक्षिण भारत के अनेक कालजयी प्राचीन कला-प्रारूपों को ईसाइयों द्वारा हथियाने की प्रक्रिया भी चलती रही। मुख्य धारा की हिन्दू आध्यात्मिकता से तमिलों को असम्बद्ध करने की परिकल्पना ने कॉल्डवेल को ईसाई धर्मान्तरण के लिए एक नैतिक तर्क दिया।[8] उनके निधन के अस्सी वर्ष बाद चेन्नई के मरीना समुद्रतट पर एक अन्य मिशनरी विद्वान जी.यू. पोप की प्रतिमा के साथ कॉल्डवेल की एक प्रतिमा खड़ी की गयी। आज शहर में यह एक प्रमुख ऐतिहासिक चिह्न है।

टिमोथी ब्रुक (Timothy Brook) और आन्द्रे श्मिड (Andre Schmid) ने एशिया में पहचानों के सृजन पर अपनी पुस्तक में आज की द्रविड़ पहचान के संस्थापक के रूप में कॉल्डवेल के महत्व की व्याख्या की :

> अपने 'तुलनात्मक व्याकरण' (Comparative Grammar, 1856) नामक ग्रन्थ के माध्यम से ही उन्होंने व्यवस्थित रूप से द्रविड़ विचारधारा की बुनियाद रखी... उस पुस्तक की भाषाशास्त्रीय खोजों और निष्कर्षों का उतना गहरा प्रभाव नहीं पड़ा जितना उस तरीके का जिससे काम लेते हुए कॉल्डवेल ने इन खोजों और निष्कर्षों की व्याख्या अपनी लम्बी भूमिका और परिशिष्ट में की। उन्होंने न केवल दक्षिण भारत की अल्पसंख्यक ब्राह्मण और बहुसंख्यक गैरब्राह्मण (द्रविड़) आबादी के बीच एक नस्ली, भाषावैज्ञानिक, और धार्मिक-सांस्कृतिक विभेद खड़ा करने में सफलता पायी, बल्कि एक प्राचीन और 'शुद्ध' द्रविड़ भाषा और संस्कृति का पुनरुद्धार करने और उसे वापस लाने के लिए एक व्यवस्थित परियोजना भी उपलब्ध करायी।[9]

मिशनरियों की रणनीति दोहरी थी : पहली यह कि वे तमिल भक्ति साहित्य का गहन अध्ययन करें और तमिल विद्वानों के बीच उनकी भूरि-भूरि प्रशंसा करें। दूसरी यह कि वे तमिल संस्कृति को इस ढंग से पेश करें मानो वह शेष भारत से बिलकुल अलग और पूरी तरह स्वाधीन हो। उनकी पुस्तक ने बाद की तमिल नस्लवादी राजनीति के लिए वैचारिक आधार प्रदान किया। एक ईसाई विद्वान, चन्द्र मल्लमपल्ली ने व्याख्या की :

> दक्षिण भारत की गैर-ब्राह्मणवादी राजनीतिक संस्कृति ने द्रविड़ विचारधारा से अपनी प्रेरणा ली : इस विचारधारा ने दक्षिण भारत के लिए एक विशेष भाषावैज्ञानिक और नस्ली पहचान स्थापित की। गैर-ब्राह्मण आन्दोलनकारियों ने द्रविड़ संस्कृति को, जिसने अक्सरहा तमिल भाषा का झण्डा बुलन्द किया, उत्तर

को हिन्दू, आर्य या संस्कृत की संस्कृति के विरोध में खड़ा किया। द्रविड़वाद और गैर-ब्राह्मणवाद के अगुआ, रॉबर्ट कॉल्डवेल और जी.यू. पोप जैसे मिशनरियों द्वारा उपलब्ध कराये गये सांस्कृतिक और भाषायी संसाधनों से ही काम चलाते आये हैं।[10]

मिशनरी विद्वता ने एक नयी स्थानीय जातीय पहचान को उत्प्रेरित किया, जिसे अपनी हिन्दू प्रकृति को अस्वीकार करने का निर्देश दिया गया था। यह दिखाना रणनीति की बात हो गयी कि तमिल धर्म का, 'सभ्य' धर्मों के बराबर का, एक प्रबल नैतिक आधार था, और 'सभ्य' का अर्थ एकेश्वरवाद ही था। इन सकारात्मक विशिष्टताओं को अलग किया गया और दावा किया गया कि ये तमिलों के लिए स्वदेशी विशिष्टताएँ थीं, और उन्हें उन 'विदेशी' विशिष्टताओं के विपरीत दिखाया गया जिन्हें आर्यों से जोड़ा जाता था। ऐतिहासिक और भाषाशास्त्रीय पुस्तकें इस बात की 'खोज' के लिए लिखी गयीं कि प्राचीनतम तमिल साहित्य में अद्र्ध-ईसाइयत पहले ही से थी। इन खोजों के बीच इस मिथक का भी जन्म हुआ कि ईसा मसीह के निधन के बाद शीघ्र ही सेंट टॉमस (St. Thomas) ने दक्षिण भारत में ईसाई धर्म का सन्देश दिया था। यह एक ऐसा विचार है जिसे अपनी स्थिति को प्रबल बनाने के लिए मुख्यत: कैथोलिक चर्च ने बढ़ावा दिया था।

इस नयी ईसाई-अनुकूल पहचान को प्राप्त करने के लिए दो प्रकार के तमिल धार्मिक साहित्य विशेषाधिकारी बन गये। एक था व्यापक, 'गैर-सम्प्रदायी' मानवतावाद, जो संगमोत्तर काल के ग्रन्थ कुरल में सबसे अच्छे तरीके से पिरोया हुआ था। दूसरा धर्म ग्रन्थों में उपलब्ध शैव सैद्धान्तिक भण्डार था जिसे ईसाइयत का एक देशी एकेश्वरवादी प्रतिरूप के तौर पर देखा गया। इन प्राचीन तमिल कालजयी रचनाओं का उपयोग जिस ढंग से किया गया उसमें ब्रुक और श्मिड दो महत्वपूर्ण कदमों की पहचान करते हैं : पहला, कुरल का उपयोग करते हुए ब्राह्मणों और गैर-ब्राह्मणों को अलग करना; और दूसरा, द्रविड़ विचारधारा को शैव सिद्धान्त से एक वक्ती कदम के रूप में जोड़ना ताकि उसे आगे ईसाइयत से जोड़ा जा सके :

> कॉल्डवेल का केन्द्रीय तर्क था कि द्रविड़ भाषाओं, लोगों और संस्कृतियों की वंशावली ब्राह्मणों से अलग और स्वतन्त्र है। यह स्वतन्त्रता और अन्तर, उन्होंने तर्क दिया, इस तथ्य से आया कि द्रविड़ पूरी तरह से एक भिन्न नस्ली शाखा के थे, जिसे उन्होंने शक शाखा कहा... यह मौलिक विभेद कॉल्डवेल के द्रविड़ 'पहचान' के उत्सव का आधार बना।[11]

कॉल्डवेल ने ब्राह्मणों को द्रविड़ों का नस्ली 'पराया' बना कर द्रविड़ों के सार की स्थापना की। उन्होंने दावा किया कि दक्षिण में संस्कृत केवल 'उन ब्राह्मणवादी उपनिवेशवादियों के वंशजों' द्वारा ही पढ़ी जाती थी।[12]

इस दाँव-पेंच के माध्यम से, ब्राह्मणों को उपनिवेशवादी बना दिया गया जबकि कॉल्डवेल जैसे असली उपनिवेशवादियों को तमिलों के मुक्तिदाता के रूप में प्रस्तुत

किया गया!

एक षडयन्त्र सम्बन्धी सिद्धान्त का जन्म : 'धूर्त आर्य ब्राह्मणों ने किया भोले-भाले द्रविड़ों का शोषण'

एक ओर कॉल्डवेल ने द्रविड़ पहचान पर इस उद्देश्य से बल दिया कि उन्हें भारतव्यापी हिन्दू समुदाय से अलग किया जा सके और दूसरी ओर उन्होंने द्रविड़ों को आर्यों से नीचे माना, क्योंकि आर्यों को नस्ली तौर पर यूरोपीय समुदाय से निकला हुआ माना गया था। उनके अनुसार, द्रविड़ों ने अपनी 'मानसिक संस्कृति' और 'उच्च सभ्यता' श्रेष्ठतर आर्यों से प्राप्त की थी। लेकिन उन्होंने आर्यों की बराबरी प्राप्त नहीं की, क्योंकि आर्यों के उपहार 'वर्ण-व्यवस्था के पथरा देने वाले नियमों, अव्यावहारिक सर्वेश्वरवादी दर्शन और निरर्थक कर्मकाण्डों की बोझिल दिनचर्या से कुछ अधिक ही प्रतिसन्तुलित थे, जो उनके बीच उनकी नयी सामाजिक अवस्था के दिशानिर्देशकों द्वारा लागू किये गये थे'।[13] इसलिए द्रविड़ कमतर थे, लेकिन उन्हें सभ्य बनाया जा सकता था। जो भी हो, धूर्त ब्राह्मणों ने उन्हें सभ्य बनाने की आड़ में उन्हें 'नयी सामाजिक स्थिति' में अबोध बन्दी बनाकर वास्तव में उन्हें वशीभूत कर लिया था।

कॉल्डवेल ने जिस समाधान की सिफारिश की वह यह था कि दक्षिण भारतीयों को संस्कृत का प्रभाव अस्वीकार कर देना चाहिए और बाइबल की श्रेणियों के माध्यम से अपनी मूल संस्कृति को फिर से ढूँढ निकालना चाहिए। दक्षिण भारतीय धार्मिक जीवन में वही तत्व, जिन्हें इस तरह ईसाइयत से मिलता-जुलता देखा जा सका, 'वास्तविक' तमिल धर्म माने गए, जबकि उन तत्वों पर ब्राह्मणवादी प्रभाव का आरोप जड़ दिया गया जो उनके ऐसे रूपरेखा-निर्माण में सटीक नहीं बैठे, और कहा गया कि उन्हें हटा दिया जाना चाहिए। उदाहरण के लिए, उन्होंने दावा किया कि तमिल में 'मूर्ति' के लिए कोई अपना शब्द नहीं है, और यह भी कि ऐसे शब्द संस्कृत से लाये गये थे, और उन्हें हटा दिया जाना चाहिए :

> तमिल अपने संस्कृत के एक बड़े हिस्से को या पूरे को ही बड़ी आसानी से हटा सकती है, और इसे हटाकर, अधिक शुद्ध तथा अधिक परिष्कृत शैली तक विकसित हो सकती है...शब्दों की सम्पूर्ण संख्या में, जो इस समाधान सूत्र में शामिल है, केवल एक ही ऐसा है जिसे दोषरहित औचित्य के साथ व्यक्त नहीं किया जा सकता ... शुद्ध द्रविड़ स्रोत के समकक्ष : वह शब्द है 'उत्कीर्ण आकृति' या 'मूर्ति'। यह शब्द और वस्तु, दोनों आदिम तमिल व्यवहार और चिन्तन के स्वभावों के लिए विदेशी हैं; और ब्राह्मणों द्वारा धर्म की पौराणिक प्रणाली और मूर्तिपूजन के साथ तमिल देश में लाये गये थे।[14]

तमिल परम्पराओं का अ-भारतीयकरण

औपनिवेशिक काल से ही शेष भारत से अलग एक जातीय-धार्मिक तमिल पहचान रचने और इस तथाकथित 'तमिल धर्म' के लिए ईसाई मूल खोजने का निरन्तर प्रयास चलता आ रहा है। जब एक बार गैर-संस्कृत ढाँचे में तमिल भाषा की रूपरेखा तैयार कर ली गयी, विशेषकर एक संस्कृत-विरोधी ढाँचा, तो उसके बाद यही प्रक्रिया तमिल साहित्य के साथ अपनायी गयी। इसके तहत तमिल परम्परा के साहित्यिक मूल की व्याख्या में जोड़-तोड़ शामिल हो गया, जिसके तीन मुख्य तत्व थे : (1) तिरुकुरल, एक प्राचीन कालजयी तमिल ग्रन्थ जिसमें वैसा नैतिक साहित्य शामिल है जो भारतीय स्मृति-परम्परा का ही अंग है; (2) शैव सिद्धान्त, शैव दर्शन की एक वेदान्त शाखा; और (3) प्राचीन कालजयी भक्ति साहित्य का विशाल भण्डार। इनकी संक्षिप्त विवेचना नीचे की गयी है, और उसके बाद अधिक गहनता से भी विचार किया गया है।

चित्र 6.2 कॉल्डवेल और पोप द्वारा ईसाई-द्रविड़ पहचान निर्मित करने के लिए अपनायी गयी प्रक्रिया को दर्शाता है। जिन मुख्य तमिल प्राचीन कालजयी ग्रन्थों का उल्लेख किया गया है, उनको इसके बाद रखा गया है।

तिरुकुरल

रॉबर्ट कॉल्डवेल के दृष्टिकोण से, द्रविड़ मानस से कुछ भी नैतिक नहीं उभर सकता है, न स्वयं, न वैदिक धर्म के प्रभाव में। परिणामस्वरूप, उन्होंने तिरुकुरल को जैन प्रभावों से उपजा बताया। एक अन्य ईसाई प्रचारक, जी.यू. पोप, इस बात पर जमे रहे कि तिरुवल्लुवर पर ईसाइयत का ही प्रभाव था जिसने इस साहित्यिक रचना को जन्म दिया। उनके समय के ईसाई विद्वानों ने, और उनके दशकों बाद भी, इस सिद्धान्त को खारिज कर दिया था। फिर भी, आज इसे तमिलनाडु में ईसाई मत-प्रचारक आन्दोलनों में पुनरुज्जीवित किया जा रहा है।

Fig 6.2 तमिल आध्यात्मिक परम्पराओं का अभारतीकरण और ईसाई
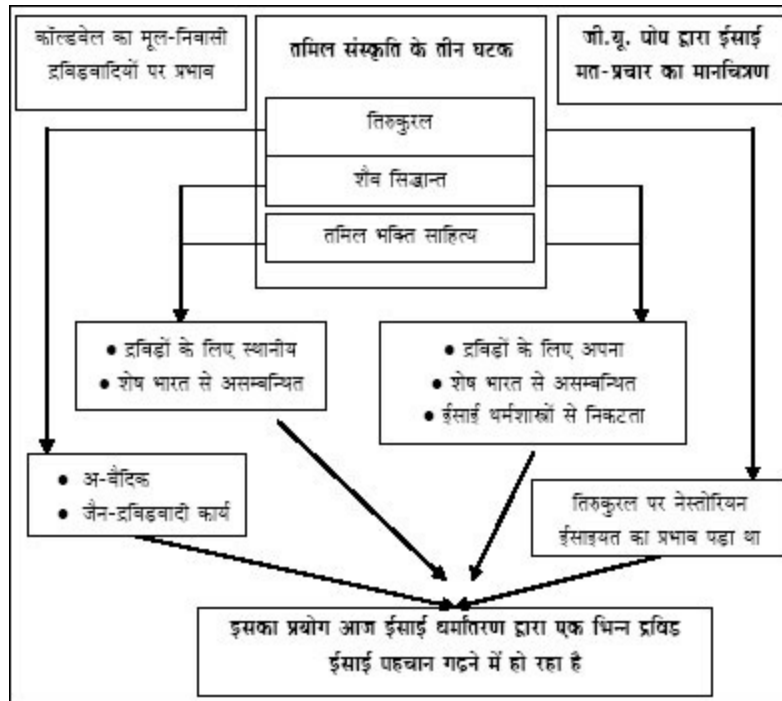
शैव सिद्धान्त

द्रविड़वादी विद्वानों ने शैव सिद्धान्त को एक अद्वितीय तमिल आध्यात्मिकता के रूप में स्थापित करने का प्रयत्न किया है जिसका हिन्दू धर्म से कोई नाता नहीं है। हालाँकि शैव सिद्धान्त पर की गयी पारम्परिक रचनाओं ने वेदों को अपने आधिकारिक स्रोत के रूप में उद्धृत किया है, इसे सुदूर अतीत से एक अलग तमिल आध्यात्मिकता गढ़ कर ढँक दिया गया है। जी.यू. पोप और अन्य ईसाई मत-प्रचारकों के लिए, शैव सिद्धान्त को ईसाइयत के अत्यधिक समीप देखा गया है, न कि उसके बराबर का। इस प्रकार, इसका उपयोग एक परोक्ष और झीनी ईसाइयत के रूप में किया जाना है जो प्रत्यक्ष और शुद्ध ईसाइयत की दिशा में एक सीढ़ी के रूप में काम करता है। एक बार अगर लोग इस बात के प्रति आश्वस्त हो जायें कि वे सदियों से ईसाइयत के विकृत स्वरूप का ही अनुकरण करते आ रहे हैं तो उन्हें स्वीकृत या समकालीन ईसाइयत में आसानी से परिष्कृत किया जा सकता है।

तमिल भक्ति साहित्य

अनेक शताब्दियों की अवधि में भक्तों और मनीषियों द्वारा विशाल मात्रा में तमिल भक्ति और रहस्यमय साहित्य रचा गया था, जो तमिल आध्यात्मिकता का आधार है। हालाँकि वे तमिल में लिखे गये हैं, इस साहित्य की प्रकृति भारतव्यापी है। इस प्रकार, तमिल में लिखे गये सभी शैव स्रोत शिव के बारे में बताते हैं जो हिमालय पर रहते हैं; यहाँ तक कि उन्हें ‘आर्य’ के रूप में भी सम्बोधित करते हैं। ईसाई मत-प्रचारकों और

द्रविड़वादियों ने इसके स्रोत को गढ़ लिया, और उनमें लिखी बातों की व्याख्या तोड़-मरोड़ कर की ताकि वे उनके उद्देश्यों पर पूरे उतरें।

तिरुकुरल का ईसाईकरण

जॉर्ज यूग्लो पोप (George Uglow Pope, 1820-1908) एक अन्य प्रसिद्ध मिशनरी भारतविद[15] थे जिन्होंने यह दावा करने में अग्रणी भूमिका निभायी कि तमिल प्राचीन कालजयी साहित्य अ-भारतीय और अ-हिन्दू है और ईसाइयत से जुड़ा हुआ है। पोप का पहला अनुवाद तमिल कालजयी रचना तिरुकुरल (जिसे प्राय: सीधे-सीधे कुरल कहा जाता है) का था, जो नैतिकता और व्यवहार पर लिखा तमिल ग्रन्थ है। इसकी रचना महान सन्त तिरुवल्लुवर ने की थी। युगों से यह तमिल साहित्य की सर्वाधिक दुलारी रचनाओं में से एक रही है, जैसा कि द इन्साइक्लोपीडिया ऑफ इण्डियन लिटरेचर में तिरुकुरल की प्रविष्टि की समापन टिप्पणी में व्याख्यायित है : 'अगर किसी तमिलभाषी से 2000 वर्षों के तमिल साहित्य में किसी एक पुस्तक का नाम लेने को कहा जाता है, तो तिरुकुरल उसका तत्काल उत्तर होगा। कुरल, जो एक अणु में सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को समाहित करता है—यह श्रद्धांजलि सहस्र वर्षों से अधिक पुरानी है'।[16]

जब एक बार कुरल को हिन्दू धर्म से अलग करने में सफलता प्राप्त हो गयी, तो उसके बाद पोप ने इस मिशनरी मामले को और आगे धकेला। उन्होंने घोषणा की कि तिरुकुरल ईसाई प्रभाव का परिणाम था, कि तिरुवल्लुवर एक महान अग्रदूत थे जिन्होंने ईसाइयत से नैतिकता सीखी, और वे इसे अपनी कविताओं के माध्यम से बाँट रहे थे ताकि भोले-भाले तमिल जन ईसाई नैतिकता से लाभ उठा सकें। तिरुकुरल के अपने अनुवाद की भूमिका में पोप ने एक परिदृश्य रचा कि तिरुवल्लुवर ने किस तरह ईसाई प्रवाचकों से 'सरमन ऑन द माउंट' (Sermon of the Mount) लेकर अपनी रचना की :

> चिन्तनशील और आवेशित कर देने वाले कवि तिरुवल्लुवर के बारे में हम यह परिकल्पना करने के लिए विवश हो गये हैं ... ईसाई शिक्षकों के साथ समुद्र तट पर विचरण करते हुए और ईसाई विचारधाराओं को आत्मसात करते हुए, अलेक्जैण्ड्रियन स्कूल की विशिष्टताओं से रँगे, और दिन-प्रतिदिन उन्हें अपने अद्‍भुत कुरल में ढालते हुए ... पूर्व की एक पुस्तक जिसकी शिक्षा ईसा मसीह के 'सरमन ऑन द माउंट' की गूँज है।[17]

उन्होंने बेझिझक घोषित किया कि तिरुकुरल ने अपनी प्रेरणा ईसाई स्रोतों से प्राप्त की :

> उस समय ईसाई प्रभाव पड़ोस में क्रियाशील थे, और बहुत-से हिस्से अपनी मूल भावना में आश्चर्यजनक रूप से ईसाई हैं। यह कहने में मैं किसी तरह की झिझक

महसूस नहीं करता कि ईसाई ग्रन्थ उन स्रोतों में शामिल थे जहाँ से कवि ने अपनी प्रेरणा ली।[18]

उन्नीसवीं शताब्दी के भारत में ईसाई मत-प्रचारकों ने ऐसे विचारों को प्रोत्साहित किया।[19] उनकी मूलभूत परिकल्पना ने दावा किया कि सेंट टॉमस ने, जो स्वयं ईसा मसीह के अनुयायी थे, भारत में सन 52 से प्रवचन देना शुरू किया था। इस पर आठवें और नौवें अध्याय में विस्तार से विवेचना की जायेगी। लेकिन इन विचारों को शताब्दियों पूर्व मुख्यधारा की ईसाइयत द्वारा खण्डित कर दिया गया था, यहाँ तक कि कई बार उन्हें पाखण्ड की भी संज्ञा दी गयी थी। मिशनरी पक्षधर द्रविड़वादी विद्वानों ने भी ऐसे नकली दावों को स्वीकार करने में कठिनाई महसूस की।[20]

ईसाई प्रभाव के सिद्धान्त को खारिज करने वालों में से बहुतों ने तिरुकुरल के एक जैन ग्रन्थ होने का दावा किया,[21] क्योंकि जैन धर्म एक ख़तरा नहीं था जिस पर काबू पाना था, जबकि हिन्दू धर्म ऐसा ख़तरा था। वास्तव में, यह रुझान, खोजने पर, स्वयं बिशप कॉल्डवेल से शुरू हुआ देखा जा सकता है, जिन्होंने अटकल लगायी कि ऐसे उदात्त विचारों से युक्त नैतिकता पर एक ग्रन्थ देसी तमिल परम्परा में से नहीं निकल पाया होगा। तिरुकुरल को जैन मूल का बताना उनके इस विश्वास में सटीक बैठता था कि तमिल जातीय रूप से घटिया थे। इसने उन्हें प्राचीन कालजयी तमिल साहित्य के रचनाकाल को बहुत बाद का बताने पर मजबूर कर दिया।[22]

कॉल्डवेल इस बात के प्रति आश्वस्त थे कि ब्राह्मणवादी प्रभाव की अनुपस्थिति में द्रविड़ों को ईसाई बनाने के उनके मार्ग की मुख्य बाधा थी 'उनकी (तमिलों की) सघन अज्ञानता'।[23] इसलिए, तिरुकुरल को जैन मिशनरियों से जोड़ना, जो दक्षिण भारत में प्राचीन काल से ही रह रहे थे, कुरल को ऐसी नैतिक संहिता प्रदान करेगा जो आदिम/द्रविड़ नैतिकता से अपेक्षाकृत उच्चतर होगी, लेकिन तब भी ईसाइयत से श्रेष्ठ नहीं होगी। ध्यान रहे कि स्वयं कॉल्डवेल में जैन धर्म के प्रति कोई सम्मान नहीं था, और वे इसे अनीश्वरवाद का ही एक रूप मानते थे। फिर भी, जैनियों की तर्ज पर बनायी गयी तमिल विचारधाराओं की रूपरेखा एक उपयोगी उपकरण था। ब्रुक और शिमड इस ईसाई मत-प्रचारक रणनीति की ओर कॉल्डवेल के ही शब्दों में इंगित करते हैं :

> ...आशा की जा सकती है कि द्रविड़ मानस अपनी लम्बी अवधि के आलस्य से जगा दिया जायेगा, और उन्हें पहले से अधिक उज्ज्वल जीवन में प्रवेश करने के लिए प्रेरित कर दिया जायेगा। अगर राष्ट्रीय मानस और हृदय को उस सीमा तक मथ दिया गया जैसा कि हज़ार वर्ष पहले इसमें जैन धर्म के तत्वों के आ मिलने के समय हुआ था...यह आशा करना मुनासिब होगा कि ईसाइयत के भव्य और हृदय को मथ देने वाले सत्य के प्रचार से और भी महत्वपूर्ण परिणाम आयेंगे।[24]

इस प्रकार कुरल के जैन मूल के होने का दावा हिन्दू धर्म का मुकाबला करने का एक अन्तरिम वाहन था, इस उम्मीद में कि इससे पूरी तरह ईसाई कब्जा एक सच्चाई

बन जायेगा जो तब तक क्षितिज पर मँडरा रहा था। पोप का ईसाई-मूल का सिद्धान्त धीरे-धीरे ईसाई मत-प्रचारकों और शिक्षाविदों का कुटीर उद्योग हो गया जो इस कपोल-कल्पना को तब तक दुहराते रहे जब तक कि यह 'स्थापित सत्य' नहीं बन गया। समय बीतने के साथ इससे मतभेद रखने वाली विद्वता, खेल के मैदान को विभाजनकारी विचारकों के हवाले करते हुए, धुँधली होती चली गयी।

कुरल की हिन्दू प्रकृति को मिटाना

विद्वानों की आने वाली पीढ़ियों पर इस विकृति के घातक प्रभाव का आकलन करने के लिए तिरुकुरल के सुस्पष्ट हिन्दू संस्कार को समझना ही होगा। उदाहरण के लिए, हिन्दू धर्म सुख या 'काम' को जीवन के अभिन्न अंग के रूप में मान्यता प्रदान करता है। तिरुकुरल के तीसरे अध्याय के 250 दोहों में इसकी झलक मिलती है, जो काम पुरुषार्थ को समर्पित हैं, और पोप जैसे मिशनरियों द्वारा अपनाये और प्रचारित किये जाने वाले प्रोटेस्टेंट शुद्धतावाद के बिलकुल विपरीत हैं। कामिल ज्वेलेबिल स्पष्ट करते हैं कि यह 'उन्नीसवीं शताब्दी की ईसाई उन्मुख नैतिकता' थी जिसने प्रारम्भिक मिशनरी अनुवादकों को यह घोषित करने पर विवश कर दिया कि कुरल का तीसरा अध्याय (काम पुरुषार्थ) 'अनुवादकों के बिना बदनामी मोल लिए' अनुवाद करने के योग्य नहीं है। दूसरे शब्दों में, इस तीसरे अध्याय का अनुवाद करने पर अनुवादकों को बदनामी सहनी पड़ेगी। पोप ने स्वीकार किया कि उनके अपने ईसाई-पूर्वाग्रह ने 'कुछ वर्षों तक कुरल के तीसरे भाग को पढ़ने से वंचित रखा'।[25] पोप द्वारा अपनी ईसाई संकीर्णता पर अन्ततः विजय प्राप्त करने और कुरल के तीसरे अध्याय के अनुवाद किये जाने के बाद भी उन्होंने इसके लिए इस आशा में क्षमा याचना की कि 'यही माना जायेगा कि मैंने ऐसा करके एक अच्छी सेवा ही की है'।[26]

तिरुकुरल में अनेक अध्याय ऐसे भी हैं जो जैन अहिंसा की मूलभूत अवधारणा के सीधे विपरीत हैं। उदाहरण के लिए, खेतों की जुताई करने के विरुद्ध एक जैन निषेध है, क्योंकि यह मिट्टी में रहने वाले जीवों को क्षति पहुँचाता है।[27] कुरल इसका उल्लंघन करता है। यह अहिंसा के जैन सिद्धान्त का विरोध यह सलाह देते हुए करता है कि राजा को हत्यारों को प्राणदण्ड दे देना चाहिए, ठीक उसी तरह जैसे फसल वाले खेतों से खर-पतवार हटा दिये जाते हैं।[28]

इसके अलावा, कुरल अपने अनेक दोहों में पुराणों और अन्य हिन्दू ग्रन्थों का भी उल्लेख करता है जिनमें हिन्दू देवताओं का बारम्बार उल्लेख है। कई दोहों में इन्द्र का उल्लेख है।[29] विष्णु के एक अवतार वामन द्वारा ब्रह्माण्ड को मापने का भी स्वाभाविक उल्लेख है।[30] कुरल कहता है कि धन की देवी उन लोगों के घर में निवास करती है जो अतिथि का सम्मान करते हैं।[31] यह आलस्य को लक्ष्मी के प्रति असम्मान बताते हुए इसके विरुद्ध चेतावनी देता है।[32] हिन्दू शास्त्रों की संगति में यह देश की सम्पन्नता और

आध्यात्मिकता को एक न्यायी राजा के साथ जोड़ता है।[33] यह आगे कहता है कि राजा की शक्ति ब्राह्मणों के धर्मग्रन्थ और धर्म का आधार बनती है।[34]

ईसाई धर्मशास्त्रियों ने कुरल का उपयोग द्रविड़वादियों को हिन्दू धर्म के विरुद्ध एकजुट करने में हथियार की तरह किया, यह दावा करके कि यह मूलत: समतावादी था और बाद में हिन्दू धर्म के सम्पर्क में आकर प्रदूषित हो गया। लेकिन कुरल के समतावाद के बारे में कथन मिश्रित हैं। यह प्रत्यक्ष रूप से समकालीन भारतीय समाज में व्याप्त सामाजिक तौर-तरीकों की निन्दा करता है। यह कहता है कि अगर कोई ब्राह्मण वेदों को भूल भी जाये तो वह उसे बाद में याद कर सकता है, लेकिन उसे उस नैतिकता से कभी किसी भी तरह नहीं डिगना चाहिए जिसके साथ उसने जन्म लिया है।[35] उसने यह भी कहा है कि राजा जिसे अपना दूत नियुक्त करता है, उसे किसी भद्र परिवार से होना चाहिए।[36]

जो भी हो, कुरल हिन्दू धर्म के चौथे पुरुषार्थ, मोक्ष का उल्लेख नहीं करता। पोप ने इसका उपयोग इस बात के लिए एक साक्ष्य के रूप में किया कि तमिल समाज नैतिक रूप से भ्रष्ट और असभ्य था, और इसलिए तिरुवल्लुवर ने मोक्ष को छोड़ दिया था, क्योंकि उन्होंने 'सोचा कि उनके लोग उच्चतर शिक्षा के लिए तैयार नहीं थे'।[37] आज की द्रविड़ विद्वता की एक भिन्न रणनीति है, और मोक्ष की अनुपस्थिति को यह दावा करने के लिए व्याख्यायित करती है कि कुरल ने वैदिक आर्यों के पारलौकिक पराभौतिकवाद को अस्वीकृत कर दिया था।[38] लेकिन इसकी एक सीधी-सी व्याख्या है। अर्थशास्त्री रतन लाल बोस इंगित करते हैं कि दूसरे बहुत-से भारतीय ग्रन्थ जैसे अर्थशास्त्र, केवल तीन मूलभूत प्रेरणाओं और उद्देश्यों (पुरुषार्थों) की विवेचना करते हैं और यह उसी 'पारम्परिक ज्ञान की संगति में ही है कि त्रिवर्गों (तीन उद्देश्यों के लिए प्रयासरत)— धर्म (नीति), अर्थ (भौतिक संसाधन) और काम (यौन और अन्य आकांक्षाओं की पूर्ति), के बीच पूर्ण सन्तुलन होना चाहिए'।[39] न्यायमूर्ति रामा जोएस इंगित करते हैं कि लोकप्रिय हिन्दू विधि शास्त्र मनुस्मृति भी त्रिवर्ग की चर्चा करता है।[40] इस प्रकार, तिरुवल्लुवर अगर केवल तीन पुरुषार्थों का उल्लेख करते हैं और चौथे को छोड़ देते हैं तो यह कोई अनोखी बात नहीं है; यह नीतिपरक ग्रन्थों की भारतव्यापी परम्परा रही है।

ईसाई मत के अनुसार शैवमत की रूपरेखा तैयार करना

शैवमत को ईसाई मत में समाहित कर लेने के प्रयत्न न तो स्वत:स्फूर्त थे और न ही उन मिशनरियों की स्वाभाविक प्रतिक्रिया जिन्होंने स्थानीय परम्परा के सौन्दर्य को खोज निकाला था। यह औपनिवेशिक विद्वानों द्वारा उपयोग में लायी गयी एक रणनीति थी जो तब इस्तेमाल की गयी जब शैव धर्मशास्त्रियों ने शैव मत पर किये गये शुरुआती हमलों का असरदार खण्डन कर दिया।

शैवमत से अपने पहले ही सम्पर्क में प्रोटेस्टेंट मिशनरी विद्वानों ने कठोरतम शब्दों में शैव मत की निन्दा की। उदाहरण के लिए, अमरीकी मिशनरी सेमिनरी (बट्टीकोटा, श्रीलंका) ने, जो तमिलों के बीच काम कर रहा एक कट्टरतावादी प्रोटेस्टेंट गुट है, अपने तमिल-अंग्रेज़ी जर्नल 'मॉर्निंग स्टार' (Morning Star, 1841) का उपयोग शैव मतावलम्बियों और तमिलों को अँधेरे में रह रहे लोग बताते हुए उन पर प्रहार करने के लिए किया :

> शैव धर्म के अजीबो-गरीब सिद्धान्तों और परिकल्पनाओं में कुछ भी ऐसा नहीं है जिसे मानव के नैतिक चरित्र को उन्नत करने के लिए व्यवहार में लाया गया हो या उसे अपने संगी जनों के लिए उपयोगी बनाता हो ... अगर विश्व को शिव मत में धर्मान्तरित कर दिया जाये तो किसी भी व्यक्ति को मनुष्यों की नैतिकता या सुख में सुधार की उम्मीद नहीं होगी। हर व्यक्ति बिना अपनी आस्था की पवित्रता को मलिन किये उतना ही बड़ा झूठा या ठग—उतना ही बड़ा व्यभिचारी—गरीबों का उतना ही बड़ा दमनकर्ता—उतना ही बड़ा पाखण्डी और घमण्डी हो सकता है जितना वह पहले था।[41]

मिशनरियों ने आगे और दावा किया कि शैवमत सिर्फ़ ब्राह्मणों की बनायी चीज़ है, और इसमें कुछ भी मूल्यवान नहीं है, और ईसाइयत के साथ इसका कोई मेल नहीं है। शैवमत पर यह प्रहार नुकसानदेह हुआ, क्योंकि यह इतनी प्रिय परम्परा के प्रति अत्यधिक अपमानजक था, और अरुमुगा नवलार जैसे श्रीलंकाई तमिल शैव विद्वानों द्वारा इसका असरदार जवाब दिया गया।[42]

इसलिए, इस रणनीति को निन्दा-भर्त्सना की जगह अपनाने और आत्मसात करने वाली रणनीति में बदल दिया गया। चूँकि भक्ति संगीत और नृत्य से शैव सिद्धान्त का निकट का सम्बन्ध था, जी.यू. पोप ने इसे ईसाई समायोजन के लिए सर्वाधिक आकर्षक लक्ष्य माना। वर्ष 1900 में उन्होंने शैव सिद्धान्त के सर्वाधिक लोकप्रिय ग्रन्थों में से एक—तिरुवशकम—का अनुवाद प्रकाशित किया। उन्होंने व्याख्या की कि मिशनरियों के लिए इसका महत्व यह था कि शैव मत को तमिल धर्म के एक प्रारम्भिक स्वरूप के रूप में सम्मानजनक रूप से प्रस्तुत किया जा सकता था जिसमें ईसाइयत के साथ मिलती-जुलती विशिष्टताएँ थीं। उदाहरण के लिए, दोनों ने शिक्षा दी कि एक सर्वोच्च वैयक्तिक ईश्वर है और यह केवल एकत्व का पराभौतिक अमूर्तीकरण नहीं है जैसा कि बौद्ध और जैन धर्मों में है। शैव ग्रन्थों ने गुरु की अवधारणा को महत्व दिया जिसे पोप ने ईसा मसीह के समकक्ष ठहराया। उन्होंने लिखा कि इस ग्रन्थ के रचयिता ने :

> ...यह भी शिक्षा दी कि यह शिव की कृपापूर्ण इच्छा ही थी कि वे मानव रूप धारण करें, पृथ्वी पर गुरु की तरह अवतरित हों [...] उन्होंने घोषणा की कि मोक्ष का यह तरीका समाज के सभी वर्गों के लिए खुला है। उन्होंने बड़े ही उदात्त रूप से मुक्त आत्मा की अमरता की भी शिक्षा दी [...] यह देखा जायेगा कि किस

तरह कुछ विषयों में, जो महत्वहीन नहीं हैं, शैव प्रणाली ईसाइयत से मेल खाती है ...।[43]

अनेक तमिलों द्वारा पोप को नवीं शताब्दी के एक महान शैव सन्त मणिचावसागर के भजनों को अंग्रेज़ी में अनुवाद करने के लिए बड़े आभारपूर्वक याद किया जाता है, जो तमिलनाडु के हर शिव मन्दिर में गाया जाता है,[44] जो भी हो, पोप की भूमिका-रूपी-टिप्पणी शैवमत की छवि को हीब्रू प्रार्थनाओं और ईसाई काव्य के अनुरूप बनाने के उनके व्यापक ईसाई मत-प्रचारक उद्देश्यों को साफ-साफ उजागर कर देती है :

> जो पचास कविताएँ यहाँ सम्पादित, अनूदित, और व्याख्यायित की गयी हैं, दक्षिण भारत के सभी महान शैव[45] मन्दिरों में प्रतिदिन गायी जाती हैं, ये सबकी जबान पर हैं, और उत्तम लोगों के विशाल समूहों के हृदय को ठीक उसी तरह भाती हैं, जैसे डेविड की प्रार्थनाएँ यहूदियों और ईसाइयों को प्रिय हैं ... इस बात की उत्कट आकांक्षा होनी चाहिए कि यूरोप के महान और पवित्र काव्य का अधिकाधिक संचार मणिक्का-वसागर से मिलतीजुलती लोकप्रिय, सहज, लयबद्ध तमिल कविता में किया जाय। अगर किसी विदेशी ने तिरुवसगम के अध्ययन पर अनन्त कष्ट उठाया है (काश, ऐसा और अधिक परिणाम के साथ किया गया होता!), तो दक्षिण भारत के कुछ अंग्रेज़ी और तमिल में निपुण देसी विद्वानों को भी सम्भवत: इस बात के लिए लगाया जा सकता है कि वे यह पता लगायें कि क्या सौन्दर्य और गहन चिन्तन के अंग्रेज़ी के अक्षय भण्डार में हीब्रू प्रार्थनाओं से लेकर वर्तमान ईसाई काव्य में अध्ययन, नकल और अनुवाद के लिए समुचित सामग्री उन्हें नहीं मिल सकती।[46]

जब भी पोप तमिल काव्य के बारे में कुछ सकारात्मक पाते हैं तो वे उसे ईसाइयत से मिलता-जुलता प्रदर्शित करना चाहते हैं। वे जो भी 'भ्रष्ट' पाते हैं उसका दोष हिन्दू अन्धविश्वासों पर मढ़ देते हैं :

> यह देखा जा सकता है कि किस तरह शैव प्रणाली, कुछ ऐसे विषयों में जो महत्वहीन नहीं हैं, ईसाइयत के अत्यधिक निकट है और फिर भी कुछ दोष, जहाँ तक इसे एक अनिवार्य-सी लगने वाली आवश्यकता द्वारा पहुँचा दिया गया है, वैसे हैं जो कहीं भी पाये जाने वाले सर्वाधिक खेदजनक अन्धविश्वासों में होते हैं।[47]

बाद के ईसाई शास्त्रियों ने पोप से प्रेरणा लेकर शैव सिद्धान्त को ईसाइयत के निकट चित्रित करना प्रारम्भ कर दिया, और फिर भी उसमें सफल नहीं हुए। उदाहरण के लिए, लन्दन के एक ईसाई प्रकाशन ने 1942 में दावा किया :

> [शैव सिद्धान्त] पूरी तरह प्रेम के एक ईश्वर में विश्वास करता है। इसका यह भी विश्वास है कि प्रेम का यह ईश्वर, अपनी असीम करुणा के कारण इस विश्व में अपने भक्तों की सहायता के लिए आता है। लेकिन यह सिद्धान्त इससे आगे नहीं

जाता। ईसाई विश्वास यह है कि प्रेम इससे भी आगे जाता है। ईश्वर ने मनुष्य के चोले में अपनी पहचान करायी। उसने ईसा मसीह के रूप में जन्म लिया।[48]

ईसाई शास्त्र का विरोध करने वाले हिन्दू धर्मशास्त्र के तत्वों की हर निशानी को मिटाने के बारे में पोप बिलकुल निर्मम थे। सन 1853 में, जब एक ईसाई बने तमिल वेदनायकम शास्त्री ने गिरजे में प्रार्थनाओं के लिए तमिल भजनों की रचना की तो बिशप पोप ने उनका इस आधार पर कड़ा विरोध किया कि रचना में पारम्परिक तमिल काव्य संकेत का एक तत्व शामिल था, जिसे पोप ने गैर-ईसाई बताते हुए अस्वीकार कर दिया। भारतीय साहित्य के इतिहास के एक विद्वान स्टुअर्ट ब्लैकबर्न लिखते हैं :

शास्त्री ने, सफल हुए बिना, यह कह कर अपने भजनों में मौजूद प्राचीन तमिल कविता की पारम्परिक टेक का बचाव करने की कोशिश की, कि उसका उद्देश्य था बिना किसी आत्म-श्लाघा की ध्वनि के, भक्तों की ईश्वर भक्ति को अभिव्यक्त करना और इसके लिए अनुष्ठान करना ... 1853 में, जिस वर्ष पोप को तन्जोर में नियुक्त किया गया था, अमरीकी मिशनरी ई. वेब ने 'क्रिश्चियन लिरिक्स फॉर प्राइवेट ऐण्ड सोशल र्विशप' (Christian Lyricsfor Private and Social Worship) नामक पुस्तक प्रकाशित की जो तमिलों द्वारा प्रोटेस्टेंट भजनों के संग्रह का पहला प्रमुख प्रकाशन था, जिसमें वेब ने मुखपृष्ठ पर इस बात का उल्लेख किया कि संग्रह के अधिकांश भजनों के रचयिता वेदनायकम शास्त्री थे, लेकिन उन्होंने कविताओं के संकेत छन्दों को न तो इस काव्य संग्रह में शामिल किया और न ही इसके बाद 1859 में प्रकाशित किये गये संस्करण में।[49]

चुनिन्दा तौर पर समायोजित करने और भ्रम फैलाने की यह मिशनरी सफलता उसके बाद के अकादमीय तमिल अध्ययनों में रिसती चली गयी है।

प्राचीन कालजयी तमिल साहित्य का संशोधनवादी इतिहास

एम.एस. पूर्णलिंगम पिल्लई की पुस्तक 'ए प्राइमर ऑफ़ तमिल लिटरेचर' (A Primerof Tamil Literature, 1904) ने इस मिशनरी शोध को आधार के रूप में लिया और तमिल साहित्यिक इतिहास को आर्य/द्रविड़ संघर्ष के रूप में गढ़ा। कुरल और शैव सिद्धान्त के पुनर्सन्दर्भीकरण का काम इसी चौखटे के एक हिस्से के रूप में किया गया। पिल्लई ने कुरल की रचना की अवधि सन 100 तक के संगम काल की निर्धारित की, जिसके बारे में उन्होंने दावा किया कि वह सर्वाधिक प्रभावशाली तमिल काल था और आर्यों तथा संस्कृत के प्रभाव से मुक्त था। उन्होंने पोप की प्रशंसा दुहरायी कि कुरल प्राचीन तमिल स्वर्ग का महानतम ग्रन्थ था, जिसमें धर्म और दर्शन के अत्यन्त विकसित स्वरूपों का वर्णन किया गया था। उन्होंने अनुभव किया कि इस ग्रन्थ में नैतिकता के सर्वमान्य नियम हैं जिनकी प्रशंसा सम्पूर्ण सभ्य विश्व द्वारा की जा सकती है।[50]

पिल्लई के तमिल साहित्य के इतिहास के अनुसार संगम काल के बाद, सन 100 से 600 के बीच, बौद्धों और जैनों का काल आया। उन्होंने बल देकर कहा कि बौद्ध और जैन (व्यक्तियों और उनके धर्म दोनों के रूप में) गैर-तमिल थे। इस अवधि में तमिल राष्ट्र तीन अलग-अलग जातीय समूहों द्वारा आबाद था : तमिल, आर्य और बौद्ध/जैन। पिल्लई के अनुसार, जहाँ एक ओर बौद्ध और जैन भी उत्तर भारत से आये, वे आर्यों के विपरीत, 'अपने पड़ोसियों के साथ शान्ति से रहते थे', 'कभी प्राचीन अप्रदूषित शैवमत पर प्रहार नहीं किया', और वे वर्ण-व्यवस्था की ओर उन्मुख या उससे परिचालित नहीं थे।[51] द्रविड़वादी-ईसाई मत-प्रचारक विवरण इस अवधि को तमिल साहित्य के विकास के लिए उपयुक्त काल के रूप में चित्रित करते हैं, हालाँकि विडम्बना है कि इसने ही देसी तमिल धर्म को विकृत किया।

इसके बाद सन 700 से 900 के बीच की अवधि को पिल्लई 'धार्मिक पुनरुत्थान काल' कहते हैं। उन्होंने दावा किया कि यही वह अवधि है जब प्राचीन तमिल धर्म ने अनेक शताब्दियों के अन्धकार के बाद स्वयं को फिर से दृढ़तापूर्वक अभिव्यक्त करना शुरू किया, हालाँकि इसे ऐसा करने के लिए उसे 'आर्यवाद' के साथ कई शर्मनाक समझौतों से होकर गुजरना पड़ा। वे व्याख्या करते हैं :

> कई सदियों के अर्से में तमिल शैवों को, जो शाकाहारी थे और जो आर्यों को उनके माँस खाने और मदिरा पीने डकी प्रवृत्ति के कारण म्लेच्छों और अछूतों के रूप में देखते थे, आर्यों के साथ-साथ रहने, आर्यों की अनुकूल बनने की क्षमता और राजनैतिक अनिवार्यताओं के चलते अपने पड़ोसियों के तौर-तरीकों और आदतों से समझौता करना और वेदों की सत्ता को स्वीकार करना पड़ा, [...] शैवमत, वैदिक नियमों को मानकर, वैदिक या वैदिक शैवमत में रूपान्तरित हो गया।[52]

पिल्लई ने तमिलों से शैव सिद्धान्त को इसके सभी आर्य और पौराणिक प्रभावों से मुक्त करने और उसे वापस उस अप्रदूषित स्थिति में लाने की अपील की जैसा कि यह प्राचीन काल में था। उन्होंने लिखा :

> शैव सिद्धान्त दक्षिण भारत का देसी दर्शन है और तमिल मानस की सर्वोत्तम उपज। [...] यह उच्च और महान प्रणाली आगमों या शैव धर्मग्रन्थों पर आधारित इस ऊँची और महान व्यवस्था को पौराणिक लेखकों ने प्रदूषित कर दिया जिनका एकमात्र उद्देश्य वेदों और आगमों के बीच संगति बिठाना था। [...] आर्यों के राजनीतिक प्रभुत्व के बढ़ने से दब जाने के कारण तमिल जनों ने इस व्यवस्था को स्वीकार कर लिया। [...] भक्ति या धर्मपरायणता के प्रति प्रेम ने, जो शैव प्रणाली का मूल विचार था, लोगों को उच्चता प्रदान की चाहे उनका वर्ण, रंग या जाति जो भी रही हो [...] ऐसे व्यापक उदार, ऊपर उठाने वाले, तर्कसंगत धर्म के बारे में ऐसी अवधारणा बना दी गयी है मानो यह पूर्णत: अनुदार, मनगढ़ंत, और संकीर्ण स्वार्थी व्यवस्था हो। इसलिए तमिल जनों का दायित्व है कि पौराणिक

पर्दे को उतार फेंके जिसने उनकी दृष्टि को धूमिल कर दिया है और ईश्वर के बारे में पुरानी परिकल्पना को पहचाने जैसा कि तमिल आगमों पर आधारित प्राचीन तमिल कविताओं में प्रतिष्ठापित था।[53]

'ए प्राइमर ऑफ तमिल लिटरेचर' (A Primer of Tamil Literature) नामक इस पुस्तक को विशेष रूप से विश्वविद्यालयों की परीक्षाओं की ज़रूरतों को पूरा करने के लिए लिखा गया था, और इसमें विद्यार्थियों के लिए परिशिष्ट के रूप में सवालों के नमूने भी शामिल किये गये। इसके व्यापक उपयोग के माध्यम से यह एक ऐसा ग्रन्थ बन गया जिसे रॉनल्ड इन्डेन ने 'दादागिरी ग्रन्थ' कहा है, और हिन्दू धर्म द्वारा कथित रूप से भ्रष्ट किये जाने के पूर्व के सच्चे, मौलिक 'तमिल धर्म' पर आम राय इसी वजह से बनी हुई है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि किस तरह उपनिवेशवाद द्वारा बैठाई गयी हीन भावनाओं के प्रतिकार के लिए गौरवशाली अतीत की खोज में तमिल राष्ट्रवाद का उदय हुआ। उसने स्वयं को 'आर्य धर्म' के विरुद्ध स्थापित कर इसे सम्पन्न किया। तमिल धर्म की इस रचना ने समतावादी भक्ति पर आधारित वर्ण-मुक्त नैतिकता का दावा करते हुए दबे वर्गों को रिझाया।[54] फिर भी, पिल्लई ने सचेत किया कि समकालीन शैव सिद्धान्त को सही अर्थों में समतावादी नहीं कहा जा सकता है, क्योंकि यह अगड़ी-जाति और निचली-जाति गैर-ब्राह्मणों के बीच सामाजिक विभाजन पर मुहर लगाता है। उन्होंने परिकल्पित प्राचीन अप्रदूषित अतीत के शुद्ध शैव सिद्धान्त में लौटने का आह्वान किया।

'तमिल धर्म' बना 'प्रारम्भिक भारतीय ईसाइयत'

मिशनरियों द्वारा गढ़े गये बाद के सिद्धान्तों ने यह दर्शाने के प्रयत्न किये कि कुरल और शैव सिद्धान्त आर्य विरोधी और ईसाइयत के सदृश थे। हाल में, इण्डिया इज़ ए क्रिश्चियन नेशन (India is a Christian Nation)[55] नामक एक अत्यधिक अनुमोदित ईसाई मत-प्रचारक प्रचार पुस्तक कॉल्डवेल और पोप द्वारा तमिल आध्यात्मिकता को ईसाइयत के एक अंग के रूप में पुनर्व्याख्यायित करने के लिए डाली गयी बुनियाद पर आगे बढ़ती है। यह 'शैव और वैष्णव मतों के छिपे हुए सत्यों को और किसी रूप में नहीं, बल्कि ''प्रारम्भिक भारतीय ईसाइयत'' के रूप में पहचानने की भारी सम्भावनाओं की चर्चा करती है'।[56]

इस परिकल्पना को संस्थागत और बाहर के देशों से मिलने वाले समर्थन की चर्चा आगे अध्याय 9 में की जायेगी। फिलहाल, इतना ही कहना काफ़ी होगा कि भारतीय जनसंख्या का औपनिवेशिक नस्ली वर्गीकरण, और भारत के धर्मों और आध्यात्मिकता का विखण्डन एक घातक मिश्रण बन गया है जो हमें एक विनाशकारी भविष्य की ओर ले जा रहा है।

7
द्रविड़ नस्लवाद और श्रीलंका

हमने देखा है कि किस तरह भाषाओं के शैक्षिक अध्ययनों ने यूरोपीय नस्ल विज्ञान में एक भूमिका निभायी, और औपनिवेशिक प्रशासकों तथा ईसाई मत-प्रचारकों ने कैसे इस विद्वता को फूट-डालो-राज-करो की रणनीति के लिए प्रयोग किया। श्रीलंका में नस्ली अस्मिताओं के विभाजन को और गहरा करने के लिए एक शुद्ध कल्पना जोड़ दी गयी। आज यह कल्पना इतनी प्रबल हो गयी है कि लोग इसके लिए खून बहाते हैं।

यह अध्याय इस घटनाक्रम की खोज निम्नलिखित महत्वपूर्ण संरचनाओं का उपयोग करते हुए करता है।

सिंहली-आर्य-बौद्ध पहचान

अमरीका में स्थापित थियोसॉफिकल सोसाइटी ने एक बौद्ध-आर्य-सिंहली पहचान निर्मित कर अपने दक्षिण भारत के अड्डे का इस्तेमाल श्रीलंका में बौद्ध पुनर्जागरण के लिए किया। इसका उद्देश्य था प्रबल औपनिवेशिक ईसाई मत-प्रचार का विरोध करने के एक तरीके के रूप में इसका उपयोग करना। श्रीलंकाई सिंहलियों ने स्वयं को उन आर्यों के रूप में देखना प्रारम्भ किया जिन्होंने श्रीलंका की खोज की और यहाँ सभ्यता लाये। इस प्रक्रिया में उन्होंने तमिलों पर एक निचली नस्ल का दाग लगा दिया। समय बीतने के साथ स्थितियाँ नियन्त्रण से बाहर होती चली गयीं।

श्रीलंकाई द्रविड़ पहचान

इस बीच धर्मशास्त्रों के विद्वानों ने लिमुरिया नाम के एक खोये हुए महादेश की परिकल्पना का प्रचार किया, और यह तमिलनाडु में लोकप्रिय भी हो गया। वहाँ से यह विशाल द्रविड़ विवरण के साथ एक हो गया और इसने द्रविड़ नस्लवाद को जन्म दिया। अन्ततः यह श्रीलंकाई तमिलों में फैलना शुरू हो गया। सिंहली राष्ट्रवाद द्वारा पहले से ही अलग-थलग कर दिये गये श्रीलंकाई तमिलों ने वैभवशाली प्राचीनता के अपने दावे को मजबूत बनाने के लिए द्रविड़वाद के इस स्वरूप को अंगीकार कर लिया। लिमुरिया मूल के द्रविड़ मिथक ने तमिलों को यह दावा करने कि वे ही श्रीलंका के मूल निवासी थे का अवसर दिया साथ ही सिंहलियों का वर्णन बाहरी आर्य हमलावरों के रूप में करने का भी।

पहचानों का टकराव

इस प्रकार, इस छोटे-से द्वीप में दो नस्ली अस्मिताओं ने ठोस स्वरूप ग्रहण किया। ईसाई मत-प्रचारक मानव जाति विज्ञान द्वारा बोये गये बीज का पोषण औपनिवेशिक

प्रशासन द्वारा किया गया जिसने एक नरसंहार को जन्म दिया जिसके कारण एक लम्बा गृह युद्ध चला और लगभग एक लाख लोग मारे गये।

चित्र 7.1 इस प्रक्रिया का सारांश प्रस्तुत करता है।

Fig 7.1 श्रीलंका में उपनिवेशवादी-ईसाई मत-प्रचारकों की संरचनाओं के संघर्ष
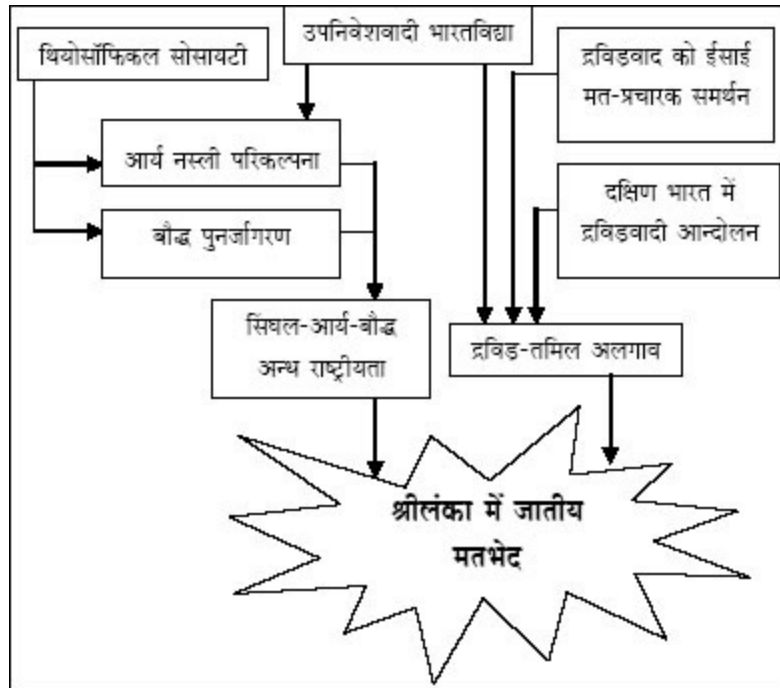
धर्मशास्त्रीय कपोल-कल्पना में पुराने भूगर्भ विज्ञान का मिलन

रॉबर्ट कॉल्डवेल के तमिल निकृष्टता के प्रारम्भिक विवरण की प्रतिक्रिया स्वरूप स्वदेशी तमिल विद्वानों ने एक सकारात्मक और अन्धराष्ट्रीयतावादी तमिल पहचान रचनी शुरू कर दी। उन्होंने कॉल्डवेल के विवरण में द्रविड़ों की स्थिति को नस्ली तौर पर निकृष्ट या नीचा बताये जाने को सुधारने के प्रयास किये। इसके लिए उन्होंने खोये हुए महादेश लिमुरिया वाले सिद्धान्त को भी शामिल कर लिया जिसे 1864 में ब्रिटिश प्राणी शास्त्री फिलिप ल्यूटली स्क्लैटर (Philip Lutley Sclater, 1829-1913) द्वारा तैयार किया गया था।[1] इस सिद्धान्त के अनुसार विशाल हिन्द महासागर क्षेत्र में वर्तमान मैडागास्कर से भारत और सुमात्रा तक लिमुरिया (Limuria) नामक एक बड़ा महादेश फैला था, और उसके बाद यह हिन्द महासागर में डूब गया। अफ्रीका और भारत, दोनों महाद्वीपों में वनस्पतियों और पशुओं के बीच समानताओं के लिए यही स्क्लैटर की व्याख्या थी। यह एक अन्य उदाहरण था जिसमें प्रकृति विज्ञान से उपजे एक विचार का नस्लवादी अवधारणाओं को समर्थन देने के लिए उपयोग किया गया। सन 1876 में, फ्रेडरिक एंगेल्स ने इन रोचक भूगर्भशास्त्रीय सिद्धान्तों को एक

मार्क्सवादी मोड़ दिया और लिमुरिया की कपोल-कल्पना को और फैलने में सहयोग दिया।[2]

1880 के दशक में थियोसॉफ़िकल सोसाइटी की संयुक्त संस्थापक मैडम हेलेना पेत्रोवना ब्लावात्सकी (Madam Helena Petrovna Blavatsky, 1831-91) ने लिमुरिया के इस विचार को लेकर इसे तन्त्र-मन्त्र वाले समूहों में लोकप्रिय बनाया। उन्होंने दावा किया कि लिमुरिया निवासियों ने 'बड़े-बड़े शहर बनाये थे, कला और विज्ञान को बढ़ावा दिया था और वे खगोलशास्त्र, स्थापत्य या वास्तुशास्त्र और गणित में पारंगत थे'।[3] ब्लावात्सकी 1879 में भारत पहुँची और तत्कालीन मद्रास के आदयार में बस गयीं जहाँ वे थियोसॉफिकल सोसाइटी के प्रधान कार्यालय को ले आयीं।[4] उन्होंने उस समय प्रचलित इण्डो-आर्य जाति विज्ञान को अपने 'कर्म सिद्धान्त पर आधारित विकास' के जाल के साथ जोड़ दिया ताकि नस्लवाद का एक रहस्यमय स्वरूप खड़ा कर सकें। उन्होंने कहा कि सभी नस्लें एक ही पूर्वपुरुष से निकली हैं... जिसके बारे में कहा जाता है कि वह 18,00,00,000 वर्ष पूर्व था, और 8,50,000 वर्ष पहले भी... जब विशाल महाद्वीप अटलांटिस (Atlantis) के अवशेष डूब गये'।[5] ब्लावात्सकी को विश्वास था कि आर्य अन्यों से श्रेष्ठ थे। इस प्रकार, थियोसॉफ़िकल कपोलकल्पना में अटलांटिस (श्वेत यूरोपियनों का निवास स्थल) पहले आया, और उसके बाद लिमुरिया, लेकिन इनके विवरणों में बहुत अन्तर था जो इस बात पर निर्भर था कि ऐसी कथाएँ कहाँ सुनायी गयीं। दक्षिण एशिया के लोगों के समक्ष अटलांटिस का कभी उल्लेख नहीं किया गया और लिमुरिया की चर्चा समुद्र द्वारा उनकी पुरानी सभ्यता को लील जाने की प्राचीन तमिल स्मृति के साथ की गयी।

ब्लावात्सकी के अनुसार हिन्दू मूर्ति-पूजा एक घोर अन्धविश्वास था, और इसने प्रमाणित किया कि हिन्दू एक ऐसी नस्ल के थे जो अप्रदूषित आर्य धर्म से पतित हो गये थे। उन्होंने लिखा :

> गूढ़ इतिहास हमें शिक्षा देता है कि मूर्तियाँ और उनकी पूजा चौथी नस्ल के साथ ही समाप्त हो गयी थी, तब तक के लिए जब तक कि बाद की संकर नस्लें (चीनी लोगों, अफ्रीकी नीग्रो, आदि) धीरे-धीरे उन्हें वापस नहीं लायीं। वेद किसी भी मूर्ति-पूजा का समर्थन नहीं करते; परन्तु सभी आधुनिक हिन्दू कृतियाँ अवश्य करती हैं।[6]

इस प्रकार, वेद विदेशी आर्यों के थे, जो शुद्ध थे, जबकि आधुनिक हिन्दू इन श्वेत आर्यों के नीच द्रविड़ मूल निवासियों के साथ सम्पर्क से उत्पन्न विकृत वर्णसंकर। जो भी हो, उस समय तक द्रविड़ों को उनका गौरवशाली अतीत लिमुरिया में उनकी उत्पत्ति के साथ प्रदान किया जा रहा था। धर्मशास्त्रियों द्वारा जब इसे महत्व दिया गया तो भारत में ब्रिटिश औपनिवेशक प्रशासकों की सरकारी नियमावलियों में इस 'इतिहास' का प्रवेश हो गया। भारतीय लोक सेवा के चार्ल्स डी. मैक्क्लीन ने लिमुरिया को तमिलों के सम्भावित उत्पत्ति स्थल के रूप में बताया।[7] द्रविड़ उत्पत्ति के लिमुरिया

वाले सिद्धान्त को लॉर्ड रिस्ली ने भी उद्धृत किया, हालाँकि थोड़े संशय के साथ। रिस्ली वही प्रशासक थे, जैसा कि हमने पहले देखा, जिन्होंने सभी भारतीयों को उनकी नाकों के आकार के अनुसार वर्गीकृत किया था।[8]

मूल निवासी तमिल विद्वानों ने अपने पूर्वजों के इस मिथकीय डूबे हुए महादेश के प्रति गर्व की अनुभूति की, और उसे तमिल साहित्य में उल्लिखित प्राचीन जलप्रलय के साथ जोड़ा, जिसके बारे में कहा गया था कि इसने अनेक तमिल नगरों को नष्ट कर दिया था। एस.एस. पूर्णलिंगम पिल्लई की पुस्तक, 'ए प्राइमर ऑफ तमिल लिटरेचर' (A Primer of Tamil Literature, 1904), ने तमिलों की उत्पत्ति की व्याख्या इस प्रकार की : 'तमिल या तमिलार निश्चित रूप से प्राचीन तमिलहम या लिमुरिया के मूल निवासी थे, जो कि भूमध्यरेखा के आस-पास हिन्द महासागर का एक महाद्वीप था और 100 शताब्दियों पूर्व डूब गया'।[9] इस प्रकार यूरोपीय नस्लवादी इतिहासों को मूल निवासी तमिल विद्वानों द्वारा स्वीकार और अंगीकार कर लिया गया, जिन्होंने उस विवरण में अपनी जातीय श्रेष्ठता के पेंच डाल दिये। टी.आर. शेष अय्यंगर की पुस्तक, ड्रैविडियन इण्डिया (Dravidian India) 1925 में प्रकाशित हुई जो आज भी हिन्दू विरोधी सिद्धान्तकारों द्वारा 'द्रविड़शास्त्र की अग्रणी पुस्तकों में से एक प्रमुख पुस्तक' के रूप में प्रशंसित है।[10] यह पुस्तक तमिलों की लिमुरियन उत्पत्ति का एक रेखाचित्र तैयार करती है :

> तब ये द्रविड़ कौन हैं? उनकी अलग पहचान, एच. रिस्ली कहते हैं, उनके छोटे आकार, काली त्वचा, लम्बे सिर, चौड़ी नाक और लम्बी भुजा, से बनती है जो शेष भारत के लोगों से अलग है। वे भारत की आबादी के मूल प्रारूप हैं... हीब्रू धर्मग्रन्थों ने एक भयानक जलप्रलय के विशेष वर्णन को सुरक्षित रखा है, भूगर्भशास्त्रीय अनुसन्धानों ने दिखा दिया है कि हिन्द महासागर कभी एक या महाद्वीप था और यह कि इस डूबे हुए महाद्वीप को कभी-कभी लिमुरिया भी कहा जाता था, जो मूलत: मैडागास्कर से मलय द्वीपसमूह तक फैला था, और जो दक्षिण भारत को अफ्रीका और ऑस्ट्रेलिया से जोड़ता था ... तमिल परम्परा में सुस्पष्ट संकेत हैं कि उस जलप्रलय से प्रभावित यह भूमि तमिलकम से मिली हुई थी और पानी घट जाने के बाद तमिल स्वाभाविक रूप से उत्तरी प्रान्तों में चले गये...[11]

इस प्रकार, रिस्ली द्वारा विभिन्न शारीरिक प्रारूपों के आधार पर किया गया भारतीयों का नस्लवादी वर्गीकरण धीरे-धीरे तमिल जनमानस में एक वैज्ञानिक ढंग से प्रमाणित सत्य के रूप में प्रक्षिप्त हो गया। लिमुरियन कपोल-कल्पना को बाइबल के जलप्रलय तथा नूह के पुत्रों की कथा में मिला दिया गया। अब तमिलों के पास एक नया इतिहास था और नयी नस्ली पहचान भी—जो सारी-की-सारी यूरोपीय अवधारणाओं का उपयोग कर गढ़ी गयी थी।

बिशप कॉल्डवेल से लिमुरियन उत्पत्ति का नाता

एक भारतीय ईसाई तमिल विद्वान देवनेय पवनार (1902-81) ने लिमुरिया के सिद्धान्त को कॉल्डवेल के षडयन्त्र वाले सिद्धान्त—'धूर्त बाहरी ब्राह्मण का तमिलों को सेवक बनाकर रखने'—के साथ मिला दिया। सन 1966 की अपनी पुस्तक की भूमिका में उन्होंने लिखा :

> अभी तक पश्चिम के लोग यह नहीं जानते हैं कि तमिल लिमुरिया मूल की एक अत्यन्त विकसित प्राचीन भाषा है, और सार्वजनिक और निजी क्षेत्रों, दोनों के संस्कृतवादियों द्वारा व्यवस्थित ढंग से और समन्वित प्रयासों द्वारा दबायी जाती रही है और दबायी जा रही है, तभी से जब वैदिक साधु दक्षिण में गये, और अपने श्रेष्ठ रंग तथा प्राचीन तमिल राजाओं के आदिम भोलेपन का अधिकाधिक लाभ उठाते हुए उन्होंने स्वयं को धरती के देवता (भू-सुर) के रूप में प्रस्तुत किया, और तमिलों को धोखा देकर यह विश्वास दिला दिया कि उनके पूर्वजों की बोली या साहित्यिक भाषा का स्रोत दिव्य या स्वर्गीय था।[12]

तमिल अध्ययनों में पवनार के दृष्टिकोण को आज भी स्वत:सिद्ध माना जाता है। यहाँ तक कि तमिलनाडु राज्य सरकार के कन्याकुमारी स्थित संग्रहालय ने लिमुरिया की (जिसे कुमारी कन्दम के नाम से भी जाना जाता है) एक प्रदर्शनी लगायी है। अनेक विश्वविद्यालयी पाठ्यपुस्तकें और शैक्षिक शोध पत्र लिमुरिया को एक प्रमाणित सत्य बताते हैं, हालाँकि एक शताब्दी से भी अधिक समय से भूगर्भशास्त्रियों द्वारा डूब गये महादेश की परिकल्पना को अमान्य कर दिया गया है। उदाहरण के लिए, 1970 में तमिलनाडु विधान सभा पटल पर शिक्षा मन्त्री ने घोषणा की कि एक ईसाई विद्वान ने द्रविड़ों की लिमुरिया में उत्पत्ति को प्रमाणित कर दिया था। उन्होंने घोषणा की कि :

> फादर हेरास ने दिखा दिया है कि किस तरह [द्रविड़] सभ्यता लिमुरिया से दक्षिण भारत आयी, और उसके बाद हड़प्पा और मोहनजोदड़ो पहुँची, और वहाँ से बाद में टिगरिस और यूप्रेटीस और रोम आदि पहुँची... यह भी मैंने तब जाना जब मैं अन्नामलाई विश्वविद्यालय में पढ़ रहा था।[13]

तमिलनाडु के शैक्षिक प्रतिष्ठानों पर लिमुरियाई सिद्धान्त के दबदबे का आकलन निम्नलिखित उद्धरण से लगाया जा सकता है, जिसे 2003 में तमिलनाडु सरकार द्वारा प्रायोजित और पॉण्डिचेरी इन्स्टीटयूट ऑफ लिंग्विस्टिक्स ऐण्ड कल्चर (PondicherryInstitute of Linguistics and Culture) द्वारा आयोजित एक सेमिनार में पढ़े गये शोध पत्र से लिया गया है :

> लिमुरियाई तमिलों के बारे में बताते हुए पवनार तमिल के विकास को 1,00,000 से 50,000 वर्ष ईसा पूर्व तक का ढूँढ निकालेंगे। स्पेन्सर वेल्स और उनके दल के वैज्ञानिकों ने अब पाया है कि पहले व्यक्ति की उत्पत्ति 60,000 वर्ष पूर्व की है। हम तमिल अपने संस्कृति के एक धूमिल अतीत का दावा करने के लिए येन-केन-प्रकारेण 'दो-हज़ार वर्ष पुरानी' जैसे शब्दों का उपयोग करने के आदी हो गये

> हैं। अकेला ईसाई कैलेंडर द्रविड़ संस्कृति की स्थापना की अवधि [का आधार] नहीं हो सकता है। लाखों वर्ष पहले क्या हुआ, [यह जानने के लिए] हमें इसकी खोज में लगना होगा, और हमें अचानक हुई सिन्धु घाटी सभ्यता की खोज से ही सन्तुष्ट नहीं हो जाना है।[14]

एक दक्षिण भारतीय विश्वविद्यालय के पूर्व कुलपति, के.पी. अरवानन, लिमुरिया के शोध का उपयोग द्रविड़ों और अफ्रीकियों के बीच जातीय सम्बन्ध को मनवाने के लिए तर्क देते हैं :

> द्रविड़ और काले अफ्रीकी सम्भवत: एक ही नस्ली शाखा के रहे होंगे ... हिन्द महासागर में अफ्रीकी और द्रविड़ महाद्वीपों के बीच कभी किसी तरह का भूमि सम्पर्क अवश्य रहा होगा... उन्होंने इस खोये हुए महादेश को 'कुमारी' कहा। आधुनिक भूगोल 'खोये हुए लिमुरिया' (कुमारी) के प्रसिद्ध सिद्धान्त की पुष्टि करता है।[15]

आधुनिक अफ्रीकी-दलित अभियान हामी और लिमुरियाई, दोनों मिथकों की परिकल्पनाओं से निकला है।

थियोसॉफी—ईसाई मत-प्रचार के खण्डन के लिए बौद्ध धर्म द्वारा आर्यों का उपयोग

दक्षिण भारत में द्रविड़ अलगाववादी पहचान के सृजन के समानान्तर इसी तरह की एक अन्य शरारत श्रीलंका में चल रही थी। बौद्ध को एक धर्म, सिंहली को एक भाषा और आर्य को एक नस्ल के रूप में मिश्रित करते हुए एक नयी पहचान गढ़ने की प्रक्रिया चल रही थी। सन 1856 में रॉबर्ट कॉल्डवेल ने अपने तुलनात्मक व्याकरण में तर्क दिया था कि सिंहली और तमिल भाषाओं के बीच कोई प्रत्यक्ष सम्बन्ध नहीं है। वर्ष 1866 में एक अन्य विद्वान जेम्स डी'आल्विस ने इस विचार को पकड़ लिया कि सिंहली भाषा 'आर्य या उत्तरी परिवार की थी, जो द्रविड़ या दक्षिणी भाषा वर्ग के विपरीत पहचानी जाती थी'।[16] जो भी हो, डी'आल्विस ने, जिन्हें अंग्रेज़ों के अधीन श्रीलंका का पहला सिंहलभाषा का राष्ट्रवादी माना जा सकता है, इस सिद्धान्त को अस्वीकृत कर दिया कि सिंहली भाषा संस्कृत से निकली थी; उन्होंने बताया कि इसके विपरीत दोनों एक ही प्राचीन नस्ल से निकली हैं। उन्होंने भारतीय मुख्य भूमि की जनसंख्या से सिंहली के किसी प्रकार के सम्बन्ध को भी अस्वीकृत कर दिया।[17] अंग्रेज़ शासकों ने 1871 की जनगणना में लोगों को अपनी नस्ल बताने के लिए विवश किया जिसके माध्यम से श्रीलंका के निवासियों पर भी नस्लवादी वर्गीकरण थोप दिया गया।[18]

क्रिश्चियन लासेन (Christian Lassen) और जेम्स इमर्सन टेनेट (James Emerson Tennent) जैसे विद्वानों द्वारा विपरीत दृष्टिकोण भी व्यक्त किये गये थे, जिन्होंने

सिंहली और तमिल को एक ही भाषा परिवार में रखा था। फिर प्रसिद्ध सिंहली विद्वान डब्ल्यू.एफ. गुणवर्धना भी थे जिन्होंने 1918 में ही घोषणा कर दी थी कि सिंहली और तमिल भाषाओं के बीच सम्बन्ध थे।[19] लेकिन मैक्स मूलर-कॉल्डवेल खेमा इस आम राय को स्वरूप देने में सफल हो गया कि सिंहली और तमिल दो भिन्न भाषायी और नस्ली श्रेणियाँ हैं। इस द्वीप को अलग करने में और इसके भविष्य की नियति निर्धारित करने में यह निर्णायक बन गया।[20]

धर्मपाल एक श्रीलंकाई बौद्ध भिक्षु थे जो थियोसॉफी से अत्यन्त प्रभावित थे। वे श्रीलंका के लोगों के बीच सिंहली-बौद्ध-आर्य पहचान को लोकप्रिय बनाने में महत्वपूर्ण रहे। सन 1886 में जब थियोसॉफिस्ट सी.डब्ल्यू. लीडबीटर और हेनरी स्टील ओलकॉट श्रीलंका गये तब धर्मपाल उनके साथ थे।[21] इस प्रक्रिया में एक महत्वपूर्ण व्यक्तित्व थे—डच से बौद्ध बने अल्फ्रेड अन्स्र्ट बुल्टजेन्स, जो बौद्ध धर्म पर भाषण देते हुए श्रीलंका में घूमते रहे। श्रीलंका के बौद्धों ने बुल्टजेन्स को गम्भीरता से लेना शुरू किया, इस बात पर गर्व करते हुए कि एक शिक्षित श्वेत व्यक्ति ने उनका अनुमोदन किया था। उस समय की एक रिपोर्ट के अनुसार :

> एक ऐसे समय में जब श्रीलंका में यूरोपीय कहते फिर रहे थे कि ईसाई धर्म ही पूर्ण सत्य है और बौद्ध धर्म पूरी तरह असत्य, बौद्ध (मतावलम्बी) बुल्टजेन्स को सुनने के लिए इकट्ठा होते थे और आश्चर्यचकित थे कि ऐसे शिक्षित लोग बौद्ध धर्म का आलिंगन करेंगे।[22]

इस प्रकार जब श्रीलंका में बुल्टजेन्स द्वारा चलायी जा रही एक पत्रिका 'द बुद्धिस्ट' (The Buddhist) ने 1897 में 'द आर्यन सिंहलीज' (The Aryan Singhalese) शीर्षक से एक लेख प्रकाशित किया तो उसने राष्ट्रीय बुद्धिजीवियों के बीच अपना गहरा प्रभाव छोड़ा।[23] एक अन्य धर्मविद डॉ. डैली ने सिंहलियों को बुल्टजेन्स का अनुकरण करने के लिए प्रोत्साहित किया। बौद्ध धर्म की गलत पश्चिमी व्याख्या की आलोचना करते हुए बुल्टजेन्स ने तर्क दिया कि बौद्ध धर्म ईसाइयत से अधिक तर्कसंगत था। पाली सूत्रों के अपने ही अनुवाद का उपयोग करते हुए उन्होंने बौद्ध धर्म के अपने प्रारूप का चित्रण एक पश्चिमी आदर्श के रूप में किया।[24]

औपनिवेशिक संरचनाओं के बीच टकराव : आर्य-बौद्ध-सिंहली बनाम द्रविड़-शैव-तमिल

ईसाई मिशनरियों द्वारा नये चेले बनाने की गतिविधियों के विरुद्ध संघर्ष में श्रीलंका के बौद्धों ने बौद्ध धर्म को एक सम्माननीय तर्कसंगत आस्था के रूप में फिर से खोजने की प्रक्रिया प्रारम्भ की। गणनाथ ओबेसेकेरे बताते हैं :

> श्रीलंकाई बौद्ध भिक्षुओं और शिक्षित सामान्य जनों ने बौद्ध धर्म की पश्चिमी व्याख्या को प्रोटेस्टेंट और कैथोलिक मिशनों के खिलाफ उनके संघर्ष में विशेष रूप से आकर्षक पाया। शीघ्र ही देश के विद्वानों ने, जो पश्चिमी आलोचना के

तरीकों द्वारा अत्यन्त प्रभावित थे, बौद्ध धर्म के प्रति एक तर्कसंगत दृष्टिकोण अपनाया और मिथकों, पंथों, तथा भक्ति के तत्वों को धर्म के लिए अनावश्यक मानते हुए उन्हें अप्रदूषित और शुद्ध अवस्था वाले बौद्ध धर्म में जोड़ा गया या प्रक्षिप्तांश सरीखा माना। कुल मिलाकर, सामान्य खेतिहरों की लोक आस्थाओं को जीवात्मवाद या अन्धविश्वास के रूप में देखा गया जो पुराने धर्म की तर्कसंगत ब्रह्मविद्या के योग्य नहीं था।[25]

नवनिर्मित 'शुद्ध' बौद्ध धर्म को पश्चिम के लोगों के सामने सम्मानजनक ढंग से व्यवस्थित किया गया था, और इसने कुछ शत्रुओं की भी पहचान की जिनमें तमिल प्रमुख थे, और जिन्हें अश्रेष्ठ अनार्यों के रूप में वर्णित किया गया। इस अभियान के प्रमुख नायक धर्मपाल ने तमिलों को हादी देमालू (गन्दे तमिल) बताना शुरू कर दिया।[26] 1880 के दशक में मैडम ब्लावात्सकी ने श्रीलंकाई तमिलों और अफ्रीकियों को आर्यों से अनिवार्यत: नीच वर्गीकृत करना शुरू कर दिया था : 'चाहे जितनी संस्कृति हो, और सभ्यताओं के बीच जितनी ही पीढ़ियों का प्रशिक्षण ऐसे मानवीय नमूनों को उठाया नहीं जा सकता... उस बौद्धिक स्तर तक जैसे कि आर्य, सामी, और कथित तुरानियन हैं'।[27]

इन्हीं शुरुआतों के साथ नस्ली शत्रुताओं के पोषण ने श्रीलंका को तीस-वर्ष के गृह युद्ध के परिदृश्य में बदल दिया, जिसमें 80,000 से अधिक लोग मरे,[28] और 9,00,000[29] से अधिक लोग विस्थापित हुए, और इसने वैश्विक हथियारों के व्यापार को बढ़ावा दिया।[30] सन 2008 में कार्नेगी एनडाउमेंट फॉर इण्टरनैशनल पीस (Carnegie Endowment for International Peace) द्वारा श्रीलंका को 20 राष्ट्रों की सूची में शामिल किया गया था, जो उन विफल राष्ट्रों की श्रेणी में थे जो ध्वस्त होने के कगार पर पहुँच चुके थे।[31] 2009 में जातीय संघर्ष अपनी चरम सीमा पर पहुँच गया था, जब 20,000 नागरिक मारे गये थे।[32] हालाँकि हिंसा का अन्त तमिल अलगाववादी नेता के निधन के बाद हुआ, सन्देह के गहरे घाव जो तोड़-मरोड़ कर रचे गये इतिहास, पहचान और भाषा विज्ञान द्वारा लोगों में बसे हैं, आज भी भारतविद्या की एक अन्य भयावह विरासत है।

यूरोपीय लोगों द्वारा स्थापित नस्ली आधार पर अतिवादी हिंसा को कार्यरूप देने में नि:सन्देह श्रीलंका अकेला नहीं है। परिशिष्ट ग इसी तरह की एक प्रक्रिया का रेखांकन करता है जिसने रवाण्डा जनसंहार को घटित किया।

पहले के अध्यायों में यह दिखाया गया है कि किस तरह औपनिवेशिक शक्तियों द्वारा इतिहास, पहचान, और नस्ली श्रेणियाँ बनायी गयीं और उन्हें पोषित किया गया। उपनिवेशवाद के अन्त में भी, ऐसी श्रेणियाँ बनी रहीं, क्योंकि वे निहित स्वार्थों के लिए उपयोगी रहे। विवरणों पर नियन्त्रण उपनिवेश बनाने वाली सभ्यताओं को न केवल सांस्कृतिक श्रेष्ठता, बल्कि आर्थिक लाभ और नियन्त्रित सभ्यताओं पर राजनीतिक प्रभुत्व भी प्रदान करता है। जैसे ही एक बार मूल निवासी थोपे गये विवरणों को

चुपचाप स्वीकार कर लेते हैं, गृह युद्ध प्रारम्भ किया जा सकता है। यह रवाण्डा और श्रीलंका दोनों के लिए सच्चा रहा है, जहाँ आन्तरिक विभाजन का पोषण जनसंहार के संघर्ष बिन्दु तक किया गया। ऐसे संघर्ष तब नियन्त्रण करने वाली शक्तियों को एक बार फिर हस्तक्षेप करने का तर्क प्रदान करते हैं, जो अबकी बार मानवीय चिन्ताओं के लबादे से ढँके होते हैं।

भारत में भी निहित स्वार्थों द्वारा इस तरह के आन्तरिक विभाजन का पोषण और संचालन किया जाता रहा है। इन विभाजित गुटों को विश्व शक्तियों के साथ जोड़कर एक नेटवर्क तैयार कर दिया गया है। इसका इस पुस्तक के अन्तिम अध्यायों में विचार किया जायेगा।

8
हिन्दूधर्म को 'द्रविड़' ईसाइयत में पचाना

दक्षिण भारत में हिन्दू धर्म को ईसाई इतिहास और मत में ढालने की प्रक्रियाओं का एक सिलसिला शुरू हो गया है। यह द्रविड़ इतिहास के एक प्रारूप का उपयोग करता है जिसके अनुसार सन्त टॉमस भारत आये थे और यह भी कि तमिल कालजयी प्राचीन ग्रन्थों की रचना ईसाई प्रभाव में हुई। कहा जा रहा है कि ये हिन्दू रचनाएँ नहीं हैं, बल्कि ईसाइयत का ही एक स्वरूप हैं जो स्पष्टत: दक्षिण भारतीय है। यह बल देकर कहा गया कि तमिल प्राचीन कालजयी रचनाओं को वास्तव में द्रविड़ ईसाइयत कहा जाना चाहिए। इस तरह द्रविड़ आन्दोलन और और ईसाई धर्मान्तरण एक साझे शत्रु को नीचा दिखाने के लिए मिलकर काम कर रहे हैं। जैसा कि हम दिखायेंगे, ईसाई पक्ष द्रविड़ पक्ष को अपने में मिला रहा है, क्योंकि ईसाई पक्ष की धन की व्यवस्था करने की अधिक क्षमता है, इसकी विश्व-व्यापी मिली-भगत है, और रणनीतिगत सोच में इसका लम्बा अनुभव है, जबकि द्रविड़ पक्ष के पास इस सबकी कमी है। इस परिकल्पना के अनुसार दावा किया गया कि आर्य प्रभावों ने तमिल आध्यात्मिकता में घुसपैठ की है जिसने अधिक शुद्ध द्रविड़ आध्यात्मिकता को प्रदूषित कर दिया, और कि यह प्रारम्भिक द्रविड़ आध्यात्मिकता ईसाइयत के समान ही थी। ऐसी मनगढ़न्त बातों के लिए चलाये जा रहे इन व्यापक कार्यक्रमों में विभिन्न संस्थागत तन्त्र लगे हुए हैं। इस अध्याय में कुछ अग्रणी संस्थाओं के बारे में चर्चा की जायेगी जो इसमें जुटी हैं।

चित्र 8.1 को इंगित करते हुए उल्लिखित प्रक्रिया के प्रत्येक खण्ड का परिचय अगले अध्याय में कराया जायेगा और बाद में उस पर विस्तार से चर्चा भी की जायेगी।

सन्त टॉमस का मिथक

वह कथा जो ईसाई अग्रदूत सन्त टॉमस के भारत में आने का काल सन 53 बताती है एक मध्यकालीन मिथक है जो बहुत दिनों से बना हुआ है।[1] यह परोक्ष रूप से अपने भीतर औपनिवेशिक और नस्लवादी विवरणों को समोये हुए है; उदाहरण के लिए यह कि ईसाइयत का एक शान्तिप्रिय दूत काली चमड़ी वाले भारतीयों के बीच भेजा गया जो उसके विरुद्ध हो गये और उसे मार दिया। इस मिथक का, बहरहाल, कोई ऐतिहासिक आधार नहीं है। फिर भी, इसे विभिन्न ईसाई संस्थाओं द्वारा एक स्वरूप देकर शक्तिशाली हथियार बना दिया गया है ताकि तमिलनाडु में हिन्दू संस्कृति को समायोजित किया जा सके। इसके लिए दक्षिण भारतीय संस्कृति के सभी सकारात्मक पहलुओं का श्रेय 'टॉमस की ईसाइयत' को दिया गया और इसमें जो भी घटिया तत्व हैं उनके लिए हिन्दू धर्म को दोषी ठहराया गया। भारतीय संस्कृति और

आध्यात्मिकता के साझे स्वरूप में से तमिलों को अलग करने के लिए यह एक हथियार की तरह भी काम करता है।

भारतीय ईसाई विद्वानों द्वारा अस्वीकार किया जाना

सन्त टॉमस के मिथक का प्रस्ताव जब पहली बार पेश किया गया था तो ईसाई विद्वानों द्वारा इसे अमान्य कर दिया गया था। उनमें विख्यात ईसाई भारतविद फादर हेनरी हेरास (Father Henry Heras, 1888-1955) भी शामिल थे जिन्होंने इस दावे का जोरदार विरोध किया कि मद्रास में टॉमस की कब्र मिली थी। जी.यू. पोप जैसे प्रारम्भिक मिशनरी विद्वानों द्वारा तमिल संस्कृति को इस मिथक के माध्यम से समायोजित करने के प्रयास ध्वस्त हो गए, विशेषकर तब जब प्राचीन तमिल साहित्य में ईसाई प्रभाव ढूँढ निकालने में ईसाई विद्वान विफल हो गए।

सन्त टॉमस मिथक का पुनरुज्जीवित होना

जो भी हो, 1970 के दशक में एम. देइवनयगम नाम के एक कट्टर ने प्राचीन कालजयी तमिल ग्रन्थों पर ईसाई अर्थ थोपकर उन्हें तोड़ना-मरोड़ना शुरू कर दिया। उस समय धरातल पर राजनीति ऐसी थी कि उनकी शोध-परिकल्पना को शक्तिशाली कैथोलिक पादरियों ने शैक्षणिक क्षेत्र में बढ़ावा देना शुरू पर दिया। हालाँकि प्रति तमिल विद्वानों द्वारा इसे बार-बार अस्वीकार कर दिया गया था, शैक्षणिक संस्थानों द्वारा जिनका नियन्त्रण द्रविड़ पहचान की राजनीति करने वाले कर रहे थे, देइवनयगम के शोध को प्रोत्साहित किया। उनमें इंटरनैशनल इंस्टीटयूट ऑफ़ तमिल स्टडीज और विशेष रूप से खड़ा किया गया मद्रास विश्वविद्यालय का क्रिश्चियन स्टडीज पीठ भी शामिल था। इस प्रकार, शिक्षा क्षेत्र के एक सुनियोजित हिस्से में सन्त टॉमसवादी द्रविड़ ईसाइयत के विचार ने जन्म लिया।

पुरातत्व के साक्ष्यों का गढ़ा जाना

ईसाई चर्च के कुछ उद्यमी लोग तो वैटिकन से भारी आर्थिक मदद के साथ पुरातात्विक साक्ष्यों को गढ़ने तक की सीमा तक गये। अचानक सन्त टॉमस की सलीबें विख्यात हिन्दू तीर्थ स्थलों के पास से पाये जाने की विस्मयकारी 'खोजों' की घोषणाएँ की गयीं। स्वाभाविक रूप से, इस उकसावे ने सामाजिक तनाव को जन्म दिया, जिसने इस अन्तर्राष्ट्रीय ईसाई दुष्प्रचार के लिए ईंधन उपलब्ध कराया कि हिन्दू लोग ईसाइयत पर आक्रमण कर रहे हैं। सन्त टॉमस के मिथक से जुड़ी हुई एक ऐसी ही धोखाधड़ी में मद्रास डायोसीस के आर्चबिशप शामिल थे, और 1975 में मद्रास उच्च न्यायालय में इसका सार्वजनिक खुलासा हुआ।

Fig 8.1 हिन्दू धर्म को 'द्रविड़' ईसाइयत में पचाने के लिए मंच की तैयारी
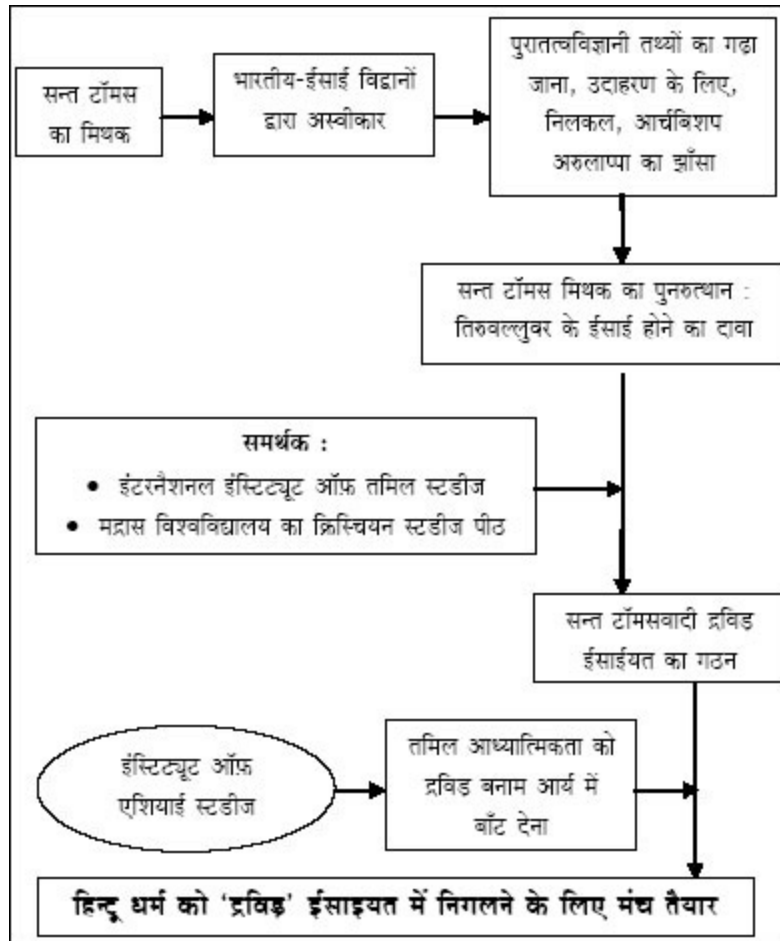
इंस्टीटयूट ऑफ़ एशियन स्टडीज

इसके समानान्तर, तमिलनाडु में ईसाइयों द्वारा नियन्त्रित 'इंस्टीटयूट ऑफ़ एशियन स्टडीज' ने तमिल संस्कृति और आध्यात्मिकता को दो भागों—आर्य और द्रविड़—में बाँटने के लिए एक परियोजना पर काम करना शुरू कर दिया। इस प्रकार तमिल आध्यात्मिकता के 'अच्छे' तत्वों को द्रविड़वादी ईसाइयत के रूप में वर्गीकृत किया गया तथा 'बुरे' भागों को आर्य ब्राह्मणवाद के रूप में निन्दित किया गया। तमिल हिन्दुओं को ईसाइयत में पचा लेने के लिए माहौल तैयार कर लिया गया कुछ इस तरह कि वह उनके द्रविड़ गौरव की तुष्टि करे। चित्र 8.1 में इसे दर्शाया गया है।

ईसाई प्रचार और द्रविड़ आन्दोलन

छठे अध्याय में हमने देखा कि रॉबर्ट कॉल्डवेल जैसे मिशनरी विद्वानों ने इस विचार का नेतृत्व किया कि ब्राह्मण आर्य आक्रमणकारी थे जिन्होंने पवित्रता की आड़ में वर्ण-व्यवस्था का उपयोग द्रविड़ों को अधीनस्थ करने के लिए किया। इस ब्राह्मण विरोधी चिन्तन को एक राजनीतिक सिद्धान्त में रूपान्तरित करने का नेतृत्व अंग्रेज़

प्रशासकों के सहयोग से गैर-ब्राह्मण तमिलों ने किया। मूल तमिल निवासियों द्वारा 1916 में गठित और अंग्रेजों द्वारा प्रोत्साहित जस्टिस पार्टी इस सिद्धान्त का पहला राजनैतिक वाहन बनी। इसने ब्राह्मणों को एक अलग नस्ल का विध्वंसक विदेशी घुसपैठिया बताया।[2] बाद में यह द्रविड़ आन्दोलन में बदल गया, जो जल्द ही खुल्लम-खुल्ला अत्यन्त नस्लवादी दृष्टिकोण अपना कर घोर ब्राह्मण विरोधी हो गया। यह मोहम्मद अली जिन्ना की अलगाववादी माँगों से साथ जुड़ा। सन 1944 तक यह आन्दोलन द्रविड़स्तान नाम से एक स्वतन्त्र राष्ट्र की स्थापना करने की माँग कर रहा था। यह आन्दोलन अंग्रेजी उपनिवेशवाद का सहायक था। यह भारतीय स्वतन्त्रता दिवस 15 अगस्त (1947) को एक 'काला दिवस' घोषित करने की सीमा तक गया।[3] शीघ्र ही यह आन्दोलन आजकल की एक अत्यन्त शक्तिशाली राजनीतिक पार्टी के रूप में उभरकर सामने आया जिसका नाम है द्रविड़ मुन्नेत्र कड़गम, या डीएमके, जिसका अर्थ है द्रविड़ोत्थान संघ।

रॉबर्ट कॉल्डवेल की प्रारम्भिक अवधारणा सामाजिक-आर्थिक नहीं, बल्कि नस्लवादी दृष्टिकोण से द्रविड़ आन्दोलन के ब्राह्मण विरोधी चिन्तन को तैयार करने का आधार बनी। दक्षिण एशिया के एक विद्वान पीटर वैन डर वीर स्पष्ट करते हैं :

> अधिकांश द्रविड़ उग्र सुधारवाद इस आम धारणा को रेखांकित करता है कि गैर-ब्राह्मण द्रविड़ जनों और संस्कृतियों को अधीनस्थ करने का काम द्रविड़वादी दक्षिण पर आर्यों की विजय पर आधारित था—जिसमें से अधिकांश रॉबर्ट कॉल्डवेल द्वारा गढ़ा गया था। कॉल्डवेल, जिन्होंने तिन्नेवेली मिशन में पचास वर्ष तक काम किया... अधिकांश अन्य मिशनरियों की तरह जिन्हें इस तथ्य का औचित्य सिद्ध करना होता था कि वे सबसे निचले वर्ण-समूहों के लोगों के धर्मान्तरण की ही सूचना दे पाते थे, ब्राह्मणों के प्रति विशेष रूप से वैर भाव रखते थे जिन्होंने धर्मान्तरण के उनके प्रयासों को विफल कर दिया था... ब्राह्मणों के प्रति कॉल्डवेल के द्वेष ने ब्राह्मण विरोध के उद्धरण सम्बन्धी ढाँचे और उसे सही ठहराने वाली लफ्फाजी में अपने लिए एक भव्य स्थान बना लिया है जो आज तक बरकरार है।[4]

पीटर वैन डर वीर के अनुसार द्रविड़वादियों ने अपने चिन्तन से कॉल्डवेल की प्रमुख बातों में से एक को हटा दिया है जिसका ईसाई धर्मान्तरण से लेना-देना है। 'ब्राह्मणों के प्रति कॉल्डवेल की नापसन्दगी सीधे ब्राह्मणों द्वारा धर्मान्तरण का विरोध करने से जुड़ी थी और निचले सामाजिक तबके पर ब्राह्मणों के व्यापक प्रभाव से भी जिन्होंने कॉल्डवेल का विरोध किया'।[5] कॉल्डवेल के एजेंडे को इस तरह हटाये जाने से द्रविड़वादी कॉल्डवेल को वैसा बनाने में सक्षम हो गये कि कॉल्डवेल पर्याप्त रूप से असाम्प्रदायिक दिखने लगें। कॉल्डवेल का दूसरा बिन्दु था उनकी रणनीतिगत माँग कि 'जब तक वर्ण-व्यवस्था समाप्त नहीं कर दी जाती तब तक ईसाई धर्मान्तरण की

कोइ आशा नहीं है',[6] जो द्राविड़ आन्दोलन के लिए अनुकूल नहीं था। इसे भी छोड़ दिया गया, क्योंकि द्रमुक आन्दोलन गैर-ब्राह्मण जातीय पहचान पर निर्मित था।

सम्पूर्ण द्रविड़ आन्दोलन के मर्मस्थल में रोपी गयी धर्मान्तरण रणनीति को सामाजिक उद्धार के भाषणों के बीच छिपाकर रखा गया था। आज विभिन्न स्तरों पर कैथोलिक और प्रोटेस्टेंट ईसाई प्रचारक अभियान जोरदार ढंग से ईसाई-द्रविड़ मिली-भगत को पुनर्जीवित करने में लगे हुए हैं।

ईसाई प्रचारकों की छद्म-विद्वता

1960 के दशक के अन्त तक द्रविड़ आन्दोलन बहु-धार्मिक था और विभिन्न धर्मों के साथ एकीकृत था। इसकी पहचान पूरी तरह भाषा और जातीय पहचान के आधार पर परिभाषित थी।

1969 में इसमें सूक्ष्म रूप से परिवर्तन शुरू हो गया जब हिन्दू से ईसाई बने एक युवा एम. देइवनयगम ने एक तमिल पुस्तक प्रकाशित की जिसका नाम था 'वॉज तिरुवल्लुवर ए क्रिश्चियन?' (Was Thiruvalluvar a Christian?) इसका मुख्य शोध था कि सन्त टॉमस ने सर्वाधिक महत्वपूर्ण प्राचीन कालजयी तमिल लेखक तिरुवल्लुवर का धर्मान्तरण कराकर उन्हें ईसाई बनाया था। इससे तिरुकुरल एक ईसाई ग्रन्थ बन जायेगा जिसे ब्राह्मणों और आर्यों का विरोध करने के लिए लिखा गया था।[7] उदाहरण के लिए, तिरुकुरल की उनकी ईसाइयत में रँगी व्याख्या दावा करती है कि वर्षा के वैभव की प्रशंसा में लिखी गयी कविताएँ वास्तव में ईसाइयत की पवित्र आत्मा का गुणगान करती हैं। संसार का त्याग करने वालों के वैभव का गुणगान करने वाली कविताओं की व्याख्या परमपिता परमेश्वर के बलिदान देने वाले पुत्र ईसा मसीह की प्रशंसा करने वाली कविताओं के रूप में की गयी। तिरुकुरल के पहले तीन अध्याय, इस व्याख्या के अनुसार, ईसाई त्रिमूर्ति—परमपिता परमेश्वर, उनके पुत्र ईसा मसीह, और पवित्र आत्मा—के प्रति श्रद्धांजलि हैं। राजनीतिक समर्थन से प्रोत्साहित होकर देइवनयगम ने आगे और भी लेखन किया और तिरुवल्लुवर की सुस्पष्ट हिन्दू अवधारणाओं को भी ईसाई अवधारणाओं के रूप में रखा।[8] उन्होंने जी.यू. पोप की इस अस्वीकृत अटकल को लिया कि तिरुवल्लुवर ईसाइयत से प्रभावित थे, और आगे यह दावा भी जोड़ दिया कि वास्तव में तिरुवल्लुवर सन्त टॉमस से मिले थे।

इस पुस्तक को एक मूर्खतापूर्ण अटकल माने जाने की बजाय उछाल कर एक राजनीतिक हथियार बनाने के पीछे राजनीतिज्ञों का हाथ था। उस समय तमिलनाडु में द्रविड़वाद समर्थक राजनीतिक पार्टी द्रमुक का शासन था जिसके मुख्य मन्त्री ने पुस्तक की एक प्रशंसा-भरी भूमिका लिखी थी, जबकि उसी पार्टी के राज्य मन्त्री ने इसका विमोचन किया। इस पुस्तक को 1972 में एक बार और बढ़ावा तब मिला जब क्रिश्चियन आर्ट्स ऐण्ड कम्युनिकेशन सेंटर के निदेशक ने इसे प्रोत्साहन देने के लिए

एक प्रसिद्ध ईसाई द्रविड़ श्रेष्ठतावादी के नेतृत्व में संगोष्ठी का आयोजन किया।[9] अचानक हुए इस घटनाक्रम ने तमिल हिन्दुओं को सदमे में डाल दिया, जिन्होंने अपने भोलेपन से महसूस किया और मान भी लिया कि वह द्रविड़ सिद्धान्त ही था, बिना सन्देह किये कि यह ईसाइयत को लुके-छिपे अन्दर दाखिल कराने की एक तैयारी थी।

प्रारम्भिक अस्वीकृति और अन्ततः चर्च का अनुमोदन

देइवनयगम की इन पुस्तकों पर शुरू में तमिल ईसाई धर्मशास्त्रियों और साथ-साथ शैक्षणिक क्षेत्र के विद्वानों द्वारा व्यापक आलोचना की गयी। उदाहरण के लिए, एक तमिल ईसाई और तिरुपति के वेंकटेश्वर विश्वविद्यालय में तमिल अध्ययन के विभागाध्यक्ष एस. रास मणिक्कम ने इस दावे को खारिज कर दिया कि तिरुवल्लुवर ईसाई थे। उन्होंने लिखा :

> अब मुझे देइवनयगम के लेखन का विश्लेषण करने दें, जो हाल के दिनों में इस विचार का प्रचार-प्रसार कर रहे हैं कि तिरुवल्लुवर ईसाई थे। वे तिरुकुरल में पाये जाने वाले अनेक गैर-ईसाई विचारों की नयी व्याख्या कर रहे हैं। इससे भी आगे उन्होंने 'इज तिरुवल्लुवर क्रिश्चियन?' 'हू इज द रिनाउनस्ड?' 'सेवेन बर्थ्स', 'हू आर द थ्री?' (*Is Thiruvalluvar Christian?, Who is the Renounced?, Seven Births, Who are the three?*) जैसे नामों से अनेक पुस्तकें प्रकाशित की हैं। उनकी पुस्तकों को गहराई से पढ़ने के बावजूद **हम उन व्याख्याओं को स्वीकार नहीं कर सकते जो वे दे रहे हैं**। वे कहते हैं कि तिरुवल्लुवर ने पुनर्जन्म की परिकल्पना को स्वीकार नहीं किया और यह भी कि जब तिरुवल्लुवर उसकी चर्चा करते हैं जिसने पाँचों इन्द्रियों पर विजय प्राप्त कर ली है तो उनका आशय ईसा मसीह से ही था, और यह कि वर्षा का वैभवगान वास्तव में पवित्र आत्मा की प्रशंसा ही थी, और भद्र व्यक्ति से तिरुवल्लुवर का आशय ईसाइयत से ही था, आदि। न तो ये व्याख्याएँ ही सन्तोषजनक हैं और न ही वे माध्यम जिनका उपयोग इन विचारों को आगे बढ़ाने के लिए वे करते हैं। **तिरुकुरल विशिष्ट ईसाई विचारों में से किसी को भी नहीं दर्शाता**। यहाँ तक कि ईसा मसीह के नाम का भी इसमें उल्लेख नहीं आया है। इसके विपरीत तिरुवल्लुवर स्पष्ट रूप से इन्द्र (25), विष्णु (610, 8, 103), लक्ष्मी (167, 84, 617), काम (1197), स्वर्ग के देवताओं (906, 1073, 18, 346) जैसे अनेक हिन्दू देवताओं का उल्लेख करते हैं।[10]

1975 में एक अन्य तमिल विद्वान कामत्ची श्रीनिवासन ने, जो धर्मान्तरण कर ईसाई बन गये थे और जिन्हें तमिलनाडु सरकार द्वारा तिरुकुरल पर शोध के लिए विशेष रूप से नियुक्त किया गया था, लिखा : 'जब कोई देइवनयगम द्वारा लिखी गयी पुस्तकों को पढ़ता है तो मन में ये सन्देह उत्पन्न होते हैं कि क्या इस व्यक्ति ने सचमुच

तिरुकुरल को समझा है, और इसमें भी सन्देह है कि क्या इस व्यक्ति ने ईसाइयत के उद्‌भव और विकास के इतिहास का अध्ययन समुचित रूप से किया है'।[11]

मद्रास विश्वविद्यालय में 'बीसवीं शताब्दी में तिरुकुरल शोध का विकासक्रम' विषय पर 1979 का एक पी-एच.डी. शोध ग्रन्थ देइवनयगम के बारे में निम्नलिखित निष्कर्ष पर पहुँचा :

> उन्होंने अपने शोध को कुछ इस प्रकार करना निर्धारित किया था कि यह प्रमाणित किया जा सके कि उनकी ईसाइयत की बाइबल सम्बन्धी परिकल्पनाएँ तिरुकुरल का मर्म बनी हैं। इस प्रकार इस शताब्दी के शुरू में शोध के जिस निष्कर्ष पर बल दिया गया वह यह था कि तिरुकुरल शैव सिद्धान्त का एक ग्रन्थ है, उसका अन्त आधुनिक समय में इस दावे के साथ हुआ कि तिरुकुरल की परिकल्पनाएँ बाइबल ने प्रदान कीं।[12]

जो भी हो, कितनी भी विद्वतापूर्ण आलोचनाएँ की गयीं वे देइवनयगम को द्रविड़ पहचान का राजनीतिक उपयोग करने से नहीं रोक पायीं। यह तमिल भाषियों को हिन्दू धर्म से दूर करने, और बाद में उन्हें ईसाइयत की ओर प्रोत्साहित करने का एक तरीका था।[13] न केवल देइवनयगम ने अपने द्रविड़ संस्कृति के ईसाई मूल के सिद्धान्त के विरुद्ध ईसाइयों द्वारा एक दशक तक किये जाने वाले प्रहारों को सफलता से झेला बल्कि 1980 में तिरुकुरल ऐण्ड बाइबल नाम से एक अन्य तमिल पुस्तक भी प्रकाशित की। वे ऊँचे उड़ रहे थे। सन 1983 में 'बाइबल, तिरुकुरल ऐण्ड शैव सिद्धान्त' (Bible, Thirukural and Saiva Siddhanta) विषय पर उनके पी-एच.डी. के शोध ग्रन्थ को मद्रास विश्वविद्यालय द्वारा स्वीकार कर लिया गया था। प्रतिष्ठित 'इंटरनेशनल इंस्टीटयूट ऑफ़ तमिल स्टडीज' ने देइवनयगम के शोध ग्रन्थ को एक पुस्तक के रूप में प्रकाशित किया।

शैव सिद्धान्त के अग्रणी व्याख्याताओं ने उक्त शोध ग्रन्थ की असंख्य त्रुटियों, गलत व्याख्याओं और तोड़-मरोड़ कर की गयी विकृतियों को उजागर किया। एक पारम्परिक शैव धार्मिक स्थल तथा शैव शिक्षा की पीठ धरमपुरम अतीनम ने 1986 में एक बड़ी दो-दिवसीय संगोष्ठी इसी विषय पर आयोजित की। उसके बाद, शैव सिद्धान्त के एक विद्वान अरुणै वादिवेल मुथालियार ने, जो अब नहीं रहे, 300 पृष्ठों का एक खण्डन लिखा जिसे इंटरनेशनल शैव सिद्धान्त एसोसिएशन द्वारा 1991 में प्रकाशित किया गया था।[14] अपने आलोचकों का सामना करने और अपने शोध के समर्थन में साक्ष्य देने के लिए बहस करने के बदले देइवनयगम ने द्रविड़वादियों और निचली जातियों के नेताओं को यह घोषणा-पत्र जारी करने के लिए संगठित किया कि उनके शोध के उत्तर में लिखी गयी 300 पृष्ठों की पुस्तक आर्य ब्राह्मणों द्वारा द्रविड़ नस्ल को गुलाम बनाने का प्रयास है।[15]

देइवनयगम चेन्नई से एक तमिल पत्रिका प्रकाशित करते हैं जिसका नाम है 'ड्रैविडियन रिलिजन' (Dravidian Religion)। उनके अविश्वसनीय दावों को विस्तार

देकर जैनियों के एक विशेष पन्थ और साथ ही महायान बौद्ध धर्म को भी टॉमस की ईसाइयत से उपजने वाले आन्दोलनों में शामिल करने की कोशिश की गयी है।[16]

धोखे : पुरातात्विक और साहित्यिक

जिस समय देइवनयगम अपनी व्याख्याओं को गढ़ने में व्यस्त थे, माइलापुर के आर्चबिशप पुरातात्विक साक्ष्य निर्मित कर रहे थे ताकि सन्त टॉमस के मिथक को प्रमाणित किया जा सके। सन 1975 में उन्होंने हिन्दू से धर्मान्तरण कर ईसाई बने एक व्यक्ति को ऐसे पुरालेख सम्बन्धी साक्ष्य गढ़ने के लिए नियुक्त किया जिनसे सन्त टॉमस के दक्षिण भारत आगमन को प्रमाणित किया जा सके। जब यह भाड़े का बन्दूकची विफल हो गया तब आर्चबिशप ने उस पर न्यायालय में मुकदमा कर दिया। इस मामले में भ्रष्टाचार का आरोप लगाते हुए 'इलस्ट्रेटेड वीकली ऑफ इण्डिया' (*Illustrated Weekly of India*) नामक पत्रिका ने सवाल उठाये।[17]

इस बीच, केरल के जंगलों में एक बहु-विख्यात हिन्दू तीर्थ स्थल में एक कैथोलिक पादरी ने घोषणा की कि उनके गिरजे के परिसर की खुदाई में पत्थर की एक सलीब मिली है जिसे सन 57 में टॉमस द्वारा स्थापित किया गया था। यह जगह नीलक्काल स्थित प्राचीन महादेव मन्दिर के नजदीक है, जो सबरीमाला के देवता की अट्ठारह पवित्र पहाड़ियों में है।[18] शीघ्र ही पाँच फुट लम्बी ग्रैनाइट की सलीब के साथ एक गिरजा बनाया गया और उच्चस्तरीय कैथोलिक पादरियों द्वारा उसका ईसाई संस्कार करके दैनिक प्रार्थनाएँ भी शुरू कर दी गयीं।[19]

अनेक प्रमुख नागरिकों को सलीब की नयी खोज पर सन्देह था, जिसमें डॉ. सी.पी. मैथ्यू (Dr. C.P. Mathew) जैसे प्रमुख ईसाई भी थे, जिन्होंने एक प्रमुख समाचार-पत्र में यह पत्र प्रकाशित किया :

> सलीब की शक्ल का, ग्रैनाइट की एक सलीब जो बताया जाता है कि उस जगह बरामद हुआ है, राज्य में साम्प्रदायिक सद्भाव की जड़ों पर ही चोट करने जा रहा है। अगर उसका कोई महत्व है, तो यह पुरातत्व विभाग ही है जिसे यह फैसला करना है। **कुछ संकीर्ण मानसिकता वाले, स्वार्थी ईसाई कट्टरवादी (पादरी और सामान्य जन दोनों) इसके पीछे हैं। सामान्य रूप से ईसाई समुदायों की कोई रुचि इस प्रकरण में नहीं है।20**

हिन्दुओं ने इसे अपने सर्वाधिक लोकप्रिय तीर्थ-स्थलों में से एक पर हमले जैसा माना, और पूरे केरल में हिन्दू मन्दिरों ने विरोध में काले झण्डे फहराये और पुजारियों ने काली मालाएँ पहनीं। एक हिन्दू स्वामी ने गिरजे को यह प्रमाणित करने की चुनौती दी कि सन्त टॉमस द्वारा ऐसी सलीब स्थापित की गयी थी, और पवित्र हिन्दू मन्दिर के निकट हिन्दू भूमि पर गिरजा बनाने के उनके अधिकार पर प्रश्न उठाये। बिशप की उपसमिति ने घोषणा की कि वह गिरजे को किसी अन्य स्थान पर ले जायेगी। जब

हिन्दुओं ने इस बात पर बल दिया कि कानून के तहत कोई भी प्राचीन पुरातात्विक वस्तु भारत के सभी पुरातात्विक स्थलों और मिली वस्तुओं के नियन्त्रक सरकारी संस्थान, पुरातात्विक सर्वेक्षण विभाग, की स्वतन्त्र जाँच का विषय होती है, तब रहस्यमय सलीब अचानक गायब हो गयी। भारतीय पुरातात्विक सर्वेक्षण विभाग की स्वतन्त्र जाँच से भयभीत धोखाधड़ी करने वालों ने अपने कदम वापस लेना ही उचित समझा।[21]

केरल के एक इतिहासकार डॉ. सी.आई. आइजक ने स्पष्ट किया कि केरल में पहले ईसाई समुदाय के व्यापारिक केन्द्र थे जो समुद्र तट पर ही स्थित थे। उन्होंने लिखा :

> चर्च का श्रेणीबद्ध समूह दावा करता है कि सबरीमाला तीर्थाटन केन्द्र के निकट अन्दर की तरफ़ चयाल नामक एक और ईसाई बस्ती थी; लेकिन वह ईसाइयों की बस्ती नहीं थी, क्योंकि वहाँ मानव नहीं रहते थे और आज भी रहने लायक नहीं है। विद्वानों ने अब तक सन्देह से परे जाकर यह चिह्नित नहीं किया है कि चयाल नामक स्थान सबरी की पहाड़ियों के निकट है या नहीं। इसलिए, चर्च के इस तर्क का कोई आधार नहीं है।[22]

सन्त टॉमस के इतिहास को गढ़ना

देइवनयगम और उनके सहयोगियों के प्रमुख दावों को निम्न प्रकार सूचीबद्ध किया जा सकता है :

- सन्त टॉमस सन 52 के आस-पास भारत आये थे, जिसके परिणाम स्वरूप उत्तर भारत में ईसाइयत के प्रचार के लिए एक औजार के तौर पर संस्कृत का उदय हुआ, हालाँकि बाद में दुष्ट ब्राह्मणों द्वारा इस भाषा को हथिया लिया गया।
- वेदों की रचना ईसा मसीह के आने के काफी बाद, दूसरी शताब्दी में हुई।
- हिन्दू धर्म में शैव मत, वैष्णव मत और सभी वास्तुकला, मूर्तिशिल्प और भक्ति से जुड़ा विकासक्रम टॉमस की ईसाइयत के प्रभाव में खोजे जा सकते हैं।
- ब्राह्मण, संस्कृत और वेदान्त बुरी शक्तियाँ हैं जिन्हें तमिल समाज के पुनर्शुद्धिकरण के लिए समाप्त कर दिये जाने की जरूरत है।

चर्च ने अब देइवनयगम के साथ एक निकट रणनीतिगत सम्बन्ध स्थापित किया है ताकि सन्त टॉमस के भारत आगमन के लिए साक्ष्य प्रस्तुत किये जा सकें, और हिन्दू असहिष्णुता के विपरीत ईसाई अच्छाइयों को उभार कर दिखाया जा सके। इस गठबन्धन के परिणामस्वरूप 2006 में रोमन कैथोलिक चर्च द्वारा सन्त टॉमस संग्रहालय की स्थापना की गयी।[23] इसमें पत्थर की अनेक शिल्पाकृतियाँ और शिलालेख रखे गये हैं जिनके बारे में दावा किया गया है कि वे सन्त टॉमस काल के हैं

और असली हैं। ऐसे ही एक शिल्प में दो आकृतियाँ दिखायी गयी हैं, जिनमें से एक के नीचे यह व्याख्या है :

> दो आकृतियों वाला यह आधारस्तम्भ सन्त टॉमस के मकबरे के निकट पाया गया था। एक आकृति के बारे में कहा जाता है कि वह अपने बायें हाथ में पुस्तक थामे सन्त टॉमस हैं, जिनका दाहिना हाथ 'आशीर्वाद' या 'शिक्षा' देने की मुद्रा में है।

दूसरी आकृति के नीचे इस प्रकार लिखा है :

> इस आकृति की पहचान कन्डप्पा राजा (गोन्डोफेरिस) के रूप में की गयी है जो माइलापुर के राजा माने गये हैं जिनका सन्त टॉमस ने धर्मान्तरण किया था।

जो भी हो, गोन्डोफेरिस माइलापुर के राजा नहीं थे, बल्कि पहले इण्डो-पार्थियन राजा थे जो एक हज़ार मील दूर स्थित काबुल घाटी पर शासन किया करते थे। संग्रहालय की वेबसाइट में इस शिल्पकृति को सातवीं शताब्दी का बताया गया है, लेकिन गोन्डोफेरिस ने ईसा पूर्व पहली शताब्दी में शासन किया था। यह वेबसाइट इस मूर्तिशिल्प के बारे में एक और आश्चर्यजनक दावा करती है :

> लगता है बायाँ हाथ पुस्तक या कोई उपकरण पकड़े हुए है। अगर यह पुस्तक है तो यह आकृति ईसा मसीह के एक अनुयायी को भी प्रतिबिम्बित करती है! सम्भवत: सन्त बार्थोलोम्यू जिनके बारे में कहा जाता है कि वे ही सन्त मैथ्यू का गॉस्पेल भारत लाये थे... भारत के दो ईसानुयायी! हालाँकि बार्थोलोम्यू का ईसाई दूत बनकर भारत आना उतना प्रमाणित नहीं किया गया है जितना सन्त टॉमस का। बल्कि, महत्वपूर्ण यह है कि नयी दिव्य पदवी (वैटिकन II के बाद) ने 24 अगस्त को यह टिप्पणी दी थी : '... ईस के आरोहण के बाद, पारम्परिक कथा यह है कि, उन्होंने धर्म की शिक्षा भारत में दी थी और वहाँ शहीद हो गये थे'।[24]

जो भी हो, चूँकि नया सन्देश (न्यू टेस्टामेंट) चौथी शताब्दी में संकलित किया गया था और पुस्तक रूप में बाइबल 1455 में प्रिंटिंग प्रेस के अविष्कार के बाद ही लोकप्रिय हुआ था, सन्त टॉमस जब भारत आये तो वे जेबी आकार का बाइबल लेकर नहीं चल सके होंगे। यहाँ तक कि सबसे पुराना बाइबल पेपिरस (लेखन में उपयोगी जलज बनस्पति) सन्त टॉमस के सौ वर्ष बाद का है। चाहे जो हो, सन्त टॉमस के साथ सन्त बार्थोलोम्यू को दक्षिण भारत के ईसाई सन्त समूह में मिलाने से भारत में एक और द्रविड़ आन्दोलन की तैयारी हो गयी है, जिसमें बार्थोलोम्यू हिन्दू धर्म में और अधिक परिवर्तन लाते हैं।

सन्त टॉमस के माउंट चर्च की वेदी पर ईसा मसीह और मरियम का एक चित्र है जो स्पष्ट रूप से इटली के पुनर्जागरण काल का है। फिर भी चर्च घोषणा करती है कि इसे स्वयं सन्त टॉमस अपने साथ लेकर आये थे और इसे किसी और ने नहीं, बल्कि सन्त ल्यूक ने ही बनाया था। हाल में ही आये एक पश्चिमी आगन्तुक मार्टिन गुडमैन ने,

टॉमस मिथक के प्रति सहानुभूति रखते हुए भी इस मनगढ़न्त बात को अस्वीकार करते हुए इसके बारे में लिखा :

> वेदी के नीचे मैडोना और शिशु का एक चित्र है जिसे सन्त टॉमस द्वारा भारत लाया गया और जिसे सन्त ल्यूक द्वारा चित्रित बताया गया है। समय से पहले ही इटली के पुनर्जागरण काल में प्राप्त और विकसित की गयी शैली में इसका होना, वैसा ही चमत्कार है जैसा रक्त बहाती हुई सलीब।[25]

पहाड़ी पर पत्थर की एक सलीब है जिसके बारे कहा जाता है कि उसे स्वयं सन्त टॉमस ने तराशकर बनाया था।[26] वेदी पर स्थापित किये गये एक बोर्ड पर लिखा है :

> ईसा मसीह के शिष्य सन्त टॉमस को इसी पवित्र स्थल पर भाले से घोंपकर मार डाला गया था। इस बात के लिखित साक्ष्य हैं कि वेदी पर पत्थर की जो सलीब है उसे स्वयं सन्त टॉमस द्वारा नक्काशी करके बनाया गया था।

वेदी के अन्दर रखा एक चित्र काली चमड़ी वाले एक हिन्दू को प्रदर्शित करता है जिसके बाल ब्राह्मणों के पारम्परिक बालों की तरह हैं और वह ईसा मसीह के शिष्य को पीछे से छेद रहा है, जबकि सन्त टॉमस सलीब के आगे प्रार्थना में तल्लीन हैं। आधिकारिक कैथोलिक प्रकाशनों ने सन्त टॉमस की मृत्यु को एक ब्राह्मण द्वारा की गयी हत्या के रूप में वर्णित किया है :

> 3 जुलाई, 72 को ईसा मसीह के ये शिष्य पहाड़ी की ओर जाते समय कुछ चेन्नाम्ब्रनार ब्राह्मणों से मिले जो बलि चढ़ाने के लिए मन्दिर में जा रहे थे। उन्होंने चाहा कि सन्त टॉमस भी उनकी पूजा में शामिल हों; उन्होंने नि:सन्देह उनकी बात मानने से इनकार कर दिया और इसके विपरीत पूजा स्थल को सलीब के चिह्न से नष्ट कर दिया। ब्राह्मणों ने गुस्से में सन्त टॉमस को भाले से गोद डाला।[27]

लेकिन शताब्दियों के प्रमाण इन दावों को अमान्य कर देते हैं। तेरहवीं शताब्दी में मार्को पोलो ने भारत में टॉमस की कथा का वर्णन किया है, लेकिन उन्होंने किसी भी ब्राह्मण हत्यारे या बलिदान हो जाने का कोई उल्लेख नहीं किया। सन्त टॉमस से जुड़ी कथाओं में उनकी मृत्यु को हमेशा एक आदिवासी के हाथों दुर्घटना से मारे जाने के रूप में वर्णित किया गया जो उस समय एक मोर को तीर से मारने की कोशिश कर रहा था। मार्को पोलो की कथा के अनुसार :

> टॉमस जंगल में अपनी कुटिया के बाहर थे और अपने स्वामी ईश्वर की प्रार्थना कर रहे थे। उनके चारों ओर अनेक मोर थे... जब सन्त टॉमस प्रार्थना कर ही रहे थे तभी गवि नस्ल और वंश के किसी मूर्तिपूजक ने अपने धनुष से बाण छोड़ा ताकि वह सन्त के चारों ओर इकट्ठा मोरों में से एक को मारे।[28]

डब्ल्यू.डब्ल्यू. हण्टर (W.W. Hunter) विस्तार से बताते हैं कि किस प्रकार यह सामान्य कथा, जो ईसाई जगत में प्रचलित थी, समय बीतने के साथ-साथ धोखाधड़ी से भरी मनगढ़न्त बातों से भर गयी :

चर्च के आरम्भिक धर्मपिताओं का साहित्य स्पष्ट रूप से घोषित करता है कि सन्त टॉमस कैलामिना में शहीद हुए थे... चर्च की परम्परा भी समान रूप से स्पष्ट है कि सन 394 में ईसा मसीह के इस शिष्य के अवशेष मेसोपोटैमिया के एडेसा नामक स्थान में स्थानान्तरित किये गये थे। इसलिए भारत के दक्षिण-पश्चिमी समुद्र तट पर सन्त टॉमस की मृत्यु का स्थान निर्धारित करने का प्रयास असुविधाजनक स्थितियों में प्रारम्भ किया गया। जो भी हो, एक अनुकूल स्थान मद्रास के निकट पहाड़ी पर पाया गया है, जो प्राचीन भारत के अनेक पहाड़ी तीर्थ स्थलों में से एक है, जो विभिन्न धर्मों—बौद्ध, इस्लाम और हिन्दू—के लोगों का संयुक्त तीर्थस्थल बन गया है। ... भारतीयों के धर्मान्तरण के अपने प्रारम्भिक प्रयासों में उत्साही पुर्तगालियों को स्थानीय सन्त की एक टिकाऊ और प्रभावी जीवनी की भारी कमी महसूस हुई। [...] 1522 में गोवा से एक मिशन कोरोमण्डल समुद्र तट पर भेजा गया जिसने स्वयं को उस सुस्थापित कथा से अनभिज्ञ या बेहतर साबित किया जिसमें सन्त टॉमस के अवशेषों को सन् 394 में एडेसा स्थान्तरित करने का उल्लेख था और उनके अवशेष मद्रास के निकट एक समाधि में खोज निकाले जिसके साथ उस राजा के अवशेष भी दफ्न थे जिसे सन्त टॉमस ने धर्मान्तरित किया था। उन अवशेषों को बड़े ही उत्सव के साथ गोवा लाया गया, जो उस समय भारत की पुर्तगाली राजधानी थी, और वहाँ वे सन्त टॉमस चर्च में आज भी रखे हुए हैं। सन 1547 में सन्त टॉमस माउंट पर पह्लवी सलीब के पाये जाने ने ...इस कथा को एक ताजा रंग दे दिया। जहाँ तक इसके शिलालेख का सवाल है, यह फारस मूल को ही इंगित करता है, और सम्भवत: मैनिकेइन मूल की ओर। लेकिन जिस समय इसे खोद निकाला गया उस समय मद्रास में कोई नहीं था जो पह्लवी अक्षरों को पढ़ सके। एक ब्राह्मण धोखेबाज, यह जानकर कि शहीदों की स्थानीय माँग थी, सुविधानुसार एक मनगढ़न्त व्याख्या के साथ सामने आया। दुर्घटना में एक बाण लगने से हुई टॉमस की मृत्यु की सामान्य कथा इससे पहले एक क्रूर बलिदानी स्वरूप ग्रहण कर चुकी थी, जिसमें पत्थर मारकर और भाला घोंपकर हत्या कर देने की बात कही गयी थी, और मद्रास के नजदीक बड़ी और छोटी पहाड़ी पर इस दुखान्त कथा का प्रत्येक स्थल निर्धारित कर लिया गया था।[29]

भारतीय चर्च का इतिहास चामत्कारिक रूप से पवित्र अवशेषों को रणनीतिगत तरीके से खोद निकालने के मामले में उनकी कुशाग्रता और समय को भाँपने की काबिलियत के उदाहरणों से भरा पड़ा है, विशेषकर उन पवित्र हिन्दू स्थलों के पास जिन्हें वे अपने में मिलाना या हथियाना चाहते हैं। निश्चित रूप से, मिशनरी विद्वता के लिए उन 'कपटी हिन्दू मूर्तिपूजकों' पर आरोप लगाना कोई नयी बात नहीं है जो किसी भी धोखाधड़ी वाली मनगढ़न्त बात को उजागर कर देते हैं, जैसा कि अज्ञात ब्राह्मण

धोखेबाज के मामले में हुआ जिसे सलीब पर के शिलालेख के धोखाधड़ी-भरे अनुवाद के लिए दोषी पाया गया।[30]

सान थोम गिरजे से जुड़े पुरातात्विक साक्ष्य

पुर्तगालियों द्वारा खोज निकाले गये मकबरे की पहचान सन्त टॉमस के मकबरे के रूप में किये जाने को पूरी तरह से अस्वीकार कर दिया गया, यहाँ तक कि उन विद्वानों द्वारा भी जो टॉमस की कथा के प्रति सहानुभूति रखते हैं। उदाहरण के लिए, ईसाई पुरातत्ववेत्ता फादर एच. हेरास लिखते हैं : 'कुछ प्रारम्भिक पुर्तगाली लेखकों ने मूल कथा के विवरणों को छिपाकर रखा है, और ये विवरण इस खोज के असत्य को उजागर करने के लिए पर्याप्त हैं'।[31] एक अन्य ईसाई विद्वान, टी.के. जोजेफ, (T.K. Joseph) टॉमस की कब्र वाले स्थान के बारे में कहते हैं : 'मैं पूरी तरह आश्वस्त हूँ कि यह कभी भी माइलापुर में नहीं रही है। मैंने यह बात अनेक बार कही है'।[32]

यह दिखाने के लिए भी साक्ष्य हैं कि वर्तमान सान थोम गिरजा एक हिन्दू मन्दिर के अवशेषों के ऊपर निर्मित किया गया है, जो मूल रूप से कपालीश्वर मन्दिर था। उदाहरण के लिए, हाल के इन विवादों के दोबारा उभरने के वर्षों पहले किया गया एक पी-एच.डी. शोध ग्रन्थ कहता है :

> सान थोम में पुरात्तवविदों द्वारा खोज निकाली गयी सामग्री से यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि मन्दिर कहीं और अस्तित्व में रहा होगा और सर्वाधिक सम्भावना इस बात की है कि यह सान थोम समुद्रतट पर रहा होगा... क्योंकि पुराने मन्दिर के अवशेष सान थोम समुद्रतट पर ही पाये गये थे। पुरातत्वविदों ने सन 1923 में जब सान थोम गिरजे के परिसर में खुदाई की तो उनको शिलालेख और मूर्तियाँ मिलीं। शिलालेखों ने एक मन्दिर होने का संकेत दिया [...] सन्त अरुणागिरि नाथर भी इस बात का उल्लेख करते हैं कि समुद्रतट के बगल में कपालीश्वर मन्दिर था। ... इस प्रकार, निष्कर्ष में कहा जा सकता है कि पुराने कपालीश्वर मन्दिर को पुर्तगालियों द्वारा पन्द्रहवीं सदी में नष्ट कर दिया गया था, और नट्टू नयिनीअप्पा मुथालियार और उनके पुत्र द्वारा इसे इसके वर्तमान स्थान पर सोलहवीं शताब्दी में निर्मित किया गया।[33]

भारत सरकार द्वारा किये गये पुरातात्विक सर्वेक्षणों में पुष्टि होती है कि पुर्तगालियों ने एक हिन्दू मन्दिर के अवशेषों पर इस गिरजे का निर्माण किया। उन्होंने राजेन्द्र चोल का एक शिलालेख खोज निकाला है। साम्राज्यवादी चोल वैदिक धर्मानुयायी थे। मद्रास में सान थोम गिरजे से प्राप्त राजेन्द्र चोल के ग्यारहवीं शताब्दी के शिलालेख पर भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण की 1967 की एक रपट कहती है कि शिलालेख में चोल राजा पर लक्ष्मी का वरदहस्त होने का उल्लेख है, 'जो उन्हें विजय और सम्पन्नता प्रदान करती हैं'।[34]

चाहे जो हो, इन स्वतन्त्र रपटों को कम प्रमुखता दी गयी और दबा दिया गया। उदाहरण के लिए, सम्पूर्ण तमिलनाडु में पढ़ायी जाने वाली छठी कक्षा की समाज विज्ञान की पाठ्य पुस्तक में एक तथ्य की तरह इसे खुले-आम पढ़ाया जा रहा है कि 'सन्त टॉमस सेंट टॉमस पहाड़ी पर रुके थे और उन्होंने ईसाइयत की शिक्षा दी थी। धार्मिक झगड़े के कारण उनकी हत्या कर दी गयी थी। उनका शरीर सान थोम गिरजे में दफनाया गया था'।[35] इनमें से किसी की भी अनुभवसिद्ध साक्ष्यों से पुष्टि नहीं हुई है। (परिशिष्ट घ में देखें इसी प्रकार का एक शरारतपूर्ण झाँसा जो मूल निवासियों को दिया गया था उन मिशनरियों द्वारा जिनकी रुचि उन्हें जीतने और उनकी भूमि हड़पने में थी।)

फिल्मों में सन्त टॉमस

हाल में ही इस मिथक का प्रचार करने के लिए कैथोलिक चर्च द्वारा सन्त टॉमस पर विशाल बजट की एक फिल्म की योजना बनायी गयी है। एक समाचार-पत्र की सूचना है :

> 'बेन हुर' (Ben Hur) और 'द टेन कमाण्डमेंट्स' (The Ten Commandments) जैसी हॉलीवुड की महान फिल्मों को ध्यान में रखते हुए, और इसके लिए समुचित बजट के साथ मद्रास-माइलापुर आर्चडायोसिस तीस करोड़ की लागत से सन्त टॉमस के जीवन और कार्य पर एक फिल्म बनायेगा, ईसा मसीह के बारह शिष्यों में से एक पर जिनके बारे में विश्वास किया जाता है कि भारत में उन्होंने ईसा मसीह के सन्देश का प्रचार किया था। सत्तर एमएम के पर्दे पर बनाई जाने वाली यह फिल्म ढाई घण्टे की होगी जिसमें हॉलीवुड तथा भारतीय फिल्म उद्योग के बड़े व्यक्तित्वों की भी भागीदारी होगी। [...] केरल और तमिलनाडु के लिए इस फिल्म का विशेष महत्व है जहाँ सन्त टॉमस ने भारत-प्रवास के दौरान अपने जीवन का एक बड़ा भाग बिताया था। विश्वास किया जाता है कि सन 72 में माइलापुर में शहीद होने से पहले उन्होंने केरल में सात गिरजों की स्थापना की थी। जनता पर तिरुवन्नमलाई के अरुणाचलम और अन्नाई वेलंगन्नी जैसी फिल्मों का आध्यात्मिक सान्त्वना देने वाला प्रभाव पड़ा था, आर्चबिशप ने बताया। उन्होंने अनुभव किया कि सन्त टॉमस के जीवन पर एक फिल्म का वैसा ही प्रभाव पड़ेगा, क्योंकि यह सभी लोगों के लिए समानता और सम्मान की विषय-वस्तु के आस-पास घूमती है।[36]

इस अफवाह ने, कि फिल्म में तिरुवल्लुवर को सन्त टॉमस के एक शिष्य के रूप में दिखाया जायेगा, एक विरोध को जन्म दिया जिसमें कहा गया कि वह झूठा दावा था। फिल्म के पटकथा लेखक पॉलराज लावरधू सामी ने पटकथा का बचाव यह कहते हुए किया कि मद्रास विश्वविद्यालय द्वारा स्वीकृत देइवनयगम के पी-एच.डी. शोध प्रबन्ध ने तिरुवल्लुवर के सन्त टॉमस से मिलने का साक्ष्य दिया था।[37] मूर्खतापूर्ण

अटकलों की यात्रा इसी तरह चलती रही है, शैक्षणिक वैधता प्रदान किये जाने से होते हुए मुख्यधारा के चिन्तन और लोकप्रिय संस्कृति तक।

हिन्दू धर्म आर्य-अंग्रेजी षडयन्त्र घोषित

सन्त टॉमस की इन मनगढ़न्त कथाओं को विजयी आर्यों और 'दुष्ट' ब्राह्मणों के व्यंग्य चित्रणों के साथ मिला दिया गया है। सन 2000 में देइवनयगम ने 'इण्डिया इन थर्ड मिलेनियम' (*India in Third Millennium*) नाम से एक पुस्तक प्रकाशित की, जो हिन्दू आध्यात्मिकता को हथियाने और इसे ईसाइयत के ही एक उप-धर्म में बदल देने का एक बहुत बड़ा प्रयास है। बीच-बीच में आर्यों को मूल खलनायक के रूप में चित्रित किया गया है :

> आर्यों का अपना कोई धर्म नहीं है। वास्तव में, आर्य बिना धर्म के लोग हैं। एकेश्वरवाद, स्वर्ग, नरक, पुनर्जन्म आदि परिकल्पनाओं के बारे में उनको कोई ज्ञान नहीं है। वे पशुओं और भेड़ों का माँस आग में पकाते थे और उसे सोम और सुरा जैसी शराबों के साथ खाते थे। वे प्रकृति-पूजा, नृत्य और लोकगीत गाने का आनन्द उठाने वाले और प्रसन्न रहने वाले लोग थे। समय बीतने के साथ इन्हीं लोक गीतों को 'वैदिक स्तोत्र' के रूप में जाना गया। ... आर्य एक समूहवाचक नाम है जो फारसी, ग्रीक, रोमन, शक, कुशान और हूण के लिए प्रयुक्त किया गया, जिनमें से सभी बिना किसी धर्म के भारत आये।[38]

वे अपने षडयन्त्र के सिद्धान्त को विस्तार से बताते हुए कहते हैं कि विदेशी ब्राह्मणों और ब्रिटिश उपनिवेशवादियों के एक 'दुष्ट' संयुक्त षडयन्त्र के रूप में हिन्दू धर्म का प्रारम्भ हुआ :

> अंग्रेज़ों का रंग गोरा है। उन्होंने इस बात पर गौर किया कि हिन्दू विधि (मनु धर्म) में जो गोरे नहीं हैं उन द्रविड़ भारतीयों (अवर्णों) को अश्रेष्ठ के रूप में दमित किया जाता है और गोरे रंग के विदेशियों (सवर्णों) को श्रेष्ठ माना जाता है। ... एक संयुक्त उपक्रम के रूप में हिन्दू धर्म का जन्म हुआ। **आर्य ब्राह्मण और अंग्रेज़, दोनों ही विदेशी हैं; इन दोनों ने मिलकर भारत के लोगों के विरुद्ध षडयन्त्र किया।** उन्होंने संयुक्त रूप से इस परिकल्पना का सृजन करके उसे फैलाना शुरू किया कि अंग्रेज़ी का शब्द 'हिन्दूइज्म' (Hinduism) (जिसका मूल अर्थ था हिन्दू विधि) का अर्थ 'हिन्दू धर्म' अर्थात्, भारतीय धर्म भी हो सकता है।[39]

वे इससे आगे दावा करते हैं कि शंकर, रामानुज और माधव आर्य ब्राह्मण थे जिन्होंने वेदव्यास की प्रारम्भिक रचनाओं को विकृत किया जिनके बारे में देइवनयगम दावा करते हैं कि वे द्रविड़ थे।[40] दूसरे शब्दों में हिन्दू धर्म के उन पक्षों को जिन्हें ईसाइयत के साथ स्थान दिया जा सकता है, उन्हें ईसाई प्रभाव के कारण हुआ बताया गया, जबकि उनको, जो इसके विपरीत थे, विदेशी ब्राह्मणों द्वारा की गयी विकृतियों के रूप में नीचा दिखाया गया। जहाँ एक ओर देइवनयगम को मूलत: मूर्ख के रूप में

देखा जाता था, वहीं उनकी दृढ़ता और अनवरत संलग्नता ने धीरे-धीरे उन्हें मुख्यधारा की ईसाई संस्थाओं और गिरजों के बीच महत्वपूर्ण बना दिया। सन 2004 आते-आते ईसाई प्रचारक मिशनरी उनके औपचारिक पाठ्यक्रमों में भाग लेने लगे थे जिन्हें चलते हुए 2010 तक छह महीने हो गये थे।

इंस्टीटयूट ऑफ़ एशियन स्टडीज

एशियाई अध्ययन संस्था (इंस्टीटयूट ऑफ़ एशियन स्टडीज) की स्थापना एक जापानी बौद्ध विद्वान और जॉन सैमुएल नाम के एक भारतीय ईसाई द्वारा संयुक्त रूप से की गयी थी। इसने अनेक पुस्तकें प्रकाशित कीं और 'जर्नल ऑफ द इंस्टीटयूट ऑफ एशियन स्टडीज' (*Journal of the Institute of Asian Studies*) नाम की एक पत्रिका का प्रकाशन भी शुरू किया। जहाँ इस संस्थान की शुरुआत भलमनसाहत-भरी थी, वहीं सैमुएल ने जापानी भागीदार से इसे अपने हाथ में ले लिया और इसके शोध और शिक्षा के कार्यक्रम को तमिल पहचान तथा संस्कृति को हिन्दू धर्म से अलग करने वाले कार्यक्रम की ओर मोड़ दिया। स्थानीय भावनाओं को प्रभावित करने के लिए इसने सभी अच्छी बातों के स्रोत के रूप में तमिल संस्कृति की प्रशंसा करना प्रारम्भ कर दिया, जबकि सर्व-भारतीय पहचान और सांस्कृतिक इतिहास को कम महत्व दिया। हिन्दू परम्पराओं को अलग, विदेशी को अलग खण्ड में रखा गया जबकि ईसाइयत और बौद्ध धर्म को तर्कसंगत बताया। इंस्टीटयूट की वेबसाइट दिखाती है कि यह उन धर्मों को पढ़ाता है जिन्हें बौद्ध, ईसाई, कौमारम, पन्निरुतिरुमराई और लोक अध्ययन के रूप में वर्गीकृत किया गया है।[41] उसमें हिन्दू धर्म जैसी कोई चीज है ही नहीं। इंस्टीटयूट ने कैलिफोर्निया, बर्कले जैसे विश्वविद्यालय से शोध सम्बन्ध स्थापित कर महत्व प्राप्त किया है, और उसके माध्यम से कोलोन विश्वविद्यालय के 'इंस्टीटयूट फ़ॉर इन्डोलॉजी एण्ड तमिल स्टडीज' और अन्य विश्वव्यापी परियोजनाओं के साथ सम्बन्ध भी स्थापित किया है।[42]

शिव और नटराज 'द्रविड़' घोषित

इंस्टीटयूट की विद्वता के एक नमूने का उदाहरण 1985 में छापी गयी एक पुस्तक में मिलता है जिसका नाम 'आनन्द ताण्डव ऑफ शिव सदानृत्तमूर्ति ' (Ananda-tandava of Siva Sadanrttamurti) है। इसके लेखक, कामिल वी. ज्वेलेबिल (Kamil V. Zvelebil) नाम के एक प्रमुख चेक (Czech) द्रविड़वादी ने बल देकर घोषित किया है कि एक दिव्य नर्तक के रूप में शिव की परिकल्पना, विशेष रूप से आनन्द ताण्डव करते हुए, 'नि:सन्देह एक इण्डो-द्रविड़ अविष्कार है'।[43] वे बल देकर कहते हैं कि 'हमें भारत के उत्तरी और दक्षिणी भाग के बीच अन्तर करना ही चाहिए'।[44] उसके बाद वे उत्तर भारत में शिव के सभी साक्ष्यों को धृष्टता के साथ महत्वहीन बताते हुए रद्द कर देते हैं :

> भारत के उत्तरी भाग में नृत्य करते हुए देवता के रूप में शिव के कुछ प्रतिरूपण चालुक्य, वाकाटक और पल्लव काल के पहले से अस्तित्व में हैं, उन्हें शिव नटराज विषय-वस्तु के प्रारम्भिक पूर्वसूचकों से अधिक कुछ भी नहीं माना जा सकता।[45]

ज्वेलेबिल उत्तर भारत में पाँचवीं शताब्दी के गुप्त काल के नृत्य करते हुए शिव के पुरातात्विक साक्ष्य को स्वीकार करते हैं, लेकिन शीघ्र ही वे अस्वीकार करते हुए कहते हैं कि 'गुप्त मूर्तिशिल्प में नटराज की विषय-वस्तु अधिक महत्वपूर्ण नहीं थी', और 'वास्तव में नृत्य करते हुए देव के रूप में कुछ प्रतिरूप गुप्त काल के अन्तिम दिनों में दक्षिण भारत में उद्भूत और विकसित नटराज की परिकल्पना के प्रभाव और उसकी प्रेरणा से होने लगे थे'।[46] यह संक्षिप्त विश्लेषण उन्हें भरोसे के साथ यह निष्कर्ष निकालने की अनुमति देता है कि नटराज दक्षिण भारत के द्रविड़ थे। वे उत्तर के साथ शिव के जैव सम्बन्ध के विशाल साक्ष्यों की उपेक्षा करते हैं जो हजारों वर्षों में विकसित होकर भारत की सामूहिक आध्यात्मिक चेतना में बदल गये हैं, जैसे कि :

- सिन्धु घाटी सभ्यता में पाये गये शिव से सम्बद्ध पुरावशेष
- शिव का निवास स्थल कैलाश पर्वत तिब्बत में है
- हिमालय पर्वत श्रृंखला को उनके पवित्र भौगोलिक क्षेत्र के रूप में माना जाता है
- शिव की गंगा उत्तर में बहती है
- अमरनाथ की प्रसिद्ध गुफा उसमें स्थित शिवलिंग के कारण तीर्थयात्रियों को आकर्षित करती है
- शैव स्थलों के पुरातात्विक अवशेष मध्य एशिया में मिले हैं

दक्षिण भारत की संस्कृति को शेष भारत से और अलग करने के अपने प्रयासों में ज्वेलेबिल शिव के नृत्य का उल्लेख करने वाले संगमोत्तर काल के साहित्य का उद्धरण देते हैं और निष्कर्ष निकालते हैं :

> यह स्पष्ट है कि तमिल दक्षिण में नृत्य करते हुए देव की एक महत्वपूर्ण स्वतन्त्र परम्परा थी जो काँची के पल्लव शासन काल में पूरी तरह पुष्पित और विकसित होनी शुरू हुई।[47]

उन विद्वानों ने भी जो आर्य/द्रविड़ विभाजक दृष्टान्त के भीतर कार्य करते हैं, इंगित किया है कि ऋग वेद में भी रुद्र (शिव) के नृत्य और संगीत का उल्लेख है।[48] ईसा पूर्व दूसरी शताब्दी के उत्तर भारतीय शुंग वंश शासन काल के वाद्य उपकरण के साथ एक शिव प्रतिमा का उदाहरण शिवराममूर्ति द्वारा इंगित किया गया है जो नटराज मूर्तिकला के विशेषज्ञ माने जाते हैं।[49] यद्यपि ज्वेलेबिल सी. शिवराममूर्ति के अन्य कार्यों का व्यापक उल्लेख करते हैं, इस तथ्य को नजरन्दाज कर देते हैं।

दक्षिण भारत ने भारतीय आध्यात्मिकता में व्यापक योगदान किया है, विशेषकर नटराज के रूप में शिव के दिव्य प्रतिरूप को विकसित और परिष्कृत बनाने में। जो भी हो, कुछ द्रविड़वादी यह स्थापित करना चाहते हैं कि दक्षिण भारतीय परम्पराएँ बिल्कुल स्वतन्त्र परम्पराएँ हैं जिन्हें केवल कृत्रिम रूप से ही सर्व-भारतीय या वैदिक परम्पराओं से जोड़ा गया है। भारतीय संस्कृति से दक्षिण भारत की आध्यात्मिक परम्पराओं को सन्दर्भ-च्युत बनाने का यह प्रयास, इन परम्पराओं को ईसाई परम्पराओं के रूप में पुनर्सन्दर्भीकृत करने के लिए एक अन्तरिम कदम बन जाता है।

स्कन्द-मुरुगा का समायोजन

1991 में 'इंस्टीटयूट ऑफ़ एशियन स्टडीज' ने ज्वेलेबिल द्वारा लिखी एक अन्य पुस्तक का प्रकाशन किया जिसका नाम 'टैमिल ट्रेडिशन्स ऑन सुब्रमण्य-मुरुगन' (*Tamil Traditions on Subrahmanya-Murugan*) था। यह तथ्य आर्य/द्रविड़ विभाजकता को और आगे बढ़ावा देने के कार्यक्रम को प्रस्तुत करता है। यह पुस्तक बारम्बार ब्राह्मणों की तुलना आर्यों से करती है, और हिन्दू धर्म को बौद्ध और जैन धर्मों को समाप्त करने के लिए एक तन्त्र मात्र बताती है। यह व्याख्या करती है कि चतुर ब्राह्मणों की 'रणनीति' हमेशा से 'उनके विरोधियों के सर्वाधिक सम्मानजनक पक्षों को अंगीकृत कर लेने की रही है'। इस प्रकार हिन्दू धर्म, 'एक विशेष वातावरण में एक विशेष प्रकार के मानस की उपज है, एक विशेष प्रकार का धर्म जिसका मुकाबला उसके ही तरीकों से किया जाना चाहिए'।[50]

स्वयं को सन्तुलित विद्वान के रूप में स्थापित करने के लिए ज्वेलेबिल पहले 'भारतीय सांस्कृतिक विकास के प्रति भोले-भाले दृष्टिकोण की त्रुटियों' के प्रति सचेत करते हैं 'जो दृष्टिकोण इस सब को मूल-निवासी-विषयक पक्षों (मुख्यत: द्रविड़) और परिष्कृत इण्डो-आर्य प्रवृत्तियों के बीच तनाव में बदल देता है'।[51] परन्तु केवल दो पृष्ठों के बाद ही वे उसी गड्ढे में गिर पड़ते हैं जिसके बारे में उन्होंने ख़बरदार किया था। वे ब्राह्मण-आर्यों पर द्रविड़ आध्यात्मिकता को संस्कृत के साँचों में ढालने का आरोप लगाते हैं। वे दावा करते हैं कि स्थानीय तमिल ढाँचे को 'बाद के टिप्पणीकारों की इन कोशिशों के माध्यम से आंशिक रूप से बलात्कार द्वारा और आंशिक रूप से अपनाने और समायोजन करके तमिल विचारधारा और सिद्धान्तों को ब्राह्मण-संस्कृत के जबरदस्ती-एकरूपता-स्थापित-करन े-वाले ढाँचे में ढाला गया'।[52]

उसके बाद वे तमिलों के महान भक्ति साहित्य के पुनर्जागरण को संस्कृत प्रभाव द्वारा लाये गये एक पतन के रूप में नीचा दिखाते हैं। उनके अनुसार, दुष्ट आर्य सामाजिक बुराइयाँ लाये जिनमें 'महाकाव्यों, पुराणों की आर्य पुराकथाओं का सशक्त विकास; भाषा का संस्कृतिकरण; कर्मकाण्डीय शुद्धता का रूढ़ीकरण; दृष्टान्तों का प्रदूषण; कट्टर वर्ण-व्यवस्था की धारणा; सामन्ती ढाँचे में उपयोग में लाये जाने वाले राजा के ईश्वर होने की अवधारणा; कट्टर कर्मकाण्ड' आदि शामिल और विस्तृत थे।

दमन के परिणामस्वरूप तमिल जनों ने 'भक्ति' का सहारा लिया 'एक भावनात्मक बाढ़ के रूप में जिसमें जीवन की समस्याओं के सामाधान के तर्कसंगत प्रयास डूब जाते हैं; जो जीवन और इसकी समस्याओं के प्रति एक अतार्किक और तर्कविरोधी तरीका है'।[53] यह कथित यूरोपीय श्रेष्ठता का ही नमूना है जिसका प्रदर्शन करते हुए ज्वेलेबिल बल देकर कहते हैं कि 'तमिलनाडु ने ''वास्तविक'' पुनर्जागरण जैसे विकासक्रम का साक्षात्कार नहीं किया है ... ऐसा कोई विकासक्रम नहीं है जिसकी तुलना यूरोप के पन्द्रहवीं-सोलहवीं शताब्दी के पुनर्जागरण से, सत्रहवीं-अट्ठारहवीं शताब्दी के यूरोपीय तर्कवाद से, या उन्नीसवीं शताब्दी के यूरोपीय अनुभववाद या सकारात्मकतावाद से की जा सके'।[54] लेकिन तमिल जहाँ एक ओर यूरोपीयों से श्रेष्ठता में कम हैं, वहीं वे हिन्दू भक्ति आन्दोलन द्वारा प्रदूषित होने से पहले बेहतर थे, क्योंकि वे पन्थ निरपेक्ष, असाम्प्रदायिक, आशावादी और साहसी थे, तथा माँस खाते और शराब पीते थे। ज्वेलेबिल लिखते हैं :

> जो भी हो, भक्ति के रुझान के पहले तक, कथित 'काले युग' के पहले, तमिल प्राचीन कालजयी रचनाकाल में, मुरुगन काल में, व्यक्ति स्पष्ट, आशावादी, सहज, जीवन के धर्मनिरपेक्ष दृष्टिकोण वाला था, एक माँस खाने वाले और शराब पीने वाले सामन्तवाद के पहले के समाज के साहसी युग में, तुलनात्मक रूप से सहज, लेकिन सार्थक धार्मिक अवधारणाओं के साथ।[55]

इस तरह ज्वेलेबिल कॉल्डवेल के सिद्धान्त का ही नवीनीकरण करते हैं कि ब्राह्मणों द्वारा तमिल आध्यात्मिकता को धोखा देने और बन्दी बनाने के पहले यह आदिम सामन्तवाद से पहले की संस्कृति थी जो असली ईसाइयत में परिवर्तन के लिए तैयार थी। ब्राह्मणों के हस्तक्षेप ने इसे क्षति पहुँचाई, जबकि तमिल जनों को जिस चीज की वास्तविक आवश्यकता थी, वह ईसाइयत द्वारा 'परिष्कार' की ही थी ताकि उनके पास एक मान्य धर्म हो सके। कॉल्डवेल ने प्रस्ताव रखा था कि एक बार अगर ब्राह्मणों का छल हटा दिया गया तो सहज मस्तिष्क वाले द्रविड़जन ईसाई प्रचारकों के घेरे में शामिल होने के लिए तैयार हो जायेंगे।

'इंस्टीटयूट ऑफ़ एशियन स्टडीज' में जॉन सैमुएल (John Samuel) का मिशन था कि कॉल्डवेल ने जहाँ उसे छोड़ा था, वहाँ से उसे आगे ले जाना। उन्हें दक्षिण भारत और श्रीलंका में तरह-तरह के एन.जी.ओ. के साथ काम कर रहे एक पश्चिमी विद्वान पैट्रिक हैरिगन द्वारा सहायता दी जाती है।[56] हैरिगन ने स्वयं को दक्षिण भारत और श्रीलंका के हिन्दू रहस्यवाद और लोक परस्पराओं के एक प्रमुख शोधकर्ता के रूप में स्थापित किया है, जिसके माध्यम से उन्होंने एक विशाल आँकड़ों का कोष तैयार किया है और तमिल आध्यात्मिकता तथा प्रमुख हिन्दू मन्दिरों पर चालीस वेबसाइटें चला रहे हैं।[57] उन्होंने अत्यन्त लोकप्रिय मुरुगन पूजा परम्परा[58] के संरक्षकों के साथ अपने सम्पर्कों का उपयोग सैमुएल की सहायता करने के लिए किया है, ताकि उस परम्परा का ईसाईकरण किया जा सके, जो लम्बे समय से चर्च द्वारा

समायोजन के विरोध कर रही थी। मुरुगन तमिलनाडु के एक अत्यन्त लोकप्रिय देवता हैं। सैमुअल ने कई अन्तर्राष्ट्रीय मुरुगन सम्मेलनों का आयोजन किया है जिनमें मुरुगन की व्याख्या हिन्दू सन्दर्भ से बाहर की गयी। यह इस दावे के लिए मार्ग प्रशस्त करेगा कि यह देवता ईसाई देवता का ही एक भ्रष्ट रूप है या गलत ढंग से पहचाना गया ईसाई सन्त। सन 1999 में आयोजित उनके सम्मेलन के दौरान 'हिन्दूइज्म टुडे' (*Hinduism Today*) ने सैमुएल और हैरिगन का साक्षात्कार लिया और सैमुएल के सूक्ष्म हिन्दू विरोधी पूर्वाग्रह की रपट प्रकाशित की जिसमें उनके द्वारा मुरुगन की दिव्यता को कम करने का प्रयत्न किया गया था, जो एक ऐसा आरोप था जिसे कम करने में हैरिगन ने स्पष्टीकरण दे कर सहायता की।[59]

सैमुएल ने देइवनयगम का अनुमोदन किया, इस बात पर बल देते हुए कि प्रमुख हिन्दू आध्यात्मिक परम्पराएँ सन्त टॉमस की ईसाइयत के प्रभाव में उत्पन्न हुईं। यहाँ तक कि बहुज्ञात सोमस्कन्द मूर्तिशिल्प को—जिसमें स्कन्द-मुरुगन के बाल्य स्वरूप को दिखाया गया है और जिसे सोमस्कन्द कहा जाता है, और दोनों ओर उनके माता-पिता पार्वती और शिव विराजमान हैं—को अब ईसाई ट्रिनिटी से उद्भूत माना जा रहा है। जॉन सैमुएल लिखते हैं :

> यह बिल्कुल स्पष्ट है कि सोमस्कन्द की आकृतियाँ और अम्मई-अप्पन-मगन की अवधारणा ईसाई ट्रिनिटी शिक्षा के उद्घाटन के अलावा कुछ भी नहीं है। यहाँ ध्यान रहे कि शुरू में भगवान मुरुगन के कोई पिता नहीं थे। शैव मत द्वारा ट्रिनिटी की शिक्षा के प्रभाव पर विस्तृत शोध करने का श्रेय पूरी तरह डॉ. एम. देइवनयगम और डॉ. डी. देवकला को जाता है।[60]

इस तरह, पहले के शैक्षणिक संस्थानों ने एक धार्मिक उत्साही द्वारा स्पष्टत: गढ़ी गयी परिकल्पना को समर्थन दिया। शैक्षणिक वैधता की आभा सृजित करने के बाद, अगला कदम है 'टॉमस की द्रविड़वादी ईसाइयत' को लोकप्रिय ब्राह्मण विरोधी द्रविड़ राजनीति के साथ एकीकृत करना। इसका परिणाम है तमिलों के लिए एक विभाजक जातीय-धार्मिक पहचान।

'पंचम वेद' का गढ़ा जाना

रॉबर्ट डी नोबिली (Robert de Nobili, 1577-1656) एक शरारती ईसाई थे जिन्होंने ब्राह्मण का वेष धारण कर यह दावा करते हुए एक धोखाधड़ी की कि उन्हें एक पुराना ग्रन्थ मिला है और जो पूरी भारतीय परम्परा को ईसाइयत के ही एक भ्रष्ट उप-धर्म की तरह दिखायेगा। इसे उन्होंने पंचम वेद का नाम दिया। इसे ईसा वेद के रूप में प्रस्तुत किया गया था और यूरोपीय भारतविदों द्वारा इसे लोकप्रिय भी बनाया गया। फ्रांस में इसे वॉल्टेयर सहित विख्यात बुद्धिजीवियों द्वारा समर्थन दिया गया, जिन्होंने इसकी प्रशंसा में लिखा :

> यह पाण्डुलिपि नि:सन्देह उस काल की है जब योगियों का प्राचीन धर्म विकृत होना प्रारम्भ हो गया था; हमारे अपने पवित्र ग्रन्थों को छोड़कर, यह एक ही ईश्वर में विश्वास करने वाला सर्वाधिक सम्माननीय स्मारक है। इसे 'इज़ूर वेदम' (*EzourVeidam*) कहा जाता है : मानो इसे कोई सत्य वेदम, वेदम भाष्य, शुद्ध वेदम जैसे नामों से पुकारे।[61]

1774 में पियरे सोन्नराट (Pierre Sonnerat) नामक एक फ्रांसीसी प्रकृतिवादी और अनुसन्धान कर्ता इस 'इज़ूर वेदम' की एक प्रति के साथ भारत आये थे। उन्होंने ब्राह्मणों से शिक्षा ग्रहण की ताकि वास्तविक वेदों को समझ सकें, और इस पंचम वेद की पुष्टि करने योग्य हो जायें। उन्होंने निष्कर्ष निकाला कि वह दस्तावेज नकली था और वैदिक आध्यात्मिक तत्वों को ईसाई शास्त्र के साथ मिलाने के लिए धोखाधड़ी से रचा गया था। ईसाई धर्मशास्त्र को उसमें छिपाकर घुसाने के लिए समायोजन किये गये ताकि कोई उसमें ब्राह्मण के वेष में मिशनरी की पहचान न कर पाये। सन 1782 में उस फ्रांसीसी ने भारत की अपनी यात्रा के विवरण प्रकाशित किये और 'इज़ूर वेदम' की धोखाधड़ी का भण्डाफोड़ किया :

> हमें सतर्क रहना चाहिए कि हम भारतीयों की धार्मिक पुस्तकों में 'इज़ूर वेदम' को शामिल न करें, जिसका रॉयल लाइब्रेरी में एक तथाकथित अनुवाद भी है, और जिसे सन 1778 में प्रकाशित किया गया था। यह निश्चित रूप से चार वेदों में से नहीं है, नाम मात्र का भी नहीं। यह विवादों की पुस्तक है, जिसे मसुलीपट्टम में एक मिशनरी द्वारा लिखा गया। **इसमें विष्णु को समर्पित पुराणों में से अनेक का खण्डन है, जो वेदों से अनेक शताब्दी बाद के हैं। लेखक सब कुछ को ईसाइयत में बदलने का प्रयास करता दिखायी देता है; उन्होंने कुछ त्रुटियों का भी समावेश किया ताकि कोई ब्राह्मण के वेष में छिपे मिशनरी को पहचानने में सफल न हो सके।** किसी कारण से वॉल्टेयर और कुछ दूसरों ने गलतियाँ कीं जब उन्होंने इस पुस्तक को उतना महत्व दिया जितना कि नहीं दिया जाना चाहिए था, और जब उन्होंने इसे एक धार्मिक पुस्तक माना।[62]

अपमानित होने से बचने के लिए इस अमान्य कर दिये गये अभिलेख को छिपाकर रखा गया, और 'नोवेलिस एक्विजिशन्स फ्रैंकेइसेस' में एक अमहत्व के नाम 'Exhibit No. 452' के तहत प्रदर्शित किया गया। इस परियोजना के विफल होने के बाद भी उन्नीसवीं शताब्दी के मैक्स मूलर जैसे भारतविदों ने डी नोबिली को इस धोखाधड़ी से दोषमुक्त करने के सशक्त प्रयास किये, या कम-से-कम इतने प्रयास किये कि धोखाधड़ी में उनके योगदान को बहुत कम करके दिखाया जाये—यह आरोप लगाते हुए कि पूरा प्रकरण नोबिली के कुछ भारतीय नौकरों का कमाल था। इस छल के उद्घाटित होने के लगभग एक सौ वर्ष बाद सन 1861 में मैक्स मूलर ने नोबिली के प्रयास के लिए उनकी प्रशंसा की :

... यह विचार कि वे, जैसा कि उन्होंने कहा, एक नये या पाँचवे वेद की शिक्षा देने आये हैं, जो खो गया था, प्रदर्शित करता है कि वे जिस धर्मशास्त्रीय प्रणाली पर विजय प्राप्त करने आये थे उसके सबल और दुर्बल पक्षों को वे कितनी अच्छी तरह से जानते थे।[63]

इस विफलता के बाद भी, मिशनरियों ने ईसाइयत को सत्य और मूल वैदिक धर्म कहना प्रारम्भ कर दिया। इस प्रचार की सफलता इस तथ्य से ही स्पष्ट है कि आज तमिलनाडु के तीन दक्षिणी जिलों (तिरुनेलवेली, टुटीकोरिन, और कन्याकुमारी) में सामान्य हिन्दुओं द्वारा भी ईसाइयत को इंगित करने के लिए वेदम (वैदिक धर्म) शब्द का उपयोग किया जा रहा है, वेदा-कोइल (वैदिक मन्दिर) शब्दावली चर्च को, और वेदा-पुथकम (वैदिक पुस्तक या ग्रन्थ) शब्दावली बाइबल को इंगित करती है। मिशनरी सभाओं और सम्मेलनों को 'वेदगामा शिक्षा गोष्ठी' और धर्मशास्त्री महाविद्यालयों को 'वेदगामा स्कूल' कहा जाता है। वेदों पर यह ईसाई अधिकरण निर्बाध रूप से जारी है।

रॉबर्ट डी नोबिली की विरासत को जारी रखने के क्रम में, अनेक वैदिक शब्दावलियों का ईसाईकरण किया जा रहा है ताकि हिन्दुओं के बीच गलतफहमी पैदा की जा सके। उदाहरण के लिए, धर्म दीपिका एक मिशनरी शोध पत्रिका है, जिसे एक ईसाई प्रचारक संस्थान 'माइलापुर इंस्टीटयूट ऑफ़ इण्डिजेनस स्टडीज' द्वारा प्रकाशित किया जा रहा है। सन 2000 में इसने एक आलेख प्रकाशित किया जिसने ऋग वेद के पुरुष सूक्त में जो प्रजापति आते हैं, उन्हें जनता की पापमुक्ति के लिए 'ईसा मसीह के बलिदान के बारे में एक पैगम्बरीय उद्घाटन' के रूप में चित्रित किया। यह एक ईसाई प्रचारक रणनीति है। इसने प्रजापति को ईसा मसीह की एक वैदिक भविष्यवाणी के रूप में दिखाने की सम्भावनाओं की जाँच की, और इस प्रकार 'ईसा मसीह ही वास्तविक प्रजापति हैं'।[64] इसके बाद दक्षिण भारत में एक प्रमुख प्रचार अभियान शुरू हुआ। उसी वर्ष चेन्नई के एक अन्य ईसाई प्रचारक दल ने हाल ही में धर्मान्तरित लोगों के साथ 'प्रजापति' नाम से एक नृत्य नाटक का मंचन प्रारम्भ किया।[65] यह नाटक धर्मान्तरण का एक जोरदार उपकरण बन गया है जिसे रामेश्वरम और कांचीपुरम जैसे महत्वपूर्ण हिन्दू तीर्थाटन केन्द्रों के नजदीक मंचित किया जाता है। हिन्दू/ईसाई सम्भावित संघर्ष वाले क्षेत्रों में इस नाटक के मंचनों की अध्यक्षता राज्य सरकार के पर्यटन मन्त्री और अन्य राजनीतिज्ञ करते रहे हैं, जिनमें से सब-के-सब द्रविड़ आन्दोलन के ही होते हैं।[66]

इस विचार को कि वेद ईसा मसीह के आगमन की भविष्यवाणी हैं, और इसलिए ईसाइयत वेदों का ही साकार होना है, रायमुण्डो पाण्णिकर जैसे एक अत्यन्त प्रमुख धर्मशास्त्रियों ने भी, जो ईसाई हैं, आगे बढ़ाया है। चेल्लपा नाम के चेन्नई के एक लोकप्रिय ईसाई प्रचारक स्वयं को साधु बताते हैं और वैदिक देवता अग्नि के नाम पर अग्नि मिनिस्ट्रीस नामक एक ईसाई प्रचारक संगठन चलाते हैं। वे दावा करते हैं कि

चूँकि वेदों में प्रजापति ईसा मसीह के आने का पूर्वानुमान था, इसलिए बिना ईसा मसीह के वैदिक खोज अपूर्ण है। उनका मुख्य लक्ष्य श्रीलंकाई तमिल हिन्दू समुदाय है, जो सम्पूर्ण विश्व में शरणार्थियों के रूप में बिखरा हुआ है, और जिसे आसानी से प्रभावित किया जा सकता है।[67] सन 2009 में, उन्होंने बड़े-बड़े पोस्टर लगाये जिनमें एक ईसाई-ब्राह्मण संगठन की घोषणा की गयी थी। इसने उस क्षेत्र के हिन्दुओं में क्रोध उत्पन्न किया जिन्होंने इस बात पर लोगों का ध्यान आकर्षित किया कि ईसाई-ब्राह्मण शब्दावली एक धोखा था, और बाद में चेन्नई पुलिस ने उनके पोस्टरों को हटा दिया।[68]

हिन्दू लोकप्रिय संस्कृति का ईसाईकरण

नवरात्रि एक त्योहार है जिसमें लगातार नौ रात्रि तक दिव्य मातृ देवी की पूजा होती है। दसवाँ दिन विजयदशमी के नाम से एक महत्वपूर्ण दक्षिण भारतीय हिन्दू परम्परा के रूप में जाना जाता है (उत्तर भारत में इसे दशहरा के नाम से जाना जाता है)। दक्षिण भारत के हिन्दुओं के लिए यह एक पवित्र दिन है जब उनके बच्चों की शिक्षा प्रारम्भ करने का अनुष्ठान किया जाता है। ईसाई ने भी इसी दिन से अपने बच्चों को शिक्षा शुरू कराने लगे हैं। सन 2008 में, एक समानान्तर अनुष्ठान का आयोजन किया गया ताकि ईसाई सन्दर्भ में हिन्दू धार्मिक पद्धति की नकल की जा सके :

> जहाँ हिन्दू बच्चों ने 'हरि श्री गणपतये नमः' लिखा वहीं ईसाई बच्चों ने ईसा मसीह की प्रशंसा में शब्द लिखे... समारोह के लिए भारी संख्या में लोग आये। बच्चों ने 'येशु दैवम' जैसे शब्द चावल के दानों से भरी थाली में लिखे।[69]

इस सफलता ने केरल के एक प्रमुख शहर कोट्टयम के सेंट बेसेलियस गिरजे के पादरी को प्रोत्साहित किया जो इससे भी आगे गये। सन 2009 में उन्होंने दावा किया कि विजयदशमी की एक ईसाई ऐतिहासिक पृष्ठभूमि थी, क्योंकि यही वह समय है जब जेहोवा ने ईसा मसीह को ज्ञान दिया। इस ईसाईकृत संस्करण में सरस्वती और लक्ष्मी के स्थान पर, जो क्रमशः बुद्धि और सम्पत्ति की देवियाँ हैं, ईसाई सन्तों पॉल और सिबैस्टियन को लाया गया। पादरी ने आगे और दावा किया कि महाशिवरात्रि का पर्व मसीह रात्रि का विकृत रूप है। यह वही दिन था जब ईसा मसीह ने अपने अनुयायियों से चौकन्ने रहने को बोला था।[70] ये उदाहरण हैं कि किस प्रकार दक्षिण भारत में सन्त टॉमस मिथक की घुसपैठ होने के साथ हिन्दू त्योहारों का धीरे-धीरे ईसाईकरण किया जा रहा है।

हिन्दू कला का ईसाईकरण

> वास्तव में, नृत्य मन्दिरों में पूजा का एक स्वाभाविक और आवश्यक अंग है। ... सिर्फ़ भारत में ही ऐसे ईश्वर की परिकल्पना है जो नृत्य करते हैं। शिव नटराज हैं, नृत्य करने वालों के स्वामी, जो चेतना के प्रासाद में नृत्य करते हैं और उसमें

ब्रह्माण्ड की लय बुनते हैं। उनके ब्रह्माण्डीय नृत्य में सृजन, संरक्षण, पुनर्सृष्टि, आच्छादन और शुभाशीष के दिव्य विशेषाधिकार भी हैं... भारत में नृत्य धर्म के साथ इतने निकट से जुड़ा हुआ है कि आज इस अनिवार्य पृष्ठभूमि से इसके अलग हो जाने के बारे में सोचना भी असम्भव हो गया है।

—रुक्मिणी देवी अरुण्डेल[71]

हिन्दू कला-रूपों और वैदिक परम्पराओं के अन्य पक्षों को मिशनरी विद्वानों द्वारा ईसाई घुसपैठ और समायोजन के लिए लक्षित किया जा रहा है। भरत नाट्यम एक लोकप्रिय हिन्दू आध्यात्मिक नृत्य विधा है जिसका मूल वेदों में नृत्य के उल्लेख में खोजा गया है। इसे भरत मुनि द्वारा नाट्य शास्त्र के लिखे जाने के भी पहले औपचारिक स्वरूप दे दिया गया था, जो ईसा पूर्व दूसरी शताब्दी में मंचीय कला और सौन्दर्य शास्त्र पर लिखा गया एक बीज ग्रन्थ है। तमिल महाकाव्य चिलापथिकरम प्राचीन नगर केन्द्रों में किये जाने वाले कालजयी नृत्य प्रदर्शनों का वर्णन विस्तार से करता है। सामान्य जनों के लिए मंचीय कलाओं को आध्यात्मिक प्रथाओं के रूप में रखा गया था; इनमें वे भी शामिल थे जिनमें धर्मग्रन्थों तक सीधे पहुँच स्थापित करने लायक न तो योग्यता थी और न ही रुझान।

नृत्य का हमेशा से ही एक पवित्र पहलू रहा है, और जिन्होंने इसके तरीकों को संरक्षित, सिंचित और प्रचारित किया उनमें पाशुपत (शैव) घुमन्तू साधु शामिल थे जिन्होंने इसका उपयोग आनन्दातिरेक तक ले जाने वाले के एक तरीके के रूप में किया।[72] भरत नाट्यम हिन्दू ब्रह्माण्डविज्ञान के उत्पत्ति-पालन-संहार चक्र पर आधारित है, जिसे शिव के नृत्य के रूप में भी देखा जाता है। डॉ. आनन्द कुमारस्वामी के शब्दों में :

ब्रह्म की रात्रि में, प्रकृति निष्क्रिय रहती है, और तब तक नृत्य नहीं कर सकती जब तक कि शिव की इच्छा न हो : आनन्दातिरेक में बेसुध वे अपनी उस स्थिति से जागते हैं, और उनका नृत्य निष्क्रिय पदार्थ में जगाने वाली ध्वनि की धड़कती तरंगें भेजता है, और फिर पदार्थ भी नाचने लगते हैं जो उनके चारों ओर एक वैभव सदृश लगते हैं। नृत्य करते हुए ही वह इसके बहुस्तरीय घटनाक्रम को संचालित करते रहते हैं। समय पूरा होने पर, वे अब भी नृत्य करते हुए अग्नि के द्वारा सभी स्वरूपों और नामों को नष्ट कर देते हैं और नया विश्राम देते हैं। यह काव्य है; लेकिन विज्ञान से कम भी नहीं।[73]

नृत्य के इस स्वरूप ने, जो आध्यात्मिक, कलात्मक और दार्शनिक जगत को एक सूत्र में बाँधता है, भौतिकविज्ञानी और दार्शनिक फ्रिट्जोफ कापरा जैसे अनेक आधुनिक पश्चिमी विद्वानों को प्रेरित किया है, जो लिखते हैं : 'तब, आधुनिक भौतिकविज्ञानी के लिए शिव का नृत्य उप-परमाण्विक पदार्थ का नृत्य है'।[74] स्वर्गीय कार्ल सागाने, जो एक खगोल भौतिकविज्ञानी थे, शिव की मूर्ति में 'आधुनिक

खगोलशास्त्रीय विचारों की एक प्रकार की पूर्वानुभूति देखी'।[75] रुक्मिणी अरुण्डेल भारतीय नृत्य के दर्शन की व्याख्या इस प्रकार करती हैं :

> यह पुरुष और प्रकृति की आत्मा है, गति के उद्‌भव की एक अभिव्यक्ति, एक सच्ची रचनात्मक शक्ति जो युगों-युगों से आगे बढ़ायी और सौंपी जाती रही है। आध्यात्मिक काव्य का सृजन करने वाले ध्वनि और लय के इस मूर्त स्वरूप को नृत्य या नाट्य कहा जाता है... इस नृत्य की पहली झलक हमें स्वयं शिव से मिलती है, योगियों के एक योगी से। वे हमें ब्रह्माण्डीय नृत्य दिखाते हैं और हमारे लिए जो कुछ भी अस्तित्व में है, उसकी एकता का चित्रण करते हैं... उनके नृत्य की ब्रह्माण्डीय लय उनके चारों ओर आत्मा-युक्त पदार्थों को आकर्षित करती है, जो स्वयं को इस अनन्त और सुन्दर ब्रह्माण्ड की विविधताओं में प्रकट करते हैं।[76]

बौद्ध, जैन और बाद के सूफी मुसलमानों ने इन मंचीय कलाओं के सौन्दर्य को उच्च सम्मान दिया, विशेषकर नृत्य, काव्य और संगीत को। उन्होंने इनको अपने धार्मिक और पन्थ निरपेक्ष मंचनों के लिए अंगीकृत किया।

भारतीय आध्यात्मिक नृत्य का ईसाई अपमान

सत्रहवीं शताब्दी से ईसाई मिशनरियों ने भारतीय शास्त्रीय नृत्य रूपों को मूर्तिपूजकों की प्रथा के रूप में देखते हुए उन पर सशक्त प्रहार किये हैं। इसे बहुधा मानवाधिकार के आधार पर देवदासी प्रथा पर प्रहार करते हुए अभिव्यक्त किया गया। देवदासियाँ मन्दिर की नर्तकियाँ थीं, जिन्हें बचपन में ही किसी विशेष देवता को समर्पित कर दिया जाता था। दसवीं और ग्यारहवीं शताब्दी में यह प्रथा अपने चरम पर थी, लेकिन कुछ सौ साल बाद शक्तिशाली राजाओं द्वारा संरक्षित मन्दिरों की यह पारम्परिक प्रथा मुगल शासनकाल में धीरे-धीरे लुप्त होती गयी, विशेषकर तब से जब मुगलों ने इसे लोकप्रिय मनोरंजन में बदल दिया, जिसमें आध्यात्मिकता नहीं रह गयी। देवदासी प्रथा कुछ मामलों में इतनी नीचे गिर गयी कि मन्दिर की नर्तकियों का उपयोग वेश्यावृत्ति के लिए किया जाता था, उपनिवेशवादियों द्वारा इसकी व्यापकता को बढ़ा-चढ़ाकर बताया गया।

भारत के अंग्रेज़ी-शिक्षा प्राप्त सम्भ्रान्त लोगों में से अनेक ने अपनी विरासत की औपनिवेशिक निन्दा को स्वीकार कर लिया और इसकी 'आदिमता' के लिए क्षमा याचना की। उनमें से कुछ समाज सुधारक बन गये और उन्होंने देवदासी प्रणाली को नैतिक और यहाँ तक कि सामाजिक-स्वास्थ्य के आधार पर घृणित पाया।[77] जो भी हो, देवदासियों ने अपने अस्तित्व को खतरे में पाया और औपनिवेशिक सरकार को हस्तलिखित आवेदन भेजे, जिनमें भरत नाट्यम के आध्यात्मिक आधार को स्पष्ट किया गया था। शैव आगमों से उन्होंने यह कहते हुए शिव के उद्धरण दिये कि 'पूजा के समय मुझे प्रसन्न करने के लिए प्रतिदिन शुद्ध नृत्य की व्यवस्था अवश्य की जानी

चाहिए। इस नृत्य को उन महिलाओं द्वारा किया जाना चाहिए जो नर्तकियों के ऐसे ही परिवारों की हों और पाँच आचार्य उनकी संगत करें'। चूँकि प्रत्येक हिन्दू द्वारा इन आगमों को पूजा जाता है, देवदासियों ने पूछा, 'हमारे समुदाय को मन्दिर की सेवा के अनिवार्य अंग के रूप में उन्नति न करने और अस्तित्व में न बने रहने देने का क्या कारण हो सकता है?' अपनी परम्परा को निभाने के लिए उनको कठोर दण्ड देने के प्रस्ताव को उन्होंने विरोध किया, यह कहते हुए कि 'सभ्य विश्व में उसके जैसा कोई कानून नहीं था'।[78]

अपने पारम्परिक व्यवसाय के उन्मूलन के बदले उन्होंने अपनी ऐतिहासिक स्थिति को बहाल करने के लिए बेहतर शिक्षा की माँग की। उन्होंने यह कहते हुए अतीत की तरह धार्मिक, साहित्यिक और कलात्मक शिक्षा चाही कि 'हममें गीता का ज्ञान और रामायण की सुन्दरता का समावेश करायें और हमें आगमों को समझायें और पूजा की विधियाँ भी बतायें'। इससे देवदासी बालिकाओं को प्रेरणा मिलेगी कि वे स्वयं को मैत्रेयी, गार्गी और मणिमेकलाई जैसी स्त्री सन्तों की तरह ढालें, और वेदों की स्त्री गायिकाओं जैसी बनें, ऐसी कि :

> ... हम एक बार फिर नैतिकता और धर्म के शिक्षक बन जायें। ... आप जो छोटे समुदायों के लिए अपने मधुर प्रेम की डींग हाँकते हैं, हम प्रार्थना करते हैं कि आप हमें जीने और अपना मोक्ष स्वयं प्राप्त करने के लिए काम करने, ज्ञान और भक्ति में स्वयं को अभिव्यक्त करने, और बढ़ते हुए भौतिकतावाद की धुन्ध और उसकी आँधी में भारत के धर्म की ज्वाला जलाये रखने, और विश्व के समक्ष भारत के सन्देश की व्याख्या करने का अवसर दें।[79]

ऐसे प्रयासों के बावजूद भरत नाट्यम पर मिशनरी प्रभाव का दबदबा जारी रहा जिसे अनैतिक के रूप में देखा जाता रहा और वह लगभग निश्चित विलुप्ति के संकट का सामना करता रहा। उदाहरण के लिए, मिशनरी विद्वता द्वारा समर्थित एक द्रविड़वादी ने इस नृत्य को 'वैसा जीवनस्रोत कहा जो वेश्यावृत्ति के विकास को बढ़ावा देता है'।[80]

जो भी हो, हिन्दू विद्वानों ने कला के इस स्वरूप पर लगाये गये ईसाई लांछनों को हटाने के लिए अथक प्रयास किये। उनमें से प्रमुख थीं रुक्मिणी देवी अरुण्डेल (1904-86), जिन्होंने 1936 में कलाक्षेत्र अकादमी ऑफ़ डांस एण्ड म्यूजिक की स्थापना कर इस नृत्य को संरक्षण दिया और पुनर्जीवित किया। उन्होंने मध्यवर्गीय परिवारों की बालिकाओं के लिए (यहाँ तक कि बालकों के लिए भी) भरत नाट्यम सीखने को सामान्य रूप से एक स्वीकार्य गतिविधि बना दिया। यद्यपि इसका संचालन एक आधुनिक संस्थान की तरह किया गया, इसने एक पारम्परिक गुरुकुल की तरह ही काम-काज किया जिसमें गणपति देव की प्रार्थना, शाकाहार, और गुरु-शिष्य सम्बन्ध पर ध्यान केन्द्रित किया गया। सम्पूर्ण तमिलनाडु में विकेन्द्रीकृत, एक-पर-एक शिक्षण की गुरु-शिष्य परम्परा का तरीका इस पुनर्जीवन के एक अंग के रूप

में तरह-तरह से फैला। इस प्रकार, समाप्त हो जाने के बदले, जैसा कि मिशनरियों, उपनिवेशवादियों और उनके भारतीय अन्तरंग सहयोगियों द्वारा वांछित था, भरत नाट्यम फिर एक बार एक आध्यात्मिक कला रूप में दक्षिण भारत में सुस्थापित हो गया, और उसने भारत भर में तथा विदेशों में भी प्रशंसा प्राप्त करना प्रारम्भ कर दिया। 'कलाक्षेत्र' विकसित होकर एक विश्वविद्यालय बन गया जिसका चेन्नई में एक बड़ा परिसर है।

रणनीतिगत परिवर्तन : हिन्दू नृत्य का सूक्ष्म ईसाई समायोजन

हाल के वर्षों में, मिशनरी फिर एक बार भरत नाट्यम को निशाना बना रहे हैं। लेकिन इस बार ऐसे उम्मीदवार के तौर पर जिसे ईसाइयत में पचाने के लिए नियन्त्रण में लिया जाना हो। यह रणनीतिगत पलटा भरत नाट्यम के प्रति बढ़ते उत्साह के उत्तर में है, जिन उत्साहियों में अनेक पश्चिमी नारीवादी भी शामिल हैं, जो भारतीय नृत्य को इस रूप में देखते हैं कि वह नारी की यौन भावना को मूल्यवान बनाता है।[81] पश्चिम के लोगों ने शुरू में हिन्दू प्रथाओं और चिह्नों के प्रति सम्मान व्यक्त करने के लिए इस नृत्य को लिया, और हिन्दू गुरुओं के अधीन अध्ययन किया, जिन्होंने अनाड़ी की तरह ईसाई शिष्यों का स्वागत किया। आज भरत नाट्यम के ईसाईकरण अभियान में जो लोग अग्रणी भूमिका निभा रहे हैं उनमें से प्रत्येक को प्रारम्भ में हिन्दू गुरुओं द्वारा पढ़ाया गया था।[82] भारत में अनेक असन्देही, या सम्भवत: अवसरवादी, हिन्दू गुरु हैं जो ईसाई विद्यार्थियों को अपनी छत्रछाया में लेकर इस कलारूप की शिक्षा देते हैं। इन ईसाई शिष्यों ने अति कठिन परिश्रम किया और इनमें से कई तो उदाहरण देने योग्य हो गये, जो हिन्दू विषयवस्तुओं पर नाचते और समाचार माध्यमों तथा दर्शकों को भाव-विभोर कर देते।

जो भी हो, वे पारम्परिक हिन्दू कला और ईसाई सौन्दर्यशास्त्र तथा मत के बीच संघर्षों में फँस गये। एक प्रमुख रोमन कैथोलिक पुजारी और हिन्दू कलारूपों के नर्तक फादर फ्रांसिस बारबोजा (Father Francis Barboza) स्वीकार करते हैं कि 'मैंने जिस प्रमुख कठिनाई का सामना इस नृत्य को करने में किया, वह भारतीय शास्त्रीय नृत्य का अद्वितीय पक्ष है, जैसे, हाथ की मुद्राएँ और भाव-भंगिमाएँ।' वे स्वीकार करते हैं :

> मैं देव हस्त (हाथ की मुद्राएँ) को छोड़कर उनमें से सभी का उपयोग उनके मूल स्वरूप में कर सकता हूँ, क्योंकि बाइबल के व्यक्तित्वों की प्रकृति और उनका महत्व बिल्कुल अलग और अद्वितीय है। इसलिए जब मैंने ईसा मसीह, ईसाई ट्रिनिटी (पिता, पुत्र और पवित्र आत्मा) का प्रतिरूपण करना चाहा तो पूरी तरह विफल हो गया। मुझे लगा कि दिव्य व्यक्तित्वों और ईसाइयत की परिकल्पनाओं के अनुकूल मुझे नये देव हस्तों का आविष्कार करना होगा। यह मेरी रचनात्मक, बौद्धिक और धर्मशास्त्री पृष्ठभूमि के लिए चुनौती थी। ईसाई धर्मशास्त्र के अपने ज्ञान और प्राचीन नृत्य ग्रन्थों के गहन अध्ययन से युक्त मैंने तब अनेक देव हस्त

> इसमें शामिल किये ताकि वे बाइबल के व्यक्तित्वों के अनुकूल हों। ये नयी पद्धतियाँ मेरी प्रस्तुतियों को वस्तु तथा स्वरूप की दृष्टि से असली भारतीय और ईसाई दोनों बनाने में सफल रहीं।[83]

डॉ. बारबोजा ने इन ईसाई मुद्राओं का अविष्कार कर भरत नाट्यम का ईसाईकरण किया है : ईश्वर, जो पिता है; ईश्वर का पुत्र; पवित्र आत्मा; कब्र से उठे ईसा मसीह; माँ मेरी; सलीब; पवित्र माता; चर्च; और ईश्वर का शब्द; और इनके साथ ही दो भाव-भंगिमाएँ : सलीब पर चढ़ाना; और कब्र से उठे ईसा मसीह।[84] यह रणनीति आश्चर्यजनक ढंग से पश्चिम के योग साधकों द्वारा विकसित किये गये ईसाई योग और यहूदी योग के समान है, जो योग से वही लेते हैं जो वे लेना चाहते हैं, लेकिन उन संकेतों और परिकल्पनाओं को अस्वीकार कर देते हैं या बदल देते हैं जो अत्यन्त स्पष्ट रूप से हिन्दू होते हैं।

एक अन्य उदाहरण है 'कलाई कावेरी कॉलेज ऑफ फाइन आर्ट्स' (Kalai Kaveri College of Fine Arts), जिसकी स्थापना एक कैथोलिक पादरी ने 1977 में एक सांस्कृतिक मिशन के रूप में की थी। उन्हें विभिन्न स्रोतों से संरक्षण मिला और उन्होंने पादरियों और ईसाई भिक्षुणियों को असन्देही हिन्दू गुरुओं से शिक्षा ग्रहण करने के लिए भेजा। यह महाविद्यालय 'भरत नाट्यम में विश्व के पहले, परिसर के बाहर स्नातक कार्यक्रम (ऑफ़-कैंपस डिग्री प्रोग्राम)' की सुविधा देने का दावा करता है, दक्षिण भारतीय शास्त्रीय संगीत (गायन और वादन दोनों) में एक अन्य कार्यक्रम के साथ। इसकी वेबसाइट के मुखपृष्ठ पर डॉ. बारबोजा की 'ईसाई मुद्राएँ' दिखायी गयी हैं जिनमें हज़ारों वर्ष पुरानी हिन्दू मुद्राओं के स्थान पर ईसाई 'पिता देव' का उपयोग भरत नाट्यम के रूप में किया गया है। कलाई कावेरी को एक प्रमुख ईसाई अभियान के रूप में समर्थन और धन दिया जाता है।[85] तमिलनाडु सरकार भी इसे सक्रिय रूप से धन दे रही है और प्रोत्साहित कर रही है।[86]

कलाई कावेरी की शाखाएँ विदेशों में भी हैं। ब्रिटेन में इसकी शाखा के संरक्षक हैं लॉर्ड नवनीत ढोलकिया; यह शाखा 'दक्षिण भारत के कलाई कावेरी महाविद्यालय के नृत्य करने वालों और मुद्रा तथा चाल की शिक्षा देने वालों के माध्यम से ब्रिटेन में नृत्य करवाते हैं और शैक्षणिक कार्यशालाओं का आयोजन करते हैं'।[87] इसकी वेबसाइट में इसके पच्चीसवें वार्षिकोत्सव की पुस्तिका, 'रिसर्जेन्स' (Resurgence) से एक उद्धरण दिया गया है जो पहले भारतीय आध्यात्मिकता की प्रशंसा करती है और उसके बाद उसे ईसाई समानान्तर में ढालने की समय-सिद्ध ईसाई तकनीक का प्रयोग करती है, जैसे 'पवित्र समागम' शब्दावली का सूक्ष्म उपयोग जिसका ईसाइयों के लिए विशेष धार्मिक महत्व है, और जिसे अन्य लोगों द्वारा सम्भवत: देखा भी नहीं जा सकता। यह उद्धरण वैदिक परम्परा के लिए सम्मान के साथ प्रारम्भ करता है :

> संगीत और नृत्य, जब भारतीय परम्परा में देखा जाता है, मूलत: एक आध्यात्मिक कला है, एक अनन्य योग और संगति का एक विज्ञान। ... वेदों के अनुसार,

दिव्य माता वाक् (वाग देवी) ने सम्पूर्ण सृष्टि के अस्तित्व को गाया। ईश्वर की शाश्वत जीवन-शक्ति, परा शक्ति, का प्रवेश हुआ, या यूँ कहें कि एकलध्वनि वाली बीज-ध्वनि ॐ (प्रणव) के माध्यम से अनन्त कारक ध्वनि नाद का रूप ग्रहण किया। इस प्रकार यह अद्‌भुत विश्व अपने अनेक रूपों में उभर आया। भौतिक, शारीरिक, मानसिक और आत्मा का सम्पर्क या ईश्वर से पवित्र समागम की यह प्रक्रिया पूर्ण संगति, दोषरहित एकीकरण, और ईश्वर के साथ परम पहचान को लक्ष्य बनाती है, उस ईश्वर की सभी प्रकट और अप्रकट लीला (दिव्य नाटक और नृत्य) में, जो वैयक्तिक, ब्रह्माण्डीय और ब्रह्माण्ड से परे सभी स्तर के अस्तित्वों में व्याप्त है।[88]

लेकिन जैसे ही आलेख आगे बढ़ता है, यह चित्रण अधिकाधिक स्पष्टता से ईसाई हो जाता है :

इसलिये, प्रत्येक मानव ध्वनि या शब्द को इसके मूल स्रोत में ढूँढ़ निकालना सम्भव है, एक सकारात्मक स्रोत तक एक-एक पग बढ़ाते हुए जब तक कि ब्रह्म शरीर, जिसे शब्द ब्रह्म कहा जाता है, तक न पहुँच जायें : 'प्रारम्भ में प्रजापति थे, ब्रह्मा (प्रजापतवै इदम् अग्रते आसीत) जिनके साथ यह शब्द था (तस्य वाग द्वितीय आसीत), और यह शब्द निश्चय ही सर्वोच्च ब्रह्म था (वाग वै परमं ब्रह्म)'। इस वैदिक काव्य का समानान्तर ईसाई नये सन्देश के चौथे गॉस्पेल में मिलता है : 'प्रारम्भ में शब्द था, और वह शब्द ईश्वर के पास था, और वह शब्द ही ईश्वर था'। (जॉन 1.1, John 1.1) यहाँ जिस 'शब्द' की ओर इंगित किया गया है वह मौलिक ध्वनि या नाम था। यह उच्चारण किये जा सकने वाला शब्द नहीं हो सकता है, और इसलिए यह ईश्वर की रचनात्मक शक्ति ही है। गलत ढंग से नामित सोलोमन का गीतिकाव्य, जो सम्भवत: दूसरी शताब्दी के ईसाई फिलीस्तीन या सीरिया के थे, इसी सत्य को अलंकारों में अभिव्यक्त करता है : 'ऐसा कुछ भी नहीं जो ईश्वर से अलग है, क्योंकि वह उसके पहले भी था जब किसी चीज का कोई अस्तित्व नहीं था। और यह सृष्टि (अनेक विश्व) उनके ही शब्द द्वारा अस्तित्व में आयी'। (ओड सोलह : 18-19, Ode XVI:18-19)[89]

फादर साजू जॉर्ज (Father Saju George), केरल के एक ईसाई पादरी, कलाई कावेरी के विख्यात व्यक्तित्व हैं जिन्होंने विभिन्न भरत नाटयम गुरुओं से सीखा। वे हिन्दू और ईसाई दोनों विषय-वस्तुओं का मंचन करते हैं। कलाई कावेरी संस्थान गर्व से कहता है कि :

... नई दिल्ली में पोप जॉन पॉल II के सामने भी नृत्य पेश करके उन्होंने भरत नाटयम के स्तर को ईसाई प्रार्थनाओं और पूजाओं के स्तर तक ऊँचा उठाया।... यहाँ इस प्राचीन लता के एक नये पुष्पीकरण के अनुभव का एक दुर्लभ अवसर है। ऐसे आयोजनों में, राधा कृष्ण के प्रतिरूपण एक ही मंच पर ईसा मसीह को सलीब पर चढ़ाने और उनके कब्र से उठ जाने के प्रतिरूपण से जा मिलते हैं।[90]

भरत नाट्यम के ईसाईकरण के साथ-साथ हिन्दू धर्म को धृष्टतापूर्वक अस्वीकार करना

संयुक्त राज्य अमरीका के मेरीलैंड में 'कलाईरानी नाट्य शालाई' (रणनीतिगत रूप से एक प्रमुख हिन्दू मन्दिर के ठीक बगल में स्थापित) की संस्थापक रानी डेविड तो भरत नाट्यम के ईसाईकरण के बारे में इससे भी ज्यादा धृष्ट हैं। उनकी वेबसाइट यह उद्घाटित करने में भी नहीं हिचकती कि वे हिन्दू चिह्नों, जो भरत नाट्यम के अंग हैं, को तिरस्कार की दृष्टि से देखती हैं, और नृत्य से उन्हें हटाने के प्रति कृतसंकल्प हैं। वे भरत नाट्यम को गैर-हिन्दू बनाना चाहती हैं :

> एक सुव्यवस्थित 'सलंगाई पूजाई' में उनके दृढ़ विश्वास के बावजूद उन्होंने अपमानित अनुभव किया, क्योंकि उनके ईसाई मूल्यों ने उन्हें एक मूर्ति के आगे झुकने की अनुमति नहीं दी, चाहे वह नटराज की हो, मेरी की हो, या यहाँ तक की ईसा मसीह की। उसी समय उन्होंने संकल्प लिया कि एक दिन वे इस सुन्दर कला को ऐसा स्वरूप देंगी कि उस पर किसी भी धर्म द्वारा विशेषाधिकार का दावा न किया जा सके। उस संकल्प का परिणाम 1992 में एडविना भास्करन के आयोजन (arangetram) के समय से सामने आने लगा, जब ईसा मसीह पर एक पाथम, 'येशुवैयै थुथी सेई', को शामिल किया गया।[91]

लेकिन बहुलतावाद की उनकी प्रारम्भिक भाव-भंगिमा 'नव-सृजन' के रूप में एक विशिष्ट ईसाई नृत्य तक पहुँचाती है, जिसके बारे में उन्हें गर्व है :

> एडविना के पितामह, एल्डर एडविन ने रानी को बधाई दी और पूछा, 'क्या तुम एक पूरा कार्यक्रम मंचित कर सकती हो जिसमें **केवल ईसाई सामग्री हो?**' ... फलतः ईसा मसीह पर एक दो घण्टे का कार्यक्रम 'येशु, येशु, येशु' की रचना की गयी और सबसे पहले उसे मेरीलैंड में मंचित किया गया और उसके बाद संयुक्त राज्य अमरीका के अनेक भागों में घूम-घूमकर इसे दिखाया गया।[92]

रानी डेविड को फादर बारबोजा और अन्य भारतीय ईसाइयों के साथ सहयोग पर भी गर्व है। 'ईसाईकरण की परिकल्पना' (द कांसेप्ट ऑफ़ क्रिश्यनाइिंजग) शीर्षक से छपे एक आलेख में, जो अपने शीर्षक में ही सब कुछ बता देता है, वे भरत नाट्यम की समस्याओं की तुलना बाइबल में कथित रूप से पायी जाने वाली समान समस्या से करने के साथ प्रारम्भ करती हैं, जिससे ऐसा प्रतीत हो कि वे पक्षपात नहीं कर रही हैं :

> भरत नाट्यम का इतिहास यह प्रकट कर देता है कि धार्मिक लोगों द्वारा इसका दुरुपयोग किया गया और यह सामजिक कलंक बन गया। उसी तरह, स्वयं 'नृत्य' शब्द का उल्लेख बाइबल में दो बुरे 'पापपूर्ण' सन्दर्भों में आया है : एक बार इजरायलियों और सोने के बछड़े के साथ, तथा दूसरी बार सलोमी के साथ जिसने हेरोड के सामने नृत्य किया।[93]

इसके बाद के वाक्यों में, समान व्यवहार के दिखावे वाले इस अग्रभाग के स्थान पर नृत्य के सकारात्मक पक्षों पर केवल बाइबल के अनुसार ध्यान केन्द्रित किया गया। नृत्य का जिनमें उल्लेख है उन विशेष कविताओं का उद्धरण देते हुए उन्होंने निष्कर्ष निकाला :

> ... ईश्वर के राज्य में नृत्य के होने के प्रबल संकेत हैं। लेकिन यह क्या कोई ऐसा समर्थन है जिस पर सवाल नहीं उठाया जा सकता? हाँ, भजन 149:3 और 150:4 में ईश्वर की प्रशंसा में नृत्यों को शामिल करने के सुनिश्चित आदेश हैं! शायद ही कोई उससे अधिक सुनिश्चित हो सकता है।[94]

दूसरे शब्दों में, जब बाइबल में नृत्य की निन्दा की गयी है, तब इसका भरत नाट्यम की हिन्दू प्रकृति के साथ चित्रण किया गया, और दोनों समान रूप से समस्या की साझेदारी करते हैं; लेकिन जब नृत्य को बाइबल में सकारात्मक रूप से चित्रित किया गया है, तब यह पूरी तरह ईसाई घटनाक्रम से जुड़ जाता है। ऐसा हिन्दू उदाहरणों के साथ नहीं होता।

जिसे बड़ी सफाई से भुला दिया गया वह यह स्वाभाविक तथ्य है कि भरत नाट्यम इस कारण से हिन्दू धर्म में ही विकसित, संस्थागत रूप से पोषित, और धर्मशास्त्रीय तरीके से परिमार्जित किया गया क्योंकि यह साकार हुई आध्यात्मिकता की एक परम्परा है जो शरीर का—पुरुष और स्त्री दोनों के, और यहाँ तक कि पशुओं का भी—मूल्यवर्द्धन करती है जबकि अब्राहम की परम्परा ने, मुख्य रूप से हमेशा पाप और मूर्तिपूजा के भय का ध्यान बने रहने के कारण, एक दिव्य माध्यम के रूप में ऐसे शारीरिक प्रतिरूपण की सम्भावनाओं का गला घोंट दिया।[95]

उसके बाद रानी डेविड नृत्य में हिन्दू धर्म और ईसाइयत को साथ-साथ अस्तित्व में रखने के प्रयत्न की चुनौतियों की व्याख्या करती हैं :

> ... दो प्रमुख अन्तर हैं जिनकी हम उपेक्षा नहीं कर सकते। हिन्दू धर्म उदार है और यह किसी भी 'अच्छी चीज' को पवित्र रूप में स्वीकार करेगा। दूसरी और ईसाइयत एक 'उत्साही' ईश्वर पर आधारित है जो आदेश देता है कि आप किसी अन्य ईश्वर की पूजा नहीं कर सकते। सहजता पूजा का ईसाई स्वरूप है; यही कारण है कि आप ईसाइयों को श्वेत वस्त्रों में देखते हैं जब वे चर्च जाते हैं। लेकिन एक हिन्दू भक्त पूजा में सुसम्पादन में विश्वास करता है। आप जितना सुन्दर बनायेंगे उतना ही स्वीकार्य होगा! इसलिए भरत नाट्यम को कोई इसमें कहाँ लाता है? दो विश्वों को मिलाने का कार्य कोई आसान काम नहीं है... यह कैथोलिक पादरी फादर बारबोजा थे जिन्होंने कुछ निश्चित मुद्राएँ बनायीं, जिसे आप इस पृष्ठ में प्रदर्शित देखते हैं। एक सर्वव्यापी अनुकूलन करने की परिकल्पना के साथ मैंने इन मुद्राओं में से कुछ का उपयोग अपनी नृत्यकला में किया है।[96]

एक प्रमुख नर्तकी अनीता रत्नम इससे भी आगे जाकर मेरीलेंड के अपने 2007 के आयोजन में दावा करती हैं : 'रानी डेविड ने तथ्यों को सामने रखा और दिखाया कि ईसाइयत भरत नाट्यम और संग थमिड़ के साथ अस्तित्व में रहा, लेकिन समय के साथ इतिहास ने ईसाइयत को एक पश्चिमी दृष्टिकोण दिया है'।[97]

यह ध्यान देना दिलचस्प है कि विभिन्न प्रकार के ईसाई अपने प्रति कितने सजग और रणनीतिक हैं जब वे इन अन्तर-धर्मी गतिविधियों में संलग्न होते हैं। उनकी ईसाइयत अत्यन्त स्पष्टता से उनके मस्तिष्क में उपस्थित है और वे लाभदायक चुनाव करने में बड़ी सूझ-बूझ रखते हैं। दूसरी ओर ऐसी अन्तर-धर्मी गतिविधियों में लगे हिन्दू इस विचार में आसानी से खो जाते हैं कि 'सब कुछ एक ही है' और 'हमारा और उनका कुछ (अलग) नहीं है'। एक तरफ ईसाई रणनीति है जो कि अपने विस्तार के लिए निरन्तर कार्यरत हैं और परिष्कृत होने में लगी हुई है। दूसरा पक्ष, हिन्दू, अनाड़ी की तरह अचिन्तित है, और एक प्रतिस्पर्धी घेरे में इसे देखने को अनिच्छुक है।

लीला सैमसन प्रवाद

रुक्मिणी अरुण्डेल, वे गुरु जिन्होंने इस नृत्य रूप को औपनिवेशिक काल के धर्मान्तरण से बचाया, इस नृत्य को एक 'साधना बताती हैं जिसके लिए सम्पूर्ण समर्पण की आवश्यकता है'।[98] 'कलाक्षेत्र,' एक संस्थान है जिसकी स्थापना उन्होंने भरत नाट्यम के हिन्दू आध्यात्मिक मूल पर बल देने के लिए की; इसे हाल में लीला सैमसन के नेतृत्व में ईसाई प्रचारकों द्वारा अपने कब्जे में ले लिया गया है। सैमसन ने कलाक्षेत्र से अपना सम्बन्ध एक उच्च-विद्यालय के विद्यार्थी के रूप में प्रारम्भ किया था और एक नर्तकी तथा शिक्षिका बनने के लिए आगे बढ़ती चली गयीं। एक समकालीन गुरु के अनुसार, जो उसे जानते थे, लीला सैमसन के नामांकन के प्रति रुक्मिणी आशंकित थीं।

> लीला सैमसन (Leela Samson), जो आज एक वरीय कलाकार हैं, एक छोटी लड़की के रूप में कलाक्षेत्र आयी थीं। उनकी यहूदी-ईसाई पृष्ठभूमि के कारण उनका पारम्परिक भारतीय संस्कृति से अधिक परिचय नहीं था। [रुक्मिणी] इसी कारण उन्हें छात्रा के रूप में लेने में झिझक रही थीं। जो भी हो, विभिन्न सम्बद्ध पक्षों के बारे में उनकी परीक्षा लेने पर हमने पाया कि उनमें अच्छी नर्तकी बनने के लक्षण थे। तब मैंने [रुक्मिणी] को एक मौका देने के लिए मनाया, और वे मान भी गयीं, लेकिन कुछ झिझक के साथ।[99]

सन 2005 में, सैमसन को 'कलाक्षेत्र' का नया निदेशक नियुक्त किया गया। सन 2006 में भरत नाट्यम के आध्यात्मिक मूल के उन्मूलन को उचित ठहराकर उन्होंने समाचार माध्यमों में एक तूफान खड़ा कर दिया। सन 2006 में समस्या तब खड़ी हुई जब 'आर्ट ऑफ़ लिविंग फाउण्डेशन' के प्रमुख श्री श्री रविशंकर ने चेन्नई में अपने द्वारा चलाये जाने वाले 'हेल्थ एण्ड ब्लिस' (स्वास्थ्य और आनन्द) नामक धार्मिक

पाठ्यक्रम के उद्घाटन समारोह में ‘कलाक्षेत्र’ के विद्यार्थियों की भागीदारी को रोकने के लीला सैमसन के प्रयासों के प्रति चिन्ता व्यक्त की। एक लोकप्रिय तमिल साप्ताहिक आनन्द विकटन के अनुसार सर्वाधिक परेशानी में डालने वाला पक्ष है लीला सैमसन द्वारा बताया गया कारण। उन्होंने कहा था कि : ‘इस आयोजन का हिन्दू धर्म से लेना-देना है। इसलिए ‘कलाक्षेत्र’ के विद्यार्थियों को इसमें भाग लेने की आवश्यकता नहीं है’।[100]

इसके कुछ ही समय बाद ‘हिन्दू वॉयस’ (*Hindu Voice*) नामक पत्रिका में, जिसका संचालन हिन्दू राष्ट्रवादी करते हैं, एक आलेख छपा जिसमें दावा किया गया कि ‘कलाक्षेत्र’ में सैमसन के संरक्षण में विनायक की अधिकांश प्रतिमाएँ हटा दी गयी थीं जिनकी विद्यार्थियों द्वारा नियमित पूजा करने का इतिहास था। काफी आलोचना के बाद ही उन्होंने एक प्रतिमा को फिर से स्थापित कर दिया, लेकिन सभी को नहीं। सैमसन ने आदेश दिया कि इस देवता की प्रार्थनाएँ बन्द कर दी जायें, और प्रतिमाओं पर लपेटे वस्त्रों को भी हटा दिया जाये।[101] जैसे ही यह एक प्रमुख विवाद बना, सैमसन प्रतिक्रिया व्यक्त करने के लिए विवश हो गयीं, लेकिन उन्होंने सभी आरोपों का खण्डन किया। उन्होंने दावा किया कि ‘कलाक्षेत्र में कभी वैसी मूर्तियाँ नहीं रहीं जिनकी पूजा होती थी। जितने भी स्थानों पर हम पूजा करते थे, वहाँ केवल एक दीपक प्रज्ज्वलित किया जाता था, धर्मशास्त्रीय सिद्धान्तों और हमारे पूर्वजों द्वारा अनुमोदित सर्वोच्च दार्शनिक सिद्धान्तों के अनुसार’।[102]

जहाँ एक ओर शिव का नटराज रूप ब्रह्माण्डीय नर्तक का प्रतिरूपण करता है, वहीं पारम्परिक रूप से भारतीय नर्तकों द्वारा नाचना प्रारम्भ करने के पहले नृत्य करते हुए गणेश का आवाहन किया जाता है। लीला सैमसन द्वारा इन ‘मूर्तियों’ को हटाना भरत नाट्यम को इसके मूल से काटने का प्रयास है, धर्मनिरपेक्षीकरण की आड़ में, और उसके बाद इसे ईसाई धर्मशास्त्र तथा प्रतीकों में पिरोने के लिए। ‘मूर्ति पूजा’ के विरुद्ध उनका रवैया उनकी ही संरक्षिका और संस्थान की संस्थापिका रुक्मिणी अरुण्डेल का प्रतिकार करता है, जिन्होंने विभिन्न देवताओं की प्रतिमाओं के हिन्दू पूजन का बचाव किया था :

> हम जिन गीतों पर नृत्य करते हैं वे सभी देवी-देवताओं के हैं। आप पूछ सकते हैं, इतने सारे देवी-देवता क्यों हैं? एक मात्र उत्तर जो मैं दे सकती हूँ, इतने देवी-देवता क्यों न हों?[103]

रुक्मिणी ने ‘वैश्विक धर्म’ की धुँधली अवधारणा का समर्थन नहीं किया और वास्तव में, यह कहते हुए इस प्रकार की लाक्षणिक आध्यात्मिकता की विशेष रूप से आलोचना की :

> कुछ लोग कहते हैं, ‘मैं वैश्विक धर्म में विश्वास करती हूँ’, लेकिन जब मैं उनसे पूछती हूँ कि क्या वे हिन्दू धर्म के बारे में कुछ जानते हैं, तो वे नहीं में उत्तर देते हैं। वे ईसाइयत के बारे में कुछ नहीं जानते, न ही बौद्ध या किसी अन्य धर्म के

बारे में जानते हैं। दूसरे शब्दों में, वैश्विकता किसी के बारे में कुछ नहीं जानना है। ... वास्तविक अन्तर्राष्ट्रीयकरण तो सबमें जो सर्वोत्तम है उसका सही अर्थों में उभरना है ... लेकिन भारत में, जब मैं भारत कहती हूँ, मेरे कहने का आशय साधु-सन्तों के भारत से है जिन्होंने इस देश को इसका मुख्य ज्ञान दिया, जिसमें से एक जीवन का आदर्श निकला, और दिव्यता का जो सभी जीवों में निवास करती है; न कि केवल मानवों में।[104]

प्रात:काल की सभा में, सैमसन ने कथित रूप से विद्यार्थियों और शिक्षकों से कहा कि मूर्तिपूजा एक अन्धविश्वास है और 'कलाक्षेत्र' में इसे हतोत्साहित किया जाना चाहिए। शिकायतें थीं कि उनके द्वारा चुने गये शिक्षकों ने गीत गोविन्द की व्याख्या अपमानजक तरीके से की। रुक्मिणी अरुण्डेल द्वारा नर्थना विनायकर के साथ मिलकर जो प्रमाणपत्र का प्रारूप तैयार किया गया था उस पर शिव का प्रतीक अंकित था। वर्तमान प्रमाणपत्र के प्रारूप को बदल दिया गया है और उस पर अब कोई हिन्दू प्रतीक नहीं है।[105]

हिन्दू कथाओं और प्रतीकों का अवमूल्यन उपहास के स्तर तक करने के लिए सैमसन की आलोचना की गयी है, जिसमें सैमसन ने उनकी तुलना वॉल्ट डिज्नी (Walt Disney) के चरित्रों, बैटमैन और स्टार वार्स के विचित्र चरित्रों से की थी'।[106] इसके विपरीत, रुक्मिणी कुमारसम्भव काव्य में प्रतीकवाद के गूढ़ अर्थ की व्याख्या करती हैं :

कुमारसम्भव की कथा मुझे क्यों प्रसन्नचित्त कर देती है? प्रतीकवाद के कारण। पार्वती अन्ततः जो विजय प्राप्त करती है, वह वासना नहीं, बल्कि भक्ति और स्वयं की उत्कृष्टता है। पार्वती शिव को जीत लेती है और उनके साथ एकीकृत हो जाती है, क्योंकि उन्होंने महत् को खोज लिया है, जो वास्तव में ईश्वर को पाने का एकमात्र रास्ता है। यह अति सुन्दर सौन्दर्यशास्त्र है। शिव ने उस सबको भस्म कर दिया जो भौतिक है। इसलिए एक नर्तक या संगीतकार को सभी विचारों को भस्म कर देना ही चाहिए जो कचरा है और स्वर्ण को बाहर निकालना चाहिए जो अन्दर है।[107]

वे रामायण और महाभारत को 'भारतीय नृत्य की अनिवार्य अभिव्यक्ति' बताती हैं।[108] लीला सैमसन भारतीय कथाओं को मानव रचित मानती हैं। इसके विपरीत रुक्मिणी अरुण्डेल श्री राम, श्री कृष्ण और बुद्ध के बारे में इस प्रकार कहती हैं :

भारत विश्व शक्ति क्यों था? क्योंकि श्री कृष्ण इस देश में रहे थे, यहाँ श्री राम रहे थे और ऐसा ही भगवान बुद्ध ने किया था। यह उनकी शिक्षा ही थी जिसने भारत को एक महान विश्व शक्ति बना दिया था।[109]

जिनमें लीला सैमसन बैटमैन और मिकी माउस के चरित्र देखती हैं, उनमें 'कलाक्षेत्र' की संस्थापक अरुण्डेल सर्वाधिक उदात्त प्रकार के महान विश्व शिक्षक और प्रतीकवाद को देखती हैं। सैमसन के समायोजन में भरत नाट्यम को उसका

महत्वपूर्ण आध्यात्मिक, भक्तियुक्त, सौन्दर्य और शैक्षणिक आयाम भी नहीं दिया गया, और उसे घसीटकर कार्टूनों के बेढंगे, भड़कीले स्तर तक पहुँचा दिया। इस प्रकार, लीला सैमसन के अपने शब्दों में, हथियाने की प्रक्रिया को इसके महत्वपूर्ण चरणों में देखा जा सकता है : प्रारम्भ में कला रूपों को अहिन्दू और पन्थ निरपेक्ष बनाकर, और उसके बाद उनका ईसाईकरण करके।

तमिल लोक-कलाओं का ईसाईकरण

लोक-कलाओं और हिन्दू धर्म के बीच परस्पर विशिष्ट विभाजन स्थापित करने के मिशनरी विद्वता के अथक प्रयास जारी हैं। इसके लिए परिकल्पना का ढाँचा एक शताब्दी पहले रिस्ली, हॉजसन, और कॉल्डवेल के कार्यों से लिया गया है। 'उच्च' कला को ब्राह्मणों द्वारा दमन के रूप में दर्शाया गया है, और लोक-कला को द्रविड़ों के विद्रोह के रूप में।

कला जिसे 'उच्च' परम्परा के रूप में माना जाता है और कला जिसे लोक-स्तर की परिधि वाले या 'अल्प' परम्परा के रूप में देखा जाता है, वास्तव में सम्पूर्ण भारत में एक ही निरन्तरता के दो सहजीवी ध्रुव के अंग हैं। उच्च परम्परा प्रारूप के तौर पर लोक स्तर पर संस्कार-पद्धति और धर्मशास्त्रीय ढाँचा उपलब्ध कराती है, जहाँ प्रथाएँ कम औपचारिक होती हैं और उनका उद्देश्य लोकहित की सेवा होता है। नटराज की सांस्कृतिक मूर्ति इन दोनों ध्रुवों के बीच एक पुल का एक उदाहरण है : 'उच्च' संस्कृति के पाशुपत घुमन्तू साधु को एक आनन्दातिरेक बेसुधी की अवस्था में दिखाया गया है जो 'लोक' संस्कृति को ही प्रस्तुत करता है।

एक ईसाई महाविद्यालय ने, जिसमें फोर्ड फाउण्डेशन द्वारा वित्त पोषित एक लोकगीत विभाग है, लोकगीतों पर एक पाठ्यपुस्तक निकाली थी, जो विशेष रूप से औपनिवेशिक भारतविद्या और मार्क्सवाद से पश्चिमी उपकरणों का उपयोग करती है।[110] इसके एक विद्वान एस.डी. लॉर्डू (S.D. Lourdu), ने दावा किया कि लोकगीतों का उनका अध्ययन तमिल लोक-देवताओं की पहचान को फिर से बनाने में मदद करेगा। लॉर्डू के अनुसार, अधिकांश तमिल देवता और देवियाँ जैन या बौद्ध धर्म से आयी हैं, और बाद में शैव मतावलम्बियों द्वारा उनका रूपान्तरण किया गया था। उन्होंने एक हिन्दू लोक-गीत के स्थान पर उसका ईसाई संस्करण समान रूप से असली लोक साहित्य के उदाहरण के रूप में प्रस्तुत किया। मूल लोक-गीत वर्णन करता है कि किस प्रकार तमिल देव मुरुगन की पत्नी वल्ली ने भागकर स्वयं को एक पर्वत के निकट छिपा लिया था। (इसी का एक अन्य प्रकार वल्ली के क्षीरसागर के उस पार जा छिपने की बात कहता है।) भगवान मुरुगा ने, जो वल्ली के दिव्य मुख से वियोग नहीं सह सके, उन्हें खोजा।[111] लॉर्डू इसकी तुलना एक ईसाई गीत से करते हैं : 'ईसा मसीह भागे और उन्होंने स्वयं को एक झाड़ी में छुपा लिया। मेरी ने ईसा मसीह को क्षीर सागर के पार तक खोजा'।[112] जहाँ एक ओर किसी समुदाय में पीढ़ियों में एक

लोकगीत का स्वरूप उभरकर सामने आता है, वहीं यहाँ एक विद्वान अस्तित्व में बनी हुई हिन्दू लोक परम्पराओं को ईसाई परम्पराओं में बदलता है, और इस प्रक्रिया में वल्ली और मुरुगन के काम सम्बन्ध और मेरी तथा ईसा मसीह के बीच माता-पुत्र के सम्बन्ध के बीच विभ्रम पैदा करता है।

इसमें आश्चर्य नहीं कि इस ईसाई महाविद्यालय द्वारा भारत की स्वतन्त्रता की पचासवीं वर्षगाँठ मनाने के लिए प्रकाशित एक पुस्तक में लॉर्डू भारत के अति-प्रिय राष्ट्रीय गीत 'वन्दे मातरम्' पर अश्लील फब्ती कसते हैं, जैसे 'वन्दे मूत्रम्! मैं मूत्रत्याग करना चाहता हूँ। मुझे एक पात्र और पेय (शराब) दो'।[113]

9
'द्रविड़' ईसाइयत का प्रचार

सन 2000 से सन्त टॉमस द्रविड़वादी ईसाइयत सम्बन्धी धोखाधड़ी को तमिलनाडु की जनता के बीच ले जाया गया है और उसे उन अन्तर्राष्ट्रीय शक्तियों द्वारा समर्थन भी प्राप्त हुआ है जो भारत के प्रति सचमुच विद्वेषपूर्ण भावना रखती हैं। यह अध्याय इस घटनाक्रम को सम्मेलनों की एक श्रृंखला के माध्यम से ढूँढ़ता है जो भारत और विदेशों में स्थित निहित स्वार्थों के बीच निकट सहयोग स्थापित करने में सहायक हुए हैं। चित्र 9.1 इन गँठजोड़ों की अब तक की प्रमुख उपलब्धियों को दर्शाता है जो इस प्रकार हैं :

- तमिलनाडु में सभी जाति समस्याओं के लिए ब्राह्मण-आर्य षड्यन्त्र को दोषी ठहराया गया, और द्रविड़ ईसाइयत को एक समाधान के रूप में प्रस्तुत किया गया।
- एक बार जब वर्ण को स्पष्ट रूप से जाति से मिला दिया गया, द्रविड़ ईसाइयत के प्रचारकों ने डर्बन नस्लवाद विरोधी सम्मेलन को पत्र लिखा कि भारत अन्तर्राष्ट्रीय नस्लवाद की जननी है।
- भारत को एक द्रविड़ ईसाई राष्ट्र घोषित करते हुए प्रचार सामग्री प्रकाशित की गयी।
- अमरीकी ईसाई प्रचारकों ने द्रविड़ पहचान और ईसाइयत के बीच सकारात्मक सम्बन्ध स्थापित कर प्रवासी तमिलों को ईसाई बनाने के अवसर का दोहन करना प्रारम्भ कर दिया।
- 2007 और 2008 में आयोजित सम्मेलन यह दावा करके कई कदम आगे गये कि द्रविड़ रहस्यवाद, साहित्य, मूर्तिशिल्प, और नृत्य वास्तव में ईसाइयत की ही अभिव्यक्ति थे और उनके मूल सन्त टॉमस के कार्यों में थे।

इन घटनाक्रमों को इस अध्याय में विस्तार से बताया जायेगा।

Fig 9.1 सामाजिक क्षेत्र में द्रविड़ ईसाइयत का प्रवेश
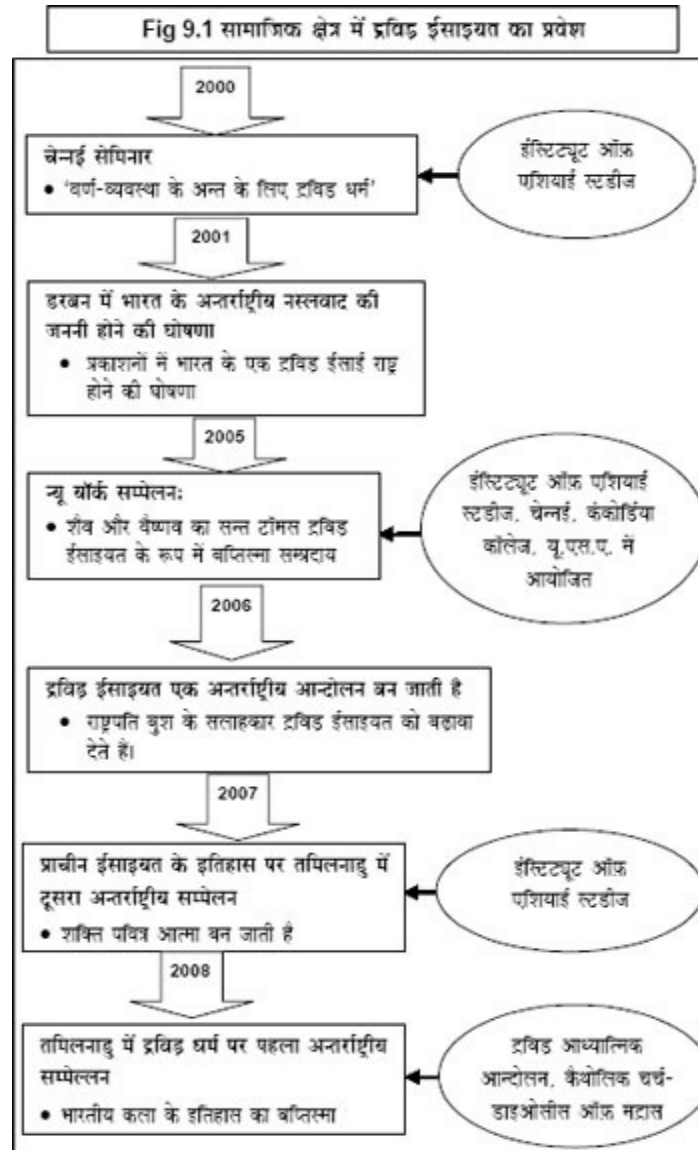
2000 : 'वर्ण-व्यवस्था के उन्मूलन के लिए द्रविड़ धर्म' पर गोष्ठी

जॉन सैमुएल के अधीन इंस्टीटच्यूट ऑफ एशियन स्टडीज ने स्वयं को देइवनयगम के शोध को प्रोत्साहित करने के लिए एक केन्द्रीय बिन्दु बना लिया है। सन 2000 में, देइवनयगम और इस संस्थान ने चेन्नई में एक ऐसे लक्ष्य के साथ एक गोष्ठी का आयोजन किया जो सुनने में भोला-भाला था : भारत में जाति और धर्मों के संघर्षों का उन्मूलन और भारत की शान्ति और सामाजिक तालमेल की पुनर्स्थापना कैसे की जाये। उसमें बड़ी संख्या में द्रविड़वादी राजनीतिक व्यक्तित्व आये थे और द्रविड़वाद और ईसाइयत के बीच सम्बन्ध पाटने के लिए यह आयोजन एक मोड़ की तरह उपयोग में आया। गोष्ठी का समापन एक घोषणा के साथ हुआ जिसका सार इस प्रकार है :

1. अगर द्रविड़ स्वयं को आर्यों के दमन से मुक्त करना चाहते हैं जो जारी है तो उन्हें अपनी ऐतिहासिक महानता समझनी चाहिए उन्हें अपनी वैश्विक आध्यात्मिक विलक्षणता को प्राप्त करके, जिसे ऐतिहासिक साक्ष्य के माध्यम से खोजा जा सकता है, हीन भावना त्याग देनी चाहिए।
2. जब द्रविड़ों को उनके धर्म की घोषणा करने को कहा जाये तो उन्हें इसकी घोषणा 'द्रविड़ धर्म' के रूप में करने विकल्प अपनाना चाहिए, या किसी अन्य स्वीकार्य शब्दावली का जिसका एक ऐतिहासिक आधार है। उन्हें हिन्दू धर्म से दूर रहना चाहिए, जो महान द्रविड़ पहचान के लिए हानिकारक रहा है।[1]

2001 : भारत अन्तर्राष्ट्रीय प्रजातिवाद की जननी घोषित

दक्षिण अफ्रीका के डर्बन में 'नस्लवाद, नस्लीय भेदभाव, विदेशियों से विद्वेष और असहिष्णुता' के विरोध में आयोजित संयुक्त राष्ट्र विश्व सम्मेलन में सक्रिय कार्यकर्ताओं ने इस विषय को विकसित करना जारी रखा कि हिन्दू धर्म, ब्राह्मणों और आर्यों द्वारा किया गया षडयन्त्र लगभग प्रत्येक विश्वव्यापी सामाजिक समस्या के लिए उत्तरदायी था। देइवनयगम और उनकी पुत्री देवकला ने अपनी पुस्तक 'इण्टरनैशनल रेसिज्म इज द चाइल्ड ऑफ़ इण्डियाज कास्टिज्म' (*International Racism is the Child of India's Casteism*) का वितरण किया।[2] उन्होंने अपने निष्कर्ष की व्याख्या निम्न प्रकार से की :

- संस्कृत ईसाइयत के बाद आयी, और इसे द्रविड़ों द्वारा सृजा गया था (पृ. 9)। विलियम जोन्स को संस्कृत और ग्रीक/लैटिन के बीच समानता को लेकर धोखा हो गया और वे सोचने लगे कि यह प्राचीन थी। (पृ. 10)
- टॉमस प्रारम्भिक ईसाइयत को भारत लाये, लेकिन कपटी ब्राह्मणों, विशेषकर आदि शंकर, ने इसमें वर्ण-व्यवस्था को घुसाकर इसे विकृत कर दिया। (पृ. 15)
- नस्लवाद भारत के आर्य ब्राह्मणों द्वारा शुरू किया गया था, और यह ईसाइयत में भी घुस गया, जो पहले से ही गोरे यूरोपीय लोगों के नियन्त्रण में थी। ऐसा इसलिए हुआ क्योंकि यूरोपीय जनों को विश्वास दिलाया गया कि वे भी नस्ल से आर्य हैं। (पृ. 14)

आर्यों और/या ब्राह्मणों का गोरों से मिलान, और द्रविड़ों का कालों से, और गहरा हो गया है और इसका अफ्रीकी दलित अभियान के साथ विलय कर दिया गया है जो दलितों की तुलना अफ्रीकियों से करता है। इस अभियान का मिशन है द्रविड़ और दलितों को एक साथ लाना, उनको इस प्रकार चित्रित करते हुए कि वे ही भारत के दमित 'काले' हैं। इसकी और व्याख्या आगे बारहवें अध्याय में की जायेगी।

देइवनयगम की पुस्तक ने संयुक्त राष्ट्र से माँग की कि विश्व के सभी स्थानों से नस्लवाद समाप्त किया जाये। हालाँकि यह एक मानवीय माँग है, देइवनयगम के तरीके मुख्यत: एक मूल हिन्दू संस्थान—शंकर मठों—पर दुष्टतापूर्ण प्रहार से बने हैं। ये मठ नौवीं शताब्दी में दक्षिण भारत के एक प्रसिद्ध सन्त शंकर द्वारा स्थापित किये गये थे। हालाँकि ये चार मठ, या धार्मिक संस्थान, भौगोलिक रूप से भारत के चारों कोनों में स्थित हैं और भारतीय सांस्कृतिक एकता के प्रतीक के रूप में अग्रणी माने जाते हैं, देइवनयगम ने इन्हें बन्द करने की माँग करते हुए इन पर 'विश्व भर में' सभी प्रकार के नस्लवाद के ऐतिहासिक स्रोत होने का आरोप लगाया है :

> विश्व से नस्लवाद को समाप्त करने के लिए भारत से वर्ण-व्यवस्था को समाप्त किया जाना चाहिए। चूँकि वर्ण-व्यवस्था तोड़े-मरोड़े गये धार्मिक विश्वासों, वंशानुगत विशेषाधिकार, और धर्म-प्रमुखों को दिये गये अधिकारों से जुड़ी है, अर्थात, शंकर मठों को हटा दिया जाना चाहिए। जब धर्म-प्रमुखों को दिये गये वंशानुगत विशेषाधिकार हटा दिये जायेंगे, भारत की वर्ण-व्यवस्था समाप्त हो जायेगी। जब भारत से वर्ण-व्यवस्था समाप्त हो जायेगी, विश्व से नस्लवाद का उन्मूलन हो जायेगा। अगर यह नहीं होता है... यह न केवल पूरे विश्व में नस्लवाद को जारी रखेगा, बल्कि पूरे विश्व में तोड़े-मरोड़े गये धार्मिक विश्वासों के द्वारा नस्लवाद का कैंसर भी फैलायेगा और विश्व शान्ति को नष्ट करेगा।[3]

एक अन्य पुस्तिका में देइवनयगम व्याख्या करते हैं कि :

> आर्य ब्राह्मणों ने द्रविड़ों के धर्मों—जैसे बौद्ध, जैन और वैष्णव—को हथिया लिया। तमिलनाडु के भक्ति आन्दोलन से उन्होंने शैव और वैष्णव एकेश्वरवाद की परिकल्पना को लिया और उसे तोड़-मरोड़कर अद्वैतवाद में बदल दिया (मैं ईश्वर हूँ); इस प्रकार दावा करते हुए कि ब्राह्मण ही ईश्वर है ... ब्राह्मणों ने नस्लवाद और वर्ण-व्यवस्था को जारी रखने के लिए नवीं शताब्दी में सम्पूर्ण भारत में शंकर मठों की स्थापना की...[4]

2004 : 'भारत एक द्रविड़ ईसाई राष्ट्र है, और ईसाइयों ने संस्कृत बनायी'

2004 में देवकला ने कार्यालय के बाहर काम करने वाले मिशनरियों और ईसाई प्रचारक संस्थानों के लिए 'इण्डिया टॉमस द्रविड़ ईसाई राष्ट्र है...कैसे? (India is a Thomas Dravian Nation...How?) नामक एक चार सौ पृष्ठों की मार्गदर्शक पुस्तक का प्रकाशन किया।[5] यह पुस्तक इस प्रकार की घृणा से भरी हुई है :

> आर्यों द्वारा स्त्रियों, दुष्टतापूर्ण योजनाओं, मादक पदार्थों, और शिक्षा से वंचित करने के माध्यम से द्रविड़ शासक धूर्तता से ठगे गये थे। 'अहं ब्रह्मास्मि' का विचार एक अन्य बुरी अनीश्वरवादी परिकल्पना थी जो आर्यों द्वारा लायी गयी। मूल रूप से, 'अहं ब्रह्मास्मि' का अर्थ था 'ईश्वर मुझमें हैं', लेकिन शंकर ने इसे धूर्ततापूर्वक 'मैं ईश्वर हूँ' में बदल दिया।[6]

यह पुस्तक प्रश्नोत्तर भाग में कइ हास्यास्पद और गलत जानकाारियों वाले दावे भी करती है जिनका उद्देश्य मिशनरियों को प्रशिक्षण देना है, जैसे :

प्रश्न : संस्कृत का काल क्या है?

उत्तर : संस्कृत 150 ईस्वी की है। यह ईसा मसीह के बाद आयी।

प्रश्न : कौन-सी सात भाषाओं से संस्कृत बनी है?

उत्तर : तमिल, पालि, हीब्रू, ग्रीक, लैटिन, फारसी और अरामाइक।

प्रश्न : संस्कृत भाषा किसने बनायी?

उत्तर : टॉमस ईसाइयों ने संस्कृत भाषा बनायी। संस्कृत का उद्देश्य भारत के अन्य भागों में ईसाइयत का विस्तार करने में सहायता करना था, जहाँ तमिल नहीं बोली जाती थी।[7]

2005 : सन्त टॉमस द्रविड़ ईसाइयत के रूप में हिन्दू धर्म की पुनर्कल्पना पर न्यू यॉर्क सम्मेलन

2005 में 'भारत में सन्त टॉमस के उदय से लेकर वास्को द गामा तक की प्रारम्भिक ईसाइयत का इतिहास पर पहला अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन' आयोजित करने के लिए तीन संगठन जुटे। ये थे : द इंस्टीटच्यूट ऑफ एशियन स्टडीज, द ड्रैविडियन स्पिरिचुअल मूवमेंट जिसकी स्थापना देइवनयगम ने की थी, और न्यू यॉर्क क्रिश्चियन तमिल टेम्पल। इस आयोजन के बारे में जानकारी का एक हिस्सा अपने ईसाई प्रचारक झुकाव के बारे में गर्व से कहता है :

> यह विशाल परियोजना हमारे ईसाई प्रचारक को गर्व की गहरी भावना और संकल्प के साथ काम करने के लिए प्रोत्साहित करे, वह भी उत्तम और आकर्षक सामग्री के साथ ताकि हमारे ईश्वर का राज्य इस धरती पर विस्तार पा सके, और इस प्रकार सामान्य रूप से समूची मानवता पर, तथा विशेष रूप से भारतीय राष्ट्र पर शान्ति और समृद्धि की वर्षा हो।[8]

न्यू यॉर्क सम्मेलन की आधिकारिक घोषणा में बिना झिझक के दावा किया गया कि भारत की शास्त्रीय परम्पराएँ, जिनमें तमिल साहित्य, शैव मत, वैष्णव मत, और महायान बौद्ध भी शामिल हैं, ईसाइयत से ही एक विशेष स्वरूप देकर निकाली गयी हैं :

> तमिलनाडु में ईसाइयत ... बड़ी सम्भावना वाली शक्ति थी और इसकी नैतिकता तथा अन्य धर्मशास्त्री संहिताएँ बहुत शक्तिशाली रूप में अभिव्यक्त हुईं यहाँ तक कि तिरुकुरल और नालादियार जैसी धर्म-निरपेक्ष तमिल प्राचीन कालजयी रचनाओं में भी। इसका प्रभाव मूल निवासियों की पूजा पर भी अनुभव किया जाता है और विशेषकर शैव मत और वैष्णव मत जैसे स्थानीय धर्मों में भी। स्वाभाविक है कि भारत को अनेक मिशनरी मिले, जिनमें से अनेक एशिया और विश्व के अन्य भागों के थे। यवनारों ने, जो सम्भवत: ग्रीस और रोम से आये लोग

थे, भारतीय भूमि में चारों तरफ ईसाइयत के सन्देश फैलाये। किसी तरह हम यह समझ पाये हैं कि सन्त टॉमस से प्रारम्भ हुए विख्यात व्यक्तियों के धर्मान्तरण के कार्यों के कारण भारतीय परिवेश में ईसाइयत की जड़ें गहरी हो गयी थीं। लेकिन इसके अधिकांश अभिलेख या तो खो गये हैं या नष्ट कर दिये गये हैं और अनेक बार संकटों का सामना करने के कारण ईसाइयत व्यापक परिवर्तन से गुजरी होगी। इसने भारत के अन्य धर्मों पर अपना गहरा प्रभाव छोड़ा है; यह अनेक भारतीय धर्मों के उदय में प्रमुख कारक रही थी। भारत के सभी धर्मों में इसकी उपस्थिति का अनुभव विविध रूपों में किया जाता है। महायान बौद्ध के उदय पर इसका प्रभाव, विशेषकर बोधिसत्व और साथ-साथ मैत्रेय बुद्ध का दूसरी बार आना जैसी परिकल्पना वास्तव में अद्भुत है।[9]

सम्मेलन की स्मारक पत्रिका में एक चित्र है जिसमें तिरुवल्लुवर अत्यन्त गम्भीरता से सन्त टॉमस को सुन रहे हैं, जिसके माध्यम से प्रकारान्तर से यह कहा गया है कि प्राचीन कालजयी तमिल साहित्य सन्त टॉमस से ही निकला है। एक अन्य छवि अत्यल्प वस्त्रों में एक व्यक्ति को दिखाता है जिसके बाल कुडुमी शैली में हैं (ब्राह्मण होने का संकेत चिह्न)[10] और वह गेरुआ वस्त्र पहने टॉमस को मार रहा है, जिन्हें प्रार्थना में तल्लीन दिखाया गया है।[11]

यह एक उच्चस्तरीय खेल था जो न केवल हिन्दू धर्म बल्कि सम्पूर्ण भारतीय और एशियाई आध्यात्मिक परम्पराओं के परिदृश्य को, जिनमें बौद्ध और जैन धर्म भी शामिल हैं, निगल जाने के लिए था। इसे अनेक अमरीकी अधिकारियों द्वारा समर्थन प्राप्त हुआ जिनमें सेनेटर हिलेरी क्लिंटन भी शामिल थीं, जिन्होंने लिखा :

> भारत में प्रारम्भिक ईसाइयत के इतिहास पर आयोजित पहला अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन भारत में प्रारम्भिक ईसाइयत की उपस्थिति की सम्पूर्ण खोज के लिए विभिन्न और विविध संसाधनों को सफलतापूर्वक जोड़ेगा। **मुझे भरोसा है कि सम्मेलन के दौरान प्रस्तुत किये जाने वाले संसाधनों की व्यापकता मध्यकालीन और प्राचीन भारतीयों पर ईसाइयत के प्रभाव और भारत तथा विश्व भर के सांस्कृतिक और राजनैतिक परिवेश पर उसके प्रभाव पर प्रकाश डालेगी।**[12]

अनेक शोध पत्रों ने सन्त टॉमस के तमिल संस्कृति पर प्रभाव को एक स्थापित तथ्य के रूप में प्रस्तुत किया। सभी मुख्य तमिल आध्यात्मिक मूल्यों को एक काल्पनिक टॉमस ईसाइयत में ढूँढ़ निकाला गया। भारतीय 'पुराणों' और इतिहास के प्रति औपनिवेशिक काल के ईसाई प्रचारक दृष्टिकोणों को, जिन्हें व्यापक रूप से अमान्य कर दिये जाने के बावजूद, दावों के समर्थन के लिए फिर से प्रस्तुत किया गया। उदाहरण के लिए, 'भारत में आरम्भिक ईसाइयत का इतिहास—एक सर्वेक्षण' नामक शोध पत्र में उसके लेखकों ने दावा किया कि 'ऐसे विद्वान हैं जो विश्वास करते हैं कि ... कृष्ण वृत्त की कथाओं ने ईसाई स्रोतों से व्यापक रूप से सामग्री ली है'। जिन विद्वानों को उद्धृत किया गया उनमें सर विलियम जोन्स भी शामिल हैं जिन्होंने

'माना कि चार सन्देश जिनमें ईसाइयत के प्रारम्भिक वर्षों की प्रचुर सामग्री थी भारत पहुँचे थे और वे हिन्दुओं को मालूम थे'। इसके लेखकों ने कृष्ण और ईसा मसीह के बीच हर समानता को सूचीबद्ध किया, सार्वभौमिक भावना से नहीं, बल्कि ईसाई संस्करण के प्रभुत्व को प्रमाणित करने के लिए। यह सब इस विचार पर खड़ा किया गया था कि कृष्ण पूजा भारत में देर से आया विकास क्रम था, जो ईसा मसीह के काल के बाद ही प्रारम्भ हुआ।[13]

इन विचारों की जड़ उन्नीसवीं शताब्दी के औपनिवेशिक ईसाई प्रचारक इतिहास लेखन में है, जिसे बहुत पहले से ही विद्वानों द्वारा अमान्य कर दिया गया है, लेकिन आश्चर्यजनक ढंग से ये एक बार फिर प्रचलन में आ गये हैं। स्थापित लेखक कृष्ण के इतिहास के बारे में स्पष्ट विचार रखते हैं, जैसा कि एडविन ब्रायन्ट ने दर्शाया है, जिन्होंने लिखा : 'एक दिव्य व्यक्तित्व के रूप में कृष्ण पूजा को सामान्य काल के प्रारम्भ से काफी पहले से ही ढूँढ़ निकाला जा सकता है'। उसके बाद वह कृष्ण के बारे में विस्तार से अनेक रचनाओं से सन्दर्भ प्रस्तुत करते हैं जो ईसा पूर्व चौथी शताब्दी तक की हैं।[14] ईसा मसीह के आने के कई शताब्दियों पूर्व प्राचीन ग्रीकों द्वारा कृष्ण के बारे में दिये गये उद्धरणों का उल्लेख करने वाले स्रोतों में से ब्रायण्ट केवल एक हैं :

> एक दिव्य व्यक्तित्व के रूप में कृष्ण के बारे में सबसे पुराना पुरातात्विक साक्ष्य बेसनगर या हेलिओडोरस का स्तम्भ है ... जो ईसा पूर्व 100 के आस-पास का है। इस पर का शिलालेख विशेष रूप से उल्लेखनीय है, क्योंकि यह स्पष्ट करता है कि इस काल तक एक विदेशी को कृष्ण धर्म में धर्मान्तरित किया गया है—हेलिओडोरस एक ग्रीक था।[15]

लेकिन ईसाई द्रविड़वादियों द्वारा ऐसे साक्ष्य की उपेक्षा की गयी, जो एक-दूसरे को आधिकारिक विद्वान के रूप में उद्धृत और पुनर्उद्धृत करते हैं। एक आलेख में शामिल 'चुनी हुई सन्दर्भसूची' में सूचीबद्ध छब्बीस प्रकाशनों में से कम-से-कम अट्ठारह ईसाई प्रचारकों के हैं।[16]

अमरीकी चर्चों के लोगों और प्रवासी तमिलों द्वारा अपने 'इंस्टीटच्यूट ऑफ एशियन स्टडीज' का स्वागत करने से जॉन सैमुएल प्रसन्न थे :

> भारतीय समाज के सभी वर्गों के विद्वानों ने, जिनमें विभिन्न देशों के भारतविद भी शामिल थे, इस केन्द्र को अग्रणी और निर्भीक अध्ययन करने का साहस रखने के लिए बधाई दी... भारतीय समाचार माध्यमों और राजनैतिक हलकों ने इंस्टीटच्यूट ऑफ एशियन स्टडीज के प्रयासों की भूरि-भूरि प्रशंसा की जब इसने शैव और वैष्णव अध्ययनों से जुड़ी अगली नयी परियोजनाओं पर काम प्रारम्भ किया...[17]

फिर भी, विडम्बना है कि जब एक बार तमिल देशी जनसंख्या में उनका ईसाई खेल स्पष्ट हो गया और जब चीजें पहले की-सी सुगमता से आगे नहीं बढ़ने लगीं तो

सैमुएल ने स्पष्ट किया कि उन्हें अपनी ईसाई प्रचारक रणनीति में बदलाव और उनके संस्थान के मूलभूत संगठनिक ढाँचे में व्यापक परिवर्तन करने पड़े। उन्होंने लिखा :

> लेकिन हमें उस समय अज्ञात विरोध का सामना करना पड़ा जब हमने ईसाई अध्ययनों से जुड़े हमारे कार्यक्रमों के बारे में घोषणा की, जो एशियाई भावनाओं और विरासत का एक महत्वपूर्ण अंग हैं। हालाँकि यह इस केन्द्र के मूल कार्यक्रम की रूपरेखा तय करता है और जो इसकी संघटना का एक महत्वपूर्ण अंग है, हमने प्रारम्भिक ईसाइयत से जुड़ी परियोजनाओं कर कार्य करने में अत्यधिक कठिनाइयों का सामना किया जब तक कि हमने इस संगठन के मूलभूत ढाँचे में पूर्ण परिवर्तन नहीं कर दिया।[18]

सम्मेलन में प्रस्तुत मुख्य शोध पत्रों के सारांश परिशिष्ट 'ङ' में दिये गये हैं।

तमिल साहित्य में 'ईसाई सारतत्व'

कुल मिलाकर, इन शोध पत्रों ने हर युग के तमिल समाज की महत्वपूर्ण उपलब्धियों के ईसाई मूल के होने का दावा किया। एक शोध पत्र की प्रस्तुतकर्ता, प्रोफेसर हेप्जिबा जेसुदान (Professor Hepzibah Jesudan), बुरी तरह इस बुखार के चपेटे में आ गयीं और आधिकारिक सारांश में उनके शोध पत्र का वर्णन निम्न प्रकार से किया गया :

> यह शोध पत्र तमिल साहित्य पर ईसाइयत के प्रभाव पर ध्यान केन्द्रित करता है। तिरुकुरल ने अपनी कविताओं में ईसाइयत की परिकल्पनाओं का समावेश किया है। एक जैन साहित्य चिलपथिकरम 'ईश्वर के पुत्र' का उल्लेख करता है जिन्होंने तैंतीस वर्ष की आयु में स्वर्गीय शरीर प्राप्त किया था—चिलपथिकरम के बाद के भाग में निर्देश पाये जाते हैं जो दस निर्देशों (Ten Commandments) जैसे हैं। कृष्णपिल्लई ने कम्पन के ईरामवतरम के दृष्टिकोण में ईसाई होने का दावा किया। भक्ति आन्दोलन का साहित्य ईसाई मूल्यों [यथोलिखित] की अभिव्यक्तियों से भरा पड़ा है। एक प्रसिद्ध सिद्ध चिववक्किआर ऐसे व्यक्ति की बात करते हैं 'जो मर गये और फिर जीवित हो गये'—सिद्ध साहित्य में ईसा मसीह के अनेक अप्रत्यक्ष सन्दर्भ हैं; जो उन्हें सारतत्व में ईसाई बनाते हैं।[19]

इसने पन्थ-निरपेक्ष विचारधारा वाले अनेक तमिल बुद्धिजीवियों को झटका दिया, जैसे कि जेयमोहन को, जो एक प्रमुख तमिल मार्क्सवादी और आधुनिक तमिल साहित्य के गाँधीवादी लेखक हैं। सर्वप्रथम हेप्जिबा जेसुदान के पति का उल्लेख करते हुए, जो एक प्रसिद्ध विद्वान भी हैं, जेयमोहन ईसाई पूर्वाग्रहों की खोज करते हैं :

> प्रोफेसर जेसुदासन इस चिन्तन प्रक्रिया के महत्वपूर्ण प्रारम्भिक बिन्दुओं में से एक हैं ...अपनी वृद्धावस्था में उन्होंने अपनी पत्नी प्रोफेसर हेप्जिबा जेसुदासन की सहायता से तीन खण्डों में विस्तार से तमिल का साहित्यिक इतिहास लिखा। इसका नाम 'काउण्टडाउन फ्रॉम सॉलोमन' (Countdown from Solomon) रखा

गया। अपनी पुस्तक के नाम की व्याख्या करते हुए प्रोफेसर ने लिखा कि तमिल साहित्य का सबसे प्राचीन उद्धरण बाइबल के ओल्ड टेस्टामेंट के सोलोमन के गीतों में मिलता है। यहाँ वे एक स्थान पर इस विश्वास का उल्लेख करते हैं कि टॉमस दक्षिण भारत आये... अपने अन्तिम दिनों में प्रो. हेप्जिबा जेसुदासन ने तर्क देना प्रारम्भ कर दिया था कि प्रेम, धर्म या न्यायप्रियता, चरित्र की सत्यनिष्ठा जैसे मूल्य तमिल साहित्य में केवल ईसाइयत के माध्यम से आये, क्योंकि प्राचीन मूर्तिपूजक तमिल मानस में ऐसी उदात्त परिकल्पनाएँ नहीं आ सकी होंगी।[20]

तमिल वैवाहिक रहस्यवाद के ईसाई मूल

तमिल भक्ति साहित्य में वैवाहिक रहस्यवाद की समृद्ध परम्परा महत्वपूर्ण है। रहस्यवादी कवि अन्दाल स्वयं को विष्णु की दुल्हन समझती थीं; और अनेक आलवार और नयनमार स्वयं को वैवाहिक रहस्यवाद की भावनाओं के माध्यम से शिव या विष्णु के साथ जोड़ते थे। इन परिकल्पनाओं ने तमिल आध्यात्मिक मानस के अन्त:करण को और व्यापक जन भक्ति की संस्कृति को एक स्वरूप दिया है। उदाहरण के लिए, मरखड़ी के तमिल महीने में हिन्दू सामूहिक रूप से अन्दाल के पद गाते हैं।

हालाँकि वैवाहिक रहस्यवाद के स्पष्ट वैदिक मूल हैं,[21] ईसाई विद्वान तमिल वैवाहिक रहस्यवाद की जड़ें बाइबल के सोलोमन के 'गीतों का गीत' में ढूँढ़ निकालते हैं। ईसाई प्रचारकों द्वारा इस परिकल्पना का उपयोग किया जा सकता है, जैसा कि इंस्टिटयूट ऑफ़ एशियाई स्टडीज जर्नल में छपे एक आलेख में किया गया है :

तमिल परम्परा और हीब्रू परम्परा, जैसा कि 'गीतों का गीत' में चित्रित किया गया है, समानान्तर रेखाओं पर चलती हैं। लेकिन साथ ही साथ इन दो परम्पराओं के बीच एक महत्वपूर्ण अन्तर है—हीब्रू परम्परा धर्म पर आधारित है जबकि तमिलों की परम्परा शुद्ध रूप से पन्थ-निरपेक्ष है।[22]

दूसरे शब्दों में, जहाँ एक ओर तमिलों की भावनाएँ बाइबल के सेमिटिक लोगों के समान ही हैं, वहीं उनमें बाइबल के सच्चे धर्म की कमी है। तमिल कालजयी रचनाओं को यहूदी-ईसाई मूल से मिलाने के समय भी हमेशा बाइबल की प्रत्यक्ष या परोक्ष श्रेष्ठता 'मूल' या 'शुद्ध' संस्करण के रूप में होती है, और तमिल संस्कृति की एक अपूर्ण संस्करण के रूप में जिसे अपने शुद्ध स्रोत में लौटने की आवश्यकता है। आलेख उसके बाद ईसाई मिशनरियों के इतिहास की व्याख्या करता है जो 'सच्चा धर्म' लाये और जिन्होंने प्रारम्भिक तमिल गीतों को भक्ति के रहस्यवाद में बदल दिया :

जहाँ तक तमिल साहित्य का प्रश्न है, मध्य युग भक्ति साहित्य का काल है... इस अवधि में, जिसका प्रारम्भ पहली शताब्दी से होता है, सन्त टॉमस जैसे अनेक ईसाई सन्त और जी.यू. पोप, एलिस और फादर बेस्ची जैसे विद्वानों का उस

> परिदृश्य में उदय हुआ... तमिल साहित्य, जो अब तक किसी भी तरह के धार्मिक या साम्प्रदायिक प्रभाव से मुक्त रहा था, विभिन्न सम्प्रदायों के प्रभाव में आना प्रारम्भ हो गया। ... हालाँकि ईसाई मिशनरियों का मुख्य उद्देश्य ईसाइयत का प्रचार करना था, तमिल साहित्य की उनकी सेवा वास्तव में अमूल्य है। तमिल साहित्य के प्रति अपने गहरे प्रेम के कारण और अपनी काव्यात्मक तेजस्विता तथा विद्वता के कारण उन्होंने तमिल साहित्य के विकास के लिए भारी योगदान किया। उपर्युक्त सन्तों और विद्वानों ने वैवाहिक रहस्यवाद में प्रत्यक्ष रूप से कुछ भी योगदान नहीं किया। हीब्रू परम्परा, जो ओल्ड टेस्टामेंट में अन्तर्निहित है, धीरे-धीरे तमिल साहित्य में भी अपना स्थान पाती गयी! ... यह सब मध्य काल में हुआ। भक्ति गीतों के रूप में अनगिनत मात्रा में भक्ति साहित्य उभर कर सामने आया। ये गीत सोलोमन के 'गीतों का गीत' से तुलनीय हैं।[23]

लेखक आगे तमिल साहित्य के महान भक्ति कवियों की सूची भी बनाते हैं जिनके काव्य वैवाहिक रहस्यवाद का प्रदर्शन करते हैं। वह निष्कर्ष निकालते हैं :

> वैवाहिक रहस्यवाद की तकनीक ने तमिल साहित्य में गहरी जड़ जमा ली है और इसमें चमक पैदा कर दी है। यह ईसाइयत का महान योगदान है और हम उस परम्परा के अत्यन्त ऋणी हैं।[24]

इससे जो कालानुक्रम ध्वनित होता है वह एक चौंधिया देना वाला असत्यीकरण है। सन्त टॉमस को छोड़कर यहाँ उल्लिखित प्रत्येक ईसाई वास्तव में तमिल परम्परा के महान वैवाहिक रहस्यवादी भक्ति कवियों के कई शताब्दियों बाद के हैं। जी.यू. पोप (G.U. Pope, 1820-1908), बेस्ची (Beschi, 1680-1747) और एलिस (Ellis, 1779-1819) आलेख में उल्लेखित तमिल कवियों के काफी समय बाद आये, जैसे ज्ञान सम्बन्दर (सातवीं शताब्दी), कुलशेखर आलवार (आठवीं शताब्दी) और अन्दाल (नौवीं शताब्दी)। फिर भी अध्येता ने कालानुक्रम की उपेक्षा की ताकि यह दावा किया जा सके कि तमिल भक्ति ईसाइयत का एक महान योगदान थी और वे उस परम्परा के अति ऋणी हैं। इसी विद्वान ने 2005 के न्यू यॉर्क सम्मेलन में एक शोध पत्र प्रस्तुत किया था जिसके बारे में कार्यक्रम पुस्तिका में निम्नलिखित सारांश दिया गया था :

> ईसाई परम्परा में वैवाहिक रहस्यवाद के गीतों और तमिल परम्परा के विशाल भक्ति साहित्य के भण्डार के बीच जिन लक्षणात्मक सम्बन्धों का अस्तित्व है उनका अध्ययन करना वर्तमान शोध पत्र का उद्देश्य है। ... यह शोध इस तथ्य को उजागर करता है कि ईसाई परम्परा ने तमिल भक्ति काव्य पर गहरा प्रभाव डाला है।[25]

2006 : द्रविड़ ईसाइयत एक अन्तर्राष्ट्रीय अभियान बना

न्यू यॉर्क सम्मेलन के तत्काल बाद, संयुक्त राज्य अमरीका में देइवनयगम के समर्थकों ने एक ‘विश्व तमिल आध्यात्मिक जागरण अभियान’ (World Tamil Spiritual Awareness Movement) का गठन किया। सन 2006 में ‘पेरियार तमिल पेरवई’ नामक एक द्रविड़वादी संगठन ने, जिसका नेतृत्व एक ऐसे व्यक्ति करते हैं जिन्हें ‘आग उगलने वाले अलगाववादी, लिट्टे समर्थक नेता, कट्टर तमिल राष्ट्रवादी’[26] कहा जाता है, देइवनयगम को ‘जन विकास के आध्यात्मिक नेता पुरस्कार’ (Spiritual Champion of People’s Development Award)) नामक पुरस्कार देकर सम्मानित किया।[27] सचमुच, देइवनयगम एक छोटे-मोटे, अमान्य सनकी से एक शक्तिशाली उत्प्रेरक बन कर उभरे हैं जो ईसाई प्रचारकों और द्रविड़ अलगाववादियों को एकजुट कर रहे हैं।

उच्च स्थानों पर बैठे ईसाई कट्टरपन्थियों में जो देइवनयगम द्वारा प्रभावित हो रहे हैं, एक उदाहरण हैं प्रोफेसर एम.एम. नाइनन, एक अवकाश प्राप्त प्रधानाचार्य और नगालैंड के एक पूर्व राज्यपाल के भाई। उनकी ई-पुस्तक ‘हिन्दूइज्म : वॉट रियली हैप्पन्ड’ (Hinduism: What Really Happened) के संक्षिप्त परिचय में हिन्दू धर्म को ‘भारत में टॉमस ईसाइयत के विधर्मी अपभ्रंश’ के रूप में परिभाषित किया है।[28]

राष्ट्रपति बुश के सलाहकार द्वारा द्रविड़ ईसाइयत प्रचार

मार्विन ओलास्की (Marvin Olasky), संयुक्त राज्य अमरीका के राष्ट्रपित जार्ज डब्ल्यू. बुश के एक सलाहकार, जो ‘वर्ल्ड मैगजीन’ (World Magazine) के मुख्य सम्पादक भी हैं, अपने विशाल अमरीकी पाठकों के लिए वैश्विक ईसाइयत के बारे में लिखते हैं। ‘ईसा मसीह ने कैसे हिन्दू धर्म को बदला?’ (How did Jesus change Hinduism?) शीर्षक से छपे अपने एक आलेख में अमरीकी पाठकों को हिन्दू धर्म के इतिहास का परिचय देते हुए वे कहते हैं :

> आज के हिन्दू धर्म के दो प्रमुख घटक—विष्णु के अनुयायी और शिव के अनुयायी—प्रारम्भिक हिन्दू धर्म से नहीं, बल्कि प्रारम्भिक ईसाई चर्चों से निकले हैं। सम्भवत: ईसा मसीह के शिष्य टॉमस द्वारा भारत में ईस्वी सन 52 से 68 के बीच इन्हें स्थापित किया गया।[29]

वे आगे व्याख्या करते हैं कि ईसाइयत के आने से पहले भारतीय धर्म या तो पशु बलि पर आधारित थे या अनीश्वरवादी थे (उनका आशय बौद्ध या जैन धर्म से है)। यह सन्त टॉमस थे जिन्होंने भारतीयों को विश्वास द्वारा मोक्ष का धर्म दिया, जिसके लिए पशु बलि की कोई आवश्यकता नहीं थी। यह ईसाइयत के ‘त्रयीमूलक धर्म’ का उपहार था जो ‘धरती पर अवतार के रूप में आने की ईश्वर की इच्छा का ऐलान करता था’।[30]

देइवनयगम ने ओलास्को से सम्पर्क कांचीपुरम के एक प्रसिद्ध मन्दिर में किया। उन्होंने ओलास्की के लिए ईसाई दृष्टिकोण से उस हिन्दू मन्दिर की व्याख्या की, जिसे ओलास्की ने बिना किसी समालोचना के स्वीकार कर लिया। बाद में ओलास्की ने उस हिन्दू मन्दिर में ईसाई प्रभाव के निम्न उदाहरण दिये :[31]

- चूँकि मन्दिर का आकार वर्गाकार नहीं है, ओलास्की ने महसूस किया कि यह अवश्य ही 'येरूशलम के मन्दिर की तर्ज पर बनाया गया होगा'।
- पुजारी ने मन्त्रोच्चारण करते हुए नारियल का पानी और एक औषधीय पत्ती के कुछ ठोस टुकड़े दिये, और ओलास्की ने इसे 'ईसा मसीह के अन्तिम भोज की रस्म के एक हिन्दू अनुकरण' के रूप में देखा।
- एक अन्य मूर्ति ने ओलास्की को भारत में ईसाइयों के उत्पीड़न का स्मरण कराया। उन्होंने वर्णन किया कि 'एक मूर्ति में एक व्यक्ति को एक नुकीले खूँटे पर सूली चढ़ाकर दण्डित किया जा रहा था। उसके दोनों हाथ बाहर निकले हुए थे जिससे लग रहा था कि कोई व्यक्ति सलीब पर टँगा है। उसके बगल में एक अन्य व्यक्ति की मूर्ति थी जिसे उल्टे लटका दिया गया था जैसे (एक परम्परा के तहत) पीटर को रोम में लटकाया गया था'। ये टिप्पणियाँ करने के बाद ओलास्की ने पूछा, 'क्या भारत के प्रारम्भिक ईसाइयों के साथ ऐसा ही हुआ था?'
- हिन्दू उनको सन्तोषजनक ढंग से नहीं समझा सके कि आखिर तीन की संख्या बार-बार एक प्रतीकात्मक उद्देश्य के रूप में हिन्दू धर्म में क्यों आती है। इसलिए ओलास्की ने अनुभव किया कि यह ईसाई ट्रिनिटी की ओर संकेत था, जिसे हिन्दुओं ने नहीं समझा।

भारत में और आगे विस्तार

2005 के न्यू यॉर्क सम्मेलन में भाग लेने वालों में एक थे डॉ. जे. डेविड भास्कर दोस (Dr. J. David Baskara Doss), जिनके पी-एच.डी. शोध पत्र का शीर्षक 'बाइबल की रोशनी में षडदर्शन और तमिलों का धर्म' (*Six Darshanas and the Religion of Tamils in the Light of the Bible*) था। वे ईसाई प्रचार को छिपाने के तरीकों पर गोष्ठियाँ आयोजित करते हैं, और वह पन्थ-निरपेक्ष नाम वाले एक ईसाई प्रचारक संस्थान के पाठ्यक्रम निदेशक हैं, जिसका नाम 'नेतृत्व प्रशिक्षण का राष्ट्रीय संस्थान' (*National Institute of Leadership Training*, NILT) है।[32] यह अपने 'नेतृत्व प्रशिक्षण' के उद्देश्य का वर्णन 'मूर्तिपूजकों' को ईसा मसीह तक पहुँचाने के लिए उनका नेतृत्व करने के रूप में करता है :

> मूर्तिपूजकों का नेतृत्व ईश्वर की ओर देखते हुए यह प्रार्थना करने के लिए करें, 'मुझे अपनी ओर खींचें, हम आपकी ओर दौड़े चले आयेंगे'। (Song 1:4) अगर

> वे ऐसा करते हैं, परमपिता उन्हें अवश्य ईसा मसीह के निकट ले जायेंगे (Jer. 31:3)। ईसा मसीह ने घोषणा की कि वे उनके पास आते हैं, क्योंकि परमपिता ने उन्हें अपनी ओर खींचा था (John 6:44)। ईसा मसीह इन लोगों को उपर उठायेंगे ताकि वे एक दिन उनके साथ हों (John 12:32)।[33]

दोस का 'भारतीय धर्म और दर्शन के विकास में सेंट टॉमस का योगदार' (*Contribution of St. Thomas to the Development of Indian Religion and Philosophy*) शीर्षक का आलेख कहता है :

> अनीश्वरवादी बौद्ध और जैन धर्म भारत में ईसा पूर्व छठी शताब्दी में ही अच्छी तरह स्थापित हो चुके थे। अप्रमुख-देवों की पूजा, राजाओं की पूजा, नायकों की पूजा, प्रकृति पूजा, बहुदेववाद, एकैकापि देववाद, द्रविड़ों की बलि पूजा और आर्यों की ऐसी ही पूजा, आदि, सन्त टॉमस के आगमन के समय भारत में प्रचलित थी। ... आर्यों द्वारा एक धार्मिक स्वीकृति के रूप में 'कर्म' और 'धर्म' के बीच अन्तर्सम्बन्ध की गलत ढंग से व्याख्या की गयी ताकि अपने ही दर्शनों का उपयोग करने वाले द्रविड़ों को दबा कर रखा जा सके। ... पाप की कटौती के लिए 'ऐतिहासिक अवतारी', ईस (ईसा > ईश्वर = ईसा मसीह) का बलिदान ही वह सन्देश था जिसे सन्त टॉमस ने भारत में प्रचारित किया था और यह भारतीय धर्म और दर्शन में जाकर घुल-मिल गया, और एक सिद्धान्त के रूप में विकसित हुआ था।[34]

दोस के संस्थान का एक अन्य आलेख बलपूर्वक कहता है कि व्यास एक टॉमस ईसाई थे, जो उसके बाद गीता और ईसा मसीह के सन्देशों (गॉस्पल) के बीच समानताओं की व्याख्या करता है :

> लगभग सभी भारतीय दर्शन और धर्म इस बात से सहमत हैं कि आत्मा बन्धनों में जकड़ गयी है। लेकिन वे यह नहीं बताते कि ये बन्धन आये कैसे।... भारत के धर्म और दर्शन के इतिहास में वेदान्त एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। भारतीय सांस्कृतिक पृष्ठभूमि में व्यास चिन्तन परम्परा के योगदान पर व्यापक शोध किये जाने की आवश्यकता है, क्योंकि इसकी ईसाइयत के सिद्धान्त की संगति है।[35]

अनेक हिन्दू जिनमें गुरु भी शामिल हैं भूल से यह सोचने लगते हैं कि इस तरह के शोध जो हिन्दू-ईसाई समानताओं को प्रदर्शित करते हैं, समरसता को बढ़ावा देने या दोनों विश्वासों की समान वैधता को दिखाने के सही रास्ते हैं। वास्तव में, अनेक हिन्दू नेता हिन्दू धर्म और ईसाइयत के सन्दर्भ-बिन्दुओं और ढाँचों के बीच इस प्रकार की समानता दिखाने वाले शोधों को सक्रिय रूप से प्रोत्साहित करते हैं। वे इस बात से अनभिज्ञ हैं कि वे सावधानी से बनायी गयी रणनीति के हाथों की कठपुतली बनते हैं, जो केवल धर्मान्तरण के लिए ही नहीं, बल्कि तमिलों के लिए एक अलग गैर-हिन्दू और गैर-भारतीय जातीय पहचान निर्मित करने के लिए एक सुव्यवस्थित तन्त्र द्वारा संचालित किये जा रहे हैं।

पोप द्वारा विषय में विभ्रम पैदा करना

2006 में पोप बेनेडिक्ट XLI ने एक भाषण दिया जिसमें उन्होंने कहा कि सन्त टॉमस फारस होते हुए भारत आये और उन्होंने पश्चिम भारत में धर्मान्तरण कराया, जिसका वास्तव में अर्थ है आधुनिक पाकिस्तान। इस तरह के सामान्य सन्दर्भ ने भारत में शक्तिशाली टॉमस गुट को इतना क्रोधित कर दिया कि उसके प्रकाशित संस्करण में इस कथा को संशोधित किया गया। यह विवाद इतना बढ़ा कि द टाइम्स ऑफ़ इण्डिया नामक समाचार-पत्र में एक लेख प्रकाशित हुआ जिसका शीर्षक 'टॉमस'स विजिट अण्डर डाउट' (सन्देह के घेरे में टॉमस की यात्रा) था।[36] यह घटना इस बात का संकेत देती है कि **टॉमस से जुड़ी कहानी, जो द्रविड़वादियों और ईसाई प्रचारकों के लिए इतनी अनिवार्य थी, कुल मिलाकर रोम में भी अस्पष्ट है**। महत्वपूर्ण बात यह कि संशोधनवादी कथावाचन का यह समकालीन उदाहरण दिखाता है कि किस प्रकार टॉमस की कथा को स्थानीय राजनीति की आवश्यकताओं के अनुरूप ढाला जा सकता है।

2007 : भारत में प्रारम्भिक ईसाइयत के इतिहास पर दूसरा अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन

2005 के न्यू यॉर्क सम्मेलन की सफलता ने 'प्रारम्भिक' भारतीय ईसाइयत पर दूसरे सम्मेलन का मार्ग प्रशस्त किया, जो 2007 में चेन्नई में आयोजित किया गया। टॉमस ईसाइयत के प्रचारकों ने मूलत: एक-दूसरे के पुराने शोध पत्रों को आधिकारिक सन्दर्भों के रूप में पुन: उद्धृत किया, ताकि वे अपने अतार्किक दावों को सही ठहरा सकें। भारतीय श्रोताओं और पाठकों को वही विद्वता परोसी गयी जिसे संयुक्त राज्य अमरीका में स्वीकार कर लिया गया था, और इसने उनकी प्रसिद्धि को और बढ़ा दिया। उदाहरण के लिए, इवैंजेलिकल चर्च ऑफ़ इण्डिया के संस्थापक, एजरा सर्गुनम ने सम्मेलन की स्मारिका में एक लेख लिखा जिसका शीर्षक था 'भारत के धर्म तन्त्रों, सांस्कृतिक विरासत पर ईसाइयत का प्रभाव' (*Impact of Christianity on the Belief Systems, Cultural Heritage of India*)। इसने कहा :

> विद्वानों द्वारा यह स्वीकार किया जाता है कि वे एक द्रविड़ विद्वान, वेदान्त व्यासार थे, जिन्होंने वेदों, उपनिषदों की श्रुति परम्परा को लिपिबद्ध किया। डॉ. देइवनयगम और अन्य प्राच्य विद्वानों के अनुसार वेदान्त व्यासार (या उनकी चिन्तन परम्परा के विद्वान) भारत में ईसाइयत के द्रविड़ स्वरूप को फैलाने के लिए उत्तरदायी थे। व्यासार ने धूप-अगरबत्ती, बलि, और प्रार्थनाओं जैसे कर्मकाण्डीय संस्कारों को अनुमोदित किया था जो सामी-द्रविड़ धर्मों के मूल में पाये जाते हैं।[37]

जहाँ एक ओर अधिकांश लेखों ने पहले सम्मेलन में प्रस्तुत शोध पत्रों को ही फिर से नया बनाते हुए सामग्री प्रस्तुत की, वहीं कुछ महत्वपूर्ण विस्तार भी हुए। उदाहरण के लिए, हेफ्जिबा जेसुदासन के शोध पत्र ने यह दिखाने का दावा किया कि कम्पन और तुलसी की रामायणों पर 'ईसाइयत का प्रभाव है'।[38] भास्कर दोस ने पूर्व मीमांसा पर 'पुराने सन्देश' और उत्तर मीमांसा पर 'नए सन्देश' के प्रभाव की विवेचना की।[39]

अन्य विद्वान अपने दावों में और अधिक साहसी बने। उदाहरण के लिए, मोजेज माईकल फैराडे (Moses Michael Faraday) द्वारा 2005 के न्यू यॉर्क सम्मेलन में प्रस्तुत शोध पत्र ने अधिक सामान्य दावा किया था कि 'सिद्ध कविताओं में जो गुप्त अन्तर्ध्वनि अन्तर्निहित है, उसे ईसाई परिकल्पनाओं और शिक्षा जैसे उपकरणों के माध्यम से ढूँढ़ निकालना होगा, क्योंकि वे सिद्ध साहित्य में ईसाइयत के प्रभाव को भी उजागर करेंगी'। लेकिन अब की बार उनका दावा अधिक जोरदार है :

> इस शोध पत्र का उद्देश्य धार्मिक जगत के इन [सिद्धों के] विचित्र स्वरों पर ईसाइयत और ईसा मसीह की शिक्षाओं के प्रभावों को सामने लाना है। ... शोध पत्र यह प्रमाणित करने का प्रयास करता है कि तमिल सिद्धों की निर्भीकता के पीछे के कारणों को सिर्फ़ तभी समझा जा सकेगा जब हम उन पर ईसाई शिक्षाओं के प्रभावों की पहचान कर लेंगे।[40]

अन्य उल्लेखनीय शोध पत्रों में शामिल थे : 'क्रिश्चियनिटी ऐण्ड महाभारत', 'ईसाइयत और महाभारत', 'जनजातियों के लोकगीतों में ईसाई विचार', 'ईसाई प्रचार के लिए स्थानीय तेलुगू कला रूपों का रूपान्तरण' (Christian Thoughts in Tribal Lore', 'Adaptation of Indigenous Telugu Folk Art Forms for Evangelism)।[41]

शक्ति बनीं पवित्र आत्मा (Holy Ghost)

हिन्दुओं द्वारा सर्वत्र शक्ति को दिये गये महत्व के कारण, तमिल संस्कृति के ईसाईकरण को सुगम बनाने के क्रम में, शक्ति के दर्शन और उनकी पूजा को अपना कर ईसाइयत में मिलाना अनिवार्य है, और इसलिए भी कि अब्राहम पर आधारित पन्थों में दिव्य स्त्री शक्ति का अभाव है। इसके लिए जिस षडयन्त्र का उपयोग किया गया, वह एक बार फिर सम्पूर्ण परिदृश्य में व्याप्त हो गया है : धृष्ट और अपरिष्कृत प्रयासों से लेकर जटिल धर्मशास्त्री तर्कों तक। इस प्रक्रिया का मोटा-मोटी स्वरूप इस प्रकार है :

- पहला लक्ष्य है तन्त्र और सम्बन्धित स्त्री शक्ति को हिन्दू धर्म से अलग करना और उनकी पहचान द्रविड़ 'जनजातिवाद' के साथ करना।
- हिन्दू धर्म का इस तरह किया गया विखण्डन तब उसे और आगे तोड़-मरोड़ कर सकने लायक बना देगा।

- उसके बाद की योजना यह है हिन्दू धर्म के तत्वों को, जैसे तन्त्र और शक्ति, ईसाइयत में रूपान्तरित करना और विलयित करना।

ऐल्फ हिल्टेबेइटेल (Alf Hiltebeitel), जिन्होंने दक्षिण भारत के ग्रामीण क्षेत्रों में मातृ देवी पूजन का व्यापक अध्ययन किया है, स्वीकार करते हैं कि उन्हें पश्चिमी अपने अग्रजों के भीतर 'कथित ''उत्तरी आर्य'' द्रौपदी सम्प्रदाय के लिए द्रविड़ महाकाव्यीय मूल की खोज करने की प्रेरणा का सन्देह होता है'।[42] जिस ढंग से पश्चिमी शिक्षा जगत के बुद्धिजीवी तन्त्र को स्पष्ट रूप से 'द्रविड़' और आर्य-विरोधी बनाने के प्रयास करते हैं, उसका एक प्रारूप नीचे दिया गया है। इस तरह के रूपान्तरण की एक नयी बात यह है कि **देवी काली** यूरोपीय ऐल्प्स पर्वतों से आयीं—जिसमें पूर्व परिकल्पना यह है कि प्राचीन काल में वहाँ काली चमड़ी वाले लोग निवास करते थे। काली की मूर्ति का अर्थ गोरी-चमड़ी वाले आर्यों के साथ उनके संघर्ष को इंगित करने वाला निकाला गया। यह तमिल जनता के मन में आर्य दादागिरी के शिकार होने की बात को बैठाकर भारत में विभाजनकारी भावनाओं को फैलाने के सुनियोजित तरीके को संरक्षण देने का एक अन्य प्रारूप है :

> प्रारम्भ में (देवी) काली मूल तान्त्रिक-द्रविड़ थीं, जिन्हें 'आधिकारिक' काली ने अन्ततः पीछे धकेल दिया। अगर आप उनके गुप्त द्रविड़ महत्व को पूरी तरह समझना चाहते हैं, तो आपको इस पर ध्यान देना होगा कि सभी सिर, सभी शव, पुरुषों के हैं और उनके रंग या तो गोरे हैं या गेहुँए : उनमें कोई स्त्री नहीं है, कोई काली चमड़ी वाला व्यक्ति नहीं है... एल्पीनो-मेडिटेरेनियन लोग मिश्रित देशी मूल के थे, जो भारतीय उष्णकटिबन्धीय वातावरण में रहते थे, और जिनकी त्वचा आज के द्रविड़ों की तरह काली थी। लेकिन उनके उत्तरी शत्रु 'पीले-चेहरे' वाले थे... इसलिए काली का उद्भव एक अच्छी माता के रूप में हुआ, अपने शत्रुओं के प्रति उनके क्रोध का प्रकटीकरण। अब द्रविड़ों के शत्रु अगर भयावह आर्य नहीं थे तो भला कौन थे? इस प्रकार काली ने आर्यों के लिए घृणा का अवतार किया और उनसे बेहतर तरीके से लड़ने और उनका दमन करने के लिए वे अस्त्र-शस्त्र से अच्छी तरह सुसज्जित हुईं, जो सभी द्रविड़ों के प्रिय हथियार थे, त्रिशूल को छोड़कर, जिसे रखना शिव का विशेषाधिकार है।[43]

कुछ ऐसे हिन्दू चिन्तक भी हैं जिन्होंने उन दावों का समर्थन किया है जो हिन्दू देवी-देवताओं को अतीत के यूरोप का बताते हैं। उनको इस बड़े खेल के बारे में नहीं पता है और इसका लम्बे अन्तराल में क्या असर पड़ने वाला है। फादर बेडे ग्रिफिथ (Father Bede Griffithrs), एक कैथोलिक पादरी ने भी, जिन्होंने दक्षिण भारत में अपना जीवन गुजारा और प्रायः हिन्दू साधु के वेष में रहे और उनके जैसा ही व्यवहार किया, हिन्दू धर्म के ईसाईकरण के लिए इसी तरह के विचारों को कार्यान्वित किया। उन्होंने हिन्दुओं को गर्व का अनुभव कराया कि उनका धर्म ईसाइयत से मिलता-जुलता है और इसलिए इसे एक सर्वव्यापी धर्म के रूप में देखा जा सकता है। लेकिन

उनके कार्यों का द्रविड़ों पर दूसरा प्रभाव पड़ा, और उन्होंने ईसाई प्रचारक रणनीतियों को हवा दी। उन्होंने यह कहते हुए तन्त्र को हिन्दू धर्म से अलग करने का प्रस्ताव रखा कि 'तन्त्र का यह अभियान हिन्दू और बौद्ध धर्मों में बाहर से आया। यह नीचे से आया अभियान था और अवश्य ही आर्यों के पहले के लोगों से आया होगा। तन्त्र का यह अभियान आर्य नहीं था, जो पितृसत्तात्मक थे, बल्कि आर्यों से पहले का था'।[44] उनके निधन के बाद, हिल्टेबेइटेल के शोध को बेडे ग्रिफिथ्स ट्रस्ट द्वारा प्रचारित किया गया है जिसके सूचनापत्र ने लिखा :

> बेडे ने अद्भुत ढंग से इस बात की खोज की कि किस ऐतिहासिकता से तान्त्रिक पाठ, जो तीसरी शताब्दी से सामने आने लगे थे, दक्षिण भारत के देशी द्रविड़ शैव मत से निकले, जिसमें माता के रूप में ईश्वर भक्ति बहुत प्रबल है, और इसलिए प्रकृति, शरीर, ज्ञानेन्द्रियों और काम भावना के मूल्यों पर बल देने का रुझान है। आर्यों की विष्णु परम्परा में जिन बहुत-सी चीजों को दबा देने की प्रवृत्ति थी, वे भी बाद में तन्त्र द्वारा पूजनीय बन गयीं।[45]

फादर टॉमस बेरी एक जाने-माने 'उदार' कैथोलिक धर्मशास्त्री हैं, जिन्होंने अपने काम-काजी जीवन का अधिकांश समय हिन्दू धर्म के अध्ययन में लगाया और पश्चिम में इसके बारे में व्यापक रूप से लिखा। धर्म के अधिकांश विद्वान उनके बारे में सोचते हैं कि वे ऐसे विद्वान हैं जो हिन्दू धर्म के बारे में अत्यन्त सहानुभूति रखते हैं, और जिन्होंने अपनी उदार ईसाइयत की परिकल्पना को पुन: संयोजित करने के क्रम में हिन्दू धर्म से बहुत कुछ लिया है। वे स्वीकार करते हैं कि श्री अरविन्द ने तन्त्र को एकीकृत भारतीय परम्पराओं के अभिन्न अंग के रूप में माना। लेकिन वह इस बात पर बल देते हैं कि हाल के 'शोध' ने दिखाया है कि तन्त्र द्रविड़ मूल का था और आर्यों से अलग था, और यह भी कि श्री अरविन्द इन 'तथ्यों' से अनभिज्ञ थे। बेरी कहते हैं कि यह द्रविड़ तन्त्र ही है जो सच्चे अर्थों में 'भारतीय' है, आर्य संस्कृत परम्पराओं के विपरीत। वे श्री अरविन्द की समझ में इस 'कमी' के प्रति 'खेद प्रकट करते हैं' कि तन्त्र 'आर्य और संस्कृत परम्परा से कम तथा आर्यों के पहले के लोगों और गैर-आर्य परम्पराओं से अधिक निकला है'।[46] वह आर्यों के वेदों में द्रविड़ शक्ति को शामिल करने 'और इस प्रकार भारत को फिर एक बार विश्व के राष्ट्रों की दृष्टि में ऊपर उठने के योग्य बनाने' के लिए श्री अरविन्द की प्रशंसा करने में ऐसी भाषा का उपयोग करते हैं जैसी संरक्षक लोग अपने नीचे के लोगों से करते हैं।[47]

एक बार जैसे ही हिन्दू घर्म से तन्त्र को अलग करने में सफलता मिली, और द्रविड़ तमिल तन्त्र को आर्य संस्कृत वेदों के विरुद्ध तनाव में लाया गया, वैसे ही तन्त्र और शक्ति को ईसाइयत में मिलाने का मार्ग प्रशस्त हो जायेगा। उसके बाद देवकला तन्त्र और शक्ति के लिए ईसाई मूल का दावा कर सकेंगी :

> भारत में ईसा पूर्व काल में कोई ईश्वरवादी धर्म नहीं था ... धर्मों का इतिहास यह प्रकट करता है कि दिव्यता का सिद्धान्त, अवतारों का सिद्धान्त, बलि का सफल

होना और विश्वास के साथ स्वयं को समर्पित करने के माध्यम से मोक्ष-प्राप्ति का सिद्धान्त, ईसाइयत के मूलभूत सिद्धान्त हैं। भारत में जो ईसाइयत ईसा काल की प्रारम्भिक शताब्दियों (या यूँ कहें कि पहली शताब्दी) से भारतीय भूमि, भारतीय संस्कृति और भारतीय भाषा में विकसित हुई, वह प्रारम्भिक ईसाइयत या सन्त टॉमस की ईसाइयत या सन्त टॉमस तमिल/द्रविड़ ईसाइयत है... जब ईसाई त्रयी को परमपिता, पवित्र आत्मा और पुत्र के रूप में व्याख्यायित किया गया तब कुछ लोगों ने पवित्र आत्मा को स्त्री रूप में परिकल्पित किया।[48]

2008 : तमिलों के धर्म पर पहला अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन

सन 2008 में चेन्नई के कैथोलिक धर्मप्रदेश और देइवनयगम के 'विश्व तमिल आध्यात्मिक जागरूकता आन्दोलन' ने संयुक्त रूप से तमिल धर्म पर अपने पहले विश्व सम्मेलन की घोषणा की। हालाँकि इस नाम में सभी तमिल धर्मों की ध्वनि निकलती है, लेकिन वास्तव में संयोजकों में एक भी हिन्दू नहीं था। संयोजकों में आर्चबिशप मलयप्पन चिन्नप्पा, ऑग्जिलियरी बिशप लॉरेंस पायस दोरईराज, डी. देइवनयगम और उनकी पुत्री देवकला थीं। सम्मेलन के परिचय प्रपत्र में विचार किये जाने वाले विषयों की सूची दी गयी थी :

> मानवों के उद्भव का लिमुरियाई सिद्धान्त; तमिलों का सुमेरू सभ्यता स्थापित करना; बेबल की घटना के पहले सर्वव्यापी भाषा के रूप में तमिल; ... सिंधु घाटी सभ्यता में स्मारक पत्थर की पूजा और बेथेल में पत्थर की पूजा जैसा कि बाइबल में वर्णित किया गया है... पुनरुत्थानित ईसा मसीह के सन्दर्भ में शिव का नृत्य—सजीव पत्थर ... तमिल भाषा, संस्कृति और धर्म को दास बनाना; ब्राह्मण —विदेशी आर्य ... संस्कृत का उद्भव दूसरी शताब्दी के बाद ही। वेद व्यास, कालिदास और वानमीकि (वाल्मीकि) जैसे संस्कृत लेखक द्रविड़ क्यों थे; अशोक के शासनादेशों में संस्कृत क्यों नहीं थी; संस्कृत किसने बनायी।[49]

कैथोलिक धर्माध्यक्ष विथयाथिल के उद्घाटन भाषण के साथ, जो 'कैथोलिक बिशप कॉनफ़रेन्स ऑफ इण्डिया' के अध्यक्ष हैं, सम्मेलन शुरू हुआ; उद्घाटन भाषण में उन्होंने बल देकर कहा कि सम्मेलन द्वितीय वैटिकन काउंसिल का परिणाम था, और द्रविड़ आध्यात्मिकता को ईसा मसीह में अपनी पूर्णता की प्राप्ति करनी चाहिए।[50]

थोड़ी जाँच-पड़ताल से ही यह देखा जा सकता है कि विद्वान-ईसाई प्रचारक मिलीभगत को पश्चिमी शैक्षणिक परिवेश में अच्छी तरह सुरक्षित रखा गया है, जहाँ से यह दावा करते हुए द्रविड़ों के प्रति कुछ उदारता दिखायी जा रही है कि विश्व सभ्यता का मूल तमिल हैं; इसके साथ श्रेष्ठता की भावना से सम्बन्धित अन्य दावे भी शामिल हैं। ऐसी श्रेष्ठता मूलक प्रवृत्तियों को बढ़ने देना व्यापक रणनीति है और जैसा कि दिखायी देता है, उन्हें प्रोत्साहित करना विशेषकर अगर इससे द्रविड़ों और अन्य भारतीयों के बीच झड़पों को बढ़ावा देकर भारत की एकता को कम करने में सहायता

मिलती हो। लिमुरियाइ उद्भव का सिद्धान्त द्रविड़ श्रेष्ठता की भावना का चरम है और समय-समय पर हृदय जीतने के लिए लिमुरियाई पत्ते को खेला जाता रहा है।

लिमुरियाई-तमिल उद्भव के सिद्धान्त की वापसी

सम्मेलन के सत्रों ने उन्हीं विषय-वस्तुओं को दुहराया जो इंस्टीटयूट ऑफ एशियन स्टडीज द्वारा आयोजित पहले दो सम्मेलनों में रखे गये थे।[51] सम्मेलन के उद्घाटन के दिन यह दावा किया गया कि मानव का उद्भव लिमुरिया या कुमारी कन्दम में हुआ। विक्टर के शोध पत्र ने तमिल से अनेक विभिन्न अ-भारतीय शब्दों को खोज निकालने का दावा किया—यह दिखाने के लिए कि तमिल संस्कृति ही सभ्यता का स्रोत रही थी। उसके बाद उन्होंने दावा किया कि बाइबल में जेनेसिस [पहला] अध्याय कुमारी कन्दम की बात करता है; यह भी कि महाजलप्रलय के समय तमिल बिखर गये थे। बाइबल में वर्णित प्रवजन मिथक तमिल स्थानों और सिंधु घाटी सभ्यता से सम्बन्धित थे।[52] एक अन्य विद्वान ने दावा किया कि मिस्त्र के लोग, देसी अमरीकी, और ऑस्ट्रेलिया के लोग तमिलनाडु से ही उद्भूत हैं और संस्कृत एक ऐसी भाषा है जिसे ईसा के बाद के काल में बनाया गया था। उन्होंने यह भी दिखाया कि मिस्त्र के शब्द जैसे फराओ (Pharaoh), अकनातेन (Akhneten), तूतनखामेन (Tutankhamun), और मेसोपोटैमिया (Mesopotamia), वास्तव में तमिल से ही निकले थे। प्रश्नोत्तर सत्र में उन्होंने दावा किया कि आर्य तमिलों की ही एक शाखा के थे जो भारत के बाहर पश्चिमी रेगिस्तान में चले गये थे और बाद में तमिलों को दास बनाने के लिए विकृत और धूर्त ढंग से वापस आ गये।[53]

देइवनयगम ने एक पर्चा बाँटा जिसका शीर्षक था 'विश्व की पहली भाषा— तमिल : विश्व का पहला मानव—तमिल : विश्व की पहली प्रजाति—तमिल प्रजाति : विश्व के धर्मों का सामान्य नाम—तमिल धर्म। कैसे?' उनकी पर्चे में तीस बिन्दु गिनाये गये थे जिनमें प्रमुख निम्नलिखित हैं :

> ...ईसा काल दूसरी शताब्दी के पूर्व संस्कृत का कोई अस्तित्व नहीं था। संस्कृत का कोई भी शिलालेख या मुद्राशास्त्रीय साक्ष्य नहीं है। प्रथम संस्कृत शिलालेख ईस्वी सन 150 का है। लेकिन तमिल शिलालेख ईसा पूर्व तीसरी शताब्दी के हैं। सिंधु घाटी सभ्यता को तमिलों की सभ्यता प्रमाणित किया गया है। सिंधु घाटी सभ्यता के पूर्व तमिल की प्राचीनता का उल्लेख कुमारी कन्दम द्वारा किया जाता था, जो जलप्रलय में नष्ट हो गया। ओल्ड टेस्टामेंट, जो मानव की उत्पत्ति का वर्णन करता है, हीब्रू में लिखा गया है। विक्टर ने एक पुस्तक लिखी है जिसमें हीब्रू तमिल से निकली बतायी गयी है। एम.के.जी. मौलाना ने लिखा है कि रामेश्वरम में जो सेतु है उसका नामकरण विश्व के पहले मानव आदम के तीसरे पुत्र के नाम पर रखा गया है जिनका नाम था— सेथ।... बाइबल की कविताएँ (जेनेसिस 11:1 और 2) स्पष्ट करती हैं कि विश्व की पहली भाषा तमिल थी और

ये कविताएँ सुमेरु सभ्यता तथा सिन्धु घाटी सभ्यता को जोड़ती हैं। चेन्नइ में तमिलनाडु सरकार की पर्यटन प्रदर्शनी में स्टॉल नम्बर 31-ए में तमिल धर्म का विकासक्रम व्याख्यायित है और हम तमिल जनों से अनुरोध करते हैं कि वे वहाँ जायें। आज तमिल और तमिल धर्म को दास बनाकर रखा गया है। यह जानने के लिए कि कैसे और कौन तमिल धर्म को मुक्त करायेगा, हमारे स्टॉल में आयें...[54]

संस्कृत, डार्विन और वेदान्त का दानवीकरण

संस्कृत को ईसा काल के बाद आयी भाषा के रूप में दिखाने के ईसाई द्रविड़वादी मिशन चलाये जा रहे हैं जो कुछ औपनिवेशक भारतविदों के बेतुके वक्तव्यों को आधार बनाते हैं कि संस्कृत सिकन्दर के आक्रमण का परिणाम थी। इस दृष्टिकोण के अग्रणी प्रस्तावक थे स्कॉटिश दार्शनिक डुगाल्ड स्टीवार्ट (Dugald Stewart, 1753-1828)। टॉमस ट्राउटमैन स्पष्ट करते हैं :

> सारांश में स्टीवार्ट का संयोजन यह था कि सिकन्दर की विजय के माध्यम से, जो पंजाब पहुँचा, ब्राह्मण ग्रीक भाषा के सम्पर्क में आये, एक नयी भाषा बनायी जिसमें उनकी देसी बोली के शब्द ग्रीक से लिए गये विरामों और वाक्य विन्यास से जोड़े गये थे। ... संक्षेप में, संस्कृत के ग्रीक से मिलतेजुलते होने का कारण यह नहीं है कि दोनों ऐतिहासिक रूप से एक ही पूर्वज भाषा के माध्यम से जुड़ी हैं... बल्कि यह है कि संस्कृत भारतीय परिधान में ग्रीक ही है।[55]

ट्राउटमैन यह भी दिखाते हैं कि किस प्रकार 'इस पूरे तर्क को पुरोहिती के स्पष्ट प्रोटेस्टेंट पुरोहिताई के तहत बढ़ाया जा रहा है, जो कैथोलिक पादरियों और ब्राह्मणों पर समान रूप से लागू की जा रही है'।[56] इस वर्तमान रूपान्तरण में इस जानी-मानी परिकल्पना को एक बार फिर पुनर्जीवित किया गया है, पर उसके इस अवतार में संस्कृत की आयु और आगे खिसकाकर ईसा के बाद के काल की कर दी गयी है, जबकि इस परिकल्पना के औपनिवेशिक संस्करण ने इसे ग्रीक सभ्यता के बाद के काल में उद्‌भूत हुआ दिखाया था। सिकन्दर के आक्रमण को अब यह व्याख्या करने के लिए सन्त टॉमस के आगमन में बदल दिया गया है कि किस तरह संस्कृत भारत में आयी। संस्कृत के दानवीकरण और इसे नष्ट करने के अभियान को औपनिवेशिक भारतविद्या से वर्तमान द्रविड़वादियों द्वारा अंगीकृत कर लिया गया है। ट्राउटमैन के अनुसार 'संस्कृत की निरंकुशता और अत्याचार' को समाप्त करना उन्नीसवीं शताब्दी में नस्ल विज्ञान का उद्देश्य था जब वह अपने बाल्यकाल में था। फिर भी, इसके परिणामस्वरूप राजनीतिक गति के जो नस्ल आधारित मार्ग बने वे अब भी भारतीय समाज में काफी चल रहे हैं।[57]

देइवनयगम के शोध पत्र ने दावा किया कि तमिल व्याकरण स्वयं वैसे तथ्य को प्रतिबिम्बित करता है जिसे उन्होंने 'आत्मा का विज्ञान' कहा, क्योंकि इसने ईसाई शास्त्र से निकटता दिखायी। सत्र के अध्यक्ष, एक बड़े तमिल विद्वान, औवई नटराजन

ने कहा कि देइवनयगम गलत थे और कि उनका शोध उनके धर्म द्वारा प्रभावित था। देइवनयगम ने इन आलोचनाओं की उपेक्षा की और सृष्टिवादी तर्कों का उपयोग करते हुए डार्विन के क्रमबद्ध विकास के सिद्धान्त पर प्रहार करने के लिए आगे बढ़े।[58] इससे भी आगे, उन्होंने पुनः अवतार की अवधारणा को अनीश्वरवादी बताते हुए उस पर प्रहार किया। उनका सर्वाधिक कठोर प्रहार अद्वैत के लिए बचा हुआ था : उन्होंने कहा कि इस्लामी और ईसाई ग्रन्थ अद्वैत को शैतानी मानते हैं।[59]

भारतीय कला के इतिहास का बपतिस्मा

देइवनयगम की पुत्री, देवकला, अनेक सत्रों में एक सक्रिय प्रतिभागी थीं, जिनमें उन्होंने दुहराया कि सन्त टॉमस द्वारा लाई गयी ईसाइयत विकृत होकर ऐसे स्वरूपों में बदल गयी जिन्हें बाद में शैव मत, वैष्णव मत, महायान बौद्ध और शवेताम्बर जैन धर्म के रूप में जाना गया। उन्होंने अपने स्लाइड शो में, जिसे सम्मेलन की स्मारिका में भी प्रकाशित किया गया था, लगभग सभी प्रमुख हिन्दू-बौद्ध मूर्तिशिल्प को या तो ईसाइयत को प्रतिबिम्बित करने वाला या ईसाई सिद्धान्तों से प्रभावित होने का दावा किया। चित्र 9.2 पिता-पुत्री द्वय की भारतीय कला के इतिहास की पुनर्परिकल्पना का सारांश प्रस्तुत करता है।

Fig. 9.2: हिन्दू/बौद्ध कला के इतिहास का ईसाईकरण

	हिन्दू/बौद्ध कला	देवकला-देइवनयगम दावा
1.	उदयगिरि की गुफाओं में बुद्ध की प्रतिमाओं की खोज जिनके पैरों और हाथों में गोल चिह्न थे	'कीलों से गुदे हुए हाथ और पैर वाले बुद्ध ... कीलों से गुदे हुए परमेश्वर के पुत्र की याद दिलाते हैं'
2.	ईसाइयत-पूर्व बौद्ध स्तूपों में बुद्ध की प्रतिमाओं का मिलना और ईसाइयत-पश्चात बौद्ध स्तूपों में उनका मिलना	" 'अवतार' के सिद्धान्त के कारण" (परमेश्वर मनुष्य/गुरु बन गया)
3.	शिव के मुख वाला शिव-लिंगम	शिव-मुख वाला शिव-लिंगम केवल ईसाइयत-पश्चात के समय में ही पायी जाती हैं
4.	बुद्ध प्रतिमा	'परमेश्वर को जिसने मनुष्य का रूप लिया, उसे गुरु कहते हैं'
5.	अर्धनारीश्वर की प्रतिमा : शिव और शक्ति	'परम परमेश्वर जिसमें परमेश्वर की

	का उभयलिंगी स्वरूप	आत्मा पुरुष और स्त्री दोनों स्वरूपों में है’
6.	शंकर-नारायण स्वरूप	‘परम परमेश्वर जिसमें परमेश्वर की आत्मा दोनों पुरुषों के स्वरूप में है’
7.	महादेव की एलिफेंटा गुफाएँ	‘त्रिदेव परमेश्वर — तीन पुरुषों के एक सत्व में होना : ‘होमूउसिऔस’ के सिद्धान्त का निहित होना।
8.	नटराज के रूप में शिव : ब्रह्माण्डीय नृत्य	‘पुनरुत्थान के सिद्धान्त को याद दिलाता है’

सामाजिक विषमताओं को केवल हिन्दुओं में ही देखा जाना

इस सम्मेलन में द्रविड़ों और दलितों से जुड़े मामले एक साथ पिरोये गये थे, जिसमें द्रविड़ रचनाओं में आने वाली वर्ण-व्यवस्था पर नया बल दिया गया था। दलित विषय पर बाद के अध्यायों में व्यापक रूप से विवेचना की जायेगी। दोनों विषय एक साथ इस विचार के आस-पास मँडराते रहे कि वर्ण और नस्ल दोनों एक ही हैं—एक अवधारणा जिसके गलत होने का प्रमाण दिया जा सकता है, पर जिसे हाल में औपनिवेशिक जड़ों ने पुनर्जीवित किया है, और अब इस पर काम हो रहा है ताकि विभिन्न विभाजनकारी रुझानों को मजबूत बनाया जा सके।

सम्मेलन में वर्ण-व्यवस्था पर आयोजित सत्र का प्रारम्भ प्रोफेसर सैमसन द्वारा एक शोध पत्र पढ़ने के साथ हुआ।[60] सामाजिक रूप से स्तरीकृत श्रेणीबद्ध समाज— जिसे संगम साहित्य दिखाता है—के अनेक सन्दर्भों की व्याख्या बाल की खाल निकालने वाले भाषणों के साथ की गयी जिससे तमिलों की भावनाओं के साथ खिलवाड़ किया गया। जाति को ‘तमिलों पर थोपी गयी एक विदेशी बुराई’ के रूप में चित्रित करने की रणनीति है ताकि उनकी सहानुभूति जीत ली जाये। जहाँ एक ओर प्राचीन तमिल साहित्य ने ब्राह्मणों की पहचान तमिल समाज में विदेशियों की तरह नहीं की, वहीं अब तमिल शुद्धता के नाम पर उन पर लगातार प्रहार हो रहा है। यह भी आरोप बार-बार लगाया गया कि वर्ण जैसा स्तरीकरण भारतीय समाज की ही विशिष्टता थी और हिन्दू धर्म को छोड़कर किसी अन्य धर्म ने जन्म पर आधारित विषमताओं को अनुमति नहीं दी। ब्राह्मणों के लिए पारम्परिक तमिल शब्दों, और वर्ण के सन्दर्भों के लिए विदेशी प्रभावों को दोषी ठहराया गया जिन्हें धूर्त ब्राह्मणों द्वारा तमिल समाज में प्रदूषण के रूप में लाया गया। ब्राह्मणों पर महिलाओं के माध्यम से तमिल राजाओं को ललचाकर जीतने का आरोप लगाया गया। जब किसी ने बाइबल के जमाने में समेरियन्स के साथ बुरे बर्ताव के विषय को उठाया तब उत्तर दिया गया कि वह बुरा

व्यवहार केवल राजनीतिक था, सामाजिक नहीं, जबकि भारतीय वर्ण-व्यवस्था की जड़ें हिन्दू धर्म में जमीं थीं।

देइवनयगम ने कहा कि यहूदियों ने इजरायली मन्दिरों को ध्वस्त कर दिया और समैरिटनों पर अत्याचार किया, और उन पापों के कारण यहूदियों को दो हज़ार वर्षों तक दुख भुगतना पड़ा। उन्होंने हिटलरी नरसंहार को ईश्वर द्वारा किये गये एक न्याय के रूप में वर्णित किया, क्योंकि यहूदियों ने बलि की परिपूर्णता के माध्यम से अपने पापों से मुक्ति को स्वीकार नहीं किया (जिसका अर्थ यह निकला कि उन्हें सर्वनाश भुगतना पड़ा, क्योंकि उन्होंने ईसा मसीह को स्वीकार नहीं किया)।[61] इस द्रविड़ ईसाई सैद्धान्तीकरण में प्रारम्भ से अन्त तक ऐसा ही यहूदी-विरोधी सूत्र पिरोया हुआ था। देइवनयगम ने यह भी कहा कि ईसा मसीह के पहले जीवन के बाद स्वर्ग या नरक में जाने की परिकल्पना किसी भी ईश्वरवादी धर्म में नहीं थी। उनके अनुसार भारत में ईसा पूर्व केवल जैन और बौद्ध धर्म ही थे जो अनीश्वरवादी थे। इस प्रकार एक पूर्ण ईश्वरवादी धर्म भारत को ईसाइयत का उपहार है।

ईसाई-द्रविड़ बनाम आधुनिक पुरातत्व विज्ञान

टॉमस द्रविड़ ईसाइयत के सबसे आधुनिक प्रचारक अपने तर्कों का आधार पिता-पुत्री टीम, देइवनयगम-देवकला, द्वारा गढ़ी गयी परिकल्पनाओं को बनाते हैं। चित्र 9.3 इन परिकल्पनाओं को दर्शाता है, जिनमें से अधिकांश के मूल औपनिवेशिक काल के हैं, और जिन्हें अनेक दशकों की पुरातात्विक खोजों द्वारा पहले ही असत्य प्रमाणित किया जा चुका है।

Fig. 9.3 आद्युनिक पुरातत्वविज्ञान द्रविड़ ईसाइयत को झूठा ठहराता है

	द्रविड़ ईसाइयत	आधुनिक पुरातत्वविज्ञान
1.	तीन-चेहरों वाले ईश्वर का सिद्धान्त ईसाइयत-पश्चात का है।	शिव के 'तीन-चेहरों' का स्वरूप सिन्धु घाटी सभ्यता के लोगों के तीन-सींग वाले देवता से मिलता-जुलता है और आधुनिक हिन्दुओं के देवता से भी। (वुली, 1958, 82)
2.	सबसे पुराने संस्कृत शिलालेख ईसा बाद दूसरी शताब्दी के हैं, जिससे संस्कृत ईसाइयत-बाद की एक वस्तु हो जाती है जिससे कि ईसाइयत को उत्तर भारत में फैलाने में आसानी होती है।	सबसे पुराने संस्कृत शिलालेख/पुरालेख ईसा पूर्व पहली शताब्दी के अयोध्या, घोसुण्डी और हाथीबड के पत्थर के शिलालेखों में मिलते हैं (सोलोमन, 1998, 98)

3.	शिव-मुख वाला शिवलिंग ईसाइयत के बाद का विकास है।	कई मुखों वाले शिवलिंग मिले हैं जो ईसा पूर्व दूसरी शताब्दी तक के हैं (क्रैमरिश, 1994, 179)
4.	अवतार का सिद्धान्त (परमेश्वर मनुष्य रूप में आते हैं) ईसाइयत-बाद का है।	कृष्ण के विष्णु के दैविक अवतार होने का सिद्धान्त ईसाइयत पूर्व का है। (ब्रायंट, 2007, 4-7)
5.	भारत में ईसाई प्रभाव के पूर्व ऐसा कोई भी देववादी धर्म नहीं था जो मृत्यु के पश्चात् की बात करता हो, या फिर मृत्यु-पश्चात् के जीवन के लिए इस जीवन में नैतिक कर्म करने की बात करता हो।	ईसा-पूर्व भारतीय धर्म न केवल देववादी है, बल्कि वह मृत्यु के बाद मुक्ति की भी बात करता है और जीने के लिए एक आचार संहिता भी देता है, जैसा कि इंडो-ग्रीक राजदूत द्वारा शुंग राजा के लिए 110 ईसा पूर्व में खड़े किये गये गरुड़ स्तम्भ का आलेख हमें बताता है।
6.	ईसाइयत से पहले हर पूजा में बलिदान आवश्यक था।	हिन्दू धर्म में बलि और बिना बलि दोनों प्रकार की पूजाएँ आदि-काल से हैं, और बलि में रक्त का आवश्यक प्रयोग नहीं होता था।
7.	स्वर्ग-नरक और मृत्योपरान्त जीवन के सिद्धान्त पहले ईसा मसीह ने ही दिए थे, ईसा मसीह से पहले किसी भी देववादी धर्म में इसका कोई स्थान नहीं था।	'नरक की ईसाई कल्पनाएँ, जैसे कि शैतान और देवदूतों की कल्पनाएँ, हो सकता है कि ज़रथुस्त्र के धर्म से ली गयी हों, न कि बाइबल के छोटे-मोटे उदाहरणों से।' (बेनेट, 2001, 95)

टॉमस मिथक की मजबूती का आकलन

सभी साक्ष्यों के विपरीत होते हुए भी, आश्चर्य होता है कि इस तरह का मिथक, जो सन्त टॉमस को भारत से जोड़ता है, मिशनरियों के बीच क्यों बना हुआ है। इसके अनेक कारकों में से एक टॉमस का गॉस्पल है जिसकी पाण्डुलिपि (Coptic Papyrus) मिस्त्र के नाग हम्मादी में 1945 में पायी गयी थी। रिचर्ड वैलन्टेसिस के अनुसार, टॉमस के इस उपदेश की तिथि के ईस्वी सन 60 से 120 के बीच होने पर विद्वानों की सहमति हो गयी है।[62] यह इसे सर्वाधिक पुराने धर्मोपदेशों में से एक बनाता है। प्रिंस्टन विश्वविद्यालय की इलेन पैगेल्स ने टॉमस द्वारा भारत में ईसाइयत लाने के ईसाई प्रचारकों के दावे के विपरीत इस बात की सम्भावना सामने रखी कि ठीक उसका

उल्टा हुआ था, जैसे कि, वह टॉमस ही थे जिन्होंने प्रारम्भिक ईसाइयत को प्रभावित करने में भारतीय धर्मों (विशेषकर बौद्ध) का प्रतिनिधित्व किया। उन्होंने लिखा :

> फिर भी टॉमस का आत्मज्ञान सम्बन्धी धर्मोपदेश कहता है कि जैसे ही टॉमस ने उन्हें पहचाना, ईसा मसीह टॉमस से कहते हैं कि दोनों ने एक ही स्रोत से अपना अस्तित्व ग्रहण किया है... इस तरह की शिक्षा—दिव्य और मानवीय पहचान, भ्रम और बोध प्राप्ति के प्रति चिन्ता, और जिन्होंने स्थापना की उन्हें ईश्वर की तरह नहीं, बल्कि एक आध्यात्मिक निर्देशक के रूप में प्रस्तुत करना—क्या पश्चिमी से अधिक पूर्वी ध्वनित नहीं होते? कुछ विद्वानों ने सुझाव दिया है कि अगर नामों को बदल दिया जाये तो 'जीवित बुद्ध' समुचित रूप से वही कह सकते थे जिसे टॉमस के गॉस्पल ने जीवित ईसा मसीह द्वारा कहा गया बताया। क्या हिन्दू या बौद्ध परम्परा ने आत्मज्ञान विद्या को प्रभावित किया होगा? बौद्ध धर्म के ब्रिटिश विद्वान एडवर्ड कोन्ज ने सुझाया कि ऐसा ही हुआ था। जिस समय आत्मज्ञान विद्या का उत्कर्ष हुआ (सन 80—200) उस समय यूनानी-रोमन और सुदूर पूर्व के देशों के बीच व्यापारिक मार्ग खुल रहे थे; पीढ़ियों से बौद्ध मिशनरी अलेक्जैंड्रिया में धर्मान्तरण करा रहे थे। हमारा ध्यान इस पर भी जाता है कि हिप्पोलाइटस, जो रोम में ग्रीक बोलने वाले ईसाई थे (सन 225 के आस-पास), भारतीय ब्राह्मणों के बारे में जानते हैं, और उनकी परम्पराओं को विधर्मिता के स्रोतों के बीच रखते हैं : 'भारतीयों के बीच ... उन लोगों का ईश्वर विरोध है जो ब्राह्मणों के बीच दार्शनिक चिन्तन करते हैं, जो आत्म-निर्भर जीवन जीते हैं, जो जीवित जीवधारियों और पकाये हुए भोजन को खाने से परहेज करते हैं... वे कहते हैं कि ईश्वर प्रकाश है, वैसा प्रकाश नहीं जो हम देखते हैं, न तो यह सूर्य जैसा है और न ही अग्नि जैसा, बल्कि उनके लिए ईश्वर एक सम्भाषण है, वह नहीं जो श्रमसाध्य ध्वनियों में अभिव्यक्ति हो पाता है, बल्कि वह जो ज्ञान (आत्मज्ञान) देता है और जिसके माध्यम से बुद्धिमानों द्वारा प्रकृति के गुप्त रहस्यों को जाना जाता है'। क्या टॉमस के धर्मसन्देश का शीर्षक—जिसे उस शिष्य के नाम पर रखा गया है जो, परम्परा से कहा जाता है, भारत गये थे—भारतीय परम्परा के प्रभाव का संकेत देता है? ये संकेत इस सम्भावना को ही इंगित करते हैं, यह अलग बात है कि हमारा साक्ष्य अभी निर्णायक नहीं है।[63]

जहाँ द्रविड़ ईसाई राजनीति दावा करती है कि टॉमस ईसाई प्रभाव को भारत में लाने वाले मध्यस्थ थे, पैगेल्स जैसे पश्चिमी विद्वानों की रचनाओं में, जो भारत में चर्च की ईसाई प्रचारक गतिविधियों से जुड़े नहीं हैं, ठीक इसका उल्टा पाया जाता है। वे दिखाते हैं कि टॉमस के धर्मसन्देश अनेक प्रकार से, आज जिसे ईसाइयत के रूप में जाना जाता है, उसके आधार के विपरीत और उसके महत्व को कम करने वाले हैं। चर्च को इन भारतीय आत्मज्ञान सम्बन्धी विचारों से ख़तरा पैदा हो गया था, क्योंकि वे मनुष्य और ईश्वर के बीच मध्यस्थ के रूप में संस्थागत बनाये गये चर्चों की

आधिकारिकता को कम कर देते हैं, और इस तरह प्रत्येक साधक को सीधे साधना से शक्ति सम्पन्न बनाते हैं। प्रारम्भिक चर्च ने आत्मज्ञान के आयाम को कठोरता से नष्ट किया। उसने आत्मज्ञान विद्या को टॉमस मिथक से बदल दिया ताकि आत्मज्ञान के भारतीय स्रोतों को ईश्वर विरोधी होने के रूप में नष्ट करना उचित ठहराया जा सके। यह सम्भव है कि भारतीय टॉमस को ईसाई टॉमस में रूपान्तरित कर दिया गया था, और उसके बाद प्रभावों के ऐतिहासिक प्रवाह की दिशा को पलटने के लिए उसे लागू किया गया।

द्रविड़ ईसाई परिकल्पना को इस प्रकार शिक्षा जगत द्वारा अमान्य कर दिये जाने के बाद भी वास्तविक ख़तरा यह है कि चर्च ने दक्षिण भारत में जो व्यापक संस्थानिक तन्त्र खड़ा किया है वह द्रविड़ राजनीतिक घुसपैठ और एक जातीय-धार्मिक पहचान की ओर ले जाता है जिसे शक्तिशाली वैश्विक शक्तियों द्वारा नियन्त्रित किया जा सकता है। अनेक दक्षिण भारतीय हिन्दुओं ने आर्य-द्रविड़ शत्रुता का चारा चुगा है। हालाँकि प्रमुख शैव सिद्धान्त के विद्वानों ने वेद-विरोधी द्रविड़ पहचान का खण्डन किया है, इतिहास और धर्म का यह प्रदूषण मुख्यधारा में प्रवेश कर चुका है और दक्षिण भारतीय आध्यात्मिकता के ईसाईकरण में एक प्रमुख खिलाड़ी बन गया है।

ईसाईकरण के लिए अन्तरिम चरण के रूप में द्रविड़ आध्यात्मिकता

उन्नीसवीं शताब्दी में अधिकांश तमिल विद्वानों और शैव सिद्धान्त के विशेषज्ञों ने वेदों के विरुद्ध निर्मित एक द्रविड़ अलगाववादी पहचान की उस परिकल्पना की निन्दा की जो यूरोपीय विद्वानों ने सामने रखी थी। उन तमिल विद्वानों ने भी, जिन्होंने तमिल साहित्य और सभ्यता को संस्कृत से श्रेष्ठ माना, संस्कृत का दानवीकरण नहीं किया। इसके एक अच्छे उदाहरण थे 'मनोन्मन्यम' सुन्दरम पिल्लई (1855-97)। उन्होंने दावा किया कि तमिल संस्कृत से श्रेष्ठ थी, क्योंकि तमिल उस समय भी एक जन भाषा के रूप में व्यवहार में लायी जा रही थी। उनके द्वारा रचे गये एक तमिल गीत को तमिलनाडु के आधिकारिक गीत के रूप में मान लिया गया है। फिर भी, उन्होंने न तो संस्कृत को छोटा दिखाया और न ही अस्वीकार किया, और तमिल और संस्कृत दोनों भाषाओं को विद्या की देवी के दो नेत्रों के रूप में देखा, हालाँकि उनके लिए तमिल दाहिना नेत्र था। जब बिशप कॉल्डवेल ने सातवीं शताब्दी के शैव सन्त तिरुग्नान सम्बन्दार का काल तेरहवीं शताब्दी के अन्त का निर्धारित किया, सुन्दरम पिल्लई ने इस काल गणना का खण्डन किया और बल देते हुए स्थापित किया कि सम्बन्दार को सातवीं शताब्दी के बाद का नहीं बताया जा सकता है।[64]

शैव सिद्धान्त के एक अन्य विद्वान सबरत्न मुदालियार (1858-1922) ने शैव सन्तों पर कॉल्डवेल के शोध की जाँच-पड़ताल करते हुए लिखा :

> डॉ. कॉल्डवेल एक ईसाई मिशनरी थे और हालाँकि उन्होंने तमिल साहित्य की कुछ सेवा की है, उन्हें उनके ईसाई पूर्वाग्रह से मुक्त नहीं कहा जा सकता है।[65]

जे.एम. नल्लस्वामी पिल्लइ (1864-1920) एक अन्य बड़े विद्वान थे जिन्होंने शैव सिद्धान्त को लोकप्रिय बनाने में श्रम किया, और वे जी.यू. पोप के निकट के भी माने गये। हालाँकि शुरू में उन्होंने पोप पर शैव सिद्धान्त के एक वास्तविक प्रशंसक के रूप में विश्वास किया, पिल्लई बाद में इस बात से आतंकित हो गये थे कि पोप ने अपने लेखन में शैव सन्तों पर झूठे दोषारोपण किये और उन्होंने उन प्रहारों को उनकी 'शुद्ध अज्ञानता' बताया।[66] पिल्लई ने इस विचार का जोरदार खण्डन किया कि शैव सिद्धान्त वेदों और संस्कृत से जुड़ा नहीं है। उन्होंने बल देकर कहा :

> सभी पारिभाषिक शब्द और रूप जिनका हम उपयोग करते हैं वे संस्कृत से निकले हैं : और तमिल साहित्य का एक बड़ा भाग छोटा होकर महत्वहीनसा हो जाता है जब उसकी तुलना संस्कृत के विशाल 'आगम' साहित्य से की जाती है। हमारे तमिल आचार्य संस्कृत के भी बड़े विद्वान थे ... हमारे लेखक स्पष्ट रूप से कहते हैं ... कि किस प्रकार यह मूल्यवान धर्म और दर्शन वेदों और आगमों पर आधारित है।[67]

तिरुमुरुगा किरूपनन्द वारियार (1906-93) शैव और कालजयी तमिल साहित्य और आध्यात्मिकता, दोनों के एक बड़े विद्वान थे। जब उनसे पूछा गया कि क्या शैवों को संस्कृत मन्त्रों का उपयोग करना चाहिए, उनका उत्तर था :

> चूँकि संस्कृत (भारत में) सभी लोगों की सामान्य भाषा है, सभी मन्त्र संस्कृत में हैं ... अनन्त काल से शैवों ने परम्परा से संहिता के मन्त्रों का उच्चारण किया है। इसका विश्लेषण घृणा से करना लाभदायक नहीं है।[68]

इस पृष्ठभूमि के बाद भी, आज तमिल आधारित गैर-वैदिक पद्धतियों का अभियान तेज हो रहा है और द्रविड़वादियों के एक वर्ग द्वारा उसका नेतृत्व किया जा रहा है। ऐसा ही एक लोकप्रिय अभियान सत्यवेल मुरुगन द्वारा चलाया जा रहा है, एक बिजली अभियन्ता जो बाद में स्वयम्भू शैव सिद्धान्त धर्मशास्त्री और तमिल कर्मकाण्ड के विद्वान बन गये। वे 'तमिल विवाहों' की परिकल्पना को लोकप्रिय बना रहे हैं जिसमें वैदिक पद्धति को अस्वीकार करते हुए उसके स्थान पर तमिल स्रोतों को लाया जा रहा है। वे कहते हैं :

> ... संस्कृत शब्द 'विवाह' का अर्थ होता है अपहरण करना, अर्थात् विवाह के उद्देश्य से किसी कन्या का अपहरण करना, जो कार्य, यह कहने की आवश्यकता नहीं, बर्बर है ... इससे भी बड़ी बात यह कि संस्कृत विवाह में जिन मन्त्रों का उच्चारण किया जाता है, वे न तो हमारी समझ में आने लायक हैं और न ही उनके लिए जो इनका उच्चारण करते हैं, क्योंकि संस्कृत एक मृत भाषा है। संस्कृत विवाह में अनेक रस्में हैं जो उबाऊ, अतार्किक, अनैतिक, अश्लील और आपत्तिजनक हैं ...[69]

जब तमिलनाडु में द्रमुक सरकार ने पारम्परिक तमिल नये वर्ष को चित्राई से ताई में बदला तो उन्होंने यह कहते हुए उसका जोरदार स्वागत किया कि हर तमिल को

उसी दिशा में पूजा करनी चाहिए जिस दिशा में मुख्य मन्त्री बैठते थे।[70] वह शैव सिद्धान्त के एक धर्मशास्त्र का प्रचार करते हैं जिसे शेष भारत की आध्यात्मिकता के महत्वपूर्ण पक्षों से अलग करने और उसे स्पष्ट रूप से ईसाइयत के अनुरूप करने के लिए सुनियोजित किया गया है। चित्र 9.4 में इसे दिखाया गया है।

Fig 9.4. सच्चा शैव सिद्धान्त बनाम द्रविड़ ईसाइयत के फर्जी दावे

पारम्परिक शैव सिद्धान्त	द्रविड़ धर्म का दावा	ईसाइयत की ओर पथ
पशु-पति-पसम : इस पद का अर्थ है पति (बलि के देवता), पशु (वैयक्तिक आत्मन, बलि का पशु), पसम (वह रस्सी जो इसे बाँधती है)। जब रस्सी, पसम, जल जाती है, तो आत्मा पति (परमेश्वर) से तादात्म्य स्थापित करने के लिए स्वतन्त्र हो जाती है। (शिवरत्नम, 1978, 21) पति को पारम्परिक रूप से वेदों और उपनिषदों के सबसे सन्तोषजनक अर्थ के रूप में समझाया जाता है। (मुदलियार, 1968, 28)	पति, पशु और पसम का अर्थ है, गड़रिया, भेद और बन्धन। (मुरुगन 2009)	शैव सिद्धान्त के वेदों को पुष्ट करने को समाप्त किया जाता है और उसके स्थान पर अद्वितीय और सार्वभौमिक गड़रिये के रूप में ईसा-मसीह की आकृति आ जाती है।
शैव सिद्धान्त का ग्रन्थ, थिरुमन्त्र शिवलिंग को कई स्तरों पर समझाता है : वृहद् स्वरूप में वह पूरा ब्रह्माण्ड है; सूक्ष्म स्तर पर यह स्थूल शरीर है; और आन्तरिक स्तर पर यह चेतना को दर्शाता है जिसका ध्वनि चिह्न प्रणव है।	प्रभु, रोशनी और लौ में बहुत सारे साम्य देखकर द्रविड़ लोगों ने प्रभु को लौ (अग्नि) के रूप में पूजना प्रारम्भ कर दिया... इसको अव्यवहारिक जानकर वे लौ के रूप में पत्थर के खड़े स्वरूप को पूजने लगे। कुछ भी हो, इस आकृति को खड़ा	लिंग पूजा को देवता की लौकी पूजा के अब्रहमिक स्वरूपमें समेट देता है।

	करने के लिए उन्हें उसके आस-पास एक आधार रखना पड़ा जिसमें कि जल इकट्ठा हो सके और निकासी का एक मार्ग बन सके। और इस तरह लिंगम ने आकृति ली। (मुरुगन 2009)	
शैव सिद्धान्त में निहित सामाजिक सद्भाव वेदों के श्लोक एकं सद विप्रा बहुधा-वदन्ति पर आधारित है। (न. पिल्लई, 1911 : 2009, 274)	इस मान्यता को पूरी तरह नकार कर यह कहता है : भगवान् शिव उस ईसाई के प्रति कठोर होंगे जो इसके प्रति सच्चा नहीं है, उस मुसलमान के प्रति कठोर होंगे जो इसके प्रति सच्चा नहीं है, और इसी तरह अन्य सभी धार्मिक लोगों के लिए कठोर होंगे जो अपने धर्मों के प्रति सच्चे नहीं हैं। (मुरुगन, 2009)	इससे अब्रहमिक देवता के जैसे एक दण्ड देने वाले देवता की झलक मिलती है जो कि ईसाई और मुसलमानों को पीड़ित की तरह दर्शाता है।
पारम्परिक शैव सिद्धान्त केसमुदायों में शिव की जड़ें वेदोंमें ढूँढी गयी हैं (एन. पिल्लई,1911 : 2009, 274)	शिव की पुरातनता के बारे में बात 'ईसाइयत के पहले उदाहरण' के सन्दर्भ में होती है और उन्नीसवीं शताब्दी के एक मिशनरी दावे को पुनर्स्थापित करती है कि 'इस देवता का सबसे पहला उल्लेख अमोस की किताब में हुआ है।' (अध्याय 5.	यह गलत रूप से शिव पूजा को उसकी वैदिक जड़ों से हटाता है और ऐसा प्रतीत कराता है जैसे कि शिव का उल्लेख बाइबल में है।

	25-26) (मुरुगन, 2009)	

10
भारत के बाहर द्रविड़वादी शैक्षणिक संस्थान-कार्यकर्ता नेटवर्क

पश्चिमी शिक्षाविदों के बीच प्राचीन भारत के बारे में जो कुछ भाषावैज्ञानिक अटकलों के रूप में शुरू हुआ था, वह 'फूट-डालो-और-राज-करो' की रणनीति से हस्तक्षेप करने और दबदबा बनाये रखने के एक तन्त्र में बदल गया। हर्बर्ट रिस्ली का उन्नीसवीं शताब्दी का नस्ल विज्ञान अब जा चुका है, लेकिन इसका स्थान अब परोक्ष रूप से प्राचीन भारत और उसके साहित्य की नस्ली व्याख्या ने ले लिया है। पश्चिमी भारतविदों की 'विद्वता' के बने रहने के कारण इसने अन्ततः शताब्दियों की संगतिपूर्ण और बहुलतावादी स्वदेशी व्याख्याओं को दबा दिया है। ये शक्तिशाली मनगढ़न्त बातें रिस कर भारत की राजनीति में समा गयी हैं और उन दरारों के साथ मिल गयी हैं जो पहले से ही अस्तित्व में थीं।

राजनीतिक कार्यकर्ता ऐसे संगठन बनाते हैं जो अलगाववादी आन्दोलनों में बदल जाते हैं। एक ढीला-ढाला जाल है जिसका एक छोर पश्चिमी संस्थानों के शिक्षण केन्द्रों में है, और दूसरा दक्षिण भारत जैसे स्थानों में व्याप्त संघर्षों में।

दूसरे विश्व युद्ध के बाद जातीय-भाषावैज्ञानिक शोध के गुरुत्वाकर्षण का केन्द्र इंग्लैंड से हटकर संयुक्त राज्य अमरीका हो गया है, विशेषकर हार्वर्ड, येल, और बर्कले स्थित कैलिफोर्निया विश्वविद्यालय। इन तीनों विश्वविद्यालयों के कार्यक्रमों की विशिष्ट भूमिकाओं को संक्षेप में निम्न प्रकार से रखा जा सकता है :

येल

येल विश्वविद्यालय द्वारा एक द्रविड़ व्युत्पत्तिशास्त्रीय शब्दकोष बनाने की परियोजना ने द्रविड़ पहचान की राजनीति को बढ़ावा देने के लिए एक भू-राजनीतिक हथियार के रूप में काम किया, जो तमिलनाडु में पहले से ही अन्दर-अन्दर सुलग रहा था, और इसका उपयोग भारत से अलग होने की प्रवृत्तियों को वैध ठहराने के लिए भी किया गया। येल के शिक्षाविदों ने उन तत्वों को प्रोत्साहित किया जिन्हें भाषाई अलगाववाद कहा जा सकता है।

हार्वर्ड

पश्चिमी विद्वानों ने बाद में भारत के अन्दर अनगिनत भाषाई बिखरावों की पहचान करने की परियोजनाएँ शुरू कीं, और समुदायों को अलग जातीय स्थान दिया जिन्हें विदेशी आर्यों द्वारा दबाकर रखा गया था। प्रारम्भ में इन परिकल्पनाओं का उपयोग केवल द्रविड़ अलगाववाद को समर्थन देने के लिए किया गया। हाल में ध्यान का

केन्द्र द्राविड़ों से हटाकर, 'मूल निवासी' के रूप में, मुण्डा की ओर किया गया है और अनेक पश्चिमी विद्वान तो द्रविड़ों का भी 'बाहरी' के रूप में पुनर्वर्गीकरण कर रहे हैं। लगातार छोटी-से-छोटी सामूहिक पहचानों का बनना विखण्डन और संघर्ष को बढ़ाता है। पश्चिमी शिक्षाविद समुदाय के कार्यों का परिणाम लगातार यही रहा है, अर्थात्, भाषाई विखण्डन लाना। मध्य भारतीय राज्यों में वर्तमान माओवादी आतंकवाद क्षेत्र लगभग वहीं है जहाँ पिछले बीस वर्षों से इस कार्य पर ध्यान केन्द्रित किया गया है।

बर्कले

भारतीय भाषाओं के प्राचीन कालजयी साहित्य का अध्ययन विभाजकता सृजन का अवसर प्रदान करता है। हम बर्कले तमिल पीठ का उदाहरण देख सकते हैं, जहाँ विद्वानों ने तमिल साहित्य और शेष भारतीय साहित्य के बीच तनाव पैदा किया है। उन्हें जो भी छोटी-से-छोटी स्थानीय विशिष्टता मिलती है, उसे बहुत बढ़ा-चढ़ाकर प्रस्तुत किया जाता है, लेकिन जो तत्व शेष भारत के साथ समान रूप से पाये जाते हैं, और जो सभी भारतीयों की एकता स्थापित करते हैं वे ब्राह्मणों द्वारा तोड़-मरोड़ का परिणाम बताये जाते हैं।

एक बार जैसे ही भाषा के आधार पर अलग तमिल पहचान का सृजन कर दिया गया, एक तमिल अन्तर-राष्ट्रीय आन्दोलन को प्रोत्साहित करने का मार्ग तैयार हो गया। भारत में अपसारी बलों को और शक्तिशाली बनाने के लिए सक्रिय कार्यकर्ताओं का पोषण किया जाता है। पश्चिमी धन का आप्रवाह होता है। पश्चिम के विद्वानों के संघर्ष क्षेत्रों में रणनीतिगत सम्पर्क हैं, जहाँ वे परोक्ष या प्रत्यक्ष रूप से अलगाववादी आन्दोलनों को समर्थन देते हैं। धर्मान्तरण कराने वाले इन आन्दोलनों को समर्थन देते हैं और पश्चिम में तमिल अध्ययनों का उपयोग ईसाई प्रचारकों द्वारा ईसाई संस्थानों और तमिल पहचान के बीच सम्बन्ध स्थापित करने के लिए किया जाता है, जैसा कि हम इस अध्याय में विस्तार से देखेंगे।

इन जटिल सम्बन्धों को प्रोत्साहित करने के लिए अनेक संगठन उग आये हैं। उदाहरण के लिए फेतना (FeTNA) संयुक्त राज्य अमरीका स्थित एक प्रवासी तमिल संगठन है जो बर्कले के तमिल पीठ के लिए धन देता है और जिसने जातीय-राजनीतिक अलगाववाद के लिए वाहन का कार्य किया, जिसके तमिल टाइगर्स से भी सम्बन्ध हैं। यह तमिल संस्कृति के ईसाईकरण का समर्थन करता है और दक्षिणपन्थी ईसाई प्रचारक अमरीकी राजनीतिज्ञों तथा पश्चिमी भू-राजनीतिक रणनीतिकारों के लिए भारतीय राजनीति में घुसने के लिए द्वार प्रदान करता है।

चित्र 10.1 कुछ प्रमुख संस्थानों द्वारा तमिलनाडु में विभिन्न जातीय संघर्षों को बौद्धिक चारा, विश्वसनीयता, राजनीतिक दबदबा और कुछ मामलों में धन उपलब्ध कराने में की गयी भूमिका का एक दृश्य प्रवाह-चित्र प्रस्तुत करता है।

Fig 10.1 पश्चिमी अकादमिक तन्त्रों की तमिल पहचान की राजनीति में भूमिका
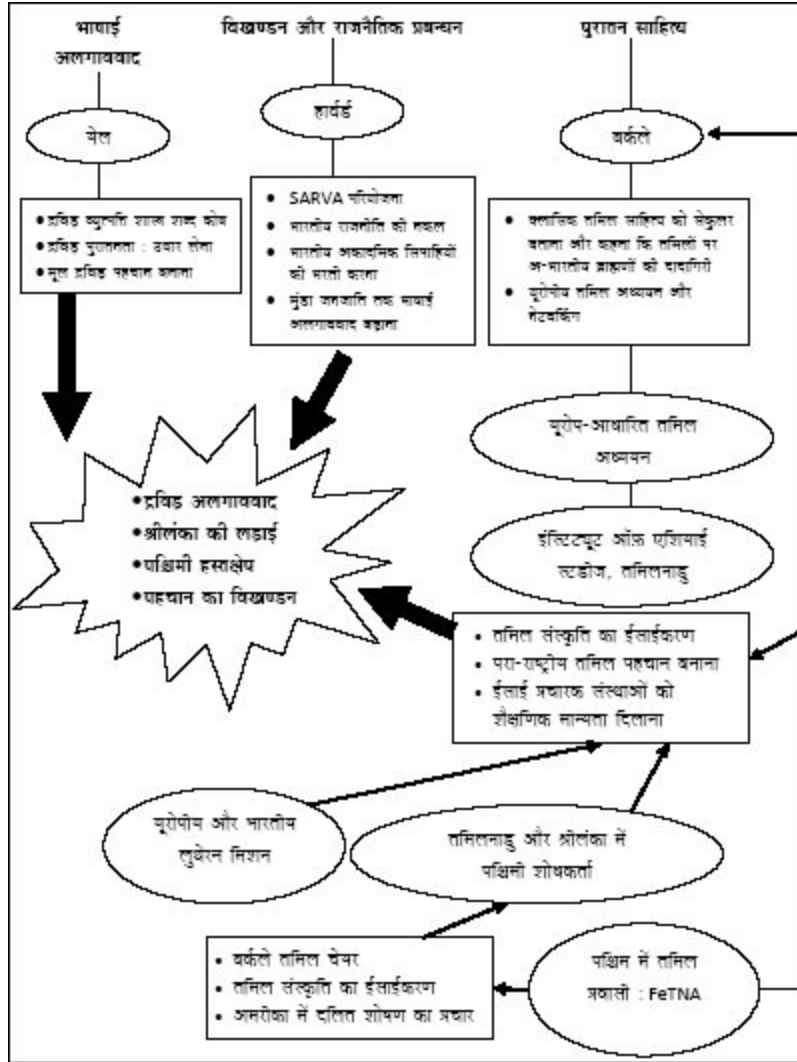
द्रविड़ भाषा प्रतिमान के ऑक्सफोर्ड-येल मूल

The Dravidian Etymological Dictionary (द्रविड़ व्युत्पत्तिशास्त्रीय शब्दकोष), जिसका संकलन येल विश्वविद्यालय[1] के मर्रे बार्नसन ईमेनो (Murray Barnson Emeneau, 1904-2005) और ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय के टॉमस बरो (Thomas Burrow, 1909-86) द्वारा किया गया, अलगाववादी द्रविड़ सिद्धान्त के विकास में एक विद्वतापूर्ण पड़ाव था। इसे पश्चिमी भारतविद्या सम्बन्धी अध्ययनों के यूरोप से संयुक्त राज्य अमरीका की ओर प्रमुख स्थानान्तरण होने के प्रारम्भ बिन्दु के रूप में देखा जा सकता है।

ईमेनो येल विश्वविद्यालय के एक विद्वान थे जो 1943 में तीन वर्षों के लिए भारत आये, और 'अल्पसंख्यक भाषाओं का ऐतिहासिक अध्ययन उतनी ही गम्भीरता से

किया जितना कि साहित्य की परम्परा वाली भाषाओं का' किया जाता है।[2] ये भाषाएँ थीं बडगा, कोलमी और टोडा। पश्चिम में उनके कार्य को अत्यधिक महत्वपूर्ण कार्य के रूप में देखा गया और 1949 में उन्हें लिंग्विस्टिक सोसाइटी ऑफ़ यूनाइटेड स्टेट्स का अध्यक्ष बनाया गया। सन 1956 में उन्होंने भारत को 'भाषाई क्षेत्र' घोषित किया जिसकी बहुत चर्चा हुई।[3] प्रकारान्तर से इसका अर्थ यह हुआ कि भारत असम्बद्ध भाषा समूहों के निवासस्थल वाला भौगोलिक क्षेत्र था जो संघर्ष और विजय के एक लम्बे इतिहास को प्रतिबिम्बित करता है, उन लोगों के बीच जिनके बीच रिश्तेदारी का कोई इतिहास नहीं था। यह एक ऐसा विचार था जो भारत के समुदायों के और अधिक मानवशास्त्रीय तथा भाषाई विखण्डन के लिए एक शक्तिशाली हथियार बन गया। इसने विभिन्न भारतीय समूहों के बीच भाषाई असम्बद्धता के दावे पर आधारित उप-राष्ट्रीय पहचान का सृजन करने में सहायता की।

टॉमस बरो एक ब्रिटिश भारतविद थे जिनके पास 1944 से 1976 तक ऑक्सफोर्ड में बोडेन प्रोफेसर ऑफ़ संस्कृत का एक अत्यन्त सम्मानित पद था। उन्होंने ईमेनो के साथ सहयोग किया और 1961 में उन दोनों ने इण्डो-आर्य से द्रविड़ भाषाओं में 'उधार लिए हुए शब्द' विषय पर सामग्री प्रकाशित की। सन 1966 में उन्होंने 'द्रविड़ व्युपत्ति शास्त्रीय शब्दकोष' '(*A Dravidian Etymological Dictionary*) प्रकाशित की, जिसके बाद 1968 में उसका एक परिशिष्ट निकाला गया।[4] सन 1984 में संशोधित द्वितीय संस्करण के साथ यह 'प्रत्येक द्रविड़वादी के लिए अनिवार्य पथप्रदर्शक, उपकरण, और आधिकारिक पुस्तक' बन गयी है।[5]

उनके दावे की मूल अवधारणा यह थी कि द्रविड़ भाषाएँ संस्कृत से पुरानी हैं और संस्कृत ने द्रविड़ शब्दावलियों को अपने में मिला लिया है। अब इसकी राजनैतिक तुलना की जा सकती थी, और इस अवधारणा ने जड़ें जमायीं कि आर्यों ने विजय प्राप्त कर द्रविड़ों का दमन किया था, जिन्हें अब अवश्य ही अपनी पहचान फिर से दृढ़तापूर्वक रखनी चाहिए।

देर से उत्पन्न सन्देह

शुरू में ईमेनो वैदिक भाषाओं में गैर-संस्कृत उपस्तर के द्रविड़ मूल के प्रति बड़े आश्वस्त थे। लेकिन बाद में उन्होंने सार्वजनिक रूप से स्वीकार किया कि उन्होंने और बरो ने जिस द्रविड़ मूल को ऋग वैदिक उपस्तरीय शब्दों के साथ सम्बद्ध बताया था, वे वास्तव में अधिकतर अटकलें थीं और वे अनुभवजन्य तथ्य नहीं थे। सन 1980 में उन्होंने कहा कि जो शब्द द्रविड़ से इण्डो-आर्य में लिए गये, वे 'वास्तव में सुझाव मात्र हैं'; 'सभी व्युत्पत्तियाँ अन्तिम निष्कर्ष में प्रमाणित किये जाने योग्य नहीं हैं'; और ऐसे सिद्धान्त 'आस्था के कार्य' हैं।[6] ईमेनो ने स्वीकार किया, 'यह स्पष्ट है कि बरो ने जिन्हें

द्रविड़ से लिये गये होने का सुझाव दिया उनमें से सभी उनके अपने ही सिद्धान्तों पर खरे नहीं उतरेंगे'।[7]

लेकिन इस तरह देर से पीछे हटने की घटना बहुत हल्की और बहुत विलम्बित थी, क्योंकि तब तक एक द्रविड़ उपस्तर के बारे में शैक्षणिक अटकल का विचार घुस आया था और अपना स्वतन्त्र जीवन ग्रहण कर चुका था। द्रविड़ विमर्श अब बेहद राजनीतिक हो गया था, और अलगाववादी चिन्तकों के हाथों दृढ़ हो गया था। उदाहरण के लिए, देवनेय पवनार ने पश्चिमी भारतविद्या के ऐसे उदाहरणों से प्रेरित होकर तब तक अपने तमिल श्रेष्ठता के सिद्धान्तों को उपस्तरीय दावों पर आधारित कर लिया था। उनकी 1966 की पुस्तक 'द प्राइमरी क्लासिकल लैंग्वेजेज ऑफ द वर्ल्ड' (*The Primary Classical Language of the World*) ने बरो और ईमेनो के विश्लेषण को आगे बढ़ाया और निष्कर्ष निकाला कि 'प्राचीन या लिमुरियन तमिल न केवल द्रविड़ परिवार की भाषाओं की जनक थी, बल्कि बोलियों के इण्डो-यूरोपीय स्वरूपों की जनक भी थी'।[8]

ईमेनो-बरो शोध शीघ्र ही भाषा विज्ञान से बढ़कर अलगाववाद के जमीनी स्तर की राजनीति में पहुँच गया था, और ईमेनो द्वारा पीछे हटने की भी उपेक्षा कर दी गयी थी। जिन विद्वानों ने आर्य/द्रविड़ औपनिवेशिक ढाँचे को स्वीकार नहीं किया वे शैक्षणिक दायरों में हाशिये पर धकेल दिये गये और साथ में लोकप्रिय तमिल दायरों में भी। समय बीतने के साथ ऐसी व्याख्याएँ पश्चिमी शैक्षिक शिक्षाविदों द्वारा रचे गये उस सिद्धान्त के पक्ष में त्याग दी गयीं जिसमें कहा गया था कि आर्यों ने दक्षिण भारत का औपनिवेशीकरण किया और इसके मूल निवासियों को अपने अधीन कर लिया।

तमिल और संस्कृत दोनों में समान रूप से पाये जाने वाले शब्दों की एक भिन्न व्याख्या पेन्सिल्वेनिया विश्वविद्यालय के एक भाषाविद फ्रैंक्लिन साउथवर्थ (Franklin Southworth) की 1979 की तरोताजा कर देने वाली टिप्पणी में मिलती है। उनके विश्लेषण के अनुसार : 'ये दो सूचियाँ (द्रविड़ और इण्डो-आर्य दोनों) तो सांस्कृतिक सम्पर्कों के एक व्यापक दायरे का ही संकेत देती हैं, और ये सम्पर्क एक ही ओर से शब्दों को लेने के ठेठ या नमूने पर आधारित सम्बन्ध को नहीं दर्शाते जिसकी औपनिवेशिक परिवेश में आशा की जाती है'। साउथवर्थ ने अपने कथन को जारी रखते हुए कहा, 'किसी भी पक्ष की ओर से प्रौद्योगिकीय, सांस्कृतिक या सैन्य प्रभुत्व का दृश्य इन शब्दों के परीक्षण से नहीं उभरता'।[9] परन्तु बरो ने, जो साउथवर्थ से राजनीतिक रूप से अधिक शक्तिशाली स्थिति में थे, बल देकर कहा कि इण्डो-आर्य आक्रमण के कुछ भाषाई साक्ष्य थे, यह स्वीकार करते हुए भी कि इसके लिए कोई पुरातात्विक साक्ष्य नहीं था।[10] अन्ततः साउथवर्थ अकादमिक राजनीति के आगे झुक गये, और वे बरो तथा ईमेनो द्वारा शुरू किये गये व्युत्पत्तिशास्त्रीय सृजन को बढ़ावा देने वाली एक परियोजना में शामिल हो गये हैं।

मैसूर स्थित 'केन्द्रीय भारतीय भाषा संस्थान' (Central Institute of Indian Languages) के बी.ए. शारदा और एम. चेतना ने ईमेनो-बरो शब्दकोश में उद्धरणों के आँकड़ों का एक व्यापक विश्लेषण किया। वे दिखाते हैं कि 1960 और 1970 के दशक में शुरू से अन्त तक अधिकाधिक आवृत्ति में इस शब्दकोष का उद्धरण दिया गया। यह वही काल था जो तमिलनाडु में द्रविड़ उग्र राजनीतिक उफान का साक्षी बना।[11] यह महत्वपूर्ण प्रश्न खड़ा करता है : क्या शैक्षिक द्रविड़वादी जमीनी स्तर पर अलगाववाद की राजनीति को बढ़ावा दे रहे थे? या क्या भारत की जमीनी राजनीति विदेशों से शैक्षिक विश्वसनीयता की माँग कर रही है? उत्तर दोनों है : स्थानीय और वैश्विक सामान्यत: समानान्तर विकासक्रम हैं जिन्होंने एक-दूसरे को पक्का किया है।

आज, बरो और ईमेनो द्रविड़ चिन्तन को आकार देने में प्रतिष्ठित व्यक्तित्व बन गये हैं। उनका व्युत्पत्तिशास्त्रीय भाषा कोष दक्षिण एशियाई भाषा विज्ञान में आधिकारिक मानदण्ड बन गया है, विशेषकर तमिल अध्ययन में। अलग द्रविड़ पहचान के समर्थन में उनसे आगे केवल औपनिवेशिक ईसाई प्रचारक रॉबर्ट कॉल्डवेल ही हैं।

वैदिक भाषाओं के लिए एक द्रविड़ उपस्तर की परिकल्पना भी अफ्रीकी-द्रविड़वादियों के बीच लोकप्रिय हो गयी है, जो द्रविड़ों और अफ्रीकियों के लिए एक ही साझे मूल का दावा करते हैं, जिनका आधार ऐसी कथाएँ और पुरातात्विक साक्ष्य हैं जिन पर प्रश्न उठाये जा सकते हैं। इस पर अध्याय बारह में चर्चा की गयी है। इस राजनीतिक संगम के एक उदाहरण में सेनेगल के एक नेता ने, जो बाद में वहाँ के प्रधान मन्त्री भी बने, बरो और ईमेनो को अपने व्याख्यान में उद्धृत किया जिसका शीर्षक था 'नेग्रीटयूड ऐण्ड द्रविडियन कल्चर', जिसका आयोजन 1974 में 'अन्तर्राष्ट्रीय तमिल अध्ययन संस्थान' (International Institute of Tamil Studies) के तत्वावधान में मद्रास में किया गया था।[12]

एक बार जैसे ही द्रविड़ पहचान को सफलतापूर्वक अलग कर दिया गया और इसे अन्य भारतीयों के साथ तनाव की स्थिति में डाल दिया गया, वैसे ही अनगिनत भू-राजनीतक बलों द्वारा इसे अपना लिया गया, जैसे अफ्रीकी राष्ट्रवाद द्रविड़ों के साथ एक प्रजातीय सम्बन्ध की भावना रखता है, ईसाई द्रविड़ पहचान की राजनीति में घुस रहे हैं ताकि उनका ईसाईकरण किया जा सके, दलित वर्ण एकजुटता की जा रही है ताकि दलित पहचान के तहत ही द्रविड़ों को शामिल किया जा सके, और इसी के अनेक दूसरे समीकरण।

शैक्षिक चिन्तन द्वारा भारतीय राजनीति का संचालन : अन्नादुरै

यह नयी द्रविड़ पहचान केवल जातीय गर्व की ही बात नहीं थी, बल्कि उसी अवधि ने, जिसने द्रविड़ व्युत्पत्तिशास्त्रीय शब्दकोष का प्रकाशन देखा, अलगाववादी

राजनीतिक आन्दोलनों को जन्म दिया। येल विश्वविद्यालय ने एक प्रमुख द्रविड़वादी राजनीतिज्ञ, सी.एन. अन्नादुरै (1909-69), के काम-काज का पोषण करने में अपनी भूमिका जारी रखी, जो 1967 से 1969 तक तमिलनाडु के मुख्य मन्त्री थे।

अन्नादुरै द्रविड़वाद के प्रमुख चिन्तक और जन नेता के रूप में उभरे। क्रॉफोर्ड यंग (Crawford Young) व्याख्या करते हैं कि उनका मुखर अलगाववाद 'भारत सरकार को आक्रामक चुनौती देने के लिए ब्राह्मण विरोधी, द्रविड़ विरासत और तमिल सांस्कृतिक विषयवस्तुओं को एक-दूसरे के निकट ला रहा था'।[13] सन 1949 में उन्होंने द्रविड़ मुन्नेत्र कड़गम (द्रमुक) की स्थापना में सहायता की, जो अलगाववादी विचार रखने वाली एक राजनीतिक पार्टी है। आज भी यह पार्टी तमिलनाडु की राजनीति में प्रभुत्व रखती है। भारत के विखण्डन के प्रति उनकी स्थिति उनके निम्न बहुप्रकाशित भाषण से स्पष्ट है जो उन्होंने महात्मा गाँधी के स्वतन्त्रता संग्राम के दौरान दिया था :

> भारत एक 'महादेश' है; इसे कई देशों में विभाजित किया जाना चाहिए। ... एक ही देश में आर्य प्रभाव बढ़ता है जिसे भारत कहा जाता है। आर्य शासन के अधीन अन्य नस्लों का दमन किया जाता है। एक ही देश के अन्दर विभिन्न नस्लों को एकताबद्ध करना विद्रोह और कठिनाइयाँ उत्पन्न करता है। भारत में ऐसी कठिनाइयाँ और खून-खराबा होने से रोकने के क्रम में अब हमें भारत को नस्ली आधार पर विभाजित कर देना चाहिए।... अब तक भारत में एक नस्ल ने दूसरी नस्ल का दम नहीं घोंटा है तो उसका कारण है अंग्रेजों की बन्दूकें। जब अंग्रेज भारत छोड़कर चले जायेंगे तब यह मार-काट के मैदान में बदल जायेगा।[14]

नेहरू का प्रतिकार करने के लिए, जो कि सोवियत संघ की ओर झुके हुए थे और तीसरे विश्व में जिन्हें अमरीकी महत्वाकांक्षा पर पानी फेरने वाला माना जाता था, संयुक्त राज्य अमरीका की कुछ शक्तियों ने परोक्ष रूप से शीत युद्ध के दौरान अन्नादुरै के अलगावादी सिद्धान्त को समर्थन दिया। सन 1962 में चीन द्वारा भारत पर आक्रमण करने की घटना ने भारतीय राष्ट्रवाद की एक सशक्त लहर पैदा की जिसके बाद एक संवैधानिक संशोधन हुआ जिसने अलगाववाद को अवैध बना दिया। तभी जाकर द्रमुक ने अपने आधिकारिक सिद्धान्त से अलगाववादी भाग को हटाया। लेकिन सन 1965 में द्रमुक ने हिन्दी के भारत की राजभाषा बनने के विरुद्ध एक व्यापक हिंसात्मक आन्दोलन प्रारम्भ किया। आन्दोलन ने आतंकवादी स्वरूप ग्रहण कर लिया, और नवजात भारत राष्ट्र के विखण्डन की एक सम्भावित दरार को विश्व के समक्ष उजागर कर दिया।

अमरीकी सी.आई.ए. (CIA) और अन्य गुप्तचर एजेंसियों की गतिविधियों का पता लगाना हमेशा ही कठिन होता है। फिर भी, भारत के पूर्व मुख्य चुनाव आयुक्त टी.एन. शेषन की जीवनी ने ऐसे एक कथित सम्बन्ध को उजागर करने का प्रयास किया :

> [द्रविड़] आन्दोलन के पीछे स्पष्ट रूप से एक विदेशी हाथ था... कुछ द्रविड़ नेता श्रीलंका होते हुए भेजे जाने वाले अमरीकी धन से प्रभावित रहे थे और वे, अगर

अजाने ही, तो भी, अस्थिरता के लिए तैयार हथियार बन गये। **अन्नादुरै सम्भव है इसे न जानते हों, लेकिन वे अमरीकी गुप्तचर मशीनरी का एक प्रभावी खिलौना बन रहे थे।**[15]

शेषन की जीवनी 1994 में प्रकाशित हुई थी जो शीघ्र ही विवादास्पद हो गयी, और उन पर हिंसक हमलों के भी प्रयास हुए। इस मामले में खुली बहस और जाँच होने के बदले, यह पुस्तक तमिलनाडु में अनधिकारिक रूप से प्रतिबन्धित है।[16]

इस मामले में येल के दीर्घ काल से जुड़ाव को, अन्नादुरै को अमरीकी विदेश विभाग द्वारा 1968 में चब फेलोशिप कार्यक्रम में आमन्त्रित करने[17] में, देखा जा सकता है। वे इस प्रकार सम्मानित होने वाले पहले गैर-अमरीकी थे। हाल की एक पुस्तक, जिसका नाम है 'अन्ना का जीवन और काल' (Life and Times of Anna) और जिसे आर. कन्नन ने लिखा है, तर्क देती है कि अन्नादुरै राष्ट्रविरोधवाद का उपयोग केवल भारत के अन्दर राजनीतिक पैंतरों के लिए कर रहे थे, लेकिन वे हृदय से भारत विरोधी नहीं थे।[18] जो भी हो, उन्होंने अपने पीछे जो विरासत छोड़ी, भूल से ही सही, उसने उनके हृदय का अनुसरण नहीं, बल्कि उनकी राजनीति का अनुसरण किया।

सर्व (SARVA) परियोजना और पहचान की राजनीति

द्रविड़ व्युत्पत्तिशास्त्रीय शब्दकोष के बाद पश्चिमी भारतविद्या में प्रमुख गतिविधि, जिसका उप-राष्ट्रीय पहचान की राजनीति पर प्रभाव है, जो अब हार्वर्ड विश्वविद्यालय के संस्कृत और भारतीय अध्ययन विभाग द्वारा संचालित की जा रही है। 'दक्षिण एशिया अवशिष्ट शब्द भण्डार समूह' (The South Asia Residual Vocabulary Assemblage— SARVA) नामक परियोजना का नेतृत्व निम्नलिखित विद्वान कर रहे हैं :

- माईकल विट्जेल, हार्वर्ड विश्वविद्यालय में संस्कृत के वेल्स प्राध्यापक
- फ्रैंकलिन सी. साउथवर्थ, पेन्सिलवेनिया विश्वविद्यालय, जो सर्व (SARVA) में शामिल होने से पहले तक, जैसा कि पहले उल्लेख किया गया है, तमिल-संस्कृत सम्बन्ध को इकतरफा असंगत के रूप में व्याख्यायित करने के विरोधी थे।
- स्टीव फार्मर, जिन्होंने 1960 के दशक में अमरीकन नेशनल सिक्योरिटी एडमिनिस्ट्रेशन (एन.एस.ए.) में काम किया, और जो किसी भी विशेष संस्थान से 'स्वाधीन' होने का दावा करते हैं।[19]

इस परियोजना की अतिमहत्वपूर्ण रणनीति तीन चरणों में है :

1. संस्कृत से उनकी भाषाई पृथकता को दिखाकर विभिन्न भारतीय जनजातियों के बीच अलग पहचान स्थापित करना।

2. उनके मौखिक वृत्तान्तों को इस तरह पुनर्व्याख्यायित करना कि संस्कृत की संस्कृति से उनका अधिकाधिक अन्तर हो जाये या विरोधपूर्ण हो जाये।
3. एक इतिहास विकसित करना जो इन जनजातियों के पूर्वजों को सिन्धुसरस्वती सभ्यता के निवासी दिखाता हो, जो 'विदेशी आर्यों' द्वारा उनका औपनिवेशीकरण करने, उन्हें पराजित करने, उन्हें दक्षिण की ओर धकेल देने, और उनका विरोध करने से पूर्व वहाँ रहते थे।

प्राचीन सिन्धु घाटी सभ्यता के पुरातात्विक अवशेषों को इस दावे का समर्थन करने के लिए अपनाया गया है कि द्रविड़ इस उपमहाद्वीप के मूल निवासी थे। इस तरह द्रविड़, और उसके बाद के छोटे जनजातीय और/या सामाजिक समूहों को एक राजनीतिकृत पहचान प्रदान की गयी जो उन्हें शेष भारत की जनसंख्या के मुकाबले ऐतिहासिक रूप से पीड़ित के रूप में परिकल्पिक करके स्थापित करता है। जो भी हो, यह तोड़-मरोड़कर बनायी गयी द्रविड़ पहचान एक आन्तरिक चरण के रूप में उपयोग में आयी, और अब इसे और भी छोटे खण्डों के सृजन के माध्यम से पीछे धकेला जा रहा है। भारत का यह सुनियोजित विखण्डन तब तक चलता रहेगा जब तक कि भारत को अन्ततः एक सामाजिक इकाई के रूप में अत्यन्त लघु, स्वतन्त्र, असम्बद्ध समुदायों के स्तर पर बँटे समुदायों का प्रतिनिधित्व करता हुआ न बना दिया जाये। यह तब और भी महत्वपूर्ण हो जाता है जब इसे हाल की माओवादी अलगाववादी हिंसा के सन्दर्भ में देखा जाता है जो उन्हीं जनजातीय क्षेत्रों में व्याप्त है जहाँ इन विद्वानों की उपस्थिति रही है और जहाँ वे गैर सरकारी संगठनों (एन.जी.ओ.) के अलगाववादी इतिहास और पहचान के दावों के लिए बौद्धिक चारा उपलब्ध कराते हैं।

सर्व (SARVA) परियोजना अमरीकी विश्वविद्यालयों की प्रतिष्ठा और शक्ति का उपयोग करती है, और उसके बदले भारत में अस्मिता की राजनीति तैयार करने के काम में महत्वपूर्ण खिलाड़ियो के रूप में उनकी स्थिति सुदृढ़ करती है।[20] साथ-ही-साथ ये विद्वान लगभग सभी विरोधी शैक्षिक दृष्टिकोणों का कठोरता से राजनीतिकरण करते हैं और उनकी खिल्ली उड़ाते हैं। कोलम्बिया विश्वविद्यालय के एडविन ब्रायंट पश्चिमी भारतविद्या में इस वातावरण को स्पष्ट करते हैं :

> हमें उन लोगों के प्रति, जो प्राचीन भारतीय इतिहास के स्थापित खाके पर पुर्निवचार के लिए खुला दिमाग रखते हैं, एक किस्म के अनालोचनात्मक भारतविद्या सम्बन्धी मैकार्शीवाद से सतर्क रहना चाहिए, चाहे उनके उद्देश्य और पृष्ठभूमि जैसी भी हो, और सभी चुनौतियों को एक सरल, सुविधाजनक और आसानी से दानवीकृत 'हिन्दू राष्ट्रवादी' कोटि में ठूँस देने से भी।[21]

सर्व का उद्देश्य 1960 के दशक में बरो और ईमेनो द्वारा बनाये गये 'द्रविड़ व्युत्पत्तिशास्त्रीय शब्दकोष' की लीक पर एक अटकलों वाला व्युत्पत्तिशास्त्रीय शब्दकोष तैयार करना है।[22] यह केवल भाषाशास्त्रीय पुनर्संरचना से परे जाता है।

साउथवर्थ स्पष्ट करते हैं कि किस प्रकार यह परियोजना जनजातीय समुदायों के इतिहास की पुनर्संरचना को संचालित करने में इस्तेमाल की जा सकती है :

> हमारी अन्तिम चिन्ता है भाषाई आदान-प्रदान के स्वरूप का पता लगाना जो हमें समय, स्थान, और सांस्कृतिक स्थितियों की पुनर्संरचना तक ले जायेगा जिसके तहत इस उपमहाद्वीप में प्रागैतिहासिक भाषा सम्पर्क स्थापित हुआ था।[23]

जो भी हो, देखने में सहानुभूतिपूर्ण लगने वाली यह 'चिन्ता' तर्कों को भाषाविज्ञान से राजनीति में बदल देने के लिए बहाने के रूप में बार-बार प्रयोग में लायी जाती रही है, ताकि 'भाषा सम्पर्क' शब्दावली को 'उत्पीड़न' और 'दमन' के आलोक में फिर से गढ़ा जा सके।[24]

1960 के दशक की तरह ही जब 'द्रविड़ व्युत्पत्तिशास्त्रीय शब्दकोष' (*Dravidian Etymological Dictionary*) को जमीनी स्तर पर तेज हुए द्रविड़ अलगाववाद से जुड़ा हुआ था, अब इस परियोजना के बौद्धिक समर्थन से जनजातीय अस्मिता की विभिन्न राजनीतियाँ गहरी होती देखी जा सकती हैं। एक बार जैसे ही इन जनजातीय समूहों की पहचान कर ली जाती है और साझी भारतीय विरासत से उन्हें अलग कर दिया जाता है, वैसे ही वे तरह-तरह के धर्मान्तरण प्रयासों के आसान लक्ष्य हो जायेंगे। उदाहरण के लिए, जनजातीय क्षेत्रों में सक्रिय उग्रवादी माओवादी संगठन दावा करते हैं कि 'आदिवासी हिन्दू नहीं हैं। वे प्रकृति पूजक हैं'।[25] मानो प्रकृति पूजा हिन्दू धर्म के बाहर की वस्तु है! 'नेतृत्व प्रशिक्षण' और 'युवा सशक्तीकरण' प्रदान करने के झण्डे के तहत, विभिन्न एन.जी.ओ. कार्यक्रम स्थापित किये गये हैं जिनका उद्देश्य है युवाओं में अलगाववाद के विभाजनकारी इतिहास का प्रवेश कराना। इस पर ध्यान देना मनोरंजक होगा कि उन्हीं जनजातीय समूहों को ईसाई प्रचारक ईसाइयों द्वारा धर्मान्तरण के नये प्रयासों का लक्ष्य बनाया जाता रहा है,[26] जो मुण्डा को वैश्विक धर्मान्तरण की अगली पंक्तियों में मानते हैं, क्योंकि एक समुदाय के रूप में अब भी अपेक्षाकृत उनका धर्मान्तरण नहीं हुआ है।

सर्व के काम में रुचि रखने वाले अनेक पक्ष हैं। जब विट्ज़ेल के सहयोगियों में से एक ने ध्यान दिलाया कि हड़प्पा के अतीत की पुनर्संरचना करने वाला एक पाकिस्तानी वेबसाइट विचारधारा की दृष्टि से खास झुकाव वाला और ऐतिहासिक रूप से गलत था, विट्ज़ेल ने इस चिन्ता को यह कहते हुए एक तरफ धकेल दिया कि 'वह कोई नयी बात नहीं' थी। उन्होंने एक राजनीतिक रंगमंच के रूप में 'भारतीयों, पाकिस्तानियों, बांग्लादेशियों, द्रविड़ों, मुण्डाओं, कश्मीरियों, कालसों, नेपालियों, भूटानियों, मणिपुरियों, आदि-आदि, द्वारा प्रस्तुत इतिहास के राष्ट्रवादी दृष्टिकोणों' का उल्लेख किया जिसमें इस प्रकार की विद्वता काम करती है।[27] इस प्रकार सम्प्रभुतासम्पन्न राष्ट्र-राज्यों को अलगाववादियों के साथ 'राष्ट्रवादी' की एक ही श्रेणी में डाल दिया जाता है। भारत पर यह विद्वता शुद्ध अकादमिकता की सीमा से बाहर चली गयी है। यह भारत के कोने-कोने से आँकड़े इकट्ठा करती है, सैद्धान्तिक उद्देश्यों

के साथ इसका विश्लेषण करती है, और भारत से सम्बद्ध मामलों में जानकारी को संयुक्त राज्य अमरीका के नीतिनिर्धारकों को उपलब्ध कराती है। विट्‌जेल और फार्मर 'राजनैतिक-धार्मिक अतिवाद के विकास का अनुकरण : नीति निर्धारण के लिए अभिप्राय' (*Simulating the Evolution of Political-Religious Extremism: Implication for Policy Decision*) विषय पर गठित एक दल का नेतृत्व करते हैं। दल के सदस्यों में से एक, रिचर्ड स्प्रोट (Richard Sproat), ने सेन्ट्रल इंटेलिजेन्स एजेन्सी के साथ-साथ राष्ट्रीय सिक्योरिटी एजेन्सी (NSA) द्वारा वित्त प्रदत्त परियोजनाओं में काम किया है।[28] यह परियोजना अतिवादी गुटों के हाथों नयी संचार प्रौद्योगिकी (जैसे इंटरनेट) के प्रभावों का अध्ययन करती है, जिसके लिए हिन्दू राष्ट्रवादी आन्दोलनों का उपयोग अनुसन्धान के लक्ष्य के रूप में किया जाता है। परियोजना के विवरण के अनुसार :

> इस शोध के समर्थन में साक्ष्यों का संकेत पिछले दशक में अतिवादी हिन्दू राष्ट्रीयता ('हिन्दुत्व') आन्दोलनों के वैश्विक विस्तार पर किये गये हमारे अनुसन्धान में मिला है [9-11], जो अन्य अतिवादी गुटों के विकास के अध्ययन के लिए उपयोगी प्रारूप प्रदान करते हैं।... दूसरी पीढ़ी के सतत अनुकरण तन्त्रों की योजना बनायी गयी है जो उन्हीं तरीकों को वास्तविक-विश्व के अतिवादी गुटों के आँकड़ों का विश्लेषण करने के लिए बढ़ायेगी जिसके लिए इंटरनेट से मिली सामग्री और अन्य कृत्रिम वास्तविक समय (Quasi-real-time) के सूचना स्रोतों का उपयोग किया जायेगा। हमारे प्रारम्भिक सिम्युलेशन (simulation) में ही एक परिकल्पना है जिसे हम परखना चाहते हैं; वह यह कि एक वास्तविक जगत के नीतिगत निर्णय को लागू करते हुए सम्भाविक अतिवादी गुटों के सदस्यों को अलग-थलग करने के प्रयास, विरोधाभासी रूप से हिंसात्मक प्रवृत्तियों को कायम रखने में, समझौतों के माध्यम से लाये गये परिवर्तनों के अवसरों को सीमित करते हुए सहायक हो सकते हैं, जो दीर्घावधि पैमाने पर ऐसी प्रवृत्तियों को कमजोर करने के रूप में जाने जाते हैं।[29]

'सिम्युलेटिंग दि इवोल्यूशन ऑफ़ पॉलिटिकल-रिलिजियस एक्सट्रीमिज्म' परियोजना केवल शैक्षिक अभ्यास नहीं है। स्टीव फार्मर अपनी वेबसाइट पर इसकी व्याख्या करते हैं कि इसका उद्देश्य है 'नीति विश्लेषकों और इतिहासकारों को बिना किसी औपचारिक योजना बनाये सांस्कृतिक कृत्रिम अनुकरण निर्मित करने की अनुमति देना'।[30] शब्दावली 'सांस्कृतिक कृत्रिम अनुकरण' (cultural simulation) का अर्थ है नकली अभ्यास करने की योग्यता कि 'क्या होगा अगर' अमरीका को अमुक गुट के विरुद्ध तमुक गुट के साथ सहयोग करना पड़ेगा, और भारत में ऐसे 'सांस्कृतिक हस्तक्षेप' के लिए परिदृश्यों के विभिन्न समीकरण क्या होंगे। ऐसे ही सैद्धान्तिक हस्तक्षेपों को अफगानिस्तान, पाकिस्तान, ईराक और यमन में वास्तविकता में लागू किये जाते हुए देखा जा सकता है।

भारतीय पुरालेखवेत्ता ईरावथम महादेवन पर हाल में हुआ विवाद यह दर्शाता है कि किस प्रकार पश्चिमी भारतविद भारत के चुनिन्दा विद्वानों का उपयोग करते हैं ताकि वे अपने कुछ 'गन्दे कार्यों' को कर सकें, लेकिन जैसे ही भारतीय विद्वान उनके उद्देश्यों को पूरा कर देते हैं, उन्हें शैक्षिक घेरों में अमान्य और कलंकित कर दिया जाता है। महादेवन का, जो अपने क्षेत्र के जाने माने विशेषज्ञ हैं, उपयोग हार्वर्ड विश्वविद्यालय के भारतविदों द्वारा उनके निरन्तर शैक्षिक विरोधी रहे एन.एस. राजाराम को बदनाम करने के लिए किया गया था। महादेवन द्वारा दी गयी अनुमोदित जानकारियों के साथ विट्जेल और फार्मर ने राजाराम की एक भूल को बढ़ा-चढ़ाकर एक अन्तर्राष्ट्रीय धोखा बना दिया गया, जो राजाराम के विरुद्ध एक प्रमुख कलंक बन गया। लेकिन बाद में जब विट्जेल और फार्मर ने महादेवन पर उनके ही सिन्धु नदी के चिह्नों की सुसंगति को विकृत करने का आरोप लगाया, तब उससे दुखी हो कर महादेवन ने लिखा :

> 'जैसा कि वे कहते हैं, कचड़ा अन्दर, कचड़ा बाहर', कहते हैं हार्वर्ड विश्वविद्यालय के माईकल विट्जेल। एक ऑनलाइन सामाचार से लिया गया यह उद्धरण (New Scientist, 23 April 2009) एक प्रतिनिधि उदाहरण है जो पश्चिम के समाचार माध्यमों के एक वर्ग में शोध पत्रों पर वाद-विवाद के रूप में प्रस्तुत किया जाता है, और भारतीय वैज्ञानिकों द्वारा हाल में संयुक्त राज्य अमरीका में प्रकाशित एक गम्भीर शोध पत्र पर शैक्षिक वाद-विवाद के लिए ऐसा ही किया गया। (Science, 24 April 2009) ...फार्मर और विट्जेल द्वारा दी गयी भड़काऊ टिप्पणियाँ केवल उनको ही आश्चर्य में डाल सकती हैं जो इस प्रश्न पर उनके द्वारा, विशेषकर फार्मर द्वारा, लगातार अपनायी गयी आक्रामक शैली से अनभिज्ञ हैं।[31]

पश्चिमी भारतविदों ने किस प्रकार अपने एजेंडे के लिए महादेवन का उपयोग किया और उसके बाद उनकी किस प्रकार निन्दा की गयी उस पर विस्तार से एक विश्लेषण परिशिष्ट ''च'' में दिया गया है।

तमिल अलगाववादी सम्मेलन के लिए शैक्षिक समर्थन

'तमिल ईलम' का नाम तमिल अलगाववादियों द्वारा उस राज्य को दिया गया है जिसे वे श्रीलंका में निर्मित करने की आशा रखते थे। इस परिकल्पना को, जिसने श्रीलंका के गृह युद्ध में तमिल टाइगर्स को उत्प्रेरित करने में सहायता पहुँचाई, बर्कले में कैलिफोर्निया विश्वविद्यालय के ब्रायन फैफेनबर्गर जैसे अमरीकी शैक्षिक विद्वानों ने प्रोत्साहित किया और वैधता प्रदान की। सन 1973 से 1975 तक फैफेनबर्गर ने श्रीलंकाई तमिल जातियों का अध्ययन किया और श्रीलंका में तमिल अलगाववादी आन्दोलन के प्रबल समर्थक बन गये। इंस्टीटयूट फ़ॉर इंटरनेशनल स्टडीज और कैलिफोर्निया विश्वविद्यालय, बर्कले के मानवशास्त्र विभाग ने उनके कार्य का समर्थन

किया। उन्होंने सोशल साइंस रिसर्च काउंसिल के फोरेन एरिया फेलोशिप और अमरीकन काउंसिल ऑफ़ लर्नेड सोसाइटीज से भी धन प्राप्त किया। एक अमरीकी सरकारी संस्थान, द नेशनल एण्डाउमेंट फ़ॉर द ह्यूमैनिटीज से प्राप्त उनकी फेलोशिप ने 'श्रीलंका के साक्ष्य को तमिल भारत पर साहित्य के व्यापक सन्दर्भ' में रखने में उनकी सहायता की।[32]

सन 1991 में, स्विट्जरलैंड स्थित इंटरनेशनल फेडरेशन ऑफ़ तमिल्स और कैलिफोर्निया स्टेट यूनिवर्सिटी, सैक्रामेन्टो के सरकार विभाग (डिपार्टमेंट ऑफ़ गवर्नमेंट) द्वारा एक अन्तर्राष्ट्रीय तमिल ईलम शोध सम्मेलन का आयोजन किया गया था। उस सम्मेलन का नाम रखा गया था—'तमिल ईलम—बिना राज्य का एक राष्ट्र'[33] इसमें फैफेनबर्गर ने एक शोध पत्र प्रस्तुत किया था, जिसे 'विश्व संस्कृतियों का विश्वकोष' (*Encyclopaedia of World Cultures*) में भी शामिल किया जाना था, जो तमिल ईलम के लोगों के अलग राष्ट्र को प्रोत्साहित करता है।[34] सम्मेलन में कई प्रकार के शैक्षिक शोध पत्र प्रस्तुत किये गये जिसने तमिलों को शेष भारतीय संस्कृति से अलग दिखने वाला बनाते हुए उनके ऐतिहासिक गर्व को बढ़ाया।[35] वैसी राजनीतिक टिप्पणियाँ भी की गयीं जिसमें श्रीलंकाई तमिल संघर्ष की तुलना कश्मीर संघर्ष से की गयी थी।[36] 'बिना राज्य के एक तमिल राष्ट्र' की परिकल्पना को अब केवल श्रीलंका में ही नहीं बल्कि भारत के तमिलों तक विस्तारित किया जा रहा है।[37]

इस सम्मेलन में भाग लेने वाले एक विद्वान थे जॉर्ज एल. हार्ट, विस्कोन्सिन विश्वविद्यालय में तमिल के एक प्राध्यापक। हार्ट ने कुछ कच्चे ऐतिहासिक वृत्तान्तों पर विद्वत्ता का मुलम्मा चढ़ा कर पेश किया जिन्हें द्रविड़ आन्दोलन के सार्वजनिक भाषणों में आमतौर पर लोकप्रिय बनाया गया। उदाहरण के लिए, हार्ट ने द्रविड़वादी प्रचार को ही बढ़ा-चढ़ाकर प्रस्तुत किया जो 'सभी सामाजिक बुराइयों के लिए, धूर्त ब्राह्मणों को ही जिम्मेदार' ठहराता है।[38]

हार्ट ने तमिल साहित्य के चुनिन्दा पक्षों पर बल दिया ताकि दिखाया जा सके कि यह जातीय रूप से वैदिक परम्परा और शेष भारतीय साहित्य से अलग था। परिशिष्ट ''ख'' दिखाता है कि किस प्रकार जार्ज हार्ट और हैंक केफेट्ज ने संगम काल की कालजयी रचना पुरानानुरु को अपने अनुवाद 'युद्ध और ज्ञान के चार सौ गीत : कालजयी तमिल की कविताओं का संकलन' (The Four Hundred Songs of War and Wisdom : An Anthology of Poems from Classical Tamil) में गलत ढंग से 'दक्षिण भारत में आर्य प्रभाव के आने के पहले रचित होने' के रूप में चित्रित किया। वे दावा करते हैं कि इसका 'सर्वव्यापक आकर्षण' है, क्योंकि यह 'कर्म और इस जीवन के बाद के जीवन के बारे में कोई मौलिक परिकल्पना नहीं करता'।[39] हार्ट ने स्वयं को लगातार तमिल राजनीति से जोड़े रखा और वे अपनी शैक्षिक विश्वसनीयता का उपयोग द्रविड़वाद को फिर से लागू करने के लिए करते हैं।

बर्कले तमिल पीठ

सन 1996 में कैलिफोर्निया विश्वविद्यालय ने बर्कले में एक तमिल पीठ शुरू की जिसे '...एक अमरीकी विश्वविद्यालय में अपने तरह का पहला' बताया गया। पीठ के लिए जिन्हें नियुक्त किया गया वे मूल तमिल भाषा-भाषी नहीं थे, बल्कि वे थे प्रोफेसर जार्ज एल. हार्ट, जिनकी द्रविड़ समर्थक राजनीति का उल्लेख पहले किया गया। बर्कले पीठ के लिए अभियान चलाने और कोष इकट्ठा करने वालों में प्रमुख था फेडरेशन ऑफ़ तमिल संगम्स ऑफ़ नॉर्थ अमरीका (फेटना),[40] जिसके आतंकवादी तमिल राष्ट्रवादी आन्दोलन से सम्बन्धों की व्याख्या इसी अध्याय में आगे की गयी है।

पीठ द्वारा किये गये कार्यों के एक अंग के रूप में बर्कले आमन्त्रित किये जाने वाले पहले प्रोफेसर थे चेन्नई के इलक्कुवनार मराईमलाई। इलक्कुवर इसके पहले 1987 में एक भाषावैज्ञानिक सम्मेलन में भाग लेने के लिए संयुक्त राज्य अमरीका गये थे। उस सम्मेलन में उन्होंने 'मोरमन पन्थ के बारे में और बाद के सन्तों के चर्च के बारे में अनेक बातों की जानकारी प्राप्त करने' पर प्रसन्नता व्यक्त की थी। मोरमोन बाइबल ने उन्हें 'तमिल में एक प्रमुख धार्मिक साहित्य तिरुवचगम' का ध्यान दिलाया।[41] एक सच्चे द्रविड़वादी की तरह इलक्कुवनार विश्वास करते हैं कि भारत सरकार अपने तमिल नागरिकों के साथ भेद-भाव रखती है और यह कि 'भारत उत्तर में ही बसता है'[42] और यह कि वर्तमान भारत 'धार्मिक अल्पसंख्यकों के लिए एक प्रताड़ना शिविर है'।[43] उनके लेखन के शीर्षक इस प्रकार होते हैं—जैसे भारत में 'ईसाई भिक्षुणियों पर यौन आक्रमण' और 'मैं अमरीका से प्यार करता हूँ,' आदि। उन्होंने 'जार्ज हार्ट की भद्रता और महानता' की प्रशंसा की,[44] और उसके बदले हार्ट ने इलक्कुवनार की द्रविड़वादी स्थापनाओं के समर्थन में जिनमें भारत में तमिल अध्ययन की स्थिति पर उनके विचार भी शामिल हैं, भारत सरकार को लिखा।[45]

हार्ट ने बर्कले तमिल स्टडीज पीठ का उपयोग उन विद्वानों को प्रोत्साहित करने में किया है जो भारतीय परम्परा से तमिल के अलगाव पर बल देते हैं। वे ऐसा फोरम आयोजित करने के माध्यम से करते हैं जिनमें ऐसे विद्वान भारत में द्रविड़ अलगाववादी पहचान की राजनीति को फिर से लागू करने के लिए एकजुट होते हैं। उदाहरण के लिए, उन्होंने पश्चिमी तमिल शिक्षकों की एक सभा आयोजित की जिसमें टॉमस माल्टेन जैसे लोग शामिल हुए जिनके कोलोन विश्वविद्यालय के तमिल अध्ययन विभाग का जर्मनी के लुथरन चर्च (जिसकी भारत में गतिविधियों की चर्चा अध्याय 17 और परिशिष्ट ''ज'' में की गयी है) से निकट सम्बन्ध है। उसमें भाग लेने वाले एक अन्य अतिथि थे शिकागो विश्वविद्यालय के नॉर्मन कट्लर, जिन्होंने एक अमरीकन नेशनल डिफेंस फ़ॉरेन लैंग्वेज फेलोशिप के तहत तमिल का अध्ययन किया और जिनके कार्य को अमरीकी नीति-निर्धारकों के लिए एक ऐसे भारत का द्वार खोलने वाला माना जाता है 'जो हिन्दी नहीं बोलता और जो लगभग दो हज़ार वर्ष पूर्व के काल की संस्कृत से बाहर की परम्परा की ओर देखता है'।[46]

बर्कले तमिल पीठ द्वारा आयोजित तमिल सम्मेलन सामान्यत: वैसे शोध पत्र सामने लाते हैं जो भक्ति की पारम्परिक तमिल छवियों के ढाँचे को बिगाड़ते हैं, ठीक उसी प्रकार जैसे आधुनिक द्रविड़ राजनीति में पाया जाता है। उदाहरण के लिए, हार्ट का एक शोध पत्र रामायण की व्याख्या 'ब्राह्मण चिन्तन' और 'सैन्य वीरता' के बीच अनेक विरोधाभासों से भरी हुई 'एक आश्चर्यजनक पुस्तक' के रूप में करता है। वे रामायण को मुख्य रूप से, लेकिन 'सूक्ष्मता' से द्रविड़ों के दमन के एक तरीके के रूप में देखते हैं। हार्ट दावा करते हैं कि यह बाद में उस तरीके में प्रतिबिम्बित होता है जिसमें 'चोलों की बड़ी सैन्य और राजतन्त्रीय शक्ति को उस ब्राह्मणवादी प्रणाली ने टुकड़ों में बाँट दिया जिसका वे समर्थन करते थे'। इससे ब्राह्मण-विरोध की ध्वनि निकलती है जो शैक्षिक भाषा में छिपाकर प्रस्तुत की गयी है। हार्ट इस बात पर बल देते हैं कि उनकी व्याख्या 'कुछ आधुनिक राजनीतिक विषयों की ओर ध्यान दिलाती है'।[47] इस प्रकार, भारत की प्राचीन कालजयी रचनाओं को विकृत करते हुए प्रस्तुत किया जा रहा है ताकि चिढ़ाते हुए यह दिखाया जा सके कि भारतीय सभ्यता में दमन अन्तर्निहित था।

बर्कले ने अपने दक्षिण और दक्षिण-पूर्व एशियाई अध्ययन विभाग में तेलुगू के लिए भी एक व्याख्याता का पद स्थापित किया है, जिसे अमरीकी तेलुगू समुदाय द्वारा धन दिया जाता है। यह पद एक ईसाई प्रचारक हेफ्जिबा (हेप्सी) सुनकरी को दिया गया है।[48] सन 2008 की अपनी एक परिचय पुस्तिका में क्रिश्चियन फैमिली कॉनफरेन्स नामक एक दक्षिणपन्थी मूलतत्ववादी गुट ने उनकी प्रशंसा की :

> अपने पति के साथ ईश्वर प्रदत्त महान कार्य का पालन करते हुए वे अमरीकी विश्वविद्यालय परिसरों में भारतीयों और अन्तर्राष्ट्रीय विद्यार्थियों के बीच चर्च अवधारणाओं को लागू करने में सक्रिय रूप से संलग्न रही हैं। वे फैमिली रेडियो के साथ, जो एक ईसाई रेडियो स्टेशन है, और अमरीका में अन्य ईसाई चर्चों के साथ एक अनुवादक रही हैं। वे सैन फ्रांसिस्को बे एरिया में तेलुगू ईसाई फेलोशिप के न्यूजलेटर की अवैतनिक सम्पादक भी रही हैं।[49]

फेटना (FeTNA)

द फेडरेशन ऑफ़ तमिल संगम्स ऑफ़ नॉर्थ अमरीका (फेटना) संयुक्त राज्य अमरीका में तमिल संगठनों का एक छतरी संगठन है। जहाँ एक ओर यह स्वयं को 'एक साहित्यिक, शैक्षणिक, सांस्कृतिक, दान पर चलने वाला, धर्मनिरपेक्ष, और अपक्षपाती संगठन कहता है',[50] वहीं इस पर लिट्टे (जो तमिल टाइगर्स आतंकवादी आन्दोलन को प्रायोजित करता है) को समर्थन देने का आरोप लगाया गया है, और इसके पूर्व निदेशकों में से एक[51] को एफ.बी.आई. द्वारा इस आधार पर गिरफ्तार भी किया गया था कि वह लिट्टे पर से प्रतिबन्ध हटाने के लिए अमरीकी अधिकारियों को घूस देने की कोशिश कर रहा था।[52]

फेटना अपने अमरीकी शैक्षिक सम्पर्कों का उपयोग भारतीय समाज की शैतानी छवियाँ फैलाने के लिए करता है, जिसके लिए तमिलनाडु स्थित दलित कार्यकर्ताओं की सहायता ली जाती है।[53] फेटना सामान्यत: एकतरफा अलगाववादी आयोजन करता है।[54] फेटना ने एक कैथोलिक प्रचारक जगत गेस्पर को भी सम्मानित किया जिन्होंने तमिल संस्कृति के ईसाईकरण के लिए द्रविड़ शक्ति केन्द्रों से अपनी निकटता का भी उपयोग किया है।

सन 2005 में, 'शिकागो ट्रिब्यून' (*Chicago Tribune*) के अनुसार, इलिनॉय (Illinois) के कांग्रेस सदस्य डैनी के. डेविस फेटना के तत्वावधान में एक यात्रा के दौरान श्रीलंका के तमिल क्षेत्रों में गये थे। फेटना का उद्धरण देते हुए इस कांग्रेस सदस्य ने स्वीकार किया था कि वही 'जानते थे कि वे तमिल टाइगर्स से जुड़े हुए थे'।[55] बाद में उन्होंने एसोसिएटेड प्रेस को बताया कि जहाँ तक वे जानते थे, उनकी यात्रा का खर्च फेटना द्वारा उठाया गया।[56]

छठी कक्षा की सामाजिक अध्ययन की एक स्कूली पाठ्य पुस्तक में प्राचीन भारतीय इतिहास और धर्म के चित्रण से उठे कैलिफोर्निया के एक विवाद में फेटना द्रविड़ समर्थक भारतविदों के साथ हो गया था।[57] कैलिफोर्निया करिकुलम कमीशन (Curriculum Commission) में दिये गये अपने बयान में फेटना ने धृष्टतापूर्वक गलत दावा किया कि 'प्रारम्भिक तमिल ग्रन्थ स्पष्ट रूप से तमिलों और आर्यों के बीच भेद रखते हैं'।[58] परिशिष्ट ''ख'' साक्ष्य प्रस्तुत करता है जो दिखाता है कि यह दृष्टिकोण पूरी तरह गलत है।

यूरोप स्थित तमिल अध्ययन संस्थान

भारत में सक्रिय यूरोपीय ईसाई प्रचारक मिशनों ने यूरोप में शैक्षिक-सक्रिय कार्यकर्ता-ईसाई प्रचारक संस्थागत गठबन्धन का एक नेटवर्क भी बनाया है, और साथ-ही-साथ वे संयुक्त राज्य अमरीका में तमिल अध्ययन विभागों के साथ सम्बन्ध भी बनाकर रख रहे हैं। तमिल अध्ययन का क्षेत्र एक व्यापक बौद्धिक और राजनैतिक प्रभाव वाले वैश्विक नेटवर्क को समर्थन देने के लिए एक सम्मानजनक उपकरण बन गया है।

जर्मनी में तमिल अध्ययन सन 1771 में बार्थोलोमौस जिगेनबाल्ग (Bartholomaus Ziegenbalg, 1682-1719) द्वारा प्रारम्भ किया गया, जो सम्भवत: भारत में पहले प्रोटेस्टेंट मिशनरी थे। वे एक लुथेरन थे, जो एक संस्थान से जुड़े हुए थे जिसे आज हाले स्थित मार्टिन लूथर विश्वविद्यालय के रूप में जाना जाता है। जो भी हो, अध्ययन के इस क्षेत्र ने अगले सौ वर्षों तक गम्भीरता से कोई ध्यान नहीं खींचा, हालाँकि कुछ इक्के-दुक्के यूरोपीय मिशनरी विद्वान तमिल साहित्य का अनुवाद कर रहे थे। तमिल के अध्ययन के लिए संस्थागत ढाँचों की कमी होने पर भी जर्मनी बड़ी

संख्या में तमिल ग्रन्थों की ताड़ की पत्तियों पर लिखी पाण्डुलिपियों का एक बड़ा भण्डार बन गया जो भारत से लौटने वाले मिशनरियों द्वारा वहाँ ले जाये गये थे।[59]

1960 के दशक में दक्षिण भारत में द्रविड़ आन्दोलन के उदय के साथ ही तमिल अध्ययन के प्रति जर्मनी में एक नयी रुचि जागृत हुई।[60] सन 1998 में कोलोन विश्वविद्यालय के भारतविद्या संस्थान (Institute of Indology) का नाम बदलकर 'भारतविद्या और तमिल अध्ययन संस्थान' (Institute of Indology and Tamil Studies) कर दिया गया, मानो तमिल भारतीय सभ्यता से अलग हो। आधुनिक तमिल अध्ययनों और भारत स्थित मिशनरी परियोजनाओं के बीच सम्बन्ध को विस्तार देते हुए इस संस्थान ने चेन्नई स्थित गुरुकुल लुथेरन सेमिनरी, द डी नोबिली रिसर्च इंस्टीटयूट, लोयोला महाविद्यालय[61] और द इंस्टीटयूट ऑफ़ एशियन स्टडीज[62] के साथ निकट सम्बन्ध विकसित कर लिये हैं। हाले विश्वविद्यालय के एक धर्मशास्त्री हबील माइकल बर्गन्डर (Habil Michael Bergunder) एक अन्य तमिल विद्वान हैं जो दक्षिण भारत में अलगाववादी पहचान के निर्माण के साथ-साथ भारत में ईसाई आन्दोलनों पर अनुसन्धान करते हैं।[63] दक्षिण एशियाई ईसाइयत पर सलाहकारों के एक कोष में वे ईसाई प्रचारकों के लिए सलाहकार के रूप में सूचीबद्ध हैं।[64]

द फ्री यूनिर्विसिटी ऑफ ऐम्सटरडैम के भी भारत के साथ मिशनरी सम्बन्ध हैं। इस विश्विद्यालय का प्रारम्भ सन 1880 में नीदरलैंड के पहले प्रोटेस्टेंट विश्वविद्यालय के रूप में किया गया था। विभिन्न धर्मशास्त्रीय कार्यक्रमों के माध्यम से इसके सम्बन्ध चेन्नई स्थित गुरुकुल लुथेरन थियोलॉजिकल कॉलेज एण्ड रिसर्च इन्सटीटयूट के साथ बने हुए हैं।

स्वीडन के उपसला विश्वविद्यालय (Uppsala University) के धर्मशास्त्र विभाग के प्रध्यापक पीटर शाक एक अन्य प्रमुख यूरोपीय विद्वान हैं जो श्रीलंका के और कुछ हद तक दक्षिण भारत के विवादास्पद सामाजिक-राजनीतिक आन्दोलनों से जुड़े हैं। अपने एक शोध पत्र में वे लिट्टे के हिंसात्मक आतंकी अभियान की तुलना गाँधी के अहिंसक भारत छोड़ो आन्दोलन और सुभाष चन्द्र बोस के भारतीय स्वतन्त्रता संघर्ष से करते हैं।[65] शाक 2004 में स्वीडन के नगर लुंड में आधुनिक दक्षिण एशियाई अध्ययनों पर आयोजित अट्ठारहवें यूरोपीय सम्मेलन में तमिल वक्ताओं के संयोजक थे।[66] एक तमिल विद्वान ने, जो अपने सशक्त लिट्टे समर्थित दृष्टिकोणों के लिए जाने जाते हैं, यूरोपीय यूनियन द्वारा 2006 में लिट्टे गतिविधियों में कमी किये जाने की आलोचना की। उन्होंने लिखा कि लिट्टे को 'न सिर्फ लंका और निर्वासन में बल्कि तमिलनाडु में भी तमिल भाषी लोगों का मजबूत समर्थन प्राप्त है'।[67] 'श्रीलंका से आये तमिलभाषी शरणार्थियों में धर्म' विषय पर उनके 2007 के शोध पत्र ने दावा किया कि श्रीलंकाई तमिलों का शैव मत एक 'मुक्ति धर्मशास्त्र' में बदल रहा है, जहाँ 'मुक्ति' शब्द का उपयोग राजनीतिक अलगाववाद के रूप में किया गया था।[68] उनका

राजनीतिक दबदबा इस तथ्य से स्पष्ट है कि वे श्रीलंका जाने वाले एक यूरोपीय संसदीय प्रतिनिधिमण्डल के साथ एक राजनयिक प्रतिनिधि के रूप में साथ गये थे।[69]

उपसला विश्वविद्यालय एक निर्दोष ध्वनित होने वाले नाम—'भारत में ईसाई गिरजों के अध्ययन के लिए मिशन अभिलेख और नजरिया' (Mission Archives and Approaches to the Study of the Christian Churches in India)—से एक शोध पाठ्यक्रम चलाता है। यह पाठ्यक्रम कोपेनहेगन विश्वविद्यालय में अन्तर-सांस्कृतिक और क्षेत्रीय अध्ययन के प्राध्यापक पीटर बी. एण्डरसन द्वारा संयोजित है, जिनका ईसाई प्रचारक अभिकेन्द्र एक व्याख्यान में उजागर हुआ जिसका शीर्षक 'तमिल इवेंजलिकल लुथेरन चर्च अमोंग कैथोलिक्स, पेंटाकोस्टल्स एण्ड हिन्दूस्' था।[70] आधुनिक दक्षिण एशियाई अध्ययन पर बीसवें यूरोपीय सम्मेलन में एण्डरसन ने इसका तर्क देते हुए एक शोध पत्र प्रस्तुत किया था। वक्ताओं के इस दल को शैक्षिक सम्मान मिला क्योंकि इसका आयोजन प्रिंस्टन थियोलॉजिकल सेमिनरी और बटलर विश्वविद्यालय ने किया था।[71] उपसला विश्वविद्यालय के सम्मेलनों में 'एक राजनीतिक धर्म के रूप में हिन्दुत्व' जैसे विषयों को प्रस्तुत किया है। मूलतः, इसका उद्देश्य पश्चिमी नीति निर्धारकों, शैक्षिक शिक्षाविदों, मिशनरियों और सम्बद्ध पक्षों को धर्मान्तरण के विरोधियों के बारे में और इस बारे में शिक्षा देना है कि भारत भर में ईसाइयत की स्थापना के लिए किन रणनीतियों को अवश्य ही विकसित और लागू करना चाहिए।

स्वाभाविक रूप से यह स्पष्ट है कि पिछली शताब्दियों की औपनिवेशिक संरचनाओं ने आज अपने को सूक्ष्मता से रूपान्तरित कर लिया है, और वे अनवरत उन्हीं गतिविधियों में लगी हुई हैं। वे पहले से अधिक कट्टर हो गयी हैं, और इसलिए पहले की तुलना में अधिक खतरनाक भी। जो संस्थागत तन्त्र और नेटवर्क इन सृजनों को जीवित रख रहे हैं, वे विभिन्न राजनीतिक, आर्थिक, और धार्मिक निहित स्वार्थों के लिए ऐसा करते हैं। सामान्यतः ऐसे शिक्षाविद रणनीतिगत पश्चिमी हस्तक्षेपों के लिए हथियार बन गये हैं।

11
भारत के खण्डों पर पश्चिमी चिन्तन

भारत में अनेक अन्तर्राष्ट्रीय गठजोड़ सक्रिय हैं, जिनके सम्बन्ध ब्रिटेन, यूरोप के अन्य देशों, और संयुक्त राज्य अमरीका से हैं। इस पुस्तक के शेष अध्यायों में हम उनके सम्बन्धों, कार्यक्रमों और उनके उद्देश्यों तथा उनकी कार्यप्रणालियों पर विचार करेंगे। साथ ही हम इस बात की भी जाँच करेंगे कि सक्रिय पश्चिमी शक्तियों के भारतीय सहायक कैसे विभिन्न स्तरों पर काम करते हैं। इस प्रकार शैक्षिक और सक्रिय कार्यकर्ताओं का एक विरोधाभासी मिश्रण सभी महाद्वीपों पर खड़ा किया गया है जो भारत के विरुद्ध बोल सके। भारत के वामपन्थी शिक्षाविद सामान्यत: मध्यस्थों के माध्यम से पश्चिम की दक्षिणपन्थी शक्तियों के साथ सहयोग करते हैं। भारत का पक्ष लेने वाले दृष्टिकोणों की उपेक्षा की जाती है और दमन के शिकार लोगों के अधिकारों के समर्थन की भारतीय विरासत को निन्दापूर्वक अस्वीकृत कर दिया जाता है। संघर्षों पर बल देने वाले विश्व-दृष्टिकोणों को बढ़ावा दिया जाता है। सिद्धान्तकार नस्ली गृह-युद्ध का खुला आह्वान करते हैं जिन्हें पश्चिम के सम्मानजनक शैक्षिक प्रकाशन संस्थानों द्वारा प्रकाशित किया जाता है। संयुक्त राज्य अमरीका के निगरानी रखने वाले सरकारी तन्त्र विकृत दृष्टिकोण से भारत पर ध्यान केन्द्रित करते हैं और एक अंधकारमय सीमा क्षेत्र के रूप में इसकी एक असभ्य और क्रूर छवि प्रस्तुत करने के लिए और यह जताने के लिए कि पश्चिमी हस्तक्षेप के लिए यह एक सही समय है अपनी ही रपटों को उद्धृत और पुनर्उद्धृत करते हैं।

यूरोप और संयुक्त राज्य दोनों में शक्तिशाली राजनीतिक और धार्मिक शक्तियाँ अपने एजेंडों को बल देने के लिए शैक्षिक अध्ययनों का उपयोग करती हैं। इनमें ईसाई चर्च, वामपन्थी और दक्षिणपन्थी फाउण्डेशन तथा विचार-मंच, दमन के शिकार लोगों की सहायता का दावा करने वाले एन.जी.ओ. और लाभकारी स्थितियों की खोज में लगीं पश्चिम की सरकारें शामिल हैं। जहाँ एक ओर उनके उद्देश्य भिन्न हैं, वहीं अगर उनको एक साथ रखा जाये, तो उनका प्रभाव भारत के लिए विभाजनकारी, अस्थिरताकारक और निर्बल करने वाला है, जबकि इसी के साथ वह भारतीय संस्कृति का दानवीकरण करने वाला, उसमें विकृति लाने वाला और/या अपने में मिला लेने वाला है। यह सब एक विस्मयकारी सम्पर्क का सृजन करते हैं। दक्षिणपन्थी अमरीकी राजनीतिज्ञ उदारवादियों द्वारा चलायी जाने वाली एन.जी.ओ. सेवा परियोजनाओं को समर्थन देते हैं, जबकि वे अपने यहाँ उन पर नाक-भौं सिकोड़ते हैं। इसके अलावा भारत में कुछ 'दमित' लोगों की सेवा में वामपन्थी-उदारवादी शिक्षाविद दक्षिणपन्थी कट्टर ईसाइयों के साथ एक ही मंच पर साझेदारी करते हैं जिसके बारे में कोई भी गुट पर्याप्त रूप से नहीं समझ पाता।

Fig 11.1 भारत में सामाजिक विमर्श का पश्चिमी संस्थागत नियन्त्रण
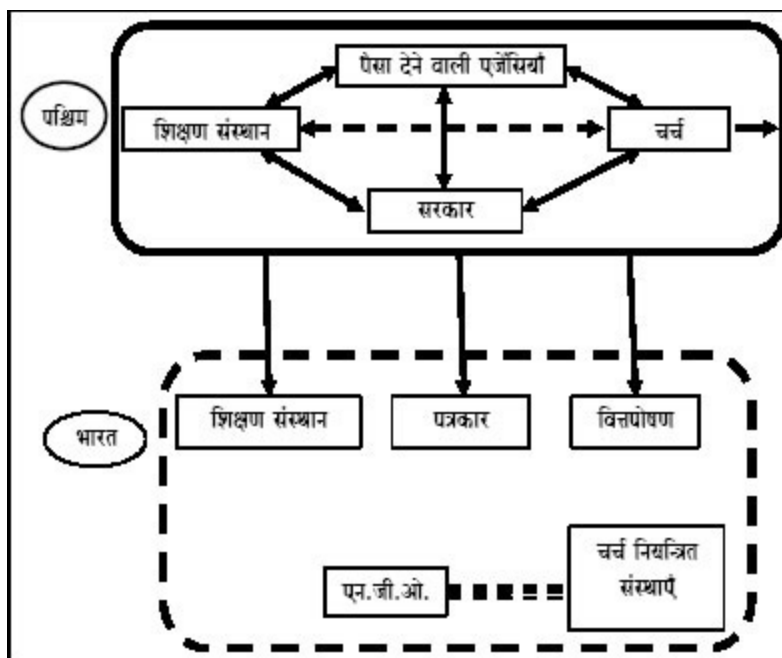
इस चार्ट के शीर्ष पर अवस्थित पश्चिमी संस्थान धन एकत्रित करते हैं और 'अपने नीचे स्थित सभी' भारतीय संस्थानों और वैचारिक माहौल तैयार करने वाले अग्रणी लोगों को प्रभावित करते हैं। यह एक उलझा हुआ घटनाक्रम है जिसे पारदर्शिता और उद्घाटन के अभाव ने गँदला कर दिया है। पश्चिम की धनदाता एजेन्सियाँ अपनी सरकारों, शैक्षिक संस्थानों और चर्चों के साथ मिलकर काम करती हैं। कुल मिलाकर उद्देश्य है शैक्षिक प्रतिष्ठानों के बुद्धिजीवियों, समाचार माध्यमों और एन.जी.ओ. को प्रभावित करना। ऐसा प्रत्यक्ष और परोक्ष दोनों तरह से होता है। दर्शाये गये प्रत्येक संस्थागत घटक का अपना ही कार्य है, जैसा कि नीचे संक्षेप में दिया गया है।

सरकार

पश्चिमी सरकारों के अन्दर कुछ ऐसे शक्तिशाली तत्व हैं जो सभ्यता के आधार पर श्रेष्ठता के प्रारूपों और भू-राजनीतिक महत्वाकांक्षाएँ पाले रहते हैं। दुर्भाग्यवश, शैक्षिक और अन्य विचार-मंच सामान्यत: इसी तथ्य के साथ कदम मिलाकर चलते हैं और भारत के इन प्रारूपों को पुष्ट करते हैं। सरकारी अधिकारी भी भारत में सक्रिय ईसाई प्रचारक संगठनों के साथ सम्बन्ध रखते हैं, जिन्हें गैर-पश्चिमी दुनिया में अपनी सभ्यता का झण्डा ले जाने वालों में देखा जाता है। सरकार की भूमिका भिन्न-भिन्न प्रकार की हो सकती है, और वह ईसाइयत को विश्वसनीयता प्रदान करने के एक मार्ग के रूप में नैतिकता, राजनीतिक और वित्तीय सहायता को भी शामिल कर सकती है। उदाहरण के लिए, संयुक्त राज्य अमरीका की सरकार यू.एस.ऐड (USAID) का उपयोग वर्ल्ड

विजन जैसे अन्य राष्ट्रों में काम करने वाले ईसाई प्रचारक संगठनों के माध्यम से धन उपलब्ध कराने की व्यवस्था करती है।

धनदाता एजेन्सियाँ

ये एजेन्सियाँ भारत में विशेष प्रकार के शोध के लिए आर्थिक सहायता प्रदान करती हैं और पश्चिमी राजनीतिक और रणनीतिगत आवश्यकतों के अनुकूल आँकड़ों को चुन-चुनकर बाहर निकालती हैं और उनका प्रचार करती हैं। उदाहरण के लिए, ईसाई प्रचारकों के एक अन्तर्राष्ट्रीय नेटवर्क इनफेमिट को, जिसका लक्ष्य भारत में धर्मान्तरण करना है, क्रोवेल ट्रस्ट द्वारा धन दिया जाता है, जो अमरीका की एक ईसाई कट्टरपन्थी धनप्रदाता एजेन्सी है। इनफेमिट संयुक्त राज्य अमरीका के एथिक्स एण्ड पब्लिक पॉलिसी सेंटर जैसे दक्षिणपन्थी नीति संस्थानों में भारतीय राजनीति पर सेमिनार प्रायोजित करती है। इसी प्रकार कैडबरीज ने एक ईसाई संगठन द्वारा यूनाइटेड किंगडम में प्रवासी भारतीयों के बीच जातिगत भेदभाव पर एक विवादित और विवादास्पद शोध को प्रायोजित किया था।

अकादमी

पश्चिम में भारत पर शैक्षिक अध्ययन कभी-कभी नयी दरारें खोज निकालते हैं या सृजित करते हैं या जो पहले से ही मौजूद हैं उन्हें और गहरा कर देते हैं। अनेक शिक्षाविद भारतीय राष्ट्र-राज्य को एक कृत्रिम सृजन के रूप में लेने की प्रवृत्ति रखते हैं जिसे वे प्रकृति से ही दमनकारी मानते हैं। सामान्यत:, भारत पर शैक्षिक अध्ययन भारत में अपसारी बलों को प्रोत्साहित करने वाले एक विशेष प्रकार के सक्रियतावाद (एक्टिविज्म) को जन्म देते हैं। शैक्षिक अध्ययनों की दिशा धनप्रदाता एजेंसियों द्वारा प्रभावित होती हैं, और इसके बदले, शैक्षिक अध्ययन भारत पर अन्तर्राष्ट्रीय नीतियों को प्रभावित करते हैं।

चर्च

निजी धन प्रदाता एजेंसियों और सरकारी संगठनों के साथ पश्चिमी चर्च और ईसाई प्रचारक संगठनों के निकट के सम्बन्ध हैं। पश्चिमी सरकारें भारत में सक्रिय अपने राष्ट्रों के ईसाई प्रचारक मिशनों को एक परोपकारी सभ्यता का झण्डा लेकर चलने वालों के रूप में देखती हैं, और साथ में भारत में अपने प्रति विशेष रुचि वाले विश्वसनीय गुटों के सृजन करने वाले के रूप में भी देखती हैं। पश्चिमी सरकारों के आधिकारिक सहयोग के साथ विभिन्न पश्चिमी संस्थानों और भारत में उनकी मातहत संस्थाओं के बीच विशेष संस्थागत भागीदारी सुस्थापित है।

यह शक्तिशाली अन्तर-सांगठनिक दक्षता उनके भारतीय मातहतों की ताकत को बढ़ाती है। उदाहरण के लिए, संयुक्त राज्य अमरीका स्थित ईसाई प्रचारक अभियानों ने दलित फ्रीडम नेटवर्क प्रारम्भ किया है, जिसका ऑल इण्डिया क्रिश्चियन काउंसिल (AICC) नामक एक भारतीय सहयोगी है। ए.आई.सी.सी. उन बुद्धिजीवियों और शिक्षाविदों का प्रायोजन करता है जो दलितों के बारे में अत्यन्त इकतरफा दृष्टिकोण प्रस्तुत करते हैं, और वे अपने अमरीकी प्रयोजकों को बड़ी मात्रा में उत्पीड़न साहित्य (अट्रोसिटी लिटरेचर) की आपूर्ति करते हैं।[1] भारत में इस चिन्तन का निर्माण अमरीकी प्रायोजकों के लिए किया जाता है। इसने स्वयं को दलितों की एक वैश्विक वाणी के रूप में स्थापित कर लिया है, और जो उनके रास्ते पर चलते हैं उनको अमरीकी सरकारी स्तर और प्रभावशाली विचार-मंच तक पहुँच की सुविधा दी जाती है। उसी प्रकार भारत में चर्च समर्थित नेटवर्कों का व्यापक प्रभाव है और उन्हें पश्चिमी सरकारी संगठनों का समर्थन भी मिलता है। ऐसे नेटवर्कों के भारत के रणनीतिगत और सामरिक स्थिति, सुरक्षा तथा अन्ततः इसकी सम्प्रभुता पर होने वाले प्रभाव पर विस्तार से चर्चा की जायेगी।

समाचार माध्यम

जिन अन्तर्राष्ट्रीय शक्तियों का उल्लेख ऊपर किया गया है उन्होंने भारत में समाचार माध्यमों का एक ढाँचा बना लिया है जिसका उद्देश्य ऐसे भारतीय लेखक पैदा करना है जो संवेदना के स्तर पर पश्चिमी शक्तियों से बँधा हो और आर्थिक रूप से उन पर निर्भर हो। भारत में एक व्यापक ईसाई प्रचारक मीडिया नेटवर्क है जो कुछ विशेष 'पन्थ निरपेक्ष' मीडिया से जुड़ा हुआ है। उदाहरण के लिए, यूरोप स्थित दो मीडिया मिशनरी नेटवर्क हैं गेग्राफा और बोसन्यूजलाईफ, जो भारतीय ईसाई पत्रकारों के साथ मिलकर काम करते हैं ताकि वे वैसे समाचार निकालकर ला सकें जो विशेष रूप से भारतीय सभ्यता के 'ईसाई पीड़ितों' के बारे में हों।

चित्र 11.1 का उद्देश्य विभिन्न पश्चिमी पक्षों के बीच आदान-प्रदान की विशालता को भी दिखाना था। भारतीय पक्ष में बहुत कम संख्या में खिलाड़ी हैं और सम्पूर्ण रणनीति भी बहुत कम है। इन पश्चिमी संस्थागत हस्तक्षेपों के अध्ययन में भारतीयों में अच्छी तरह समन्वय नहीं है। इसके विपरीत, अधिकांश भारतीय जो प्रभावी स्थिति में हैं वे प्रसन्नतापूर्वक आत्मतुष्ट हैं, और उनमें से कई तो ऐसे हस्तक्षेपों का खुलेआम समर्थन भी करते हैं। मनोरंजक बात यह है कि जहाँ चीन की सरकार, उद्योगपति, और बुद्धिजीवी राष्ट्रवादी दृष्टिकोण से चीन के शैक्षिक अध्ययनों में अत्यन्त प्रभावी हैं, वहीं भारत सरकार या किसी अन्य भारतीय संस्थान की, जो भारत के हितों की ओर से भारत का विश्वव्यापी अध्ययन करने के काम में लगा है, कोई महत्वपूर्ण भूमिका नहीं है।

भारत का सुनियोजित विखण्डन

चित्र 11.2 उन तरीकों को दिखाता है जिससे पश्चिम की अनेक शैक्षिक और वैचारिक परियोजनाओं में भारत का विखण्डन किया जाता है। चित्र का बायाँ भाग दिखाता है धर्मनिरपेक्ष दृष्टिकोण को किस यूरोपीय ढंग से लागू किया जाता है, जबकि दायाँ भाग बाइबल के दृष्टिकोण को। इन दोनों के बीच में अध्ययन के विषयों को दिखाया गया है।

सबसे नीचे से चित्र 11.2 दिखाता है कि शैक्षिक अध्ययन की प्राथमिक श्रेणी वर्ण, अल्पसंख्यक और महिलाएँ हैं। समग्र कार्यप्रणाली ऐसी बनायी गयी है ताकि यह दिखाया जाये कि ये समूह भारतीय सभ्यता की त्रुटियों के परिणामस्वरूप दमित हैं। ये परिणाम वैसी ईंटें हैं जो हिन्दूवाद के अध्ययन के दृष्टिकोण की इमारत को सामग्री उपलब्ध कराते हैं, और फिर ये सामान्यत: भारतीय सभ्यता के प्रति नकारात्मक रवैये का पोषण करते हैं। पिरामिड के सबसे ऊपर विद्वान हैं जो इस बात पर माथापच्ची कर रहे हैं कि क्या भारत ठीक ढंग से काम नहीं करने वाला एक राष्ट्र-राज्य है जो अपने मानवाधिकार संकट और अन्य समस्याओं के आलोक में परिभाषित होता है।

Fig 11.2 दो महत्वपूर्ण दृष्टियों से भारत की पश्चिमी अवधारणा
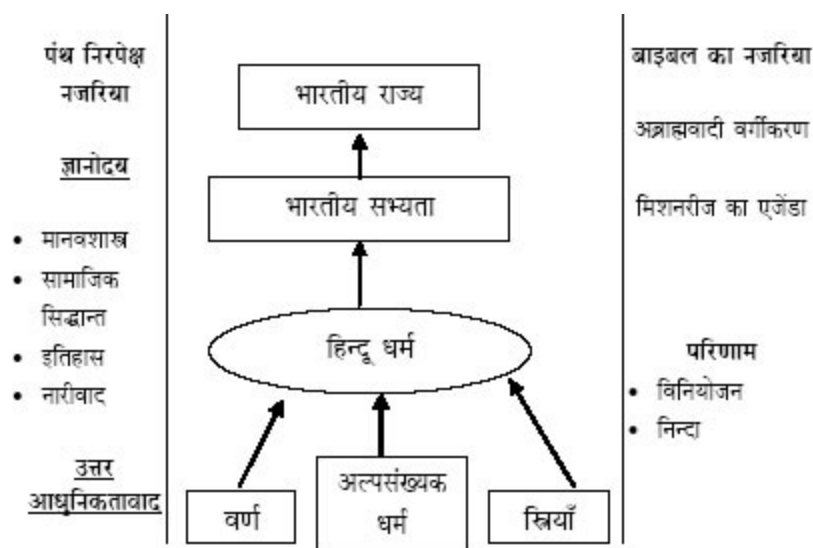
कार्यप्रणाली के प्रारूप का एक सरलीकृत नमूना है जिसका उपयोग पश्चिमी शैक्षिक जगत के दक्षिण एशियाई अध्ययन विभागों में भारत पर विचार के लिए प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से किया जाता है। एक उदाहरण के रूप में शैक्षिक दलित अध्ययन केवल उन्हीं दलित रचनाओं को प्रोत्साहित करते हैं जिन्हें अलगाववादी और विभाजनकारी दृष्टिकोण से लिखा गया होता है, न कि मुख्यधारा के भारतीय साहित्य में एक महत्वपूर्ण योगदान के रूप में। जब भारतीय साहित्य के महत्वपूर्ण लेखन को अनुवादित, सम्पादित और प्रकाशित किया जाता है तब यह जानबूझकर दलितों और सवर्णों के बीच महत्वपूर्ण सहयोग की उपेक्षा करता है, और अनेक पवित्र ग्रन्थों की

भी उपेक्षा करता है जिनमें रामायण, महाभारत और दलितों द्वारा लिखे गये भक्ति साहित्य में से अधिकांश है। शोध किये जा रहे हैं कि किस प्रकार, उदाहरण के लिए, राजा राव अपने मुस्लिम पात्रों के प्रति पूर्वाग्रह से ग्रस्त हैं, या किस प्रकार टैगोर जैसे हिन्दू लेखकों की रचनाओं में बहुत कम मुस्लिम पात्र हैं।

मैडिसन स्थित विस्कॉन्सिन विश्वविद्यालय (Wisconsin University) में दक्षिण एशिया पर हुए पिछले तीस वर्षों के वार्षिक सम्मेलनों की कार्यवाहियों और सारांशों की अगर कोई समीक्षा करेगा तो पायेगा कि भारत का समग्र चित्रांकन एक प्रगतिवाद के विरोधी देश के रूप में किया गया, जो समय से साथ जड़ हो गया है और भीषण गरीबी से ग्रस्त है। भारत एक बीमार की तरह दिखता है जो वर्ण-व्यवस्था, सती, दहेज, भ्रूण हत्या, अस्पृश्यता जैसी बीमारियों से ग्रस्त है और पश्चिम एक चिकित्सक की तरह उपस्थित है। भारतीय राष्ट्र-राज्य अवैध और एक कृत्रिम 'कल्पित समुदाय' है जो वास्तव में अस्तित्व में नहीं है, या अगर यह अस्तित्व में है भी तो इसे अस्तित्व में नहीं रहना चाहिए, क्योंकि इसका अस्तित्व ही अपने दबे-कुचले लोगों के लिए दमनकारी है। लेकिन कल्पित समुदायों की ऐसी अवधारणा अत्यन्त मनमाने ढंग से लागू की जाती है। उदाहरण के लिए, भारत भर के मुस्लिमों और दलितों को, जो स्वयं हज़ारों छोटे-छोटे समुदायों और अस्मिताओं में बँटे हैं और जो भाषा और जातीय आधार पर अलग किये गये हैं, शैक्षिक स्तर पर सामान्यत: 'परिकल्पित समुदाय' नहीं, बल्कि एक सुसंगत समूह के रूप में माना जाता है।

विडम्बना है कि जहाँ पश्चिम में राष्ट्रीय पहचान की भावना लगातार बलवती हो रही है, वहीं कम विकसित देशों में आत्म विखण्डन की ओर विद्वता को प्रोत्साहन दिया जा रहा है। अमरीका, चीन और जापान की राष्ट्रीय पहचान बलवती हो रही है, और यूरोपीय यूनियन एक शक्तिशाली राष्ट्र बन रहा है। तुलनात्मक रूप से उसी शक्ति से वे स्वयं को विखण्डित नहीं कर रहे हैं और अपनी अपसारी शक्तियों का भी पोषण नहीं कर रहे हैं। लेकिन किसी-न-किसी तरह यह बौद्धिक तरीका भारतीय और तीसरे-विश्व के अन्य देशों के बुद्धिजीवियों तक निर्यातित किया जा रहा है ताकि वे 'अपने देश का तथा उसकी सभ्यता का विखण्डन करें'। जहाँ पश्चिम की शक्ति स्वयं को इस योग्य बनाती है कि वह भारत के विखण्डन की माँग कर सकें, वहीं भारतीय बुद्धिजीवियों में पश्चिमी देशों के विपरीत वही काम करने की शक्ति का अभाव है।

यह चर्चा भी सुनाई देती है कि अमरीका के शैक्षणिक परिसरों में काफी उत्तर आधुनिक चिन्तन चल रहा है जो स्वयं अपनी सभ्यता का भी विखण्डन करते हैं। फिर भी जिस बात पर ध्यान नहीं दिया जाता, वह यह है कि इस तरह का विखण्डन बहुधा सत्ता में हाशिये पर मौजूद लोगों द्वारा हो रहा है, और यह कि ऐसे विद्वानों का राजनीतिक दबदबा नहीं है। जो लोग सत्ता में हैं उनमें से कोई उनको गम्भीरता से नहीं लेता, और समाचार माध्यम विरले ही उनकी सुध लेते हैं, सिवा उनको परिवर्तनवादी के रूप में चित्रित करने के। वे निश्चित रूप से नीतिनिर्धारकों को सलाह नहीं दे रहे,

और वे विचार-मंचों और प्रमुख वित्तीय सहायता को प्रभावित नहीं करते। वे केवल शैक्षणिक दायरों के अन्दर ही बन्द हैं। वे शक्तियाँ जो चिन्तन को संचालित करती हैं और उनमें प्रभावी होती हैं, वे अत्यन्त राष्ट्रवादी हैं, तथा राष्ट्र-राज्य पहले की तरह ही शक्तिशाली है।

भारत पर चिन्तन से जुड़ी स्थिति बिल्कुल भिन्न है। उत्तर आधुनिकतावाद ने तेजस्वी भारतीयों की एक पूरी पीढ़ी को उनकी अपनी राष्ट्रीयता तथा सभ्यता के विखण्डन के लिए शैक्षिक सम्मान दिया है। इस आत्मालोचना को पश्चिम में रह रहे 'सफल' भारतीय विद्वानों के साथ मिलकर लोकाचार बना दिया गया है, और धन तथा अध्यवसाय के मार्ग से उन्हें लाभ पहुँचाकर प्रोत्साहित किया जाता है। उनके इस प्रिय सिद्धान्त के अनुसार भारत के स्थान पर अनेक 'उप-राष्ट्र' लाये जाने हैं। हार्वर्ड के दक्षिण एशिया कार्यक्रम के सह-निदेशक होमी भाभा को संस्कृतियों और पहचानों के 'संकर' बनाने के सिद्धान्त को विकसित करने में अग्रणी माना जाता है। इसका एक अर्थ हुआ कि चूँकि भारतीयों ने उपनिवेशवाद में अपनी स्वदेशी पहचान खो दी है, उन्हें इसे फिर से प्राप्त करने का प्रयास रोक देना चाहिए, क्योंकि ऐसा करना निरर्थक है। इसके विपरीत, उन्हें अपनी संकर 'गोरे बन गये भारतीय' की पहचान को औपनिवेशकों के विरुद्ध विरोध के एक तरीके के रूप में उत्सव की तरह लेना चाहिए। जहाँ ऐसे सिद्धान्तों का विश्लेषण करने के लिए यह समुचित स्थान नहीं, यह इंगित करना आसान है कि उन्होंने कैसे विस्मयकारी विरोधाभासों में हमें डाल दिया है। अगर यही सिद्धान्त दलितों पर लागू किया जायेगा तो उसका निष्कर्ष होगा उन्हें अगड़ी जातियों के विरुद्ध बगावात करने से हतोत्साहित करना, उन जातियों से जो भारत में अधिक शक्तिशाली हैं, और इससे मुख्यधारा के हिन्दुओं के साथ मिलन हो जायेगा। इस तथ्य में यह भी जोड़ें कि ये सिद्धान्त इस तरह से बिलकुल समझ में नहीं आने वाली और ऐंठन भरी भाषा में लिखे गये हैं कि उनकी आलोचना एक प्रकार के 'ब्राह्मण जैसा' दबदबा वाले रूप में की जाती है जिसका आधार भाषाई विशिष्टता और श्रेष्ठता की धारणा होती है। इस अधीनस्थ स्तर की अगुवाई करने का प्रयास करने के क्रम में ये सिद्धान्त स्वयं अधीनस्थ लोगों के लिए भी पहुँच के बाहर अर्थहीन हो गये हैं।

चित्र 11.3 कुछ शैक्षिक विभागों को दर्शाता है, विशेषकर तमिल संस्कृति से जुड़े विभागों को, जिन्होंने भारतीयों के बीच अलगाववादी पहचान निर्मित करने में सहायता पहुँचाई है। यह प्रक्रिया आज भी चालू है, और बुद्धिजीवियों के सभा स्थलों से आगे तक इसने अपनी जगह बना ली है और आम जन मानस में प्रवेश कर गयी है। हो सकता है कि शुरुआत में इन परियोजनाओं को शुद्ध रूप से शैक्षिक परियोजनाओं के रूप में ही शुरू किया गया हो, लेकिन उन्होंने एक-दूसरे का पोषण किया और अन्ततः सार्वजनिक विमर्श में दाखिल हो गयीं।

Fig. 11.3 : शैक्षिक अनुशासन और द्रविड़ पहचान के निहितार्थ

शैक्षिक अनुशासन	जो ढाँचे प्रयोग किये जाते हैं	पहचान के अभिप्राय
तमिल भाषा विज्ञान	पृथक आर्य/द्रविड़ व्याकरण	दक्षिण भारत की भाषाओं की उत्पत्ति को पृथक करना
तमिल शास्त्रीय साहित्य	आधीन साहित्य की पृथक नवीनता	भिन्न विश्वदृष्टि और दक्षिण भारत के बौद्धिक इतिहास की अवधारणा
दक्षिण भारत की कला और सांस्कृतिक अध्ययन	भारत राष्ट्र के विरुद्ध तनाव	भिन्न जातीयता जो कि और भारतीयों से भिन्नता जताती है।
इतिहास	हर समुदाय के इतिहास को बाकी भारत से स्वतन्त्र और अलग-थलग बताना, सिवा भारत के पीड़ितों के रूप में	नस्ल और जातीयता की भिन्न पहचान
जाति का मानव-विज्ञान	जाती और वर्ण से बराबरी करना। इसको अद्वितीय रूप से हिन्दू समस्या बताना, बाकी भारतीय धर्मों को अनदेखा कर देना और दूसरे देशों को भी।	
	केवल अपमानजनक, सामाजिक पूँजी भी नहीं हर सामजिक हनन के लिए दोषी	द्रविड़वाद से मिलकर अलगाव-वादी पहचान का 'द्रविड़ शूद्रों का आर्य ब्राह्मणों द्वारा शोषण करना' बन जाना।

तालिका में दिखाये गये प्रत्येक विभाग का संक्षिप्त विश्लेषण इसके बाद किया जायेगा। विशेष रूप से भारतविद्या के प्रभाव के कारण भाषा विज्ञान यूरोप में एक महत्वपूर्ण नया विभाग बन गया। बाद में यह उन्नीसवीं शताब्दी के नस्ल विज्ञान से जुड़ गया। यूरोपीय मिशनरी विद्वानों और साथ ही औपनिवेशक प्रशासकों द्वारा इसका व्यापक एजेंडा निर्धारित किया गया, जिसका उद्देश्य था विभिन्न भारतीय समूहों के बीच अलग जातीय पहचान को फिर से लागू करना। सबसे पहले उन्होंने अलग-अलग

व्याकरणों की रचना के माध्यम से भाषाई भिन्नताओं को अधिकतम कर दिया, और उसके बाद दिखाया कि प्राचीन तमिल कालजयी रचनाएँ सम्पूर्ण भारतीय इतिहास में संघर्षरत जातीय पहचानों का एक विवरणात्मक साहित्य है।

भारतीय साहित्य के प्रति यूरोपीय दृष्टिकोण भारतीय भाषा विज्ञान के प्रति विभाजनकारी दृष्टिकोण के ऊपर स्थापित कर दिया गया था। भारत जैसे भाषा की बहुलता वाले राष्ट्र में प्रत्येक भाषा में प्राचीन कालजयी साहित्य के अध्ययन के बहुत सारे अवसर हैं। अनेकता में मूलभूत एकता का भारतीय अनुभव रहा है जो इसकी सभी भाषाओं के प्राचीन कालजयी साहित्य में अभिव्यक्त हुई है। फिर भी, भारत में विभिन्न भाषाओं के प्राचीन कालजयी साहित्य के पश्चिमी अध्ययन की प्रस्तावना एक भिन्न दृष्टिकोण से लिखी गयी है। विशाल तमिल प्राचीन कालजयी साहित्य का अध्ययन महत्वपूर्ण जातीय तत्वों की पहचान और उन्हें शेष भारतीय साहित्य से अलग करने के लिए किया गया था। संस्कृत साहित्य के परिकल्पित 'पारलौकिक' के विपरीत इन पक्षों को बहुधा 'इह-लौकिक' या 'धर्मनिरपेक्ष' तमिल साहित्य के रूप में प्रस्तुत किया जाना था।[2]

अब विदेशी धन प्राप्त करने वाले विद्वानों और पश्चिमी संस्थानों से सम्बद्ध भारतीय विद्वानों द्वारा कला और संस्कृति के स्थानीय स्वरूपों का अध्ययन किया जा रहा है। स्थानीय भेदों की पहचान करना और उन्हें संस्कृति का सार बताते हुए बढ़ा-चढ़ाकर प्रस्तुत करना एक सामान्य रुझान हो गया है। कभी-कभी कला को परिकल्पित ईसाई प्रभाव से भी जोड़ दिया जाता है।

इतिहास के मामले में, किसी भी आम भारतीय वृत्तान्त को कृत्रिम या दमनकारी ब्राह्मणों या बाद के राष्ट्रवादियों का षडयन्त्र कहकर अमान्य कर दिया जाता है। किसी भी साझे सांस्कृतिक तत्व के 'विस्तार' को धूर्त राजाओं और ब्राह्मणों की रणनीति के रूप में चित्रित किया जाता है, जो स्वतन्त्र जातीय समूहों को अपने अधीन रखना चाहते हैं। पश्चिम में जहाँ बड़ी संख्या में विद्वान हैं जो अपनी संस्कृतियों के सकारात्मक तत्वों के हर पहलू का प्रकाशन कर रहे हैं, वहीं पश्चिम की एजेंसियों द्वारा भारतीय विद्वानों को भारतीय संस्कृति के हर पक्ष को विखण्डित करने के लिए प्रोत्साहित किया जाता है। यह अधीन किये गये, 'वास्तविक' भारतीयों को उपहार के रूप में उनका भारतमुक्त इतिहास देने के प्रयत्न-स्वरूप किया जा रहा है।

औपनिवेशक प्रशासकों, हर्बर्ट रिस्ली और एडगर थर्सटन, द्वारा किया गया वर्ण-व्यवस्था का व्यापक मानवशास्त्रीय अध्ययन उन्नीसवीं शताब्दी के नस्ल विज्ञान के ढाँचे के तहत किया गया था। इसने व्यावसायिक भूमिका (कर्म) के आधार पर चिह्नित की जाने वाली भारतीय सामुदायिक इकाइयों को जातीय/नस्ली समूहों में रूपान्तरित कर दिया। उसके बाद से भारत और विदेशों के अधिकांश अध्ययनों में वर्ण की इस नस्ली प्रकृति का ही दबदबा रहा। यह औपनिवेशिक विरासत आज तक लगभग बिना किसी चुनौती के चालू है। प्रत्येक वर्ण समूह को प्रोत्साहित किया जाता

है कि वह स्वयं को एक नस्ली पहचान के साथ चिह्नित करे जिसे वह स्वदेशी मानता है, और इसकी सभी परिकल्पित और वास्तविक समस्याओं के लिए अन्य वर्णों के षडयन्त्र पर और समग्र रूप से भारत पर दोषारोपण करे।

जैसा कि हमने पहले के अध्यायों में देखा है, भाषा विज्ञान, वर्ण-आधारित मानवशास्त्र, और शोध प्रक्रिया औपनिवेशिक शक्तियों के हाथों शक्तिशाली उपकरण बन गये हैं, जो वर्तमान विभाजन को और गहरा करने की सम्भावना वाले नये बौद्धिक ढाँचों का सृजन करने में सहायक बन गये हैं। औपनिवेशिक काल के बाद की अवधि में विद्वानों ने कभी-कभी अनजाने में उसी ढाँचे पर और उसी एजेंडे की सेवा के लिए काम करना जारी रखा है। हम नस्ल के बारे में आयातित विचार भी देखते हैं जो सामाजिक न्याय के नाम पर भारतीय आन्दोलनों में प्रत्यारोपित हो रहे हैं। द्रविड़ पहचान की राजनीति दलित अधिकारों के आन्दोलनों से हाथ मिला रही है, हालाँकि अधिकांश द्रविड़वादी दलित नहीं हैं, और अधिकांश दलित द्रविड़वादी नहीं हैं। इसके बावजूद भारत और हिन्दू धर्म को खलनायक के रूप में चित्रित करने के साथ-साथ इस विचार को अब विश्व स्तर पर आगे बढ़ाया जा रहा है कि 'वर्ण नस्ल के बराबर है'।

सूक्ष्म स्तरों पर ऐसी बहु-आयामी संघर्षोन्मुख अस्मिताओं का सृजन मिलकर बड़े हिंसक जातीय संघर्षों में बदल सकते हैं जैसा कि हम इस पुस्तक के निष्कर्ष वाले अन्तिम अध्याय में देखेंगे।

उत्पीड़न साहित्य एक विधा के रूप में

उत्तर वृत्तान्त उपलब्ध करा के चिन्तन पर नियन्त्रण राजनीतिक नियन्त्रण के एक अंग के रूप में ही उपयोग में आता है। उपनिवेशवाद के समर्थन में पश्चिम में साहित्य की एक विधा विकसित की गयी है जो 'उत्पीड़न साहित्य' के रूप में जानी जाने लगी है। पिछली चार शताब्दियों में शैक्षिक और कथा लेखन का एक विशाल भण्डार तैयार हो गया है जिन्हें ब्रॉडवे के नाटकों और हॉलीवुड चलचित्रों में अनुकूलित किया गया जिनमें अन्य संस्कृतियों के साथ पश्चिम के सम्पर्कों को दिखाया गया—जैसे भारतीयों, मूल निवासी अमरीकियों, अश्वेतों, मेक्सिको निवासियों, फिलिपिन्स निवासियों, जापानियों, चीनियों, हैती निवासियों, क्यूबा निवासियों, वियतनाम निवासियों, और अरब निवासियों के साथ। इसके साथ इस अवधारणा पर फिर से बल दिया गया कि यूरोपीय/अमरीकी संस्कृति की तुलना में शेष विश्व निकृष्ट है; उनकी अपनी ही भलाई के लिए उन्हें जीता जाना चाहिए। सिर्फ़ तभी नायक जॉन वेन अपने घोड़े पर सवार शान्ति से ढलते सूरज में ओझल हो सकता है जो हॉलीवुड की काउबॉय फिल्मों में दिखाया जाता है।

उत्पीड़न साहित्य अन्य संस्कृतियों की विचित्रताओं और विदेशीपन के चित्रण का एक अनन्य अंग था जिसमें उनके द्वारा उत्पन्न किये गये खतरों पर बल दिया जाता था। उत्पीड़न साहित्य की शक्ति को समझने का एक मार्ग है सन 1600 के प्रारम्भिक दशक से अमरीकी इतिहास के सन्दर्भ में इस पर विचार करना, जब इसने पूर्वाग्रह, भू-भागों के अधिग्रहण, और आर्थिक विस्तार की हर कड़ी में एक भूमिका निभायी।[3] इस प्रक्रिया को संक्षेप में निम्न प्रकार से रखा जा सकता है।

- जैसे-जैसे अमरीका में बस जाने वाले यूरोपीय सम्पूर्ण अमरीकी महादेश में पश्चिम की ओर बढ़ते चले गये, वे मूल निवासियों को आगे-आगे लगातार बदलती सीमा की ओर धकेलते चले गये, जिसे सभ्यता और जंगलीपन के बीच की सीमा रेखा के रूप में समझा गया।
- मिथक गढ़ने की प्रक्रिया में मूल अमरीकियों का 'खतरनाक रूप से जंगली' के रूप में एक ज्वलन्त चित्रांकन शामिल है—वैसे लोगों के रूप में जो भोले-भाले निर्दोष, ईश्वर से डरने वाले ईसाइयों के लिए खतरा थे। कई बार इस तरह की छवि पेश की गयी जो संकेत देती थी कि अमरीका बाइबल में वर्णित स्वर्गोद्यान था, जो अब यूरोपीय औपनिवेशकों का है, और सीमाक्षेत्र के दुष्ट जंगलियों द्वारा उसे खतरे में डाल दिया गया था और उसे नष्ट किया जा रहा था। 'सीमाक्षेत्र' की यह अवधारणा सामूहिक रूप से शेष गैर-ईसाइयों का प्रतिनिधित्व करके इस तरह 'असभ्य' विश्व को अभिव्यक्त करने लगी।
- मूल निवासियों को 'मूर्ति पूजन' के दृश्यों में चित्रित किया जाता था, जो पश्चिमी ईसाई जगत के उस 'एक परमेश्वर' की अवधारणा के विपरीत एक विचित्र देवत्व से भरे पड़े थे। इन 'दूसरों' को इस तरह पेश किया जाने लगा कि ये आदिम दिखने लगें : नैतिकता और नीतियों की कमी, और हिंसक व्यवहार वाले। ये तीन बातें—सौन्दर्यबोध की कमी, नैतिकता की कमी, और तर्कसंगतता की कमी—इस उत्पीड़न साहित्य में बार-बार पायी जाती हैं।
- जब संघर्ष शुरू हुआ, तो श्वेतों को, सभ्य बनाने वाले लोगों के रूप में, जंगलियों के प्रति वैध रूप से और कर्तव्यनिष्ठा के साथ व्यवहार करते हुए चित्रित किया गया। इस तरह, औपनिवेशकों द्वारा की गयी क्रूरताओं को उचित तथा तर्कसंगत कदमों के रूप में चित्रित किया गया।
- जंगली संस्कृतियों को उनकी अपनी महिलाओं और बच्चों को पीड़ित करता हुआ दिखाया गया। इसलिए, श्वेतों के हिंसक तरीकों से सभ्य बनाने के मिशन ऐसे दिखे मानो वे व्यापक रूप से जंगली समाजों के सर्वोत्तम हितों के लिए थे।
- इस प्रकार के उत्पीड़न साहित्य ने निर्धारित नियति या मैनिफेस्ट डेस्टिनी (Manifest Destiny), गोरों का बोझ या वाइट मैन्स बर्डन (White Man's Burden), जैसे साम्राज्यवादी सिद्धान्तों को बौद्धिक अवलम्ब प्रदान किया।

- इसने एक भावुक आँकड़ा भी प्रदान किया। सरहदी इलाकों में रहने वालों की उत्तेजक दु:साहसिक यात्राओं, जिनमें यायावर, सैनिक, और चरवाहे शामिल थे। इसने और भी ऐसा साहित्य पैदा किया।
- इस तरह का साहित्य अर्ध-सत्य पर फला-फूला, जिनमें जहाँ-तहाँ से सामग्री उठायी जाती है, और उसे एक कथा साहित्य में पिरोया जाता है जो पाठकों के मन पर पूर्व-कल्पित प्रारूपों के साथ खिलवाड़ करता है।[4] इसने जंगलीपन से निपटने की तत्काल आवश्यकता की भावना को बढ़ा-चढ़ाकर प्रस्तुत करने का प्रयास किया।
- हो सकता है कि इस प्रकार से गैर-पश्चिमी संस्कृतियों के चित्रण ने उनके द्वारा कथित क्रूरता को फलीभूत किया हो या नहीं। लेकिन पूरी सम्भावना है कि सत्य वैसा इकतरफा नहीं होगा जैसा कि चित्रित किया गया। एक सैद्धान्तिक आधार बनाये जाने के लिए संघर्षों को बढ़ा-चढ़ाकर और सनसनीखेज बनाकर प्रस्तुत किया गया, जैसा कि ऐसे मामलों में होता है।
- गैर-पश्चिमी सभ्यताओं के प्रति अपनाये गये तरीकों के विपरीत पश्चिमी समाजों में व्याप्त सामाजिक बुराइयों और क्रूरता को भूल के रूप में चित्रित किया जाता है : नस्लवाद, औपनिवेशिक नरसंहार, दोनों विश्व युद्ध, महाविनाश, यौन शोषण आदि, को छिटपुट घटनाएँ माना जाता है जो सच्चे पश्चिमी चरित्र में महज विचलन है।
- जैसे-जैसे पश्चिमी औपनिवेशन विश्व भर में फैला, सीमाक्षेत्र का मिथक मूल अमरीकियों, अफ्रीकियों और एशियाइयों को अधीन करने में सफल साबित हुआ। यूरोपीय विस्तारवाद के अन्य रूपों के साथ यह अनुकूल था। अब यह सीमाक्षेत्र पश्चिमी सभ्यता के बाहर कहीं भी हो सकता है।
- एक बार जन मानस में इसके स्थापित हो जाने के बाद उत्पीड़न साहित्य का उपयोग बहुधा सीमाक्षेत्रों के लोगों को कठोरता से अधीन कर लेने को उचित ठहराने के लिए किया गया। इसी मिथक ने जिसने मूल अमरीकियों के नरसंहार को क्षमा कर दिया, बाद में वियतनाम युद्ध और ईराक युद्ध जैसी बड़े पैमाने पर हुई हिंसा को भी क्षमा कर दिया।

पश्चिमी विस्तार के सभी युगों में अनेक विद्वानों ने अनाड़ी की तरह ऐसे उत्पीड़न साहित्य के उत्पादन में भाग लिया, बिना यह सोचे-समझे कि अन्तत: उस सामग्री का उपयोग किस प्रकार किया जायेगा। एक बार जैसे ही लक्षित संस्कृति का ठप्पा बनाकर उसे चिह्नित कर दिया जाता है, वह अनेक प्रकार के अनुचित आरोपों का शिकार बनने लगती है। फिर ऐसी ठप्पे वाली संस्कृति के नेताओं के लिए ऐसे गलत आरोपों और चित्रण की झड़ी से अपना बचाव करना असम्भव हो जाता है। अपना बचाव करने के लिए पहले इन गलत आरोपों को स्वीकार करना पड़ता है जो दूसरे

पक्ष को वैध बना देता है और उनको विजय दिला देता है। पाश्चिमी शक्तियों की प्रभावी आलोचना करने वालों को शीघ्र ही सन्देहास्पद खतरनाक जंगलियों की सूची में डाल दिया जाता है और उन्हें कलंकित कर दिया जाता है। एक चीज जिस पर उत्पीड़न साहित्य बल देता है, वह यह कि जंगली लगभग हर समय झूठ बोलते हैं। इसलिए साक्ष्य और उचित प्रतिनिधित्व के सामान्य नियम तब लागू नहीं किये जाते, और एक अन्य 'जंगली संस्कृति' को अप्रभावी बना दिया जाता है।[5]

भारत के विखण्डन का पोषण करता उत्पीड़न साहित्य

मिथकों द्वारा नियन्त्रित पश्चिम के अनेक लोग एक लम्बे समय से भारत को विदेशी पैमाने पर एक अन्तिम छोर पर देखते हैं—जो बहुदेववाद की छवियों, विचित्र 'देवताओं,' वर्ण-व्यवस्था, मानवाधिकार से सम्बद्ध उत्पीड़न, निष्प्राण और विचित्र सौन्दर्यबोध, तर्कहीन सोच से भरा और अव्यवस्था की एक समग्र छवि वाला है। यहूदी-ईसाई मानस में यह बुराई या सभ्यता के अभाव के रूप में जुड़ जाता है। सन 1800 के दशक के प्रारम्भ से ही यूरोपीय और अमरीकी ईसाई मिशनरियों ने भारत के लोगों को जंगली के रूप में चित्रित करना शुरू किया था जिन्हें उनके अनुसार अंधकार से बचाये जाने की आवश्यकता थी। हाल में भारत के बारे में ऐसी ही अवधारणाएँ इस छवि का पोषण कर रही हैं कि मानवीय परिस्थितियों से निपटने में भारतीय संस्कृति पश्चिम से निकृष्ट है।

अंग्रेजों ने भारत का औपनिवेशीकरण करने के बारे में दावा किया था कि मानवाधिकार की स्थिति सुधारने के लिए उन्होंने ऐसा किया—जिसे कथित तौर पर सभ्य बनाने का मिशन कहा गया। इससे भारतीय नेताओं में एक-दूसरे के विरुद्ध शिकायतें लेकर उनके पास जाने का रुझान पैदा हुआ, और उन्हें अपनी समस्याओं का कारण भारतीय संस्कृति के मत्थे मढ़ने के लिए प्रोत्साहित किया गया। आज अमरीका उसी प्रकार से सभ्य बनाने की भूमिका में है। इस प्रकार, अमरीकी दक्षिणपन्थी राजनीतिज्ञ, जो अपने संयुक्त राज्य अमरीका में ऐसे सकारात्मक कार्य के बारे में उत्साही नहीं हैं, अमरीका द्वारा भारतीय वर्ण-आधारित भेदभाव से लड़ने के लिए सक्रिय हस्तक्षेप की नीतियों का आह्वान करते हैं।[6]

भारत : पश्चिमी हस्तक्षेप के लिए सीमाक्षेत्र

जैसा कि हमने पहले उल्लेख किया, भारत का अध्ययन करने वाले पश्चिमी संस्थान दो भिन्न दृष्टिकोणों से ऐसा करते हैं। दलित बैनर तले काम कर रहे ईसाई प्रचारक संगठन और दक्षिणपन्थी विचार-मंच तथा नीति-केन्द्र भारत को बाइबल के चश्मे से देखते हैं। वे भारत में चर्चों की मातहत संस्थाओं का उपयोग पश्चिमी समाचार माध्यमों, सरकारी सुनवाइयों, और अन्तर्राष्ट्रीय संगठनों में भारत के विरुद्ध साक्ष्य प्रदान करने में करते

हैं। वे भारत के विरुद्ध धीरे-धीरे उत्पीड़न साहित्य का एक विशाल भण्डार निर्मित करते हैं।

भारत भर में सुदूर क्षेत्रों तक दसियों हज़ार भिन्न-भिन्न प्रकार के नये गिरजे स्थापित किये गये हैं। वे 'आत्मोद्धार' के अपने मिशन और अपने वोट बैंक के लिए अनेक प्रकार के अभियानों और तरीकों का उपयोग करते हैं। संयुक्त राज्य अमरीका और भारत के ईसाई प्रचारकों में तुलना यह दिखाती है कि भारतीय चर्च एक कट्टरपन्थी ईसाइयत को प्रोत्साहित करते हैं और पहले से ही अच्छी तरह से घुले-मिले समुदायों में तनाव और संघर्ष उत्पन्न करते हैं। कभी-कभी एक ही वर्ण और कुनबे की पृष्ठभूमि वाले समुदाय धर्मान्तरण के कारण टुकड़ों में बँट जाते हैं।

ईसाइयत की ये असहिष्णु किस्में भारत में आलोचना से बच निकलती हैं जबकि ऐसे समूह संयुक्त राज्य अमरीका में आलोचना के पात्र बनते हैं। विडम्बना है कि अमरीका में जहाँ वामपन्थी ईसाई प्रचारक ईसाई एजेंडे पर प्रहार करते हुए फलते-फूलते हैं, वहीं दक्षिण एशियाई अध्ययनों में वामपन्थी न केवल भारत में वैसे व्यवहारों की अनदेखी करते हैं, बल्कि वास्तव में 'धार्मिक स्वतन्त्रता' और 'प्रगति' के रूप में वर्गीकृत किये जा रहे कार्यों को बौद्धिक समर्थन देते हैं।[7]

दक्षिण एशियाई अध्ययन विभागों के विद्वान और उदार विचार-मंच भारत को एक पन्थ निरपेक्ष चश्मे से देखते हैं जिनका आधार मानवाधिकारों के पश्चिमी विचार होते हैं। वे सब ऑल्टर्न या निचले तबकों के अध्ययनों और उत्तर आधुनिक सिद्धान्तों को भारतीय राज्य को विखण्डित करने में लगाते हैं, जिसे वे उपनिवेशवाद द्वारा कृत्रिम रूप से एक दुर्घटना के रूप में सृजित किया गया मानते हैं। और उसकी प्रकृति को दमनकारी, अलोकतान्त्रिक, अन्तर्निहित रूप से अल्पसंख्यक विरोधी, महिला विरोधी, और दलित विरोधी दिखाने के लिए भी वे इसका उपयोग करते हैं। वे इन प्रारूपों को अपने भारतीय प्रतिष्ठानों को निर्यात करते हैं। यह एक आत्म-निर्भर प्रणाली बनाता है। वे इन दृष्टिकोणों को समाचार माध्यमों और सरकारी सुनवाइयों में भी प्रयोग करते हैं।

इस प्रकार, परस्पर विपरीत माने जाने वाली ये दोनों बौद्धिक शाखाएँ एक साथ मिल जाती हैं ताकि वे एक सीमाक्षेत्र के रूप में भारत की एक विशेष छवि सामने ला सकें जो पश्चिमी हस्तक्षेप को आवश्यक बताये।

मानवाधिकार में पश्चिमी हस्तक्षेप

जहाँ यह निश्चित रूप से सत्य है कि भारत की जटिलता सामाजिक समस्याओं का एक भारी बोझ भी लाती है, और सुधार लाने के लिए आलोचना महत्वपूर्ण है, हमें इस बात पर अवश्य ध्यान देना चाहिए कि क्या होता है जब पश्चिमी जगत भारत के आन्तरिक मामलों में हस्तक्षेप करता है। उदाहरण के लिए :

- यह पूछना ही चाहिए कि क्या भारतीय सक्रिय कार्यकर्ता, जो घरेलू मामलों को अन्तर्राष्ट्रीय मंचों पर ले जाते हैं, वे भारत के अपने कानूनी, राजनीतिक और मानवाधिकार के ढाँचों को कमजोर करते हैं। क्या भारत के घरेलू तन्त्र को सुधारने पर ध्यान केन्द्रित करना बेहतर नहीं होगा ताकि लम्बे दौर में जनता के अधिकार सुरक्षित रखे जा सकें? क्या इन सक्रिय कार्यकर्ताओं ने भारत के अपने तन्त्र को किसी मामले में समाधान के लिए शक्तिसम्पन्न बनाने के लिए पर्याप्त रूप से हर सम्भव प्रयास किये हैं?
- क्या किसी मुद्दे का अन्तर्राष्ट्रीयकरण जमीनी स्तर की समस्याओं से हमारा ध्यान हटाता है, और मामलों को उच्चस्तरीय मीडिया आयोजन में बदल देता है जो कुछ 'मानवाधिकार के अगुओं' के लिए प्रसिद्धि लाता है, लेकिन वास्तविक समस्या के समाधान के लिए कुछ नहीं करता?
- क्या विदेशों द्वारा प्रायोजित ऐसे हस्तक्षेप की गतिविधि भारतीय युवाओं में बढ़े हुए विलगाव तक पहुँचाती है, और भविष्य में अपनी समस्या का समाधान स्वयं करने के लिए प्रोत्साहित करने के बदले विदेशियों पर निर्भरता की भावना लाती है?
- क्या यह विदेशी मिशनरियों का काम आसान करता है, जो भारतीय समुदायों की पहचान बदलने के लिए अपने कुनिर्देशित कार्यों से और अधिक संघर्ष पैदा करते हैं?
- क्या मानवाधिकार सम्बन्धी सक्रियता के भेष में अन्तर्राष्ट्रीय अपील का अन्तत: पश्चिमी राष्ट्रों द्वारा भारत के विरुद्ध उपयोग किया जा सकता है, उसी तरह जैसा कि अनेक अन्य राष्ट्रों के विरुद्ध हुआ जिनके विद्वान पश्चिम के उत्पीड़न साहित्य को निगलते और उगलते हैं?
- क्या उत्पीड़न साहित्य कुछ अमरीकी कट्टर प्रतिक्रियावादियों के उस कल्पना लोक का पोषण करता है जिसमें विदेशियों के प्रति घृणा पलती है?
- क्या इसका समग्र प्रभाव भारत की अखण्डता को खतरे में डालने वाली अपसारी शक्तियों को ईंधन प्रदान करता है?

चित्र ११.४ इसकी श्रृंखलाबद्ध प्रतिक्रिया को दर्शाता है।

Fig 11.4 उत्पीड़न साहित्य की अन्तहीन क्रिया-प्रतिक्रिया
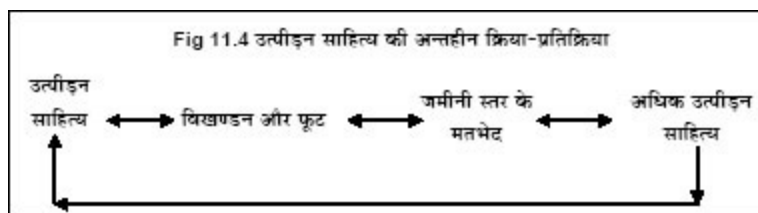
इससे भी आगे, सम्पूर्ण वैश्विक मानवाधिकार उद्योग से कुछ और प्रश्न पूछे ही जाने चाहिएँ :

- क्या पश्चिमी संस्थान भारतीय समाज की बीमारी का 'निदान' कर पाने की योग्यता रखते हैं?
- अतीत में तीसरे विश्व के घरेलू मुद्दों में पश्चिमी शक्तियों द्वारा हस्तक्षेप करने का इतिहास क्या है?
- स्वयम्भू 'चिकित्सक' के रूप में वे किनके प्रति उत्तरदायी हैं?
- क्या शेष विश्व की तुलना में पश्चिम का मानवाधिकार रिकार्ड बेहतर है?
- क्या पश्चिमी एजेंडा उनके अपने हित के लिए निर्मित किया गया है ताकि वे दूसरे देशों की आन्तरिक गतिविधियों में हस्तक्षेप को उचित ठहरा सकें?
- क्या मानवाधिकार की परिभाषा और विषयों का चयन पूर्वाग्रहपूर्ण है?
- क्या विश्वभ्रमणकारी भारतीय सक्रिय कार्यकर्ताओं का इसमें व्यक्तिगत स्वार्थ है?

ऐसे प्रश्न जहाँ बिना विचार-विमर्श के रह जाते हैं वहीं मानवाधिकार पर अनेक एकजुटताएँ अपसारी शक्तियाँ पैदा करती हैं, जो भारत को तोड़ने के लिए दबाव बनाती हैं। कुछ मामलों में इन शक्तियों ने अपना ही जीवन ग्रहण किया है और उन्हें सामान्य या यहाँ तक कि वांछनीय के रूप में भी देखा जाता है। उदाहरण के लिए, ईसाई प्रचारक समूहों द्वारा उनका दुरुपयोग करने के गम्भीर मामले भी सामने आये हैं, जो इस समस्या को आर्थिक या ऐतिहासिक रूप में नहीं देखते, बल्कि त्रुटियों से भरी ऐसी सभ्यता के रूप में देखते हैं जिसे बेहतर आयातित सभ्यता से बदला ही जाना चाहिए। ये भारत के गरीब वर्गों को उनके सांस्कृतिक बन्धन से अलग करने में काम आते हैं, और अन्ततः एक राष्ट्र-राज्य के रूप में भारत से। पूर्वोत्तर भारत में यह प्रक्रिया सबसे आगे चल रही है, जहाँ ईसाई प्रचारक गतिविधि के उकसावे पर मूल निवासियों और वनवासी धर्मों को अस्वीकार करने की गतिविधियों के साथ ही अपने संगी भारतीयों को ही अस्वीकार करने तक की गतिविधियाँ चलायी गयीं और फिर भारतीय गणराज्य के विरुद्ध हिंसात्मक युद्ध भी।

इस पुस्तक के बाद के अध्याय दिखाते हैं कि तमिलनाडु इसी दिशा में खिसक सकता है। अनेक भारतीय बुद्धिजीवी और आन्दोलनकारी ऐसे भँवरों में गिर पड़े हैं, जबकि वे अपने बारे में कल्पना करते हैं कि वे जमीनी स्तर पर मानवाधिकार की स्थिति बेहतर बनाने में सहायता कर रहे हैं। वैसे गठबन्धन जो थोड़े समय के दौरान लाभप्रद और भद्र दिखायी देते हैं लम्बे अर्से में भारी नकारात्मक परिणाम वाले हो सकते हैं। इस पुस्तक के उद्देश्यों में से एक वर्तमान में चल रही व्यापक भू-राजनीति की व्याख्या करना है ताकि एक व्यापक सन्दर्भ में मानवाधिकार आन्दोलनकारियों को अपनी सम्बद्धताओं का आकलन करने योग्य बनाया जा सके। उद्देश्य है शिक्षा के क्षेत्र के कुछ लोगों और कुछ एन.जी.ओ. की गतिविधियों के काले पक्ष को उजागर करना।

वैश्विक बहुसंख्यकों की सेवा में भारतीय अल्पसंख्यक

खुले बाजार में पहचान की होड़ के लिए हिन्दू, मुस्लिम, ईसाई और माओवादी प्रलोभन, प्रचार, राजनीतिक सामूहिक मतदान, और यहाँ तक कि मुकदमेबाजी के साथ बाजार की हिस्सेदारी प्राप्त करने के लिए परस्पर स्पर्धारत हैं। जो भी हो, इन समूहों में से अनेक वैश्विक उद्यमों के स्थानीय सहायकों के रूप में कार्य कर रहे हैं, जिनमें से कुछ, अन्य की तुलना में, अपने विदेशी मूल के संगठनों के साथ ज्यादा निकटता से जुड़े हुए हैं। इसका अर्थ यह हुआ कि धन जुटाने, नेताओं की नियुक्ति, रणनीतिगत योजना बनाने, व्यवहार में लाये गये रणनीतिगत समर्थन, और साथ ही साथ अन्तर्राष्ट्रीय समाचार माध्यम, जन सम्पर्क और राजनीतिक पैरवी बहुधा विदेशी मुख्यालयों से किये जाते हैं। फिर भी वैश्वीकरण के इस पक्ष की उतनी अधिक खबर नहीं ली जाती और उतनी निगरानी भी नहीं होती जितनी सामान्यत: कारोबार में लगे बहुराष्ट्रीय निगमों के लिए की जाती है। मानवाधिकार और धर्म उद्योग को निगरानी से मुक्त रखा गया है और इस प्रकार उन्हें समान स्तर की पारदर्शिता रखने के लिए नहीं कहा जाता है।

इसके परिणामस्वरूप अपसारी शक्तियों को बल मिलता रहा है जो सर्वाधिक विपन्न और प्रभावित होने वाले वर्ग को अपने साथ मिलाकर भारत को चुनौती देते हैं। अनेक हिंसात्मक संघर्ष हुए हैं। तात्कालिक रूप से इनके किसी विदेशी गठजोड़ से सम्बद्ध होने का पता न भी लगाया जा सके, लेकिन हिंसा के बढ़ते हुए एक भाग को बौद्धिक हस्तक्षेप द्वारा लाये गये पहचान परिवर्तन के विलम्बित और माध्यमिक प्रभाव के रूप में देखा जा सकता है।

आज विश्व में कहीं भी बिल्कुल अलग-थलग स्थानीय सन्दर्भ सम्भव नहीं है। हर कथित ‘स्थानीय’ भारतीय मुद्दे को एक या उससे अधिक वैश्विक बहुराष्ट्रीय धार्मिक या मानवाधिकार संगठनों और/या कुछ विदेशी हितों के लिए काम कर रहे एन.जी.ओ. द्वारा अपने एजेंडों में शामिल कर लिया जाता रहा है। यह वैश्वीकरण के उन छोरों में से एक है जो ध्यान में कम ही आते हैं। दक्षिण एशियाई अध्ययन के शोध समानान्तर वैश्वीकरण को पहचानने में विफल हो गये हैं, जो पश्चिमी चर्चों, मानवाधिकार समूहों, और सऊदी और ईरानी मदरसे फैला रहे हैं। भारतीय अधिकारी, अपने समकक्ष चीनी अधिकारियों के विपरीत, इस पर ध्यान नहीं देते कि यह किस बात को व्यक्त करता है : धार्मिक स्वतन्त्रता के नाम पर वैश्विक विस्तारवाद या मानवाधिकार।

अमरीका और चीन दो प्रमुख विश्व शक्तियाँ हैं जो भारत को एक सम्भावित प्रतिस्पर्धी के रूप में देखती हैं, और यह उनके लिए ही फायदेमन्द है कि वे निचले तबके के और अल्पसंख्यक मुद्दों के नायकों की भूमिका निभायें जो भारत को विखण्डित करते हैं। चीन के मामले में जहाँ यह व्यापक रूप से स्वीकार किया जाता

है, अमरीका के मामले में इस पर सामान्यत: चर्चा नहीं की जाती। अमरीका में कुछ विशेष शक्तियाँ भारत को विभिन्न टुकड़ों का एक असंगत 'सीमाक्षेत्र' मानती हैं; इनके बारे में बाद के अध्यायों में व्यापक चर्चा की जायेगी। इस प्रकार, विदेशी धन को, जो निर्देशों, शोध, आन्दोलनकारिता और कुछ विशेष मुद्दों के लिए प्रचार के साथ आता है, यह प्रदर्शित करने में सन्देह का बोझ ढोना ही पड़ेगा कि वह साम्राज्यवाद को आगे नहीं बढ़ा रहा।

यह जरूर सोचना होगा कि सहज ही दुष्प्रभावित होने की सम्भावना वाले तीसरे विश्व के 'अल्पसंख्यक' लोग कहीं साम्राज्यवादियों के लिए अन्तत: अनिच्छा से काम करने वाले एजेंटों में न बदल जायें और नये वैश्विक 'कुली' और 'सिपाही' न बन जायें। जहाँ एक विदेशी गठजोड़ भारी प्रभाव डालता है, वहाँ क्या 'अल्पसंख्यकों' का सम्भावित पुनर्वर्गीकरण किसी बहुराष्ट्रीय उद्यम के शाखा कार्यालयों के रूप में किया जा सकता है? यह ठीक ही होगा कि अल्पसंख्यक की परिभाषा पर विचार किया जाये। अगर भारत में कोई स्थानीय मैकडॉनल्ड के रेस्तराँ में जाता है जिसे हो सकता है कि भारतीय समाज के कुछ निम्न स्तर के निवासियों द्वारा ही चलाया जाता हो, तो इससे यह निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता कि यह एक 'अल्पसंख्यक' या 'निचल तबके के लोगों' का प्रतिष्ठान है केवल इसलिए कि स्थानीय कर्मचारी अल्पसंख्यक हैं। कोई भी व्यक्ति स्पष्टत: समझ जाता है कि यह एक वैश्विक विशाल कम्पनी की एक स्थानीय शाखा है।

यही आधार स्थानीय चर्चों, मदरसों, और एन.जी.ओ. पर लागू किया जाना चाहिए और इसी आधार पर स्थानीय हिन्दू मन्दिरों और विद्यालयों पर भी विचार होना चाहिए जो विदेशों में स्थित उद्यमों द्वारा संचालित किये जा रहे हैं, चाहे वे किसी विशेष धर्म के क्यों न हों या उनका घोषित लक्ष्य कुछ भी क्यों न हो। जो नियम किसी बहुराष्ट्रीय उद्यम के शाखा कार्यालय पर लागू किया जाये, वही नियम दक्षिणी बैप्टिस्ट चर्च पर भी लागू होने चाहिएँ, जो एक बहुत बड़ी बहुराष्ट्रीय संस्था है जिसका नागालैण्ड और तमिलनाडु में एक बड़ा नेटवर्क है, और उसकी दक्षिण भारत में दसियों हज़ार चर्चों की स्थापना करने की एक व्यावसायिक योजना है। उनके सदस्यों को अल्पसंख्यक के रूप में वर्गीकृत करने के बदले हमें उन्हें वैश्विक बहुराष्ट्रीयों के शाखा कार्यालय या सहायक कहना चाहिए। ऐसा क्यों है कि अगर उपज को 'ईश्वर का प्रेम' कहकर बेचा जा रहा है तो उस पर बहुराष्ट्रीयों के लिए बनाये गये नियम लागू नहीं होते? प्रकट रूप से 'ईश्वर का प्रेम' निगरानी और पारदर्शिता से मुक्त है; चूँकि यह गलतियों का शिकार हो जाने वाले और महत्वाकांक्षी मानवों द्वारा चलाया जा रहा है, इसलिए यह रवैया भोलेपन की निशानी है।

आवश्यकता यह है कि अल्पसंख्यक की अवधारणा को पुनर्परिभाषित किया जाये, इन बातों को ध्यान में रखते हुए कि : अगर कोई अल्पसंख्यक किसी विदेशी वैश्विक गठजोड़ के लिए काम कर रहा है, उसे उनके द्वारा धन मिल रहा है, उसे उनके

द्वारा नियुक्त किया गया है, या उसे उनके द्वारा प्रशिक्षित किया गया है तब वह वास्तव में अल्पसंख्यक नहीं है। वह किसी बड़े उद्यम का एक भाग है। यह वैश्विक उद्यम ही है जिस पर अध्ययन किया जाना चाहिए; फिर भी हम बराबर देखते हैं कि शिक्षाशास्त्री किसी अलग-थलग पड़े गाँव में किसी कथित अल्पसंख्यक समूह पर ध्यान केन्द्रित करते हैं।

एक उदाहरण : अफ्रीकी-दलित परियोजना

जिन मामलों में दरार ऐतिहासिक रूप से ही अस्तित्व में रही है, उनमें भी वैश्विक गठजोड़ों ने अलग-अलग हैसियतों से अपने-अपने कार्यक्रमों को आगे बढ़ाने के लिए ध्यान दिया है। इसका एक अच्छा उदाहरण है अफ्रीकी-दलित परियोजना, जो भारत की वर्ग विषमताओं का दोहन कर रही है और उन्हें एक भिन्न आलोक में ढाल रही है। यह एक पश्चिमी परियोजना है जो इस परिकल्पना को प्रोत्साहित कर रही है कि भारत के 20 करोड़ दलित नस्ली तौर पर अफ्रीकियों से जुड़े हैं, और कि ऊपर स्तर के भारतीय 'गोरे' आर्य आप्रवासी/आक्रमणकारी हैं। इस प्रकार, अमरीकी दासता और उनके शोषण का इतिहास एक ढाँचा उपलब्ध कराता है जिसमें दलित युवाओं को अन्य भारतीयों के शिकार के रूप में फिर से शिक्षित किया जाना है। पश्चिम स्थित बौद्धिक नेतृत्व और भारत में जमीनी सतह पर दलित गुटों के बीच एक प्रभावशाली स्तर का सहयोग चल रहा है।

उनकी गतिविधियों ने 'युवा सशक्तीकरण' कार्यक्रमों को ऐसे तरीके के तौर पर शामिल किया है जिससे एक विद्वेषपूर्ण, अलगाववादी पहचान की भावना उनके मन में बैठायी जा सके जो भारत की सम्प्रभुता के विरुद्ध काम करती है। ऐसे कार्यक्रमों द्वारा पैदा किये गये दलित युवा नेता बाद में स्वयं नये युवाओं को दीक्षित करने के लिए प्रशिक्षक बन जाते हैं। इस अवधारणा को बैठाने के लिए सम्मेलन आयोजित किये जाते हैं कि वे सर्व-अफ्रीकी एकता अभियान के अंग हैं। उसके बाद अनेक ऐसे समूह या तो ईसाई प्रचारकों के निशाने पर आ जाते हैं जो बीज बोने के लिए अफ्रीकी-अमरीकी मिशनरियों को इस्तेमाल करते हैं या फिर अखिल-इस्लामी गुटों के निशाने पर जो इस्लाम को विश्व भर के कालों के लिए सच्चे धर्म के रूप में प्रस्थापित करते हैं। अफ्रीकी-दलितवाद इस प्रकार लक्षित समुदायों को उनकी भारतीय जड़ों से अलग करने और आगे धर्मान्तरण के लिए उनको नरम बनाने की एक अन्तरिम तैयारी का चरण है।

इस प्रकार, जो कभी भारतीय सभ्यता के मूल तत्वों के साथ एक गहरा, ऐतिहासिक अफ्रीकी-अमरीकी सम्बन्ध था—जैसे कि गाँधीवादी अहिंसक विरोध प्रदर्शन और रेवरेंड मार्टिन लूथर किंग, जूनियर द्वारा अंगीकृत की गयी सहमति निर्मित करने की प्रक्रिया—वह सिर के बल गिर पड़ा है। भारतीय सभ्यता को प्रेरणा के एक स्रोत के बदले दलित जैसे भारतीय समूहों के कष्टों के कारण के रूप में देखा जा रहा

है, और उन्हें मिथकीय रूप से अफ्रीकी-अमरीकियों के साथ जोड़ा गया है। शैक्षिक सिद्धान्त निर्माण द्वारा ऐसे रुख को सम्भव बनाया जाता है और उसे विश्वसनीयता प्रदान की जाती है, एक ऐसी प्रक्रिया जिस पर भारत द्वारा अत्यल्प प्रभाव डाला गया है।

समान रूप से दमन का अफ्रीकी-दलित मिथक इतिहास के उस दृष्टिकोण पर आधारित है जो आर्यों और द्रविड़ों के बीच सभ्यताओं के नस्ली संघर्ष का दावा करता है, जो कथित तौर पर हज़ारों वर्ष पहले हुआ और जो आज भारत तथा अफ्रीका में सामुदायिक सम्बन्धों को एक स्वरूप दे रहा है। विडम्बना है कि इस सिद्धान्त के लिए बौद्धिक समर्थन उन्हीं शैक्षिक विद्वानों से आता है जो सैमुएल हंटिंगटन के इस सिद्धान्त की निन्दा करते हैं कि आधुनिक विश्व विभिन्न सभ्यताओं के टकराव से ग्रस्त है, जिनमें से एक—इस्लाम और पश्चिम के बीच का टकराव—वर्तमान में प्रमुख है। वे यह तर्क देते हुए ऐसे सिद्धान्तों की निन्दा करते हैं कि ये तनाव उत्पन्न करते हैं और राजनीतिक रूप से खतरनाक तथा सामाजिक रूप से विभाजनकारी हैं। फिर भी भारत में इसी प्रकार के आन्तरिक टकराव को मानवाधिकार की अगुवाई के बहाने सक्रिय रूप से प्रोत्साहित किया जा रहा है!8

अफ्रीकी-दलितवाद भारत के मातहत समुदायों को भारत से अलग करने के लिए चलायी जाने वाली अनेक ऐसी परियोजनाओं में से एक है। ऐसे आन्दोलनों का आधार पहचान की राजनीति का एक अनियन्त्रित वर्गीकरण है, जिन्हें उनके विदेशी गठजोड़ों द्वारा बहुधा सहयोग दिया जाता है, बौद्धिक गोला-बारूद विशिष्ट विद्वानों के कार्यों से प्राप्त किया जाता है।

भारत में अलगाववादी आन्दोलन प्राय: विद्वानों की दुनिया से निकले हैं; या अगर वे पहले से ही अस्तित्व में थे, तो यह विद्वता ही है जिसने उनको विस्फोटक सामग्री प्रदान की है। इसका सार नीचे दिया गया है :

- जबसे निचले अधीनस्थ तबकों के यानी सब-ऑल्टर्न अध्ययनों ने मार्क्सवादी वर्ग संघर्ष के सिद्धान्तों को भारत पर लागू किया तभी से बौद्धिक अलगाववाद भारतीय समाज विज्ञानों और मानविकी के विद्वानों के लिए एक अन्तर्निहित उत्तर-वृत्तान्त रहा है। इसने 'निचले स्तर से' वैकल्पिक इतिहास के विकास का पोषण किया, जो खास तौर पर यह प्रदर्शित करने की ओर खिसकता गया कि गरीब और पददलित भारतीय राज्य के शिकार हैं।
- आन्दोलनकारियों द्वारा जब इन सिद्धान्तों का प्रचार किया जाता है तब नये साम्प्रदायिक तनाव पैदा होते हैं और पुराने तनावों को प्रोत्साहन मिलता है, जिसके परिणामस्वरूप 'युवा पहचान' और 'सशक्तीकरण' कार्यक्रमों को दोबारा बल मिलता है जिन्हें कभी-कभी मानवाधिकार आन्दोलनकारियों के आवरण में रखा जाता है।

- ये अन्ततः अलगाववादी या/और अधिनायकवादी आन्दोलन बन जाते हैं, ठीक वैसा ही जिसने भारत में नागालैण्ड आन्दोलन को जन्म दिया और जिसकी वजह से इण्डोनेशिया से ईस्ट तिमोर स्वतन्त्र हुआ।
- वे विद्वेष की भावना से ग्रस्त युवा नेताओं का पोषण करते हैं ताकि वे भारतीय राष्ट्र-राज्य को अपने प्रमुख शत्रु और दमनकर्ता के रूप में देखें। यह प्रक्रिया अनेक प्रकार से अफगानिस्तान में तालिबान के जन्म जैसी है, और इसी तरह के अभियान मुस्लिम युवाओं के बीच भी चलाये जा रहे हैं।
- यह वह बौद्धिक पाइपलाइन है जो भविष्य के आतंकवादियों की निचली धाराओं को सिद्धान्त उपलब्ध कराते हैं। जब तक कि धरातल पर भौतिक रूप से हिंसा का प्रकटीकरण नहीं होता, सुरक्षा विश्लेषणों के राडार से अधिकांश ऐसी गतिविधि ओझल ही रहती है। वास्तव में, अनेक विद्वान जो प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से ऐसी अलगाववादी पहचानों की अगुवाई करते हैं, वे (या उनके विद्यार्थी) वही हैं जो परिणामस्वरूप हुई हिंसा का विश्लेषण वर्षों बाद करते हैं। तब तक अलगाववादी और भारतीय सेना/ पुलिस दोनों ज्यादती और उत्पीड़न कर चुके होते हैं, जो फिर जाँच का विषय हो जाता है।
- एक नया और सूक्ष्म उत्पीड़न साहित्य दक्षिण एशियाई अध्ययन की एक विधा बनकर उभरा है, और विद्वानों को विदेश यात्राओं, नौकरियों, पुस्तकों के प्रकाशन, पुरस्कारों, मानवाधिकार सम्मेलनों में भाग लेने, और अमरीकी सरकार के समक्ष साक्ष्य प्रस्तुत करने के लिए विभिन्न धनदाता स्रोत उनको समर्थन देते हैं। आने वाले अध्यायों में इनके अनेक उदाहरण दिये जायेंगे।

पश्चिमी हस्तक्षेप के लिए पहचान की दरारें

उन शैक्षिक सिद्धान्तों के, जिन्हें पश्चिमी प्रतिष्ठानों में बनाया गया, राजनीतिक उद्देश्य हैं और साथ-ही-साथ धरातल पर उनके प्रभाव भी। भाषा विज्ञान और प्राचीन कालजयी तमिल साहित्य जैसे विभाग भारत में और अधिक विखण्डन का आविष्कार करते हैं या जो अस्तित्व में हैं उनको और गहरा करते हैं। भाषा विज्ञान के प्रति जो दृष्टिकोण अपनाया गया वह एक जातीय-भाषावैज्ञानिक वृत्तान्त रचता है जो दक्षिण भारत की अलगाववादी राजनीति को और बल देता है, जिसके लिए औपनिवेशिक काल में बनायी गयी नस्ली श्रेणियों का उपयोग किया जाता है। अलगाववादी राजनीति आगे चलकर व्यापक जनसंहार का रूप ग्रहण करने वाले एक प्रमुख जातीय युद्ध में बदल सकती है, जैसा कि श्रीलंका में सिंहली-तमिल संघर्ष के विषय में देखा गया। भारत में संस्थानों के साथ-साथ व्यक्ति विशेष भी जातीय-राजनीतिक आन्दोलनों में भागीदार बनने के लिए शुद्ध शैक्षिक कार्य की सीमा को लाँघ जाते हैं। प्रवासियों को उनकी विशेष भाषा के आधार पर एक अन्तर्राष्ट्रीय पहचान बनाने के लिए प्रोत्साहित किया

जाता है, और इसका उपयोग भारत में अस्मिता सम्बन्धी मतभेद को उकसाने के लिए किया जाता है। अन्तर्राष्ट्रीय संस्थागत नेटवर्क भारतीय सहायकों वाले अन्तर्राष्ट्रीय ईसाई प्रचारक संस्थानों के साथ मिलकर काम करते हैं।

भारत का पुनः औपनिवेशीकरण

यूरोप में, जहाँ भारत की औपनिवेशिक छवि के अवशेष पहले ही से जनमानस में गहरे बैठे हैं, ईसाई समूहों ने ब्रिटेन और यूरोपीय महाद्वीप के समर्थन देने वाले नेटवर्कों के साथ मिलकर दलित हिरावल संगठन स्थापित कर लिए हैं। वे सरकारी उच्चाधिकारियों, संयुक्त राष्ट्र संघ और यूरोपीय यूनियन के प्रतिष्ठानों के सदस्यों और अधिकारियों, और उनके साथ-साथ राजनीतिक पटल के सबसे दूरस्थ किनारों के उग्र परिवर्तनवादी राजनीतिज्ञों का पोषण करते हैं। वे उन्हें लगातार उत्पीड़न साहित्य और विवादास्पद अध्ययन मुहैया कराते हैं जो प्रवासी भारतीयों को नीचा दिखाते हैं और नकारात्मक प्रारूपों को फिर से सामने लाते हैं। वे अकादमी में भी सक्रिय हैं जो स्वयं को भारत के अध्ययन के लिए माध्यम के रूप में प्रस्तुत करते हैं। इस तरह वे एक आन्दोलनकारी-शैक्षिक भारत विरोधी गठजोड़ का मार्ग प्रशस्त करते हैं। कुल मिलाकर, ये सब संयुक्त राष्ट्र संघ के प्रतिष्ठानों में, 2001 में हुए डर्बन सम्मेलन जैसे रणनीतिगत आयोजनों, और यूरोपीय यूनियन की संसद सरीखे प्रतिष्ठानों में एक सशक्त भारत विरोधी तर्क देने वाला समूह बनाते हैं।

एक 'ईसाई उम्मत'

पश्चिमी सरकारों और समाचार संगठनों के समर्थन का उपयोग करते हुए अन्तर्राष्ट्रीय ईसाई प्रचारक संगठन भारत में कुछ समय से भारी वित्तीय निवेश करते हुए संस्थानों के एक विशाल नेटवर्क का निर्माण कर रहे हैं। उन संस्थानों से अलग जो आन्दोलनकारियों को एक स्वरूप देते हैं और उन्हें नियन्त्रित करते हैं, एक उत्साही मीडिया का ढाँचा भी बनाया जा रहा है, जो पश्चिम के ईसाई प्रचारक दक्षिणपन्थी मीडिया से जुड़ा है, विशेषकर अमरीका के। इसके परिणाम को एक ईसाई शोधकर्ता 'ईसाई उम्मत' कहते हैं और जो सम्वेदना और वित्तीय स्तर पर पश्चिम से बँधा हुआ है।[9]

चित्र 11.5 विभिन्न शक्तियों की सक्रियता को दिखाता है, जिन पर शेषपुस्तक में अलग-अलग विचार किया जायेगा।

12
अफ्रीकी-दलित आन्दोलन

हमने पहले ही देखा है कि शैक्षिक अध्ययनों, ईसाई प्रचारक महत्वाकांक्षाओं और प्रशासनिक परियोजनाओं ने मिल कर सशक्त नस्ली पहचान और अन्तर पैदा करने के लिए काम किया, जो पहचानें और विभाजन विकसित होकर द्रविड़ अलगाववाद में परिणत हो गये थे। हम इसके समानान्तर दलित सशक्तीकरण आन्दोलन में उसी प्रकार के तत्वों को पाते हैं। मूल रूप से 'टूटा हुआ' और 'अछूत' अर्थ वाला शब्द 'दलित' एक पारम्परिक सामाजिक आर्थिक हैसियत का द्योतक है। दलित सम्पूर्ण भारत में पाये जाते हैं और उनकी कोई एक जातीय या धार्मिक विरासत नहीं है। फिर भी हाल में वर्ण-व्यवस्था को 'नस्ल' के विचार के साथ मिला दिया गया है, जो अपने उद्‌भव के लिए पश्चिमी बाइबल के हामी मिथक का ऋणी है। इस प्रकार दलितों में लगातार बनी रही गरीबी के लिए नस्लवाद को दोषी ठहराया जा सकता है जिसे आर्यों के आक्रमण और ब्राह्मणों द्वारा शोषण की कथाओं से जोड़ दिया गया है।

पहचान के सृजन के इस प्रारूप ने रवाण्डा में जनसंहार तक और श्रीलंका में गृह युद्ध तक पहुँचा दिया। टिमोथी लौंगमैन द्वारा लिखी हाल की एक शैक्षिक पुस्तक, 'ईसाइयत और रवाण्डा में जनसंहार' उस देश में जनसंहार के लिए चर्च से सम्बन्धित कारणों पर किये गये शोध पर आधारित है।[1] परिशिष्ट ''ग'' यह दिखाने कि लिए रवाण्डा के जनसंहार पर विस्तार से चर्चा करता है कि किस प्रकार बाइबल के मिथक, औपनिवेशिक आवश्यकताएँ और पश्चिमी दुश्चिन्ताएँ उस वृत्तान्त को रचने के लिए एक साथ मिल गयीं जिसके परिणामस्वरूप जनसंहार हुआ। औपनिवेशिक प्रशासकों द्वारा विकसित की गयी सामाजिक-राजनीतिक कथा और रवाण्डा तथा दक्षिण भारत के ईसाई प्रचारक संस्थानों के बीच आश्चर्यजनक समानान्तरों पर अब विचार किया जायेगा, क्योंकि वे इस बात की कड़ी चेतावनी देते हैं कि भविष्य में भारत को किन चीजों का सामना करना पड़ सकता है, खास तौर पर अगर ये शक्तियाँ निर्बाध रूप से अपनी गतिविधियाँ जारी रखती हैं।

आर्य/द्रविड़ और हुटु/टुट्सी समानान्तर (Hutu-Tutsi Parallels)

दक्षिण भारत और रवाण्डा दोनों में दो स्थानीय समूहों के आपसी सम्बन्धों की पुनर्व्याख्या एक नस्लवादी ढाँचे में षडयन्त्र के सिद्धान्त के साथ और एक समूह को धूर्त और षडयन्त्रकारी के रूप में नकारात्मक प्रारूप, तथा दूसरे को शुद्ध और भोले-भाले शिकार के रूप में पेश करने के लिए की गयी। भारत में इस प्रकार का विचार दिनोंदिन और अधिक विस्तारित और अन्तर्राष्ट्रीयकृत हो रहा है, और उत्पीड़न के

साहित्य के रूप में विकसित हो रहा है। चित्र 12.1 दिखाता है कि किस प्रकार रवाण्डा प्रारूप दक्षिण भारत में समान रूप से उभरते माहौल में प्रतिबिम्बित होता है।

Fig 12.1 रवाण्डा के नरसंहार मॉडल का आयात
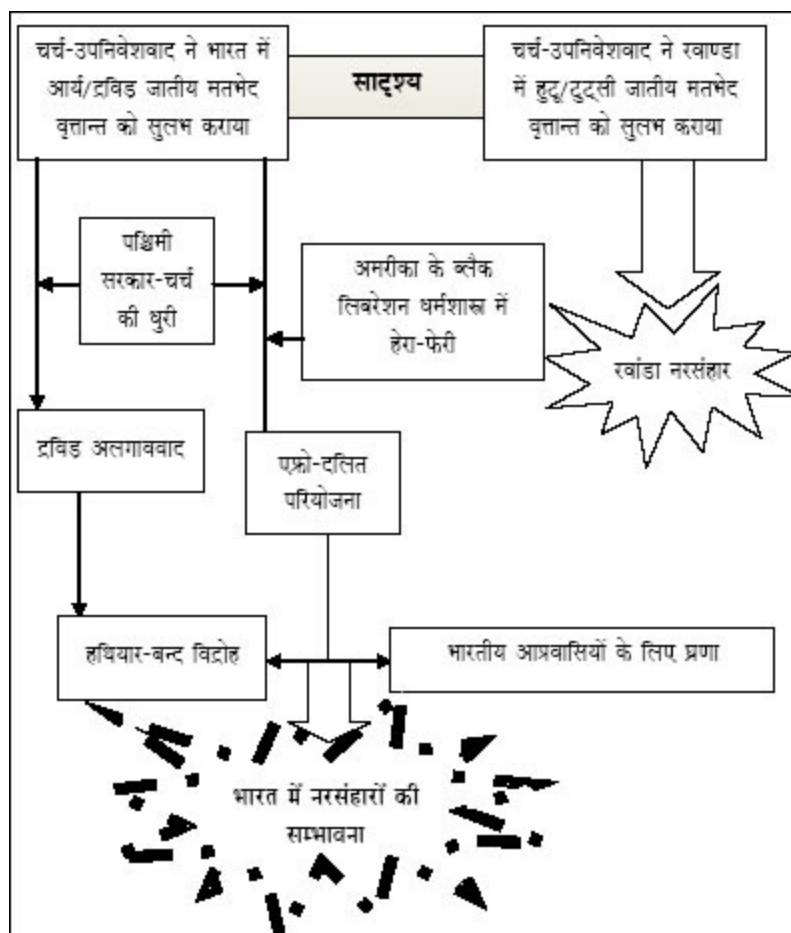
हमने देखा कि द्रविड़ राजनीति पिछली लगभग एक शताब्दी से आर्य/द्रविड़ नस्ल सिद्धान्त और दुष्ट ब्राह्मणों की परिकल्पित छवि द्वारा सम्पोषित की जाती रही है। इसने परिणामस्वरूप तमिल समाज में घृणा उत्पन्न की है, जो विभिन्न पश्चिमी एजेंसियों से प्रत्यक्ष समर्थन प्राप्त करती है।

शैक्षणिक जनों और आन्दोलनकारियों के बीच सहयोग स्थापित हो गया है जो भारत में दलितों और संयुक्त राज्य अमरीका में अश्वेतों के बीच समानान्तर की खोज में लगा हुआ है, और जो दलितों और अश्वेतों के बीच साझे नस्ली मूल का दावा भी करता है। यह उन्नीसवीं शताब्दी के नस्लवाद का ही एक उल्टा संस्करण है जिसके साथ अश्वेत मुक्ति आन्दोलन मिले हुए हैं। इस परिकल्पना पर आधारित दलित सक्रियतावाद को पश्चिमी ईसाई प्रचारकों, वामपन्थी उदारवादी एन.जी.ओ., और सरकारी संस्थानों से समर्थन मिलता है। अफ्रीकी-दलित परियोजना के प्रस्तावक दावा करते हैं कि हिन्दू धर्म का एक नस्लवादी ढाँचा है। इसे बहुधा शैक्षिक-जातीय

अध्ययनों, सब-ऑल्टने अध्ययनों और धर्मशास्त्रीय आन्दोलनकारियों द्वारा समर्थन दिया जाता है।

निम्नलिखित उद्धरण संक्षेप में बताता है कि रवाण्डा के हुटु समुदाय के लोगों को टुट्सी समुदाय के लोगों के बारे में क्या पढ़ाया जाता रहा था :

> 'टुट्सी' आक्रमणकारियों ने उस भूमि को जीत लिया जो कभी 'हुटु' समुदाय की थी। लेकिन उन्होंने यह कब्जा सिर्फ हिंसा के साधनों द्वारा नहीं किया। और यहाँ से प्रारम्भ होते हैं 'टुट्सी/हुटु' जोड़ी के दूसरे स्तर के अर्थ : उन्होंने, टुट्सियों ने, छल द्वारा ऐसा किया; ... टुट्सियों के आने के पहले हुटु तो हुटु थे ही नहीं; वे केवल अबंटू थे ... जिसका अर्थ किरूण्डी में 'बंटु जन' या सीधे-सीधे 'मानव' होता है।... हुटु नाम, शरणार्थियों ने कहा, टुट्सी द्वारा उत्तर में उनके निवास स्थल से आयात किया गया था जिसका अर्थ होता है 'दास' या 'नौकर'। इस प्रकार ... 'हम उनके दास बन गये'।[2]

यह आश्चर्यजनक है कि उपर्युक्त अंश उस विभाजनकारी इतिहास से लगभग मिलता-जुलता है जिसे लगभग डेढ़ सदी पहले भारतीय सन्दर्भ में कॉल्डवेल ने लिखा था। अगर टुट्सी के स्थान पर आर्य लिख दिया जाये और हुटु के स्थान पर द्रविड़, तो यह मिथक वही हो जायेगा जो कॉल्डवेल ने दक्षिण भारत में लिखा था।

> ... ब्राह्मणों ने अपनी तेजस्विता और प्रशासनिक क्षमता द्वारा उन्नति प्राप्त की। ... ब्राह्मणों ने जो 'शान्ति से आये और चापलूसी से राज्य हासिल किया,' सम्भवत: द्रविड़ों को राजी किया होगा कि उन्हें शूद्र कहकर वे उनको एक सम्मान का पद दे रहे थे। अगर ऐसा था तो उनकी नीति पूरी तरह सफल हुई; क्योंकि शूद्र के पद का विरोध द्रविड़ वर्णों द्वारा कभी नहीं किया गया है।[3]

दक्षिण भारतीय द्रविड़ों को उत्तर भारतीय आर्यों के शिकार के रूप में चित्रित करने वाले कॉल्डवेल के शोध को ई.वी. रामास्वामी (ईवीआर के नाम से लोकप्रिय) द्वारा एक सामाजिक आन्दोलन में बदल दिया गया था।[4] ईवीआर ने आगे नस्ली शाखाओं को विकसित किया जिन्हें कॉल्डवेल ने रोपा था और उन्हें प्रत्यक्ष रूप से नस्ली घृणा में बदल दिया, और उत्तर भारतीयों के विरुद्ध द्रविड़ों के उठ खड़े होने का आह्वान किया :

> साथियो, हम मूल निवासी हैं और उस नस्ल के वंशज हैं जिसने इस भूमि पर शासन किया था। हम गर्व, साहस, तेजस्विता, शक्ति और सभ्यता में किसी अन्य नस्ल से नीचे नहीं हैं। फिर भी बर्बर, घुमन्तू, काम नहीं करने वाली नस्ल के दूसरों की सम्पत्ति हथियाने वाले एक छोटे समूह ने हमें हज़ारों वर्षों से गुलाम बना रखा है। इस अल्पसंख्यक नस्ल के पास तलवार जैसा कोई हथियार नहीं था। फिर भी उन्होंने हमें पशुओं के स्तर तक गिरा दिया जबकि उन्होंने अपने लिए अर्थव्यवस्था, राजनीति और धर्मशास्त्र प्राप्त किये।[5]

ईवीआर ने तो ब्राह्मणों के विरुद्ध अत्यन्त हिंसा का तर्क दिया और जातीय सफाये की ओर संकेत भी दिया। जेकब पाण्डियन ने कहा :

> उनका मुख्य सिद्धान्त था कि ब्राह्मणों ने द्रविड़ संस्कृति को विकृत किया, जिसने फिर गैर-ब्राह्मण युवाओं का हौसला पस्त किया; और यह कि द्रविड़ संस्कृति को उसके अशुद्ध स्तर से उबारने के लिए ब्राह्मणवादी पुरोहिती और संस्कृत धर्मग्रन्थीय परम्परा को नष्ट कर ही दिया जाना चाहिए और ब्राह्मणवादी धार्मिक तौर-तरीके से चलने वाले लोगों को द्रविड़-तमिल समाज से निष्कासित भी कर देना चाहिए।[6]

भारतीय मामलों के जानकार एक अति-सम्मानित पश्चिमी मानवशास्त्री, लॉयड रूडॉल्फ (Lloyd Rudolph) ने इस आन्दोलन द्वारा पैदा की जा रही हिंसा की व्याख्या करते हुए लिखा :

> कुछ अवसरों पर, डीके (द्रविड़ कड़गम) नेता ई.वी. रामास्वामी नायकर ने ब्राह्मणों की हत्या और अग्रहरमों (क़स्बों और शहरों के ब्राह्मण निवास स्थलों) के जलाये जाने का आह्वान किया है ... द्रविड़ आन्दोलन की लोकप्रियता के इन विभिन्न तत्वों को एक साथ जोड़ दिया गया है और इन्हें ब्राह्मण-विरोधी षडयन्त्र और दानवीकरण के विषयों द्वारा समग्र संगति प्रदान की गयी है।... आन्दोलन स्वयं को सीधी कारवाई में भी अभिव्यक्त करता है। हाल के वर्षों में ई.वी.आर. और डी.के. ने रेलबोर्डों पर हिन्दी में लेखन को मिटाने, राम के पुतले जलाने और हिन्दू देवी-देवताओं की 'मूर्तियाँ' तोड़ने, भारतीय झण्डा जलाने, या 'होटलों' (कॉफी हाउसों और रेस्तराओं) में ब्राह्मण लिखे होने को हटाने या मिटाने, भारतीय संविधान की प्रतियाँ जलाने, गाँधी की मूर्तियाँ नष्ट करने और भारत का मानचित्र जलाने जैसे आन्दोलन चलाये हैं।[7]

ब्राह्मणों की नस्ली शत्रु के रूप में बनायी छवि तमिलनाडु में इतिहास की पाठ्यपुस्तकों में निर्लज्ज ढंग से पायी जाती है, विशेषकर ईसाई लेखकों द्वारा लिखी पुस्तकों में। उदाहरण के लिए, '2000 तक तमिलनाडु का इतिहास' तमिलनाडु के अनेक महाविद्यालयों के स्नातक और स्नातकोत्तर कक्षाओं के लिए निर्धारित पाठ्य पुस्तक है। एन.एम. क्रिश्चियन कॉलेज के इतिहास विभाग के अध्यक्ष द्वारा लिखी गयी यह पुस्तक बिलकुल सत्य की तरह यह पढ़ाती है कि ब्राह्मण तमिलनाडु के बाहर से आये और उन्होंने स्वयं को अपने धर्म और तमिल राजाओं से निकटता के माध्यम से श्रेष्ठतर स्थिति में स्थापित कर लिया :

> संगम शासकों ने आर्यकरण को अत्यधिक महत्व दिया। उच्च शिक्षा प्राप्त ब्राह्मणों ने शासकों को प्रभावित किया और धीरे-धीरे राजनीति और धर्म पर अधिकार किया। इसने ब्राह्मणों की स्थिति को और अच्छा बनाया। जब मन्दिरों और राजनीति की गतिविधियाँ बढ़ीं, ब्राह्मणों की माँग भी बढ़ गयी। इसलिए तमिलनाडु में इसके उत्तरी भागों से अधिकाधिक ब्राह्मणों को आमन्त्रित किया

गया। ब्राह्मणों की अलग संस्कृति और भाषा थी। उन्होंने तमिलनाडु के लोगों को अपना शत्रु समझा। ... वे स्थानीय लोगों के साथ कभी घुले-मिले नहीं और एक अलग जीवन जिया। ... मन्दिरों में काम करने वाले ब्राह्मणों ने धार्मिक पूजा में आर्यों के आगम सिद्धान्त को लागू किया। एक छोटे-से अर्से में ही पूजा की पद्धति का भी आर्यकरण कर दिया गया। ...इस प्रकार ब्राह्मणों ने भूपतियों की तरह काम किया और सभी प्रकार के राजनीतिक और धार्मिक विशेषाधिकारों का आनन्द उठाया। उन्होंने सामान्य लोगों को दबाया और उनके साथ दास की तरह व्यवहार किया।[8]

ब्राह्मणों के इस तरह के नमूने को और बारम्बार बल दिये गये इस कथन को कि हिन्दू धर्म और कुछ नहीं बल्कि तमिलों को दास बनाने के लिए गढ़ा गया था, तमिल राजनीति, शिक्षा और समाचार माध्यमों में सभी स्तरों पर लागू किया जाता है।

अफ्रीकी-द्रविड़ आन्दोलन को अमरीकी इतिहास द्वारा परिभाषित करना

दासता से मुक्ति के बाद जब अफ्रीकी-अमरीकियों ने अपनी अफ्रीकी विरासत को सुधारना चाहा, उन्होंने मुख्य रूप से अश्वेत चर्चों के संस्थानों के माध्यम से बाइबल की कथा को अपने ढंग से अपना कर ऐसा किया। जॉर्ज वेल्स पार्कर (George Wells Parker, 1882-1931), एक अफ्रीकी-अमरीकी सक्रिय राजनीतिक कार्यकर्ता, ने 'नीग्रो लोगों को नयी आशाओं से उत्प्रेरित करना; उन्हें अपनी नस्ल और धार्मिक विकास तथा मानव सभ्यता में इसके महान योगदान पर गौरवान्वित करना चाहा'।[9] इस उद्देश्य के लिए उन्होंने 1917 में एक संगठन की स्थापना की, और उसका नाम 'हैमिटिक लीग ऑफ़ द वर्ल्ड' रखा। इसका उद्देश्य था बाइबल के ढाँचे का उपयोग करते हुए हैम के वंशजों के एक सकारात्मक विश्व इतिहास का सृजन करना।

अश्वेत सिद्धान्तकारों ने भारत में इसके समानान्तरों की खोज करनी शुरू कर दी। गोरे-आर्य-बर्बर-ब्राह्मण-धूर्त-आक्रमणकारी बनाम मूलनिवासी-भोले-भाले-सभ्य-काले-द्रविड़ के मिथक को बल दिया गया। ड्रुसिला डन्जी हूस्टन (Drusilla Dunjee Houston, 1876-1941), एक अश्वेत बैप्टिस्ट मन्त्री की बेटी, इस अखिल-अफ्रीकीवाद ((pan-Africanism) को लोकप्रिय बनाने वाले सबसे प्रारम्भिक व्यक्तित्वों में से एक थीं। उन्होंने द्रविड़ों की पहचान इस रूप में की कि वे 'इथियोपिया के कुशाइट समुदाय के लक्षणों और उनकी प्रथाओं से मिलते जुलते' थे :

ब्राह्मण सम्भवत: काफी देर से आये और हिन्दू-कुश के निवासियों की मिलीजुली शाखा के थे। वे मिली-जुली नस्ल के थे यह बात हम उनकी क्रूरता के आधार पर कह सकते हैं। शुद्ध कुश समुदाय के लोग बड़े भद्र होते हैं। ... ये द्रविड़ ... अमिश्रित कुश समुदाय को ही द्योतित करते हैं। ... वे उस पुरानी नस्ल की आगे बढ़ती हुई लहर का ही एक भाग थे जिसने पूर्व और पश्चिम की ओर विस्तार पाया और जिन्होंने आदिम अरब, मिस्त्र और चाल्डिया को आबाद किया।[10]

यह अखिल-अफ्रीकी मिथक दावा करता है कि किस तरह 'मूल' अफ्रीकी अनेक मामलों में श्रेष्ठ थे, लेकिन धूर्त आर्य-ब्राह्मणों के छल द्वारा जीत लिये गये। काली-चमड़ी वाले द्रविड़ों को गोरी-चमड़ी वाले आर्य-ब्राह्मणों द्वारा मातहत बनाये जाने का यह मिथक वर्ष बीतने के साथ-साथ शिक्षा के क्षेत्र से परे जाकर अमरीकी विदेश नीति में फैलता चला गया। उदाहरण के रूप में, वर्ष 1968 में, संयुक्त राज्य अमरीका के विदेश विभाग के सुरक्षा मामलों के प्रभारी एक पूर्व सहायक सचिव से जब भारतीय वर्ण-व्यवस्था के बारे में पूछा गया तो उन्होंने द्रविड़ों की तुलना एक उदाहरण के रूप में काली-चमड़ी वाले नीग्रो से की जो वर्ण-व्यवस्था की एड़ी तले थे।[11]

बाइबल के हैम मिथक को अखिल-अफ्रीकी आन्दोलन द्वारा श्वेत श्रेष्ठता का मुकाबला करने के लिए अश्वेत श्रेष्ठता को दिखाने के उद्देश्य से एक ढाँचे के रूप में अपनाया गया है। इसका एक उदाहरण 2002 के लिए अफ्रीकान इतिहास (*Afrikan History*) विषयवस्तु रोज़नामचा है, जिसका प्रकाशन नॉटिंघम स्थित ऐफ्रिकन कॅरीबीयन कल्चरल एजुकेशन सर्विसेज (ACCES) द्वारा किया गया था। यह रोज़नामचा मूलत: अखिल-अफ्रीकी आन्दोलन के लिए, जो अब्राहम के ढाँचे में कार्य कर रहा था, एक प्रचार उपकरण मात्र था। यह धर्मशास्त्र, जो मा'आट के रूप में जाना जाता है, दावा करता है कि ईसाइयत काली है, कि अफ्रीका ही दस निर्देशों का स्रोत है, और यह कि 'यहूदी धर्म, ईसाइयत, इस्लाम और बौद्ध धर्म की नींव प्राचीन केमेट (मिस्त्र) तक खोजी जा सकती है'।[12]

उक्त रोज़नामचे में मुआ एश्बी की एक पुस्तक पर आधारित मिस्त्र के योग पर एक भाग है।[13] इस पुस्तक का उद्धरण देते हुए कैरोलिन शोला अरेवा लिखती हैं :

> योग प्रारम्भ करने वाले लोग वे हैं जिन्हें द्रविड़ के नाम से जाना जाता है। ये अफ्रीकी लोग मिस्त्र से गये और अपने साथ अनेक आध्यात्मिक प्रथाएँ भी ले गये। इन प्राचीन आध्यात्मिक प्रथाओं को भारतीय आध्यात्मिक प्रथाओं के साथ एक कर दिया गया और आगे विकसित किया गया जिसे आज हम योग के रूप में जानते हैं, जो विश्व भर में लोकप्रिय हो गया है।[14]

'बुद्ध के उपदेश' (The Buddha's Teaching) शीर्षक के तहत यह कहता है :

> भारत के सबसे पुराने निवासी काले अफ्रीकी थे, विश्वास किया जाता है कि वे इथियोपिया से आये थे, और प्राय: उन्हें द्रविड़ कहा जाता है। वे अपने साथ अनेक आध्यात्मिक विज्ञान लेकर आये जिनका उद्भव अफ्रीका में हुआ था। योग, कुण्डलिनी, रेफ्लेक्टोलॉजी। बुद्ध, क्रिशिया आदि काले सन्त थे जो कुशाईट सभ्यता के वंशजों से निकलकर ऊपर उठे, जिनमें राजा अशोक भी शामिल थे।

यह अंश आगे यह भी कहता है कि बुद्ध ने मूर्ति पूजा करने से मना किया।[15] रोज़नामचा इस बात पर बल देता है कि बाइबल का उद्भव अफ्रीका में हुआ।[16] रोज़नामचा यह भी दावा करता है कि अफ्रीकियों ने सिंधु घाटी सभ्यता का निर्माण

किया और गंगा का नाम इथियोपिया के उस राजा के नाम पर रखा गया जिन्होंने भारत को जीता।[17] विडम्बना है कि, हालाँकि हैमी मिथक अफ्रीकियों के दमन के लिए उपयोग में लाया गया है, अनेक अफ्रीकी अपने सशक्तीकरण के लिए इसे अपना लेते हैं।

अफ्रीका केन्द्रित *Institut Fondamentald'Afrique Noire/Institut Francaisd'Afrique Noire* (IFAN), जिसकी स्थापना औपनिवेशिक फ्रांसीसी अफ्रीका में हुई थी, अफ्रीकी-द्रविड़ सिद्धान्त के समर्थन में शोध पत्र प्रकाशित करता है।[18] फिर ये शोध पत्र क्लाइड अहमद िंवटर्स सरीखे अफ्रीका केन्द्रित सिद्धान्तकारों द्वारा साक्ष्य के रूप में 'द्रविड़ और अफ्रीकी भाषाओं और संस्कृतियों की वंशानुगत एकता' (The Genetic Unity of Dravidian and African Languages and Culture),[19] 'क्या द्रविड़ अफ्रीकी मूल के हैं?' (Are Dravidians of African Origin?)[20] आदि, जैसे शीर्षकों वाले शोध पत्रों में उद्धृत किये जाते हैं। सन 1980 के दशक के दौरान, उनके शोध भारत की शैक्षिक शोध पत्रिकाओं में स्थान पा गये, और उन्हें दक्षिण भारत के शैक्षिक प्रतिष्ठानों में अत्यधिक स्वीकार्यता मिली। उनके लेख 'ताम्र पत्रों की हड़प्पाकालीन लिखावट' (The Harappan Writing of the Copper Tabletss) का प्रकाशन जर्नल ऑफ़ इण्डियन हिस्ट्री में किया गया। 'द्रविड़ों, मैण्डिंग और सुमेरियाइयों की आद्य संस्कृति' (The Proto-Culture of the Dravidians, Manding and Sumerians) शीर्षक लेख एक शैक्षिक शोध पत्रिका तमिल सिविलाइज़ेशन में प्रकाशित किया गया।[21] 'सिन्धु घाटी की लिखावट और तीसरी सहस्त्राब्दि ईसा पूर्व से सम्बन्धित आलेख' (The Indus Valley Writing and Related Scripts of the Third Millennium BC)[22] का प्रकाशन इण्डिया पास्ट एण्ड प्रेजेंट में किया गया, 'तमिलों का सुदूर पूर्वी उद्भव' (The Far-eastern Origin of the Tamils)[23] का प्रकाशन जर्नल ऑफ़ तमिल स्टडीज[24] में किया गया। विन्टर्स प्राचीन विश्व का एक चित्र बनाते हैं जिसमें द्रविड़ नस्लीय और भाषाई रूप से विभिन्न अफ्रीकी समुदायों और साथ-ही-साथ प्राचीन सुमेर और ईलम समुदाय के समरूप हैं। उनके सिद्धान्तों को अनेक शैक्षिक विद्वान 'मूर्खतापूर्ण' मानते हैं, फिर भी वे तमिलों के बीच प्रभावी रहे हैं।[25]

अमरीका की अश्वेत मुक्ति का धर्मशास्त्र

भारत में अमरीकी अश्वेत धर्मान्तरण द्वारा निभायी जा रही भूमिका के कारण, यह उपयोगी होगा कि मिश्रित मार्क्सवादी-ईसाई सिद्धान्त की संक्षिप्त विवेचना की जाये, जो अमरीका में उच्चस्तरीय अश्वेतों के बीच प्रमुख है।

अमरीका में दासता काल के दौरान, गोरे लोग शुरू में दासों का धर्मान्तरण कर उन्हें ईसाई बनाने के प्रबल विरोधी थे, क्योंकि :

1. भय था कि वे धार्मिक संगठनों का उपयोग आवरण के रूप में दासता के विरुद्ध षडयन्त्र करने के लिए कर सकते हैं।
2. कुछ ईसाइयों ने दावा किया कि ईसाई अन्य ईसाइयों को दास नहीं बना सकते और इस प्रकार ईसाइयत दास प्रथा को नुकसान पहुँचा सकती है; और
3. अनेक श्वेत इस सुझाव पर ही पीछे हट गये कि अश्वेत भी स्वर्ग जा सकते हैं, उनके पड़ोसी बन सकते हैं, विशेषकर इस ईसाई विश्वास के आलोक में कि लोग स्वर्ग में उसी शरीर में रहते हैं जिस शरीर में वे इस धरती पर रहते हैं। कुछ श्वेतों ने तो यह तर्क देने का भी प्रयास किया कि अश्वेत सामान्य मानवों से नीचे हैं।

लेकिन 1700 के दशक की शुरुआत होते-होते, अमरीकी दासों के स्वामियों द्वारा धर्मान्तरण पूरी तरह जारी था, क्योंकि उस समय तक ईसाइयत की पुनर्व्याख्या दासता को निम्नलिखित आधार पर उचित ठहराने के लिए की जा चुकी थी :

1. दासता का अभिशाप 'हैम के पुत्रों' पर था, जिनकी व्याख्या अश्वेतों के रूप में की गयी;
2. दासता को एक धार्मिक अच्छाई माना गया, क्योंकि इसने अफ्रीका से असुरक्षित मूर्तिपूजकों को ईसाई अमरीका पहुँचा दिया, जहाँ वे धर्मान्तरण कर सकते थे और मृत्यु के बाद स्वर्ग में सुरक्षित किये जा सकते थे; और
3. दासता से मुक्ति का महत्व नहीं था, क्योंकि स्वर्ग में जो पुरस्कार उनकी प्रतीक्षा कर रहे हैं उनकी तुलना में धरती पर जीवन कोई महत्व नहीं रखता।

1700 के दशक के मध्य तक अमरीकी दासों ने पूजा करने के लिए छिपकर मिलना प्रारम्भ कर दिया था, क्योंकि श्वेतों के चर्चों में वे अपने स्वामियों के आगे डरा-दबा महसूस करते थे। उन्होंने ईश्वर की पुनर्व्याख्या प्रेम करने वाले एक पिता के रूप में की, और विश्वास किया कि उसकी प्रार्थना करना उन्हें ठीक उसी प्रकार दासता से मुक्त कर सकता है जैसा कि उसने इजरायल को मिस्त्र की दासता से मुक्त किया था। स्वर्ग का अर्थ वर्तमान शरीर में मुक्ति की एक अवस्था से लिया जाने लगा, और अपने स्वामियों को भ्रम में डालने के लिए दास अपने गीतों में विभिन्न कूट सन्देशों का उपयोग करने लगे, ताकि कोई सन्देह उत्पन्न न हो।

1900 के दशक की शुरुआत में शिक्षित अफ्रीकी अमरीकियों के बीच नयी सुगबुगाहट दिखायी दी, जैसे 'अश्वेत लोगों के धर्मार्थ राष्ट्रीय संघ' (National Association for the Endowment of the Coloured People) की स्थापना, जो नागरिक अधिकार आन्दोलन में एक महत्वपूर्ण भागीदार था, जिसका फल अन्तत: 1960 के दशक में जाकर मिला। अश्वेत मुक्ति के धर्मशास्त्र के अगुवों ने दावा किया कि बाइबल भ्रमरहित और अचूक नहीं है, और वह अक्षरश: माने जाने के लिए नहीं है, और ईसा मसीह ही एकमात्र सच्चे रहस्योद्घाटन थे। इसने उन्हें बाइबल के अनेक

नस्लवादी वक्तव्यों से, जिसमें हैम सम्बन्धी कथा भी शामिल है, सामंजस्य बिठाने के योग्य और इसके बावजूद वे ईसा मसीह के जीवन के उदाहरणों के अनुरूप ईसाइयत को स्वीकार करने के योग्य बनाया।[26] उन्होंने यह शिक्षा देना प्रारम्भ किया कि बाइबल का उपयोग अक्षरश: नहीं, बल्कि ईसा मसीह के जीवन में अर्थ के 'संकेतक' के रूप में किया जाना चाहिए।

अमरीकी अश्वेत शक्ति—ब्लैक पावर—आन्दोलन ने जो 1960 के दशक के मध्य में खड़ा हुआ था, शिक्षित मध्यवर्गीय अश्वेत पादरियों में एक नया धर्मशास्त्र बनाने के प्रति रुचि पैदा की। इसने इस्लाम से आयी चुनौतियों का सामना किया और इसके प्रवक्ता मैल्कम एक्स ने तर्क दिया कि ईसाइयत एक 'दास धर्म' है। अश्वेत मुक्ति का धर्मशास्त्र बाइबल के ढाँचे में मार्क्सवाद को लागू करने के एक ईसाई तरीके के रूप में उभरा। इस धर्मशास्त्र में 'अश्वेत' और 'श्वेत' शब्द चमड़ी के रंग से जुड़े हुए नहीं है, बल्कि मार्क्सवादी वर्गों—दमित और दमनकारी—के समानान्तर शब्द हैं। ये वर्गीकरण चारित्रिक रुझानों को भी वर्गीकृत करते हैं। श्वेत बीमारी और दमन का प्रतीक है, न कि चमड़ी के रंग का, और एक श्वेत-चमड़ी वाला व्यक्ति अश्वेत भी हो सकता है अगर वह सिद्धान्त रूप से दमन का विरोध करता है। अश्वेत मुक्ति का धर्मशास्त्र साक्ष्य के लिए याहवह (बाइबल के ईश्वर) की सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक अन्याय के प्रति चिन्ताओं की ओर देखता है। यही ईश्वर अब दमित अश्वेतों की मुक्ति के लिए कार्यरत है, और चूँकि ईश्वर दमित अश्वेतों की सहायता कर रहा है, उसे 'अश्वेत' माना जा रहा है। ईसा मसीह को भी अश्वेत के रूप में व्याख्यायित किया गया है, और इसलिए वे उन सभी लोगों के लिए सार्वभौमिक मुक्ति के प्रतीक बन गये हैं जो दमित हैं।

ईश्वर का आन्दोलनकारी रूप मुक्ति की प्रेरणा देता है, एक स्वर्गीय अवस्था के रूप में नहीं, बल्कि इसी धरती पर सामाजिक, आर्थिक, और राजनीतिक स्वतन्त्रता के रूप में—एक विचार जो ईसाइयत की तुलना में मार्क्सवाद के अधिक निकट है। स्वयं को मुक्त कराने के लिए अश्वेतों को सक्रिय होना होगा, जिसमें अपरिहार्य स्थिति के आने पर 'कुछ' हिंसा का भी उपयोग शामिल है। यह मानव सक्रियतावाद पर बल देता है, दैवी सहायता पर भरोसे का नहीं। मार्क्सवाद का विवाह ईसाइयत से कर दिया गया है, जिसका आधार यह धर्मशास्त्री दावा है कि बाइबल के ईश्वर और ईसा मसीह ने हमेशा दमित लोगों की सहायता की। अश्वेत मुक्ति का धर्मशास्त्र विभाजनकारी हो सकता है, जैसा कि अग्रणी अश्वेत मुक्ति धर्मशास्त्री जेम्स कोन के मूल सन्देश के निम्नलिखित उद्धरण में दर्शाया गया है :

> अश्वेत धर्मशास्त्र एक ऐसे ईश्वर को मानने से अस्वीकार करता है जिसकी पहचान अश्वेत समुदाय के लक्ष्यों के साथ पूरी तरह नहीं की जाती। अगर ईश्वर हमारे लिए और श्वेत लोगों के विरुद्ध नहीं है, तब वह एक हत्यारा है, और अच्छा होता कि हम उसे मार डालते। अश्वेत धर्मशास्त्र का निर्धारित कार्य है उन ईश्वरों को मार

डालना जो अश्वेत समुदाय के नहीं हैं। ... अश्वेत धर्मशास्त्र केवल ईश्वर के प्रेम को स्वीकार करेगा, जो श्वेत शत्रु के विनाश में भाग लेता है। हमें जिस चीज की आवश्यकता है, वह है दिव्य प्रेम, जिसकी अभिव्यक्ति अश्वेत शक्ति में हुई है, जो कि अश्वेत लोगों की अपने दमनकारियों को नष्ट करने की शक्ति है, यहाँ और अभी किसी भी माध्यम से। जब तक कि ईश्वर इस पवित्र गतिविधि में भाग नहीं लेता तब तक हमें उसके प्रेम को अस्वीकार कर देना चाहिए।[27]

भारत में अश्वेत मुक्ति के धर्मशास्त्र का दुरुपयोग

अश्वेत धर्मशास्त्र का एक ऐतिहासिक कारण है जो दमित अश्वेत अमेरिकियों की आवश्यकताओं का पूरा करता है। ईसाइयत को बाइबल की अक्षरश: व्याख्या से अलग करना एक महान उपलब्धि थी। लेकिन कई प्रकार से यह बाइबल के नस्ली अनुक्रम को केवल उलट देता है और अश्वेतों को ईश्वर के 'सच्चे रूप में' चयनित लोग बनाता है। इन विचारों को भारत निर्यात करना परेशानी-भरा काम है, विशेषकर चूँकि इसे उन संगठनों द्वारा किया जा रहा है जो स्वयं श्रेष्ठतावादी हैं और जिनका विस्तारवादी एजेंडा है।

उदाहरण के लिए, भारत में इस धर्मशास्त्र के प्रचारक श्वेत ईसाई प्रचारकों को भी शामिल करते हैं, जो दोहरे मानदण्ड के साथ सक्रिय हैं : वे अपने घर अमरीका में अश्वेत धर्मशास्त्र से इसलिए भयभीत हैं क्योंकि वह उनकी श्वेत श्रेष्ठता पर खतरा है, फिर भी वे भारत में इसका उपयोग एक बड़े ख़तरे—हिन्दू 'मूर्तिपूजा'—का सामना करने के लिए कर रहे हैं। यह गैर-पश्चिमी लोगों के बीच फूट डालो और राज करो की नीति है, ताकि उनके बीच झगड़ा पैदा किया जा सके। इस तरह की ईसाइयत को अमल में लाना ईमानदारी नहीं है और यह एक विभाजनकारी षडयन्त्र है। भारत में इस धर्मशास्त्र के अन्य पश्चिमी पक्षधर वामपन्थी हैं जो अपने देशों में ईसाई प्रचार और कट्टरतावाद का विरोध करते हैं, लेकिन इसे निर्यात करने की इच्छा रखते हैं।

जहाँ दलितों की निश्चित रूप से वैध शिकायतें हैं जिन्हें दूर किये जाने की आवश्यकता है, वहीं अश्वेत धर्मशास्त्र की मूल भावना को भारतीय दमित वर्ग के लिए सच्चे अर्थ में लागू करने के लिए उनके अपने ही प्राचीन कालजयी ग्रन्थों और स्रोतों, जैसे पुराण, कुरल, शैव सिद्धान्त आदि में ढूँढ़ना होगा, और इस तरह वह कार्य करना होगा जो अश्वेत धर्मशास्त्रियों ने किया है, अर्थात् उनके अपने सामाजिक राजनीतिक सशक्तीकरण के लिए आन्तरिक आध्यात्मिक स्रोतों का उपयोग।

हिन्दू धर्म में ऐसे अन्दर ही पैदा हुए विद्रोहों और 'नये धर्मशास्त्रों' की एक लम्बी परम्परा रही है। श्री रामानुज (पारम्परिक रूप से ईस्वी सन 1017-1137) से लेकर अय्या वैकुन्दर (1808-51) से होते हुए श्री नारायण गुरु (1855-1928) तक ऐसे हिन्दू मुक्ति आन्दोलनों को विशेष रूप से रेखांकित किया जाता है जिनमें नस्ली सिद्धान्त

और मनुष्यों को एक-दूसरे से अलग खानों में बॉटने की प्रवृत्तियाँ अनुपस्थित थीं। इनमें से अन्तिम दो आध्यात्मिक नेताओं को अवतारों की तरह पूज्य माना जाता है, और वे हाशिये पर धकेल दिये गये समाज के दलित वर्ग में पैदा हुए थे। कुछ ही पीढ़ियों के अन्दर इन समूहों ने स्वयं को आर्थिक और सामाजिक रूप से सशक्त भारतीयों के रूप में रूपान्तरित कर लिया, जो इस तथ्य को प्रदर्शित करता है कि दलित जन अन्तर्राष्ट्रीय ईसाई गुटों द्वारा चलाये जा रहे अन्तर्राष्ट्रीय दलित जन आन्दोलनों पर निर्भरता के बदले भारतीय ढाँचे में ही अपने एजेंडे पर काम कर सकते हैं।

अफ्रीकी-दलित और हिन्दुओं के नस्लवादी ईश्वर

अफ्रीकी-दलित विचार अमरीकी अश्वेतों और प्रवासी अफ्रीकियों में फैलने लगा है, साथ ही मुख्य धारा के समाचार माध्यमों में भी। उदाहरण के लिए, डेनवर के एक समाचार-पत्र में छपे लेख में कीनिया के एक शल्य चिकित्सक कोलोराडो में हाल में आये भारतीय सहयोगी को अफ्रीकी-दलित ढाँचे के चश्मे से देखते हैं। उनका आलेख 'नस्ली तनाव का इतिहास' (A History of Racial Tension) चिकित्सा प्रतिष्ठानों में काम कर रहे भारतीयों और अश्वेतों के बीच एक 'स्वाभाविक उदासीनता' की चर्चा करता है, जिसका कारण वे अश्वेतों को 'अछूतों से भी एक स्तर नीचे' मानने की कथित हिन्दू मन:स्थिति बताते हैं :

> हिन्दू विवश हैं। हिन्दू धर्म में मानवता का अस्तित्व एक कड़े कक्ष में है; किसी की जाति कभी नहीं बदलती। ब्राह्मण सबल हैं; निचली जातियाँ दास। अश्वेत अच्छी तरह इस समूह के दायरे में रख दिये जाते हैं।[28]

वे हिन्दू देवताओं पर दोषारोपण करते हैं, 'जो बड़ी संख्या में अपनी सन्तानों को दासता और बँधुआ बनाने के लिए झोंक देते हैं' और उन्हें 'सन्देहास्पद और घृणित' पाते हैं। साथ ही वे ईसाइयत को मुक्तिकारक प्रभाव के रूप में देखते हैं जो 'हिन्दू मानस को इसकी मजबूत जंजीरों से मुक्त करता है, हठधर्मिता के कस कर बँधे तन्तुओं को खोलता है'। उनके लिए, युगाण्डा के तानाशाह ईदी अमीन द्वारा 1972 में भारतीय समुदाय का निष्कासन 'निराशा, क्रोध और ईर्ष्या की' एक वैध अभिव्यक्ति थी 'जिसे अनेक युगाण्डावासियों ने अनुभव किया था'।[29]

इसके खण्डन में एक अन्य कोलोराडो निवासी मोहन अष्टकला ने ध्यान दिलाया कि भारतीयों के विरुद्ध पूर्वाग्रह एक औपनिवेशिक सामाजिक प्रयोग का परिणाम था जिसमें अंग्रेजों के अफ्रीकी उपनिवेशों में भारतीयों का आयात प्रशासकों के रूप में किया गया था, ताकि 'विश्व भर में भारतीय ही औपनिवेशिक प्रशासन का चेहरा बन जायें, और कई प्रकार से, उन्होंने दमन के विरुद्ध क्रोध को झेला, जबकि अन्याय करने वाले वास्तविक लोग—यूरोपीय उपनिवेशवादी—हल्के आरोपों से ही बच निकले'।[30]

पश्चिमी सरकार—चर्च गठजोड़ द्वारा अफ्रीको-द्रविड़-दलित को प्रभावित करना

भारत में ईसाई मिशनरी साहित्य बाइबल के हैम मिथक पर आधारित नस्ली घृणा से भरा पड़ा है, और यह द्रविड़ नस्ल सिद्धान्त के लिए एक ढाँचे के रूप में काम देता है। उदाहरण के लिए, एक लोकप्रिय ईसाई प्रचार पुस्तक में, जो हर प्रकार के मुख्य धारा के चर्च अधिकारियों द्वारा अनुमोदित है, आर्य आक्रमण की कथा का एक उलझा हुआ संस्करण है :

> सिंधु घाटी सभ्यता सबसे पुरानी, सबसे उत्कृष्ट, और द्रविड़ों की आश्चर्यजनक ढंग से विकसित शहरी सभ्यताओं में से एक है। ... ईसा पूर्व छठी शताब्दी और ईसा बाद चौथी शताब्दी के बीच गोरी चमड़ी वाले विदेशियों जैसे पारसी (ईसा पूर्व छठी शताब्दी), यूनानी (ईसा पूर्व चौथी शताब्दी), कुशान (ईसा बाद पहली शताब्दी) और हूण (ईसा बाद चौथी शताब्दी) ने भारत पर आक्रमण किया। इस अवधि में गोरी चमड़ी वाले रोमन भी व्यापार के लिए भारत आये। काली चमड़ी वाले मूल निवासी द्रविड़ भारतीयों ने विदेशियों के इन छै समूहों को एक साथ 'आर्य' कहा इस अर्थ में कि वे आक्रमणकारी विदेशी थे। ...[31]

किस प्रकार आर्यों ने द्रविड़ों के जीवन, धर्म, और संस्कृति के, जिनमें सभी प्रमुख विश्व धर्म शामिल हैं जिन्हें द्रविड़ों द्वारा स्थापित किया माना गया था, सभी सकारात्मक पक्षों को हथिया लिया इसकी व्याख्या करने के बाद, यह पुस्तक बल देकर कहती है :

> ...द्रविड़ों और सुमेरों की सभ्यता लगभग एक जैसी है। इस प्रकार अब्राहम को, जिनकी सभ्यता द्रविड़ थी, द्रविड़ कहा जा सकता है। ईसा मसीह भी, जो अब्राहम के वंशज हैं, इस प्रकार द्रविड़ हैं। तमिल साहित्य में नूह को 'द्रविड़पति' कहा जाता है। फादर हेरास सिंधु घाटी के द्रविड़ों को नूह के पुत्र हैम के वंशज मानते हैं।[32]

ईसा मसीह का ऐसा चित्रण कि वे किसी खास नस्ल के थे, ईसाई राजनीतिक इतिहास में कोई नयी बात नहीं है। नाजियों के लिए ईसा मसीह एक आर्य नायक थे जिन्हें यहूदियों द्वारा सलीब पर लटका दिया गया था।

चेन्नई में 2001 में द्रविड़ आध्यात्मिक जागरण विषय पर आयोजित एक सम्मेलन में यह घोषित किया गया : 'हिन्दू कोई धर्म नहीं है, बल्कि आर्यों के जीवन का एक तरीका भर है, और इसलिए द्रविड़ भारतीयों को अब से अपने धर्म को द्रविड़ धर्म के रूप में घोषित करना चाहिए'। यह घोषणा करने वालों में 'दलित वॉयस' (Dalit Voice) नामक पत्रिका के सम्पादक राजशेखर भी शामिल थे।[33] सन 2005 में राजशेखर ने केरल की एक चर्च को बताया : 'हिन्दू धर्म हमारा शत्रु है। हम इसके शिकार हैं। लेकिन ईसाइयत एक मुक्तिदाता धर्म है'।[34]

दलित वॉयस चर्च के इस रुख का समर्थन करती है कि द्रविड़ और दलित अश्वेत प्रजाति के हैं और अफ्रीकियों से जुड़े हुए हैं, और यह परिवर्तनवादी अश्वेत श्रेष्ठतावादियों से सहयोग हासिल करती है।[35] दलित वॉयस सामीवाद का विरोध करती है और उन सिद्धान्तों को बढ़ावा देती है जो ब्राह्मणवादी-ज़ायनिस्ट (Brahminical-Zionist) षडयन्त्रों का भण्डाफोड़ करते हैं और जिनका उद्देश्य विश्व पर दबदबा कायम करना और अफ्रीका तथा भारत में अश्वेतों का दमन है। यह दावा करती है कि संयुक्त राज्य अमरीका की 9/11 की त्रासदी ज़ायनिस्ट षडयन्त्र था।[36] यह चीन को सतर्क करती है कि लोकतन्त्र एक ज़ायनिस्ट षडयन्त्र है।[37] यह हिटलर की प्रशंसा करती है और मीन काम्फ (Mein Kampf) को दर्शनशास्त्र की एक महान पुस्तक के रूप में वर्णित करती है, यह दावा करते हुए कि हिटलर ने 'अन्तर्राष्ट्रीय यहूदीवाद के विरुद्ध संघर्ष किया जिसने इस सम्पूर्ण पृथ्वी पर दबदबा और नियन्त्रण बनाने के लिए योजना बना ली थी, प्रत्यक्ष रूप से नहीं, बल्कि अपनी कठपुतलियों के माध्यम से। और उनकी अद्‌भुत रणनीतियों ने स्वयं अमरीका को अपनी सबसे बड़ी कठपुतली में बदल दिया है'।[38] दलित वॉयस दावा करती है कि ब्राह्मण नस्ल यहूदी मूल की थी।[39]

दलित वॉयस अफ्रीका केन्द्रित बलों, भारतीय दलित आन्दोलनकारियों, द्रविड़ अलगाववादियों और ईसाई प्रचारकों के बीच गठजोड़ का ही प्रतिनिधित्व करती है। ईसाई भारत सरकार पर राजनीतिक बढ़त हासिल करने के लिए दलित मुद्दे का उपयोग करते हैं। उदाहरण के लिए, लन्दन में सन 2000 में आयोजित अन्तर्राष्ट्रीय दलित मानवाधिकार सम्मेलन में ईसाई सहायता के लिए एशिया टीम के प्रमुख ने एक शोध पत्र यह अनुशंसा करते हुए प्रस्तुत किया कि जो सरकारें भारत को आर्थिक सहायता देती हैं उनको पश्चिम में काम कर रहे मिशनरी दलित समूहों से सम्पर्क करना चाहिए और उनकी सलाह के अनुसार ही कदम उठाने चाहिए।[40] यह हमें एक औपनिवेशिक काल का स्मरण कराता है जब अच्छी तरह वित्तपोषित वैश्विक मिशनरी प्रतिष्ठान ने भारत के दबे-कुचले लोगों को सहायता देने के आधार पर भारत पर अपनी मजबूत पकड़ हासिल कर ली थी।

जेनेवा में इंटरनेशनल दलित सोलिडैरिटी नेटवर्क (आई.डी.एस.एन.) के संयोजक पीटर प्रोव,[41] ने प्रसन्नतापूर्वक घोषणा की : 'देश में वंशानुगत आधार पर भेदभाव के बने रहने की स्थिति में अन्तर्राष्ट्रीय मंचों पर भारत सरकार को शर्मिन्दगी में डाला जा सकता है, क्योंकि संयुक्त राष्ट्र ने मान लिया है कि दलित होने का मतलब क्या है'।[42]

अमरीका स्थित एक शिक्षाविद और प्रमुख वामपन्थी सक्रियतावादी, विजय प्रसाद ने राजशेखर और अफ्रीकी-दलित आन्दोलन का अनुमोदन किया है, और इस प्रकार प्रकारान्तर से नस्लवाद से मुकाबले के एक तरीके के रूप में नस्लवाद को ही उचित ठहराया है। वे लिमुरियन सिद्धान्त को अनुमोदित करते हुए लगते हैं कि 'भारत और अफ्रीका एक ही भूखण्ड था', जिसने उन्हें निम्न निष्कर्ष निकालने तक पहुँचा

दिया : 'इसलिए अफ्रीकियों और भारतीय अछूतों तथा आदिवासियों के पूर्वज एक ही थे'। वे इस बात की ओर भी ध्यान दिलाते हैं कि दलित 'शारीरिक संरचना में अफ्रीकियों से मिलते-जुलते हैं'।[43] शिक्षा विदों में प्रसाद अकेले नहीं हैं जिन्होंने इन दृष्टिकोणों को अपनाया है।[44] पश्चिमी देशों की राजधानियों से शैक्षणिक और राजनीतिक समर्थन के अलावा इस आन्दोलन को समाचार माध्यमों का भी समर्थन प्राप्त है।[45]

एक नस्लवादी महाकाव्य के रूप में रामायण की व्याख्या

इस बीच अफ्रीकियों-दलितों द्वारा अन्य भारतीयों के विरुद्ध घृणा आधारित सिद्धान्तों को फैलाने के लिए औपनिवेशिक काल की हिन्दू धर्म की व्याख्याओं को प्रचारित किया जा रहा है। रामायण को जिस प्रकार नस्ली व्याख्याओं के माध्यम से विकृत किया गया है उसमें अनेक सूत्र आ मिले हैं, जो दक्षिण भारत और श्रीलंका में जातीय संघर्ष को चालू रखते हैं।

जहाँ पश्चिम के देशों ने यूरोपीय जन समुदाय के बीच नस्ल आधारित विचारविमर्श की त्वरित निन्दा की है, उसने अफ्रीका और एशियाई देशों, विशेषकर भारत से सम्बद्ध विकृत नस्लवादी व्याख्याओं को बनाये रखा है। उदाहरण के लिए, अस्वीकार कर दी गयी आर्य आक्रमण की धारणा (Aryan Invasion Theory) का उपयोग हिन्दू धर्मग्रन्थों और महाकाव्यों की व्याख्या करने में अब भी किया जा रहा है। पश्चिमी शिक्षक शैक्षणिक उपकरण के रूप में ऐसी व्याख्याओं का उपयोग करने में थोड़ा भी नहीं झिझकते। उदाहरण के लिए, www.historyforkids.org, एक शैक्षणिक वेबसाइट, बच्चों के लिए रामायण पर आधारित निम्न गतिविधियों का सुझाव देती है :

> रामायण आंशिक रूप से आर्यों के लिए एक रूपक है, जो दक्षिण भारत के लोगों पर आक्रमण करने का प्रयास कर रहे थे। यह एक आर्य कथा है, और वे दक्षिण भारत के लोगों को मानव भी नहीं, बल्कि बुरे बन्दरों की तरह दिखाते हैं। हमें इसके बारे में कैसा महसूस करना चाहिए? क्या हमें इस रामलीला को नहीं करना चाहिए? क्या हमें यह दिखाने का प्रयास करना चाहिए कि हनुमान और अन्य बन्दर भी मानव ही थे? हम दक्षिण भारतीय दृष्टिकोण से इसे फिर से किस प्रकार लिख सकते हैं?[46]

जब भारतीय विद्वानों ने पोर्टलैंड स्टेट यूनिवर्सिटी में इतिहास की सह-प्राध्यापिका हैं और इस वेबसाइट को चलाने वाली डॉ. कैरेनकार का ध्यान इस ओर आकर्षित किया कि रामायण की ऐसी व्याख्या गलत थी, तो उन्होंने यह कहते हुए उत्तर दिया कि हालाँकि वे भारतीय इतिहास की विशेषज्ञ नहीं हैं, इसलिए भारतीय महाकाव्यों पर स्वयं भारतीयों के दृष्टिकोण के विरुद्ध वह भारतीय इतिहास और संस्कृति की व्याख्या करने वाले पश्चिमी विद्वानों पर ही भरोसा करेंगी।[47] रामायण के बन्दरों को दक्षिण भारतीयों के रूप में चिह्नत करने के विचार का उपयोग अंग्रेज औपनिवेशक

प्रशासकों द्वारा नैतिक रूप से श्रेष्ठ होने के नाते भारत में अपनी उपस्थिति को उचित ठहराने के लिए किया गया था। उदाहरण के लिए, 1886 में मद्रास विश्वविद्यालय के स्नातकों को अपने सम्बोधन में राज्यपाल माउण्टस्टुआर्ट एल्फ़िस्टन ग्रांट-डफ ने रामायण का उल्लेख निम्न प्रकार से किया था :

> संस्कृत साहित्य को लगातार आगे रखने से, मानो यह बढ़-चढ़कर भारतीय ही हो, आपमें से कुछ तमिल, तेलुगू, और कन्नड़ भाषियों में राष्ट्रीय गौरव की भावना आयी होगी। हम अंग्रेज़ों की तुलना में आपको संस्कृत से कम ही लेना-देना है। उजड्ड यूरोपीय लोग बीच-बीच में भारत के मूल निवासियों को 'निगर' कहने वालों के रूप में जाने जाते हैं, लेकिन गर्वीले संस्कृत भाषियों और लेखकों की तरह उन्होंने दक्षिण के लोगों को वानर सेना नहीं कहा।[48]

पश्चिम के लोग अब भी इस बात की उपेक्षा करते हैं कि स्वयं तमिलों में रामायण की एक सम्पन्न परम्परा है जिसे उनके ही महान कवि कंबन द्वारा उनकी अपनी ही भाषा में लिपिबद्ध किया गया है। उपर्युक्त वेबसाइट (www.historyforkids.org) की रामायण की व्याख्या स्वयं औपनिवेशिक काल के ब्राह्मण विरोधी उत्साहियों और नस्लवादियों की व्याख्या पर आधारित है। इस व्याख्या का अनेक पश्चिमी विद्वानों द्वारा खण्डन किया गया है, जिनमें अनेक वे हैं जो अन्य मामलों में द्रविड़ पहचान के सिद्धान्त को मानते हैं। उदाहरण के लिए, कैलिफोर्निया विश्वविद्यालय, बर्कले में तमिल के प्राध्यापक जॉर्ज हार्ट जो संस्कृत में पी-एच.डी. भी कर चुके हैं, लिखते हैं :

> दुर्भाग्य से, एक संक्षिप्त अवधि के लिए इस महाकाव्य को सांस्कृतिक रूप से—आर्य बनाम द्रविड़—पढ़ना प्रचलित हो गया। यह, मेरे विचार में, इस महाकाव्य की मौलिक परिकल्पना को ही गलत ढंग से पढ़ना है, जो है : जीवन के दो दृष्टिकोणों के बीच विरोध, एक राम के रूप में और दूसरा रावण के रूप में प्रतीक बनाकर। कम्बन को जिसने इतना महान बनाया वह दोनों दृष्टिकोणों की अत्यन्त विश्वसनीय और सुन्दर ढंग से उनकी प्रस्तुति थी—रावण सबसे बड़ा राजा था और इस तरह से इस विश्व का प्रतीक, और राम दूसरे आयाम के प्रतीक। और यह न भूलें, रावण ब्राह्मण था।[49]

साउथ इण्डियन सोशल हिस्टरी रिसर्च इंस्टीटयूट (SISHRI), चेन्नई के इतिहासकार और पुरालेखवेत्ता एस. रामचन्द्रन एक आर्य नस्ल के रूप में राम का चित्रण करने में तथ्यात्मक भूल की ओर ध्यान दिलाते हैं।[50] ऐसे प्रत्याख्यानों के बाद भी, राष्ट्रवादी सिंहली रावण को एक मूल निवासी सिंहली राजा मानते हैं और नस्ली गर्व का एक प्रतीक, जबकि राम को एक भारतीय आक्रमणकारी जिन्हें अस्वीकार कर दिया जाना चाहिए।[51] तमिल श्रेष्ठतावादी और साथ ही श्रीलंका के अलगाववादी रामायण की अपनी-अपनी नस्ली व्याख्याओं का उपयोग करते हुए इस घृणा के भाव को समान रूप से अपने में सँजोये रखते हैं। लिट्टे के आधिकारिक रेडियो, 'द वॉय ऑफ टाइगर्स' (The Voice of Tigers) ने एक नाटक 'सॉयल ऑफ लंका' का

प्रसारण किया था, जिसमें राम को एक आर्य आक्रमणकारी के रूप में दिखाया गया था जो नस्ल के रूप में आज के सिंहलियों से सम्बन्धित थे, और रावण को वैभवशाली मूल निवासी द्रविड़ सम्राट के रूप में चित्रित किया गया था जिनसे आर्यों ने धूर्ततापूर्वक सत्ता हथिया ली थी। इस नाटक की प्रशंसा में लिखे सन्देश में लिट्टे के दिवंगत नेता प्रभाकरण ने लिखा था कि आज के संघर्ष को उन्हीं घटनाक्रमों की निरन्तरता के रूप में दिखाया गया था।[52]

13
भारत : एक नवसंरक्षणवादी मोर्चा[1]

यह और इसके बाद का अध्याय बताता है कि ईसाई दक्षिणपन्थी और पन्थ निरपेक्ष वामपन्थी किस प्रकार भारत का 'एक अंधकार के क्षेत्र' के रूप में चित्रण करने में एकजुट हो जाते हैं। चाहे वे बाइबल के चश्मे का उपयोग करें या पन्थ निरपेक्ष मानवतावादी चश्मे का, वे एक अस्त-व्यस्त और दमनकारी जंगली मोर्चे की छवि पर एक हो जाते हैं, जिसे तत्काल ही संयुक्त राज्य अमरीका के हस्तक्षेप की आवश्यकता है। यह अध्याय उन संगठनों का वर्णन करता है जो बाइबल के चश्मे का उपयोग कर रहे हैं, जबकि उनके उदारवादी पन्थ निरपेक्ष समकक्षों पर अगले अध्याय में चर्चा की जायेगी।

चित्र 13.1 संयुक्त राज्य अमरीका में दक्षिणपन्थी विचार-मंचों के एक नेटवर्क को प्रदर्शित करता है जो नीति निर्धारण के स्तर पर प्रभावशाली हैं। वे उत्पीड़न साहित्य एकत्रित करने के लिए भारत पर निगरानी रखते हैं ताकि वे भारतीय समाज के नकारात्मक दृष्टिकोण को और सबल बना सकें, समाचार माध्यमों को बुलाकर भारत के विरुद्ध प्रचार कर सकें और भारत विरोधी तर्कों को प्रोत्साहित कर सकें। वे संयुक्त राज्य अमरीका द्वारा यहूदी-ईसाई हितों के दृष्टिकोण से भारतीय मामलों में हस्तक्षेप के लिए तर्क देते हैं। मानवाधिकार की आड़ में संयुक्त राज्य अमरीका में दलित आन्दोलन वास्तव में ईसाई दक्षिणपन्थी घुसपैठ का एक मोर्चा है। भारत में जितनी भी बुराइयाँ हैं उनकी व्याख्या हिन्दू धर्म में अन्तर्निहित बुरी प्रवृत्तियों के आधार पर की जाती हैं, और ईसाई धर्मान्तरण को अंधकारमय मूर्तिपूजकों के तन्त्र द्वारा उत्पीड़ित मानवता के लिए मुक्ति लाने वाले की तरह दिखाया जाता है।

विकासशील देशों में अधिकांश ईसाई प्रचारक मिशनों को पश्चिम की सरकारों द्वारा उनकी सभ्यता के ध्वजवाहकों के रूप में देखा जाता है, और तीसरे विश्व के समुदायों को पश्चिम के प्रति निष्ठावान बनाने के लिए एक निवेश के रूप में—दूसरे शब्दों में, उपनिवेशवाद के एक सौम्य रूप में। ईसाई प्रचारक संगठनों के लिए, भारत सबसे अच्छी फसल काटने का मैदान उपलब्ध कराता है जहाँ प्रभाव में सहजता से आ जाने वाली आत्माओं को नियन्त्रित किया जा सकता है जिन्हें एक जगह हाँका जा सकता है। यद्यपि एक शताब्दी से भी अधिक समय से ईसाई प्रचार पश्चिम की विदेश नीति का एक अंग रहा है, शीत युद्ध काल में यह नाटकीय रूप से विस्तारित हुआ है, और अब वैश्वीकरण के युग में ईसाई प्रचार बहुराष्ट्रीय उद्यमों के रूप में काम कर रहा है।

Fig 13.1 भारत में अमरीकी हस्तक्षेप के लिए जमीन की तैयारी
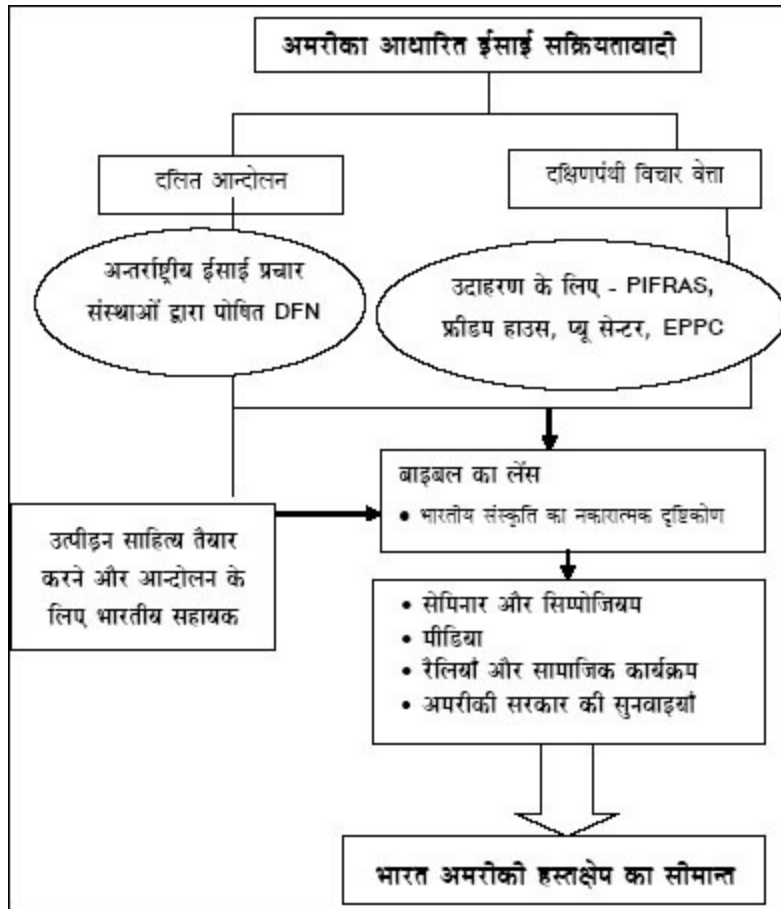
हिन्दुओं के धर्मान्तरण के लिए बहुराष्ट्रीय निगम

1966 में एक प्रमुख घटना घटी जब 'बिली ग्रेहम इवैंजेलिस्टिक असोसिएशन' (Billy Graham Evangelistic Association) ने अमरीका की 'क्रिश्चियैनिटी टुडे' (Christianity Today) पत्रिका के साथ साझेदारी में बर्लिन में ईसाई धर्मान्तरण पर एक विश्व कांग्रेस प्रायोजित की। इस अवसर पर वहाँ विश्व के 100 से अधिक देशों से 1200 प्रतिनिधि पहुँचे। इसी कड़ी में 1974 में स्विस आल्प्स के शहर लॉजैन में रणनीतिगत चर्चा के लिए दस दिनों का आयोजन किया गया जिसमें 150 से अधिक राष्ट्रों से 2700 प्रतिभागी एकत्रित हुए। 'टाइम' पत्रिका ने इस लॉजैन कांग्रेस का वर्णन 'एक दुर्जेय मंच, सम्भवत: अब तक की ईसाइयों की सर्वाधिक विस्तार वाली बड़ी सभा' के रूप में किया।[2] उससे योजना की जो रूपरेखा उभरकर आयी उसे लॉजैन ऑकेजनल पेपर्स कहा गया, और उसे 'ऐतिहासिक महत्वपूर्ण अभिलेख' के रूप में वर्णित किया गया 'जो व्यापक रूप से जाने-माने ईसाई प्रचारक नेताओं के साथ वैश्विक विचार-विमर्श में उभरकर आया है'।[3] उसके बाद विश्व के विभिन्न भागों में लोगों को इकट्ठा किया गया ताकि एक ईसाई विश्व का सृजन किया जा सके, या वह जिसे लेखक प्रदीप निनियन टॉमस 'ईसाई उम्मत' कहते हैं।[4]

लक्ष्य के रूप में हिन्दुओं के विश्लेषण के लिए एक विशेष कार्यबल का गठन किया गया, और उन्हें आने वाले कुछ दशकों में धर्मान्तरित करने के लिए रणनीतियाँ बनायी गयीं। इस कार्यबल की बैठक 1980 में थाईलैंड में हुई, और इसकी रपट को ईसाई प्रचारकों के बीच 'द थाइलैण्ड रिपोर्ट ऑन हिन्दूज' (The Thailand Report on Hindus) के नाम से जाना जाता है।[5] रपट ने हिन्दुओं को विभिन्न लक्षित भागों में वर्गीकृत किया, प्रत्येक भाग जिन विषयों का सामना कर रहा है उसकी व्याख्या इस आधार पर की कि वे कौन-से आधार हैं जो उन्हें धर्मान्तरण के लिए निशाना बनाते हैं; रपट ने उनकी पहचान भी की जिनकी ओर से धर्मान्तरण का प्रतिरोध सामने आयेगा। यह रणनीतिगत योजना कॉरपोरेट मार्केटिंग नजरिये का उपयोग करते हुए बनायी गयी जिसे स्वोट (SWOT) विश्लेषण के रूप में जाना जाता है (यानी शक्तियों, कमजोरियों, अवसर और खतरे का विश्लेषण)। रपट हिन्दू समाज के प्रभाव में आ जाने की सम्भावना वाले वर्गों की पहचान करती है। उदाहरण के लिए, 'अर्बन इवैंजेलिज़्म' (Urban Evangelism) वाला भाग यह कहता है कि 'हिन्दुओं की निम्न श्रेणियाँ ईसा मसीह के प्रति खुले मन वाली हैं : झोपड़पट्टियों में रहने वाले लोग; स्कूलों और विश्वविद्यालयों में जाने वाले युवा; बेरोजगार युवा जो बेसब्री से नौकरी खोज रहे हैं'। 'स्टूडेंट इवैंजेलिज़्म' (Student Evangelism) वाले भाग में यह निम्न सम्भावित प्रभावक्षेत्र का उल्लेख करता है जिनका दोहन ईसा मसीह के नाम पर किया जाना है :

> एक पारम्परिक हिन्दू घर से आया हुआ विद्यार्थी ईसाई सुसमाचार के प्रति खुले दिमाग का प्रतीत होता है, क्योंकि महाविद्यालयों/विश्वविद्यालयों के पन्थ निरपेक्ष वातावरण में रहते हुए उसकी धार्मिकता टूट चुकी होती है। ग्रामीण पृष्ठभूमि से पढ़ने के लिए शहर में आने वाले विद्यार्थी अकेलेपन से ग्रस्त होते हैं, और ईसाई मित्रता के माध्यम से ईसाई प्रभाव के प्रति खुले होते हैं। अन्य भाषाई क्षेत्रों से आकर अनजान भाषा क्षेत्र में पढ़ रहे विद्यार्थी ईसाई युवाओं से मित्रता के लिए खुले होते हैं (उदाहरण के लिए, हैदराबाद के किसी इंजीनियरी/ मेडिकल/ तकनीकी महाविद्यालय में पढ़ने वाला बंगाली उत्तर भारतीय)। अन्तर्राष्ट्रीय विद्यार्थी एक अन्य समूह हैं जो नये प्रभावों के प्रति खुले हैं (उदाहरण के लिए, भारत में मलेशियाई, ईरानी, और अफ्रीकी विद्यार्थी)।[6]

विद्यार्थियों के धर्मान्तरण के लिए बनायी गयी रणनीतियों में ऐसे कार्यक्रम शामिल हैं :

- ईसाई विद्यार्थियों को हिन्दू विद्यार्थियों से गहरी मित्रता विकसित करने का प्रशिक्षण दें
- हिन्दू विद्यार्थियों के लिए विशेष बाइबल अध्ययन का कार्यक्रम चलायें
- जब विद्यार्थियों को सचमुच आवश्यकता हो तो उनकी आर्थिक सहायता करें

'सामाजिक चिन्ताओं के लिए रणनीति' मिशनरियों को सचेत करती है कि 'सरकार या जनता के लिए सन्देह का कोई स्थान न छोड़ें'। रपट ईसाई प्रचारकों को निर्देश देती है कि जब भी सम्भव हो, उन्हें समाज सेवा को ईसाई धर्मान्तरण से जोड़ना चाहिए, सामाजिक कार्यकर्ता को यह ध्यान दिलाते हुए कि 'समाज सेवा के लिए स्थानीय चर्च की दीर्घावधि योजना और बजट निर्माण में उनके आस-पास रहने वाले गैर-ईसाई समुदायों के धर्मान्तरण की प्राथमिकता झलकनी चाहिए'। यह रपट एक समिति द्वारा तैयार की गयी थी जिसकी अध्यक्षता इवैंजेलिकल फेलोशिप ऑफ़ इण्डिया ने की थी, और जिसमें अन्य अन्तर्राष्ट्रीय चर्च समूहों के अलावा वर्ल्ड विजन के अधिकारी भी शामिल थे।[7]

भारत की शक्तियों की पहचान धर्मान्तरण के लिए और अवरोधक के रूप में

सन 2000 में 'द थियोलॉजी स्ट्रैटेजी वर्किंग ग्रुप' (The Theology Strategy Working Group) और 'लॉजैन कमेटी फॉर वर्ल्ड इवैंजेलाइजेशन' (Lausanne Committee for World Evangelization) की तरह 'द इंटरसेसरी वर्किंग ग्रुप' (The Intercessory Working Group) ने छह प्रमुख रणनीतियों के लिए एक कार्यशाला का आयोजन किया, जिन्हें उन्होंने 'आध्यात्मिक संघर्ष आध्यात्मिक युद्ध' कहा। उद्देश्य था 'शत्रु' की पहचान के लिए बाइबल के ढाँचे का उपयोग, वह किस प्रकार कार्य करता है, और किस प्रकार ईसाई प्रचारक संगठन 'सर्वाधिक प्रभावशाली ढंग से सभी लोगों के धर्मान्तरण के लिए' इस शत्रु का मुकाबला कर सकते हैं।[8] तमिलनाडु के एक मिशनरी ने, जिन्होंने उस सम्मेलन में भाग लिया था, आगे बढ़कर अपने वेबसाइट में यह भी दावा किया कि ईसा मसीह ने उन्हें 'मेरे लिए एक सेना खड़ी करने' का आदेश दिया था, और यह कि उन्होंने गोष्ठियों और शिविरों के माध्यम से '16000 से अधिक उत्साही प्रशासक (मिनिस्टर्स ऑफ़ द चर्च)' खड़े कर दिये थे।[9] 'भारतीय सन्दर्भों में आध्यात्मिक संघर्ष' (Spiritual Conflict in the Indian Context) शीर्षक के अपने शोध पत्र में उन्होंने भारत की अखण्डता की पहचान ईसाइयत के लिए एक प्रमुख अवरोधक के रूप में की :

> परन्तु भारतीय होने की भावना एक जोड़कर रखने वाला कारक है जिसने देश को पूरी तरह जोड़कर एक बना दिया है। आज, 'अनेकता में एकता' का प्रदर्शन करते हुए भारत एक ही इकाई का चित्रण करता है। **जो भारत का गुण माना जाता है, वही दुर्भाग्यवश धर्मान्तरण के लिए बाधा है**।[10]

विदेशी चर्चों द्वारा उपलब्ध कराये जाने वाली सुविधाओं—जैसे अन्तर्राष्ट्रीय यात्राएँ, अध्यवसायिक अवसर—और सम्मान के बदले अनेक भारतीय जो ऐसी सभाओं की गतिविधियों में शामिल रहते हैं वही कुछ बोलते हैं जो पश्चिमी धन के स्रोत सुनना चाहते हैं। आश्चर्य नहीं कि भारतीय ईसाई प्रचारकों द्वारा तैयार किया गया उपर्युक्त शोध पत्र आगे बढ़कर दावा करता है कि 'प्राचीन तमिल साहित्य किसी भी

मूर्ति या मूर्तिपूजा का उल्लेख नहीं करता', और भारत में मूर्तियों की परम्परा आर्यों ने प्रारम्भ की। 'जो लोग स्वयं को मूर्ति पूजन में समर्पित कर देते हैं वे वास्तव में मूर्ख लोग हैं, वे स्वयं के बुद्धिमान होने का दावा करते हैं। ईश्वर ने कहा कि वह उन्हें अधम वासनाओं को सौंप देंगे। यह बताता है कि किस तरह भारत के लोग, मूर्ति पूजक, पथभ्रष्ट किये गये और तरह-तरह की अधम वासनाओं को समर्पित कर दिये गये'। गरीबी, महामारियाँ और प्राकृतिक आपदाएँ—सभी को भारत पर ईश्वर के अभिशाप के रूप में व्याख्यायित किया गया जो मूर्तिपूजा के कारण दिया गया। उदाहरण के लिए, शोध पत्र एक प्रमुख भूकम्प को गणपति पूजा का उत्सव मनाने पर ईश्वर के कोप के रूप में व्याख्यायित करता है। दक्षिण भारत में प्रचलित शिवलिंग की पूजा और साथ ही अय्यपन की पूजा को 'नैतिक और यौन विकृतियों' के उदाहरण के रूप में उद्धृत किया गया, जो 'हिन्दू धर्म में काफी संख्या में हैं'।[11]

ईसाई प्रचार के हथियार के रूप में विकास

जैसे ही परिपक्वता बढ़ी और भारत आधारित विशेषज्ञता हुई, इस अभियान ने विकास की भाषा को ईसाई धर्मान्तरण के लिए समो लिया। ईसाई प्रचारक विद्वान एडगर जे. एलिस्टन स्पष्ट करते हैं :

> विश्व के धर्मान्तरण पर 1963 में हुई बर्लिन कांग्रेस के प्रारम्भ हुए और लॉजैन अभियान और सन 2000 के आन्दोलन की असंख्य बैठकों से होते हुए और साथ ही एशियाई, अफ्रीकी और लैटिन अमरीका के विकास के अगुवों द्वारा किये जा रहे शोधों में सन्दर्भीकृत सन्तुलन पर अत्यधिक ध्यान केन्द्रित किया गया है। ईसाई प्रचारकों को अब 'इवैंजेलिज़्म' या 'विकास' के बीच निश्चित रूप से चयन नहीं करना चाहिए, बल्कि उन्हें उन तरीकों की खोज करनी चाहिए जो विषयों को स्थानीय परिस्थिति में समुचित रूप से सन्तुलित कर सकें।[12]

ईसाई प्रचारक 'विकास' शब्द का उपयोग उस प्रकार करते हैं जो पन्थ निरपेक्ष अर्थ से भिन्न होते हैं। 2001 में यूनेस्को की ओर से 'सांस्कृतिक बहुलता पर सार्वभौमिक घोषणा' (The Universal Declaration on Cultural Diversity, UNESCO 2001) विकास की व्याख्या यह कहते हुए करती है कि सांस्कृतिक विविधता 'मानव के लिए आवश्यक है जिस प्रकार प्रकृति के लिए जैव विविधता' और यह घोषणा 'अधिक सन्तोषजनक बौद्धिक, भावनात्मक, नैतिक और आध्यात्मिक अस्तित्व प्राप्त करने' के महत्व पर बल देती है। जो भी हो, ईसाई प्रचारक विकास सभी प्रकार की धार्मिकताओं को ध्वस्त कर एक समान एकेश्वरवाद में बदल कर आध्यात्मिक विविधता को नष्ट करने का लक्ष्य रखता है। **एलिस्टन रणनीति को स्पष्ट करते हैं : 'विकास एक प्रक्रिया है जिसके तहत पुरुष और स्त्रियाँ जीवित रूप में व्याप्त ईश्वर के साथ ईसा मसीह में विश्वास के माध्यम से एक निष्ठावान सम्बन्ध में पिरोये जाते**।[13]

लॉजैन अभियान वर्ल्ड विजन जैसे समूहों के साथ सहयोग करता है जिन्होंने संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम (यू.एन.डी.पी.) जैसी पन्थ निरपेक्ष विकास एजेंसियों में घुसपैठ कर ली है, ताकि किसी को सन्देह हुए बिना ही वे आसान पहुँच स्थापित कर सकें। वर्ल्ड विजन इंटरनेशनल में डेवलपमेंट एण्ड फूड रिसोर्सेज के उपाध्यक्ष ब्रायन्ट मेयर्स अपनी स्थिति के समर्थन में एक अन्य ईसाई प्रचारक विद्वान को उद्धृत करते हैं कि 'भले समेरियावासी की सेवा वाले तत्व को कभी-कभी ईसाई धर्मान्तरण पर कालानुक्रम रूप से प्राथमिकता दी जाती है, चर्च का मिशन तब तक पूरा नहीं होता जब तक कि हम मेल-मिलाप करने और पाप से मुक्ति के सन्देश की घोषणा नहीं करते'।[14]

आर्थिक रूप से गरीब समाज में ईसाई प्रचारक विकास की ऐसी गतिविधियाँ चर्च तथा चर्च-नियन्त्रित संस्थानों के हाथों व्यापक शक्ति छोड़ते हुए बड़ी उथल-पुथल मचा सकती हैं। रवाण्डा जनसंहार में ईसाइयत की भूमिका का अध्ययन कर टिमोथी लौंगमैन ने देखा कि इस तरह के ईसाई धर्मान्तरण आधारित विकास ने किस तरह चर्चों को वही निरंकुश शक्तियाँ प्रदान कीं जो उसे मध्यकालीन यूरोप में हासिल थीं :

> चर्च के पादरी के पास व्यापक शक्तियाँ थीं, क्योंकि उनमें नौकरी में रखने और निकाल देने, सहायता वितरित करने और यह निर्धारित करने कि किन का बपतिस्मा किया जा सकता है, किनका विवाह कराया जा सकता है और किन्हें चर्च में दफनाया जा सकता है... आदि की क्षमता थी ... चर्च सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक और आध्यात्मिक शक्ति का वास्तविक केन्द्र था।[15]

ईसाई प्रचारक सामग्री : पैट रॉबर्टसन

अनेक लोगों का यह गलत विश्वास है कि अमरीका के पूर्व राष्ट्रपति जॉर्ज डब्ल्यू. बुश ही थे जिन्होंने संयुक्त राज्य अमरीका की सरकार के समर्थन के साथ देश के बाहर ईसाई प्रचार के विस्तार की पहल की थी। हार्वर्ड के एक इतिहासकार निऑल फर्गुसन (Niall Ferguson) ध्यान दिलाते हैं कि किस प्रकार विदेशों में चल रही ईसाई प्रचारक गतिविधियों में कुछ ऐसी चीजें रही हैं 'जो ब्रितानी साम्राज्य और आज के अमरीकी साम्राज्य में समान रूप से हैं', क्योंकि 'छोटी संख्या में ईसाई प्रचारक मिशनरी भी काफी कुछ प्राप्त कर सकते हैं, चूँकि उनके पास उनके देशों की धार्मिक सभाओं से भारी मात्रा में आया धन होता है'।[16]

विदेश नीति में संलग्नता और संगठित ईसाइयत का सशक्त प्रभाव लगभग एक शताब्दी से अस्तित्व में है ही, और जिमी कार्टर और बिल क्लिंटन जैसे 'उदारवादी' अमरीकी राष्ट्रपति भी ईसाई प्रचारक थे जिन्होंने संयुक्त राज्य अमरीका के चर्चों द्वारा विदेशी धर्मान्तरण का समर्थन किया। सन 1600 के दशक से ही अमरीकियों का एक बड़ा प्रतिशत अपने उन राजनीतिक नेताओं के साथ अधिक सहजता का अनुभव करता रहा है जो सार्वजनिक रूप से ईसाई रहे हैं। आज संयुक्त राज्य अमरीका की

मुख्यधारा के राजनीतिक उम्मीदवार के लिए यह अनिवार्य-सा हो गया है कि वह सार्वजनिक रूप से और विश्वसनीयता से यह प्रदर्शित करें कि वह सच्चे यहूदी-ईसाई हैं। यहाँ तक कि बराक ओबामा को भी बार-बार कहना पड़ा कि उन्होंने चर्च में पूजा की, और उनके प्रारम्भिक चुनाव प्रचार अभियानों में उनके भाषण (उनके प्रतिद्वंद्वी हिलरी क्लिंटन की तरह) अधिकतर चर्चों में हुए।

पैट रॉबर्टसन अमरीकी संस्कृति की इस शाखा के एक जीते-जागते प्रतीक हैं। औसत अमेरिकियों को हिन्दू धर्म की जो छवि बतायी जा रही है उसका एक उदाहरण उस वीडियो डॉक्यूमेंटरी में मिलता है जिसमें पैट रॉबर्टसन और उनके पुत्र गॉर्डन रॉबर्टसन (Gordon Robertson) को दिखाया गया है जो हिन्दू विचित्रता का विवरण तैयार करने के लिए भारत यात्रा पर आये थे। उन्हें हिन्दुओं की प्रात:काल की प्रार्थनाओं का उपहास करते दिखाया गया है, जो गंगा को 'शिव का वीर्य' बताते हैं, और दावा करते हैं कि लोगों 'से आशा की जाती है कि वे अपने पापों को ईश्वर के वीर्य से धो डालें'। रॉबर्टसन और आगे बढ़कर हिन्दू धर्म को बुरी प्रवृत्तियों, जैसे बहुदेववाद, वाला बताते हैं। वह अपने पुत्र के इस दावे का समर्थन करते हैं कि 'जहाँ कहीं भी आप इस तरह की मूर्तिपूजा पाते हैं, वहाँ आप लोगों को गरीबी में पिसता हुआ पायेंगे। वह भूमि अभिशप्त रही है'।[17]

अमरीकी प्राय: 'शैतानी' चरित्रों को प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से हिन्दू धर्म से जुड़ा हुआ मानते हैं। रॉबर्टसन कहते हैं, 'शिव विनाश के देवता हैं और उनकी पत्नी मृत्यु की देवी हैं—वह भयानक आँखों वाली काली, कुरूप प्रतिमा'। उसके बाद वे सुझाव देते हैं कि मृत्यु और विनाश की बुरी प्रवृत्तियाँ उनमें पायी जाती हैं जो हिन्दू देवीदेवताओं की पूजा करते हैं : 'मेरा आशय है कि ये लोग अपने ईश्वर के नाम पर अन्य मानवों की हत्या के लिए तत्पर रहते हैं'। हिन्दू धर्म को दानवी बताकर रॉबर्टसन महज एक बहुत पुराना नमूना आरोप फिर से लगाते हैं। डॉ. गॉर्डन मेल्टन, इंस्टीटयूट फ़ॉर द स्टडी ऑफ़ अमरीकन रिलिजन्स के निदेशक और अनेक अन्य सन्दर्भ पुस्तकों के लेखक, स्पष्ट करते हैं : 'पूर्व के धर्मों और अफ्रीकियों के धर्मों के सन्दर्भ में अधिकांश रूढ़िवादी ईसाइयों के रुझान यही रहे हैं कि उन धर्मों के देवी-देवता, वास्तव में, साक्षात दानव ही हैं'।[18]

हिन्दुओं को ईसाई बनाये जाने की अमरीका में मार्केटिंग होती है जो मूर्तिपूजकों को भय और दानवी दमन के जीवन से बचाने के एक कार्य के रूप में लोकप्रिय भी है, और इसके लक्ष्य होते हैं हिन्दू देवी-देवता, गुरु, समाज, अनुष्ठान और कोई भी प्रवक्ता जो धर्म की ओर से बोलने का साहस करता है। प्रोफेसर कुसुमिता पेडर्सन ने कहा कि ऐसे हिन्दू विरोधी बयान 1920 की दशक का याद दिलाते हैं जब कु क्लक्स क्लैन उदीयमान था, और राष्ट्रीय विश्वास यह था कि सभी अमरीकियों को ईसाई होना ही चाहिए। 'वास्तव में रॉबर्टसन जो कह रहे हैं वह यह है कि ... हिन्दू इंजीनियर, डॉक्टर और कम्प्यूटर विशेषज्ञ जो यहाँ रह रहे हैं वे वापस अपने घर चले जायें। यह एक

बहुत बड़ा बयान है जो उन्होंने दिया है'।[19] ऐसे घृणा फैलाने वाले बयानों ने अतीत में जनसंहार तक पहुँचाया है।

चूँकि सांस्कृतिक पहचानों को विदेशियों के प्रति विकर्षण या घृणा फैलाने की मानसिकता से तैयार किया जाता है, उनकी हत्या स्वीकार्य-सी लगने लगती है। प्रोफेसर पेडर्सन ने आगे कहा : 'ऐसा रवाण्डा में हुआ। समाचारपत्रों और मीडिया ने इस तरह का माहौल बनाना प्ररम्भ कर दिया कि फलाने-फलाने को मार देना चाहिए। उसके बाद कुछ महीनों तक फलाने-फलाने मारे जाते रहे। वाणी की स्वतन्त्रता पर कहीं-न-कहीं एक सीमा रेखा खींची जानी चाहिए, परन्तु हम अमरीकी बस यह नहीं जानते कि कहाँ'।[20] घृणा के बीज, अगर बिना विरोध के रहे, फिर एक बार हिंसा के खर-पतवार की तरह उग सकते हैं।

पैट रॉबर्टसन ने अपने टेलिविजन कार्यक्रम में, जिसे बहुत लोग देखते हैं, कहा : 'भारत की सभी समस्याओं में से एक अन्य सभी से अधिक उभरकर सामने आती है। वह समस्या है मूर्ति पूजा की। कहा जाता है कि हिन्दू देवी-देवता हज़ारों लाखों हैं। इन सब ने एक राष्ट्र को आध्यात्मिक शक्तियों का बँधुवा बनाकर रखा है, जिन शक्तियों ने हज़ारों वर्षों से अनेक लोगों को धोखा दिया है'। उनके पुत्र ने इसका और आगे विस्तार करते हुए कहा : 'बाइबल उस भू-भाग की चर्चा करता है जिसे वहाँ के निवासियों की करतूतों के आधार पर अभिशाप दिया जाता है। तुम इन मूर्तियों को प्रत्येक हरे वृक्ष तले, प्रत्येक पहाड़ की चोटियों पर, स्थापित करो और ऐसा करते हुए तुम अपनी धरती को अभिशप्त कर रहे हो। और जो दमन है उसे हम साक्ष्य के रूप में देखते हैं'।[21]

ईसाई अमरीका में ये दृष्टिकोण मुख्यधारा में आ गये हैं, और अच्छी तरह वित्त पोषित और सुनियोजित दीर्घावधि अभियान के परिणाम हैं। सन 1999 में, संयुक्त राज्य अमरीका में सदर्न बैप्टिस्ट कन्वेंशन ने दीवाली के अवसर पर हिन्दुओं के लिए एक दिशा-निर्देश इस बयान के साथ जारी किया : 'मुम्बई आध्यात्मिक अंधकार का शहर है। प्रत्येक दस व्यक्ति में से आठ हिन्दू ऐसे दास हैं जो भय और परम्परा से झूठे देवों से बँधे हैं'।[22] इस तथ्य पर अवश्य ही ध्यान देना चाहिए कि उदारवादी पूर्व राष्ट्रपति जिमी कार्टर और बिल क्लिंटन 2006 तक आजीवन सदर्न बैप्टिस्ट (Southern Baptist) रहे। इन दोनों ने नये और अधिक समावेशी बैप्टिस्ट कन्वेंशन के गठन में मुख्य भूमिका निभाई। उत्तर अमरीका स्थित अनेक भारतीय ईसाई प्रचारक ऐसे अति-दक्षिणपन्थी प्रोटेस्टेंट श्रेष्ठता वाले विचारों को प्रतिध्वनित करने के लिए सूचीबद्ध किये गये हैं, और विशाल मंगलवादी सरीखे कुछ तो भारत में अत्यधिक धन से वित्तपोषित इन पश्चिमी ईसाई प्रचारक कार्यक्रमों के नेता बन गये हैं। उनमें से कुछ को इस नयी वैश्विक सभ्यता के युद्ध में अगले मोर्चे के सेनापति के रूप में तैनात किया गया है।

अमरीकी दक्षिणपन्थी ईसाइयों द्वारा दलित आन्दोलन

अमरीकी ईसाई प्रचारक संगठन संयुक्त राज्य अमरीका स्थित दलित गुटों की डोर थामे है जिनका विशिष्ट उद्देश्य है इस दृष्टिकोण को प्रोत्साहित करना कि भारत की सारी जाति समस्या हिन्दू धर्म के कारण ही है, और हिन्दू धर्म 'जाति के अलावा और कुछ नहीं' है। संक्षेप में, हिन्दू धर्म = जाति = नस्लवाद। ये संगठन शैक्षिक विद्वानों के एक समूह तथा भारत के आन्दोलनकारियों पर निर्भर करते हैं जो संयुक्त राज्य अमरीका के ईसाई प्रचारक संगठनों के भारतीय सहयोगियों से सम्बद्ध हैं।

अमरीकी दक्षिणपन्थी राजनीतिज्ञों और संरक्षणवादी विचार-मंचों ने एक दूसरे से हाथ मिला लिया है और दलित ईसाई प्रचारकों को एकजुट कर रहे हैं ताकि इस दृष्टिकोण को सामने लाया जाये कि भारत की अधिकांश समस्याएँ मूर्तिपूजन के परिणाम हैं और इनका समाधान ईसाइयत है। ऐसे दो समूहों, दलित फ्रीडम नेटवर्क और ऑल इण्डिया क्रिश्चियन काउंसिल के कार्य इन जटिल सम्बन्धों को दिखाते हैं।

दलित फ्रीडम नेटवर्क (डी.एफ.एन.)

संयुक्त राज्य अमरीका में कोलोराडो स्थित दलित फ्रीडम नेटवर्क पश्चिम द्वारा संचालित संगठन का एक उदाहरण है जो अमरीका के सत्ता के केन्द्रों में नीतिगत तर्कों के माध्यम से भारतीय दलित मुक्ति का अगुवा होने का दावा करता है। अपने मिशन का वर्णन करते हुए यह कहता है कि यह 'ईसा मसीह के आदेश का अनुकरण करने के लिए है जिन्होंने हमें "धरती का नमक" और "विश्व का प्रकाश" कहा था'।[23] इसकी स्थापना 2002 में 'अखिल भारतीय ईसाई परिषद' (All India Christian Council, इसी अध्याय में आगे इसकी चर्चा की गयी है) के प्रमुख डॉ. जोजेफ डी'सूजा ने एक पूर्व मिशनरी नैन्सी रिक्स के साथ मिलकर की थी।[24] इसका ईसाई एजेंडा स्पष्ट है जो इसके अच्छे सम्पर्कों वाले कार्यपालक पदाधिकारियों की सम्बद्धताओं से ही झलकता है।[25] निदेशकों की इस सूची को ध्यान से देखने पर कुछ ऐसे सम्बन्ध उजागर होते हैं।

इसके निदेशकों में से एक संयुक्त राज्य अमरीका के कांग्रेस सदस्य दक्षिणपन्थी नेता ट्रेन्ट फ्रैंक्स (Trent Franks) के कार्यालय के एक पूर्व उच्चाधिकारी थे। एक अन्य मूडी बाइबल इंस्टीटयूट, जिसे इनसाइक्लोपीडिया ऑफ़ क्रिश्चियैनिटी 'बीसवीं शताब्दी में अन्तर-साम्प्रदायिक कट्टरतावाद का प्रमुख संस्थान कहती है', के उपाध्यक्ष हैं।[26] दो निदेशक ओ.एम. (Operation Mobilization) से हैं, जो संयुक्त राज्य अमरीका स्थित एक 'अन्तर्राष्ट्रीय ईसाई मिशन एजेन्सी है जिसके 110 से अधिक देशों में तथा समुद्री सफर करने वाले दो जलपोतों में 5400 कार्यकर्ता हैं'।[27] एक अन्य कैडमोन्स कॉल एक ईसाई रॉक समूह के प्रमुख गायक हैं, जिनके गीत बाइबल के प्रतीकों का उपयोग करते हुए भारत का दानवीकरण करते हैं। उदाहरण के

लिए, इसका 'मदर इण्डिया' गीत भारत की पीड़ा के कारक के रूप में बाइबल के ईडेन गार्डेन में साँप का उल्लेख करता है :

> पिता परमेश्वर, तुमने भारत माता के लिए अपने आँसू बहाये हैं। आपकी आत्मा भारत पर आती है और उसने आपके आलिंगन में मुझे बाँध दिया। साँप ने कहा और विश्व ने उसके विष पर विश्वास कर लिया। ... पिता, मुझे क्षमा कर दें, क्योंकि मैने विश्वास नहीं किया है। भारत माता की तरह, मैं कराहा और दुखी हुआ हूँ।[28]

डी.एफ.एन. के सलाहकार बोर्ड के सदस्यों में शामिल लोग हैं :[29]

- विलियम आर्मस्ट्रांग, एक पूर्व रिपब्लिकन सिनेटर जो अब कोलोराडो क्रिश्चियन यूनिवर्सिटी के साथ हैं, जो नियमित रूप से भारत में ईसाई प्रचारक टीम भेजता है।[30]
- लुइस बुश, जिनकी रणनीतिगत प्रभाव वाली ईसाई प्रचारक गतिविधियों का उद्घाटन तहलका की खोजपूर्ण रपट में किया गया है।[31]
- टॉमस मैक्कैली, जो मैक्लेलन फाउण्डेशन का प्रतिनिधित्व करते हैं, जो स्वयं को एक 'ईसाई शिक्षा धर्मार्थ न्यास'[32] के रूप में वर्णित करता है, और विज्ञान के विपरीत संयुक्त राज्य अमरीका के सृष्टिवाद के लिए स्थापित अग्रणी संस्थानों को वित्त प्रदान करता है।[33]
- जॉर्ज माइली, एन्टीओक नेटवर्क के अन्तर्राष्ट्रीय अध्यक्ष, एक संगठन जिसका मूल 'नार्थ अमरीकन इवैंजेलिकल स्ट्रीम ऑफ़ क्रिश्चियैनिटी' में है, जिसने मिशनरी समर्थक लॉजैन कोवेनेंट को अपने 'आस्था के वक्तव्य' के रूप में अंगीकृत कर लिया है।[34]
- जॉन गिलमैन, डेस्प्रिंग इंटरनेशनल के प्रमुख, जो भारत में अपने उद्देश्य को बहुत स्पष्ट रूप से वर्णित करता है :

> हज़ारों लाख देवी-देवताओं की पूजा लुप्त हो जायेगी। मूर्तिपूजा उतार फेंकी जायेगी। परन्तु इसे कौन विस्थापित करेगा? भारत में राष्ट्रीय दलित नेता चर्च से अपील करते हैं, 'आप आइये और अपने ईसा मसीह के बारे में बताइये। आप हमें अपने ग्रन्थ की शिक्षा दीजिये'। उनका विश्वास है कि भारत के लिए यही एकमात्र आशा है, एक राष्ट्र जो हो सकता है कि एक रक्त रंजित गृहयुद्ध के मुहाने पर खड़ा है—या इतिहास के विपरीत पवित्र आत्मा के दिल पर से बोझ उतारने के कगार पर। इस समय भारत में आत्मा पर विजय पाने का जो बेहतर अवसर है वैसा पहले कभी नहीं रहा है।[35]

डी.एफ.एन. इस तथ्य को छिपाने के लिए दलित चेहरे का उपयोग करता है कि यह भारत पर अमरीकी दक्षिणपन्थी षडयन्त्र की कट्टर कार्यान्वयन शाखा है। दलित छाप इसे भारतीय मामलों में हस्तक्षेप करने के लिए एक सामाजिक हैसियत प्रदान

करती है, जैसा कि इसने 2006 में हुए कैलिफोर्निया पाठ्यपुस्तक विवाद में किया। 'वॉल स्ट्रीट जर्नल' ने समाचार छापा कि किस तरह डी.एफ.एन. ने भारतीय संस्कृति के पारम्परिक नकारात्मक चित्रण के समर्थन में प्रमाण पत्र दिया। उन्होंने स्वयं को हिन्दू अछूत के रूप में प्रस्तुत किया :

> अन्य हिन्दू समूह—जिनमें 'अछूत' जाति के सदस्य भी शामिल थे—श्री विट्जेल की ओर से मैदान में कूद पड़े। अछूतों के लिए वकालत करने वाले दलित फ्रीडम नेटवर्क ने शिक्षा बोर्ड को लिखा कि वेदिक एण्ड हिन्दू एजूकेशन फाउण्डेशन द्वारा प्रस्तावित परिवर्तन 'भारतीय इतिहास के एक दृष्टिकोण को प्रतिबिम्बित करता है जो ... भारत में वर्ण-आधारित भेदभाव के कड़वे सच को ... कम करके बताता है। ... लिखित भारतीय इतिहास में परिवर्तन के लिए राजनीतिक प्रेरणा वाले संशोधनवादियों को अनुमति न दें।[36]

वह पाठ्यपुस्तक विवाद एक वैध मानवीयता की वकालत करने वाले समूह के रूप में डी.एफ.एन. की विश्वसनीयता की स्थापना के लिए उपयोगी था। यह जानामाना तरीका एक उदाहरण है कि किस तरह संयुक्त राज्य अमरीका में गुटबाज़ी वाले विभिन्न समूह अपनी विश्वसनीयता स्थापित करते हैं।

डी.एफ.एन. के राजनीतिक पक्षपोषण के उदाहरण

बेंजामिन मार्श संयुक्त राज्य अमरीका के विदेश विभाग से तालमेल रखने के मामले में डी.एफ.एन. के प्रभारी हैं। अमरीका भर के चर्चों और सम्मेलनों में वे डी.एफ.एन. की ओर से बराबर बोलते हैं।[37] उन्होंने कैलिफोर्निया पाठ्यपुस्तक विवाद में पश्चिमी शैक्षिक विद्वानों के साथ निकट सम्बन्ध स्थापित करते हुए काम किया, जहाँ उन्हें दक्षिण एशियाई शैक्षिक विद्वानों के एक नामित समूह में शामिल किया गया जबकि वास्तव में वे एक राजनीतिक ईसाई प्रचारक हैं। इस समूह में, डी.एफ.एन. का परिचय 'वॉशिंगटन में दलित आन्दोलन की ओर से एक वास्तविक जाँबाज' के रूप में कराया गया था।[38] मार्श ने उत्तर अमरीका के हिन्दुओं पर डी.एफ.एन. द्वारा किये जा रहे गुटबाजी के प्रयासों का विरोध करने का आरोप लगाया; ये प्रयास चाहते हैं कि अमरीकी कांग्रेस 'वर्ण-व्यवस्था या इसके आधुनिक प्रभाव से निपटे'। उन्होंने इन हिन्दुओं पर डी.एफ.एन. के 'भारत में अछूत प्रथा की उपस्थिति को स्वीकार करने सम्बन्धी एक प्रस्ताव पारित करने के चल रहे प्रयास' का विरोध करने का आरोप लगाया।[39]

एक शैक्षिक भारतविद मंच के एक परिनियामक ने अपने सदस्यों से डी.एफ.एन. के साथ परिचय बढ़ाने को कहा।[40] उसके बाद शीघ्र ही मार्श ने मंच से भारत में ईसाई धर्मान्तरण कराने वालों के अधिकारों को प्रोत्साहित करने का एक आवेदन प्रस्तुत किया। यद्यपि उस आवेदन पर अनेक वैसे समूहों ने हस्ताक्षर किये थे जो अपने ईसाई कट्टरतावाद के लिए जाने जाते हैं—जैसे 'नैशनल असोसिएशन ऑफ इवैंजेलिकल्स,

सदर्न बैप्टिस्ट कन्वेंशन, ओपन डोर्स इण्टरनैशनल' (National Association of Evangelicals, Southern Baptist Convention, Open Doors International) और www.rightmarch.com (एक उग्रपरिवर्तनवादी दक्षिणपन्थी समूह)—इस शैक्षिक मंच के परिनियामक ने इसे एक विशेष अनुमोदन प्रदान किया।[41] डी.एफ.एन. ने शैक्षिक जगत और चर्च में अपने व्यापक समर्थन के आधार की सहायता से अमरीकी सरकार में घुसपैठ बना ली है। वह भारत से वक्ताओं और आन्दोलनकारियों को अमरीकी सरकार के आयोगों, नीति निर्धारक विचार-मंचों और चर्चों के समक्ष गवाही देने के लिए बुलाता है, जिसका स्पष्ट उद्देश्य भारत में संयुक्त राज्य अमरीका के हस्तक्षेप को बढ़ावा देना होता है।[42] ऐसे ही एक आन्दोलनकारी हैं उदित राज, जो 'अखिल भारतीय अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति संगठनों का महासंघ' के अध्यक्ष हैं।[43] राज भारत में दलितों की एक विशाल रैली आयोजित करने और हिन्दुओं के बौद्ध धर्म में सामूहिक धर्मान्तरण कराने के बाद विख्यात हुए, जो संयुक्त राज्य अमरीका के ईसाई प्रचारकों को अच्छा लगा। लेकिन कुछ भारतीय ईसाइयों, जैसे रैशनलिस्ट एसोसिएशन ऑफ़ इण्डिया के अध्यक्ष सनल एडामारूकू द्वारा इस गतिविधि पर नैतिक प्रश्न उठाये गये। उन्होंने भारतीय चर्चों में बड़ी मात्रा में अमरीकी धन लाने के गुप्त उद्देश्यों की ओर ध्यानाकर्षित किया। एडामारूकू ने भारत में इन अन्तर्राष्ट्रीय संगठनों द्वारा किये जाने वाले जोड़-तोड़ को स्पष्ट करते हुए लिखा :

> दिल्ली बैठक का आधिकारिक आयोजनकर्ता संगठन था अखिल भारतीय अनुसूचित जाति और जनजाति सम्मेलन, जो सरकारी कर्मचारियों का एक छतरी संगठन है और जिसके सदस्यों की संख्या तीस लाख से ज़्यादा है। लेकिन इस आयोजन का गुप्त सूत्रधार और धन प्रदाता संगठन था ऑल इण्डिया क्रिश्चियन काउंसिल (ए.आई.सी.सी.), जो ईसाई प्रचारक चर्च का ही एक घटक है, जिनमें भाँति-भाँति के 'पुन: अवतरित हुए' नव-प्रोटेस्टेंट और मिशनरी संगठन शामिल हैं, और जिसे बैप्टिस्टों और पेन्टिकोस्टलों द्वारा विनिर्दिष्ट किया गया है।[44]

उक्त रैली में विशेष रूप से सम्मानित लोगों में विदेशी सम्बद्धता वाले ईसाई प्रचारक जोसफ डी'सूजा और के.पी. योहन्नान थे। एडामारूकू स्पष्ट करते हैं कि ये बैप्टिस्ट और पेन्टिकोस्टल वित्तीय कारणों से बौद्ध धर्म में सामूहिक धर्मान्तरण को प्रोत्साहित कर रहे थे :

> ईसाई प्रचारक नेटवर्क आखिर हिन्दुओं का बौद्ध धर्म में सामूहिक धर्मान्तरण क्यों प्रायोजित करते हैं? संयुक्त राज्य अमरीका और अन्यत्र रहने वाले समर्थकों और धनदाताओं के लिए जून महीने में जन सम्पर्क अभियान प्रारम्भ किया गया था, जिसने यह गलत आभास देकर लोगों के हृदय और बटुए खुलवा दिये कि बड़ी संख्या में मछलियाँ ईसाई जाल में सीधे फँसने जा रही हैं। 'इस उपमहाद्वीप में चर्चों की स्थापना का अभियान चलाने वाली सबसे बड़ी संस्था— गॉस्पल फ़ॉर एशिया' ने दलितों की दुर्दशा और हिन्दू धर्म छोड़ने की उनकी योजना पर ध्यान

> केन्द्रित करना प्रारम्भ किया।... इसके लिए बड़ी उदारता से धन भेजा गया। लेकिन बड़ी संख्या में मछलियों के फँसने का प्रचार करते समय भी ए.आई.सी.सी. के नेता जानते थे और बहुत अच्छी तरह उन्होंने आकलन कर लिया था कि दलित केवल बौद्ध धर्म में ही धर्मान्तरित होंगे। उनका लक्ष्य दिल्ली के धर्मान्तरित होने वाले लोग नहीं थे, यद्यपि उन्होंने इसका उपयोग धनदाताओं को लालच देने के लिए किया, ताकि उनके मुँह में पानी आ जाये। उनका उद्देश्य बौद्ध धर्मान्तरण का उपयोग एक फच्चर के रूप में करने का था जिससे सहस्राब्दी के विशाल धर्मयुद्ध के लिए भारत के द्वार खोले जायें। यह योजना केवल इस शर्त पर ही फलीभूत हो सकती थी कि घी में मिशनरियों की उँगलियाँ नज़र न आयें।[45]

ए.आई.सी.सी. की वेबसाइट संयुक्त राज्य अमरीका की विदेश नीति के तहत भारत में हस्तक्षेप करने की वकालत करने में उदित राज की भूमिका को इस तरह स्पष्ट करता है :

> अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति संगठनों के महासंघ के राष्ट्रीय अध्यक्ष डॉ. उदित राज ने श्री ट्रेन्ट फ्रैन्क्स (संयुक्त राज्य अमरीका के एक कांग्रेस सदस्य) से दिल्ली में दो वर्ष पहले मुलाकात की और भारत में दलितों की स्थिति उन्हें बतायी। और उसके बाद डॉ. उदित राज संयुक्त राज्य अमरीका की यात्रा पर गये, विशेष रूप से वॉशिंगटन, और वहाँ भारत के गाँवों और शहरों में दलितों के साथ क्या हो रहा है, उसका एक स्पष्ट चित्र प्रस्तुत किया और भारत में अपना व्यवसाय आरम्भ करने वाली अमरीकी कम्पनियों से हस्तक्षेप का अनुरोध किया और यह कि वे भारत में दलित समुदाय के हितों के लिए काम करें। उनकी इस वॉशिंगटन यात्रा के अगले कदम के रूप में एक सहभागी एजेन्सी दलित फ्रीडम नेटवर्क ने इस मामले पर आगे काम किया और संयुक्त राज्य अमरीका के हॉउस ऑफ़ रिप्रजेन्टेटिव में यह समवर्ती प्रस्ताव पारित करवा लिया।[46]

ट्रेन्ट फ्रैन्क्स एरिजोना से प्रतिनिधि के रूप में संयुक्त राज्य अमरीका की कांग्रेस में आये हैं, जो एक ऐसा राज्य है जहाँ दलित बहुत कम संख्या में हैं। उन्होंने दलित मामलों में ऐसी रुचि इसलिए ली है क्योंकि दक्षिणपन्थी ईसाइयों के साथ उनके सम्बन्ध हैं। सन 2007 में उक्त प्रस्ताव को प्रस्तुत करते हुए फ्रैन्क्स ने कहा, ‘यह प्रस्ताव सुनिश्चत करेगा कि एक सरकार के रूप में और एक राष्ट्र के रूप में हम किसी भी प्रकार से वर्ण के आधार पर भेदभाव और अछूत प्रथा को भारत के साथ नीतिगत सम्बन्धों या हमारे प्रत्यक्ष विदेशी सहायता के माध्यम से न तो प्रोत्साहित करेंगे और न ही लागू करेंगे’। उसके बाद का भाषण इस बात का एक अच्छा उदाहरण है कि किस तरह उत्पीड़न साहित्य उच्च आधिकारिक स्थानों तक पहुँचता है।[47]

इस तरह के प्रस्ताव केवल निजी मत हैं, इनकी कोई वैधानिक शक्ति नहीं है। इनमें से कई तो कुछ विशिष्ट स्वार्थ सिद्धि के लिए पारित किये जाते हैं और अधिकतर

अमरीकी कांग्रेस के सदस्य वोट करने से पहले इन्हें पढ़ते भी नहीं। पर इसका प्रभाव भारत में बहुत होगा। और जो कोई भी भारत में अमरीका का और अधिक हस्तक्षेप चाहता है, उसके लिए यह प्रस्ताव कागज़ों के भण्डार को और ऊँचा कर देगा। वास्तव में, एक छद्म-दलित वेबसाइट ने इस प्रस्ताव का ढिंढोरा पीट कर कहा, कि वह एक 'ऐतिहासिक कानून' है।[48]

कांचा इलाइया : 'हम संस्कृत की हत्या कर देना चाहते हैं'

एक अन्य महत्वपूर्ण चिन्तक हैं कांचा इलाइया जिन्हें डी.एफ.एन. द्वारा विश्व स्तर पर 'दलित अधिकारों के लिए अभियान चलाने वाले अग्रणी नेता' के रूप में प्रोत्साहित किया जा रहा है। डी.एफ.एन. ने उन्हें एक पोस्ट डॉक्टोरल फेलोशिप दिया है।[49] उनकी एक पुस्तक, 'मैं हिन्दू क्यों नहीं हूँ' (Why I am Not a Hindu) अनेक अमरीकी विश्वविद्यालयों के हिन्दू धर्म के प्रारम्भिक पाठ्यक्रमों के लिए निर्धारित की गयी है। एक बेल्जियन भारतविद कोनराड एल्स्ट ने इस पुस्तक की समीक्षा की और इसका समानान्तर नाजी साहित्य में यहूदी-विरोधी उपहास-सामग्री में पाया :

> ये हिन्दू विरोधी शक्तियाँ आर्यों के आक्रमण की परिकल्पना का अन्तिम छोर तक दोहन कर रही हैं, और भारतीय राजनीति में पागलपन की हद तक नस्लवाद की भारी खुराक पहुँचा रही हैं। उदाहरण के लिए कांचा इलाइया की पुस्तक वाई आई एम नॉट ए हिन्दू (कलकत्ता, 1996) को पढ़ें, जिसे राजीव गाँधी फाउण्डेशन ने प्रायोजित किया, इसके ब्राह्मण विरोधी कार्टूनों के साथ : ब्राह्मण खलनायकों की चुरकियों को उनके सिर के पिछले हिस्से से हटाकर केवल उनके कानों के सामने लायें, और आप उन्हें नाजी समाचार पत्र डेर श्टूमेर (Der Stumer) के यहूदी-विरोधी कार्टूनों की सटीक नकल पायेंगे।[50]

संस्कृत के प्रति इलाइया की घृणा भी उतनी ही उग्र है। 'इण्डियन एक्सप्रेस' की रपट के अनुसार कांचा इलाइया ने मानवाधिकार पर भारत के राष्ट्रीय सम्मेलन के सामने यह कहते हुए जोरदार भाषण दिया था, 'हम इस देश में संस्कृत की हत्या कर देना चाहते हैं'।[51] एक साक्षात्कार में उन्होंने यह सफाई भी दी, 'हमें आई.आई.टी. और आई.आई.एम. संस्थानों को बन्द कर देना चाहिए, क्योंकि वे देश के ऊँचे वर्णों की अर्थव्यवस्था को बढ़ावा देते हैं'।[52] इलाइया की पुस्तकें प्रदर्शित करती हैं कि किस प्रकार दलित आन्दोलन ने द्रविड़ अलगाववादियों की भाषण शैली को आत्मसात कर लिया है, जैसे दमन की जड़ के रूप में संस्कृत और हिन्दू धर्म का दानवीकरण। भारत की अनेक साझी विरासतों को दलितों की शिकायतों की जड़ की तरह प्रस्तुत किया गया है।

क्रिश्चियन टुडे पत्रिका इलाइया की उपलब्धियों की सूची में यह भी शामिल करती है कि 'उन्होंने संयुक्त राज्य अमरीका की कांग्रेस की सभा में हाल ही में अपना बहुप्रचारित साक्ष्य दिया,' जिसमें उन्होंने 'दलितों के विरुद्ध चल रही हिंसा और

भेदभाव की असलियत' के लिए हिन्दू धर्म पर दोषारोपण किया।[53] क्रिश्चियन टुडे के साथ एक साक्षात्कार में उन्होंने हिन्दू धर्म की तुलना नाजीवाद से की, और इसे 'आध्यात्मिक फासीवाद' के रूप में वर्णित किया। उनके तर्क के आधार हिटलर द्वारा हिन्दू प्रतीकों को गलत ढंग से अपनाये जाने पर आधारित हैं, जिसके लिए वे हिन्दू धर्म को दोषी ठहराते हैं। 'हिन्दू धर्म एक प्रकार का आध्यात्मिक फासीवाद है,' वह व्याख्या करते हैं, 'क्योंकि हिन्दू पुस्तकें कहती हैं कि उन्हें आर्यों ने लिखा था, और नाजी जर्मनी हिटलर विश्वास करता था कि वह आर्य नस्ल का था'; और इसलिए 'हिन्दू और आर्य जर्मनवासी जिन प्रतीकों का उपयोग करते हैं वे समान हैं, जैसे कि स्वास्तिक और यह अवधारणा कि हमेशा चन्द लोग ही होते हैं जो अन्य से श्रेष्ठ होते हैं ... इसलिए हिन्दू धर्म आध्यात्मिक रूप से बिलकुल ही फासीवादी प्रणाली है और यही कारण है कि हमारा देश अनेक प्रकार से उत्पीड़ित हुआ।'[54]

ईसाई प्रचारक संगठनों द्वारा इलाइया के लिए आये दिन संयुक्त राज्य अमरीका की यात्राओं को प्रायोजित किया जाता है, जिनका उद्देश्य है उन्हें जनाधिकार का एक बड़ा नेता बनाना, और इस तरह उनके प्रभाव को और बढ़ाया जा रहा है। उदाहरण के लिए, टेक्सास स्थित संगठन गॉस्पेल फ़ॉर एशिया ने घोषणा की :

> गॉस्पेल फ़ॉर एशिया डॉ. कांचा इलाइया को प्रायोजित करने में प्रसन्नता का अनुभव करता है, जो भारत के सर्वाधिक प्रभावशाली मानवाधिकार नेताओं में से एक हैं ... जो इस देश के जनाधिकार आन्दोलन के लिए मार्टिन लूथर किंग जूनियर का अर्थ है वही आज भारत के जनाधिकार आन्दोलन में डॉ. इलाइया का है... ऑल इण्डिया क्रिश्चियन काउंसिल के सलाहकार की भूमिका में वे भारत की निचली जातियों में सामाजिक-आर्थिक, धार्मिक, और राजनैतिक स्थितियों पर नेताओं को सलाह देते हैं।[55]

इलाइया साउथ एशियन स्टडीज के शैक्षिक सम्मेलनों में प्रसिद्ध वक्ता भी रहे हैं जो विस्कोन्सिन विश्वविद्यालय, मैडिसन में हर साल आयोजित किये जाते हैं।

'पोस्ट हिन्दू इण्डिया' (Post-Hindu India)[56] नामक अपनी हाल की पुस्तक में इलाइया सामान्यत: हिन्दू धर्म के विरुद्ध घृणा का एक नस्लवादी सिद्धान्त गढ़ते हैं, विशेष रूप से ब्राह्मणों के विरुद्ध। वे छद्म-वैज्ञानिक नस्लवाद को पुनर्जीवित करने का प्रयास करते हैं। जिसे वे 'ब्राह्मणवादी मनोविज्ञान' कहते हैं, उसका अध्ययन करने के आशय से वे इस बयान से शुरू करते हैं : 'ब्राह्मणों के मनोविज्ञान को समझने के लिए कोई भी शोध नहीं हुआ है'। उसके बाद वे यह कहते हुए ब्राह्मणों को उप-ब्राह्मणों के रूप में चित्रित करने के लिए आगे बढ़ते हैं कि ब्राह्मण सामुदायिकता 'पेंगुइन और भेड़ों की सामुदायिकता की तरह काम करती है, जो अस्तित्व के लिए व्यक्तिगत संघर्ष हेतु ऊर्जा का निर्माण शायद ही करती है'। वे कहते हैं कि ब्राह्मण पशुओं से भी बदतर हैं, क्योंकि उनके मामले में, पशुवृत्ति भी 'अल्पविकसित' होती है :

पशुओं में शिकार करने और चरने की प्रक्रिया उनके व्यापक सामाजिक सामूहिकता के घेरे में उनके व्यक्तिगत प्रयासों से होती है। लेकिन ब्राह्मण अपनी सामाजिक सामूहिकता में कोई भी व्यक्तिगत उद्यम की अनुमति नहीं देते थे। उन्होंने पेंगुइन और भेड़ों की अल्पविकसित पशुवृत्ति को मनुष्यों में लागू किया।[57]

वे नस्लवाद के छद्म-विज्ञान को पुनर्जीवित करने के लिए आगे बढ़ते हैं : 'मानवों में विभिन्न नस्ली रुझान भिन्न प्रकार से वृत्तियों का निर्माण करते हैं'। उसके बाद, वे घृणा की लफ्फाजी की ओर आगे बढ़ते हैं जो सामाजिक डार्विनवाद से ओतप्रोत है।

> सभी परजीवी व्यक्तिवाद के निरन्तर भय से पीड़ित रहते हैं।... एक समुदाय के रूप में ब्राह्मण धरती से कुछ भी पैदा नहीं कर सकने की पशुवृत्ति में सहभागी हैं। यह मानवीय वर्ण सभी अन्य सामाजिक समुदायों से उसी समय से अलग हैं जब से मानव बन्दरों से क्रमशः विकसित हुए। ... इस असामान्य परजीवी वृत्ति ने ब्राह्मणों को आध्यात्मिक फासीवाद की सामाजिक प्रक्रिया निर्मित करने को विवश कर दिया जो इस परजीवीवाद का किला बन गयी।[58]

वे निष्कर्ष निकालते हैं कि ब्राह्मणों के बाल्यकाल का निर्माण अपने आप में 'आनुवांशिक और अरूपान्तरणीयता की सामाजिक प्रवृत्ति वाला होता है'।[59] इस घृणा के आधार पर वे भारत में एक गृह-युद्ध की परिकल्पना करते हैं, और दलित-बहुजनों से अपील करते हैं कि वे समष्टि और व्यष्टि स्तरों पर गृह-युद्ध प्रारम्भ करें।[60] हिन्दू देवी-देवताओं अपनी विकृत परिकल्पनाओं का उद्धरण देते हुए इलाइया भारत में एक पूर्ण 'सशस्त्र युद्ध' का सुझाव देते है :

> ऐतिहासिक रूप से अगड़ी जातियों ने पिछड़ी जातियों के लोगों को हथियारों के बल पर दबाया, जैसा कि हिन्दू देवी-देवताओं का स्रोत अपने आप में हथियारों के उपयोग की संस्कृति में जड़ जमाये है। एस.सी./एस.टी./ओ.बी.सी. को इसलिए भारत से हिन्दू हिंसा को समाप्त करने की प्रक्रिया में सशस्त्र युद्ध की ओर मुड़ना ही होगा।[61]

हिंसक उभार की तर्ज पर, जैसा कि यूरोप में हुआ था, इलाइया एक 'बड़े गृह-युद्ध' की भविष्यवाणी करते हुए इसे एक 'अनिवार्य बुराई'[62] के रूप में देखते हैं और दावा करते हैं कि 'भारत में गृह युद्ध में अगुवाई करने की विशाल क्षमता दलितों में है' जिनको 'बौद्धों और ईसाइयों का भी साथ होगा ... जो एक ही वृक्ष के रूप में विकसित हो रहे हैं'। जो भी हो, इलाइया बौद्ध धर्म का नाम सिर्फ ऊपरी तौर पर लेते हैं ताकि हिन्दू धर्म के विरुद्ध एक संगठित सेना खड़ी की जा सके, क्योंकि इस पुस्तक में अन्यत्र वह कहते हैं कि भारतीय दलित ईसा मसीह को बुद्ध से अत्यधिक शक्तिशाली मुक्तिदाता के रूप में पाते हैं।[63]

ऐसी विषाक्त और घृणा से भरी पुस्तक का प्रकाशन सेज पब्लिकेशन्स जैसी एक सम्मानित प्रकाशन संस्था ने किया है जो एक चेतावनी का संकेत होना चाहिए। इससे भी अधिक आश्चर्यजनक बात यह है कि सेज पब्लिकेशन्स ने एक असामान्य कदम

उठाते हुए प्रकाशन की ओर से एक विशेष टिप्पणी प्रकाशित की है जिसमें लेखक की 'अद्वितीय शोध प्रक्रिया और तर्कों की सूक्ष्मता' की प्रशंसा की गयी है।

डी.एफ.एन. की हाल की गतिविधियाँ

2005 में कांचा इलाइया के साथ-साथ डी.एफ.एन. के प्रतिनिधियों ने मानवाधिकार पर संयुक्त राज्य अमरीका की सरकार की उप-समिति के समक्ष साक्ष्य दिये थे, जिसमें उन्होंने भारत के विरुद्ध हस्तक्षेप की अमरीकी नीतियों के पक्ष में तर्क दिये थे। उस सुनवाई का शीर्षक था 'वर्ण-व्यवस्था के शिकार 20 करोड़ लोगों के लिए समानता और न्याय'।[64] वैश्विक मानवाधिकार पर गठित संयुक्त राज्य अमरीका के आयोग के अध्यक्ष ने यह कहते हुए डी.एफ.एन. के रुख का समर्थन किया था कि 'धर्मान्तरण करके ईसाई बने लोगों और ईसाई मिशनरियों को विशेष रूप से लक्ष्य बनाया जा रहा है, और ईसाइयों के विरुद्ध हिंसा पर प्राय: सजा नहीं मिलती'। जॉन दयाल ने, जिनके डी.एफ.एन. के साथ निकट सम्बन्ध हैं, भारत की इस आलोचना की प्रशंसा एक 'ऐतिहासिक क्षण' के रूप में की थी।[65]

2006 में वॉशिंगटन के कैपिटल हिल में दक्षिणपन्थी ईसाई मूलतत्ववादी सिनेटर रिक सैन्टोरम (Rick Santorum) द्वारा एक 'धार्मिक स्वतन्त्रता दिवस' का आयोजन किया गया था। डी.एफ.एन. के जोजेफ डी'सूजा ने उसमें मुख्य भाषण दिया था जिसमें उन्होंने 'हिन्दू अतिवाद' को सभी प्रकार की धार्मिक हिंसा के लिए उत्तरदायी ठहराया था। उन्होंने विश्व समाज से अनुरोध किया कि भारत के आन्तरिक संघर्षों में तथा भारत के राज्यों के धर्मान्तरण के अनुचित तरीकों को प्रतिबन्धित करने वाले कानूनों का विरोध करने के लिए वे हस्तक्षेप करें।[66] उस अवसर का उपयोग यह घोषणा करने के लिए किया गया कि भारत में होने वाली 'विश्व धार्मिक स्वतन्त्रता दिवस' की रैली में 1,00,000 दलित ईसाई भाग लेंगे। क्रिश्चियैनिटी टुडे पत्रिका ने क्रिश्चियन सॉलिडैरिटी वर्ल्डवाइड के आरोपों का समर्थन किया, जो गलत तौर-तरीकों से ईसाई प्रचारक धर्मान्तरण को रोकने के लिए बनाये गये भारतीय कानूनों को निरस्त करवाने की कोशिशों में लगी है।[67]

2007 में डी.एफ.एन. और उससे सम्बद्ध संगठनों ने कांग्रेसनल ह्यूमन राइट्स कॉकस के विवरण में प्रभावी भूमिका निभायी जिसका विषय था 'अछूत : दलित महिलाओं की दुर्दशा'। इस कॉकस ने नैन्सी रिक्स (डी.एफ.एन. अध्यक्ष), जोजेफ डी'सूजा (डी.एफ.एन. अन्तर्राष्ट्रीय अध्यक्ष), कुमार स्वामी (ऑल इण्डिया क्रिश्चियन काउंसिल) के साक्ष्य सुने। और अमरीका स्थित एक जानी-मानी भारत विरोधी आन्दोलनकारी स्मिता नरूला ने भी डी.एफ.एन. के सन्देश को आगे बढ़ाया।[68] इस विवरण ने एक समवर्ती प्रस्ताव के लिए मार्ग प्रशस्त किया।

भारत की आन्तरिक समस्याओं में अन्तराष्ट्रीय हस्तक्षेप के लिए ऐसी दलील के अलावा डी.एफ.एन. इस काम के लिए धन की व्यवस्था भी करता है जिसे वह 'दलित सशक्तीकरण' कहता है। ऐसा ही एक मोर्चा है ऑपरेशन मर्सी चैरिटबल कम्पनी (ओ.एम.सी.सी.), जो स्पष्ट रूप से ईसाई 'गुड शेफर्ड' स्कूलों की स्थापना का लक्ष्य रखती है।[69] 'एक हज़ार दलित एडच्यूकेशन एण्ड इमैनसिपेशन सेंटर' खोलने की इसकी एक महत्वाकांक्षी योजना है।[70] इसकी वेबसाइट पाठकों को सूचित करती है कि यह संगठन 'गाँधी, नेहरू और अम्बेडकर द्वारा हमें दी गयी स्वतन्त्र लोकतान्त्रिक परम्परा में' विश्वास करता है। जो भी हो, डी.एफ.एन. के अध्यक्ष जोजेफ डी'सूजा स्वयं वर्ण-व्यवस्था मिटाने के लिए महात्मा गाँधी की सेवाओं के मूल्य को कम करके दिखाते हैं।[71] इस प्रकार ओ.एम.सी.सी. केवल डी.एफ.एन. के एक अन्य मोर्चे की तरह काम करती है, और स्वयं को एक गाँधी समर्थक चेहरा प्रदान करती है ताकि वह अपने गाँधी विरोधी रुख को सन्तुलित कर सके।

ऑल इण्डिया क्रिश्चियन काउंसिल (ए.आई.सी.सी.)

हालाँकि डी.एफ.एन. अमरीका का संगठन है, इसका सम्बन्ध ऑल इण्डिया क्रिश्चियन काउंसिल से है, जिसे 'चर्च संस्थानों और ईसाई व्यक्तित्वों के भारत में सबसे बड़े गठबन्धन' और 'हर प्रकार के ईसाइयों, मिशन एजेंसियों, संस्थानों, फेडरेशन और सामान्य ईसाई नेताओं के एक राष्ट्रव्यापी गठबन्धन' के रूप में वर्णित किया गया है।[72] यह 'क्रिश्चियन सॉलिडैरिटी वर्ल्डवाइड' (Christian Solidarity Worldwide, सी.एस.डब्ल्यू.) से सम्बद्ध रही है, जिसका नेतृत्व बैरोनेस कैरोलिन कॉक्स द्वारा किया जाता है।[73] (सी.एस.डब्ल्यू. और बैरोनेस पर अधिक जानकारी के लिए अध्याय 16 देखें) सी.एस.डब्ल्यू. ने ईसाई-दलित गठजोड़ के वैश्वीकरण को सुगम बनाया है, जैसा कि 2001 के डर्बन सम्मेलन में, जहाँ इसने भारत सरकार के विरुद्ध रुख की अगुवाई की थी।[74] इसके नायकों में से एक, जॉन दयाल, भारत द्वारा उत्पीड़न के विरुद्ध साक्ष्य देते रहे हैं और पश्चिम के संस्थानों से हस्तक्षेप की अपील करते रहे हैं।[75]

ए.आई.सी.सी. भारतीय उत्पीड़न साहित्य की उस ढंग से प्रस्तुति करने में दक्ष है जो लोगों का ध्यान आकर्षित करती है। उदाहरण के लिए, संयुक्त राज्य अमरीका की कांग्रेस के सदस्य एडॉल्फस टाऊन्स ने, जिन्होंने 1998 में भारत को आतंकवादी राष्ट्र घोषित करना चाहा था,[76] ए.आई.सी.सी. द्वारा विकसित किये गये उत्पीड़न साहित्य का उपयोग भारत को 'एक वास्तविक लोकतन्त्र नहीं, बल्कि एक धर्मशासित अत्याचारी' के रूप में चित्रित करने के लिए किया, और कहा कि संयुक्त राज्य अमरीका को 'धार्मिक स्वतन्त्रता का उल्लंघन करने वाले के विरुद्ध अवश्य ही समुचित प्रतिबन्ध लगाने चाहिए'।[77]

अपने जन सम्पर्क अभियान को जारी रखते हुए, ए.आइ.सी.सी. ने इस बात का श्रेय लिया कि उसकी क्रिश्चियन सॉलिडैरिटी वर्ल्डवाइड और डी.एफ.एन. के साथ भागीदारी है जिसके परिणामस्वरूप ही इंग्लैण्ड के विदेश विभाग द्वारा 'दलित दासता पर एक बयान' जारी किया गया। सन 2007 में ए.आई.सी.सी. ने मानवाधिकार आयोग और ब्रसेल्स में यूरोपीय यूनियन के सांसदों को इस अत्याचार के सम्बन्ध में बताया और स्कॉटलैंड और नॉर्वे की सुनवाइयों में भी भाग लिया। उस वर्ष जब ब्रिटेन के हाउस ऑफ़ कॉमन्स ने वर्ण-आधारित दमन पर बहस की तो एक सांसद ने खुलेआम ए.आई.सी.सी. द्वारा उनकी भारत यात्रा प्रायोजित करने की चर्चा की।[78]

2007 में संयुक्त राज्य अमरीका की संसदीय मानवाधिकार समिति के समक्ष दलित महिलाओं की दुर्दशा पर ए.आई.सी.सी. और डी.एफ.एन. के नेताओं द्वारा गवाही देने के बाद[79] निकेलोडिओन टीवी ने, जो बच्चों का एक चैनल है, एक एमी (Emmy) पुरस्कृत लोकप्रिय बच्चों के सामाचार कार्यक्रम में एक कार्यक्रम प्रसारित किया जिसका शीर्षक था 'अनटचेबल किड्स ऑफ़ इण्डिया', जिसमें ए.आई.सी.सी. और ऑपरेशन मर्सी के बारे में बताया गया।[80] इस व्यापक प्रचार को विकसित करने के बाद, ए.आई.सी.सी. ने आगे के राजनैतिक प्रभाव के लिए अपना आधार तैयार किया। ए.आई.सी.सी. अध्यक्ष ने व्यक्तियों की तस्करी रोकने, और दलितों के शोषण के खिलाफ प्रस्ताव पारित करवाने के लिए मुख्य रूप से संयुक्त राज्य अमरीका के सेनेटरों और उसके राजदूत से भेंट की। उनकी दलीलें विशेष रूप से भारत की राज्य व्यवस्था के विरुद्ध थीं। ए.आई.सी.सी. और क्रिश्चियन सॉलिडैरिटी वर्ल्डवाइड संयुक्त राज्य अमरीका और यूरोपीय अधिकारियों को 'दलित और ईसाई उत्पीड़न' पर जानकारी देने के लिए एक-दूसरे के साथ सक्रिय सहयोग करते हैं।[81]

2009 में ए.आई.सी.सी. के जोजेफ डी'सूजा को कनाडा की क्रॉसरोड्स क्रिश्चियन कम्युनिकेशन्स के एक टीवी टॉक शो में दलित अधिकारों के लिए एक जिहादी के रूप में पेश किया गया था। उन्होंने भारत के सभी भागों में दलितों पर अत्याचार को एक मुख्यधारा के नियम के रूप में बताया, जिसके कारण टीवी कार्यक्रम के संचालक यह बोल पड़े कि भारत का लोकतन्त्र एक धोखा है। डी'सूजा के लिए वे अम्बेडकर और गाँधी नहीं थे जिन्होंने दलितों के जीवन को बेहतर बनाया, बल्कि वह स्लमडॉग मिलियनेयर फिल्म थी, जिसकी उन्होंने गलत ढंग से व्याख्या यह दावा करने के लिए की कि दलित गाँवों में पाँच वर्ष से अधिक उम्र की सभी बच्चियों को उनके माता-पिता द्वारा यौन दासता में डालने के लिए एक या दो हज़ार डालरों में बेच दिया जाता है।[82] इस कार्यक्रम को '100 हंटली स्ट्रीट' नामक एक ईसाई प्रचारक मीडिया समूह द्वारा प्रसारित किया गया, जो अपने कट्टरपन्थ और गैर-ईसाई समूहों पर लांछन लगाने के लिए जाना जाता है।[83] अमरीकी समाचार माध्यम पहले से ही कई महीनों तक अटकलें लगाते रहे कि क्या स्लमडॉग मिलियनेयर में जिस युवा महिला ने

अभिनय किया उसे उसके दबे-कुचले धन के लालची परिवार ने भारी राशि लेकर बेच दिया होगा या नहीं।

ए.आई.सी.सी. बड़ी चतुराई से स्वयं को दमित लोगों के प्रतिनिधि के रूप में स्थापित करती है। उदाहरण के लिए, धार्मिक स्वतन्त्रता या विश्वास पर संयुक्त राष्ट्र संघ की विशेष दूत सुश्री अस्मा जहाँगीर भारत आयीं तब क्रिश्चियन सॉलिडैरिटी वर्ल्डवाइड ने 'सिकंदराबाद में ए.आई.सी.सी. नेताओं से विशेष दूत के कर्मचारियों का कृपापूर्वक परिचय कराया था। सी.एस.डब्ल्यू. के तर्क देने वाले अधिकारी जहाँगीर से पिछले वर्ष उनके लन्दन दौरे के समय मिले'।[84] अपनी रपट में जहाँगीर ने ईसाई संगठनों के दृष्टिकोणों को ही प्रतिध्वनित किया, और ए.आई.सी.सी. द्वारा जारी पर्चे में कहा गया कि उनका 2008 का भारत दौरा सी.एस.डब्ल्यू. (यूनाइटेड किंगडम) के भागीदार के रूप में ए.आई.सी.सी. ने आयोजित किया था। उड़ीसा का दौरा करने के बाद उनकी रपट में धार्मिक स्वतन्त्रता के राज्य स्तरीय अधिनियमों पर चिन्ता व्यक्त की गयी थी जिनमें अनैतिक तरीकों से धर्मान्तरण पर रोक लगायी गयी थी, और आगे इसने माँग की कि ईसाई बने पूर्व दलित समुदायों के लोगों को हिन्दू दलितों के लिए आरक्षित सकारात्मक सरकारी कार्यक्रमों में हिस्सा दिया ही जाना चाहिए। दोनों विचार ए.आई.सी.सी. के मुख्य विषय रहे हैं।[85]

अपनी संयुक्त राज्य अमरीका की नेटवर्किंग के साथ ए.आई.सी.सी. ने भारतीय राजनीति में भी अपनी बाँहें चढ़ानी शुरू कर दी हैं। इसने सत्तारूढ़ पार्टी को भारत के महाराष्ट्र राज्य में होने वाले विधान सभा चुनावों के लिए ईसाई उम्मीदवारों की अपनी एक सूची दी थी।[86]

भारत के विरुद्ध ईसाई लॉबिंग के साथ संयुक्त राज्य अमरीका के राजनीतिज्ञों और अधिकारियों के सम्बन्धों के उदाहरण

1980 के दशक से ही उन ईसाई प्रचारक गुटों के साथ अनेक अमरीकी राजनीतिज्ञों और नियुक्त नौकरशाहों के मजबूत सम्बन्ध रहे हैं जो भारत में हस्तक्षेप का समर्थन करते हैं। इसके उदाहरणस्वरूप हम ऐसे कुछ राजनीतिज्ञों की सूची बनायेंगे।

संयुक्त राज्य अमरीका की कांग्रेस के सदस्य क्रिस्टोफर स्मिथ ने, जो 'ग्लोबल ह्यूमन राइट्स ऐण्ड इण्टरनैशनल ऑपरेशन्स' (Global Human Rights and International Operations) की अफ्रीका पर गठित समिति के अध्यक्ष हैं, भारत में दलितों द्वारा झेले गये मानवाधिकार उल्लंघनों और भेदभाव के मामले पर 2005 में एक सुनवाई की थी। इसके विभिन्न आयोजनों में डी.एफ.एन. के आन्दोलनकारियों का दबदबा था और कांग्रेस सदस्य स्मिथ ने उनके रुख का समर्थन किया। स्मिथ एक कट्टर ईसाई हैं जो गर्भपात विरोधी और अन्य कट्टरपन्थी विश्वासों के लिए जाने जाते हैं, और जिन्होंने सुनियोजित ढंग से उन कार्यक्रमों को बन्द करवा दिया जो उन दलित

महिलाओं के सशक्तीकरण के लिए थे जो उनके ईसाई मूल्यों के तहत चलने को तैयार नहीं थीं : यह ईसाइयत है, न कि दलित सशक्तीकरण या महिला अधिकार, जिसके लिए वे मत बना रहे हैं।[87]

डी.एफ.एन. की गतिविधियों को प्रायोजित करने वाले एक अन्य कांग्रेसी सदस्य हैं जोजेफ पिट्स। सन 2004 में वे तथ्यों का पता लगाने के एक मिशन पर भारत गये थे, और उन्होंने निष्कर्ष निकाला कि गलत ढंग से धर्मान्तरण को रोकने के लिए कानून अलोकतान्त्रिक थे।[88] उस वर्ष उन्होंने भारत पर आयोजित पी.आई.एफ.आर.ए.एस. (Policy Institute for Religion and State)[89] के सेमिनार में भी भाग लिया,[90] और वे अपने पाकिस्तान समर्थक रुख के लिए जाने जाते हैं।[91] (पी.आई.एफ.आर.ए.एस. पर विस्तार से चर्चा इसी अध्याय में बाद में की गयी है) सन 2001 में उन्होंने संयुक्त राज्य अमरीका की कांग्रेस में एक कश्मीर मंच की स्थापना करने का प्रयास किया था। सन 2003 में उन्होंने कैपिटल हिल में कश्मीर पर एक पाकिस्तान समर्थक सम्मेलन का उद्घाटन किया था। वे 'लम्बे समय से पाकिस्तान समर्थक लॉबी से सहानुभूति रखने वाले' के रूप में जाने जाते हैं, और भारतीय अधिकारियों ने उनके आयोजनों का बहिष्कार किया था।[92] एक ईसाई संरक्षणवादी के रूप में 2005 में अमरीकन कंजर्वेटिव यूनियन और 2004 में क्रिश्चियन कोलिशन से उन्होंने अपने मतदान के रिकार्ड पर शत प्रतिशत अंक प्राप्त किये थे।[93] पूर्व संयुक्त राज्य सेनेटर रिक सैन्टोरम के साथ पिट्स ने डी.एफ.एन. के लिए 2006 में एक धार्मिक स्वतन्त्रता दिवस समारोह आयोजित करने में सहायता प्रदान की थी।[94] पिट्स ईराक में संयुक्त राज्य अमरीका के हस्तक्षेप का समर्थन करने के लिए भी जाने जाते हैं, और उन्होंने राष्ट्रीय स्कूल पाठ्यक्रम में क्रिश्चियन इंटेलिजेंट डिजाइन सिद्धान्त को घुसाने के भी प्रयास किये थे।[95] वे अब एथिक्स एण्ड पब्लिक पॉलिसी सेंटर के साथ सीनियर फेलो हैं, जहाँ 'अमरीका के शत्रु' नामक कार्यक्रम का नेतृत्व कर रहे हैं, जो 'अमरीका और पश्चिम के समक्ष पश्चिम विरोधी शक्तियों की बढ़ती कतार द्वारा उपस्थित किये गये खतरों की पहचान, उनके अध्ययन और उनके प्रति जनता में जागरूकता बढ़ाने पर ध्यान केन्द्रित करेगा, जो हमारे भविष्य पर अधिकाधिक छाते जा रहे हैं और विश्व भर में धार्मिक स्वतन्त्रता का उल्लंघन कर रहे हैं'।[96]

कांग्रेस सदस्य ट्रेन्ट फ्रैंक्स ने संयुक्त राज्य अमरीका की कांग्रेस में एक प्रस्ताव पेश किया जिसमें भारत की वर्ण-व्यवस्था सम्बन्धी समस्याओं में अमरीकी हस्तक्षेप करने की माँग की गयी थी। डी.एफ.एन., ए.आई.सी.सी. और उनसे सम्बद्ध संगठनों और व्यक्तियों द्वारा एक ऐतिहासिक विजय के रूप में उसका स्वागत किया गया है। उन्होंने 2004 में भारत पर आयोजित पी.आई.एफ.आर.ए.एस. के सम्मेलन में भी भाग लिया था।[97] वे एक शक्तिशाली दक्षिणपन्थी संरक्षणवादी हैं जो भारत में हाशिये पर के वर्गों के लिए अमरीकी हस्तक्षेप की माँग करते हैं, जबकि संयुक्त राज्य अमरीका में सबसे बड़े और पुराने नागरिक अधिकार समूह, द नेशनल एसोसिएशन फ़ॉर द

एडवांसमेंट ऑफ़ कलर्ड पीपल, ने उनका दर्जा काफी नीचे रखा है, क्योंकि संयुक्त राज्य में हाशिये पर के लोगों के लिए उनके समर्थन का अभाव है।[98] वे विश्व भर के ईसाइयों को यह कहने के लिए कि वे बराक ओबामा की हार के लिए प्रार्थना करें, आमूल परिवर्तनवादी ईसाई प्रचारक गॉड टीवी चैनल के कार्यक्रम में आये।[99]

विलियम आर्मस्ट्रांग एक पूर्व संयुक्त राज्य सिनेटर हैं जो दलित फ्रीडम नेटवर्क के सलाहकार बोर्ड के एक सक्रिय सदस्य हैं।[100] वे कोलोराडो क्रिश्चियन यूनिवर्सिटी के अध्यक्ष के रूप में सेवारत हैं,[101] जो 'एक ऐसे वातावरण की आवश्यकता समझते हैं जिसमें धर्मान्तरण की सम्भावनाओं का पोषण होता हो', और वे अपने छात्रों, शिक्षकों, और कर्मचारियों को 'भारत जैसे स्थानों' में भेजकर ऐसा करते हैं।[102]

सेनेटर सैम ब्राउनबैक (Sam Brownback) ने, जो दक्षिणपन्थी ईसाई समूहों के साथ मिलकर काम करते हैं, ने अमरीकी संसद की विदेशी सम्बन्ध समिति में काम किया है। मेथोडिस्ट चर्च उनके इस रुख से प्रसन्न था कि हिन्दू 'अतिवाद' दक्षिण एशिया में शान्ति को खतरा उपस्थित कर रहा है, और उन्होंने सुझाव दिया कि 'संयुक्त राज्य अमरीका को दक्षिण एशिया में आक्रामक राजनयिकता के साथ जुटने की आवश्यकता है'।[103] ब्राउनबैक, पिट्स और अनेक अन्य महत्वपूर्ण राजनीतिज्ञों के साथ, एक तरह से गुप्त समूह के अंग हैं जो स्वयं को 'द फैमिली' यानी 'परिवार' कहता है, और जिसने अमरीका की विदेश नीति को दशकों से प्रभावित किया है।[104]

एडॉल्फस टाउन्स (Edolphus Towns) ने, जो संयुक्त राज्य अमरीका की कांग्रेस के सदस्य हैं और जिनका अभिषेक एक बैप्टिस्ट मन्त्री के रूप में हुआ है, अमरीकी कांग्रेस में इस आरोप पर भारत की निन्दा करने के लिए ए.आई.सी.सी. की रपटों को आधिकारिक तौर पर उद्धृत किया कि भारत का विदेशी योगदान नियामक अधिनियम धर्मान्तरण के लिए आने वाले विदेशी धन के प्रवाह की निगरानी रखता है।[105] भारत की प्रभुसत्ता के विरुद्ध लगातार बने रहे उनके रुख का चित्रण निम्नलिखित वक्तव्य द्वारा किया गया है :

> अनेक कदम हैं जिन्हें हम दक्षिण एशिया में सभी लोगों के अधिकारों के समर्थन में उठा सकते हैं। समय आ गया है कि हम इन कदमों को उठायें। इनमें हमारी आर्थिक सहायता और भारत के साथ व्यापार में कटौती के अलावा संयुक्त राज्य अमरीका की कांग्रेस में औपचारिक रूप से पंजाब के सिखों के आत्म-निर्णय, खालिस्तान, नागालैण्ड के ईसाई, कश्मीरी और दक्षिण एशिया के सभी लोगों के लिए, जो स्वतन्त्रता की माँग कर रहे हैं, प्रस्ताव लाना शामिल है। केवल आत्म-निर्णय के अधिकार का उपयोग कर, जो लोकतन्त्र का सार है, वहाँ के लोग अन्ततः स्वतन्त्रता, शान्ति और समृद्धि के साथ जीवन निर्वाह कर सकते हैं।[106]

यहाँ वर्णित अधिकांश राजनीतिज्ञों के विपरीत, टाउन्स एक अफ्रीकी अमरीकी, डेमोक्रैट और एक कॉस्मोपॉलिटन वामपंथ की ओर झुकाव रखने वाले एक सर्वदेशी

आबादी वाले शहरी जिले के प्रतिनिधि हैं। स्पष्ट है कि ए.आइ.सी.सी. और डी.एफ.एन. अनेक प्रकार के समूहों को प्रभावित करने में सफल रहे हैं।

हमारा अन्तिम उदाहरण वॉशिंगटन स्थित 'अमरीकी सरकार का कार्मिक प्रबन्धन कार्यालय' (US Office of Personnel Management) के सुसाई एंथनी (Susai Anthony) का है। उन्होंने संयुक्त राज्य की कांग्रेस के समक्ष 'भारत में ईसाइयों के उत्पीड़न पर उनके सामने तथ्य रखने के लिए' एक अभिलेख प्रस्तुत किया है, यह दावा करते हुए कि यह 'भारतीय अमरीकी ईसाइयों के सामूहिक चिन्तन को प्रतिबिम्बित करता है।' उन्होंने हिन्दू धर्म की परिभाषा इस वक्तव्य के साथ की कि 'अधिकांश हिन्दू प्रथाएँ आर्यों द्वारा लायी गयी थीं', और 'हिन्दू धर्म जैसा कि प्रचार किया जाता है वैसा उदारवादी धर्म नहीं है'। उन्होंने वर्षवार और राज्यवार 'अछूतों और मूल निवासियों के विरुद्ध उत्पीड़न के मामलों' की निर्दिष्ट संख्या और उनके आँकड़े दिये। उन्होंने भारतीय मुसलमान और ईसाई समुदायों के अन्दर वर्ण भेद और वर्ण-उत्पीड़न की व्यापक उपस्थिति को बड़ी आसानी से नज़रन्दाज भी किया। उन्होंने दावा किया कि यह मिशनरी शिक्षा ही है, जो भारतीयों को वैसे कार्यों को करने योग्य बनाती है जो 'पारम्परिक हिन्दू कार्यों से अलग हैं'। उनकी दृष्टि में भारत की पन्थ निरपेक्षता वैध नहीं थी और उन्होंने मध्य प्रदेश के एक कानून की आलोचना की जिसने किसी भी व्यक्ति के धर्मान्तरण के लिए 'बल, छल, या लालच' का उपयोग करने को प्रतिबन्धित कर दिया है। भारत के 'पहले दस राज्यों द्वारा किये जाने वाले ईसाई विरोधी अपराधों' पर आँकड़े भी उनकी रपट में प्रस्तुत किये गये और स्वतन्त्र रूप से आरोपों की पुष्टि के बिना किसी प्रयास के उन्हें अमरीकी अधिकारियों द्वारा स्वीकार भी कर लिया गया। अमरीकी सरकार को बताया गया कि 'भारत में ईसाइयों की समस्या कोई आन्तरिक मामला नहीं है', और यह कि इसमें अन्तर्राष्ट्रीय हस्तक्षेप की आवश्यकता है।[107]

दक्षिणपन्थी विचार मंच और नीति केन्द्र

ईसाइयों द्वारा वित्तपोषित व्यक्तित्वों द्वारा उत्पादित उत्पीड़न साहित्य को असंख्य अमरीकी संस्थान लेते हैं, उन्हें अध्यवसायिक रूप से प्रभावी ढंग से फिर से सुव्यवस्थित करते हैं, और अमरीका के शक्ति केन्द्रों के नीति-निर्माताओं को उनके उपयोग के लिए देते हैं। वे कहानियों को कुछ इस प्रकार बुनते हैं कि धर्मशास्त्र और दक्षिणपन्थी राजनीति की सभ्य भाषा के माध्यम से जंगली व्यवहार दिखाया जा सके। ऐसे संस्थानों के कुछ प्रमुख उदाहरण नीचे वर्णित किये गये हैं।

पॉलिसी इंस्टीटयूट फ़ॉर रिलिजन एण्ड स्टेट (पी.आई.एफ.आर.ए.एस.)

'धर्म और राज्य के लिए नीति संस्थान' (Policy Institute for Religion and State) वकालत करने वाला एक शक्तिशाली समूह है जो अपना मिशन वक्तव्य वस्तुनिष्ठ,

निरपेक्ष रूप से देता है :

> टिकाऊ समाजों के सृजन में लोकतन्त्र, मानवाधिकार और विवेक की स्वतन्त्रता की भूमिका की समझ को प्रोत्साहित करने के माध्यम से धर्म और राज्य के बीच विचार-विमर्श के लिए एक लोकतान्त्रिक आधार को प्रोत्साहित करना।[108]

जो भी हो, यह उल्लेखनीय है कि पी.आई.एफ.आर.ए.एस. बोर्ड का प्रत्येक सदस्य अब्राहमिक पन्थ का है। वास्तव में, इसके अनेक सदस्य ईसाई प्रचारक संस्थानों का भी प्रतिनिधित्व करते हैं जिनका सीधा स्वार्थ हिन्दू धर्म से टकराता है। उदाहरण के लिए, इसके कार्यपालक निदेशक जॉन प्रभुदोस द फेडरेशन फ़ॉर इण्डियन अमरीकन क्रिश्चियन ऑर्गेनाइजेशन्स ऑफ़ नॉर्थ अमरीका (FIACONA) का प्रतिनिधित्व इसके गवर्नमेंटल अफेयर्स कमिटी के अध्यक्ष के रूप में करते हैं। फियाकोना ने ईसाइयों के विरुद्ध कथित हिन्दू उत्पीड़न के बारे में जन जागरण और प्रचार के लिए वॉशिंगटन में व्यापक लॉबिंग की है।

सुरक्षा और आतंकवाद विरोधी कार्रवाई के विशेषज्ञ बी. रमन ने, जिन्होंने छह वर्षों तक भारत के रिसर्च एण्ड एनालिसिस विंग (रॉ) के आतंकवाद विरोधी डिविजन का नेतृत्व किया था और जो वर्तमान में चेन्नई के इंस्टीटयूट फ़ॉर टॉपिकल स्टडीज के निदेशक हैं, पिफ्रास और फियाकोना पर गहन शोध किया है। उन्होंने इसके कार्यपालक निदेशक को रहस्यमय चरित्र और अनेक रूपों में पाया, जो :

> ... स्वयं को कभी-कभी जॉन प्रभुदोस कहते हैं (उदाहरण के लिए जब वे ईराक पर अमरीकी हमले और उसे कब्जे में करने के बाद वहाँ गये) और कभी-कभी पी.डी. जॉन (उदाहरण के लिए जब वे 2002 के दंगों के बाद गुजरात गये) और उनके दो चेहरे हैं। यह भी आरोप लगाया गया है कि वे अन्य नामों—जैसे जे.पी. दोस—का भी उपयोग करते हैं।[109]

इससे भी अधिक उजागर करने वाली है पिफ्रास की फियाकोना के साथ चलायी जाने वाली गतिविधियों में अन्तर्निहित पूर्वाग्रह सम्बन्धी रमन की व्याख्या। प्रभुदोस का वर्णन करते हुए वह कहते हैं :

> फियाकोना वॉशिंगटन में भारत में धार्मिक अल्पसंख्यकों के अधिकारों का उल्लंघन और ईसाइयों के धर्मान्तरण के अधिकार पर लगाये गये रोक के मामले में लॉबिंग पर, और पिफ्रास मुख्य रूप से लोकतन्त्र और सुशासन को, विशेष रूप से इस्लामी विश्व में, प्रोत्साहित करने की बुश प्रशासन की नीति को समर्थन देने में ध्यान केन्द्रित करता है। ... मेरे शोध और मेरी खोज ने भी संकेत दिया है कि जहाँ एक ओर प्रभुदोस और उनके संगठन भारत में ईसाइयों और मुसलमानों के मानवाधिकारों के उल्लंघन की आलोचना करने में अत्यधिक मुखर हैं, वहीं दूसरी ओर वे अमरीकी सैनिकों द्वारा ईराक के सुन्नी मुसलमानों के मानवाधिकारों के उल्लंघन, अमरीकी सैनिकों द्वारा अबु गरीब जेल में बरती गयी कथित नृशंसता, और अमरीकी सैनिकों द्वारा ईराकी सुन्नियों के कथित संहार, विशेषकर फलुजा

में, पर चुप्पी साध रखी है। न ही मैंने क्यूबा के ग्वांटानामो बे में मुस्लिम बन्दियों के नृशंस मानवाधिकार उल्लंघनों पर उनके और उनके संगठनों द्वारा कोई आन्दोलन देखा।[110]

पिफ्रास के एक अन्य बोर्ड सदस्य हैं ब्रूस सी. रॉबर्सटन, जो जॉन हॉपकिन्स विश्वविद्यालय में दक्षिण एशिया अध्ययन की पीठ पर आसीन हैं और भारत में काम कर रहे मिशनरियों के पुत्र हैं। वे संयुक्त राज्य अमरीका के विदेश विभाग के विदेश सेवा संस्थान एन.एफ.ए.टी.सी. में साउथ एशिया एरिया स्टडीज के अध्यक्ष भी थे।[111] वे ईसाई प्रचारकों में प्रभावी हैं, और रामायण पर एक स्कूली पाठ्यक्रम विकसित करने के लिए अमरीकी नेशनल एण्डाउमेंट ऑफ़ ह्यूमैनिटीज से एक विवादास्पद अनुदान देने की मुख्य भूमिका में थे। उसके परिणामस्वरूप जो शिक्षक प्रशिक्षण पुस्तिका बनी, उसमें एक गीत शामिल किया गया जिसमें राम को अन्य बातों के अलावा नस्लवादी, मुस्लिम विरोधी और महिलाओं का दमन करने वाले के रूप में चित्रित किया गया था।[112]

पिफ्रास के सम्मेलन

विश्व भर में सम्मेलन आयोजित होते हैं जहाँ शिक्षाविदों को सम्मानित किया जाता है, लॉबी करने वाले अपने एजेंडे को आगे बढ़ाते हैं, और राजनीतिज्ञ अपने लिए समर्थन प्राप्त करते हैं। ये ही वे मंच हैं जहाँ प्रभावों के महत्वपूर्ण नेटवर्क विकसित होते हैं। इन सम्मेलनों में से कुछ की छान-बीन करके हम यह दिखायेंगे कि किस तरह ईसाई प्रचारक, शैक्षिक और सरकारी शक्तियों के समूह एक साथ मिलते हैं और एक दमनकारी भारतीय राज्य की, एक विफल लोकतन्त्र की जो निरीह धार्मिक अल्पसंख्यकों को उत्पीड़ित करता है, तस्वीर बनाने के लिए लगातार सामग्री उपलब्ध कराते हैं। सन्देश यह है कि भारत के दमित लोगों को बचाना संयुक्त राज्य अमरीका के धार्मिक और राजनीतिक हित में है।

2002 में, पिफ्रास ने एक दक्षिण एशिया सम्मेलन किया था जिसे यूनाइटेड मेथोडिस्ट बोर्ड ऑफ़ चर्च एण्ड सोसाइटी तथा द नेशनल काउंसिल ऑफ़ चर्चेज ऑफ़ क्राइस्ट इन द यू.एस.ए. ने प्रायोजित किया था। इसे प्रायोजित करने में सहयोगी अन्य प्रमुख विचार समूह (अधिकांशत: दक्षिणपन्थी या ईसाई प्रचारक मानसिकता वाले) के थे : एथिक्स एण्ड पब्लिक पॉलिसी सेंटर, द सेंटर फ़ॉर रिलिजियस फ्रीडम, फ्रीडम हाउस, द इंस्टीटयूट फ़ॉर धर्म इन पब्लिक पॉलिसी, और द एपोस्टॉलिक कमिशन फ़ॉर एथिक्स एण्ड पॉलिसी।

सम्मेलन में जॉन दयाल ने तर्क दिया कि अल्पसंख्यक जन अपनी रक्षा, या अपने विरुद्ध किये जाने वाले अपराधों के लिए अपराधियों को दण्डित करने के लिए भारतीय राज्य पर भरोसा नहीं कर सकते। ब्रूस रॉबर्टसन ने विश्वास पर आधारित

गैरसरकारी संगठनों (एन.जी.ओ.), (जैसे ईसाई प्रायोजित विदेशी समूह) से अनुरोध किया कि वे वैसी सामुदायिक सेवाएँ और अधिक प्रदान करें जो भारत में सरकारें नहीं प्रदान कर रही हैं। के.पी. सिंह ने, जो सिएटल स्थित वाशिंगटन विश्वविद्यालय के संकाय के सदस्य हैं, अपने भड़काऊ दावे को बिना किसी चुनौती के प्रस्तुत किया कि 'भारत की स्वतन्त्रता के बाद से लगभग तीस लाख दलित महिलाओं से बलात्कार हुआ और दस लाख दलितों की हत्या की गयी है'।[113]

भारत में प्रभाव

2004 में भारत के आम चुनाव की पूर्व संध्या पर, पिफ्रास ने 'धार्मिक और राजनैतिक बहुलतावाद के इतिहास का केन्द्र' (Center for the History of Religious and Political Pluralism), यूनिवर्सिटी ऑफ़ लीसेस्टर, इंगलैंड के साथ मिलकर 'भारत के राष्ट्रीय चुनाव और अमरीकी विदेश नीति के हितों' पर एक संगोष्ठी का आयोजन किया था, जिसमें मार्क्सवादी इतिहासकार राम पुण्यानी पिफ्रास के कार्यपालक निदेशक जॉन प्रभुदोस के साथ आमन्त्रित वक्ता थे। उसमें प्रस्तुत मुख्य बात यह थी कि भारत के 4 करोड़ ईसाइयों पर 'हिन्दू राज्य सरकारों' द्वारा संकट है जिन्होंने जोर-जबरदस्ती के लिए ईसाई प्रचारकों को दोषी ठहराने के उद्देश्य से कानून पारित किये हैं। इस पृष्ठभूमि के साथ, गोष्ठी के वक्ताओं का उद्देश्य भारत के चुनाव के प्रभाव के विश्लेषण के रूप में इसे विज्ञापित करना और भारत के प्रति अमरीका की विदेश नीति के लिए अनुशंसाएँ करना था।

स्पष्ट रूप से ऐसे विचार मंच भारत के आन्तरिक मामलों के सन्दर्भ में अमरीकी नीतियों को प्रभावित करते हैं। ये नीतियाँ ईसाई धर्मान्तरण से लेकर जन्म नियन्त्रण और एचआईवी/एड्स, और अमरीकी ईसाई समूहों द्वारा निर्धारित अन्य एजेंडों से सम्बद्ध हैं। स्वास्थ्य कार्यक्रमों के लिए अमरीकी सहायता शर्तों के साथ आती है, जिसमें पी.ई.पी.एफ.ए.आर. (प्रेजिडेंट्स इमर्जेंसी प्लान फ़ॉर एड्स रिलिफ) के तहत एड्स के लिए धन देना भी शामिल है। इनमें से अनेक नियमों का उद्देश्य अमरीकी धन को गर्भपात पर खर्च किये जाने से रोकना है, जो अमरीकी दक्षिणपंथियों के बीच एक ज्वलन्त मुद्दा है। इसका परिणाम जो भी हो, ईसाई प्रचारक एन.जी.ओ. के माध्यम से धन का सुनियोजित प्रवाह सम्पन्न करना है। इसका सामान्य प्रभाव सभी परिवार नियोजन कार्यक्रमों और महिला स्वास्थ्य/प्रसूति सेवाओं तक महिलाओं की पहुँच को सीमित करना, या कम-से-कम बढ़ने से विफल कर देना है। सन 2008 की पुनर्समीक्षा होने तक पी.ई.पी.एफ.ए.आर. धन के प्रवाह के एक तिहाई की आवश्यकता उन कार्यक्रमों पर खर्च करने की थी जो एड्स की रोक-थाम के लिए 'परहेज' को सर्वाधिक अच्छे तरीके के रूप में आगे बढ़ा रहे थे, क्योंकि कैथोलिक और ईसाई प्रचारक दोनों समूहों को जन्म नियन्त्रण के प्रति घृणा है।

2004 में तहलका की एक खोजी रपट ने दिखाया कि व्यापक विदेशी धन, जिसके बारे में दावा किया गया था कि वह एच.आई.वी./एड्स कार्यक्रमों के लिए भेजा गया था, ईसाई समूहों द्वारा धर्मान्तरण के लिए इस्तेमाल किया जा रहा था। रपट के अनुसार यहाँ तक कि एड्स की रोकथाम के लिए आधिकारिक सरकारी नारे को ईसाइयों के एन.जी.ओ. ने बदल दिया था। सरकार की नीति, ए.बी.सी. फ़ॉर 'एब्स्टीनेंस, बिहेवियरल चेंज एण्ड कण्डोम्स' में 'कण्डोम्स' के स्थान पर 'धर्मान्तरित/क्राइस्ट' डालने के लिए उसे संशोधित किया गया।[114]

भारतीय कानून को बदलने के लिए सीधे विदेशी प्रयास भी हो रहे हैं। जब भारत सरकार ने महसूस किया कि एन.जी.ओ. के विदेशी धन को और अधिक पारदर्शी बनाने की आवश्यकता है, तब जॉन दयाल ने, जो ऑल इण्डिया क्रिश्चियन काउंसिल और 'मानवाधिकार के संयुक्त ईसाई मंच' (United Christian Forum for Human Rights) के अध्यक्ष भी हैं, ने वॉशिंगटन में पिफ्रास प्रायोजित सुनवाई और संगोष्ठी में भारत सरकार के विरुद्ध गवाही दी। इस संस्थान की प्रेस विज्ञप्ति कहती है :

> श्री जॉन दयाल इन सरकारी आरोपों का उत्तर देने में अग्रणी रहे हैं कि विदेशी स्रोतों से प्राप्त धन का उपयोग धर्मान्तरण के लिए किया जा रहा है।...[115]

फ्रीडम हाउस

फ्रीडम हाउस एक अन्य शक्तिशाली संस्थान है जो लगभग अनन्य रूप से ईसाइयों द्वारा प्रायोजित आन्दोलनकारियों के साक्ष्यों पर भरोसा करता है। भारतीय राजनीतिक घटनाक्रम के बारे में ये साक्ष्य अत्यधिक बढ़ा-चढ़ाकर, सनसनीखेज ढंग से और तोड़-मरोड़कर दिये गये होते हैं।

फ्रीडम हाउस का उदारवादी-ध्वनि वाला व्यक्तित्व जैसा नाम है जिसे 'सेंटर फ़ॉर रिलिजियस फ्रीडम' कहा जाता है। जो भी हो, द राइज ऑफ़ हिन्दू एक्सट्रीमिज़्म (2003) पर इसकी रपट ने रेवरेंड सेड्रिक प्रकाश द्वारा किये गये 'उदारहस्त योगदान' और साथ में टिमथी शाह, विनय सैमुएल, और पिफ्रास के निदेशक जॉन प्रभुदोस द्वारा किये गये 'महत्वपूर्ण कार्यों' पर अत्यधिक भरोसा किया। ये लोग, जैसा कि पाठक देखेंगे, सभी प्रकार के विचार मंचों और उनके आयोगों तथा उनके द्वारा आयोजित संगोष्ठियों में बराबर उपस्थित होते हैं। ऑल इण्डिया क्रिश्चियन काउंसिल के जॉन दयाल तथा जोजेफ डी'सूजा भी इसमें शामिल थे, और दलित फ्रीडम नेटवर्क, 'इण्डियन सोशल इंस्टीटयूट ह्यूमन राइट्स डॉक्यूमेंटेशन सेंटर' (Indian Social Institute Human Rights Documentation Centre), यूनाइटेड क्रिश्चियन फोरम फ़ॉर ह्यूमन राइट्स, ऑल इण्डिया फेडरेशन ऑफ़ ऑर्गेनाइजेशन्स फ़ॉर डेमोक्रेटिक राइट्स, कैथोलिक बिशप्स कॉन्फेरेंस ऑफ़ इण्डिया, और नेशनल अलायंस फ़ॉर विमेन के प्रतिनिधि भी।[116] उसमें विपरीत दृष्टिकोण वाले लोगों का उनके बराबर कोई प्रतिनिधित्व नहीं था, न ही उस भूराजनीतिक एजेंडा की, जिसमें ये व्यक्ति और समूह

कार्य संचालित करते हैं, व्याख्या करने के लिए कोई सन्दर्भ उपलब्ध कराया गया था। दूसरे शब्दों में, उनके हितों के बीच भारी टकराव को सीधे दफना दिया गया था, और रपट के अधिकांश अमरीकी पाठकों ने पारदर्शिता की माँग करने का कष्ट नहीं उठाया।

भारत का धार्मिक स्वतन्त्रता अधिनियम धोखाधड़ी से धर्मान्तरण को रोकने के लिए बनाया गया है। फ्रीडम हाउस की रपट ने गलत कहा कि इस कानून के तहत 'किसी धर्म अथवा पन्थ विशेष के आध्यात्मिक लाभ पर बल देना गिरफ्तारी का एक कारण हो सकता है'। इस कानून में ऐसा कोई भी प्रावधान नहीं है। रपट आगे बल देकर कहती है कि भारत में धर्मान्तरण आधारित टकराव इसलिए हैं, क्योंकि ईसाइयत के माध्यम से दलितों की मुक्ति से अगड़ी जातियों के हिन्दू घबड़ाते हैं, लेकिन ऐसा कहते हुए उन आक्रामक धर्मान्तरण अभियानों की ओर कोई भी संकेत नहीं दिया गया जो हिन्दू धर्म का दानवीकरण करते हैं। रपट इस बात पर विलाप करती है कि धार्मिक स्वतन्त्रता पर जॉर्ज बुश द्वारा बल देने के बावजूद 'ये अच्छे शब्द शायद ही कभी विदेश नीति के अमरीकी अधिकारी तन्त्र को एक साँचे में ढालते हैं'।

रपट ने अमरीका के राजनीतिक हितों के आधार पर भारत में अमरीकी हस्तक्षेप की माँग की, और दावा किया कि 'उत्पीड़न करने वाले सर्वाधिक प्रबल राज्य ... वे होते हैं जो अमरीकी हितों के विरुद्ध कार्य करते हैं। इसके विपरीत जिन राज्यों के रिकार्ड अच्छे हैं उनके अमरीका के अच्छे सहयोगी बनने की सम्भावना होती है'।[117] लेकिन वास्तव में इसका ठीक उल्टा ही सही रहा है : अनेक 'अच्छे अमरीकी सहयोगी' मानवाधिकार उल्लंघन के सर्वाधिक खराब रिकार्ड वाले सैनिक तानाशाह हैं और फिर भी उन्हें बच्चों की तरह सँभालकर रखा जाता रहा है, जबकि भारत जैसे लोकतन्त्र उनकी कड़ी आलोचना के शिकार रहे हैं। द टाइम्स ऑफ़ इण्डिया इस पूर्वाग्रह का उल्लेख एक रपट में इस प्रकार करता है :

> जहाँ भारत जैसे पन्थ निरपेक्ष और लोकतान्त्रिक देश प्रशंसा के पात्र हैं, वहीं सऊदी अरब जैसे देश पर, जो विश्व के सबसे कम स्वतन्त्रता वाले देशों में से एक है, 32 पृष्ठों में चर्चा की गयी है। संयुक्त राज्य अमरीका ने अपने उन सहयोगियों को दण्डित करने के प्रति कोई झुकाव नहीं दिखाया है जिन्हें वह धन देता है, जैसे मिस्त्र और तुर्की, जबकि इसके लिए कम महत्व वाले देशों को फटकारता या धमकाता रहता है।[118]

न्यू यॉर्क में एशिया सोसाइटी

एशिया सोसाइटी को रॉकफेलर (Rockfeller) परिवार द्वारा धन दिया जाता था और उसके संस्थापक सदस्यों में सी.आई.ए. के पूर्व निदेशक विलियम कोल्बी भी शामिल थे।[119] हाल-हाल तक जब इसने भारतीय उद्योगपतियों से धन लेने के प्रयास प्रारम्भ

किये, इसने प्रभावी अमेरिकियों के मानस में भारत की नकारात्मक छवियों को बैठाने के लिए निरन्तर सामग्री उपलब्ध करायी। भारत की मूलभूत लोकतान्त्रिक प्रकृति पर लगातार प्रश्न उठाये जाते थे। सन 2003 की इसकी एक बैठक में जोरदार बहस का विषय था कि क्या भारत एक 'फासीवादी राष्ट्र है'। विशाखा देसाई ने, जो एशिया सोसाइटी की वर्तमान अध्यक्ष हैं, न्यू यॉर्क में एक गोष्ठी का आयोजन किया जिसका बताया गया उद्देश्य था 'यह देखना कि क्या भारत की पन्थ निरपेक्षता में कोई मौलिक परिवर्तन हुआ है'। गोष्ठी के संचालक सीलिया डुग्गर ने, जिन्होंने 1988 से 2002 तक नई दिल्ली में न्यू यॉर्क टाइम्स के सह-ब्यूरो प्रमुख के रूप में काम किया था, यह रुख लिया कि भारत एक फासीवादी राष्ट्र बनता जा रहा था।[120] जो भी हो, अमरीकी-भारत सम्बन्धों के नये परिवेश में, एशिया सोसाइटी ने एक उभरती आर्थिक शक्ति के रूप में भारत पर ध्यान केन्द्रित करने के लिए वास्तव में अपना दायरा बढ़ा लिया है, जो अमरीकी नीति के लिए अनेक सम्भावनाएँ प्रस्तुत करता है।

पूर्वाग्रहपूर्ण अवधारणाओं का बनाया जाना और उन्हें पोषित करना

एक प्रतिष्ठित विचार मंच रैंड कॉर्पोरेशन द्वारा अल-कायदा के साथ आर.एस.एस. (हिन्दू राष्ट्रवादी रुझान वाला एक सामाजिक सांस्कृतिक संगठन) को रखना पूर्वाग्रह भरी सूचना का एक और उदाहरण है। इसने दोनों को हिंसक 'नये धार्मिक अन्दोलनों' के उदाहरणों के रूप में एक साथ रखा जिन्हें दो परिभाषित करने वाले लक्षणों द्वारा चित्रित किया : समूह और उसके चारों ओर के समाज के बीच अत्यधिक तनाव; और, उनके नेताओं द्वारा उनके सदस्यों पर अत्यधिक नियन्त्रण रखना।[121] हालाँकि दोनों उपर्युक्त लक्षण तर्क के हिसाब से इस हिन्दू संगठन पर सटीक बैठते हैं, इसे ध्यान में रखना चाहिए कि यह समान रूप से अनेक ईसाई प्रचारक चर्चों और भारत तथा अमरीका में सक्रिय दोबारा-जन्मे समूहों पर भी लागू होंगे। यह मोर्मोन्स (Mormons) जैसे आपस में गुथे हुए समुदायों पर भी लागू होंगे।

फोर्ड फाउण्डेशन (Ford Foundation) भी भारतीय नीतियों की अन्तर्राष्ट्रीय निगरानी की सुविधाएँ प्रदान करता है, जैसा कि भारत पर आयोजित एक आस्ट्रेलियाई सम्मेलन को इसके द्वारा प्रायोजित करने के मामले में दिखता है, जो सम्मेलन पूरी तरह से भारतीय जनता पार्टी पर केन्द्रित था। सम्पूर्ण कार्यक्रम भाजपा से सम्बन्धित मुद्दों से भरा था, जिसमें 'भाजपा की अर्थव्यवस्था', 'भाजपा का ग्रामीण शासन', 'भाजपा और समाचार माध्यम', 'भाजपा और पाठ्यपुस्तकें', 'भाजपा और दक्षिण के राज्य', आदि विषयों पर शोध पत्र प्रस्तुत किये गये थे। इस प्रकार, भारत को पूरी तरह से भाजपा की छवि के आधार पर परिभाषित किया गया, मानो भारत के किसी भी अन्य पक्ष का कोई महत्व नहीं था।[122]

जंगली भारत के रूप में गुजरात

2002 में हुए गुजरात के दंगे उन शक्तियों के लिए एक बड़े अवसर के रूप में आये जो भारत का दानवीकरण करना चाहते थे। संयुक्त राज्य अमरीका को, जिसे अरब जगत को यह दिखाने की सख़्त आवश्यकता थी कि अफ़ग़ानिस्तान और ईराक पर आक्रामक हमले इस्लाम के विरुद्ध पवित्र युद्ध (Holy War) नहीं था, गुजरात के दंगों ने यह प्रमाणित करने का एक अवसर प्रदान किया कि वह हिन्दुओं की कीमत पर मुसलमानों के साथ खड़ा है। अनेक वकालती समूह, ईसाई प्रचारक संस्थान, और सम्बद्ध विचार मंच अत्यधिक सक्रिय रूप में सामने आये और गुजरात दंगों की नृशंस हिंसा पर अमरीका में गवाही देने के लिए भारत से आन्दोलनकारियों को आमन्त्रित किया।[123] इस प्रकार इस्लाम के तुष्टिकरण के लिए हिन्दुत्व चारा बन गया।

गोधरा जनसंहार पर हुई हिंसक हिन्दू प्रतिक्रिया बिना शर्त निन्दनीय है। अनेक विश्वसनीय स्वरों ने पर्याप्त रूप से दिखाया है कि 2002 में गुजरात सरकार के सर्वोच्च स्तरों पर समुचित कदम उठाये जाने की कमी के चलते हिन्दू-मुस्लिम ख़ून-ख़राबा हुआ, दोनों पक्षों ने जीवन खोए, लेकिन मुस्लिम पक्ष ने ज़्यादा खोए। यहाँ पर विषय यह है कि संयुक्त राज्य अमरीका में किस तरह भारत की जंगली छवि को पुन: स्थापित करने के लिए इस घटना का उपयोग किया गया है। ताजे उत्पीड़न साहित्य की रचना के लिए गुजरात प्रमुख स्थल बन गया है। ऐसी छवियाँ 'सरहदी इलाके' यानी 'सीमा क्षेत्र' के गहन मिथक को पुन: स्थापित करती हैं जिसे एक जंगली 'पराये' की पहचान करने की ज़रूरत है, जिससे सभ्यता की शक्तियों द्वारा निर्दोष मूल निवासियों को बचाना जरूरी है।

यह नया उन्माद अनेक मानवाधिकार आन्दोलनकारियों के काम आया जिनके लिए जमीनी स्तर पर मानवीय राहत प्रयास करने या भारत के अपने ही न्यायालयों में वांछित कानूनी कार्रवाई को समर्थन देने की तुलना में अमरीकी हस्तक्षेप को प्रोत्साहित करना अधिक महत्वपूर्ण हो गया। इसके लिए उन्हें जो पुरस्कार दिये गये उनमें विदेश यात्रा, उच्चस्तरीय सम्पर्क, और ऐसी ख्याति निर्मित करने का अवसर शामिल था कि वे ही गुजरात मोर्चे पर जंगलियों से लड़ने वाले योद्धा हैं। चित्र 13.2 दिखाता है कि किस प्रकार सीमाक्षेत्र के मोर्चे का अमरीकी मिथक गुजरात के बारे में सनसनीखेज आँकड़े आयात करने के लिए एक प्रारूप के रूप में और उसे सभी हिन्दुओं के लिए थोपने में काम आया, और इस प्रकार राजनीतिक जनादेश हासिल किया गया।

Fig 13.2 सीमान्त मिथक को गुजरात में भारतीय सन्दर्भ में सुदृढ़ करना
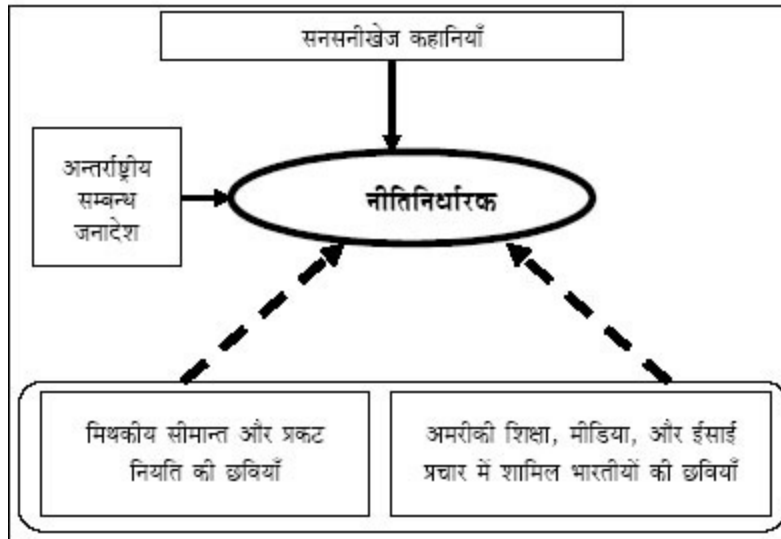
'हिन्दू समस्याओं' जैसे वर्ण-व्यवस्था, सती, दहेज, अजीबो-गरीब देवता, आदिम प्रवृत्तियाँ, अतार्किकता, आदि के बारे में घिसे-पिटे प्रारूप, अतिरंजित वक्तव्य और छवियाँ जुटायी गयीं। दुर्भाग्यवश, इस अभ्यास में संलग्न अनेक स्वरों ने कुछ विशेष मामलों को सम्पूर्ण हिन्दू धर्म से मिला दिया है। उदाहरण के लिए, ई.पी.पी.सी. (वर्णन नीचे दिया गया है) ने एक सम्मेलन प्रायोजित किया जिसमें दक्षिण एशिया पर छह विशेषज्ञों ने बढ़ते धार्मिक आतंकवाद के प्रभाव पर विचार किया। उक्त सम्मेलन का सह-प्रायोजक था इनफेमिट (INFEMIT), तीसरे विश्व के धर्मशास्त्रियों और आन्दोलनकारियों का एक नेटवर्क जिसका नेतृत्व डॉ. विनय सैमुएल करते हैं। उच्च-शक्ति सम्पन्न इस जमावड़े के परिणामस्वरूप संयुक्त राज्य अमरीका की कांग्रेस के सदस्य जोजेफ पिट्स ने वहाँ की संसद (House of Representatives) में यह भाषण दिया :

> गुजरात में प्रशिक्षित लड़ाकू गाँवों में घुस गये और पुरुषों, स्त्रियों और बच्चों पर हमले कर दिये। गर्भवती महिलाओं के पेट चीरकर गर्भ खोल दिये गये और उनमें से अजन्मे शिशुओं को निकाल लिया गया और जलती हुई आग में उछालकर फेंक दिया गया। लगभग 300 महिलाओं के साथ सामूहिक बलात्कार किया गया। दो हज़ार से अधिक लोग मरे। मेरे पास, मेरे कार्यालय में, ऐसी तस्वीरें हैं जिनकी नृशंसता के कारण उन्हें दिखाया भी नहीं जा सकता।... मान्यवर अध्यक्ष महोदय, हमारी सरकार को इन नृशंस हमलों और उसे रेखांकित करने वाले अतिवाद पर अवश्य ही कुछ करना चाहिए। संयुक्त राज्य अमरीका की सरकार इतनी खामोश है कि लगता है हम बहरे हो गये है।[124]

एथिक्स ऐण्ड पब्लिक पॉलिसी सेंटर (ई.पी.पी.सी.)

‘नैतिकता और सार्वजनिक नीति केन्द्र’ (Ethics and Public Policy Centre) खुले-आम और आधिकारिक रूप से स्वयं को वॉशिंगटन में ‘यहूदी-ईसाई नैतिक परम्परा को सार्वजनिक नीति के महत्वपूर्ण मामलों में लागू करने के प्रति समर्पित एक अग्रणी संस्थान’ कहता है। यह एक शक्तिशाली समूह है, जिसके निदेशकों में से एक स्वर्गीय जीन जे. कर्कपैट्रिक (Jeane J. Kirkpatrick) संयुक्त राष्ट्र संघ में संयुक्त राज्य अमरीका की राजदूत थीं। वे एक कट्टर दक्षिणपन्थी रीगनवादी थीं जिन्होंने इन्दिरा गाँधी के समय बार-बार भारत की निंदा की थी और उसका विरोध किया था, और वे पाकिस्तान को संयुक्त राज्य अमरीका के हथियारों से सुसज्जित करने में सहायता के लिए कुख्यात रहीं। माइकल क्रोमार्टी, ई.पी.पी.सी. के उपाध्यक्ष, ‘नागरिक जीवन कार्यक्रमों में ईसाई प्रचारक’ नामक कार्यक्रम को संचालित करते हैं, जिसका उद्देश्य है ‘ईसाई प्रचारक नेताओं के बीच नागरिक विचार-विमर्श को विस्तारित करना और नागरिक मामलों में संलग्नता के प्रति एक ईसाई प्रचारक सोच को समझाना’।[125] क्रोमार्टी 2004 से ‘यूनाइटेड स्टेट्स कमिशन फ़ॉर इंटरनेशनल रिलिजियस फ्रीडम’ (यू.एस.सी.आई.आर.एफ.) के सदस्य के रूप में भी अपना योगदान कर रहे हैं, जिसमें दो अवधियों के लिए वे अध्यक्ष भी रहे। यह नीतिगत संस्थानों और सरकारी एजेंसियों के बीच गठजोड़ की विशालता को प्रदर्शित करता है। क्रोमार्टी ‘प्यू फोरम ऑन रिलिजन ऐण्ड पब्लिक लाइफ’ के एक वरिष्ठ सलाहकार भी हैं, और ‘ट्रिनिटी फोरम’ के साथ एक सीनियर फेलो भी। इस प्रकार अन्य धन प्रदाता समूहों, ईसाई प्रचारक संगठनों, और सरकारी एजेंसियों के साथ ई.पी.पी.सी. के दृढ़ सम्बन्ध हैं।

इसकी गतिविधियों में एक है फादर सेड्रिक प्रकाश के रणनीतिगत दौरे करवाना, जो भारत में मानवाधिकार आन्दोलनकारी के रूप में काम कर रहे एक ईसाई पादरी हैं। वे हार्वर्ड यूनिवर्सिटी में ‘लोकल कपैसिटी फ़ॉर पीस प्राजेक्ट’ के लिए जन सम्पर्क का भी काम करते हैं, और ‘यूनाइटेड क्रिश्चियन फोरम फ़ॉर ह्यूमन राइट्स’ के प्रवक्ता भी हैं। फादर प्रकाश को वॉशिंगटन में 2002 में ‘यू.एस. कमिशन फ़ॉर इंटरनेशनल रिलिजियस फ्रीडम’ के समक्ष गवाही देने के लिए आमन्त्रित किया गया था।[126] इसके अतिरिक्त, उसी वर्ष उन्हें यूरोपीय यूनियन और ब्रिटेन की सरकार के फ़ॉरेन एण्ड कॉमनवेल्थ ऑफिस के साथ बातचीत करने के लिए लग्जेमबर्ग, और उसके बाद लन्दन आमन्त्रित किया गया था। उनकी गवाही हिन्दुओं द्वारा कथित रूप से किए जा रहे उत्पीड़नों की एक लम्बी सूची थी। अपने भाषण के चरम पर उन्होंने हस्तक्षेप की एक जोरदार अपील की : ‘हज़ारों पीड़ितों के नाम पर ... मैं आपसे आग्रहपूर्वक सभी प्रकार के आवश्यक हस्तक्षेप की अपील करता हूँ।...’[127]

इन दौरों को सुगम बनाने के अलावा, ई.पी.पी.सी. वॉशिंगटन में कथित हिन्दू उत्पीड़न से जुड़े मामलों में राजनीतिज्ञों की लॉबिंग करने के लिए अपने आयोजन भी करता है। ऐसे ही एक सम्मेलन का विषय था ‘हिन्दू राष्ट्रवाद बनाम इस्लामी जिहाद’,[128] जिसे टिमोथी शाह द्वारा संयोजित किया गया था, एक भारतीय ईसाई जो

इ.पी.पी.सी. में दक्षिण एशिया मामलों के निदेशक थे। उन परियोजनाओं पर काम करने के बाद जो दिखाते हैं कि धर्म किस तरह संयुक्त राज्य और अन्य देशों के सार्वजनिक जीवन को प्रभावित करता है, पन्थ तथा राजनीति पर हार्वर्ड विश्वविद्यालय की पी-एच.डी. डिग्री से सुसज्जित होकर शाह ने हार्वी फेलोशिप प्राप्त की है जो 'ईसाई स्नातक विद्यार्थियों को अपने विश्वास और अध्यवसाय को जोड़ने तथा रणनीतिगत क्षेत्रों में नेतृत्व के पदों को प्राप्त करने के लिए प्रोत्साहित करना चाहता है विशेषकर उनमें जहाँ ईसाइयों की भागीदारी वांछित स्तर से कम होने की सम्भावना रहती है'। उन्होंने 2004 में यू.एस.सी.आई.आर.एफ. के समक्ष गवाही भी दी थी।

डॉ. शाह उसके बाद से प्यू चैरिटबल ट्रस्ट में बड़े कामों में लग गये हैं, जो विकासशील देशों में संयुक्त राज्य अमरीका की सरकार के ईसाई हस्तक्षेपों को प्रोत्साहित करने वाला एक प्रमुख फाउण्डेशन है। उनकी आधिकारिक पृष्ठभूमि अपनी आत्मश्लाघा में कहती है कि उन्होंने 'प्यू चैरिटबल ट्रस्ट द्वारा वित्तपोषित एक ईसाई प्रचारक प्रोटेस्टैंटिज़्म और भूमण्डलीय दक्षिण में लोकतन्त्र के लिए शोध निदेशक के रूप में सेवा की है, और वर्तमान में वे ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस द्वारा इस विषय पर प्रकाशित किये जाने वाली चार खण्डों की पुस्तक श्रृंखला का सह-सम्पादन कर रहे हैं'।[129] वे हार्वर्ड में विश्व राजनीति में धर्म पर शोध की परियोजना में सह-निदेशक के रूप में भी शामिल हैं, जिसके लिए वे 'धर्म तथा लोकतन्त्रीकरण के बीच सम्बन्ध'[130] पर लिख रहे हैं, विशेषकर ईसाई प्रचारक ईसाइयत और 'भूमण्डलीय दक्षिण' पर।[131] वे हिन्दू राष्ट्रवाद के दक्षिण एशिया में राजनीतिक प्रभाव पर भी एक पुस्तक लिख रहे हैं।

एक अन्य वक्ता थे स्टेनली कुर्त्ज, जो उस समय ई.पी.पी.सी. में एक सीनियर फेलो थे, और जो एक जाने-माने दक्षिणपन्थी उग्र सुधारवादी चिन्तक हैं जिनके पास हार्वर्ड की पी-एच.डी. डिग्री भी है। वे इस उद्देश्य से ईराक पर अमरीकी हमले के लिए सबसे जोरदार वकालत करने वालों में से एक थे कि वहाँ लोकतन्त्र लाया जाये, और उन्होंने लॉर्ड मैकॉले के उन प्रयासों की प्रशंसा की जो अंग्रेजों को इस बात के लिए राजी करने के लिए किये गये थे कि जंगली हिन्दुस्तानियों को सभ्य बनाया जाय। द वॉल स्ट्रीट जर्नल में अपने विचारों के समर्थन में तर्क देते हुए स्टैनली कुर्त्ज ने मैकॉले की इस योजना का उद्धरण दिया कि एक ऐसा भारतीय नेतृत्व वर्ग तैयार किया जाये जो 'अपनी रुचि, विचार, नैतिकता और दिमाग से अंग्रेज़ीदां हो' और अनुशंसा की कि अब अमेरिकियों को ईराक में यही करना चाहिए। कुर्त्ज ने लिखा, 'क्या हम जान-बूझकर ईराक में वैसा कर सकते हैं जैसा कि ब्रिटिश ने अनजाने में ऐसा कर दिया था?'[132] दूसरे शब्दों में, वे गैर-पश्चिमी विश्व में संयुक्त राज्य की विदेश नीति के लिए ब्रिटिश उपनिवेशवाद को एक अच्छे आदर्श और उदाहरण के रूप में मानते हैं।

कुर्त्ज (Kurtz) स्टैनफोर्ड विश्वविद्यालय से जुड़े प्रतिष्ठित हूवर संस्थान में एक शोधकर्ता के रूप में काम करते हैं—जो वैसे विद्वानों के एक अच्छे उदाहरण हैं जो

भारतीय धर्म के अध्ययन से प्रारम्भ करते हैं, और बाद में उन शक्तिशाली संस्थानों में राजनीतिक विशेषज्ञ में रूपान्तरित हो जाते हैं जो विदेश नीति को एक निश्चित स्वरूप प्रदान करते हैं। लॉर्ड मैकॉले ने कभी जैसी भूमिका निभायी थी वैसी भूमिका निभाने वाले अमरीकी समकक्षों की एक बड़ी संख्या है, सिवा इसके कि कुर्त्ज जैसे आज के बुद्धिजीवी अपने भारत आधारित जमीनी काम, मूलपाठ के ज्ञान, और शैक्षिक अनुभव में कहीं अधिक परिष्कृत हैं।

अनेक मार्ग

चित्र 13.3 तीन प्रमुख व्यक्तित्वों—कुर्त्ज, कर्कपैट्रिक और शाह—के उदाहरणों का सार पेश करता है, जिनका उल्लेख पीछे दिये गये विवरण में किया गया, साथ ही उन्हें बल प्रदान करने वाले उनके संस्थागत सम्बन्धों का भी और यह भी कि कैसे भूमण्डलीय स्तर पर ईसाइयत को आगे बढ़ाने के लिए भारत के प्रति अमरीकी नीति को एक स्वरूप देने के लिए वे एकजुट हुए। ऐसे अनेक सहकारी मौजूद हैं, और पिछले 25 वर्षों से यह रुझान तेजी से बढ़ रहा है, जिसका भारत के लिए क्या प्रभाव होगा उस पर किसी व्यक्ति द्वारा कोई रपट या विश्लेषण प्रस्तुत नहीं किया गया है। चित्र 13.3 इस बात पर भी प्रकाश डालता है कि किस प्रकार कार्य को सुगम बनाने वालों के रूप में 'स्वायत्त' विचार-मंचों के नेटवर्क का उपयोग करते हुए सरकार-चर्च-शैक्षिक सहकारी के रूप में एक होकर काम करते हैं।

Fig. 13.3 भारत के बारे में अमेरीकी नीति बनाने में अमरीकी दक्षिणपन्थी थिंक-टैंक की कार्यप्रणाली
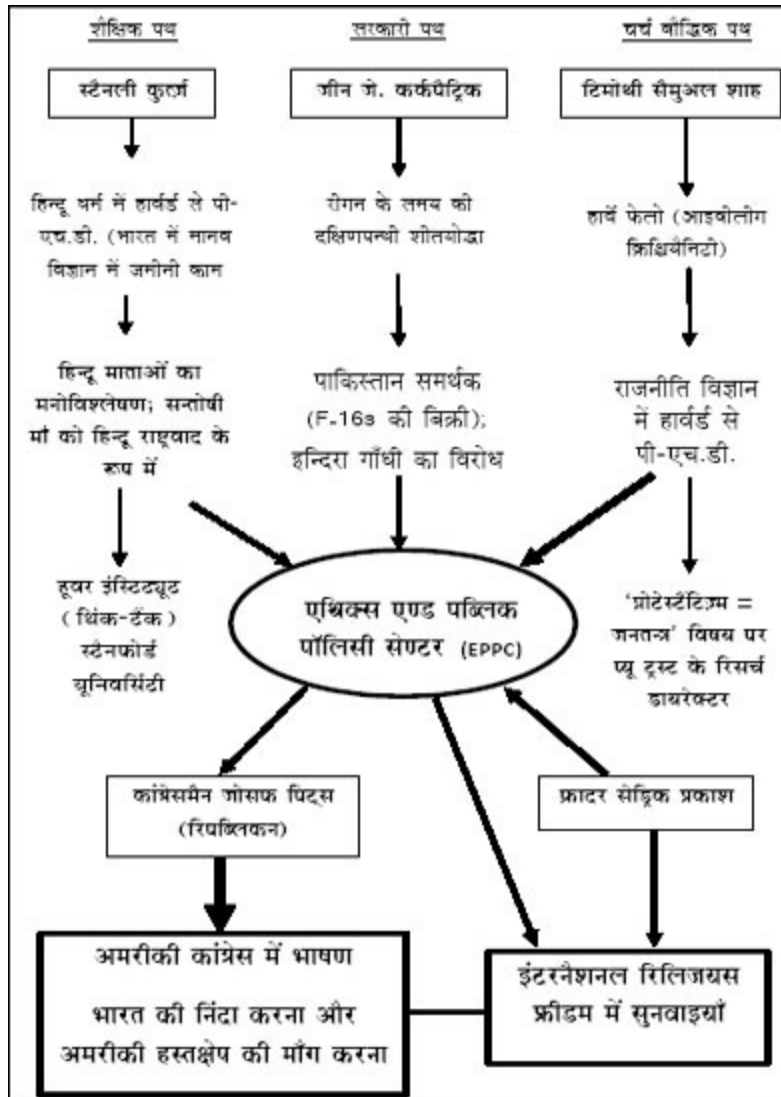
सबको जोड़ने वाला एक सूत्र यह सन्देश है कि भारतीय समाज में मानवीयता की कमी है। इस अमानवीयता के कारण को बहुधा हिन्दू धर्म की आध्यात्मिक कमी में ढूँढ़कर निकाला जाता है। इसका पूरक सन्देश है अमरीकी हस्तक्षेप की आवश्यकता। इस चरण में ऐसे हस्तक्षेप में ईसाई धर्मान्तरण को बढ़ावा देना, आर्थिक सहायता और वाणिज्यिक प्रतिबन्धों के माध्यम से भारत की बाँहें मरोड़ना, और आधिकारिक अमरीकी मिशनों का भारत में विशेष-स्वार्थों वाले समूहों के साथ बातचीत करने में उपयोग करना, शामिल है। इस प्रकार भारत की प्रभुसत्ता को प्रभावी ढंग से कमजोर किया जा रहा है।

14
भारत : एक वामपन्थी मोर्चा

हमने पिछले अध्याय में देखा कि किस प्रकार पश्चिम के लोग भारत को बाइबल के चश्मे से देखते हैं। इस अध्याय में हम देखेंगे कि पन्थ-निरपेक्ष चश्मे से भी भारत को एक राष्ट्र के रूप में अवैध ठहराया जाता है। यह एक विडम्बना है, क्योंकि अमरीका के अन्दर बाइबल के दृष्टिकोण और पन्थ-निरपेक्ष मानवतावादी दृष्टिकोण एक-दूसरे के विरोध में हैं। ऐसा होने पर भी, ये सभी विभिन्न कारणों से भारतीय सभ्यता को नीचा दिखाते हैं और अन्ततः विरोधी पक्ष के एजेंटों को बढ़ावा देते हैं। जहाँ अमरीका के दक्षिणपन्थी नवसंरक्षणवादी एक ईसाई भारत की परिकल्पना को समर्थन देते हैं, वहीं वामपन्थियों में इस्लाम के प्रति सामान्यतः सहानुभूति होती है। हिन्दू धर्म और प्राचीन भारतीय सभ्यता इन दोनों के साझे शत्रु हैं। इसलिए, दोनों के मिलकर काम करने को पारस्परिक लाभदायी माना जाता है। लेकिन इस तथ्य पर कि वे अपने मूल सिद्धान्तों के मामले में एक-दूसरे के विरुद्ध रहते हैं, सार्वजनिक रूप से कभी चर्चा नहीं की जाती, जबकि उनका साझा आक्रोश जिसे वे 'हिन्दू भारत' के रूप में सोचते हैं, उस पर निकलता है।

चित्र 14.1 भारत के प्रति पन्थ-निरपेक्ष दृष्टिकोण में शामिल विभिन्न तत्वों को प्रदर्शित करता है। इसके बाद इसके मुख्य घटकों की चर्चा की गयी है।

उदारवादी-वामपन्थी विचार मंच

उदारवादी और वामपन्थी विचार मंच आश्चर्यजनक ढंग से उसी निष्कर्ष पर पहुँचते हैं जिस निष्कर्ष तक दक्षिणपन्थी संस्थान पहुँचे हैं। भारतीय समाज पर अध्ययन विभिन्न खण्डों के एक संग्रह के रूप में किया जाता है। इन खण्डों को भारतीय राजकीय दमन का शिकार माना जाता है। भारत उप-राष्ट्रीय पहचानों के लिए एक कारागार है, जिन्हें ताकत के शिकंजे द्वारा एकजुट रखा गया है। ऐसे चित्रण उन हाथों में उपकरण बन जाते हैं जो अमरीका की मध्यस्थता में भारत को विखण्डित किये जाने की माँग करते हैं।

Fig 14.1 दक्षिणपन्थियों द्वारा अमरीका के एक सीमान्त क्षेत्र के रूप में भारत का चित्रण
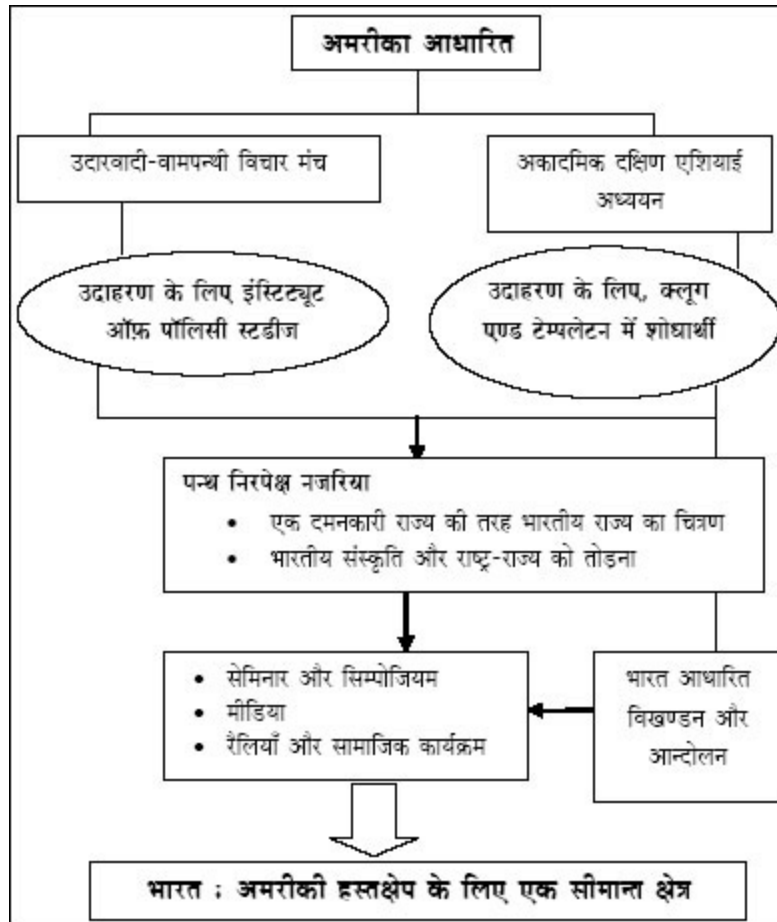
शैक्षिक दक्षिण एशियाई अध्ययन

एक अन्य शक्तिशाली स्वर जो भारत के विखण्डन का समर्थन करता है वह अमरीकी विश्वविद्यालयों में शैक्षिक दक्षिण एशियाई अध्ययनों में पाया जाता है। वे भारत का चित्र एक औपनिवेशिक सृजन के रूप में बनाते हैं जिसकी अपनी कोई ऐतिहासिक वैधता नहीं है। इस दृष्टिकोण से भारतीय संस्कृति अन्तर्निहित रूप से दलित विरोधी, अल्पसंख्यक विरोधी और महिला विरोधी है। भारतीय संस्कृति और भारतीय राज्य को स्वतन्त्रता के विरोधी के रूप में दिखाया जाता है।

पन्थ-निरपेक्ष चश्मा

शैक्षिक और गैर-शैक्षिक दोनों तरह के संस्थान, जो उदारवादी-वामपन्थी हैं, भारत के अल्पसंख्यक समूहों के मामलों को उठाते हैं। विडम्बना है कि वामपन्थी धर्मनिरपेक्षतावादी अतिवादी दक्षिणपन्थी धार्मिक संगठनों के प्रतिनिधियों के साथ एक ही मंच पर भाग लेने में नहीं झिझकते, ताकि वे भारतीय जंगलीपन की छवि का प्रचार करने में साझेदारी कर सकें, हालाँकि इन दोनों खेमों के बीच सैद्धान्तिक विद्वेष

है। भारत के उत्तर-आधुनिक विखण्डन का भी एक खेमा है, जो शैक्षिक घेरों में प्रचलित है। अमरीका या चीन जैसे अन्य आधुनिक राष्ट्र-राज्यों के अध्ययनों में राष्ट्रीयता या सांस्कृतिक एकता के ऐसे विखण्डन को बहुधा परिधि में रखा जाता है। लेकिन जब वे भारत पर नजर डालते हैं तो ठीक इसका उल्टा होता है।

वॉशिंगटन में वामपन्थी-दक्षिणपन्थी साझेदारी का उदाहरण

2008 के अमरीकी चुनावों के बाद दलित फ्रीडम नेटवर्क ने अपने दक्षिणपन्थी आधार से परे विविधिकरण का निर्णय किया ताकि सेनेटर जोजेफ बिडेन सहित, जो उप-राष्ट्रपति के रूप में हाल ही में निर्वाचित हुए थे, शक्तिशाली डेमोक्रैट नेताओं को आगे बढ़ा सकें। वॉशिंगटन में डी.एफ.एन. के प्रधान लॉबिस्ट बेंजामिन मार्श ने टिप्पणी की कि उप-राष्ट्रपति बिडेन दक्षिण एशिया नीतिगत निर्णयों के लिए दिशा प्रदान करेंगे।[1] इसलिए नये प्रशासन में प्रवेश हासिल करने के लिए मार्श ने दक्षिण एशिया पर बिडेन के मुख्य सलाहकार जोना ब्लैंक को आगे बढ़ाना शुरू कर दिया।[2] जोना ब्लैंक के साथ मार्श की एक बैठक हुई थी और उनकी पुस्तक 'नीली त्वचा वाले देवता का तीर' (Arrow of the Blue-skinned God) को 'निराशाजनक नहीं' पाया, और वर्ण-व्यवस्था पर लिखे अध्याय को 'ऐतिहासिक और मानवशास्त्रीय दृष्टिकोण से इस मुद्दे पर एक अच्छा परिचय' के रूप में अनुमोदित किया।[3] जिस प्रकार की नेटवर्किंग पक्षपातपूर्ण रास्ते, शैक्षिक विभागों और अध्यवसायिक विशेषज्ञताओं में व्यापक रूप से चल रही है उसमें जोना ब्लैंक की पृष्ठभूमि और प्रवृत्ति एक गहरी समझ प्रदान करती है।

जोना ब्लैंक (Jonah Blank) ने हार्वर्ड से मानवशास्त्र में स्नातक की उपाधि हासिल की, जहाँ उनकी फेलोशिप के लिए अमरीका के राष्ट्रीय सुरक्षा शिक्षा कार्यक्रम द्वारा धन दिया गया था, जो भौगोलिक क्षेत्रों, भाषाओं, और अमरीकी हितों की रक्षा के लिए महत्वपूर्ण माने जाने वाले क्षेत्रों के अध्ययन पर ध्यान केन्द्रित करता है।[4] ब्लैंक ने सम्पूर्ण भारत और पाकिस्तान की व्यापक रूप से यात्रा की और उन्होंने संस्कृत, हिन्दी, गुजराती और उर्दू सीखी। उन्होंने हिन्दू धर्म और इस्लाम की परम्पराओं और शिक्षाओं का व्यापक ज्ञान और अनुभव विकसित किया। उनकी पहली पुस्तक, 'नीली त्वचा वाले देवता का तीर : भारत से होकर रामायण के पथ का पुनर्सन्धान' (Arrow of the Blue-skinned God : Retracing the Ramayana through India) रामायण और व्यापक भारतीय धर्मों और समाज की जाँच आर्य/द्रविड़ नस्ली जोड़े के आधार का उपयोग करते हुए करती है। उदाहरण के लिए, यह निष्कर्ष निकालने के लिए वे एक द्रविड़ विद्वान को उद्धृत करते हैं कि आर्य देवी-देवता अमर होते हैं, जबकि द्रविड़ देवी-देवताओं के 'उच्च स्तर' होते हैं।[5] वे दक्कन में हनुमान पूजा की व्याख्या 'घृणा' को 'आत्म-सम्मान' में रूपान्तरित करने के लिए एक प्रकार के मनोवैज्ञानिक उपाय के रूप में करते हैं। उनकी अगली पुस्तक, 'इस्लाम के

प्रमुख चौखटे में मुल्ला और दाऊदी बोहरा लोगों में आधुनिकता' (Mullahs on the Mainframe Islam and Modernity among the Daudi Bohras) (शिकागो यूनिवर्सिटी प्रेस, 2001), इस विषय पर है कि किस तरह मुम्बई का दाऊदी बोहरा समुदाय बहुत आधुनिक था। जोना ब्लैंक दक्षिण एशिया पर अमरीका के नीति निर्माण विशेषज्ञों में से एक बनकर उभरे हैं, और वे 'बिलीफनेट', एक प्रतिष्ठित धार्मिक इन्टरनेट पोर्टल के लिए हिन्दू धर्म सम्बन्धी सलाहकार हैं।[6]

सन 2000 में उन्होंने 'हिन्दू राष्ट्रवाद बनाम इस्लामी जिहाद : दक्षिण एशिया में धार्मिक उग्रवाद' विषय पर आयोजित सम्मेलन में भाग लिया जिसे एथिक्स ऐण्ड पब्लिक पॉलिसी सेंटर द्वारा प्रायोजित किया गया था। (पिछले अध्याय में ई.पी.पी.सी. पर दक्षिणपन्थी समूहों में से एक के रूप में चर्चा की गयी) इनफेमिट (INFEMIT) इसका सह-आयोजक था, जो एक ईसाई प्रचारक नेटवर्क है जिसका नेतृत्व विनय सैमुएल[7] द्वारा, और समर्थन क्रॉमवेल ट्रस्ट द्वारा किया जा रहा है, और जो स्वयं को 'ईसाई प्रचारक, ईसाइयत के सिद्धान्तों की शिक्षा और सक्रिय विस्तार के प्रति समर्पित' संगठन कहता है।[8] यहाँ जोना ब्लैंक ने भारत के तत्कालीन उप प्रधान मन्त्री लालकृष्ण आडवाणी को 'स्लोबोदन मिलोसेविक बनने से' रोकने की आवश्यकता की बात कही। उन्होंने सचेत किया कि 2002 में गुजरात में हुई साम्प्रदायिक हिंसा को नहीं भुलाना चाहिए, हालाँकि हिंसा समाप्त हो गयी थी, और उन्होंने भारत में 'हिंसा चक्र' की बात कही जो 'देर-सबेर अमरीका के राष्ट्रीय हितों को क्षति' पहुँचायेगी। इसलिए अमरीका को 'दोनों कारणों से इसमें गम्भीरतापूर्वक जुटना चाहिए, क्योंकि यह अमरीका के राष्ट्रीय हित में भी है और यही सही काम भी है'।[9]

यह दिखाने के लिए कि अमरीका में ऐसे धार्मिक हस्तक्षेप पन्थ-निरपेक्ष मुद्दों से निपटने के अभिन्न अंग हैं, इस पर गौर करना उपयोगी होगा कि जोना ब्लैंक ने डेमोक्रैटिक पार्टी की 2008 की रपट को सँवारा था जिसने दक्षिण एशिया में एक 'नाटकीय रणनीतिगत परिवर्तन' की सलाह दी थी। वे वॉशिंगटन में तैंतीस बड़े पाकिस्तानी विशेषज्ञों में से एक थे जिन्होंने उस नयी रणनीति को बनाया था जिसने ओबामा प्रशासन को इस प्रस्ताव तक पहुँचाया कि 'अगले पाँच वर्षों के दौरान पाकिस्तान को 7.5 अरब डालर की सहायता आर्थिक और विकास के मदों में दी जाये'। उस समय उप-राष्ट्रपति पद के लिए निर्वाचित (लेकिन जिन्होंने तब तक पद ग्रहण नहीं किया था) हुए सिनेटर जो बिडेन ने, जिनके अधीन ब्लैंक ने काम किया था, इसे प्रस्तुत किया। इस रपट ने उन तथ्यों से पार पाने में सहायता की कि पाकिस्तान को दिये जाने वाली अमरीकी आर्थिक सहायता का अधिकांश भाग समझौतों का उल्लंघन करते हुए पाकिस्तानी सेना को दिया जा रहा था, और भारत के विरुद्ध इसका इस्तेमाल भी इसमें शामिल था।

ब्लैंक अब दक्षिण एशिया/निकटपूर्व नीति पर सेनेट कमिटी ऑन फॉरेन रिलेशन्स के नीति सलाहकार हैं, और प्रतिष्ठित विदेशी सम्बन्धों की परिषद के एक सदस्य भी।

वे जॉन हॉपकिन्स विश्वविद्यालय के साउथ एशिया स्टडीज की फैकल्टी में हैं, जहाँ वह 'द पॉलिटिक्स ऑफ़ रिलिजन इन साउथ एशिया : कम्युनिटी एण्ड कम्युनालिज़्म इन सोशियोलॉजिकल कॉन्टेक्स्ट' विषय पढ़ाते हैं।[10]

इस पृष्ठभूमि के साथ हम रणनीतिगत संगमों की जटिलताओं को समझ सकते हैं, जैसे कि इस दलित फ्रीडम नेटवर्क के ईसाई दक्षिणपन्थी बेंजामिन मार्श और उदारवादी उप-राष्ट्रपति जो बिडेन के सलाहकार जोना ब्लैंक के बीच के सम्बन्धों को।

अमरीका स्थित शिक्षाविदों द्वारा भारत का विखण्डन

अनेक उदारवादी वामपन्थी विद्वान जान-बूझकर या अनजाने में भारत के सन्दर्भ में दक्षिणपन्थी षडयन्त्रों को वैसे अध्ययन की रपटें प्रदान कर पोषित कर रहे हैं जिससे कि अमरीकी हस्तक्षेप सुगम हो सकता है। अनेक भारतीय विद्वानों ने इस उद्यम में योगदान किया है, क्योंकि यह उन्हें प्रतिष्ठा, धन, और विश्व के दमितों को बचाने वाले हिरावल दस्ते का सदस्य होने की अनुभूति प्रदान करता है।

यह वर्ग केवल कुछ व्यक्तियों की संक्षिप्त पड़ताल कर इस व्यापक घटनाक्रम की झलक देता है। इसी पुस्तक में बाद में इस पर व्यापक चर्चा की जायेगी।

- इस श्रेणी में विशेष रूप से एक उन्मत्त स्वर है मार्था नसबॉम का, जो तर्क देती हैं कि आज भारत की आन्तरिक झड़पें अच्छे लोगों, जो पश्चिमी रंग में रँगे उदारवादी भारतीय हैं, और बुरे लोगों, जिन्हें उग्रवादी 'हिन्दू बटमार' के रूप में चित्रित किया जाता है, के बीच हैं।
- लीजे मैक्कीन एक पश्चिमी शिक्षाविद का उदाहरण देती हैं जो भारतीय परम्पराओं के प्रति घृणा का भाव रखते हैं क्योंकि वे सम्पूर्ण गुरु परम्परा को दमनकारी 'हिन्दू राष्ट्रवाद' के एक अंग के रूप में देखते हैं। उनकी सनसनीखेज पुस्तक का प्रकाशन प्रतिष्ठित यूनिवर्सिटी ऑफ शिकागो प्रेस द्वारा किया गया था।
- रोमिला थापर तर्क देती हैं कि सम्पूर्ण भारतीय सभ्यता, और इसे आगे बढ़ायें तो भारतीय राज्य, दबदबा रखने वाले जातीय समूहों द्वारा नियन्त्रित दमनकारी उपकरणों के अतिरिक्त कुछ भी नहीं है, और यह कि उन्हें ध्वस्त कर देने की आवश्यकता है।
- मीरा नन्दा मूलत: बायो-टेक्नोलॉजिस्ट थीं, लेकिन उसके बाद वे मानव विज्ञान में आ गयीं हैं; उन्होंने दूसरी बार पी-एच.डी. शोध प्रबन्ध प्रस्तुत किया जिसका विषय था 'प्रोफेट्स फेसिंग बैकवर्ड : पोस्ट-मॉडर्न क्रिटिक्स ऑफ़ साइंस एण्ड न्यू सोशल मूवमेंट्स इन इण्डिया'।[11] वे विषाक्त ढंग से भारतीय संस्कृति और हिन्दू धर्म की निन्दा तात्विक रूप से विज्ञान विरोधी के रूप में करती रही हैं,

जबकि वे प्रोटेस्टैंटेज़्म (जिसका 'टेम्पलटन फाउण्डेशन' उन्हें धन देता है) को वैज्ञानिक और प्रगतिशील के रूप में देखती हैं। वे भारत के राष्ट्र निर्माताओं पर नव-नाजी मानसिकता और छद्म-विज्ञान वाले होने का आरोप लगाती हैं।

- विजय प्रसाद ने हाशिये पर चले गये भारतीयों की पहचान को एक स्वरूप देने में अफ्रीकी-दलित साझेदारी की अगुवाई की है, और वे एक प्रमुख मार्क्सवादी संगठन का नेतृत्व करते हैं जो अमरीकी विश्वविद्यालयों के युवा भारतीय अमरीकी विद्यार्थियों को विभिन्न प्रकार की गतिविधियों के माध्यम से भर्ती करने की कोशिश करता है।
- अंगना चटर्जी जो सैन फ्रांसिस्को स्थित उच्च शिक्षा के एक निजी संस्थान 'कैलिफोर्निया इंस्टीटयूट ऑफ इण्टेग्रल स्टडीज' के संकाय में, जिसकी स्थापना विशेष रूप से पश्चिम में श्री अरविन्द की शिक्षा को प्रोत्साहित करने के लिए की गयी थी, सर्वाधिक प्रमुख भारतीय चेहरा हैं। विडम्बना है कि उन्होंने इस मंच का उपयोग उल्टा ही किया है, हिन्दुओं से जुड़ी किसी भी वस्तु को भोले-भाले लोगों के दमन का दुष्ट षडयन्त्र मानकर उसके विरुद्ध गुबार निकाला है।

इन विद्वानों को निकट से देखने पर यह दिखाई देगा कि उनको कहाँ से धन मिलता है, उनके सम्पर्क क्या हैं और उनके एजेंडे क्या हैं।

मार्था नसबॉम (Martha Nussbaum)

मार्था नसबॉम शिकागो विश्वविद्यालय में विधि और नीतिशास्त्र की प्राध्यापक हैं, और उन्हें व्यापक रूप से अमरीकी उदारवाद के एक शक्तिशाली स्वर के रूप में देखा जाता है। लेकिन जब भारत की बात आती है, वे भारतीय सभ्यता के विरुद्ध जुटे बलों के साथ जुड़ जाती हैं और उग्र सुधारवादी यूरोकेन्द्रीयता को गले लगा लेती हैं। उदाहरण के लिए, उन्होंने वक्तव्य दिया कि एक हिन्दू राष्ट्र 'फिनलैंड के लुथेरन चर्च की भाँति कोई सौम्य प्रतिष्ठान' नहीं है, बल्कि एक ऐसा प्रतिष्ठान होगा जो मुसलमानों के साथ दूसरे स्तर के नागरिक की तरह व्यवहार करेगा।[12] (सत्रहवें अध्याय का एक पूरा भाग, और परिशिष्ट ''ज'' भी, भारत में लुथेरन चर्च की भूमिका की पड़ताल पर समर्पित है।) भारत में उनकी रुचि तब प्रारम्भ हुई जब वे एक आत्मीय सम्बन्ध के साथ अमर्त्य सेन के लिए काम कर रही थीं, और जिसके बारे में वह शेखी भी बघारती रही हैं।[13]

जब कुछ विदेशी शिक्षाविदों को अलगाववादी आन्दोलनों से जुड़ा हुआ पाया गया तो भारत की सरकार ने सम्मेलनों में आने के लिए विदेशी प्रतिभागियों को अनुमति लेने को कहा। नसबॉम ने धमकी दी, 'हम देखेंगे कि किस प्रकार दुष्प्रचार

(जो मैं उनके प्रति करने की कामना रखती हूँ, यहाँ और अन्यत्र भी) उनके विरुद्ध दबाव का काम कर सकता है'।[14] यहूदी-विरोध पर येल में सम्पन्न एक गोष्ठी में उन्होंने हिन्दू धर्म को फासीवाद से जोड़ने पर ध्यान केन्द्रित किया, जैसा कि उन पर्चों से झलकता है जिनको उन्होंने प्रतिभागियों के बीच वितरित किया था :

> भारत में हिंसा करने वाले मुसलमान नहीं हैं (जो प्राय: गरीब और दबे-कुचले हैं, लेकिन हिंसा करने में शामिल नहीं हैं, कश्मीर के विशेष उदाहरण को छोड़कर), बल्कि हिन्दू हैं जो अपने सिद्धान्त फासीवादी यूरोप में ढूँढ़ते हैं और जो अपने रुख का प्रारूप 1930 के दशक के यूरोपीय यहूदी-विरोध के अनुरूप बनाते हैं।[15]

उन्होंने प्रतिभागियों को और आगे जानकारी दी कि हिन्दू राजनीतिक परिकल्पना 'यूरोपीय रूमानी राष्ट्रवाद और इसकी जातीय शुद्धता की काली महत्वाकांक्षाओं' से निकली थी। जहाँ उनकी शैक्षिक विशेषज्ञता अरस्तू के दर्शन में है, नसबॉम ने भारतीय सभ्यता की निन्दा करने के लिए व्यापक रूप से लिखा है। उनकी पुस्तक, 'आन्तरिक टकराव : लोकतन्त्र, धार्मिक हिंसा और भारत का भविष्य' (The Clash Within:Democracy, Religious Violence, and India's Future) एक ताजा उदाहरण है। यहाँ उन्होंने विभाजनकारी रुख का समर्थन किया कि सिंधु घाटी सभ्यता द्रविड़ सभ्यता थी, जो संस्कृत भाषा-भाषियों के यहाँ आने के पूर्व की थी। उन्होंने लिखा :

> लगभग निश्चित है कि वे लोग, जो संस्कृत बोलते थे, इस उपमहाद्वीप में बाहर से आये, और मूल निवासियों को पाया, जो सम्भवत: दक्षिण भारत के द्रविड़ों के पूर्वज थे। हिन्दू उतने ही मूल निवासी हैं जितने मुसलमान।[16]

वे न केवल एक विवादास्पद अटकल को एक ऐतिहासिक तथ्य के रूप में प्रस्तुत करती हैं, बल्कि वर्तमान भारतीय राजनीतिक चिन्तन में प्रक्षेपित करती हैं। वे आधुनिक हिन्दू की बराबरी 'संस्कृत भाषियों' से करती हैं 'जो इस महाद्वीप में आये' और उनमें से द्रविड़ भाषा-भाषियों को अलग कर दिया। यह लगभग औपनिवेशिक काल में रिस्ली के विश्व दृष्टिकोण, और आज के द्रविड़ अलगाववादियों के बराबर है। आर्य 'आक्रमण' के परिदृश्य की व्याख्या करने में उन्होंने बस इस बात को छोड़ दिया कि विश्व भर के पुरातत्ववेत्ताओं द्वारा इसे अमान्य कर दिया गया है,[17] और आक्रमण की पटकथा से स्वयं को अनिच्छापूर्वक दूर रखते हुए भी वे 'आर्य प्रवास' की पटकथा का समर्थन करती हैं, जो वही ठहरता है।[18] वे भारतीय विद्वान जो पश्चिमी शिक्षाविदों और वित्त प्रदाता एजेंसियों के पर्यवेक्षण से बाहर हैं, और जो प्राचीन भारतीय इतिहास की पश्चिमी व्याख्या की समालोचना करते हैं, दक्षिणपन्थी हिन्दू ठहरा दिये जाते हैं।

नसबॉम इस बात की कोई परवाह नहीं करतीं कि विदेशी आर्य प्रारूप को अम्बेडकर और हिन्दू दक्षिणपन्थ से असम्बद्ध अनेक दूसरे लोगों द्वारा जोरदार ढंग से अमान्य ठहरा दिया गया था। वे इस बात की उपेक्षा करती हैं कि इस प्रारूप को

सैनिक से पुरातत्ववेत्ता बने अंग्रेज़ मॉर्टिमर व्हीलर (Mortimer Wheeler) द्वारा अत्यधिक लोकप्रिय बनाया गया था, जिन्होंने बड़े भड़कीले तरीके से घोषित किया था कि वैदिक देव इन्द्र पर मोहनजो-दरो में जनसंहार करने का आरोप है। यह किसी परिकल्पना में 'आकस्मिक' भूल नहीं थी, जैसा कि नसबॉम अपने पाठकों को विश्वास दिलाना चाहती हैं। विख्यात अंग्रेज मानवशास्त्री एडमण्ड लीच (Edmund Leach), ने टिप्पणी की :

> सामान्य बुद्धि यह इंगित कर सकती है कि यहाँ ऐसी परिकल्पना का उल्लेखनीय उदाहरण था जिसे खण्डित किया जा सकता था और वास्तव में खण्डित किया गया था। इण्डो-यूरोपियन विद्वानों को अपनी सभी ऐतिहासिक पुनर्रचनाओं को रद्द कर नये सिरे से शोध के आधार पर शून्य से आरम्भ करना चाहिए था। लेकिन वैसा नहीं हुआ। इसमें निहित स्वार्थ और शैक्षिक पदों का प्रश्न था। लगभग बिना किसी अपवाद के सम्बन्धित विद्वानों ने स्वयं को समझाने में सफलता पायी कि भाषाशास्त्रियों के सिद्धान्तों के बाह्य स्वरूपों और पुरातत्व के ठोस प्रमाणों को एक-दूसरे के साथ सटीक बैठाया जा सकता है। यह सोचने के लिए चकमा दिया गया कि घोड़े पर सवार आर्य सिंधु घाटी सभ्यता के शहरों के विजेता थे उसी प्रकार जैसे स्पैनिश विजेताओं ने मेक्सिको और पेरू के शहरों को जीत लिया था या जिस प्रकार मिस्त्र से हिजरत करने वाले इजरायली जेरिको के विजेता थे। ऋग वेद के दीन-हीन दास को, जिसे पहले आदिम जंगली के रूप में समझा गया था, अब एक उच्च सभ्यता के सदस्य के रूप में पुनर्सृजित किया गया।[19]

इस विषय पर आधिकारिक रूप से बोलने की वांछित शिक्षा या प्रशिक्षण के बिना, नसबॉम वेदों की काल गणना पर आगे बढ़कर यह निष्कर्ष निकालते हुए प्रवचन देती हैं, कि वेदों के ईसा पूर्व 1200 से पुराने होने का दावा करना या हड़प्पा संस्कृति की आज तक सांस्कृतिक निरन्तरता के बने रहने का दावा करना किसी भी व्यक्ति को हिन्दू दक्षिणपन्थी ठहरा देता है। चित्र 14.2 भारतविद्या पर नसबॉम के कुछ निष्कर्षों की तुलना विभिन्न प्रकार की पृष्ठभूमियों के पन्थ-निरपेक्ष विद्वानों के निष्कर्षों से करता है।

Fig. 14.2 प्राचीन भारत के सन्दर्भ में मार्था नसबॉम और पन्थ निरपेक्ष विद्वानों के दावों के बीच में तुलना

नसबॉम के दावे	पन्थ निरपेक्ष विद्वानों के दावे
1. ऋग वेद की वो पुरानी तारीखें जो उसे 3000 ईसा पूर्व रखती हैं, हिन्दू दक्षिणपन्थियों	उपिन्दर सिंह ने, जो कि एक इतिहासकार हैं, इंगित किया कि खगोलविदी सन्दर्भों का प्रयोग करते हुए, विद्वानों ने वेदों को भिन्न-भिन्न प्राचीनता दी है : 'ईसा

द्वारा वैदिक-हड़प्पाइ पहचान स्थापित करने का एक षडयन्त्र मात्र हैं। (नसबॉम 2007, 219)	पूर्व तीसरी सहस्त्राब्दी और ईसा पूर्व दूसरी सहस्त्राब्दी के उतरार्ध के बीच की तिथियों को (भाषाशास्त्रीय और खगोलविदी सन्दर्भों के तहत गणना से) हम नकार नहीं सकते। ऋग वेद की तिथि एक जटिल समस्या है।' (सिंह 2009, 185) प्रोफे. नसबॉम उपिन्दर सिंह को हिन्दू दक्षिणपन्थ का इतिहासकार नहीं कह सकतीं, क्योंकि वे भारत के प्रधानमन्त्री मनमोहन सिंह की बेटी हैं और स्वयं एक प्रतिष्ठित इतिहासकार हैं।
2. हड़प्पा में पायी गयी आड़ी-तिरछी खेत जोतने की रेखाएँ हरियाणा के खेतों में आज भी पायी जाती हैं। मार्था नसबौम सभ्यता की इस निरन्तरता के नमूने को 'मुश्किल से ज़िक्र के काबिल' कह कर रद्द कर देती हैं। (नसबॉम 2007, 221)	भारत के वरिष्ठ पुरातत्त्वविज्ञानी बी.के. थापर, जिन्होंने हरप्पा की कालीबंगा साइट की पुरातत्त्ववैज्ञानिक खोज का प्रतिनिधित्व किया था, कहते हैं कि हड़प्पा की खेत जोतने की प्रक्रिया 'आधुनिक समय की खेत जोतने की प्रक्रिया से बहुत मिलती-जुलती है।' (बी.के. थापर और जे.जी. शेफर 1999, 278)
3. हड़प्पा में मिली मूर्तियों की माँग में पुरातत्त्वविज्ञानियों को मिले लाल रंग को नसबॉम द्वारा इस तरह नकार दिया जाता है : टेराकोटा मूर्तियों का रंग इतना अधिक धुल गया है कि यह कहा जाना मुश्किल है कि क्या लाल है और क्या नहीं... इसका तरीका ऐसी किसी भारतीय औरत से नहीं मिलता	जोनाथन म. केनोयेर, यूनिवर्सिटी ऑफ़ विस्कॉन्सिन के पुरातत्व विज्ञानी हैं, ईसा पूर्व 2600 वर्ष की तारीख की स्त्री की एक मूर्ति की माँग में लाल रंग का उल्लेखकरते हैं, और इसे सभ्यता की निरन्तरताका एक बहुत बड़ा सूचक मानते हैं (केनोयेर 1998,44-5)

जिसे मैं जानती हूँ।’ (नसबॉम 2007, 221)	

स्पष्ट है, नसबॉम पुरातात्विक उत्खनन के ठोस तथ्यों के साथ सटीक बैठने वाले अन्य विकल्पों को पीछे धकेलते हुए अपनी राजनीतिक परिकल्पनाओं को ही आगे बढ़ाती हैं। हालाँकि वे पुरातत्व, या भाषा विज्ञान, या संस्कृति की कोई विशेषज्ञ नहीं हैं, और उनका सम्पर्क समकालीन राजनीति तक ही सीमित है, वे सम्पूर्ण भारतीय पुरातात्विक शैक्षिक प्रतिष्ठान पर ‘हिन्दू दक्षिणपन्थी’ का ठप्पा लगाकर निरस्त कर देती हैं। हड़प्पा काल से ही भारतीय सभ्यता की सांस्कृतिक निरन्तरता को वे ‘गम्भीर विद्वतापूर्ण दावों के बदले अनुमान’ के रूप में खारिज कर देती हैं। पुरातत्ववेत्ताओं जिम शेफर और डायैन लिक्टेन्सटीन द्वारा यह गलत प्रमाणित किया जा चुका है, जो भारत में हड़प्पा और हड़प्पा काल के बाद की अवधि के बीच सम्बन्ध के सन्दर्भ में कहते हैं कि ‘उपलब्ध आँकड़े इस बात की ओर इंगित करते हैं कि दक्षिण भारतीय सांस्कृतिक इतिहास का अध्ययन स्वदेशी सांस्कृतिक निरन्तरता के आलोक में ही किया जाना चाहिए, न कि घुसपैठ और निरन्तरता के भंग होने के आलोक में’।[20]

नसबॉम भारत के विखण्डन के अपने दृष्टिकोण को प्राचीन भारतीय इतिहास के चतुर उपयोग के माध्यम से आगे बढ़ाती हैं। उनके भारतीय इतिहास का वर्णन आर्य हिन्दुओं द्वारा भारत पर आक्रमण या आगमन से शुरू होता है, जो भारत के द्रविड़ मूल निवासियों से भिन्न हैं; कोई भी भारतीय विद्वतापूर्ण निष्कर्ष जो इस पर प्रश्न उठाता है, उसे हिन्दू दक्षिणपन्थी षडयन्त्र का हिस्सा मान लिया जाता है। जहाँ पश्चिमी पूर्वाग्रह इतना ज्यादा हो जाता है कि उससे इनकार नहीं किया जा सकता, वह ऐसी त्रुटियों को अनजाने में हुई भूल मानती हैं, लेकिन भारतीय विद्वता को, चाहे उसमें कितना भी दम क्यों न हो, राजनीति प्रेरित बताया जाता है।

वे आरोप लगाती हैं कि भारत आतंकवाद के विरुद्ध संघर्ष करने वाले खेमे में एक षडयन्त्र के तहत कूद पड़ा है, ताकि वह धार्मिक अल्पसंख्यकों के विरुद्ध अपनी हिंसा को न्यायोचित ठहरा सके। आतंकवाद एक बहाना है भारत के ‘जातीय सफाये में निहित मूल्यों’ को ढँकने का, जिसे वह चाहती हैं कि ‘विदेशी पूंजी निवेश के लिए एक सुनिश्चित बाधा’ के रूप में लिया जाना चाहिए।[21] गुजरात की हिंसा पर रोंगटे खड़े कर देने वाले व्यापक विवरण और बेहद सनसनीखेज और बढ़ा-चढ़ाकर लिखे गये उत्पीड़न साहित्य (जिनमें वे दावे भी शामिल थे जिनको अब मनगढन्त सिद्ध कर दिया गया है) प्रस्तुत करने के बाद, वे भारतीयों के बारे में विश्व को सचेत करती हैं : ‘वर्तमान विश्व परिवेश, विशेषकर अमरीका द्वारा आतंकवाद के कार्ड के अविवेकपूर्ण उपयोग ने उनके लिए इस चाल को इस्तेमाल करना आसान कर दिया है’।[22]

वे भारत सरकार पर अल-कायदा का उपयोग 'एक हौवे' की तरह करने का आरोप लगाती हैं, वह भी बिना कोई आधार दिये। वे किसी भी प्रकार के पाकिस्तानी सम्बन्धों वाले भारत स्थित इस्लामी आतंक-नेटवर्क के अस्तित्व से सीधे इनकार करती हैं।[23] भारत द्वारा आतंकवादी प्रकोष्ठों को नियन्त्रित करने के लिए किसी भी प्रकार के विशेष कानून लागू करना न्यायोचित नहीं है, वे बल देकर कहती हैं। वे विलाप करती हैं कि अमरीका विश्व लोकतन्त्र के लिए एक ख़तरे के रूप में भारत की निगरानी नहीं कर रहा :

> भारत में जो होता आ रहा है, वह विश्व में लोकतन्त्र के भविष्य के लिए एक गम्भीर ख़तरा है। यह तथ्य कि इसे अभी अनेक अमरीकियों के राडार पटल पर लाना शेष है, इस बात का प्रमाण है कि किस तरह आतंकवाद और ईराक में युद्ध ने अमरीकियों का ध्यान मौलिक महत्व की घटनाओं और मुद्दों से हटा दिया है।[24]

नसबॉम की राजनीतिक मुद्राओं में से अनेक अन्तर्विरोधों से भरी हैं। उदाहरण के लिए, 2007 में उन्होंने ब्रिटेन की यूनियनों के विरुद्ध तर्क दिये थे जो उन इजरायली शैक्षिक संस्थानों का बहिष्कार कर रही थीं जिन पर राजनैतिक पूर्वाग्रह के आरोप थे। लेकिन उन्होंने यह आलोचना करते हुए भारतीय शैक्षिक संस्थानों और व्यक्तियों पर विपरीत मुद्रा अपना ली थी, कि भारतीयों 'का बहिष्कार करने के लिए एक भी शब्द बोलने में' विश्व विफल रहा।[25]

नसबॉम ने 2008 के मुम्बई आतंकी हमले से निपटने के प्रयासों को यह कहते हुए कमजोर किया कि 'भारतीय आतंकवाद को एक व्यापक सन्दर्भ में देखना महत्वपूर्ण है। भारत में आतंकवाद किसी भी प्रकार से मुसलमानों के सन्दर्भ में विशिष्ट नहीं है'।[26] सन 2008 के मुम्बई हमलों पर चर्चा के दौरान वे गुजरात में 2002 में हुई हिंसा और उड़ीसा में 2008 में हुई हिन्दू-ईसाई हिंसा का उद्धरण देते हुए, वह भी दोनों के बारे में पूरा सन्दर्भ दिये बिना बड़ी तेजी से चर्चा को इस्लामी आतंकवाद से मोड़कर दूर ले गयीं। सन्दर्भों को तोड़-मरोड़कर वे स्थानीय साम्प्रदायिक घटनाओं को आतंकवाद के समतुल्य बताती हैं : 'यह सब आतंकवाद है, लेकिन इनमें से अधिकांश विश्व के मुख पृष्ठों तक नहीं पहुँचते'।[27] इस प्रकार वे भारत-विरोधी आतंकवाद से लोगों का ध्यान दूर हटाने में प्रभावी रही हैं।

प्राचीन भारतीय सभ्यता से जुड़े जटिल मुद्दों पर अपनी सीधी विद्वता के अभाव में नसबॉम ने तोते की तरह दूसरों की बातें दुहरायी हैं, जो उनकी राजनीति के अनुकूल हैं। नसबॉम के पाठक यह नहीं समझ पाते कि नसबॉम के विचारों और परिकल्पनाओं की जड़ें फासीवाद में हैं, जैसे कि उनके तथाकथित 'आर्यों' से जुड़े, वेदों तथा हिन्दू धर्म के मूल से जुड़े और प्राचीन भारत की प्रकृति से जुड़े विचार। इस पुस्तक के पाँचवे अध्याय में नस्ल विज्ञान की पुरानी परिकल्पनाओं की जो चर्चा की गयी है, वह जीवित है और विद्वानों के एक कुचक्री गुट में अब भी मौजूद है, हालाँकि उनमें से केवल कुछ ही श्वेत श्रेष्ठतावादियों की तरह खुले-आम काम कर रहे हैं, जबकि अन्य

लोग उदारवादी ढाँचों का उपयोग करते हुए उसी तरह की चीज लिख रहे हैं। उदाहरण के लिए, प्राचीन भारत पर नसबॉम की बौद्धिक मुद्राओं की तुलना रॉजर पियर्सन जैसे कुख्यात श्वेत श्रेष्ठतावादियों से करना रुचिकर होगा, जो एक ब्रितानी समाजशास्त्री और भारत में अंग्रेजों की सेना के एक पूर्व औपनिवेशवादी अधिकारी थे।[28]

लीसे मैककिन (Lise McKean)

लिसे मैककिन एक शैक्षिक मानवशास्त्री हैं जो अमरीकी सामाजिक मुद्दों पर काम करने वाले शिकागो के अलाभकारी समूह के साथ कार्यरत हैं। वे इस बात का एक उदाहरण हैं कि किस तरह वामपन्थी पश्चिमी शैक्षिक विद्वान भारतीय परम्परा के विरुद्ध पूर्वाग्रह रख सकते हैं, उस बिन्दु तक जहाँ दक्षिणपन्थी और ईसाई प्रचारक बलों के साथ उनकी साठ-गाँठ हो जाये। जब भी भारत में अशान्ति होती है, वे अमरीकी श्रोताओं को यह शिक्षा देने के लिए एक टिप्पणीकार के रूप में सामने आती हैं कि भारतीय संस्कृति में गड़बड़ी क्या है। उनकी पुस्तक, 'दैवी उद्यम : गुरु और हिन्दू राष्ट्रीय आन्दोलन' (*Divine Enterprise: Gurus and the Hindu Nationalist Movement*) भारत में उनके द्वारा किये गये शोध पर आधारित है। इसमें वे हर उस चीज को, जो हिन्दू आध्यात्मिकता से दूर से ही जुड़ी क्यों न हो (जैसे एक सिमेंट का विज्ञापन जिसमें एक योगी को दिखाया गया है), हिन्दू राष्ट्रवाद की अमंगलसूचक छवि से जोड़ती हैं। पुस्तक का एक पूरा अध्याय एक बच्चे की बलि के भयानक विवरण और स्थानीय समाचार पत्र में हिन्दू 'साधु' के विरुद्ध छपे सन्दिग्ध आरोपों पर समर्पित है। पुस्तक के कई भागों के शीर्षक किसी शैक्षिक शोध की दृष्टि से कुछ अधिक ही सनसनीखेज हैं जिसे यूनिवर्सिटी ऑफ शिकागो प्रेस द्वारा प्रकाशित किया गया था। उदाहरण के लिए एक भाग का शीर्षक है 'स्टीफन किंग की लिखी भयावह-कथा से अधिक भयंकर दुनिया के बारे में' (About a World more Macabre than a Stephen King Horror Story)।[29] जब वास्तविक संगठनों की उनकी पड़ताल से कोई भयावह साक्ष्य नहीं मिला तो उन्होंने उन्हें भारत में पन्थ-निरपेक्षता को एक सम्भावित ख़तरे के रूप में चित्रित किया। यहाँ तक कि ऋषिकेश स्थित सुप्रतिष्ठित 'डिवाइन लाइफ सोसाइटी' (Divine Life Society) को भी नहीं बख्शा गया :

> डिवाइन लाइफ सोसाइटी स्वयं को इस रूप में पेश करती है जिसकी कोई सन्दिग्ध गहराइयाँ नहीं हैं; वह दावा करती है कि उसका 'कोई गुप्त सिद्धान्त नहीं है और न ही कोई गूढ़ वर्ग या आन्तरिक मण्डलियाँ हैं। वह शुद्ध रूप से आध्यात्मिक संगठन है जिसका राजनीति की ओर कोई झुकाव नहीं है'। डिवाइन लाइफ सोसाइटी की प्रतिष्ठा, गुरु कलंक-कथाओं और मानव बलि की सनसनीखेज घटनाओं से कम नहीं है, फिर भी, इस पुस्तक द्वारा जिस समस्या को उठाया गया उसे और भ्रमपूर्ण और चकरा देने वाला बनाती लगती है : भारत में

सत्ता और प्रभुत्व के दायरों से गुरुओं, धार्मिक संगठनों और कर्मकाण्डों के सम्बन्ध।[30]

यहाँ तक कि वे महात्मा गाँधी को भी 'हिन्दू राष्ट्रवादियों की वंशावली' का मानती हैं।[31] नेहरू भी दोषी थे, क्योंकि उन्होंने उस शब्दावली का उपयोग किया जो भारत की आध्यात्मिक परम्परा को प्रतिध्वनित करती है :

युगधर्म पर नेहरू का शास्त्रार्थ विवेकानन्द द्वारा सहचर बनायी गयी व्यावहारिक आध्यात्मिकता को अपने में समेट लेता है, और जिसे बाद में रामकृष्ण मिशन, डिवाइन लाइफ सोसाइटी जैसे हिन्दू संगठनों ने संस्थानीकृत किया था ...[32]

मैक्कीन ने 2002 में पिफ्रास द्वारा संचालित संगोष्ठी में भाग लिया, जिसे पिछले अध्याय में एक दक्षिणपन्थी नीति संस्थान बताया गया था।[33] वे ईसाई दक्षिणपन्थी माँग के साथ सुर मिलाती हैं कि अमरीकी विदेश नीति, भारत में गैर-हिन्दुओं के विशेष हितों की रक्षा पर आधारित होनी चाहिए।[34]

रोमिला थापर

रोमिला थापर, प्राचीन भारत में विशेषज्ञता रखने वाली एक प्रमुख इतिहासकार, ने भारत के बारे में एक दृष्टिकोण को आगे बढ़ाया है जो इसके विखण्डन पर बल देता है। इसके लिए उन्हें भारतीय इतिहास के अध्ययन के ढंग में बदलाव लाने का श्रेय दिया जाता रहा है।[35] भारतीय राष्ट्रवादियों पर वे झूठा आरोप लगाती हैं कि उन्होंने स्वयं को अंग्रेज़ों के साथ दिखाने के लिए तथा वर्ण-व्यवस्था में अपने प्रभावी स्थान को उचित ठहराने के लिए आर्य नस्ल के सिद्धान्त का उपयोग किया।[36] यह आरोप भारतीय इतिहासकारों और अन्य बुद्धिजीवियों में 'देशभक्ति = आर्य जाति षडयन्त्र' के रूप में घुस गया, और बहुतों को स्वयं भारत की परिकल्पना पर ही प्रश्न उठाने तक ले गया। यह आज के एक अत्यधिक लोकप्रिय दृष्टिकोण की नींव की तरह काम कर रहा है कि भारत की स्थापना एक दमनकारी उच्च-वर्ण-व्यवस्था के रूप में हुई है, जिसके विरुद्ध निचले-वर्णों के विद्रोह संगठित किये जाने की आवश्यकता है। बिशप कॉल्डवेल, जी.यू. पोप और अन्य औपनिवेशिक काल के ईसाइयों को प्रतिध्वनित करते हुए थापर एक 'सतह के नीचे के धर्म की पहचान करने की बात करती हैं जो नि:सन्देह अधीनस्थ समूहों के उदय से जुड़ा हुआ है'।[37] यह प्रतिष्ठित पश्चिमी संस्थानों द्वारा समर्थित एक सम्मान-योग्य सिद्धान्त उपलब्ध कराके दक्षिण भारतीय द्रविड़ अलगाववाद का विलय अखिल भारतीय सब-ऑल्टर्न आन्दोलनों के कहीं अधिक व्यापक आधार में कर देता है।

उदाहरण के लिए केम्ब्रिज के एक जेसुइट ईसाई धर्मशास्त्री माइकल बार्न्स ने रणनीति के तहत चर्च को 'निचले वर्णों के विद्रोह की हाल की परिघटना' के साथ स्थापित किया है, जिसे वे 'ब्राह्मणवादी प्रभावी भद्र लोगों की दबदबा रखने वाली

संस्कृति के विरुद्ध एक आन्दोलन' के रूप में परिभाषित करते हैं।[38] वे विद्रोहियों को समर्थन देने के लिए चर्च के लिए वकालत करते हैं, जो एकजुट भारतीय सभ्यता को 'भारतीय संस्कृति की संकीर्ण व्याख्या के रूप में देखते हैं, जो वैदिक काल से ही आर्य राष्ट्र के सृजन के रूप में निकली है'।[39] रोमिला थापर को आधिकारिक रूप से उद्धृत करते हुए वे कहते हैं कि ''भारतीय पहचान'' के बारे में 'प्राच्यविद्या-विदों की और हिन्दू राष्ट्रवादी अवधारणाएँ, दोनों के प्रभाव एक बढ़ती आलोचनात्मक निगरानी तक हैं'।[40] इस प्रकार, रोमिला थापर, उन ऐतिहासिक और सांस्कृतिक निरन्तरताओं को अमान्य करने का एक शक्तिशाली उपकरण बन गयी हैं जो भारत और इसकी सभ्यता को एकजुट करती हैं।

इसके एक अन्य उदाहरण हैं रॉबर्ट एरिक फ्राइकेनबर्ग, जो विसकॉन्सिन विश्वविद्यालय में दक्षिण एशिया अध्ययन के प्राध्यापक हैं, जिन्होंने अमरीकन एकेडमी ऑफ आर्ट्स एण्ड साइंसेज में 'हिन्दू फण्डामेंटलिज़्म ऐण्ड द स्ट्रक्चरल स्टेबिलिटी ऑफ़ इण्डिया' विषय पर एक शोधपत्र प्रस्तुत किया था।[41] वे कहते हैं कि भारत और हिन्दू धर्म की परिकल्पनाएँ अंग्रेजों के कम्पनी राज की 'आधिकारिक नीतियों के उप-उत्पाद' हैं, और वे 'यह मान लेने के भ्रम' को खारिज कर देते हैं कि 'किसी प्रकार के सर्वसमावेशी हिन्दू धर्म का कभी कोई अस्तित्व था'। इसकी पुष्टि के लिए आधिकारिक विद्वान के रूप में वे रोमिला थापर का उद्धरण देते हैं, विशेषकर उनके इस वक्तव्य का कि प्राचीन भारतीयों को मात्र 'विशिष्ट सम्प्रदायों और पन्थों के समूह' के रूप में देखा जाना चाहिए।[42] यह भारतीय सभ्यता को एक बेढब और बेतरतीब समूह के रूप में चित्रित करता है जैसा कि यूरोपीय विजय के पहले अन्य तीसरे विश्व के राष्ट्रों के आदिवासियों को चित्रित किया जाता था। इस दृष्टिकोण के तहत, हिन्दू धर्म हाल के 'निर्मित तन्त्रों' और 'राजकौशल के ढाँचों' का परिणाम है। यह भारत को कमजोर बन्धनों या असम्बद्ध समुदायों के एक नकली मेल के रूप में देखते हुए इसके विखण्डन को समर्थन देने वाली परिकल्पनाओं को फिर से लागू करता है, और मानता है कि इन समुदायों को अलगाववादी आन्दोलनों के माध्यम से अवश्य ही मुक्त कराया जाना चाहिए।

थापर अनेक हिन्दू पुराकथाओं और परम्पराओं का विश्लेषण 'कुनबों के संघर्षों' के रूप में करती हैं। हिन्दू आध्यात्मिक अनुभवों को रुग्ण तक कह कर उनका अवमूल्यन किया गया है।[43] वे अर्ध-विद्वतापूर्ण अटकलों का सहारा ले कर नस्ली घृणा की उपस्थिति सम्पूर्ण भारतीय परम्पराओं में होने की बात कहती हैं जब वह सन्देह करती हैं, 'कि राक्षस, प्रेत और दैत्य, विभिन्न प्रकार के दानव और भूत के सन्दर्भ, जंगलों में रहने वाले पराये लोगों के लिए दिये गये होंगे। 'परायों' का दानवीकरण कभी-कभी ऐसे लोगों के प्रति घृणा और यहाँ तक कि उन पर हमले करने को उचित ठहराने का एक तरीका होता है'।[44] यह वही सिद्धान्त है जिसे आज मध्य भारत में सुदूर आदिवासियों के बीच काम कर रहे माओवादी विद्रोही फैला रहे हैं, यानी हिन्दू

धर्म में दानव कह कर जो उल्लेख किया गया है, वह वास्तव में आदिवासियों के सन्दर्भ में आया है।

वे सन्त टॉमस के मिथक और दक्षिण भारत में उनके शहीद होने को 'विश्वसनीय' के रूप में स्वीकार करती हैं।[45] थापर मसीहा के रूप में ईसा मसीह की वैधता को भी मानती हैं और उनके अस्तित्व की ऐतिहासिकता को भी स्वीकार करती हैं जबकि राम की ऐतिहासिकता से इनकार करती हैं।[46] उन्होंने कैलिफोर्निया पाठ्यपुस्तक विवाद में माता-पिताओं द्वारा सुझाये गये सम्पादन के विरोध में माइकल विट्ज़ेल के नेतृत्व में पश्चिमी भारतविदों से हाथ मिला लिये, और पाठ्यपुस्तकों में तथ्यों की भूल की लम्बी सूची को हिन्दू कट्टरपन्थियों के एक षडयन्त्र के रूप में अस्वीकार कर दिया।[47]

2003 में थापर को 'अमरीकी कांग्रेस के पुस्तकालय में दक्षिण के देशों और संस्कृतियों पर क्लग चेयर को सुशोभित करने वाले पहले व्यक्ति के रूप में नियुक्त किया गया'।[48] अमरीकी कांग्रेस के पुस्तकालय से जारी हुई प्रेस विज्ञप्ति में कहा गया कि उन्होंने 'भारतीय सभ्यता का एक नया और अधिक बहुलतावादी दृष्टिकोण पेश किया था...'।[49] सन 2008 में उन्होंने बहुमूल्य क्लग पुरस्कार को सहर्ष स्वीकार किया जबकि उन्होंने दो बार भारत सरकार के पद्म भूषण को ठुकरा दिया था।[50] उन्होंने ऐसा इसलिए किया, क्योंकि वह राजनीतिक रूप से किसी भी सिद्धान्त से साथ जुड़ी हुई नहीं दिखना चाहती थीं। लेकिन क्लग पुरस्कार के बारे में बहुज्ञात है कि यह बहुधा ईसाई प्रचारकों को दिया जाता है।[51] क्लग का वृत्तिदान विद्वानों को शोध करने और 'नीति निर्माताओं के साथ विचारों का आदान-प्रदान करने के लिए' वॉशिंगटन बुलाता है।

क्लग अनुदान में यही प्रकट ईसाई पक्षधर पूर्वाग्रह है जो थापर जैसे मार्क्सवादी इतिहासकार[52] के चयन को सचमुच आश्चर्यजनक बना देता है। इस तथ्य द्वारा विरोधाभास रेखांकित होता है कि जहाँ एक ओर थापर ने प्राचीन हिन्दू धर्म की वैधता को ध्वस्त करने के लिए सम्मान प्राप्त किया, वहीं दूसरी ओर, पीटर आर.एल. ब्राऊन ने, जिन्होंने 2008 के क्लग पुरस्कार में उनके साथ साझेदारी की, ईसाइयत के मामले में ठीक उल्टा किया। प्रारम्भिक ईसाई मठ के एक इतिहासकार ब्राऊन का शोध ईसाई मठों की सकारात्मक छवि को सामने लाया है जो भारत की उसी आध्यात्मिक संस्कृति के समतुल्य है जिसकी निन्दा थापर ने जीवन को नकारने वाले पलायनवाद के रूप में की थी।[53]

मीरा नन्दा

मीरा नन्दा, जो मूलत: जैव-प्रौद्योगिकीविद थीं, मानविकी के क्षेत्र में आ गयीं और 'पीछे को उन्मुख पैगम्बर : भारत में विद्वान और नये सामाजिक आन्दोलनों की उत्तर-

आधुनिक समीक्षाएँ' (Prophets Facing Backward: Post-Modern Critiques of Science and New Social Movements in India) विषय पर अपना दूसरा पी-एच.डी. शोध प्रबन्ध प्रस्तुत किया।[54] उसके बाद से वे अपने आलेखों और व्याख्यानों में भारतीय संस्कृति की निन्दा एक जन्मजात विज्ञान विरोधी के रूप में करती रही हैं और भारतीय राष्ट्र निर्माताओं पर यह भी आरोप लगाती रही हैं कि उन्होंने छद्म-विज्ञान और यहाँ तक कि नाजी मानसिकता के लिए मार्ग प्रशस्त किया।

नन्दा के एक अन्य आलेख का शीर्षक है 'भारत के स्वाधीन चेताओं का आह्वान' (Calling India's Freethinkers), जिसमें वे स्वामी विवेकानन्द और बंकिम चन्द्र (भारतीय राष्ट्रीय पुनरुत्थान के पूर्वज) पर आरोप लगाती हैं कि उन्होंने हिन्दू धर्म के लिए आधुनिक वैज्ञानिक सोच को आत्मसात करने का प्रयास करने का 'आधारभूत पाप' किया। यहाँ तक कि नेहरू को भी, जिन्होंने वैज्ञानिक राष्ट्रवाद को बढ़ावा दिया, इस आरोप में घसीटा गया।[55] वे भारत के 'प्रगतिशील वैज्ञानिकों' का आह्वान करती हैं कि 'उन्नीसवीं शताब्दी के अन्त में स्वामी विवेकानन्द के समय से हिन्दू धर्म में अन्धाधुन्ध और अनियन्त्रित ढंग से विज्ञान के साथ जो ताना-बाना बुना जा रहा है उसे सावधानी से लेकिन दृढ़तापूर्वक अलग करें'। विज्ञान के आलोक में हिन्दू धर्म पर शोध के सभी प्रयासों को हिन्दुत्व से जुड़ा घोषित कर दिया गया है, जिसमें 'रामकृष्ण मिशन और अरविन्द आश्रम से जुड़े समर्थकों के कार्य भी शामिल हैं'। वे पाती हैं कि भारतीय संस्कृति के वैज्ञानिक होने का कोई भी दावा 'हिन्दुत्व की केन्द्रीय हठधर्मिता है'। भारतीय संस्कृति और विज्ञान के बीच सम्बन्ध 'गहरी हिन्दू और आर्य श्रेष्ठतावादी ध्वनि' को प्रतिध्वनित करता है।[56]

जिस बात में प्रबल अन्तर्विरोध दिखता है वह है उनके द्वारा किये गये अनुरोध पर उन्हें धर्म और विज्ञान पर जॉन टेम्प्लटन फाउण्डेशन फेलोशिप का दिया जाना (2005-7), जो संयोग से एक स्वघोषित ईसाई प्रचारक के नेतृत्व के तहत 2006 में दिया गया।[57] नन्दा ने प्रोटेस्टैंटिज़्म का समर्थन एक वैज्ञानिक पन्थ होने के रूप में किया, जबकि हिन्दू धर्म का वर्णन ठीक इसका उल्टा किया। यहाँ तक कि जब वे पश्चिम के लोगों के छद्म-विज्ञान की आलोचना करती हैं, तब भी उनके विवादास्पद विचारों का दोष हिन्दू धर्म पर मढ़ती हैं। उदाहरण के रूप में, रूपर्ट शेल्ड्रेक अपने छद्म-वैज्ञानिकता के सिद्धान्तों को ईसाइयत में ढूँढ निकालना पसन्द करते हैं और फादर बेडे ग्रिफिथ्स का उल्लेख अपने संरक्षक गुरु के रूप में करते हैं।[58] लेकिन नन्दा शेल्ड्रेक को जे.सी. बोस से, जो भारतीय विज्ञान के अग्रणी थे, जोड़ना पसन्द करती हैं, और उसके बाद हिन्दू सम्बन्धों के लिए उनकी आलोचना करती हैं।[59]

उनकी हाल की उनकी पुस्तक 'देव बाजार : कैसे भूमण्डलीकरण भारत को और हिन्दू बना रहा है' (*The God Market: How Globalization is Making India More Hindu*, Random House, 2009) पर इण्डिया टुडे में छपी समीक्षा में सारगर्भित तरीके से उनके भारत और हिन्दू धर्म के प्रति रवैये का सार-संक्षेप इस

प्रकार किया : 'मीरा नन्दा भारत को पसन्द नहीं करतीं। और वे लोकप्रिय हिन्दू धर्म से और भी अधिक जोशीलेपन से घृणा करती हैं'।[60]

नन्दा एक साँचे या बुनावट की प्रतिनिधि हैं : टेम्पल्टन फाउण्डेशन विज्ञान और यहूदी-ईसाई पन्थ को एक साथ मिलाता है, और नन्दा जैसे पहले से ही तैयार भारतीयों का उपयोग भारतीय आध्यात्मिक परम्पराओं पर कुठाराघात करने के लिए करता है।

विजय प्रसाद

विजय प्रसाद एक प्रमुख वामपन्थी आग उगलने वाले शैक्षिक विद्वान हैं, जो हार्टफोर्ड के ट्रिनिटी कॉलेज में अन्तर्राष्ट्रीय अध्ययन के निदेशक हैं। विडम्बना है कि जहाँ उनका अध्यवसाय और सार्वजनिक जीवनवृत्त पूँजीवाद से संघर्ष पर आधारित है, वहीं वे वॉल स्ट्रीट की एक धनी व्यापारिक कम्पनी के प्रमुख के नाम से और उन्हीं के वित्त पोषण से स्थापित प्रतिष्ठित चेयर को सुशोभित करते हैं।[61] वे वैसे संगठन चलाते हैं जो अमरीकी विश्वविद्यालय परिसरों के भारतीय अमरीकी विद्यार्थियों की बहाली करते हैं ताकि उन्हें भारतीय सभ्यता की भयावहताओं के बारे में पढ़ाया जा सके।

प्रसाद अफ्रीकी-दलित आन्दोलन का अनुमोदन करते हैं, जिनमें वी.टी. राजशेखर के नस्लवादी सिद्धान्त भी शामिल हैं। लिमुरियन परिकल्पना का अनुमोदन करने के अलावा, जिसमें कहा गया है कि 'भारत और अफ्रीका एक ही भूभाग थे', और जो उन्हें यह निष्कर्ष निकालने की हद तक ले गया कि 'अफ्रीकियों और भारतीय अछूतों तथा आदिवासियों के पूर्वज एक ही थे', प्रसाद ने लोगों का ध्यान इस ओर आकर्षित किया कि दलित 'शारीरिक संरचना में अफ्रीकियों से मिलते-जुलते हैं'।[62] हालाँकि वे औपनिवेशवादियों द्वारा चलायी जाने वाली आर्य-द्रविड़ मानव जाति-वर्णन सम्बन्धी परियोजनाओं की त्रुटियों और भ्रमों से परिचित हैं,[63] उनका लेखन कुछ इस तरह किया गया है कि वे हिन्दू धर्म और राष्ट्र-राज्य के रूप में भारत की वैधता के लिए किये गये किसी भी कार्य के प्रति सन्देह पैदा करते हैं।

प्लाविउक नामक एक कनाडा का ब्लॉगर इस बात का उदाहरण है कि किस तरह ऐसे सनकी विचार इस इंटरनेट युग में प्रभावशाली बन सकते हैं। प्लाविडक भारतीय सभ्यता के प्रति अपने विचारों के लिए विजय प्रसाद और वी.टी. राजशेखर के लेखन को श्रेय देते हैं जिन्हें उसने 2003 में यूनिवर्सिटी ऑफ ऐल्बर्टा में आयोजित कल्चर एण्ड स्टेट कॉन्फ्रेंस से लिया था, और जिसे वह निम्न प्रकार से पेश करता है :

> आधुनिक हिन्दू धर्म फासीवादी और नस्लवादी है। यह उसका स्रोत है जिसे हम आधुनिक फासीवाद कहेंगे। एक धार्मिक वर्ण-व्यवस्था पर आधारित, जो आर्य मूल की है, यह विश्व को तीन वर्णों में बाँटता है—योद्धा, पुरोहित, और व्यवसायी [क्षत्रिय, ब्राह्मण और वैश्य], और एक दास वर्ग में, दलितों या अछूतों को।[64]

वह एक लिंक भी देता है जो हमें कैलिफोर्निया विश्वविद्यालय के एक अंग्रेज़ी के प्राध्यापक के वेब पृष्ठ पर ले जाता है जो इस विचार का समर्थन करते हैं कि वर्ण नस्ल के बराबर है।[65]

अंगना पी. चटर्जी

अंगना चटर्जी 'कैलिफोर्निया इंस्टीटयूट ऑफ इनटेग्रल स्टडीज' (California Instituteof Integral Studies, सी.आई.आई.एस.) में सामाजिक और सांस्कृतिक मानवशास्त्र की एसोसिएट प्रोफेसर हैं, जो एक ऐसा संस्थान है जिसकी स्थापना विशेष रूप से श्री अरविन्द की आध्यात्मिक शिक्षा को पश्चिम तक पहुँचाने के उद्देश्य से की गयी थी। विडम्बना यह है कि उन्होंने अपने पद का उपयोग इसके ठीक विपरीत किया, मसलन भारतीय आध्यात्मिकता और भारतीय राष्ट्र की वैधता को ध्वस्त करने का उनका प्रयास। वे अपनी रुचियों के रूप में 'पहचान की राजनीति, राष्ट्रवाद, आत्मनिर्णय' का उल्लेख करती हैं।[66] सी.आई.आई.एस. में योगदान करने से पूर्व उन्होंने इण्डियन सोशल इंस्टीटयूट में नीति और पक्ष समर्थन के शोध का काम किया, जिसका संचालन 'ईसाई प्रेरणा का प्रचार करने और कैथोलिक चर्च की सामाजिक शिक्षा का अनुसरण करने' के स्पष्ट उद्देश्य से ईसाइयों द्वारा दिल्ली में किया जा रहा है।[67]

चटर्जी ने एक अत्यधिक अपमानजनक और अपुष्ट रपट के लिए 'महत्वपूर्ण सहायता' प्रदान की जिसमें अमरीका स्थित एक धर्मादा संगठन इण्डियन डेवलपमेंट रिलीफ फंड (आई.डी.आर.एफ.) को यह आरोप लगाते हुए अपराधी ठहराया गया था कि वे भारतीय अल्पसंख्यकों के विरुद्ध घृणा और उत्पीड़न के लिए धन उपलब्ध करवा रहे थे।[68] इन सब के पीछे संचालित करने वाली शक्ति यह थी कि भारतीय ग्रामीण और आदिवासी क्षेत्रों में आई.डी.आर.एफ. के स्कूल धर्मान्तरण में लगे ईसाई मिशनरी स्कूलों के सफल विकल्प उपलब्ध करा रहे थे और चटर्जी को उस गैर-ईसाई प्रतिस्पर्धा को बदनाम करने के लिए लाया गया था जो आई.डी.आर.एफ. द्वारा उपस्थित की जा रही थी।

जहाँ वे ईराक और अफगानिस्तान में अमरीकी हस्तक्षेप को उन देशों के अधिकारों का उल्लंघन मानती हैं और जॉर्ज बुश को ऐसा व्यक्ति कहती हैं 'जिन पर स्वयं मानवता के विरुद्ध अपराध करने का अभियोग लगाया जाना चाहिए',[69] वहीं वे भारतीय मामलों में अमरीका की ओर से हस्तक्षेप भी चाहती हैं, उदाहरण के लिए, अन्तर्राष्ट्रीय धार्मिक स्वतन्त्रता पर संयुक्त राज्य अमरीका के आयोग के माध्यम से। चटर्जी ने उड़ीसा में हिंसा पर गठित अन्तर्राष्ट्रीय धार्मिक स्वतन्त्रता पर यूनाइटेड स्टेट्स कॉन्ग्रेसनल टास्क फोर्स के समक्ष गवाही दी थी,[70] जिसकी अध्यक्षता कांग्रेस सदस्य ट्रेन्ट फ्रैन्क्स और जोजेफ आर. पिट्स ने की थी, जो दोनों दृढ़ दक्षिणपन्थी ईसाई प्रचारक सम्पर्कों वाले हैं।[71]

उड़ीसा की हिंसा पर उन्होंने भारत सरकार को भी अपना अनामन्त्रित साक्ष्य भेजा था जिसमें दिये गये उनके सभी आँकड़े सीधे ऑल इण्डिया क्रिश्चियन काउंसिल द्वारा तैयार रपट में से आये थे, जिसकी चर्चा पहले की जा चुकी है। उनके द्वारा दी गयी जानकारी इतनी इकतरफा थी कि उन्होंने आक्रामक ईसाई प्रचारक संलग्नता[72] के बारे में कुछ सुस्थापित तथ्यों और राज्य में ईसाई प्रचारकों तथा माओवादियों के बीच के गठजोड़ को पूरी तरह नजरअन्दाज कर दिया।[73] उस हिंसा का परिणाम एक हिन्दू साधु की हत्या में आया, जिनको वह एक 'पुरुष हिन्दू धर्मान्तरक' के रूप में खारिज करती हैं। वे हिन्दू संगठनों द्वारा की जाने वाली समाज सेवाओं को 'हिन्दू सक्रियतावाद में भर्ती' के रूप में वर्णित करती हैं, जबकि वे 'ईसाई मिशनरियों द्वारा स्वास्थ्य, शिक्षा और रोजगार के क्षेत्र में की जा रही' इसी प्रकार की सामाजिक सेवाओं की प्रशंसा करती हैं।[74]

स्वयं ही यह घोषित करके कि वे 'भारत प्रशासित कश्मीर में आत्म-निर्णय के अधिकार पर काम कर रही हैं, चटर्जी कश्मीरी अलगाव-समर्थकों के प्रमुख आयोजनों में एक मानक और अपेक्षित भागीदार बन गयी हैं।[75] कश्मीर पर आयोजित ऐसे ही एक सम्मेलन में, जिसका आयोजन जॉर्ज वाशिंगटन यूनिवर्सिटी में पाकिस्तानी स्टुडेन्ट्स एसोसिएशन, पाकिस्तानी दूतावास, और कश्मीर मामलों के पाकिस्तानी मन्त्री ने किया था, उन्होंने 'भारत के कब्जे वाले कश्मीर में सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक, धार्मिक और आर्थिक अधिकारों के क्षेत्रों में मानवाधिकार संकट के बारे में नागरिक समाज समूहों के बीच बढ़ती चिन्ता' की चर्चा की। उन्होंने भारत पर 'कश्मीर के [कुछ विशेष हिस्सों में] अपना कब्जा बनाये रखने' का आरोप लगाया।[76] मुहम्मद सादिक, जो एक कश्मीरी समाचार और विश्लेषण पोर्टल चलाते हैं, विस्तार से बताते हैं कि किस प्रकार अंगना चटर्जी मानवाधिकार से सम्बन्धित चिन्ताओं का उपयोग इस्लामी आतंकवादियों के हाथों की कठपुतली बनने के लिए इकतरफा तरीके से करती हैं :

> [अंगना चटर्जी] ने 5 अप्रैल को श्रीनगर में 'इंटरनेशनल पीपल्स ट्राइब्यूनल ऑन ह्यूमन राइट्स एण्ड जस्टिस इन इण्डियन एडमिनिस्टर्ड कश्मीर' के गठन की घोषणा की। रोचक बात यह है कि यह संगठन भी इस बात पर बल देता है कि मानवाधिकार अनुसंधानों का केन्द्र बिन्दु भारतीय भाग के कश्मीर में होना चाहिए, पाकिस्तान के कब्जे वाले कश्मीर में भी नहीं। इससे भी बड़ी बात यह कि यह गड़बड़ी का पता लगाने वाला मिशन है। इसका एकमात्र उद्देश्य भारतीय सुरक्षा बलों की आलोचना करना है, जो मानवाधिकार मामलों को और उजागर करता है तथा स्थितियों को बदतर बनाता है। समझौता करने, मानवाधिकार उल्लंघन के पीड़ितों को राहत उपलब्ध कराने या सरकार के साथ मिलकर काम करने के लिए ताकि यह सुनिश्चित किया जा सके कि मानावाधिकार उल्लंघन की घटनाएँ न हों, कोई प्रयास नहीं किया जाता। डॉ. चटर्जी, अपने पहले के अनेक

> दूसरे लोगों की तरह, मुख्य रूप से भारतीय सुरक्षा बलों का दानवीकरण करने पर लगी हुई हैं और इस प्रकार घृणा को हवा दे रही हैं।[77]

भारत का चित्रण हिन्दू क्रूरता की भयानकता से भरे एक अलोकतान्त्रिक राज्य के रूप में करके, ऐसे वामपन्थी शैक्षिक विद्वानों ने इस्लामी आतंकवाद और जिसे वे भारतीयों द्वारा मुसलमानों, ईसाइयों और दलितों के विरुद्ध की गयी उतनी ही बुरी घटनाओं के रूप में चित्रित करते हैं, उसके बीच के अन्तर को धुँधला कर दिया है। यह भारत पर आतंकवादी हमलों को उचित ठहराता हुआ प्रतीत होता है मानो भारत इसी का हकदार है। सन 2008 के आतंकवादी हमलों के बाद, वाशिंगटन टाइम्स की धार्मिक विषयों की सम्पादक जूलियन डुइन द्वारा प्रतिबिम्बित किया गया :

> इस वर्ष के उत्तरार्ध में मुम्बई में आतंकवादी हमले ने—इस बार मुस्लिमों द्वारा—बारूद के डिब्बे को रेखांकित किया है जो कि भारत बन गया है और यह भी कि हिन्दू बहुल देश में प्राय: कितनी बार दमित लोगों को न्याय नहीं मिलता। उड़ीसा के अपराधियों को अब तक दण्ड नहीं मिला है।[78]

न्यू यॉर्क पब्लिक लाइब्रेरी में आयोजित एक अन्य सार्वजनिक आयोजन में भी यही दृष्टिकोण व्यक्त किया गया, यानी मुम्बई हमले के लिए भारतीय दोषी कहलाये जाने के हकदार हैं, क्योंकि वे कश्मीर को गैर-कानूनी ढंग से अपने कब्जे में रख रहे हैं और सामान्यत: मुसलमानों का दमन कर रहे हैं। प्रमुख वक्ताओं में एक, जिनका यही दृष्टिकोण था, आकिल बिल्ग्रामी थे जो कोलम्बिया विश्वविद्यालय में दर्शनशास्त्र के प्राध्यापक हैं, जो एक वैसे भारतीय अमरीकी हैं जिनके भारतीय सभ्यता के विरुद्ध कट्टर दृष्टिकोण हैं। जब श्रोताओं में बैठे कुछ भारतीयों ने नारायण कटारिया के नेतृत्व में इस चर्चा के उग्र इकतरफा दृष्टिकोण को उजागर करना प्रारम्भ किया तब बैठक ख़त्म करने की घोषणा कर दी गयी।

पन्थ-निरपेक्ष चश्मे का इस्लामी रंग

संयुक्त राज्य अमरीका से संचालित दक्षिण एशिया अध्ययनों के हमारे सर्वेक्षण ने एक अत्यन्त दृढ़ इस्लाम समर्थक पूर्वाग्रह को उजागर किया है। भारतीय मुसलमानों और भारत में आतंकवाद से जुड़े सभी प्रकार के विषयों के लिए हिन्दुओं और भारत सरकार को दोषी ठहराया जाता है। अमरीका में विभिन्न इस्लामी पक्ष-समर्थक समूह वैसे विद्वानों का पोषण करते हैं, और उन्हें भारत में उन लोगों के साथ जोड़ने के लिए मंच और तन्त्र उपलब्ध करवाते हैं जो उनसे सम्बद्ध हैं।[79] इण्डियन मुस्लिम काउंसिल एक प्रमुख लॉबिस्ट का उदाहरण है जो अमरीकी शिक्षा-तन्त्र को प्रभावित कर रहा है।

इण्डियन मुस्लिम काउंसिल (आई.एम.सी.) भारतीय मुसलमानों के लिए संयुक्त राज्य स्थित पक्ष-समर्थक समूह है। इसके एक स्थानीय नेता कलीम कवाजा खुले-आम तालिबान से सहानुभूति रखते रहे हैं, 9/11 की आतंकवादी हमले की घटना के

बाद भी।[80] फिर भी आइ.एम.सी. भारत पर अमरीकी नीतियों को प्रभावित करने में सफल है।[81] यह कश्मीर जैसे विषयों पर भारत विरोधी रुख अपनाती है, और कवाजा पाकिस्तानी पत्रिकाओं में कश्मीर की तुलना कोसोवो और ईस्ट तिमोर से करते हुए लिखते हैं।[82] आई.एम.सी. के उच्चस्तरीय सम्मेलनों में इसके मुख्य वक्ताओं[83] में लाइजे मैटकीन (जिनके बारे में इसी अध्याय में पहले चर्चा की गयी है), और एक महत्वपूर्ण उदारवादी डेमोक्रेट, कांग्रेस सदस्य जॉन कोन्यर्स भी शामिल रहे, जिन्होंने 'धार्मिक स्वतन्त्रता का उल्लंघन करने' के लिए भारत की निन्दा का एक प्रस्ताव पारित करने के उद्देश्य से दक्षिणपन्थी रिपब्लिकनों का साथ दिया था।[84]

अमरीका में आयोजित आई.एम.सी. के 2008 के वार्षिक सम्मेलन में तहलका पत्रिका के संस्थापक और प्रमुख, तरुण तेजपाल ने मुख्य भाषण दिया, जिसमें भारत में अनेक अल्पसंख्यक समूहों के दमन को रेखांकित किया गया, जिनमें मुस्लिम, दलित, आदिवासी और ईसाई भी शामिल हैं।[85] सम्मेलन में अंगना चटर्जी को 'टीपू सुल्तान' पुरस्कार दिया गया। एक उग्र सुधारवादी ईसाई दक्षिणपन्थी समूह (जिस पर तेरहवें अध्याय में चर्चा की गयी है), पिफ्रास ने उनके साझे शत्रु के विरुद्ध एकता प्रदर्शित करने के लिए भाग लिया।[86]

2008 में आई.एम.सी. ने सक्रियतावादी तीस्ता सीतलवाड़ के लिए एक अमरीकी व्याख्यान दौरे की व्यवस्था की, जिनकी अन्तर्राष्ट्रीय प्रसिद्धि का आधार हिन्दू दंगाइयों द्वारा एक गर्भवती मुस्लिम महिला का पेट चीरकर उनके भ्रूण के आग में झोंक देने के दावे पर उत्पीड़न साहित्य उपलब्ध कराना है। जो भी हो, भारत के सर्वोच्च न्यायालय द्वारा उन साम्प्रदायिक दंगों की जाँच के लिए गठित विशेष अनुसंधान दल (एस.आई.टी.) ने इस घटना के विवरण की सत्यता का खण्डन कर दिया था। अनेक दंगा पीड़ितों ने कहा कि सीतलवाड़ ने हिंसा को अतिरंजित करने के लिए अंग्रेज़ी में लिखे शपथपत्रों पर (जिसे उन लोगों नहीं समझा) उनसे हस्ताक्षर करवा लिये थे।[87]

2008 के मुम्बई आतंकी हमले के आलोक में, आई.एम.सी. की प्रेस विज्ञप्ति ने इस घटना को भारत में 'जातीय सफाये और अल्पसंख्यकों को निशाना बनाने, पुलिस द्वारा परेशान करने और निर्दोष नागरिकों को बलि का बकरा बनाने तथा फर्जी मुठभेड़ों में मारे जाने' से जोड़ा।[88]

पश्चिमी अन्तर्राष्ट्रीय समूह और उनके भारत स्थित सम्बद्ध व्यक्ति और संगठन गुप्तचर सूचनाओं के आदान-प्रदान के लिए नियमित रूप से मिलते हैं। उदाहरण के लिए, 'सामाजिक और राजनीतिक सन्दर्भों में हिन्दू राष्ट्रवादी संगठन' ((Hindu Nationalist Organizations in Social and Political Contexts)) विषय पर 2008 में विश्वविद्यालय अनुदान आयोग (जो भारत सरकार का एक संस्थान है) के विशेष सहायता कार्यक्रम के तहत भारतीय समाज विज्ञान अनुसंधान परिषद, नई दिल्ली, के साथ मिलकर एक अध्ययन करवाया गया था। शोधकर्ता विद्वानों और संस्थानों में से

कुछ के (जिनमें विदेशी संस्थान भी शामिल हैं) बहुत स्पष्ट इसाइ प्रचारक पूर्वाग्रह थे। यह प्रदर्शित करता है कि किस प्रकार अनेक उदारवादी-वाम औपनिवेशोत्तर काल के विद्वानों को, जो अमरीकी हस्तक्षेप के विरोधी होने का दावा करते हैं, प्रभावी ढंग से शामिल कर लिया जाता रहा है। अनेक कारण हैं, जिनमें शैक्षिक प्रतिष्ठा का लालच भी शामिल है, जो समाज विज्ञान में यूरोकेन्द्रित, और भारत में संचालित हो रहे बहुराष्ट्रीय धार्मिक संस्थानों के सौम्य दृष्टिकोण के प्रति पूर्वाग्रह को रेखांकित करते हैं।

15
संयुक्त राज्य अमरीका की सरकार की सीधी संलग्नता

विभिन्न अमरीकी सेनेटरों और कांग्रेस सदस्यों द्वारा अपनी आधिकारिक हैसियत से सरकार की परोक्ष भूमिका, और गैर-सरकारी विचार मंचों तथा सक्रियतावादियों की परोक्ष रूप से सहायता करने की भूमिका के अलावा संयुक्त राज्य अमरीका की सरकार अपनी विदेश नीति के एक अंग के रूप में विदेशी ईसाई धर्मान्तरण में प्रत्यक्ष रूप से सक्रिय रही है। वर्तमान अध्याय 'अन्तर्राष्ट्रीय धार्मिक स्वतन्त्रता पर अमरीकी आयोग' (US Comision on International Religious Fredom) जिसे राष्ट्रपति बिल क्लिंटन के कार्यकाल में गठित किया गया था, यू.एस. एड (USAID) कार्यक्रमों और साथ ही किस प्रकार ओबामा प्रशासन कुछ मामलों में ईसाई दक्षिणपन्थियों के हाथों में खेला है, इसकी पड़ताल कर इसे प्रदर्शित करता है।

अन्तर्राष्ट्रीय धार्मिक स्वतन्त्रता अधिनियम

अन्तर्राष्ट्रीय धार्मिक स्वतन्त्रता अधिनियम (इरफा) (IRFA) संयुक्त राज्य अमरीका में 1998 में एक कानून के रूप में राष्ट्रपति क्लिंटन के कार्यकाल में ईसाई दक्षिणपन्थियों की भारी लॉबिंग के तहत पारित किया गया था। क्लिंटन ने विभिन्न कानूनों के लिए, जिनको वे पारित करवाना चाहते थे, ईसाई समर्थन के बदले इसका समर्थन किया। दक्षिणपन्थी और वामपन्थी राजनीतियों के बीच ऐसा लेन-देन कुछ विशेष मामलों में उनके अवसरवादी सहयोग के कारणों में से एक है।[1]

इस अधिनियम ने तीन संस्थानों की स्थापना की :

- अमरीकी विदेश मन्त्रालय के अन्दर अन्तर्राष्ट्रीय धार्मिक स्वतन्त्रता के लिए एक सर्वोच्च स्तर का राजदूत
- कांग्रेस, अमरीकी विदेश मन्त्रालय, और वाइट हाउस को सलाह देने के लिए यू.एस. कमिशन ऑफ इंटरनेशनल रिलिजियस फ्रीडम (USCIRF)
- राष्ट्रपति की राष्ट्रीय सुरक्षा परिषद में अन्तर्राष्ट्रीय धार्मिक स्वतन्त्रता पर एक विशेष सलाहकार

यह अधिनियम एक विधेयक से निकला जिसे रिपब्लिकन प्रतिनिधि फ्रैंक वुल्फ (Frank Wolf) द्वारा संरक्षणवादी ईसाई समूहों की ओर से प्रस्तुत किया गया था। इसका उद्देश्य था वैसे तन्त्र के लिए मार्ग प्रशस्त करना ताकि विकासशील देशों की ईसाई जनसंख्या को संयुक्त राज्य अमरीका के दक्षिणपन्थी ईसाई संगठनों से आबद्ध किया जा सके। जैसा कि ऐलन डी. हर्ट्जके ने बाद में लिखा :

> विधेयक की उस पहलकदमी के पीछे शर्तें क्या थीं? पहली शर्त है ईसाइयत का वैश्वीकरण। ईसाई जनसंख्या की बनावट में परिवर्तन को एशिया, अफ्रीका और लातीनी अमरीका जैसे विकासशील विश्व तक में लागू किया गया जिसने विश्व भर में एक प्रभावक्षेत्र निर्मित किया जो यहाँ अमरीका स्थित प्रभावक्षेत्र के साथ संवाद करता है।[2]

यह अधिनियम मूलत: ईसाई धर्मान्तरण के रोकने वाले देशों के विरुद्ध अनिवार्यत: प्रतिबन्ध लगाने के लिए बनाया गया था—उन पर यह आरोप लगाकर कि वे एक 'धार्मिक अत्याचार के साँचे' से संलग्न हैं। इसे शीघ्र ही राष्ट्रपति को यह अधिकार देने के लिए संशोधित कर दिया गया कि उन्हें ऐसे प्रतिबन्धों को हटाने की अनुमति हो अगर वे अनुभव करते हैं कि प्रतिबन्ध लगाना अमरीका के हितों के लिए हानिकारक होगा। संशोधन के बाद यह एक अधिनियम जैसा बन गया है, और यह कानून संयुक्त राज्य के राष्ट्रपति के हाथों में एक लचीला हथियार है।

आई.आर.एफ.ए. के तहत 'धार्मिक स्वतन्त्रता' कार्यक्रमों को अमरीका के दक्षिणपन्थी ईसाई संरक्षणवादियों द्वारा प्रबल समर्थन प्राप्त है, जो इसी प्रकार के मुद्दों के लिए एक तन्त्र के रूप में संयुक्त राष्ट्र संघ के उग्र आलोचक हैं, क्योंकि संयुक्त राष्ट्र संघ उन्हें उस तरह का दबदबा नहीं प्रदान करता जैसा कि अमरीका की घरेलू राजनीति प्रदान करती है।

आई.आर.एफ.ए. की आलोचना एक हस्तक्षेप के उपकरण के रूप में की जाती रही है और उसे मानवाधिकार पर सच्चा कार्यक्रम नहीं माना जाता, और इसलिए भी कि इसमें स्वयं संयुक्त राज्य अमरीका के अन्दर धार्मिक स्वतन्त्रता का अध्ययन करने के अधिकारक्षेत्र का अभाव है। एक शैक्षिक विद्वान ने इसकी आलोचना इस प्रकार की है : 'हालाँकि आई.आर.एफ.ए. के अधिकार का विस्तार विश्व के सभी अन्य देशों तक है (194 देश), न तो विदेश विभाग और न ही कमिशन स्वयं संयुक्त राज्य अमरीका की सीमा के अन्दर धार्मिक स्वतन्त्रता की स्थिति का आकलन कर सकता है'।[3] अन्तर्राष्ट्रीय धार्मिक स्वतन्त्रता के लिए पहले सर्वोच्च स्तर के राजदूत रॉबर्ट ए. सीपल, ने भी इसके पाखण्ड की आलोचना की : 'कम-से-कम इतना तो कहा जा सकता है कि यह अभिमान, उद्दण्डता और पाखण्ड की गुंजाइशें पेश करता है। यह केवल दूसरों के बारे में रिपोर्ट करने के प्रति झुकाव, तथा किसी भी प्रकार की आत्मालोचना से अलग रहने की सलाह देता है'। संयुक्त राष्ट्र संघ के एक विशेष दूत ने बिना नाम लिए एक शिक्षाविद को उद्धृत किया : 'अमरीकी कांग्रेस सोचती है कि हम धार्मिक स्वतन्त्रता के विषयों पर बस अच्छा काम करते हैं, और शेष विश्व द्वारा हमें नहीं बताना चाहिए कि इसे सही तरह से कैसे किया जाये'।[4] दूत ने मूल निवासी अमरीकियों की दुर्दशा को रेखांकित किया जिन्हें ऐतिहासिक रूप से जनसंहार और जबरन धार्मिक धर्मान्तरण से गुजरना पड़ा।

आइ.आर.एफ.ए. के कार्यान्वयन के साथ एक और समस्या है जिसे आलोचकों ने इंगित किया है—वह ईसाई प्रचारक संस्थानों के नियन्त्रणाधीन है। अन्तर्राष्ट्रीय धार्मिक स्वतन्त्रता पर अमरीका के सर्वोच्च राजदूत रॉबर्ट ए. सीपल ग्यारह वर्षों तक वर्ल्ड विजन के अध्यक्ष रहे थे और ईस्टर्न कॉलेज तथा ईस्टर्न बैप्टिस्ट थियोलॉजिकल सेमिनरी के अध्यक्ष के रूप में चार वर्षों तक सेवा की थी।[5] फ्लोरिडा के एक समाचार-पत्र को दिये गये साक्षात्कार में सीपल ने गर्व से दावा किया था कि उनके ईसाई विश्वास ने वियतनाम युद्ध में एक नौसेना अधिकारी के रूप में तीन सौ लड़ाई मिशनों के दौरान उन्हें बचाकर रखा।[6]

अन्तर्राष्ट्रीय धार्मिक स्वतन्त्रता के लिए दूसरे सर्वोच्च राजदूत थे जॉन वी. हैनफोर्ड तृतीय, जो सेनेटर रिचर्ड लुगर के कार्यालय में एक कर्मचारी थे, जहाँ उन्होंने उस दल का नेतृत्व किया जिसने इस अधिनियम को लिखा।[7] उनके पास गॉर्डन-कॉनवेल थियोलॉजिकल सेमिनरी से मास्टर ऑफ डिविनिटी की डिग्री है, जिनका मिशन इसके अध्यक्ष द्वारा इस प्रकार परिभाषित है : 'हमारे ईश्वर ने गॉर्डन-कॉनवेल थियोलॉजिकल सेमिनरी को एक मिशन दिया है : उन पुरुषों और स्त्रियों को प्रशिक्षित करने का जिनमें प्रतिबद्धता, दृष्टि, और ईसा मसीह के लिए विश्व तक पहुँचने की विद्वतापूर्ण सक्षमता है ... जहाँ वे महान प्रवचनकर्ता और शिक्षक, ईसाई प्रचारक और मिशनरी बन सकें...'।[8] सेमिनरी का धर्म सम्बन्धी वक्तव्य एक कट्टरपन्थी किस्म की ईसाइयत[9] को उजागर करता है और उसके प्रमुख समर्थकों की सूची में धार्मिक शिक्षक डॉ. बिली ग्राहम के नाम का भी उल्लेख करता है, जिनके पुत्र रेवरेंड फ्रैंक्लिन ग्राहम अपने मुस्लिम विरोधी और हिन्दू विरोधी दृष्टिकोणों के लिए कुख्यात हैं।[10] हैनफोर्ड ने प्रेस्बिटीरियन चर्च की पास्टोरल मिनिस्ट्री (ग्रामीण क्षेत्रों के चर्चों का प्रबन्धन) में भी योगदान दिया है, और उनकी पत्नी रूढ़िवादी ईसाई प्रचारक संगठन 'कैम्पस क्रूसेड फॉर क्राइस्ट' की समर्थक हैं।[11]

अन्तर्राष्ट्रीय धार्मिक स्वतन्त्रता पर अमरीकी आयोग

संयुक्त राज्य अमरीका की सरकार द्वारा रणनीतिगत नीति निर्माण के उद्देश्य से अन्तर्राष्ट्रीय धार्मिक स्वतन्त्रता पर अमरीकी आयोग (यू.एस. कमिशन ऑन इंटरनेशनल रिलिजियस फ्रीडम, यू.एस.सी.आई.आर.एफ.) भारत के आन्तरिक धार्मिक मामलों पर आँकड़ों को छानता और संश्लेषित करता है। इसके पुराने कमिश्नरों में जॉन आर. बोल्टन और इलियट अब्राम्स शामिल हैं, जो दोनों कई रिपब्लिकन राष्ट्रपतियों के तहत विदेश नीति प्रतिष्ठान के प्रमुख सदस्य रहे हैं। बोल्टन ने बहुधा संयुक्त राष्ट्र संघ की आलोचना की और शस्त्र नियन्त्रण संधियों के विरुद्ध काम किया, हालाँकि उन्होंने संयुक्त राष्ट्र संघ में 2005-2006 में संयुक्त राज्य अमरीका के प्रतिनिधि के रूप में योगदान दिया। बोल्टन ने एक बार टिप्पणी की थी, 'संयुक्त राष्ट्र संघ जैसी कोई चीज नहीं है। केवल अन्तर्राष्ट्रीय समुदाय है, जिसका

नेतृत्व केवल बची हुई महाशक्ति द्वारा ही किया जा सकता है, जो संयुक्त राज्य अमरीका है'।[12] इलियट अब्राम्स राष्ट्रपति रीगन के लिए विदेश अवरसचिव थे, और ईरान-कॉण्ट्रा मामले में उनकी भूमिका के लिए एक विशेष अभियोजक ने उनके विरुद्ध कई महाअपराध के अभियोग तैयार किये थे, लेकिन उन्हें अन्तत: पहले राष्ट्रपति बुश द्वारा क्षमादान दे दिया गया था।[13] बाद में दूसरे राष्ट्रपति बुश ने उन्हें एक यू.एस.सी.आई.आर.एफ. कमिश्नर के रूप में नियुक्त किया और उन्होंने एक वर्ष तक इसके अध्यक्ष के रूप में काम किया।

यू.एस.सी.आई.आर.एफ. के एक अन्य महत्वपूर्ण कमिश्नर हैं रिचर्ड लैंड, जिन्हें टाइम पत्रिका द्वारा अमरीका में सर्वाधिक प्रभावशाली पच्चीस ईसाई प्रचारकों में से एक नामित किया है। वह सदर्न बैप्टिस्ट कन्वेंशन के एथिक्स एण्ड रिलिजियस लिबर्टी कमीशन के अध्यक्ष हैं।

एक अन्य कमिश्नर हैं नीना शिया, जो 'विश्व भर में ईसाई विरोधी उत्पीड़न के बारे में' छपी पुस्तक 'शेर की माँद में' (In the Lion's Den) की लेखिका हैं। यू.एस.सी.आई.आर.एफ. की वेबसाइट में उनका विवरण इस प्रकार है :

> ... विदेशों में धार्मिक स्वतन्त्रता को अमरीकी विदेश नीति की एक प्राथमिकता बनवाने के अभियान में अग्रणी आन्दोलनकारियों में से एक हैं। यह वह सम्मेलन था जिसे शिया ने जनवरी 1996 में आयोजित किया था जिसने विश्वव्यापी ईसाई विरोधी उत्पीड़न के मुद्दे पर विचार के लिए 100 सबसे बड़े ईसाई नेताओं को पहली बार एक साथ एक मंच पर एकत्रित किया था। यही चर्च एकजुटता की शुरुआत के रूप में चिह्नित हुआ जो एक राष्ट्रव्यापी अभियान में बदल गया है। न्यूज वीक पत्रिका ने उन्हें श्रेय दिया कि उन्होंने 'ईसाई उत्पीड़न को वाशिंगटन का ज्वलन्त विषय' बना दिया था।[14]

शिया का सम्बन्ध फ्रीडम हाउस के साथ भी है, जो एक उग्र हिन्दू विरोधी संगठन है, और उनके कार्य ईसाई धर्मान्तरण की स्वतन्त्रता को विशेष रूप से प्रोत्साहित करते हैं; इसलिए, वह धार्मिक बहुलतावाद के विरुद्ध है।

यू.एस.सी.आई.आर.एफ. साक्ष्यों की सुनवाई करता है और वार्षिक रपट भी जारी करता है जो उसके ईसाई पक्षधर पूर्वाग्रहों को प्रदर्शित करती है तथा किस प्रकार यह भारत के विरुद्ध अमरीका को राजनीतिक बढ़त प्रदान करता है। इसकी रपटें भारत की घटनाओं पर ईसाई प्रचारक बुनावट से भरी होती हैं।

प्रारम्भिक भारतीय विरोध की उपेक्षा

प्रिंस्टन स्थित 'इनफिनिटी फाउण्डेशन' (Infinity Foundation) के डॉ. डेविड ग्रे (Dr. David Gray) ने सन 2000 में इसके पूर्वाग्रहों पर अपनी चिन्ता व्यक्त करते हुए कमिशन को लिखा, और 'डेवलपिंग स्टैंडर्ड्स फॉर रिलिजियस फ्रीडम' पर योगदान

देने का प्रस्ताव दिया। उन्हें इस बात की जाँच करने का सुझाव दिया कि क्या ईसाई प्रचारक साहित्य जो अन्य समुदाय को 'अभिशप्त', 'पापी', 'बहुदेववादी मूर्तिपूजक' या 'परधर्मावलम्बी असभ्य' कहकर नीचा दिखाता है, को 'घृणायुक्त भाषण' माना जाना चाहिए। उन्होंने इस बात पर ध्यान दिया कि अमरीका के मुक्त बाज़ारवादी वाणिज्य में अपने प्रतिस्पर्धी को अनुचित या झूठे तरीके से कूड़ा बताना गैर-कानूनी है, और इसलिए किसी दूसरे के धर्म अथवा पन्थ के झूठे चित्रण पर भी यही मानदण्ड लागू किया जाना चाहिए। एक भाग में जिसका शीर्षक 'कन्ज्यूमर प्रोटेक्शन' था, उन्होंने उन ईसाई प्रचारकों पर निगरानी रखने का सुझाव दिया जो मूर्त और अमूर्त पुरस्कारों का उपयोग कर धर्मान्तरण करते हैं।[15] उनके पत्र की यू.एस.सी.आई.आर.एफ. द्वारा सीधी उपेक्षा कर दी गयी और यहाँ तक कि उसे अपने सार्वजनिक अभिलेखागार में भी शामिल नहीं किया।

एक उदारवादी और धृष्ट हिन्दुत्व विरोधी साधु, स्वामी अग्निवेश ने साक्ष्य देने के लिए संयुक्त राज्य सरकार द्वारा दिये गये निमन्त्रण को अस्वीकार कर दिया था, यह कहते हुए कि वे एक 'वैश्विक पुलिसकर्मी' के रूप में संयुक्त राज्य के अधिकार को स्वीकार नहीं करेंगे। उक्त सुनवाई को अमान्य बताते हुए उनकी प्रेस विज्ञप्ति आगे कहती है : 'अमरीका की ओर से अन्य देशों में स्वतन्त्रता की निगरानी के प्रयास ... अन्य राष्ट्रों की सम्प्रभुता के उल्लंघन के बराबर हैं। जहाँ यह समझ में आता है कि अमरीका इस तरह के अभ्यास करना चाहेगा, दूसरे राष्ट्रों के नागरिक अपने राष्ट्रीय गर्व और देशभक्ति से समझौता किये बिना इस प्रक्रिया की सहायता नहीं कर सकते और न ही इसे प्रोत्साहित कर सकते हैं'।[16]

प्रारम्भ में इण्डियन कैथोलिक चर्च ने सार्वजनिक रूप से स्वयं को कमिशन के समक्ष गवाही देने से स्वयं को अलग कर लिया, कैथोलिक बिशप्स कान्फेरेंस ऑफ इण्डिया (सी.बी.सी.आई.) के इस वर्णन के साथ कि भारत में धार्मिक स्वतन्त्रता पर वॉशिंगटन में प्रस्तावित सुनवाई 'अनुचित' है। फादर डी'सूजा ने कहा कि हिन्दू अतिवादियों के हाथों ईसाई विरोधी हिंसा ने 'घोर मानवाधिकार उल्लंघन की स्थिति को पार नहीं किया है कि उसके कारण राष्ट्र के आन्तरिक मामलों में हस्तक्षेप की आवश्यकता आन पड़ी है'।[17] लेकिन रणनीतिगत ढंग से दोनों ओर भूमिका अदा करने के लिए, इण्डियन चर्च ने ऑल इण्डिया कैथोलिक यूनियन के राष्ट्रीय उपाध्यक्ष जॉन दयाल को अनुमति दे दी कि वह संयुक्त राज्य में होने वाली सुनवाई में भाग लें और भारत सरकार के विरुद्ध ईसाई विरोधी पूर्वाग्रह के आरोपों का अपना संकलन प्रस्तुत करें। जहाँ फादर डी'सूजा ने भारतीय प्रभुसत्ता का बचाव किया, वहीं उन्होंने दयाल की गवाही को उनकी अपनी 'व्यक्तिगत हैसियत के आधार पर न कि चर्च के एक प्रतिनिधि के रूप में' समर्थन दिया।[18] ऐसा 'अच्छे सिपाही/बुरे सिपाही' का खेल खेलना एक सामान्य रणनीति है जिसे भारतीय ईसाइयों ने पश्चिम से सीखा है। जैसा कि

हम इसी भाग में बाद में देखेंगे, यह अच्छे सिपाही का स्वांग अल्पकालिक था, और वे बाद में बुरे सिपाही की भूमिका के लिए सहमत हो गये।

2000

सन 2000 की रपट भारत के आन्तरिक धार्मिक मामलों की निगरानी के लिए अमरीका के भारत स्थित दूतावास और भारत स्थित ईसाई प्रचारकों के मिल-जुल कर काम करने के सम्बन्धों का उल्लेख करती है। यह कहती है कि दूतावास के अधिकारी नियमित रूप से धार्मिक आधिकारिक व्यक्तियों से मिलते हैं :

> अमरीकी मिशन के अधिकारी उस अवधि में जिस अवधि के लिए उन राज्यों में धार्मिक अल्पसंख्यकों की स्थिति के आकलन के लिए यह रपट तैयार की गयी, गुजरात और उत्तर प्रदेश के दौरे पर गये। दूतावास और वाणिज्य दूतावास के अधिकारियों ने सभी अल्पसंख्यक समुदायों के महत्वपूर्ण नेताओं से बातचीत की। अमरीकी मिशन अमरीकी निवासियों के साथ भी सम्पर्क रखता है, जिनमें एन.जी.ओ. और मिशनरी समुदायों के लोग भी शामिल हैं। धार्मिक स्वतन्त्रता के मामले में देश में एन.जी.ओ. समुदाय अत्यधिक सक्रिय है, और मिशन के अधिकारी स्थानीय एन.जी.ओ. से मिलते हैं ताकि धार्मिक स्वतन्त्रता से जुड़े घटनाक्रमों के बारे में ताजा जानकारी प्राप्त करते रहें।[19]

2000 की रपट ईसाइयों के हिन्दू धर्म में पुनर्धर्मान्तरण से परेशान रही, यह शिकायत करते हुए कि 'पश्चिम बंगाल में मार्क्सवादी शासक कुछ जिलों में हिन्दुओं द्वारा धार्मिक अल्पसंख्यकों के हिन्दू धर्म में पुनर्प्रवेश को नहीं रोक सके'। लेकिन ईसाइयत में धर्मान्तरण को एक बड़ी 'मुक्ति' के एक कदम रूप में प्रबल समर्थन किया गया है, जबकि हिन्दू धर्म की ओर किसी भी कदम को 'अन्धकार' में प्रवेश माना गया। रपट ईसाइयों द्वारा उपयोग किये जाने वाले वित्तीय उद्देश्यों, घृणा से भरे उनके भाषणों और प्रचार सामग्री, तथा भारत जैसे एक ऐतिहासिक बहुलतावादी समाज में जनता की संवेदनाओं पर उनके कार्यों के प्रभाव का उल्लेख करने में विफल रही। जहाँ ईसाइयों के विरुद्ध कथित उत्पीड़नों को विशेष विस्तार के साथ प्रस्तुत किया गया, यहाँ तक कि बिना कोई स्वतन्त्र पुष्टि किये, वहीं चर्च से जुड़े एन.एल.एफ.टी. जैसे राष्ट्रविरोधी उग्रवादियों द्वारा किये गये उत्पीड़नों का अत्यन्त संक्षिप्त उल्लेख ही किया गया :

> त्रिपुरा में एक उग्रवादी आदिवासी समूह 'त्रिपुरा राष्ट्रीय मुक्ति मोर्चा' (National Liberation Front of Tripura, , एन.एल.एफ.टी.) के ईसाई सदस्यों द्वारा, जो बहुधा ईसाई प्रचारक होते हैं, गैर-ईसाइयों के उत्पीड़न की भी कई घटनाएँ हुईं। उदाहरण के लिए, एन.एल.एफ.टी. आदिवासी विद्रोहियों ने अपने नियन्त्रण वाले क्षेत्रों में हिन्दुओं और मुसलमानों के त्योहारों पर प्रतिबन्ध लगा दिया है, औरतों

को चेतावनी दी है कि वे पारम्परिक हिन्दू आदिवासी परिधान न पहनें, और पूजा की स्थानीय मूल पद्धतियों को प्रतिबन्धित कर दिया है।[20]

वास्तव में उस वर्ष एन.एल.एफ.टी. ने अनेक हिंसात्मक घटनाओं को अंजाम दिया था जिन्हें यू.एस.सी.आई.आर.एफ. की रपट ने अनदेखा कर दिया। कमिशन द्वारा उपेक्षित एक स्वतन्त्र रपट के अनुसार :

> 2 फरवरी को : एन.एल.एफ.टी. आतंकवादियों ने उत्तर त्रिपुरा जिले में 8 लोगों की हत्या कर दी; 6 सितम्बर : एन.एल.एफ.टी. ने मानू ढलाई जिले से 16 लोगों का अपहरण कर लिया; 6 अगस्त : एन.एल.एफ.टी. ने चार वरीय हिन्दू धर्मोपदेशकों का अपहरण कर लिया; 12 अगस्त : एन.एल.एफ.टी. आतंकवादियों ने मानू ढलाई जिले में गोली मारकर छह लोगों की हत्या कर दी; 25 दिसम्बर : पश्चिम त्रिपुरा जिले के विश्रामगंज में तीन लोगों की हत्या कर दी गयी और 100 घर जला दिये गये; आदि।[21]

2001

सन 2001 के लिए यू.एस.सी.आई.आर.एफ. रपट ने फिर एक बार अमरीकी सरकार से अनुशंसा की कि वह धार्मिक स्वतन्त्रता समेत, 'मानवाधिकार से सम्बद्ध सरकारी एजेंसियों के आधिकारिक दौरे के लिए भारत पर दबाव डाले'। इसने उल्लेख किया :

> भारत ने अन्तर्राष्ट्रीय धार्मिक स्वतन्त्रता के लिए अमरीका के विशेष राजदूत के एक आधिकारिक दौरे को अनुमति देने से मना कर दिया। जैसा कि ऊपर चर्चा की गयी, हालाँकि कमिशन ने सबसे पहले 2000 के प्रारम्भ में भारत के दौरे की अनुमति चाही थी, यह रपट लिखे जाने तक भारत सरकार से इसे ऐसा करने की अनुमति नहीं मिल पायी थी। भारत बारम्बार दावा करता रहा है कि वह अन्तर्राष्ट्रीय समुदाय का एक महत्वपूर्ण सदस्य है, और अगर वह चाहता है कि इसे ऐसा स्वीकार कर लिया जाये, तो इसे लोकतान्त्रिक तौर-तरीके के अन्तर्राष्ट्रीय मानदण्डों के अनुरूप अवश्य ही काम करना होगा, जिसमें आन्तरिक और बाहरी समीक्षा शामिल है। अमरीकी सरकार को इंटरनेशनल रिलिजियस फ्रीडम के विशेष राजदूत और कमिशन द्वारा आधिकारिक दौरे के लिए दबाव डालना चाहिए।[22]

ईसाई अलगाववादी समूह एन.एल.एफ.टी. द्वारा हिंसा के सम्बन्ध में रपट ने एक बार फिर ईसाइयत के नाम पर की गयी आतंकी कार्यवाहियों की भयावहता को कम करके दिखाने के लिए अस्पष्ट और सामान्यीकृत वक्तव्य दिये। ईसाई हिंसा को स्वीकार करते हुए, इसने हिन्दुओं का उल्लेख 'बहुसंख्यक धार्मिक समुदाय' के रूप में किया हालाँकि पूर्वोत्तर भारतीय राज्यों में जहाँ अधिकांश ऐसी हिंसाएँ हुईं, ईसाई ही बहुसंख्यक हैं, न केवल संख्या में, बल्कि सरकार और अन्य नागरिक संस्थानों पर नियन्त्रण के मामले में भी। रपट ने ईसाई हिंसा का उल्लेख कुछ इस प्रकार किया जैसे

दूसरों ने 'आरोप लगाया हो', न कि एक स्थापित तथ्य के रूप में, इस बात के बावजूद कि भारत के अनेक आधिकारिक निर्णय और रपट उस हिंसा को प्रमाणित करते हैं।

इसने इस मामले पर अपने अत्यधिक संक्षिप्त पैराग्राफ का समापन इस हिंसा को हिन्दुओं की ही गलती के रूप में उचित ठहराते हुए किया : 'समूह का यह तर्क है कि हिन्दू धर्म के प्रभुत्व के परिणामस्वरूप त्रिपुरा में ईसाई हाशिये पर धकेल दिये गये हैं'।[23] दूसरे शब्दों में, ईसाई हिंसा उनके कथित रूप से 'हाशिये पर चले जाने' के कारण हुई, और इसलिए यह न्यायोचित है, हालाँकि उस क्षेत्र से हिन्दुओं का सुनियोजित ढंग से जातीय सफाया किया जाता रहा है। ईसाइयों के विरुद्ध कथित उत्पीड़न की रपट जिस तरह इसमें तैयार की जाती है उसमें कभी हिन्दू पक्ष को नहीं रखा जाता, जबकि उसके विपरीत यहाँ एन.एल.एफ.टी. के तर्कों को प्रमुखता दी गयी है।

एन.एल.एफ.टी. द्वारा हिन्दुओं की हत्या की घटना की चर्चा कभी नहीं की जाती। यू.एस.सी.आई.आर.एफ. साऊथ एशियन टेररिज्म पोर्टल (www.satp.org), द्वारा जारी अनगिनत रपटों की सीधे उपेक्षा कर देता है। यह पोर्टल आतंकवाद की निगरानी करने वाला समूह है जिसे पेशेवर पुलिस और गुप्तचर अधिकारी चलाते हैं। इस पोर्टल ने उस वर्ष हिंसा की इक्कीस की घटनाओं को सूचीबद्ध किया है जिसमें एन.एल.एफ.टी. के ईसाइयों की संलग्नता रही है। इनमें अनेक जघन्य उत्पीड़न की घटनाएँ शामिल हैं, जैसा कि निम्न संकलन में दिखाया गया है :

> अप्रैल 15 : एन.एल.एफ.टी. आतंकवादियों ने पश्चिम त्रिपुरा जिले में 12 लोगों की हत्या कर दी और सात अन्य को घायल कर दिया; अप्रैल 20 : एन.एल.एफ.टी. आतंकवादियों ने उत्तर त्रिपुरा जिले के लक्ष्मीपुर में आठ लोगों की गोली मारकर हत्या कर दी; मई 18 : एन.एल.एफ.टी. आतंकवादियों ने दक्षिण त्रिपुरा जिले में चार महिलाओं और तीन पुरुषों की हत्या कर दी, जबकि पाँच अन्य को घायल कर दिया; अक्तूबर 27 : पश्चिम त्रिपुरा जिले के देवेन्द्र सरकारपाड़ा में सन्दिग्ध एन.एल.एफ.टी. आतंकवादियों द्वारा पाँच नागरिक मारे गये जिनमें एक बच्चा भी शामिल था; नवम्बर 19 : एन.एल.एफ.टी. के आतंकी हमले और उसके बाद उत्तर त्रिपुरा जिले के बोराहल्दी में भड़की हिंसा में 14 लोग मारे गये; दिसम्बर 4 : एन.एल.एफ.टी. आतंकवादियों ने फिर जिरानिया खोला में एक आश्रम पर हमला किया; दिसम्बर 5 : सन्दिग्ध एन.एल.एफ.टी. आतंकवादियों ने दक्षिण त्रिपुरा जिले के आलमारा गाँव के एक बौद्ध मन्दिर में तोड़-फोड़ की; दिसम्बर 25 : एन.एल.एफ.टी. आतंकवादियों ने दक्षिण त्रिपुरा जिले के दलाक गाँव में एक जमातिया नेता की हत्या कर दी, क्योंकि उसने ईसाइयत अपनाने से मना कर दिया था; दिसम्बर 26 : एन.एल.एफ.टी. आतंकवादियों ने दक्षिण त्रिपुरा जिले में

आलमारा गाँव के एक बौद्ध मन्दिर में तोड़-फोड़ की, और धर्मग्रन्थों तथा एक मूर्ति लेकर भाग गये।[24]

2002

सन 2002 से यू.एस.सी.आई.आर.एफ. की रपटें नागालैण्ड और त्रिपुरा में सक्रिय ईसाई अलगाववादी आतंकवादी गुटों, क्रमश : एन.एस.सी.एन. और एन.एल.एफ.टी., द्वारा की जाने वाली किसी भी हिंसा का उल्लेख नहीं करतीं। रिआंग और जमातिया जैसे हिन्दू आदिवासी समुदायों की, जो ऐसी ईसाई आतंकवादी हिंसा के शिकार हैं, सीधे उपेक्षा कर दी जाती है मानो वे अस्तित्व में ही नहीं थे।

सन 2002 में गवाही देने वाले सभी भारतीयों ने अपने देश के विरुद्ध तैयार किये जा रहे मामले का समर्थन किया, जिनमें केवल एक ही अपवाद थे ऑस्टिन स्थित यूनिवर्सिटी ऑफ टेक्सास के प्रोफेसर सुमित गांगुली, जो कमिशन को यह चेतावनी देने के लिए शेष सभी की पाँत से अलग हो गये कि 'भारत एक अभिमानी, लोकतान्त्रिक देश है, और अपनी आन्तरिक समस्याओं में वह अमरीकी हस्तक्षेप को पसन्द नहीं करेगा'।

2003

सन 2003 की रपट भारत के विदेशी अधिनियम के विरुद्ध खड़ी होती है, क्योंकि वह अमरीकी ईसाई प्रचारकों के मुक्त प्रवाह को नियन्त्रित करता है। एक भारतीय पत्रिका तहलका की एक खोजी रपट ने कहा : '2003 की अमरीकी रपट मतलब की बात करने वाला अभिलेख है जो धर्मान्तरण को समर्थन देने वाली अमरीकी नीति के बारे में सूचित करता है। यह खुले-आम स्वीकार करता है कि ''अमरीकी अधिकारियों ने धर्मान्तरण विरोधी कानूनों को लागू करने और उन्हें वापस लेने पर राज्यों से बातचीत चालू रखी है''।' अमरीका का यह रुख जॉन दयाल की कमिशन के समक्ष गवाही को प्रतिध्वनित करता है कि 'किसी विदेशी ईसाई चर्च कार्यकर्ता, धर्मशास्त्री या ईसाई प्रचारक के लिए यह लगभग असम्भव है कि वह भारत आ पाये, अगर वह एक पर्यटक के रूप में भारत नहीं आता है'।[25]

अचानक, कैथोलिक चर्च ने, जो तब तक ऐसी रपट लिखने से अलग ही रहा था (जबकि वह अपने आन्दोलनकारियों को व्यक्तिगत हैसियत से उसमें भाग लेने की अनुमति देता रहा था), अब अपना रुख एकदम से बदल लिया। कैथोलिक बिशप्स कॉन्फरेंस ऑफ इण्डिया ने प्रत्यक्ष रूप से अमरीका द्वारा भारत को धार्मिक स्वतन्त्रता के मामले में 'विशेष चिन्ता के विषय वाले देशों' में से एक घोषित करने से मना करने पर अपनी नाराजगी जतायी। इसने अमरीका का खुले-आम आह्वान किया कि वह 'अल्पसंख्यक समुदायों के विरुद्ध हिंसा के एक दौर' के लिए भारत को दण्डित करे।

चर्च 'अमरीकी प्रशासन के निर्णय से सहमत नहीं हुआ' जिसने कथित ईसाई विरोधी गतिविधियों को सूचीबद्ध किया था, लेकिन भारत के विरुद्ध प्रतिबन्धों की अनुशंसा नहीं की थी। चर्च ने अमरीकी विदेश मन्त्री को यह माँग करते हुए लिखा कि भारत को 'धार्मिक स्वतन्त्रता के प्रबल उल्लंघनकर्ताओं' की श्रेणी में पाँच अन्य देशों—बर्मा, चीन, ईरान, उत्तर कोरिया, और सूडान—के साथ रखा जाये। ऐसे देश अमरीका के धार्मिक स्वतन्त्रता अधिनियम के तहत दण्डात्मक कार्रवाई आकर्षित करेंगे।[26] भारतीय कैथोलिक चर्च के अच्छे सिपाहियों ने कट्टरपन्थियों के आगे हथियार डाल दिये थे।

कमिशन ने अमरीका के विदेश मन्त्रालय के उप-मन्त्री रिचर्ड आर्मिटेज से अपील की कि वह इस मामले को दक्षिण एशियाई क्षेत्र में इस्लामी आतंकवाद पर समझौते के समय भारत के साथ उठायें। अपनी रपट में कमिशन ने कहा कि उन्होंने भारत को विशेष चिन्ताओं के विषय वाले देशों की सूची में रखने के मामले में चर्चा के लिए आर्मिटेज से मुलाकात की थी। तालिबान और पाकिस्तान के विरुद्ध अमरीका के संघर्ष की नाजुक स्थिति में आर्मिटेज ने उनसे कहा कि यू.एस.सी.आई.आर.एफ. को इस समय भारत के विरुद्ध नहीं जाना चाहिए। इस पर अप्रसन्नता व्यक्त करते हुए ऑल इण्डिया क्रिश्चियन काउंसिल के अध्यक्ष जॉन दयाल ने कहा, 'हम अत्यधिक निराश हुए'।[27] बिशप सर्गुनम ने, जो तमिलनाडु अल्पसंख्यक आयोग के अध्यक्ष थे, फेडरेशन ऑन इण्डियन अमरीकन क्रिश्चियन ऑर्गेनाइजेशन्स ऑफ नॉर्थ अमरीका द्वारा एक प्रेस विज्ञप्ति के रूप में एक वक्तव्य जारी किया :

> अमरीकी सरकार, जो विश्व भर में न्याय और स्वतन्त्रता के लिए खड़ी होती है, भारत में जारी मानवाधिकार उल्लंघनों से निपटने के मामले में आत्मतुष्ट रही है। बिशप एजरा सर्गुनम ने इस बात को कल और आज वॉशिंगटन डीसी में विदेश मन्त्रालय के अधिकारियों के साथ अपनी बैठकों में प्रबल ढंग से रखा। सोशल जस्टिस मूवमेंट ऑफ इण्डिया की ओर से उन्होंने एक विज्ञप्ति पेश की जिसमें धार्मिक अल्पसंख्यकों, दलितों, और आदिवासी जनों के विरुद्ध हमलों में फिर से आयी तेजी को रेखांकित किया गया था ... बिशप सर्गुनम और पी.डी. जॉन यूएस कमिशन ऑन इंटरनेशनल रिलिजियस फ्रीडम के अधिकारियों से भी मिले और कैपिटल हिल में ... बिशप सर्गुनम ने इस बात पर अपनी निराशा भी व्यक्त की कि अमरीकी प्रशासन इस तरह के लगातार जारी गम्भीर मानवाधिकार उल्लंघन पर अपने भारतीय समकक्षों से बात करने से झिझक रहा है।[28]

2004

सन 2004 की सुनवाई के चलते हुए, यू.एस.सी.आई.आर.एफ. की ओर से अमरीकी कांग्रेस के एक चार-सदस्यीय प्रतिनिधिमण्डल ने जाँच पड़ताल के लिए भारत का दौरा किया। इसके नेता, ईसाई रूढ़िवादी जोजेफ पिट्स (Joseph Pitts), ने कहा कि

प्रतिनिधिमण्डल 'धर्मान्तरण विरोधी कानूनों, दलितों के प्रति व्यवहार और अल्पसंख्यक विरोधी हिंसा को कंट्री रिपोर्ट (किसी देश विशेष पर बनायी गयी रपट) में शामिल करने' के बारे में कांग्रेस को अपनी रपट देगा। पिट्स ने धर्मान्तरण विरोधी कानूनों की यह कहते हुए आलोचना की कि यह 'महात्मा गाँधी की भूमि में मानवाधिकार का पलटा जाना' है।[29] कांग्रेस सदस्य स्टीव चैबट ने गुजरात की स्थिति की तुलना रवाण्डा की स्थिति से की। ए.आई.सी.सी. महासचिव जॉन दयाल ने कहा कि भारतीय अल्पसंख्यकों के उनके प्रतिनिधिमण्डल ने अमरीकी प्रतिनिधिमण्डल के समक्ष ठोस माँगें रखी थीं : 'हमारी माँगों में से एक यह है कि भारत के साथ मिलकर स्थापित की जाने वाली विदेशी कम्पनियों में अल्पसंख्यकों के लिए आरक्षण होना ही चाहिए'।[30] इसने विश्व ईसाई लॉबी को यह कहने के लिए एकजुट किया कि व्यापार और निवेश सौदों में भारतीय ईसाइयों के लिए प्राथमिकताएँ तय की जायें, जो गैर-ईसाइयों की कीमत पर ही हो सकता था।

स्पष्ट है कि भारतीय ईसाई नेता अमरीका के दक्षिणपन्थी ईसाइयों के साथ मिलकर काम करते हैं। भारतीयों को अमरीकी तन्त्र को उत्पीड़न साहित्य परोसने के लिए प्रोत्साहित किया जाता है, ताकि अमरीकी कार्रवाई को न्यायोचित ठहराने के लिए इसका उपयोग कर सकें। इसके बदले में इन भारतीयों को उनके अमरीकी प्रायोजकों द्वारा आगे बढ़ाया जाता है और दमित लोगों के विश्व स्तरीय आन्दोलनकारियों और नेताओं के रूप नें उनकी परेड करायी जाती है।

चेन्नई में यू.एस.सी.आई.आर.एफ. की एक सुनवाई के समय जब कुछ भारतीय समूह भारत के आन्तरिक मामलों में हस्तक्षेप करने के लिए इसकी आलोचना करने लगे, तब एक अमरीकी अधिकारी सुश्री जोनेला मोराल्स (Ms Joanela Morales)ने उत्तर दिया : 'हम हस्तक्षेप नहीं कर रहे। आपके अपने ही लोगों ने हमें लिखा है और हमसे बात की है, यह अनुरोध करते हुए कि इस देश में धार्मिक स्वतन्त्रता की स्थिति पर हम कुछ करें'।[31] यह भारत में हस्तक्षेप करने के ब्रितानी औपनिवेशवादी तर्क की याद दिलाता है जो इस बहाने से किया गया था कि कुछ भारतीयों ने उन्हें आमन्त्रित किया था। मोराल्स ने भारत के अपने धार्मिक स्वतन्त्रता अधिनियम की आलोचना की, जिसे उन्होंने एक 'धर्मान्तरण विरोधी कानून' बताया। चेन्नई स्थित एक मंच, विजिल, ने अमरीकी अधिकारियों का ध्यान दिलाया कि प्रत्येक कानून के दुरुपयोग की सम्भावना रहती है, लेकिन वह किसी अन्य राष्ट्र के आन्तरिक मामलों में हस्तक्षेप करने के लिए बहाना नहीं हो सकता। भारतीयों ने एक समान परिदृश्य की परिकल्पना पेश की, जिसमें भारतीय संसद अमरीका में नस्लवाद पर निगरानी रखने के लिए एक आयोग और कार्यालय खोले और भारतीय दूतावासों तथा राजनयिक मिशनों को मतभेद रखने वाले समूहों एवं संयुक्त राज्य तथा अन्यत्र अमरीका विरोधियों को प्रोत्साहित कर सूचनाएँ एकत्रित करने के लिए कहे।

एक और उदाहरण में, अरुणाचल प्रदेश के बौद्धों को ईसाई नागा आतंकवादियों द्वारा धमकी दी गयी थी, जैसा कि असम ट्रिब्यून ने समाचार प्रकाशित किया था :

> जुड़वें आतंकवादी संगठनों एन.एस.सी.एन. (आई.एम.) और एन.एस. सी.एन. (के.) ने अरुणाचल प्रदेश के तिरप-चांगलांग जिले के रिमा पुटाक, थिखाक पुटाक, मोटोंग्सा और लोंगचोंग गावों के बौद्धों और अन्य मूल स्थानीय धर्मों के अनुयायियों की भूमि के विलय की माँग की है, और ईसाइयत में उनको धर्मान्तरित करने के लिए अपना फैसला जारी किया है। इन आतंकवादी संगठनों ने ग्रामीणों के लिए दो विकल्प छोड़े हैं—ईसाइयत अपनाएँ या मृत्यु दण्ड का सामना करें। अपने समक्ष मृत्यु को उपस्थित देखकर, अधिकांश वयस्क सदस्य दोनों पक्षों से उत्पीड़न से बचने के लिए गाँवों से भाग गये हैं, जिस कारण कृषि गतिविधियाँ बाधित हो गयी हैं।[32]

लेकिन उस वर्ष के लिए यू.एस.सी.आई.आर.एफ. की रपट केवल गुजरात दंगों की बात करती है जो दो वर्ष पहले हुए थे, और यह ईसाई आतंकवादियों द्वारा हिन्दुओं और बौद्धों को धमकाये जाने, और ह्मार-दिमासा टकराव के ईसाई प्रचारक पहलू के बारे में बिल्कुल चुप है।[33]

2005

सन 2005 में, दलित फ्रीडम नेटवर्क ने अमरीका के विधि निर्माताओं से यह अनुरोध करते हुए उनके समक्ष गवाही दी, कि वे 'वर्ण-व्यवस्था को समाप्त करने और निचली जातियों के भारतीयों के विरुद्ध उत्पीड़न को समाप्त करने' के लिए हस्तक्षेप करें। एक प्रमुख भारतीय स्तम्भकार ने टिप्पणी की :

> अगर हिन्दू अतिवादी अन्य धर्मों के विरुद्ध घृणा के प्रचार में संलग्न रहने के लिए कड़ी आलोचना के हकदार हैं (हाँ, वे हैं), तो क्या उनके लिए कोई अलग मानदण्ड हो सकता है जो हिन्दू धर्म को 'आध्यात्मिक अन्धकार' के समतुल्य बताते हैं ... ? गैर-हिन्दू समूहों द्वारा खुले-आम हिन्दू विरोधी— केवल हिन्दुत्व विरोधी नहीं—प्रचार, जिस पर दलितों और आदिवासियों के धर्मान्तरण के एजेंडे का एक पतला-सा पर्दा ढँका है, क्या साम्प्रदायिक सौहार्द्र को क्षति नहीं पहुँचाता? (पिछले सप्ताह अलेक्जैंड्रिया, मिस्त्र में धर्मान्तरण के मुद्दे को लेकर हुई हिंसक मुस्लिम-ईसाई झड़प को याद करें।) कौन-सा समुदाय है जो आन्तरिक कमियों से मुक्त है? और किसी के धर्म अथवा पन्थ में सुधार करना किसका फ़र्ज़ है—उसके अपने अनुयायियों की या दूसरों की? क्या धार्मिक स्वतन्त्रता में अन्य धर्मों की निन्दा करना या उन्हें हीन बताना शामिल है, कथित रूप से आरक्षण के नाम पर? आइये, इस पर ईमानदारी से चिन्तन करें।[34]

लेकिन उसी वर्ष दिमासा नामक एक हिन्दू जनजाति को धार्मिक कलह के कारण अत्यधिक पीड़ित होना पड़ा था। मानवाधिकार पर निगरानी रखने वाले अन्य प्रमुख

समूहों द्वारा 2005 में इसकी रपटें दी गयी थीं, लेकिन यू.एस.सी.आइ.आर.एफ. की पूर्वाग्रह-ग्रस्त छलनी द्वारा इसे नजरन्दाज कर दिया गया था। उदाहरण के लिए, संयुक्त राज्य स्थित 'शरणार्थियों और आप्रवासियों की समिति' (Committee for Refugees and Immigrants) ने उल्लेख किया कि दिमासा आदिवासी आन्तरिक रूप से विस्थापित शरणार्थी बन रहे थे। दुर्भाग्यवश, इस विस्थापन के पीछे के धार्मिक पहलू को पेश करने में वह विफल रही। इसने महज यह स्वीकार किया कि 'लगभग दो हज़ार दिमासा 2003 में पूर्वोत्तर क्षेत्र में भूमि और शासन के विषयों पर दिमासा और ह्मार समुदायों के बीच हुए साम्प्रदायिक दंगों द्वारा विस्थापित कर दिये गये थे; ये लोग तब भी दक्षिण असम के साथ-साथ मणिपुर और मिजोरम के शिविरों में रह रहे थे। लगभग तीन हज़ार और सम्भवत: अपने घरों को वापस चले गये थे'।[35] एक सामरिक विश्लेषक और पूर्वोत्तर में भारतीय स्थल सेना में कमाण्डर, मेजर अनिल रमण ने इस संघर्ष में पश्चिमी ईसाइयत की भूमिका को समझाया :

> ह्मार कट्टर ईसाई हैं जबकि दिमासा मुख्य रूप से हिन्दू। ह्मार चर्च संस्थान और सामाजिक नेटवर्क, जिनमें विदेशों में स्थित संस्थान और नेटवर्क भी शामिल हैं, राजनीतिक गतिविधियों को निर्देशित करने में अत्यधिक संलग्न रहे हैं। दिमासा समुदाय के पास ऐसे बाहरी समर्थन का अभाव है और वे ह्मार धार्मिक संगठनों की गतिविधियों को अत्यन्त सन्देह से देखते हैं और उनके आलोचक हैं। मिशनरी समूहों द्वारा मेघालय से नागालैण्ड तक एक 'ईसाई पट्टी' हासिल करने के लिए अनियन्त्रित और व्यापक धर्मान्तरण की गतिविधियों ने उन्हें दिमासा समुदाय के साथ, जो निष्ठावान हिन्दू हैं, सीधे संघर्ष में ला खड़ा किया है।[36]

संयुक्त राज्य स्थित समूहों द्वारा तैयार की गयी रपटों में से किसी ने इस धार्मिक पहलू का उल्लेख नहीं किया, और इसके बदले उन्होंने इसे बिल्कुल एक पन्थ-निरपेक्ष मुद्दे के रूप में रिपोर्ट करने का रास्ता अपनाया। इसी अवधि के लिए यू.एस.सी.आई.आर.एफ. रपट ने इस पक्ष को पूरी तरह उपेक्षित कर दिया।

2006

2006 में भारत पर चार पृष्ठों की रपट ने कांग्रेस के नेतृत्व में सं.प्र.ग. सरकार के गठन पर टिप्पणी की, और भारत को विशेष चिन्ता के विषय वाले देशों (सी.पी.सी.) की सूची से हटा दिया।[37] ईसाई प्रचारक समाचार माध्यमों ने इस पर समाचार दिया कि भारतीय ईसाइयों द्वारा निराशा के साथ इसका स्वागत किया गया।[38] रपट ने भारतीय राज्य राजस्थान का उल्लेख एक वैसे स्थान के रूप में किया जहाँ 'ईसाई व्यक्तियों और संस्थानों पर विशेष रूप से गम्भीर हमले होते हैं'। जिस घटना की रपट दी गयी उसे पूर्णत: ईसाई मिशनरी दृष्टिकोण से बयान किया गया था :

> अनेक शैक्षणिक और धर्मादा संगठन संचालित करने वाले एक ईसाई संगठन के प्रमुख को मार्च में एक पुस्तक के आधार पर जो वहाँ पर बिक्री के लिए रखी

> गयी थी, 'धार्मिक भावनाओं को ठेस पहुँचाने' और 'एक समुदाय के धार्मिक विश्वास को अपमानित करने' के आरोप में गिरफ्तार किया गया।[39]

ईसाई प्रचारकों द्वारा किये गये अपराधों का उद्धरण सन्देह के दायरे में रखकर और केवल मिशनरी दृष्टिकोण देकर यू.एस.सी.आई.आर.एफ. रपट एक बार फिर संघर्षों को उत्पीड़न के रूप में प्रस्तुत करते हुए एक पूर्वाग्रह-भरा दृष्टिकोण सामने रखती है। उन पुलिस अधिकारियों के बयान, जिन्होंने कार्रवाई की और जो अल्पसंख्यक जैन समुदाय के थे, इस रपट की विकृतियों को उजागर करते हैं :

> राजस्थान पुलिस कहती है कि उन्होंने फाउण्डेशन के पुस्तकालय से उक्त पुस्तक की 719 प्रतियाँ जब्त की हैं, जो हिन्दू और जैन देवी-देवताओं को 'जान-बूझकर नीचा दिखाती हैं'। 'पुस्तक अत्यन्त भड़काऊ है...' राजस्थान की अपराध शाखा के अतिरिक्त पुलिस महानिदेशक ए.के. जैन ने कहा।[40]

अमरीका स्थित एक नाभिकीय भौतिकविज्ञानी और लेखक, मूर्ति मुथुस्वामी ने यू.एस.सी.आई.आर.एफ. को 'भारत में धार्मिक झड़पों के मूल पर आँकड़ों' की ओर ध्यान दिलाया और उन 'पुष्टि किये जाने योग्य आँकड़ों की तरफ़ भी जो भारत में ईसाई संस्थानों द्वारा बहुसंख्यक समुदाय के प्रति धार्मिक रंगभेद अपनाये जाने की ओर इंगित करते हैं जो यूनिवर्सल डिक्लेयरेशन ऑफ ह्यूमन राइट्स की धारा 23 और 26 का उल्लंघन है'।[41] उन्होंने पाया कि 2006 की रपट ने उनके द्वारा उपलब्ध कराये गये आँकड़ों की उपेक्षा की थी। सन 2006 की रपट का अध्ययन कर उन्होंने निष्कर्ष निकाला :

> जब आँकड़े और घटनाएँ ईसाइयों/मुसलमानों के हाथों हिन्दुओं के पीड़ित होने की ओर इंगित करते हैं, यू.एस.सी.आई.आर.एफ. प्रासंगिक विवरणों को छाँटकर निकाल देता है ताकि वह घटनाओं को उस ढंग से चित्रित कर सके जैसा कि वह चाहता है।[42]

2007

सन 2007 की धार्मिक स्वतन्त्रता रपट हिन्दू राष्ट्रवादी समूहों की राजनीतिक परिकल्पनाओं का विस्तार से वर्णन करती है, और भारतीय पाठ्यपुस्तकों में 'हिटलर के महिमामण्डन' के उल्लेख की बात ऐसे करती है मानो कि वह ठोस सत्य है। रपट कहती है कि 'कुछ अतिवादी हिन्दू राष्ट्रवादियों में हिटलर एक सम्मानित व्यक्तित्व है', और गुजरात में प्रकाशित समाज विज्ञान की पुस्तकों में वैसी भाषा का प्रयोग है जो 'यहूदियों के नरसंहार में हिटलर की भूमिका को कम करती है', और 'धार्मिक अल्पसंख्यकों को छोटा करती है'।[43] समाचार माध्यमों के एक हिस्से द्वारा लगाये गये इस आरोप को यू.एस.सी.आई. आर.एफ. द्वारा आँखें बन्द करके स्वीकार कर लिया गया, उनकी पुष्टि के लिए किसी भी तरह के प्रयास किये बिना, और बाद में यह दावा झूठा प्रमाणित हुआ। फिर भी यू.एस.सी.आई.आर.एफ. रपट ने इस पर भरोसा किया।

[44] इससे भी अधिक, अगर कोइ गुजरात और तमिलनाडु की दसवीं कक्षा की समाज अध्ययन की पाठ्यपुस्तकों की तुलना करे, तो पायेगा कि तमिलनाडु की पाठ्यपुस्तकें नस्लवादी इतिहास और आरोपों से भरी पड़ी हैं। जो भी हो, वे यू.एस.सी.आई.आर.एफ. के रडार पर नहीं हैं, क्योंकि ऐसी पाठ्यपुस्तकें दविड़ श्रेष्ठतावाद को प्रोत्साहित करती हैं और ईसाई धर्मान्तरण में सहायता करती हैं।

2008

यू.एस.सी.आई.आर.एफ. कुछ भारतीयों के लिए अपने भारतीय राजनीतिक विरोधियों से निपटने का तन्त्र भी बन जाता है। अपने निहित स्वार्थों के समर्थन में भारतीय प्रभुसत्ता से समझौता कर लेते हैं, जिसके तहत वे अमरीका से हस्तक्षेप और भारत पर उन संवैधानिक प्रावधानों, को बदलने के लिए दबाव डालने की माँग करते हैं जो शक्तिशाली ईसाई प्रचारकों के हमलों से समाज के कमजोर वर्गों को बचाते हैं। उदाहरण के लिए, 2008 में, प्रोफेसर अंगना चटर्जी अमरीकी आयोग के सामने अमरीकी सरकार से यह अनुरोध करने के लिए उड़ीसा हिन्दू-ईसाई हिंसा के मामले में उपस्थित हुईं कि वह अमरीका में हिन्दू समूहों पर निगरानी रखे, और कानून को बदलने के लिए भारत सरकार पर दबाव डालने और आदिवासी जन समुदायों के बीच ईसाई धर्मान्तरण का मार्ग प्रशस्त करने के लिए भी। उनकी अनुशंसा निम्न प्रकार है :

> प्रवासी हिन्दू राष्ट्रवादी समूहों की गतिविधियों पर सुनियोजित, नियमित, और विस्तृत जाँच-पड़ताल की जाये ताकि उनकी पहचान की जा सके और उनकी स्थिति, उनके कार्यों, वित्त और संयुक्त राष्ट्र में उनकी सदस्यता की सम्बद्धताओं की जाँच हो सके, और साथ-साथ उनसे सम्बद्ध लोगों और कार्यकर्ताओं की भी। इन समूहों की जाँच और निगरानी होनी ही चाहिए, और जैसा उचित हो, वांछित कर्रवाई भी अवश्य की जानी चाहिए, और उनकी गतिविधियों पर प्रतिबन्ध लगाये ही जाने चाहिएँ ... उड़ीसा धार्मिक स्वतन्त्रता अधिनियम, 1967, की पुनर्समीक्षा होनी ही चाहिए और उसे समाप्त भी करना चाहिए। उड़ीसा गौ हत्या रोकथाम अधिनियम, 1960 की भी पुनर्समीक्षा होनी ही चाहिए और उसे भी समाप्त किया ही जाना चाहिए।[45]

विडम्बना है, ऐसे वामपन्थी आग उगलने वाले व्यक्ति अमरीकी साम्राज्यवाद के विरुद्ध चीखते-चिल्लाते हुए अपनी छवि चमकाते हैं, लेकिन भारतीय कानूनों में बलपूर्वक परिवर्तन करवाने के लिए भारतीय लोकतन्त्र में अमरीकी हस्तक्षेप की दलीलें देकर अपना ही खण्डन करते हैं।

2009

फरवरी 2009 में, ऑल इण्डिया क्रिश्चियन काउंसिल (जिसकी चर्चा पहले की गयी है) के अध्यक्ष, जोजेफ डी'सूजा, ने यू.एस.सी.आई.आर.एफ. के कर्मचारियों को अपने

एक वॉशिंगटन दौरे के समय भारत की स्थितियों की जानकारी दी और उनके प्रस्तावित भारत दौरे के समय बैठकें करवाने में सहायता की पेशकश की। जो भी हो, जून 2009 में नव-निर्वाचित भारत सरकार ने यू.एस.सी.आई.आर.एफ. के भारत दौरे के प्रस्ताव को टाल दिया।[46] अमरीकी हस्तक्षेप के जो समर्थक भारत में थे, वे फौरन हरकत में आ गये। एक आन्दोलनकारी मंच, 'कैथोलिक सेक्युलर फोरम' (Catholic Secular Forum) ने, जो ईसाई अभियानों का मार्ग प्रशस्त करता है, अपने सदस्यों को भेजे एक ई-मेल में भारत सरकार के इस कदम पर प्रश्न उठाये :

> भारत जवाबदेही, अन्तर्राष्ट्रीय प्रतिष्ठा की हानि से भय खाता है, और वे अल्पसंख्यकों और अन्य दुष्प्रभावित होने वाले समुदायों को राजनीतिक लाभ के लिए हत्यारों तक खींच ले जाने के परिणामों को स्वीकार करने के मामले में पर्याप्त रूप से कठोर हैं। अगर चीन, म्यांमार, सऊदी अरब और इजरायल यू.एस.सी.आई.आर.एफ. को अनुमति दे सकते हैं तो वे हमें क्यों नहीं दे सकते?

इसने यू.एस.सी.आई.आर.एफ. को अपने सदस्यों के सम्पर्कों के विवरण भी दिये, उनसे यह अनुरोध करते हुए कि वे अपना उत्पीड़न साहित्य भी उसे भेजें।[47]

सन 2009 में अफगानिस्तान के साथ भारत यू.एस.सी.आई.आर.एफ. की विशेष चिन्ता के विषयों वाले देशों की निगरानी वाली सूची में शामिल हो गया।[48] अक्तूबर 2009 में यू.एस.सी.आई.आर.एफ. ने उड़ीसा के तत्कालीन मुख्य मन्त्री नवीन पटनायक को एक पत्र भेजा, और अमरीका के राजदूत ने भारत के प्रधान मन्त्री को इसकी एक प्रति दी। इस पत्र में उड़ीसा में अल्पसंख्यकों के प्रति चिन्ता व्यक्त की गयी थी, क्योंकि 'कंधमाल में हालाँकि हिंसा का प्रकरण समाप्त हो गया ... भारत के बाहर ईसाई नेतृत्व तब भी भारत में रह रहे अल्पसंख्यकों की सुरक्षा के मामले में अनिश्चय की स्थिति में था'।[49]

प्यू ट्रस्ट (Pew Trust) के नये पुलिन्दे और प्रचार : 'भारत सिर्फ ईराक से पीछे है'

किसी भी देश के बारे में उत्पीड़न साहित्य किस प्रकार विकसित होता है और समय बीतने के साथ किस प्रकार गति पकड़ता है, यह सामाजिक विद्वेष और धार्मिक भेदभाव पर प्यू रिसर्च सेंटर की 2009 की अन्तर्राष्ट्रीय रपट द्वारा प्रदर्शित किया गया है। प्यू वेबसाइट ने दावा किया कि इसके शोध ने '16 व्यापक रूप से उद्धृत किये गये, सार्वजनिक रूप से उपलब्ध सूचनाओं के स्रोतों को खँगाला' था।[50]

रपट केवल द्वितीय स्तर के ईसाई स्रोतों पर भरोसा करती है, वह भी बिना पुष्टि किये, न कि किसी मुख्य शोध पर। इसका अर्थ यह है कि कुछ को चुनकर और दूसरों की उपेक्षा करके यह औरों की तुलना में कुछ गौण महत्व के स्रोतों को वैधता प्रदान करती है। सूचीबद्ध सोलह स्रोतों में सभी पश्चिम में स्थित हैं, जिनमें मुख्य रूप से

यू.एस.सी.आइ.आर.एफ. की रपटें, संयुक्त राज्य विदेश विभाग, और हडसन इंस्टीटयूट जैसे दक्षिणपन्थी ईसाई संस्थान शामिल हैं।[51] धार्मिक या आस्था की स्वतन्त्रता पर संयुक्त राष्ट्र संघ के विशेष रिपोर्टर की रपट, जिसका इंस्टीटयूट ने उपयोग किया, वह तो वह है जिसे असमां जहाँगीर ने प्रकाशित किया था, जिनके 2008 के भारत दौरे का संयोजन और समन्वयन ऑल इण्डिया क्रिश्चियन काउंसिल और क्रिश्चियन सॉलिडैरिटी वर्ल्डवाइड द्वारा किया गया था।[52] किसी भी स्थानीय समाचार स्रोत को विचार के लिए नहीं लिया गया है, और बाकी सभी स्रोत पश्चिम में स्थित हैं, जिनके प्रबल ईसाई पूर्वाग्रह होते हैं।[53]

पॉल मार्शल ने, जिन्होंने रपट पर आयोजित प्यू फोरम की चर्चा में भागीदारी की थी, 'हिन्दू अतिवाद का उदय' (The Rise of Hindu Extremism) शीर्षक से एक शोध पत्र प्रकाशित किया।[54] रपट पर चर्चा में टिमोथी शॉ भी शामिल हुए, जो सुर्ख़ियों में रहने वाले वाले व्यक्ति हैं जिनका ईसाई प्रचारक दृष्टिकोण भारत का कट्टर आलोचक है।[55] स्वयं प्यू रपट को समाचार माध्यमों में सनसनीखेज ढंग से प्रकाशित किया गया था जिनमें 'धार्मिक भेदभाव में भारत सिर्फ ईराक के पीछे' (India Next Only to Iraq on Religious Discrimination) जैसे शीर्षक लगाये गये थे।[56] जहाँ यह रपट धार्मिक झगड़ों के लिए हिन्दू और मुस्लिम समूहों पर दोषारोपण करती है, वहीं यह धार्मिक संघर्षों को जन्म देने वाले ईसाई प्रचारक उकसावों और दुष्प्रचारों पर पूरी तरह चुप है। 'धार्मिक समूह के प्रति सरकारी बल प्रयोग की घटनाओं के फलस्वरूप व्यक्तियों की गिरफ्तारी और कैद' (Incidents of Government Force toward Religious Group Resulting in Individuals being Imprisoned and Detained) शीर्षक के तहत छह विषय दिये गये हैं। सभी विषय 2007 के लिए धार्मिक स्वतन्त्रता पर संयुक्त राज्य विदेश विभाग की रपट पर आधारित हैं। एक विषय दो मिशनरियों की गिरफ्तारी का है जिन्हें भड़काऊ तरीके से हिन्दू देवी-देवताओं पर की गयी अपमानजनक टिप्पणी के लिए गिरफ्तार किया गया था।[57] 'समाज में धार्मिक घृणा या पूर्वाग्रह द्वारा प्रेरित शारीरिक दुर्व्यवहार की घटनाएँ' (Incidents of Physical Abuse Motivated by Religious Hatred or Bias in S) शीर्षक के तहत अमरीकी विदेश मन्त्रालय और यू.एस.सी.आई.आर.एफ. की रपटों का उपयोग उन घटनाओं का वर्णन करने के लिए किया गया जिनमें हिन्दुओं को ईसाइयों पर हमले करते हुए दिखाया गया है। लेकिन ये स्वतन्त्र या पुष्टि किये गये स्रोतों पर आधारित नहीं हैं। यू.एस.सी.आई.आर.एफ. केवल स्रोतों का उद्धरण 'धार्मिक समाचार माध्यम' के रूप में देता है, जिसका मतलब ईसाई समूहों के अपने ही आरोप हैं। प्यू सेंटर की रपट पुष्टि के बिना किसी प्रयास के केवल इसका वमन करती है।

रपट दावा करती है कि 'खरगोन जिले के चेनापुर से दो स्वतन्त्र पादरियों को, स्थानीय निवासियों के यह शिकायत करने के बाद कि ये पादरी उनकी धार्मिक भावनाओं को ठेस पहुँचा रहे थे, पुलिस द्वारा गिरफ्तार किया गया था'। रपट पादरियों

को यह कहते हुए साफ़ दोषमुक्त कर देती है कि 'वे पादरी धार्मिक साहित्य का वितरण कर रहे थे'। जो भी हो, ईसाई प्रचारकों के लिए 'धार्मिक साहित्य' घृणा के भाषण के अलावा क्या हो सकता है जब ईसाई प्रकाशन हिन्दू मूर्तिपूजा का वर्गीकरण करते हुए उसे दानवी, पापपूर्ण और नष्ट किये जाने योग्य कहते हैं।[58]

अन्तर्राष्ट्रीय विकास के लिए संयुक्त राज्य सरकार की एजेन्सी (USAID)

संयुक्त राज्य अमरीका की सरकार की एक सोची-समझी रणनीति रही है जिसके तहत भारतीय परियोजनाओं को दिये जाने वाले धन पर ईसाई प्रचारक संगठनों के उत्तरोत्तर नियन्त्रण की अनुमति दी जाती है। इसके लिए एक प्रमुख वाहन है यू.एस.एड (USAID)। अमरीकी सरकार द्वारा खड़ी की गयी यह एजेन्सी स्वतन्त्र रूप से कार्य करने वाली संघीय एजेन्सी है जिसे अमरीकी विदेश मन्त्री द्वारा समस्त विदेश नीति निर्देश प्राप्त होते हैं। सन 1961 में विदेश सहायता विधेयक पर हस्ताक्षर हुए और वह अधिनियम बन गया तथा एक कार्यपालिका के आदेश से यू.एस.एड का सृजन किया गया। द्वितीय विश्व युद्ध के बाद यूरोप के पुनर्निर्माण की मार्शल योजना की सफलता से मिले प्रोत्साहन के बाद ऐसा किया गया था। उसी समय से यू.एस.एड अमरीका की एक प्रमुख एजेन्सी रही है जिसका उद्देश्य 'अमरीका की विदेश नीति से जुड़े हितों को आगे बढ़ाना' है, जो 'विकासशील विश्व के नागरिकों की जीवनदशाओं में सुधार लाते हुए लोकतन्त्र और मुक्त बाज़ारों को विस्तारित करने' की आड़ में किये जाते हैं।[59]

शीतयुद्ध के दौरान, अमरीका द्वारा यू.एस.एड और ईसाई प्रचारक संगठनों का बहुत सफलतापूर्वक उपयोग अनेक क्षेत्रों में, जिनमें दक्षिणपूर्व एशिया भी शामिल है, मार्क्सवादियों के आगे बढ़ने का मुकाबला करने के लिए किया। तहलका पत्रिका स्पष्ट करती है कि अमरीका के तत्कालीन राष्ट्रपति बुश के शासनकाल में सी.आई.ए.-यू.एस.एड-ईसाई प्रचारक गठजोड़ का युग जोरदार ढंग से वापस आ गया था, विशेषकर भारतीय सन्दर्भ में।[60] वास्तव में, बुश के राष्ट्रपति बनने से पहले से ही यू.एस.एड के साथ ईसाई प्रचारकों का उपयोग संयुक्त राज्य नीति का एक अंग रहा है। सन 1999 में तत्कालीन राष्ट्रपति क्लिंटन ने ब्रैडी ऐण्डर्सन को यू.एस.एड का प्रशासक नियुक्त किया, जिन्होंने स्पष्ट रूप से कहा कि 'विदेशों को सहायता के मामले में संयुक्त राज्य सरकार ने काफी लम्बे समय से ईसाई संगठनों का उपयोग किया है ...बड़े काम के समय'।[61]

1997 में, वर्ल्ड विजन के उपाध्यक्ष, एण्ड्र्यू नैट्सिओस (Andrew Natsios), ने यूएस कांग्रेस कमिटी ऑन इंटरनेशनल रिलेशन्स के समक्ष अपनी गवाही के समय कहा कि 'वर्ल्ड विजन' अन्तर्राष्ट्रीय सहायता कार्यक्रम में अमरीकी सरकार के साथ एक पुनर्नवीकृत सहभागिता का स्वागत करता है' और उन्होंने एक आदर्श चित्र प्रस्तुत किया जिसमें धर्म आधारित एन.जी.ओ. और अमरीकी सरकार मिलकर काम करेंगे। सरकार के साथ भागीदारी के मामले में ईसाई एन.जी.ओ. की ओर से पहले

झिझक रही थी, क्योंकि इसके 'परिणामस्वरूप धार्मिक स्वतन्त्रता की हानि होती है',[62] जिसका अर्थ था कि गरीबों से साथ काम करते हुए उन्हें अपनी धर्मान्तरण गतिविधियों को सीमित रखना पड़ सकता है। ईसाई प्रचारकों को साथ में लाने के लिए 2001 में जार्ज बुश ने नैट्सिओस को यू.एस.एड के प्रशासक के रूप में नियुक्त किया।[63] सन 2002 में बुश ने ईसाई प्रचारकों के भय को यह आश्वासन देते हुए हटाया कि वे अपने मिशन में बिना परिवर्तन किये सरकारी धन तक पहुँच रख सकते हैं।[64] यू.एस.एड की वेबसाइट साफ़-साफ़ दिखाती है कि 'आस्था' से उनका आशय केवल अब्राहमवादी धर्मों से है।[65]

राष्ट्रपति क्लिंटन के काल में यू.एस.एड के प्रशासक, ब्रैडी ऐण्डर्सन, वर्ल्ड विजन के बोर्ड में हैं। चर्च बहुराष्ट्रीयों और अमरीकी सरकार के बीच काम-काज के पथों के संगम संयोगवश नहीं हैं। राइस यूनिवर्सिटी में सेंटर ऑन रेस, धर्म, एण्ड अर्बन लाइफ के सहायक निदेशक, और ईसाई प्रचारक जन प्रतिनिधियों के सबसे वृहद और सबसे व्यापक अध्ययन के लेखक माइकल लिण्ड्से ने ध्यान दिलाया :

> व्यक्तियों और सामाजिक क्षेत्रों का एक-दूसरे के क्षेत्र पर छा जाना अन्य ईसाई प्रचारक संगठनों, जैसे प्रिजन फेलोशिप मिनिस्ट्रीज, क्रिश्चियनिटी टुडे इंटरनेशनल, और फुलर थियोलॉजिकल सेमिनरी, के मामलों में भी पाया जा सकता है।[66]

कुछ पन्थ-निरपेक्ष एन.जी.ओ. से अलग, यू.एस.एड भारत में काम कर रहे ईसाई एन.जी.ओ. के प्रति झुकाव प्रदर्शित करती है। यू.एस.एड इण्डिया मिशन के निदेशक जॉर्ज डेइकुन ने अनेक अवसरों पर कहा है कि ईसाई प्रचारक संगठन भारत में काम कर रहे यू.एस.एड के सहभागियों में सर्वाधिक दिखायी देने वाले संगठन हैं : 'यू.एस.एड इण्डिया अनेक संगठनों को सहयोग दे रही है, जैसे कैथोलिक रिलीफ सर्विसेज, शरण (SHARAN), वाई.डब्ल्यू.सी.ए. वर्ल्ड विजन, साल्वेशन आर्मी और सेंट मेरी अस्पताल, आदि'।[67] सुनामी राहत के लिए, यू.एस.एड ने वर्ल्ड विजन के साथ हाथ मिलाया।[68] सन 2006 में भारत में कैथोलिक रिलीफ सर्विसेज (सी.आर.एस.) की साठवीं वर्षगांठ के समारोह में बोलते हुए डेइकुन ने कहा कि 'प्रत्येक वर्ष भारत के सर्वाधिक हाशिये पर चले गये आदिवासी और दलित समुदायों के लगभग दस लाख लोगों' तक पहुँचने के लिए चलाये जा रहे विभिन्न कार्यक्रमों में 'सी.आर.एस. और इसका व्यापक नेटवर्क यू.एस.एड का मूल्यवान सहभागी रहा है'।[69]

सन 2008 में, यू.एस.एड ने आदिवासी राज्य झारखण्ड में इवैंजेलिकल फेलोशिप ऑफ इण्डिया कमिशन ऑन रिलीफ (EFICOR) और क्रिश्चियन रिफॉर्म्ड वर्ल्ड रिलीफ कमिटी (CRWRC) की एक संयुक्त परियोजना को धन देना स्वीकार किया।[70] सी.आर.डब्ल्यू.आर.सी. अमरीका स्थित एक ईसाई राहत संगठन है जो दावा करता है कि वह 'चर्चों के माध्यम से काम करते हुए चर्चों को शक्ति सम्पन्न बनाता है', और

अन्ततः 'इसके परिणामस्वरूप और अधिक ईसाई' बनते हैं।[71] एफिकोर (EFICOR)का जनक संगठन है इवैंजेलिकल फेलोशिप ऑफ इण्डिया EFI, हालाँकि 1981 से दोनों कानूनी रूप से अलग-अलग संगठन हैं।[72] ई.एफ.आई. की वेबसाइट 'सांस्कृतिक और भौगोलिक सीमा को पार करने तथा भारतीय ईसाइयों को एक विश्वव्यापी ईसाई समुदाय से जोड़ने' की बात करती है।[73]

भारत को अमरीका की वित्तीय सहायता अधिकांशतः ईसाई एन.जी.ओ. के माध्यम से भेजी जाती है। यह तथ्य इस कारण और अधिक महत्व धारण कर लेता है कि 2007 तक अमरीका भारत को दी जाने वाली सहायता राशि में पैंतीस प्रतिशत की कटौती करने वाला था।[74] इसका अर्थ था अमरीकी सहायता राशि में धार्मिक एन.जी.ओ. के माध्यम से भेजी जा रही राशि के अनुपात में नाटकीय वृद्धि।

ओबामा प्रशासन ने यू.एस.एड के लिए नये प्रशासक की नियुक्ति की है, एक भारतीय अमरीकी की जिनका नाम राजीव शाह है। समय बतायेगा कि यह ईसाई धर्मान्तरण को दिये जाने वाले विदेश समर्थन से दूर हटने का संकेत है या यह हिन्दू नाम वाले किसी व्यक्ति को प्रधान के रूप में लाकर उनकी गतिविधियों पर एक नया पर्दा। ईसाई दक्षिणपन्थी अपना दबाव जारी रखेंगे और वे बहुत सुसंगठित हैं।

ओबामा और संयुक्त राज्य विदेशी ईसाई धर्मान्तरण

अनेक भारतीय विश्वास करते हैं कि ओबामा प्रशासन ईसाई दक्षिणपन्थियों को एक झटका देगा और इस प्रकार भारत जैसे स्थानों में अमरीका द्वारा प्रायोजित ईसाई धर्मान्तरण को भी झटका लगेगा। राष्ट्रपति ओबामा के दिल में चाहे जो भी हो, वॉशिंगटन की राजनीतिक व्यावहारिकता ऐसे सैद्धान्तिक लक्ष्यों पर हावी रहती है। ओबामा विभिन्न सीमाओं के आर-पार के एक बड़े सौदेबाज हैं, और जहाँ भी सम्भव हो बिना-टकराव के कार्य सम्पादित करना चाहते हैं। इस लेन-देन के माहौल में, जो किसी भी आधुनिक लोकतन्त्र की एक चारित्रिक विशेषता होती है, उन्हें अपनी सर्वोच्च प्राथमिकता का चयन करना है, और शेष के मामलों में वह समझौते स्वीकार करने को तैयार रहेंगे। भारत की नियति (संयुक्त राज्य अमरीका के हितों से अलग) उनके लिए साफ़ तौर पर सर्वोच्च प्राथमिकता की उस सूची में नहीं है, न ही दूसरे किसी अमरीकी राष्ट्रपति के लिए वह थी। विशेष रूप से भारतीय सभ्यता या हिन्दू धर्म की नियति उनके लिए उतनी महत्वपूर्ण नहीं है कि उसके लिए मुख्य वैधानिक एजेण्टों और नीतियों की बलि चढ़ा दी जाये।

जैसा कि इस अध्याय में पहले कहा गया है, राष्ट्रपति क्लिंटन अन्तर्राष्ट्रीय धार्मिक स्वतन्त्रता अधिनियम को (क्लिंटन के एजेंडे के अन्य अधिक महत्वपूर्ण मामलों पर उनके समर्थन के बदले) पारित करवाने की ईसाई दक्षिणपन्थियों की माँग पर सहमत हो गये थे। जॉर्ज डब्ल्यू. बुश के राष्ट्रपति काल में दक्षिणपन्थी बड़ी तेजी

से सरकारी एजेंसियों में घुस गये थे। सन 2001 में, बुश ने धर्म के आधार पर अमरीका द्वारा संघीय स्तर पर वित्त पोषित कार्यक्रम इनमें से प्रत्येक सरकारी विभाग में तैयार किये थे : श्रम, स्वास्थ्य और मानव सेवा, गृहनिर्माण और शहरी विकास, शिक्षा और न्याय। सन 2002 में यू.एस.एड के विदेशी कार्यसंचालनों और सैन्य प्रशासन में आधिकारिक और स्पष्ट रूप से यहूदी-ईसाई उपस्थिति स्थापित करने के लिए इसे विस्तारित किया गया। सन 2004 में, कृषि, वाणिज्य, लघु व्यवसाय प्रशासन, और वतन की सुरक्षा विभागों में भी धर्म पर आधारित कार्यक्रम जोड़ दिये गये थे।

जहाँ राष्ट्रपति ओबामा घरेलू स्तर पर विशेष क्षेत्रों में व्यापक ईसाई प्रभाव को रोक या यहाँ तक कि पलट रहे हैं, विदेशी रंगमंच एक पूरी तरह से भिन्न कहानी है। वे अमरीकी सरकार द्वारा विदेशी धार्मिक मामलों में हस्तक्षेप ईसाई दक्षिणपन्थियों को अपना प्रभाव गहरा करने दे रहे हैं। इसे समझने के लिए यह समझना होगा कि ओबामा के राष्ट्रपति चुनाव अभियान के दौरान किस प्रकार शिकागो के जोशुआ डयूबॉय (Joshua Dubois)नामक एक उद्यमी अफ्रीकी-अमरीकी ने ओबामा की ओर से ईसाई मतदाताओं को सफलतापूर्वक एकजुट किया था। उस कदम ने उस वोट बैंक में सेंधमारी की थी जो पारम्परिक रूप से रिपब्लिक पार्टी का था। यह एक अत्यन्त महत्वपूर्ण समूह था जो ओबामा की विजय के लिए जिम्मेदार हुआ। डयूबॉय की शानदार योजना थी कि गरीबों की परवाह करने वाले उदारवादी सिद्धान्तों द्वारा ईसाइयों को भावनाओं में बहाया जा सकता है। डयूबॉय ने ओबामा को ईसाई शब्दावली में 'गरीबों के लिए जीवनपर्यन्त वकालत करने वाले' नेता के रूप में सफलतापूर्वक प्रस्तुत किया।

वाइट हाउस में प्रवेश करने के बाद राष्ट्रपति ओबामा ने धार्मिक मामलों से जुड़े किसी भी मामले के लिए डयूबॉय को ही अपना सर्वोच्च सलाहकार बनाया। अब तो ईसाई प्रचारकों को लुभाकर डेमोक्रेटिक पार्टी में लाने की एक रणनीति भी है। अब्राहमवादी पन्थ को साथ लाने के लिए मुख्य माध्यम है ओबामा प्रशासन का एक प्रतिष्ठान—'धर्म-आधारित और पड़ोसी साझेदारी पर राष्ट्रपति की सलाहकार परिषद' (President's Advisory Council on Faith-based and Neighborhod Parnership)। डयूबॉय इसके कार्यकारी निदेशक हैं। यह परिषद घरेलू और अन्तर्राष्ट्रीय दोनों स्तरों पर धार्मिक मामलों में राष्ट्रपति की आँख और कान हैं, और ऐसे मामलों में उनकी मुख्य सलाहकार।

यह महत्वपूर्ण है कि ओबामा खेमे के सारे लोक लुभाऊ भाषणों के बाद भी डेमोक्रोटों ने अब तक ईसाई रूढ़िवादियों को नहीं हटाया है जो धार्मिक स्वतन्त्रता पर अमरीकी आयोग को नियन्त्रित करते हैं। लेकिन उपर्युक्त नयी परिषद की संरचना इससे भी अधिक चीजें उजागर करती है, जिसमें ओबामा के पूर्व हुई नियुक्तियों के खुमार का कोई बहाना नहीं है। इस पच्चीस सदस्यीय संस्थान की संरचना पर एक संक्षिप्त विवरण यह समझने का अवसर प्रदान करेगा कि विदेशी ईसाई धर्मान्तरण पर

इन गतिविधियों को अब भी किस तरह दक्षिणपन्थी ही संचालित कर रहे हैं, यह अलग बात है कि अब एक उदारवादी राष्ट्रपति शासन के झण्डे तले।[75]

शुरू करें तो वर्ल्ड विजन, अमरीका, के अध्यक्ष इसके एक सदस्य हैं। परिषद के एक अन्य सदस्य क्रिश्चियन कम्यूनिटी डेवलपमेंट एसोसिएशन के मुख्य कार्यकारी अधिकारी हैं, जो स्वयं को 'विश्व भर के पाँच हज़ार से अधिक धार्मिक संगठनों के साथ वर्तमान में काम करने वाले संगठन' के रूप में वर्णित करता है। सरकार द्वारा एक अन्य सदस्य की विश्वसनीयता 'अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर सम्मानित ईसाई प्रचारक नेता' के रूप में बतायी गयी है; 'वह वर्ल्ड इवैंजेलिकल अलायंस (4200 लाख घटकों वाले) तथा नेशनल एसोसिएशन ऑफ इवैंजेलिकल्स (300 लाख सदस्यों वाले) संगठनों के बोर्ड में रहकर सेवा कर रहे हैं'। साउथ बैप्टिस्ट कॉन्वेंशन के अवकाश प्राप्त अध्यक्ष भी इसके एक सदस्य हैं, जो एक शक्तिशाली ईसाई प्रचारक समूह भी संचालित करते हैं, जो '5600 से अधिक मिशनरियों के कार्यों का पर्यवेक्षण करता है'। वर्ष 1999-2009 के दौरान 'राष्ट्रीय बैप्टिस्ट कन्वेन्शन' (National Baptist Convention) के अध्यक्ष भी एक सक्रिय सदस्य हैं। अब्राहमवादी पन्थ और सार्वजनिक जीवन पर एक अत्यन्त प्रोटेस्टैंट-समर्थक प्यू ट्रस्ट फोरम के एक पूर्व कार्यकारी निदेशक, जो धार्मिक स्वतन्त्रता पर बैप्टिस्ट ज्वायंट कमेटी के सामान्य परामर्शदाता थे, इस संस्थान के एक अत्यधिक प्रभावशाली सदस्य हैं। शक्तिशाली वर्ल्ड काउंसिल ऑफ चर्चेज का प्रतिनिधित्व इसकी केन्द्रीय समिति के एक सदस्य कर रहे हैं।

कैथोलिक चर्च का प्रतिनिधित्व उसके अध्यक्ष और कैथोलिक चैरिटीज (संयुक्त राज्य अमरीका) के मुख्य कार्यकारी अधिकारी द्वारा किया जा रहा है, जो 1700 से अधिक स्थानीय चर्च धन प्रदत्त एजेंसियों तथा राष्ट्रव्यापी संस्थानों का राष्ट्रीय कार्यालय है। संघीय सरकार द्वारा गर्व से यह दावा किया गया है कि 'पोप बेनेडिक्ट XVI ने उन्हें पोंटिफिकल काउंसिल कोर उनुम में मनोनीत किया है, जो कैथोलिक चर्चों की विश्वव्यापी परोपकारी गतिविधियों का पर्यवेक्षण करती है'। उनके साथ हैं एक अन्य कैथोलिक सदस्य जो यूनाइटेड स्टेट्स कॉन्फेरेन्स ऑफ कैथोलिक बिशप्स के सामान्य परामर्थदाता हैं। और भी छै धर्मशास्त्री और अधिवक्ता भी हैं जो विभिन्न ईसाई संगठनों का नेतृत्व करते हैं और इस परिषद के सदस्यों में भी शामिल हैं।

ईसाइयों के भारी आधिपत्य वाले इस संस्थान में तीन यहूदी नेता और साथ-साथ दो मुसलमान भी हैं। इनमें से प्रत्येक धर्मशास्त्री या राजनीतिक रूप से अच्छे सम्पर्कों वाले नेता के रूप में महत्वपूर्ण पृष्ठभूमियों से आये हैं।

इसके विपरीत हिन्दू प्रतिनिधित्व की स्थिति पूरी तरह अपमानजनक है। समुदाय के रूप में एकजुटता या महत्वपूर्ण मुद्दों पर सुसंगत घोषणापत्र के अभाव के कारण ऐसी स्थितियों में हिन्दू अमरीकी प्रतिनिधित्व एक तरह से व्यक्तिगत लॉबिंग का ही विषय होता है। 'हिन्दू' की कोटि में जिन महिला को रखा गया है, उनमें साफ़ तौर पर

उन क्षमताओं का अभाव है, जो परिषद के उन सदस्यों के मुकाबले मुखरता से अपनी बात रखने के लिए जरूरी हैं, जिनसे वे परिषद में घिरी हुई हैं। बेहतरीन इरादों के बावजूद उन्हें सीधे-सीधे निशाना साधने के पहले ही परास्त कर दिया जाता रहा है, बड़ी चतुराई से मात दी जाती रही है, और राजनीतिक तिकड़मों से उनकी हर चाल को निरस्त कर दिया जाता रहा है। सबसे बड़े मुद्दों और माँगों को परिभाषित करने के लिए उन्हें अपने हिन्दू सामुदायिक घेरे में एक ठोस आम सहमति विकसित करनी चाहिए थी और ईसाई माँगों के मुकाबले के लिए तर्कों को सुव्यवस्थित करना चाहिए था। इसके बदले उन्हें लालच देकर संयुक्त राज्य अमरीका के विभिन्न भागों में 'हिन्दू सेवा' (सामाजिक सेवा) आयोजित करने के लिए लगा दिया गया है, 'नेतृत्व क्षमताएँ' स्थापित करने के उनके अपने तरीके के रूप में। इसने उनकी ऊर्जा का क्षय कर दिया है, वह भी उस समुदाय तक उनका कोई भी लाभ पहुँचे बिना जिसके प्रतिनिधित्व के लिए वे वहाँ गयी हैं। जैसे-जैसे हम इस अध्याय में चर्चा आगे बढ़ायेंगे, यह स्पष्ट होता जायेगा कि ऐसा क्यों हुआ कि ईसाई अपने एजेंडे को आगे बढ़ाते गये जिसे रोकने में अधिक सफलता नहीं मिल पायी।

ओबामा प्रशासन ने धार्मिक संगठनों की महत्वपूर्ण भूमिका पर, जिसे बुश द्वारा पहले से ही शक्तिशाली बनाया जा चुका था, आगे दी गयी घोषणा के साथ काम शुरू किया। व्यवहार में ऐसे समूह यहूदी-ईसाई संस्थान हैं : 'वाइट हाउस का 'धर्म आधारित और पड़ोसी साझेदारी' विभाग सरकार के सभी कार्यालयों के साथ मिलकर इस बात पर विचार करता रहा है कि किस तरह आर्थिक स्थिति को फिर से पटरी पर लाने के काम में धार्मिक और सामुदायिक संगठनों को लगाया जा सकता है'। ओबामा के बहुज्ञात आर्थिक राहत पैकेज को, जिसे अमरीकन रिकवरी एण्ड रिइन्वेस्टमेंट ऐक्ट (ARRA) के रूप में जाना जाता है, धार्मिक समूहों के बीच उनके लिए धन प्राप्त करने के 'एक अभूतपूर्व अवसर' के रूप में प्रस्तुत किया जा रहा है। यहाँ तक कि बहुप्रचारित ओबामा-बिडेन व्यापक न्यू एनर्जी फॉर अमरीका योजना में भी धार्मिक समूहों के लिए सरकारी धन प्राप्त करने के प्रावधान हैं।

ओबामा की धर्म-आधारित पहलकदमी अपनी वेबसाइट में कहती है कि इसके अन्तर्राष्ट्रीय लक्ष्य में भूमण्डलीय गरीबी से संघर्ष, अमरीकी गठबन्धनों का नवीकरण, 'हमारे शत्रुओं और मित्रों' से बातचीत और 'एशिया में नयी सहभागिता' की खोज शामिल है, जिसके लिए अमरीका में मौजूद पन्थों को भूमिका निभाने के लिए कहा जा रहा है। अमरीकी विदेश मन्त्रालय के 'शिक्षा तथा सांस्कृतिक मामलों के विभाग'(Bureau of Educational and Cultural Afairs)ने धार्मिक और गैर-लाभकारी संगठनों के साथ कई आदान-प्रदान कार्यक्रम आयोजित किये हैं, पर्यटन संचालकों से बातचीत कर रहा है और उनके साथ मिलकर प्रशिक्षण में सहभागिता के कार्यक्रम चला रहा है। 'पन्थ-निरपेक्षता' की भारतीय अवधारणा के विपरीत, अमरीकी पन्थ-निरपेक्षता केवल संस्था के स्तर पर चर्चों और राज्य को अलग करती

है, और प्रमुख सरकारी नेतृत्वों को उन तत्वों को प्रोत्साहित करने से अलग नहीं करती जिन्हें ईसाई समर्थक वक्ता 'बाइबल के मूल्य' कहते हैं। (उदाहरण के लिए, हिलेरी क्लिंटन वाइट हाउस के सौ से अधिक सदस्यों में से एक हैं, और अमरीकी कांग्रेस के ईसाई प्रार्थना-समूह में भी हैं जो हर महीने अनौपचारिक रूप से उच्चस्तरीय बैठकें करता है ताकि उन सिद्धान्तों पर आधारित एजेंडे तैयार कर सकें जिन पर सहमति है।)

पिछले एक दशक से संयुक्त राज्य अमरीका विश्व बैंक के एक कार्यक्रम को भी प्रायोजित कर रहा है जिसका नाम है 'मूल्यों और नैतिकता सम्बन्धी विकास सम्वाद' (Development Dialogue on Values and Ethics), जो आस्था और विकास के अन्तरभेदन के मामले में विश्व बैंक के केन्द्रीय बिन्दु के रूप में काम आया है'। विश्व बैंक की यह ईकाई 'धार्मिक संगठनों के साथ सहभागिता' रखती है, जो व्यवहार में अधिकांशत: ईसाई संगठन ही निकलते हैं।

धर्म अथवा पन्थ पर ओबामा की नीति सामाजिक कार्यों में धार्मिक समूहों की भूमिका का जोरदार समर्थन करती है, और यह ईसाई प्रचारकों के कानों के लिए संगीत के समान है, जो सरकारी सहायता के रूप में अरबों प्राप्त करने की सम्भावना पर प्रसन्न होते हैं। वाइट हाउस के धार्मिक मामलों के सलाहकार ने निष्कर्ष निकाला : 'विश्व के अनेक क्षेत्रों में, धार्मिक समुदायों के सर्वाधिक विकसित, बड़े और टिकाऊ सामाजिक ढाँचे हैं। और आगे, वे सर्वाधिक विश्वसनीय और भरोसेमन्द सहभागियों में हो सकते हैं'। रपट तर्क देती है :

> धर्म विश्व भर में अनेक लोगों के मूल्यों और कार्यों की जानकारी देता है और धार्मिक संस्थाएँ स्वास्थ्य की देख-भाल, शिक्षा और समाज सेवाएँ प्रदान करने में महत्वपूर्ण योगदान करती हैं [...] मूलभूत सेवाएँ प्रदान करने, शान्ति के लिए मध्यस्थता करने, और स्थिर समाज निर्मित करने में धार्मिक समुदाय सम्भावित सहभागी हैं। धार्मिक समुदायों के साथ काम करने के लिए अमरीकी कर्मियों के पास सर्वाधिक अच्छे साधनों का काम-लायक ज्ञान अवश्य होना चाहिए।

इसी आलोक में, यह विदेशों में काम कर रहे धार्मिक संगठनों को अमरीकी सरकार द्वारा धन प्रदान करने के कार्यक्रमों को विस्तारित करने की अनुशंसा करती है, और साथ में धार्मिक मामलों में अमरीकी अधिकारियों को 'शिक्षित' करने की भी :

> प्रशासन को अपने सहभागियों में बहु-धार्मिक सहभागिता को शामिल करना चाहिए जिसमें अमरीकी सरकार अन्तर्राष्ट्रीय मामलों से जुड़ी अमरीकी एजेंसियों के साथ उन भागीदारियों के लिए बातचीत करती है और उन्हें संसाधनों से युक्त करती है। इस लक्ष्य के लिए सलाहकार परिषद अनुशंसा करती है कि अन्तर्राष्ट्रीय मामलों में लगी प्रमुख एजेंसियों में से प्रत्येक में बहु-धार्मिक संलग्नता के लिए प्रशासन वरिष्ठ कर्मचारियों की नियुक्ति का अनुरोध करे। यह राष्ट्रपति ओबामा से यह भी अनुरोध करती है कि बहु-धार्मिक संलग्नता से जुड़ी

निवेश सूची स्थापित करने के लिए वे प्रत्येक एजेन्सी को निदेश जारी करें, और बहुधार्मिक संलग्नता पर अन्तर और अन्त:-एजेन्सी, दोनों प्रकार के कार्य दल के सृजन के लिए कहें। यानी राष्ट्रपति ओबामा हर एजेंसी से कहें कि वह ऐसे दल तैयार करे जो एजेन्सियों के अन्दर भी काम कर सकें और अन्य एजेन्सियों में अपने समकक्ष दलों के साथ मिलकर भी।

सरकार स्पष्ट करती है कि ऐसे धार्मिक कार्यक्रम पहले से ही अमरीका के चालीस शहरों के पाँच सौ महाविद्यालय परिसरों में, जिनमें स्थानीय नेता भी शामिल हैं, और विदेशों में चल रहे पच्चीस संयुक्त राज्य दूतावासों में जारी हैं। ओबामा द्वारा नियुक्त धार्मिक परिषद ने 'संयुक्त राज्य के विकास से सम्बद्ध एन.जी.ओ. के लिए क्षमता निर्माण समर्थन' को पुन: प्रारम्भ करने के लिए तर्क दिये, ताकि इन विदेशी धार्मिक समूहों को केवल कार्यक्रमों को चलाने में ही सहायता मिले, बल्कि उन देशों में उनके ढाँचों को विस्तारित करने के लिए उन्हें धन भी प्राप्त हो। निष्पक्ष रूप से कहा जाये तो ओबामा की इस नीति के पीछे का 'सिद्धान्त' बहुलतावादी है और दुरुपयोग को रोकने के लिए सही शब्दों का चयन किया गया है : 'राष्ट्रपति ओबामा अन्तर-धार्मिक विचार-विमर्श, सहयोग और समझदारी के संरक्षण के लिए प्रतिबद्ध हैं'। प्राथमिकताओं में से एक होगा 'अन्तर-धार्मिक सहयोग के लिए अवसरों की खोज करना और उन्हें सृजित करना'। इस वक्तव्य में विशाल सम्भावनाएँ हैं, लेकिन शर्त यह है कि उन्हें कार्यान्वित किया जाये। जैसा कि नीचे स्पष्ट किया गया है, व्यवहार में ऐसा नहीं हुआ।

जहाँ राष्ट्रपति की धार्मिक परिषद में एकमात्र हिन्दू सदस्य ने हिन्दू सेवा के आयोजन में लोगों को एकजुट करने में अपना वर्ष बिता दिया, चतुर और अनुभवी ईसाई सदस्य उप-समितियों का सृजन करने और नीतिगत अनुशंसाओं का प्रारूप तैयार करने में व्यस्त रहे। अन्तिम समय में, जब इन अनुशंसाओं को कानून का रूप देने के लिए निर्धारित समय सीमा में मुश्किल से एक माह ही बचे होंगे, इन्फिनिटी फाउण्डेशन के राजीव मल्होत्रा (इस पुस्तक के सह-लेखक) को काउंसिल के चिन्तित हिन्दू प्रतिनिधि से अचानक फोन कॉल और ई-मेल मिले, जिनमें उन्होंने कहा कि अनेक ऐसी अनुशंसाएँ पारित होने वाली हैं जो हिन्दुओं के लिए समस्या बन सकती हैं। तब उन्होंने इस मामले में कुछ दिवस लगाने का निर्णय किया, और उनसे (हिन्दू प्रतिनिधि से) अनुशंसाओं का प्रारूप भेजने के लिए कहा। जो अनुशंसाएँ की गयी थीं उनका एक विश्लेषण नीचे दिया जा रहा है, जिन्हें श्री मल्होत्रा ने बदलने का प्रयास किया, और किस प्रकार काउंसिल के ईसाई सदस्यों ने इन प्रयासों को कुशलता से रोक दिया।

उनके प्रारूप में एक अनुशंसा थी कि सरकारी सहायता 'नागरिक समाज के संगठनों के साथ भागीदारी के माध्यम से दी जानी चाहिए जिन्होंने गरीब समुदायों के साथ कार्य करने के प्रति अपनी प्रतिबद्धता प्रदर्शित की हो'। श्री मल्होत्रा ने सुझाव

दिया कि गरीबों के साथ काम करना जहाँ महत्वपूर्ण था, वहीं ओबामा की अन्तर-धार्मिक सौहार्द तथा बहुलतावाद की घोषित नीति की भावना के तहत और काफी कुछ जोड़े जाने की आवश्यकता थी। उन्होंने सुझाया कि निम्नलिखित उद्देश्य के साथ एक वाक्य जोड़ा जाना चाहिए : 'यह अनिवार्य हो कि अन्य देशों में उनके अपने मूल धर्मों को सम्मान देकर बहुलतावाद को अवश्य ही प्रोत्साहित किया जाये'। हिन्दू प्रतिनिधि ने मल्होत्रा को बताया कि परिषद नें उनके सहयोगियों द्वारा इसे अस्वीकार कर दिया था।

परिषद की एक अन्य अनुशंसा थी अमरीकी सरकार को एक लक्ष्य स्थापित करना चाहिए कि सरकार के सभी विभागों की विकास सहायता का एक-तिहाई ऐसे धार्मिक समूहों के माध्यम से दिया जाये। इसका उद्देश्य स्पष्ट रूप से सरकारी धन के दरवाजे खोल देना था, ताकि ये धन अन्ततः ईसाई प्रचारकों के हाथों में चले जायें। मल्होत्रा ने हिन्दू प्रतिनिधि को एक ई-मेल भेजा जिसमें निम्नलिखित बातें जोड़ने की बात कही गयी थीं, जिसे परिषद द्वारा तत्काल और दृढ़ता से अस्वीकार कर दिया गया : 'बहुधा, सामाजिक सेवा की आड़ में कुछ अमरीका सम्बद्ध एन.जी.ओ. के आक्रामक ईसाई प्रचारक एजेंडा रहे हैं, जो सौहार्द और बहुलतावाद के बदले अन्तर-धार्मिक तनावों की ओर ले जाते हैं। इसे रोकने के लिए अमरीकी सरकार की आर्थिक सहायता केवल उन संगठनों को जानी चाहिए जो यह वचन दें कि वे उन गतिविधियों में संलग्न नहीं होंगे जो साम्प्रदायिक द्वेष उत्पन्न करने वाले के रूप में जाने जाते हैं, जैसे अन्य धर्मों के दर्शन, देवी-देवताओं, अनुष्ठान, प्रतीक, इतिहास, नेता, और प्रथाओं की झूठी निन्दा या उन्हें नीचा दिखाना'।

एक अन्य नीति जिसकी वे अनुशंसा कर रहे थे, इस प्रकार है : 'यू.एस.एड को धार्मिक और नागरिक समाज से सम्पर्क के लिए प्रत्येक एड मिशन में जनसम्पर्क कर्मचारी नियुक्त करना चाहिए ताकि जमीनी स्तर पर काम करने वाले संगठनों तक पहुँच कायम की जा सके और उनके साथ भागीदारी की जा सके। उक्त पदासीन कर्मचारी उस देश के लिए मिशन प्रमुख को सीधे रपट करे, उस देश में काम कर रही अमरीकी सरकार की सभी एजेंसियों के साथ काम करे, उस देश में काम कर रहे नागरिक समाजों और एन.जी.ओ. के बीच चलने वाली बातचीत के लिए अवसर सृजित करे, और संयुक्त राज्य सरकार तथा स्थानीय स्तर पर चिह्नित आवश्यकताओं पर आधारित एन.जी.ओ. के बीच संयुक्त कार्यक्रम सृजित करने का मार्ग प्रशस्त करे'। मल्होत्रा ने सुझाव दिया कि सुरक्षाकवच के रूप में निम्नलिखित जोड़ दिया जाये : 'ऐसी सभी भर्तियों का उद्देश्य वैसी नियुक्तियों से बचने का होना चाहिए जो किसी अन्य देश में सर्वाधिक प्रभावी विश्वासों के विरुद्ध धार्मिक पूर्वाग्रह लायेगा। धार्मिक पूर्वाग्रह के मानदण्ड जो कानून के तहत संयुक्त राज्य अमरीका में लागू होते हैं, वे ही विदेशों में संचालित और अमरीकी सरकार से जुड़े किसी कार्यक्रम द्वारा पूर्वाग्रहों से बचने के दिशा निर्देश होने चाहिएँ। इस बात पर अत्यधिक सतर्कता बरतनी चाहिए

कि ऐसी क्षमता-निर्माण किसी धार्मिक समूह विशेष को अन्य के मुकाबले विशेषाधिकार न देती हो या उस देश विशेष में व्याप्त धर्मों के सन्तुलन को उलट-पलट न दे'। राष्ट्रपति की परिषद द्वारा इसे भी अस्वीकार कर दिया गया।

ईसाई प्रचारकों के प्रभुत्व वाली परिषद द्वारा जो कुछ भी प्रारूप तैयार किया गया था उसके लिए हिन्दू प्रतिनिधि रबर की मुहर बन रहे थे, जिससे निराश होकर मल्होत्रा ने उन्हें निम्न प्रकार लिखा :

> यह ईसाई दक्षिणपन्थियों का एजेंडा है जिसे और आगे ले जाया जा रहा है। उदाहरण के लिए, अनुशंसा संख्या 5 का उद्देश्य वर्ल्ड विजन का प्रतिनिधित्व कर रहे लोगों जैसे ईसाई प्रचारकों को यू.एस.एड कार्यालयों में स्थापित करना है ताकि एक दिशा दी जा सके। हम पहले से ही जमीनी स्तर पर तमिलनाडु, आंध्र प्रदेश, पूर्वोत्तर भारत आदि स्थानों पर उनके हल्ला बोल का मुकाबला कर रहे हैं। इस मामले में ईसाई दक्षिणपन्थियों द्वारा ओबामा को ही अगवा कर लिया गया है। काश, आपने इस प्रक्रिया में बहुत पहले ही हिन्दू स्वर को शामिल किया होता। क्या मूल निवासियों की धार्मिक परम्पराओं के प्रति संवेदनशीलता से जुड़ी कुछ भाषा उसमें घुसाने का कोई रास्ता है, यह कहते हुए कि अमरीका किसी भी वैसे धार्मिक एन.जी.ओ. के साथ शामिल नहीं होगा जो धर्मान्तरण कराने की गतिविधियों में संलग्न है? अगर हम ऐसा नहीं करते या कम-से-कम इसके लिए हमारी माँग रिकार्ड में नहीं आती, तो ऐसा लगेगा मानो ईसाई प्रचारकों के एजेंडे पर हमने मुहर लगा दी। मैं इस पर कान्फेरेंस कॉल के लिए उपलब्ध हूँ, अगर आप चाहती हैं कि कुछ लोग इस मामले में सीधा विचार-विमर्श करें।

हिन्दू प्रतिनिधि ने उत्तर दिया, 'मैंने इस बारे में अनेक बार बातचीत की, लेकिन उन्होंने कहा कि वैसा करने का प्रश्न ही नहीं उठता। किसी भी अन्य धर्म को शामिल कराने का वे विरोध करते रहे हैं। धर्माधारित मामलों में मेरी अनुशंसाओं को कुचला जाता रहा ...'

उन्होंने निष्कर्ष के रूप में कहा : 'मैं इसे उठाने में असमर्थ हूँ'।

इसलिए मल्होत्रा ने इसके उत्तर में उन्हें एक पत्र लिखा जिसके साथ एक औपचारिक पत्र का प्रारूप भी था जिसे उनकी ओर से परिषद को भेजा जाना था। पत्र में उन्होंने लिखा था : 'आपको मेरा सुझाव है कि आधिकारिक तौर पर इसे उनकी फाइल में डलवाएँ, अपने रिकार्ड के लिए एक प्रति भी रख लें'। उस प्रारूप को यहाँ उद्धृत किया जा रहा है :

> प्रिय परिषद सदस्यों,
>
> हिन्दू अमरीकी समुदाय के प्रतिनिधि के रूप में मैं अनुभव करती हूँ कि मेरे लिए आधिकारिक रूप से यह कहना महत्वपूर्ण हो गया है कि मेरे धार्मिक समुदाय की स्थिति क्या है, विशेष रूप से संयुक्त राज्य अमरीका स्थित

एन.जी.ओ. द्वारा भारत में चलायी जा रही आक्रामक धर्मान्तरण गतिविधियों के सम्बन्ध में। इस अभिलेख में निम्नलिखित नीतिगत वक्तव्य डाले जाने की आवश्यकता है :

‘संयुक्त राज्य अमरीका की सरकार अपनी विभिन्न विदेशी पहलकदमियों में ऐसे किसी भी एन.जी.ओ. को शामिल नहीं करेगी जो आक्रामक धर्मान्तरण गतिविधियों में संलग्न है, क्योंकि ऐसे कार्यक्रम सामाजिक तनाव उत्पन्न करते हैं, और अन्य विश्वासों के प्रति अपमानजनक होते हैं। किसी भी प्रकार की शिकायत आने पर सरकार मामले के गुण-दोष पर कोई भी निष्कर्ष देने के पूर्व साक्ष्य की सुनवाई करेगी’।

इससे भी अधिक, अनुशंसा संख्या 5 धर्मान्तरण का पक्ष लेते हुए एकतरफा प्रतिनिधित्व के लिए अवसर खोलती है। इसलिए, किसी भी देश विशेष के बहुसंख्यक निवासियों के धर्म को समान प्रतिनिधित्व देने के लिए इसमें संशोधन किया जाना चाहिए। उदाहरण के लिए, अगर यह एक इस्लामी, या हिन्दू, या बौद्ध बहुसंख्यक देश है तो अनुशंसा संख्या 5 के तहत संयुक्त राज्य अमरीका की भर्ती या तो उसी धर्म से होगी या उस धर्म का प्रतिनिधित्व हर समिति या अन्य संस्था में कम-से-कम यहूदी-ईसाइयों के समकक्ष होगा।

चूँकि इस परिषद का उद्देश्य अन्तर-धार्मिक सौहार्द्र है, इसके लिए किसी भी वैसे कार्यक्रम को समर्थन नहीं देना समझदारी की बात होगी, जिसका अन्त धर्मों के बीच विद्वेष उत्पन्न करने में होता हो। इसलिए मैं अपने प्रस्तावित संशोधनों को परिषद के आधिकारिक रिकार्ड में रखना चाहती हूँ।

मल्होत्रा ने हिन्दू प्रतिनिधि को लिखे ई-मेल का समापन किया : ‘मैं अनुभव करता हूँ कि यह आपकी ओर से एक साहस-भरा कार्य होगा। आपको कुछ भी नहीं खोना है। यह प्रदर्शित करेगा कि हम वैसे नहीं हैं जिन्हें हल्के ढंग से लिया जा सके और धकियाया जा सके। अन्यथा वे कहेंगे कि परिषद में हिन्दू प्रतिनिधि उनके प्रस्तावों के साथ चले। लिखित रिकार्ड में इस वक्तव्य का विरोधी स्वर मतभेद के रूप में रहना महत्वपूर्ण है। अगर वे आप पर दबाव डालते हैं, तो आप डट जायें और उन्हें बतायें कि मतभेद अमरीकी लोकतन्त्र का एक महत्वपूर्ण अंग है और राष्ट्रपति ओबामा उसके प्रतीक हैं। उन्हें बतायें कि आप अपने समर्थकों की भावनाओं का आदर करना चाहती हैं, और इसलिए ऐसा कर रही हैं। ईसाई दक्षिणपन्थी जो कह रहे हैं उनके बारे में बढ़िया नोट भी तैयार करती रहें—नाम, उन्होंने क्या कहा, दिनांक आदि। यह डायरी उपयोगी होगी’।

हिन्दू प्रतिनिधि ने उत्तर दिया : ‘राजीव, मैंने इस मामले को परिषद की पूर्ण बैठक में फिर से उठाया और यह अब रिकार्ड में है। उन्होंने कहा कि वे उन लोगों की संवेदनशीलता को बढ़ाने के लिए भाषा पर दृष्टि डालेंगे, जिन्हें कार्यबल में शामिल

किया गया है। मैंने इसे अनेक बार उठाया है। लेकिन यह प्रारूप वर्ल्ड विजन द्वारा तैयार किया गया था, जिसके पास काफी शक्ति है'। हिन्दू प्रतिनिधि ने मल्होत्रा को आगे और बताया कि किस प्रकार वर्ल्ड विजन के प्रतिनिधियों द्वारा प्रारूपों को तैयार किया गया, और कि उनके द्वारा उन्हें स्पष्ट रूप से बताया गया कि यह 'सब कुछ संख्या और बाज़ार में अपनी हिस्सेदारी को अधिकतम करने' के बारे में है, और कि उनके सुझाव स्वागत योग्य नहीं थे, लेकिन उन्हें सहन किया जा रहा था और मोटे तौर पर नजरअन्दाज किया गया।

सान्त्वना पुरस्कार के रूप में, उसके बाद एक प्रारूप में इस विवाद को स्वीकार किया गया : 'हममें से कुछ विश्वास करते हैं कि सरकार को अनिवार्यत: या सामान्य रूप से कुछ विशेष प्रकार के धार्मिक संगठनों को धन देने (सामाजिक सेवाओं के लिए धन समेत) से बचना चाहिए, जबकि हमारे बीच के अन्य विश्वास करते हैं कि, हालाँकि संविधान धार्मिक गतिविधियों के लिए सीधी सरकारी आर्थिक सहायता के उपयोग को सीमित करता है, यह पन्थ-निरपेक्ष गतिविधियों के लिए आर्थिक सहायता की अनुमति देता है, चाहे देने वाले का चरित्र कुछ भी हो'। दूसरे शब्दों में, हिन्दू प्रतिनिधि के विरोध को स्वीकार किया गया, लेकिन उनके प्रस्तावों को बड़ी चतुराई या कौशल से अमान्य कर दिया गया।

यह गाथा कुछ अन्य महत्वपूर्ण अन्तर्दृष्टि भी देती है। एन.आर.आई. (प्रवासी भारतीय) उच्च पदों के लिए अपने नाम चलवाने और उन्हें प्राप्त करने के लिए लामबन्दी करते हैं, चाहे वे उसके लिए योग्यता रखते हों या नहीं। यह उन्हें हैसियत देता है। वॉशिंगटन में ऐसी ही क्षमता में काम कर रही एक प्रमुख महिला ने मुझे दो-टूक कहा कि उनका मुख्य उद्देश्य वॉशिंगटन में एक पारिश्रमिक मिलने वाला कार्य प्राप्त करने के लिए इसे एक साधन के रूप में उपयोग करना है। हिन्दुओं के पास, अमरीका में अन्य प्रमुख धर्मविदों के विपरीत महत्वपूर्ण मुद्दों पर ठोस रुख वाले औपचारिक घोषणापत्र का अभाव है और उन विशेष कदमों के स्पष्ट उल्लेख का भी जिनका वे कार्यान्वयन चाहते हैं। बहुधा, भारतीय समाचार माध्यम उन प्रवासी भारतीयों के महत्व को बढ़ा-चढ़ाकर आकलन करते हैं जिन्हें अमरीका के सरकारी पदों पर नियुक्ति मिल जाती है, इस पूर्वकल्पित भावना के साथ कि यह हमेशा ही भारत के हितों के अनुकूल होता है। लेकिन अनेक मामलों में सत्य ठीक इसका उल्टा होता है : व्यक्ति विशेष अपनी भारतीय पहचान का उपयोग अपने पेशेवर विकास के लिए करते हैं, और वे भारतीय हितों के लिए अपनी गर्दन बाहर नहीं निकालना चाहते और न ही व्यक्तिगत राजनीतिक पूँजी ही खर्च करना चाहते हैं। उनमें से बहुतों को जाति सम्बन्धी सतही विषयों, बॉलीवुड पार्टियों और भारतीय पॉप संस्कृति से परे वैसी बातों की स्पष्ट पकड़ नहीं है कि भारतीय हितों के ऐसे विषय क्या हो सकते हैं।

16
वर्तमान भारत में ब्रितानी हस्तक्षेप

'भविष्य के साम्राज्य बुद्धि के साम्राज्य हैं'।

(हार्वर्ड यूनिवर्सिटी में बोलते हुए विंस्टन चर्चिल)[1]

जहाँ हमने मुख्य रूप मे अमरीकी ईसाई हस्तक्षेप पर ध्यान केन्द्रित किया, वहीं यूरोप के भारत के साथ अपने ही उलझे हुए सम्बन्ध हैं, जो औपनिवेशिक इतिहास और मिशनरी वृतान्तों से लदे हैं। नयी शक्तियाँ हैं जो इस अवशिष्ट कल्पना को पुनर्जीवित करती हैं ताकि इसके समाज के बेदखल वर्गों को अपने प्रभाव क्षेत्र में लेकर भारत के ईसाईकरण के लिए एक परिस्थिति निर्मित कर सकें। हम इस अध्याय का प्रारम्भ सबसे प्रमुख यूरोपीय संगठनों का सिंहवलोकन करते हुए तथा उनकी गतिविधियों की पड़ताल के साथ करते हैं। जहाँ अमरीकी समूह भारत के बारे में अपनी शिकायतें यू.एस. कमिशन ऑन इंटरनेशनल रिलिजियस फ्रीडम के समक्ष ले जाते हैं, वहीं अधिक सम्भावना रहती है कि यूरोपीय समूह भारत की आलोचना बड़े बहुराष्ट्रीय मंचों पर करें, जैसे 2001 का डर्बन नस्लवाद विरोधी सम्मेलन, 2009 का जेनेवा सम्मेलन, और यूरोपीय संसद आदि। यह अध्याय इंग्लैण्ड पर ध्यान केन्द्रित करता है, और इसके बाद के अध्याय शेष यूरोप पर।

चित्र 16.1 इस अध्याय का एक सिंहवलोकन प्रदर्शित करता है, और जिन प्रमुख खिलाड़ियों की चर्चा की जानी है उनके बारे में सारांश निम्न प्रकार है।

क्रिश्चियन सॉलिडैरिटी वर्ल्डवाइड (Christian Solidarity Worldwide) (सी.एस.डब्ल्यू.)

क्रिश्चियन सॉलिडैरिटी वर्ल्डवाइड ब्रिटेन स्थित एक अन्तर्राष्ट्रीय ईसाई आन्दोलनकारी समूह है। अति दक्षिणपन्थी तत्वों के नेतृत्व वाले इस संगठन द्वारा दलित मोर्चे वाले यूरोपीय संगठन चलाये जाते हैं, जो दलित-चेहरे वाले ऐसे ही अमरीकी ईसाई प्रचारक समूहों के साथ सहयोग करते हैं। सी.एस.डब्ल्यू. अन्तर्राष्ट्रीय मंचों पर और यूरोपीय राजनीतिज्ञों के समक्ष उग्र भारत विरोधी तर्क देने के लिए दलित विषयों का उपयोग एक बहाने के रूप में करता है।

दलित सॉलिडैरिटी नेटवर्क—यू.के.

सी.एस.डब्ल्यू. से सम्बद्ध दलित सॉलिडैरिटी नेटवर्क—यू.के. अति वाम और दक्षिणपन्थी दोनों खेमों से आने वाले उग्र राजनीतिज्ञों, शक्तिशाली लोक सेवकों, और

वित्तीय सहायता देने वाले प्रशासकों तथा भारत में निवेशों को पोसता-बढ़ाता है। यह ब्रिटेन स्थित समूहों के साथ सहयोग करता है, जैसे लण्डन इंस्टीटय़ूट ऑफ साउथ एशिया (लिसा), जो भारत के विखण्डन के लिए खुला आह्वान करता है। यह भारत में अफ्रीकी-दलित शक्तियों, जैसे दलित वॉयस को समर्थन देता है। यह ब्रिटेन में विवादास्पद अध्ययन के लिए धन देता है जो ब्रिटेन में रह रहे भारतीयों की जाति के प्रारूपों के आधार पर रूप-रेखा तैयार करते हैं।

इंटरनेशनल दलित सॉलिडैरिटी नेटवर्क

इंटरनेशनल दलित सॉलिडैरिटी नेटवर्क सम्पूर्ण यूरोपीय महाद्वीप में एन.जी.ओ. और राजनीतिज्ञों के साथ-साथ साउथ एशियन स्टडीज के शिक्षाविदों के साथ सहयोग करते हुए काम करता है। यह भारत के चर्चों से सम्बद्ध दलित आन्दोलनकारियों और शिक्षाविदों को व्याख्यान दौरों पर और यूरोपीय संसदीय संस्थाओं के समक्ष गवाहियाँ देने के लिए यूरोप बुलाता है। इसके भारतीय ईसाई प्रचारक अनगिनत संगठनों के साथ सशक्त सम्बन्ध हैं।

चर्चों से सम्बन्ध वाले भारत स्थित दलित संस्थान और व्यक्ति

पिछले कई वर्षों में ईसाई संस्थानों ने छद्म-पन्थ-निरपेक्ष संगठन बनाये हैं और उन विद्वानों को सम्पोषित किया है जो आर्य प्रजाति के सिद्धान्त के कारण भारतीय संस्कृति पर असाध्य रूप से दलित विरोधी होने का आरोप लगाने में विशेषज्ञता रखते हैं। यूरोपीय ईसाई समूह इन भारतीय दलित मोर्चों, जैसे नैशनल दलित ह्यूमन राइट्स कमिशन और नैशनल दलित वीमेन्स फोरम के साथ-साथ कुछ विद्वानों की दलित मुक्ति के एकमात्र सच्चे स्वर की अगुवाई करते हुए यूरोपीय हस्तक्षेप के लिए दलीलें देते हैं।

ब्रिटेन में भारत विरोधी धुरी

हालाँकि औपनिवेशिक काल के बाद के अध्ययनों ने भारतीय सभ्यता की जंगली छवि प्रस्तुत किये जाने की आलोचना की है, ईसाई दक्षिणपन्थी संस्थानों ने हाल के वर्षों में दुष्प्रचार के माध्यम से उन्हें पुनर्जीवित करने की अथक कोशिश की है। वे अमरीका, यूरोप और भारत में सम्बद्धों के साथ मिलकर कार्य करते हैं। इसमें उनको मिली

Fig. 16.1 यूरोप नियन्त्रित दलित सक्रियतावाद और भारत का पुनः-औपनिवेशीकरण
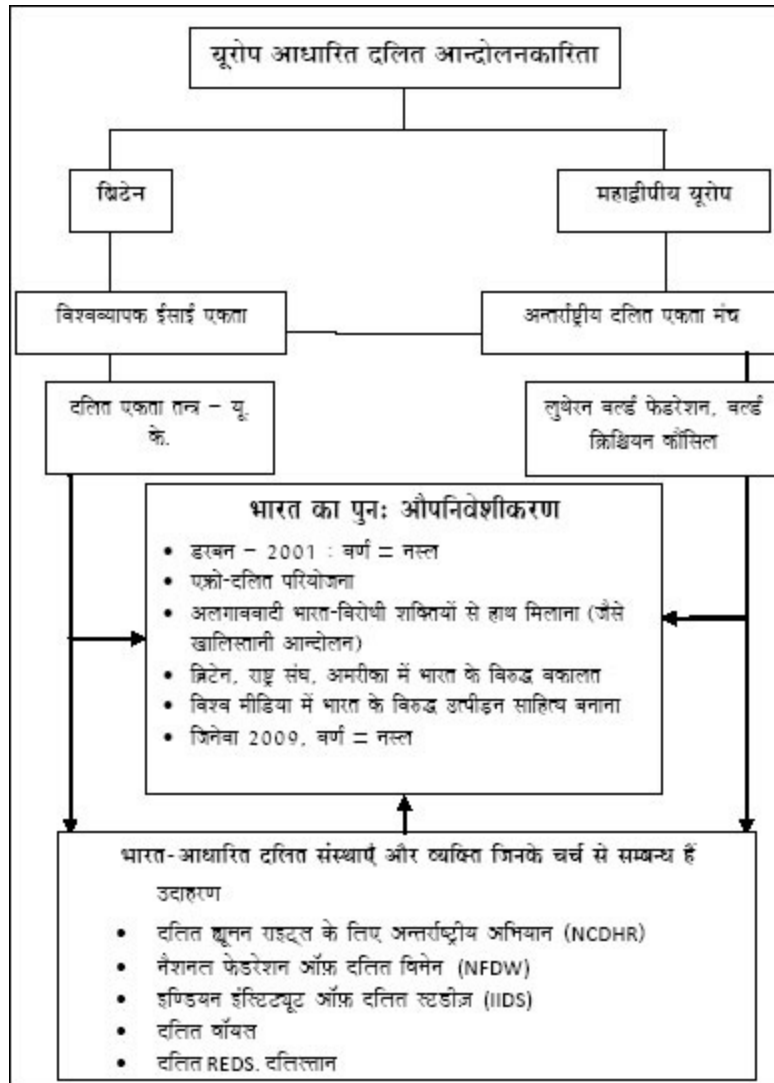
उल्लेखनीय सफलता का प्रमाण यह है कि यूरोपीय नीति निर्धारक संस्थानों में, जिनमें यूरोपीय संसद भी शामिल है, वर्ण को नस्ल के समतुल्य बताया जाता है। शैक्षिक दलित अध्ययन अन्तर्राष्ट्रीय एन.जी.ओ. से जुड़ गये हैं।

पूर्व ब्रितानी साम्राज्य की अवचेतन की स्मृतियाँ ब्रिटेन के उन तत्वों को प्रेरित करती हैं जो भारत को विखण्डित देखना चाहते हैं। सत्ता केन्द्र के आस-पास सुनायी देने वाले छिटपुट स्वर ऐसे लगते हैं मानो वे भारत को हिंसा और विखण्डन की ओर धकेल देना चाहते हैं। उदाहरण के लिए, 1991 में लिट्टे द्वारा राजीव गाँधी की नृशंस हत्या के एक सप्ताह के अन्दर ब्रितानी विदेश मन्त्रालय की एक आवाज, लन्दन के समाचार-पत्र टाइम्स, ने एक सम्पादकीय छापा जिसमें कहा गया कि भारत 'उन्हीं रक्तरंजित तनावों और नजरन्दाज किये गये समाधानों का सामना कर रहा है' जिसके फलस्वरूप सोवियत संघ के टुकड़े-टुकड़े हो गये थे। इसने भारत की तुलना पूर्व सोवियत संघ से की और अनुशंसा की कि बिना 'हत्याओं और दंगों' के 'आगे का

मार्ग' है 'राज्यों और उप-राज्यों को उनकी अपनी आर्थिक नीतियाँ बनाने दी जायें, और वे जैसा चाहें, अधिक-से-अधिक विदेशी निवेश और मुक्त बाज़ार के सिद्धान्तों को लाने की उन्हें अनुमति दे दी जाये'।[2]

'राज्यों और उप-राज्यों' की आर्थिक स्वतन्त्रता के भेष में इस अलगाववादी सन्देश को ब्रिटिश सांसद मैक्स मैडेन ने और आगे विकसित किया और इसे पूर्ण विकसित विखण्डन के रूप में अभिव्यक्त किया। कश्मीर पर डेनमार्क में हो रहे एक सम्मेलन में बोलते हुए मैडेन ने भारत के आत्म-विनाश की माँग की। सोवियत और ब्रितानी साम्राज्यों के विघटन को याद करते हुए उन्होंने प्रश्न उठाया : 'भारतीय संघ और इसकी वर्तमान सीमाएँ हमेशा के लिए क्यों बनी रहनी चाहिएँ?' उन्होंने विश्व के सबसे बड़े लोकतन्त्र के रूप में भारत की वर्तमान अवस्था पर ही प्रश्न किया : 'हम सभी भारतीयों से सुनते हैं कि उनके पास विश्व का सबसे बड़ा लोकतन्त्र है; हममें से अनेक उस पर मौलिक प्रश्न उठाते हैं'। मैडेन ने सुझाव दिया कि संयुक्त राष्ट्र को कश्मीर की स्वतन्त्रता का पर्यवेक्षण करना चाहिए, एक भूमिका जिसे कश्मीर से परे भी विस्तारित किया जा सकता है : 'और इसमें सम्पूर्ण क्षेत्र शामिल हो सकता है। ऐसा ही हो'।[3] ऐसे सुझावों को आज भी जीवित रखा जा रहा है। उदाहरण के लिए, एक वेबसाइट www.countercurrents.org ने एक दशक पुराने टाइम्स ऑफ लन्दन के एक लेख को व्यापक रूप से उद्धृत किया गया यह निष्कर्ष निकालने के लिए कि प्रारम्भ से ही भारत के लिए सबसे अच्छा मार्ग उसे सैकड़ों हौंगकौंग में बाँट देना होता।[4]

क्रिश्चियन सॉलिडैरिटी वर्ल्डवाइड

इस प्रकार पश्चिम के अनेक लोगों ने भारत पर प्रहार करने के लिए सामाजिक न्याय का झण्डा उठा रखा है। उदाहरण के लिए, क्रिश्चियन सॉलिडैरिटी वर्ल्डवाइड (सी.एस.डब्ल्यू.) का प्रारम्भ 1979 में स्विट्जरलैंड स्थित 'क्रिश्चियन सॉलिडैरिटी इण्टरनैशनल' (Christian Solidarity International) की ब्रितानी शाखा के रूप में हुआ। यह ईसाई अल्पसंख्यक राष्ट्रों में काम कर रहे ईसाई प्रचारकों के लिए गुटबाजी करने वाला एक अन्तर्राष्ट्रीय लॉबिंग संगठन है, लेकिन यह स्वयं को यह एक 'मानवाधिकार संगठन' के रूप में प्रस्तुत करता है।[5] इसकी अध्यक्ष हैं बैरोनेस कैरोलिन कॉक्स, एक दक्षिणपन्थी ब्रितानी राजनीतिज्ञ जिन्हें यू.के. इण्डिपेंडेंट पार्टी के कट्टरपन्थी नस्लवादी रुख को खुलेआम समर्थन करने के लिए टोरी पार्टी से निष्कासित कर दिया गया था।[6]

सन 1998 से, सी.एस.डब्ल्यू. के ऑल इण्डिया क्रिश्चियन काउंसिल (ए.आई.सी.सी.) के साथ रणनीतिगत सहयोग चल रहे हैं। उसके बाद, दलित फ्रीडम नेटवर्क (डी.एफ.एन.) को एक शक्तिशाली त्रिकोणीय गठजोड़ बनाने के लिए इसमें शामिल किया गया : यूरोप में सी.एस.डब्ल्यू., संयुक्त राज्य अमरीका में डी.एफ.एन.,

और भारत में ए.आइ.सी.सी. भारत में यूरोपीय और अमरीकी हस्तक्षेप को प्रोत्साहित करने के काम में कस के एकजुट हैं। भारत के विरुद्ध अपने अन्तर्राष्ट्रीय अभियानों के लिए सी.एस.डब्ल्यू. कट्टर ईसाई संगठनों, जैसे इण्टरसेसर्स नेटवर्क, कम्पास डायरेक्ट, लिबर्टी वर्ल्ड इवैंजेलिकल फेलोशिप, ऐलायन्स रिलिजस लिबर्टी कमिशन (Intercesors Network, Compas Direct, Liberty World Evangelical Felowship, Aliance Religious Liberty Comision) और 'सेवेन्थ डे ऐडवेन्टिस्ट चर्च' (Seventh Day Adventist Church) आदि, के साथ टीम बनाकर काम करने को इच्छुक हैं।[7]

सन 2001 में, सी.एस.डब्ल्यू. ने भारत पर चार संसदीय प्रश्न उठाने के लिए ब्रिटेन के सांसदों के माध्यम से काम किया, जबकि इसके समानान्तर, ए.आई.सी.सी. ने संयुक्त राष्ट्र संघ में भारत के विरुद्ध वही प्रश्न उठाये। सन 2006 में, सी.एस.डब्ल्यू. ने लेबर पार्टी से सांसद ऐण्डी रीड का, जो इसके बोर्ड के सदस्य हुआ करते थे,[8] उपयोग उन भारतीय कानूनों के विरुद्ध अभियान का नेतृत्व करने के लिए किया, जो अनुचित हथकण्डों के माध्यम से धर्मान्तरण पर रोक लगाते हैं। रीड एक ईसाई संरक्षणवादी सांसद के साथ भारत के दौरे पर गये;[9] वे अपने साथ भारत के राष्ट्रपति को सम्बोधित एक पत्र ले गये जिसमें सोलह सांसदों के हस्ताक्षर थे, जिसे उन्होंने स्वयं भारत सरकार को सौंपा।[10]

सन 2007 में, सी.एस.डब्ल्यू. ने 'भारत की छिपी हुई दासता' (इण्डियाज हिडेन स्लेवरी) नामक एक डॉक्यूमेंटरी का प्रदर्शन प्रारम्भ किया, जिसका निर्माण उसने डी.एफ.एन. के साथ मिलकर किया था।[11] सी.एस.डब्ल्यू. की वार्षिक रपट उल्लेख करती है कि 'धर्मान्तरण विरोधी कानूनों और ईसाई विरोधी हिंसा पर इसके द्वारा दी गयी जानकारियों का व्यापक प्रचार हुआ और उन्हें उद्धृत किया गया, जिसमें अमरीकी कांग्रेस की सुनवाई भी शामिल है'।[12] उसी वर्ष, स्टीफेन क्रैब नामक एक सांसद ने, जो कन्जर्वेटिव पार्टी ह्यूमन राइट्स कमिशन के अध्यक्ष भी हैं, दलित मुद्दों पर ब्रिटिश संसद में एक बहस शुरू की, और इस बात का उद्घाटन किया कि उन्हें सी.एस.डब्ल्यू. के एक नेता द्वारा तथ्यों की जानकारी लेने के लिए भारत के दौरे पर ले जाया गया था।[13] क्रैब क्रिश्चियन ऐक्शन नामक एक रूढ़िवादी गुटबाज संस्था से शोधार्थियों को काम में लाते हैं, जिसकी पुष्टि ब्रिटिश प्रेस भी करती है, और जिनके 'अमरीका में शक्तिशाली ईसाई दक्षिणपन्थियों से सम्बन्ध हैं'।[14]

सन 2008 में, सी.एस.डब्ल्यू. और डी.एफ.एन. ने एक शक्तिशाली समूह, ह्यूमन राइट्स वॉच को इस बात पर सहमत करा लिया कि वे इंग्लैण्ड के विदेश मन्त्री, अमरीका के विदेश मन्त्री, फ्रांसीसी विदेश मन्त्री, और विदेशी सम्बन्धों पर यूरोपीय आयुक्त को यह माँग करते हुए संयुक्त पत्र भेजें कि एक हिन्दू साधु की हत्या के परिणामस्वरूप उड़ीसा में बड़े पैमाने पर हुए हिन्दू-ईसाई दंगों में ईसाइयों के पक्ष में अन्तर्राष्ट्रीय वक्तव्य जारी किये जायें।[15] उन्होंने आशा के अनुरूप इकतरफा दृष्टिकोण

दिया, जिसमें हर बात के लिए हिन्दू धर्म की निन्दा की गयी और बहुत-पुराना ईसाई उत्पीड़न वाला पत्ता खेला गया।

सी.एस.डब्ल्यू. की संयुक्त राष्ट्र मानवाधिकार परिषदें जैसी संस्थाओं के साथ मिलकर गुट बनाने वाली गतिविधियों का उपयोग भारत की एकता को कम करने के लिए किया गया। यू.एन. वर्किंग ग्रुप ऑफ ह्यूमन राइट्स कमिशन की 2008 की रपट में भारत में दलितों और जाति संघर्षों पर सी.एस.डब्ल्यू. की रपट को उद्धृत किया गया है,[16] जिसमें सी.एस.डब्ल्यू. बल देकर कहता है कि वर्ण आधारित भेदभाव का उपयोग 'भारत में सभी प्रमुख मानवाधिकार उल्लंघनों के लिए एक विश्लेषणात्मक उपकरण' के रूप में किया जाना चाहिए।[17] वही रपट आगे एक ईसाई उग्रवादी संगठन, त्रिपुरा पीपल्स डेमोक्रैटिक फ्रण्ट, 'जिसने राज्य के कुछ सुदूरवर्ती क्षेत्रों में समानान्तर सरकार चला रखी है,' द्वारा लगाये गये आरोपों पर भरोसा करते हुए इस दृष्टिकोण पर फिर बल देती है।[18]

दलित सॉलिडैरिटी नेटवर्क—यू.के.

दलित सॉलिडैरिटी नेटवर्क—यू.के. (डी.एस.एन.-यू.के.) की स्थापना 1998 में वर्ण संघर्ष के विषयों को ब्रिटेन की सरकार, संसद, आर्थिक सहायता देने वाली एजेंसियों, श्रम संगठनों, और व्यावसायिक घरानों के सामने उठाने के लिए की गयी थी। उसके संस्थापक डेविड हस्लम नामक एक मेथोडिस्ट मिनिस्टर हैं। सन 2000 में, डी.एस.एन.-यू.के. का विस्तार इंटरनैशनल दलित सॉलिडैरिटी नेटवर्क (आई.डी.एस.एन.) के रूप में हुआ, जिसका मुख्यालय डेनमार्क में है।

प्रारम्भ में, डी.एस.एन.-यू.के. को मुख्यत: 'क्रिश्चियन एड' (Christian Aid) से धन मिलता था, और साथ में मेथोडिस्ट रिलीफ एण्ड डेवलपमेंट फंड तथा ऐंग्लिकन यू.एस.पी.जी. से अतिरिक्त समर्थन भी मिलता था।[19] क्रिश्चियन एड, एक ईसाई प्रचारक समूह है जो गरीबों के बीच अपने हिंसक व्यवहार के लिए कुख्यात है; उस 2001 के डर्बन सम्मेलन में वर्ण के मुद्दों पर भारत सरकार के विरुद्ध गुट बनाकर प्रचार करने के लिए डी.एस.एन.-यू.के. को प्रायोजित किया था। क्रिश्चियन एड और डी.एस.एन. का एक स्पष्ट गठबन्धन है।[20]

डी.एस.एन.-यू.के. को कई अन्य प्रमुख ईसाई प्रचारक संगठनों द्वारा धन दिया जाता है,[21] जिनमें ऐंग्लिकन यू.एस.पी.जी. भी शामिल है। यू.एस.पी.जी. वेबसाइट यह उजागर न करने के प्रति सतर्क है कि 'यू.एस.पी.जी.' के अभिप्राय क्या हैं। इसका मूल नाम 'सोसाइटी फॉर द प्रोपेगेशन ऑफ द गॉस्पल्स' (Society for the Propagation of the Gospels) था, जिसकी जड़ें अमरीका में दासों के स्वामियों के समूह की शक्ल में थीं जहाँ यह दासों से खेती करवाता था।[22] सन 1820 में इसने अपने मिशनरी भारत भेजे, जहाँ उन्होंने द्रविड़ नस्लवादी सिद्धान्तों को तैयार करने और एक अलगाववादी

आन्दोलन को प्रोत्साहित करने में इनका उपयोग करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी।
23

सन 2004 में, डी.एस.एन.-यू.के. ने भारत की वर्ण समस्या को भारत सरकार के साथ उठाने के लिए इंग्लैण्ड की संसद की अन्तर्राष्ट्रीय विकास समिति को राजी कर लिया कि वह अपने भारत दौरे के समय इस मुद्दे को उठा सके। उसी वर्ष डी.एस.एन.-यू.के. ने इस मुद्दे पर लेबर पार्टी के अधिवेशन में एक बैठक आयोजित की। इसके न्यासियों में से एक स्कॉटलैंड के सबसे बड़े श्रम संगठन के पूर्व महासचिव हैं, जिनके कैथोलिक चर्च के साथ निकट के सम्बन्ध हैं, और ऐसे सम्पर्कों से इसे भारत विरोधी अभियान को निजी क्षेत्र में फैलाने में सहायता मिली।[24]

डी.एस.एन.-यू.के. ने ब्रिटेन की संसद में भारत में वर्ण संघर्षों पर बहस शुरू करवाने में सफलतापूर्वक लॉबिंग की, और ब्रिटेन में प्रवासी भारतीयों को लक्ष्य बनाया, यह आरोप लगाते हुए कि आप्रवासी भारतीय समुदाय में व्यापक रूप से वर्ण आधारित भेदभाव है। डी.एस.एन.-यू.के. द्वारा एक शोध प्रस्ताव तैयार किया गया और सम्बन्धित समूहों की अगुवाई में एक रपट तैयार की गयी जिसका शीर्षक था—'कोई छुटकारा नहीं : इंग्लैण्ड में वर्ण भेद' (No Escape: Caste Discrimination in the U.K) जिसमें अनेक वैसे वक्तव्य हैं जो हिन्दुओं और प्रवासी भारतीयों की पिटी-पिटाई छवियों को प्रतिबिम्बित करते हैं।[25] ब्रिटिश हिन्दुओं ने उक्त रपट को चुनौती दी, और सन 2008 में ब्रिटिश हिन्दू काउंसिल द्वारा एक सर्वेक्षण कर रपट प्रकाशित की गयी जिसके परिणामों ने डी.एस.एन.-यू.के. रपट का खण्डन किया।[26]

सन 2007 में, डी.एस.एन.-यू.के. ने क्रिश्चियन सॉलिडैरिटी वर्ल्डवाइड के साथ मिलकर दलितों पर एक बैठक आयोजित की, जिसमें अमरीका स्थित दलित फ्रीडम नेटवर्क से जुड़े वक्ता शामिल हुए। डी.एफ.एन. के मोजेज पार्मर ने कहा कि केवल ईसाइयत दलितों के लिए स्वतन्त्रता सुनिश्चित कराती है और रेवरेंड डेविड हस्लम ने, जो डी.एस.एन. न्यासियों के नेटवर्क के अध्यक्ष हैं, कहा कि दलित समस्याओं का अन्तर्राष्ट्रीयकरण किया जाना चाहिए।[27]

लेबर पार्टी के सांसद, जेरेमी कॉर्बिन, ने जो डी.एस.एन.-यू.के. के अध्यक्ष भी हैं, कहा, 'हमारी वास्तविक जिम्मेदारी है कि हम इस संघर्ष को ब्रिटेन की संसद के अन्दर और बाहर जारी रखें, ताकि ब्रिटेन में लोगों की चेतना को ऊपर उठाया जा सके'।[28] कॉर्बिन ने प्रतिबन्धित लिट्टे आतंकवादी समूह का भी समर्थन किया और यूरोपीय यूनियन में लिट्टे पर प्रतिबन्ध को हटाने के लिए गुट बनाकर प्रचार किया।[29] वे एक यू.के. स्थित मानवाधिकार संगठन[30] लिबरेशन के भी अध्यक्ष हैं, जिसने भारतीय विद्रोहियों को गलत नामों से संयुक्त राष्ट्र संघ में प्रवेश कराया था।[31]

रॉब मॉरिस (Rob Morris), डी.एस.एन.-यू.के. के एक अन्य न्यासी, जो एक संसद सदस्य भी हैं, वर्ण आधारित मानवाधिकार उल्लंघनों का आरोप लगाते हुए

संयुक्त राष्ट्र संघ की सुरक्षा परिषद के स्थायी सदस्य बनने के भारत के दावे का विरोध करते हैं।[32] वे सिख कट्टरपन्थियों द्वारा भारत से अलग एक धार्मिक राष्ट्र के रूप में खालिस्तान के गठन के भी समर्थक हैं।[33] कॉर्बिन और मॉरिस दोनों विदेशी निवेशों के मामलों की निगरानी करने वाली शक्तिशाली संसदीय समिति में शामिल हैं,[34] और इसलिए दलित मुखौटे वाले ईसाई प्रचारक समूहों की ओर से भारत पर दबाव डालने के लिए ब्रिटेन की सरकार की धौंस का उपयोग करने के लिए अच्छी स्थिति में हैं।

लिसा (LISA)

जहाँ डी.एस.एन.-यू.के. जैसे संगठन स्वयं को सम्मानजनक आभा के साथ प्रस्तुत करते हैं, कुछ संगठन जिनके साथ वे यूनाइटेड किंगडम में सम्बन्धित हैं, हिंसा और नस्लवाद के खुलेआम समर्थक हैं। ऐसा ही एक सक्रिय संगठन है 'लन्दन इंस्टिटयूट फॉर साउथ एशिया' (London Institute for South Asia, लिसा), एक उन्मत्त भारत विरोधी संस्थान जिसकी वेबसाइट यह दावा करते हुए भारत के अन्दर तीन क्षेत्रों में हिंसात्मक अलगाववादी आन्दोलनों का समर्थन करती है कि 'दक्षिण एशिया के सम्पूर्ण क्षेत्र में निरन्तर अस्थिरता और आर्थिक दुर्दशा' के लिए भारत जिम्मेदार है। इसके आरोप गम्भीर हैं, जैसा कि नीचे दिया जा रहा है :

> भारतीय सशस्त्र बल जम्मू और कश्मीर, पंजाब (सिख) और असम राज्यों में सैकड़ों हज़ार लोगों की हत्या करते हुए कम-से-कम सत्रह स्वतन्त्रता/सुधार आन्दोलनों को नृशंसतापूर्वक दबा रहे हैं। फिर भी यह (भारत)—भगवान बुद्ध का जन्मस्थान और गाँधीवादी अहिंसा के अनुयायी शान्तिवादी समाज के रूप में अपनी छवि बनाये रखने में सफल रहा है।[35]

अपनी वेबसाइट के मुख पृष्ठ पर खालिस्तानी आतंकवादी भिण्डराँवाले का चित्र दिखाते हुए, लिसा भारत में बहुसंख्यकों को दबाने के लिए एक हिन्दू-कट्टर यहूदीपरस्त (Zionist) षडयन्त्र का आरोप लगाता है :

> आज भी जब भारत में गैर-हिन्दू बहुसंख्यक क्षेत्रीय और वर्ण आधारित राजनीतिक पार्टियों के नेतृत्व में आत्मविश्वास हासिल कर रहे हैं, हिन्दू अल्पसंख्यक भारत पर अपने इस्लाम विरोधी और कट्टर यहूदीपरस्त एजेंडे को थोपने में सफल हैं।[36]

इस संगठन के दोनों निदेशक पाकिस्तानी हैं, जिनमें से एक हैं उस्मान खालिद, पाकिस्तानी सेना के एक अवकाश प्राप्त ब्रिगेडियर। यह वेबसाइट बग्लादेश के लिए 1971 के पूर्व के नाम—पूर्वी पाकिस्तान—का उल्लेख भी करती है। उस्मान खालिद के लेखन केरल के एक ईसाई पत्रकार बिनू मैथ्यूज द्वारा संचालित समाचार पोर्टल CounterCurents.org में भी उपलब्ध हैं, जो स्वयं को एक 'वैकल्पिक समाचार साइट' के रूप में प्रस्तुत करता है और 'उन सबके लिए' सहानुभूति रखता है 'जो

आर्थिक, राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, लिंग, और पर्यावरणीय न्याय के लिए संघर्षरत हैं'।[37]

लिसा इस दुष्प्रचार अभियान की अगुआई करता है कि 'भारत में लोगों को बन्दी बनाकर रखा जा रहा है', और इसके लिए इसने अपना अन्तर्राष्ट्रीय पुरस्कार वी.टी. राजशेखर, जो दलित वॉयस के सम्पादक हैं, को उनकी पुस्तक 'वर्ण-राष्ट्र के भीतर राष्ट्र' (*Caste—A Nation within the Nation*) के लिए दिया।[38] पुरस्कार डेविड हस्लम के हाथों दिया गया, जो डी.एस.एन.-यू.के. के संस्थापक न्यासी हैं। राजशेखर एक कट्टर नस्लवादी और हिन्दू विरोधी दृष्टिकोण अपनाते हैं, जो यहूदी-विरोधी साहित्य से अपने विचार और उद्धरण लेते हैं, जो हिटलर की प्रशंसा करते हैं, यहूदी महाविनाश को न्यूनतम करार देते या उससे इनकार करते हैं, और दावा करते हैं कि ब्राह्मण 'भारत के यहूदी हैं'।[39]

सन 2009 में, लिसा ने अपना अन्तर्राष्ट्रीय पुरस्कार 'स्टॉकहोम ऐन्थ्रोपोलॉजिकल रिसर्च ऑन इण्डिया' (Stockholm Anthropological Research on India, SARI)[40] की संयोजक, ईवा-मारिया हार्टमैन (Eva-Maria Hardtman) को दिया, जिनके हिन्दू धर्म के साथ तनावपूर्ण ढंग से दलित पहचान को प्रोत्साहित करने वाले काम का विश्लेषण अगले अध्याय में किया गया है। पुरस्कार समारोह में 'दक्षिण एशिया में आत्मनिर्णय के अधिकार का उपयोग' विषय पर एक गोष्ठी भी शामिल थी। वक्ताओं में इंगलैंड स्थित काउंसिल ऑफ खालिस्तान के प्रतिनिधि भी शामिल थे, जिसका एक अलग सिख राष्ट्र के लिए हिंसात्मक आतंकवादी आन्दोलन का भारत में जोर समाप्त हो गया है।[41]

इस प्रकार लिसा यूरोपीय दलित शिक्षाविदों, भारतीय दलित आन्दोलनकारियों, भारत विरोधी अलगाववादियों और पाकिस्तान में अखिल-इस्लामी बलों को एक साथ लाने के लिए इंग्लैण्ड में एक महत्वपूर्ण केन्द्र के रूप में काम कर रहा है।

ऑक्सफार्ड धार्मिक और सार्वजनिक जीवन केन्द्र (ओ.सी.आर.पी.एल.)

'ऑक्सफोर्ड धार्मिक और सार्वजनिक जीवन केन्द्र' (The Oxford Centre for Religious and Public Life) का घोषित उद्देश्य है 'सार्वजनिक जीवन में धर्म की भूमिका की एक बेहतर समझ' को प्रोत्साहित करना। लेकिन व्यवहार में यह संयुक्त राज्य अमरीका के ईसाई प्रचारक समूहों को समर्थन देता है और इसकी वेबसाइट स्वीकार करती है कि इसे द इंटरनेशनल फेलोशिप ऑफ इवैंजेलिकल मिशन थिओलॉजियन्स (The International Feloshio of Evangelical Mision Theologians, INFEMIT) द्वारा किये गये पच्चीस वर्षों के शोध और शिक्षा के आधार पर निर्मित किया गया था।

इन्फेमिट विश्वव्यापी ईसाई विस्तारवाद को आगे बढ़ाने में सक्रिय है, उदाहरण के लिए, दक्षिण एशिया में धार्मिक उग्रवाद पर एक गोष्ठी के सह-प्रायोजक के रूप में, जिसे एथिक्स ऐण्ड पब्लिक पॉलिसी सेंटर में (जिसका वर्णन 13वें अध्याय में किया जा चुका है) आयोजित किया गया था। हिन्दू उग्रवाद पर केन्द्रित इस विचार विमर्श का उद्देश्य ‘संयुक्त राज्य अमरीका की नीतिगत सम्भावित प्रतिक्रिया का अन्दाजा लगाना’ था।[42] सन 2003 में, इन्फेमिट ने शिकागो स्थित क्रावेल ट्रस्ट से धनराशि प्राप्त की थी जो सृष्टिवादी कट्टरपन्थी संगठनों के साथ साठ-गाँठ करता है।

ओ.सी.आर.पी.एल. के सभी निदेशक ईसाई हैं और ईसाई प्रचारक संगठनों से आते हैं।[43] इनमें एकमात्र अमरीकी दक्षिणपन्थी हडसन इंस्टीटयूट के हैं।[44] ओ.सी.आर.पी.एल. आन्दोलनकारियों, पत्रकारों और ईसाई प्रचारकों के एक चुनिन्दा समूह से इकट्ठा करके भारत पर उत्पीड़न साहित्य का प्रकाशन करता है। सन 2007 में, ‘धार्मिक विवादों की सूचना’ (Reporting Religious Controversies) विषय पर एक सम्मेलन का आयोजन किया गया था जिसे कैथोलिक बिशप्स कॉन्फेरेंस ऑफ इण्डिया के कमिशन फॉर सोशल कम्युनिकेशन्स ने प्रायोजित किया था।[45]

17
यूरोपीय महाद्वीप का हस्तक्षेप

पश्चिम में हालाँकि मार्क्सवादी और ईसाई कट्टरपन्थी एक-दूसरे की कड़ी आलोचना करते हैं, लेकिन भारतीय सभ्यता के विरुद्ध वे साझा मोर्चा बना लेते हैं। इस गठजोड़ द्वारा यूरोपीय संसद, विभिन्न अन्तर्राष्ट्रीय संगठनों और यूरोपीय संस्थानों में होने वाले शैक्षिक सम्मेलनों में भारत की आलोचना की जाती रही है। यूरोपीय महाद्वीप पर नजर डालने पर, विशेषकर स्कैंडिनेविया पर, अनगिनत मार्क्सवादी मिल जाते हैं जो वर्ण को नस्ल के साथ मिलाने के लिए प्रतिबद्ध हैं। वर्ण • नस्ल समीकरण अस्मिता की राजनीति का अत्यधिक ऋणी है (अध्याय 5 और 6 में वर्णित किया गया है), जो औपनिवेशवादी मिशनरियों द्वारा प्रारम्भ किया गया था, जिन्होंने द्रविड़ों की पहचान एक नस्ल के रूप में की थी।

वर्ण और नस्ल को मिलाने की ताजा गति 2001 में डर्बन, दक्षिण अफ्रीका में आयोजित नस्लवाद, नस्लवादी भेदभाव, विदेशियों से भय और सम्बन्धित असहिष्णुता पर विश्व सम्मेलन' (World Conference against Racism, Racial Discrimination, Xenophobia and Related Intolerance) से आयी जिसका आयोजन संयुक्त राष्ट्र संघ मानवाधिकार आयोग के तत्वावधान में किया गया था। भारत सरकार द्वारा की गयी इन टिप्पणियों के बावजूद भारतीय वर्ण-व्यवस्था एजेंडे में थी :

> विश्व सम्मेलन की तैयारी के दौरान भारत में वर्ण आधारित भेदभाव के बारे में दुष्प्रचार किया जाता रहा है, जो अत्यन्त बढ़ा-चढ़ा कर प्रस्तुत किया गया और गुमराह करने वाला है, और जो बहुधा किस्सों के साक्ष्यों पर आधारित है।... हमारा यह दृढ़ दृष्टिकोण है कि वर्ण का मुद्दा इस सम्मेलन में विचार-विमर्श के लिए कोई समुचित विषय नहीं है। हम यहाँ यह सुनिश्चित करने के लिए हैं कि किसी भी नागरिक या नागरिकों के समूह के विरुद्ध राज्य द्वारा प्रायोजित, संस्थागत भेदभाव न हो। हम यहाँ यह सुनिश्चित करने के लिए हैं कि राज्य प्रतिगामी सामाजिक प्रवृत्ति को न तो क्षमा करे और न ही प्रोत्साहित करे। हम यहाँ इसलिए नहीं हैं कि सदस्य राज्यों के अन्दर सामाजिक इंजीनियिंरग में संलग्न हों। यह न तो वैध है, न ही सम्भव होने योग्य, और न ही इस विश्व सम्मेलन के लिए व्यावहारिक, या फिर सच पूछें तो, न ही संयुक्त राष्ट्र के लिए कानून बनाने योग्य, हमारे समाजों में व्यक्तिगत व्यवहारों की पुलिस-सरीखी निगरानी करने की तो बात ही छोड़ दीजिए।[1]

डर्बन सम्मेलन ने अन्तत: वर्ण को नस्ल का समतुल्य नहीं बताया, लेकिन इसने दरवाजा खोल दिया, और तब से ही आन्दोलनकारियों में एजेंडे पर काम करने के

लिए जोश आ गया है। यह अध्याय वैसे कुछ समूहों की खोज करेगा जिनके इस विचार से किये जा रहे काम भारत को विखण्डन की ओर ले जा रहे हैं। चित्र 17.1 इस अध्याय के लिए एक रूपरेखा है।
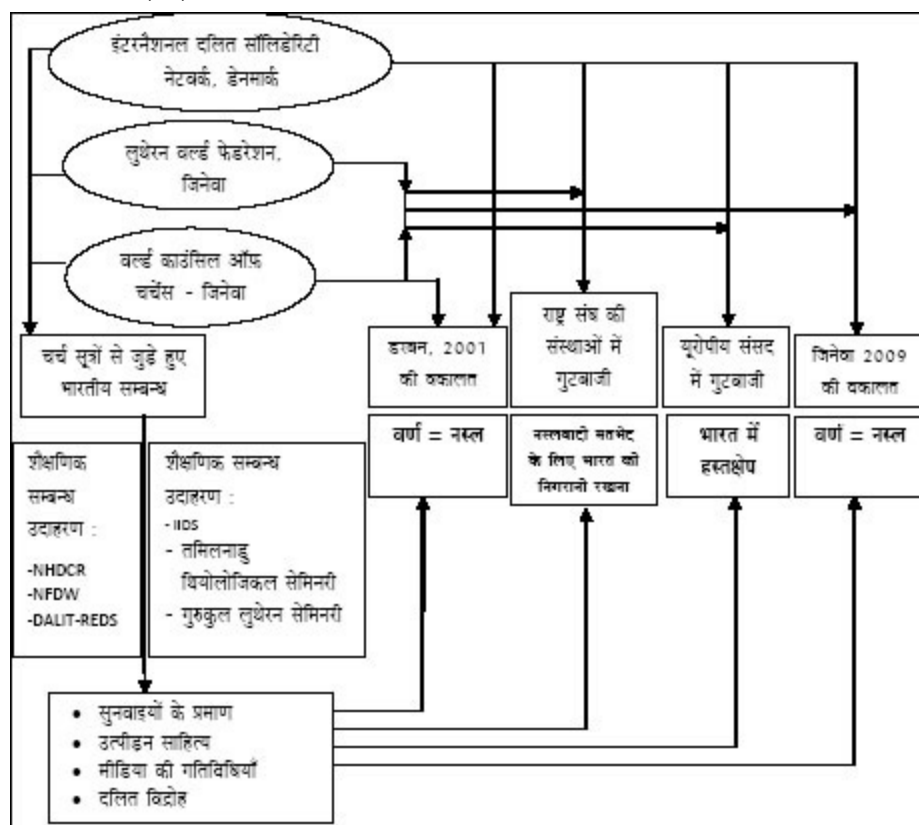
Fig. 17.1 भारत में यूरोपिय महाद्वीपीय से नियन्त्रित आन्दोलनकारी-शिक्षाविद तन्त्र

इंटरनेशनल दलित सॉलिडैरिटी नेटवर्क (IDSN)

सन 1998 में इंग्लैण्ड में दलित सॉलिडैरिटी नेटवर्क की स्थापना के बाद, सन 2000 में इंटरनैशनल दलित सॉलिडैरिटी नेटवर्क का गठन किया गया जिसका मुख्यालय कोपेनहेगन में रखा गया। इसका घोषित लक्ष्य है 'अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर दलित अधिकारों के लिए हस्तक्षेप को सुगम बनाना, जिनमें यूरोपीय संघ के आयोग और संसद, संयुक्त राष्ट्र मानवाधिकार तन्त्रों, अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन (आई.एल.ओ.), और अन्य मंचों के सामने इस विषय को रखना भी शामिल है'।[2] इसके लिए वित्त की व्यवस्था लगभग पूरी तरह पश्चिम के ईसाई संगठनों द्वारा की जाती है।[3]

आई.डी.एस.एन. के पदों पर आसीन लोग भारत स्थित नैशनल दलित टास्क फोर्स को, जो ऐसा संगठन है जिसे नैशनल काउंसिल ऑफ चर्चेज इन इण्डिया द्वारा वर्ल्ड काउंसिल ऑफ चर्चेज, लुथेरन वर्ल्ड फेडरेशन, और ग्लोबल मिशन ऑफ द

इवेंजेलिकल लुथेरन चर्च इन अमरीका जैसे विदेशी समूहों के साथ मिलकर बनाया गया है, परामर्श भी देते हैं। इसका घोषित लक्ष्य है 'दलित मुक्ति पर भारत के बाहर सम्मेलन आयोजित करना और दलित टास्क फोर्स को सक्रिय बनाना'।[4] ये संगठन, आई.डी.एस.एन. और डी.एस.एन.-यू.के. के साथ, इसे रणनीतिगत दिशा देते हैं।[5]

आई.डी.एस.एन. की शाखाएँ सम्पूर्ण यूरोप में हैं, जिनके अधिकांश पदासीन लोगों के प्रबल ईसाई प्रचारक चर्च सम्पर्क हैं।[6] दलित मामलों में निर्देशन के लिए इनके काम करने का तरीका है सर्वोच्च पदों के लिए चर्च अधिकारियों का चयन करना। उदाहरण के लिए, इसकी फ्रांस शाखा के प्रमुख भारत में एक चर्च समूह के लिए परियोजना पदाधिकारी भी हैं।[7] जर्मनी में, आई.डी.एस.एन. के प्रमुख लुथेरन चर्च के कार्यक्रम अधिकारी हैं जो भारत में विभिन्न गतिविधियों को निर्देशित करते हैं।[8] इसके बेल्जियम सम्पर्क सूत्र एक आर्थिक सहायता प्रदाता कैथोलिक संगठन से जुड़े हैं।[9] स्वीडन और नीदरलैंड में आई.डी.एस.एन. आन्दोलन का निर्देशन उन लोगों द्वारा किया जाता है जो अन्तर्राष्ट्रीय मंचों पर भारत के विरुद्ध अपनी कटु आलोचनाओं के लिए जाने जाते हैं।[10] आई.डी.एस.एन. के सह-संयोजकों में से एक, पॉल दिवाकर, की एक प्रबल चर्च पृष्ठभूमि है[11] और वे दलित चेहरे वाले भारत स्थित एक अन्य ईसाई संगठन, नैशनल कैम्पेन फॉर दलित ह्यूमन राइट्स के भी संयोजक हैं।

संयुक्त राष्ट्र संघ में भारत के विरुद्ध वकालत

आई.डी.एस.एन. और इसके भारतीय सहयोगियों द्वारा लगातार अभियान चलाये जाने के परिणामस्वरूप सन 2005 में मानवाधिकार पर संयुक्त राष्ट्र आयोग ने एक प्रस्ताव अपनाया कि वर्ण आधारित भेदभाव के अध्ययन के लिए दो विशेष दूत नियुक्त किये जायें।[12] इस लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए, 'लुथेरन वर्ल्ड फेडेरेशन' (Lutheran World Federation) ने संयुक्त राष्ट्र संघ के अधिकांश सदस्य राष्ट्रों को लिखित आवेदन दिया था, जबकि इसके समानान्तर आई.डी.एस.एन. ने जेनेवा स्थित सरकारी मिशनों में गुट बनाकर दबाव डाला था।[13] दोनों नियुक्त दूत रूढ़िवादी ईसाई थे, एक टोकियो स्थित इंटरनेशनल क्रिश्चियन यूनिवर्सिटी से स्नातक,[14] और दूसरी एक दक्षिण कोरियाई समाजशास्त्री तथा चर्च संगठनों के लिए काम करने वाली सक्रिय कार्यकर्ता।[15] आई.डी.एस.एन. ने पूरी परियोजना के दौरान इन दोनों से साथ मिलकर काम किया, और काम करने का प्रारूप दिया जिसने संयुक्त राष्ट्र संघ की रपट के अधिकांश भाग को एक निश्चित स्वरूप प्रदान किया।[16] आई.डी.एस.एन. ने उनको चुनिन्दा एन.जी.ओ. द्वारा जानकारियाँ उपलब्ध करवाने का काम सुगम बनाया, जिन्हें और किसी ने भी कोई विरोधी जानकारी नहीं दी थी। इसने अन्तर्राष्ट्रीय संगठनों को, जिनके साथ लुथेरन वर्ल्ड फेडरेशन भी था, नस्लवाद के विरुद्ध गोष्ठी आयोजित करने के लिए उत्प्रेरित किया, और इसके उच्चाधिकारियों ने बड़े जोरदार ढंग से अपने ईसाई समर्थक

रुख प्रस्तुत किये, जिनमें राष्ट्र संघ के हाइ कमिश्नर फॉर ह्यूमन राइट्स को एक रपट सौंपना भी शामिल था।[17] संयुक्त राष्ट्र संघ के दूत की चार दिवसीय भारत यात्रा के लिए तो आई.डी.एस.एन. द्वारा धन भी दिया गया था।[18]

आई.डी.एस.एन. विश्वास रखता है कि वर्ण को नस्ल के समतुल्य बनाने से भारत के आन्तरिक मामलों में अन्तर्राष्ट्रीय हस्तक्षेप के लिए दरवाजे खुल जायेंगे, जिससे ईसाई धर्मान्तरण में सहायता मिलेगी, और यह झूठा दावा करता है कि भारतीय ईसाइयत वर्णगत पूर्वाग्रहों से पीड़ित नहीं है। जब भारत सरकार ने नस्ली भेदभाव के उन्मूलन पर संयुक्त राष्ट की समिति को अपनी रपट दी, तो आई.डी.एस.एन. ने बड़े गर्व के साथ अपनी रपट में कहा कि वह किस प्रकार भारत सरकार को नीचा दिखाने के लिए काम कर रहा था :

> आई.डी.एस.एन. सदस्यों द्वारा छाया रपटें तैयार की गयीं और समिति को सौंपी गयीं और सम्बद्ध संगठनों : नेशनल कैम्पेन ऑन दलित ह्यूमन राइट्स, इण्डिया; सेंटर फॉर ह्यूमन राइट्स एण्ड ग्लोबल जस्टिस/ह्यूमन राइट्स वॉच; दलित नेटवर्क ऑफ द नीदरलैंड्स इन एसोसिएशन विद आई.डी.एस.एन.; और द एशियन ह्यूमन राइट्स कमिशन, सभी ने यथेष्ट रपटें अपनी अनुशांसाओं की पूरी सूची के साथ समर्पित कीं।[19]

सन 2007 में, निरन्तर चलाये जा रहे भारत विरोधी अभियान के दबाव में संयुक्त राष्ट्र संघ ने मानवाधिकार उल्लंघनों की समीक्षा के लिए भारत को पहले देश के रूप में चुना। आई.डी.एस.एन. ने नैशनल कैम्पेन ऑन दलित ह्यूमन राइट्स, लुथेरन वर्ल्ड फेडरेशन, और 'भेदभाव और नस्लवाद के सभी रूपों के विरुद्ध अन्तर्राष्ट्रीय आन्दोलन' (International Movement Against Al Forms of Discrimination and Racism) के साथ मिलकर भारत पर अपनी रपट पेश की, और इस रपट को 'अतिरिक्त विश्वसनीय और भरोसेमन्द सूचनाएँ' बताया जो 'अन्य प्रासंगिक साझेदारों' से प्राप्त हुए थे।[20]

यूरोपीय यूनियन में भारत के विरुद्ध वकालत

सन 2005 में, आई.डी.एस.एन. ने यूरोपियन कमिशन के समक्ष 'नैशनल कैम्पेन ऑन दलित ह्यूमन राइट्स' (National Campaign on Dalit Human Rights) के उच्चाधिकारियों की गवाहियों की व्यवस्था की। लक्ष्य था 'दलितों के विरुद्ध उल्लंघनों के विषय को भारत में सरकारी अधिकारियों द्वारा उठाने में निष्क्रियता और अनिच्छा, और सुनामी के बाद राहत और पुनर्वास प्रयासों में दलितों के साथ भेदभाव को रोकने में उनकी विफलता' को स्थापित करना।[21] उन्होंने यूरोपियन कमिशन को भारत के आर्थिक विकास कार्यक्रमों में हस्तक्षेप करने के लिए आवेदन दिया। आई.डी.एस.एन. यूरोपीय यूनियन के देशों द्वारा भारत भेजे जाने वाले विकास कोष भेजने के तरीके को

प्रभावित करने का एक शक्तिशाली केन्द्र बन गया है, और उच्चस्तरीय बैठकें आयोजित करता है जिनमें इसके चर्च अधिकारी दलित प्रतिनिधियों को दिल्ली में यूरोपियन कमिशन के सामने लाते हैं।[22]

सन 2006 में, डेनमार्क के विदेशी मामलों के मन्त्रालय ने आई.डी.एस.एन. के मुख्य मिशन के लिए एक बड़ा अनुदान दिया। आई.डी.एस.एन. ने दलित मानवाधिकार पर यूरोपीय यूनियन की नीति पर प्रश्न उठाने के लिए एक डच सरकारी अधिकारी के साथ मिलकर काम किया, जो 'ऑक्सफैम इण्टरनैशनल' (Oxfam International) के एक सदस्य भी हैं।[23] उसी वर्ष यूरोपियन यूनियन के कमिश्नर ने आई.डी.एस.एन. को पत्र लिखा कि यूरोपीय यूनियन में भेदभाव पर राष्ट्र संघ के विशेष दूत (जिनके भारत दौरे के लिए आई.डी.एस.एन. द्वारा धन उपलब्ध कराया गया था) के आने का स्वागत है। यूरोपीय यूनियन ने संयुक्त राष्ट्र के अध्ययन के लिए राजनीतिक और वित्तीय समर्थन का वचन दिया, और अपने देश में व्याप्त नस्लवादी प्रथाओं को स्वीकार न करने के लिए भारत सरकार की आलोचना की।[24] यूरोपीय यूनियन के एक बड़े अधिकारी जिन्होंने इन सब के लिए एक गठजोड़ के रूप में काम किया, ओ.वी.पी., एक संरक्षणवादी और दक्षिणपन्थी पार्टी ऑस्ट्रियन पीपल्स पार्टी से सम्बद्ध हैं। दिलचस्प बात यह है कि यह पार्टी एक कैथोलिक और समाजवाद विरोधी शासन की इच्छा रखने के लिए कुख्यात है, जो अपने देश में सकारात्मक कदम उठाये जाने का विरोध करता है।[25]

'भारत के विरुद्ध प्रतिबन्ध नहीं, मगर कम-से-कम ... '

सन 2006 में, यूरोपीय संसद ने विकास सम्बन्धी अपनी समिति की एक सुनवाई की, जिसमें दलित विषय पर चर्चा की गयी। भारत सरकार ने यह कहते हुए इसमें अपने प्रतिनिधि नहीं भेजे कि 'दलितों की समस्या बिलकुल आन्तरिक है, एक निजी मामला'। जो भी हो, दो भारतीय दलित एन.जी.ओ. ने उसमें भाग लिया। पॉल दिवाकर ने, आई.डी.एस.एन. के भारत स्थित सम्बद्ध संगठन का प्रतिनिधित्व करते हुए, यूरोपीय संसद के सामने गवाही दी। उनके साथ एक अन्य भारत स्थित आन्दोलनकारी थीं नैशनल फेडरेशन ऑफ दलित विमेन की रूथ मनोरमा, जिन्हें भी विदेशी गठजोड़ों द्वारा सम्पोषित किया गया है।[26] उनकी यूरोपीय प्रचार यात्रा आई.डी.एस.एन. द्वारा प्रायोजित की गयी थी।[27] पॉल दिवाकर भारत के विरुद्ध सीधे प्रतिबन्ध लगाने का अनुरोध करते-करते रुक गये, लेकिन उन्होंने यूरोपीय लोगों से 'भारत के साथ की जाने वाली सभी राजनीतिक बातचीत में' दलित कार्ड खेलने का आह्वान कर दिया।[28]

दिवाकर और मनोरमा द्वारा दी गयी गवाहियों और परिणामस्वरूप यूरोपीय संसदीय समिति में हुई विचार-गोष्ठी पर एक एन.जी.ओ. द्वारा इस प्रकार रपट प्रस्तुत

की गयी :

> समिति की अध्यक्ष, समाजवादी समूह की लुईसा मोर्गैन्टिनी (Louisa Morgantini) ने दिवाकर और मनोरमा की गवाहियों पर प्रतिक्रिया में कहा कि भारत में वर्णगत भेदभाव एक अच्छी तरह छिपाकर रखा गया रहस्य है। समिति के उपाध्यक्ष, मैक्स वैन डेन बर्ग ने, जो समाजवादी समूह से ही हैं, कहा कि अब तक इस गम्भीर विषय पर यूरोपीय यूनियन खुले-आम कुछ नहीं कर पाया है। उन्होंने महसूस किया कि इस विषय से बिना और अधिक सार्वजनिक ज्ञान और दबाव के नहीं निपटा जा सकता। यूरोपियन पीपल्स पार्टी के जुर्गेन श्रोडर ने प्रश्न उठाया कि भारत को एक लोकतन्त्र कैसे कहा जा सकता है, जब इस पैमाने पर वर्णगत भेदभाव निरन्तर बना हुआ है।[29]

उसी वर्ष, विकास पर यूरोपीय यूनियन की समिति ने भारत सरकार से यह माँग करते हुए एक प्रस्ताव पेश किया कि वह 'वर्ण नस्ल के बराबर है' को स्वीकार कर ले तथा नस्लवाद को समाप्त करने के लिए भारत को अन्तर्राष्ट्रीय पर्यवेक्षण के नियन्त्रण में लाये।[30] आई.डी.एस.एन. ने उस प्रस्ताव के प्रारूप को एक आकार दिया था।[31]

इसके बाद 2007 में यूरोपीय संसद का प्रस्ताव आया जिसमें वर्णगत पूर्वाग्रह के विरुद्ध भारत के कार्यक्रमों की निन्दा 'पूरी तरह अपर्याप्त' कहकर की गयी। प्रस्ताव ने भारत सरकार से अपील की कि वह नस्ली भेदभाव के उन्मूलन के लिए गठित संयुक्त राष्ट्र संघ के आयोग के साथ मिलकर काम करे।[32] इसका मूलत: अर्थ हुआ भारत सरकार के इस दृष्टिकोण को मानने से इनकार करना कि वर्ण नस्ल के बराबर नहीं है। जिस तरह से यूरोपीय संसद में इस प्रस्ताव को आगे बढ़ाया गया उसके अनेक प्रश्न उठे। नीना गिल के अनुसार, जो लेबर पार्टी की ओर से यूरोपीय संसद में सदस्य हैं, रपट 'अयथार्थ से भरी थी और स्पष्ट रूप से मानवाधिकार के विषय को क्षति पहुँचाती थी। तथ्यों की छानबीन के भारी अभाव के कारण रपट कुछ इस तरह की बन गयी थी कि इसकी मूल्यवत्ता पर गम्भीर प्रश्न खड़े हो गये हैं'।[33] इस बात पर ध्यान देते हुए कि किस प्रकार लुक-छिप कर इसे जल्दबाजी में लाया गया जिस पर यूरोपीय संसद के 785 सदस्यों में से 30 से भी कम ने मतदान किया, गिल ने स्पष्ट किया :

> एक अत्यधिक महत्व के विषय पर यह एक अति संवेदनशील रपट है और जिस ढंग से संसद में बिना सार्क (SAARC) प्रतिनिधिमण्डल, मानवाधिकार पर उप-समिति, और विदेशी मामलों की समिति से बिना सम्पर्क किये इसे जल्दबाजी में लाया गया, वह आपत्तिजनक है।[34]

ब्रसेल्स स्थित भारतीय दूतावास ने भी यह कहते हुए इस रपट की आलोचना की कि यह एक नकारात्मक मानसिकता को प्रदर्शित करती है जो आँकड़ों को चुनिन्दा रूप से उपयोग में लाने पर आधारित है।[35] लेकिन आई.डी.एस.एन. का उद्देश्य कुछ ऐसा प्राप्त करना था जिसकी आधिकारिक विश्वसनीयता हो जिसे विश्व भर में उनके

प्रभावशाली मीडिया के विशाल नेटवर्क द्वारा प्रसारित किया जा सके और जो ईसाई सक्रियतावाद को ईंधन प्रदान करे।

सन 2008 में, आई.डी.एस.एन. की डेनमार्क शाखा ने डेनमार्क की संसद के समक्ष चुनिन्दा भारतीय आन्दोलनकारियों, शिक्षाविदों और संयुक्त राष्ट्र संघ के दूत के लिए एक सुनवाई का आयोजन किया। आन्दोलनकारियों में से एक हवाई जहाज से उड़कर आये तमिलनाडु के एक एन.जी.ओ. के निदेशक थे जिन पर, 2004 में राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग को पेश एक रपट के अनुसार, तमिलनाडु की पुलिस ने 'जबरन धर्मान्तरण कराने की गतिविधियों में लगे रहने' का अभियोग लगाया था।[36] जब डेनमार्क की संसद में ईसाइयत में धर्मान्तरण के महत्व पर प्रश्न उठाया गया, उन्होंने उत्तर दिया कि ईसाइयत में धर्मान्तरण करने के बाद दलितों को शिक्षा तक बेहतर पहुँच मिली, और उन्होंने आरक्षण के लाभ की क्षति की भी शिकायत की।[37]

लुथेरन वर्ल्ड फेडरेशन और वर्ल्ड काउंसिल ऑफ चर्चेज द्वारा वामपन्थियों और दक्षिणपन्थियों को मिलाना[38]

आई.डी.एस.एन. शक्तिशाली अन्तर्राष्ट्रीय चर्च संस्थाओं के साथ भी नेटवर्क बनाता है, जिनमें लुथेरन वर्ल्ड फेडरेशन (एल.डब्ल्यू.एफ.) और वर्ल्ड काउंसिल ऑफ चर्चेज (डब्ल्यू.सी.सी.) विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। भारत में यूरोपीय हस्तक्षेप के लिए आई.डी.एस.एन. की पहल और उसके तर्कों की अनुपूर्ति और उनका समर्थन बहुधा एल.डब्ल्यू.एफ. और डब्ल्यू.सी.सी. द्वारा संस्थागत रूप से किया जाता है, जैसे एक फोटो प्रदर्शनी जिसमें भारत में दलितों के विरुद्ध कथित भेदभाव को दर्शाया जाता है।[39] इस घुमन्तू फोटो-प्रदर्शनी को यूरोप में व्यापक रूप से दिखाया गया, और यूरोपीय संसद में अछूत प्रथा पर सुनवाई के दौरान भी।[40]

एल.डब्ल्यू.एफ. लुथेरन परम्परा में ईसाई चर्चों का एक वैश्विक धार्मिक समूह है, जिसकी स्थापना 1947 में की गयी थी। इसका घोषित उद्देश्य है 'विश्व भर में ईसाई एकता के लिए कृतसंकल्प रहना'।[41] बीसवीं शताब्दी के पूर्वाद्र्ध तक लुथेरन चर्च अधिकांशत: जर्मनी, स्कैंडिनेविया, बॉल्टिक देशों, और संयुक्त राज्य अमरीका में केन्द्रित थे। औपनिवेशवाद के ध्वस्त हो जाने के बाद लुथेरन आन्दोलन के लिए गुरुत्वाकर्षण केन्द्र विकासशील देशों में स्थानान्तरित हो गया, जिसके अफ्रीका, लैटिन अमरीका और एशिया में बड़ी संख्या में चर्च हो गये थे।[42] एल.डब्ल्यू.एफ. विकासशील देशों में अपने राजनीतिक नियन्त्रण के माध्यम से शक्तिशाली है। हाल के वर्षों में यह एक प्रभावशाली अन्तर्राष्ट्रीय संगठन बनकर उभरा है जो वर्ण को नस्ल के बराबर बनाने के अभियान की अगुवाई कर रहा है और भारत को एक ऐसे समाज के रूप में चित्रित करने का अभियान चला रहा है जो रंगभेद की अनुमति देता है।

सन 1948 में स्थापित वर्ल्ड काउंसिल ऑफ चर्चेज़ (डब्ल्यू.सी.सी.) विश्व के सर्वाधिक व्यापक और सर्वाधिक समावेशी ईसाई सार्वभौमिक आन्दोलन होने का दावा करता है। इसका उद्देश्य 'ईसाई एकता' है, जिससे उसका अभिप्राय है 'एक ही आस्था में एकत्व और युकेरिस्टिक भ्रातृत्व'। यह 'एक आस्था' स्वाभाविक रूप से ईसाइयत है। यह 110 से अधिक देशों के 349 चर्चों, भिन्न प्रकार के पन्थों, और चर्च भ्रातृत्व (फेलोशिप) को शामिल करने का दावा करता है।[43]

डब्ल्यू.सी.सी. विकासशील देशों में स्वयं को वामपन्थियों के साथ भी जोड़ता है, जिनमें मार्क्सवादी भी शामिल हैं। यह वामपन्थी ईसाई उग्र सुधारवाद स्थानीय आध्यात्मिक परम्पराओं और संस्कृतियों को नीचा दिखाने का एक उपकरण है, और इस तरह मार्क्सवादियों द्वारा एक बार जब भूमि तैयार कर दी जाती है तब ईसाई धर्मान्तरण का मार्ग प्रशस्त हो जाता है। भारत के मामले में, डब्ल्यू.सी.सी. रणनीतिगत महत्व के पूर्वोत्तर में माओवादी-ईसाई विद्रोह को समर्थन और धन देता रहा है।[44] इस प्रकार दक्षिणपन्थी रणनीति रणनीतिगत समर्थन के लिए वामपन्थ का उपयोग करती है।

एल.डब्ल्यू.एफ. और डब्ल्यू.सी.सी. ने 2009 में बैंकॉक में 'दलितों के लिए न्याय' विषय पर एक 'वैश्विक अखिल ईसाई सम्मेलन' (Global Ecumenical Conference) का आयोजन किया।[45] यह भारतीय जनसंख्या के गरीब वर्गों के लिए संघर्ष करने, और साथ ही उन सामाजिक बुराइयों का विरोध करने के लिए प्रशंसनीय है, जो समाज के एक बड़े वर्ग को मूलभूत मानवीय गरिमा प्रदान करने से मना करता है। फिर भी, जैसा कि इस पुस्तक में अन्यत्र स्पष्ट किया गया है, समाज सुधारक, जिन्होंने बिना किसी प्रकार के समझौते किये वर्ण-व्यवस्था के विरुद्ध संघर्ष किया है और जिन्होंने निचले स्तर के लोगों के लिए सर्वाधिक महत्वपूर्ण अधिकार जीते, वे भारत की ही मूल आध्यात्मिक परम्पराओं से आये हैं। बैंकॉक सम्मेलन जैसे आयोजनों के साथ समस्या यह है कि वे धार्मिक प्रारूप और आन्तरिक विभेद सृजित करते हैं। उदाहरण के लिए, सम्मेलन के संकल्पना पत्र ने दावा किया कि भारतीय धार्मिक परम्पराएँ प्रत्येक मनुष्य में ईश्वर की छवि की ईसाई अवधारणा को नहीं मानतीं।[46] इस प्रकार, एल.डब्ल्यू.एफ. और डब्ल्यू.सी.सी. ने मानवाधिकार और मानवीय गरिमा के लिए वैध संघर्ष को एक ईसाई पवित्र युद्ध में बदल दिया है।

सम्मेलन के लिए संकल्पना लेख ने स्पष्ट किया कि डब्ल्यू.सी.सी. और एल.डब्ल्यू.एफ. भारत के अनेक दलित संगठनों के साथ नेटवर्क बना रहे हैं ताकि 'दलित विषय को अन्तर्राष्ट्रीय समुदाय—विशेषकर संयुक्त राष्ट्र मानवाधिकार संस्थाओं और अन्य अन्तर्राष्ट्रीय मंचों के माध्यम से—के ध्यान में लाया जाये'।[47] यह ध्यान दिलाता है कि स्वयं बैंकॉक सम्मेलन डर्बन रिव्यू कॉन्फेरेंस के लिए एक तैयारी था, जिसका आयोजन 2009 में जेनेवा में किया जाना निर्धारित था।

जेनेवा सम्मेलन में, चर्च ऑफ साउथ इण्डिया के एक बिशप ने दलितों के विरुद्ध विभिन्न उत्पीड़नों का वर्णन किया और उनकी सभी समस्याओं के लिए 'हिन्दू सिद्धान्त' को दोषी ठहराया। ये कहानियाँ 'धर्मशास्त्री और मिशनरी शास्त्रीय आधार' प्रदान करने के लिए अभिप्रेत थीं जिसके आधार पर विश्व भर के अन्तर्राष्ट्रीय चर्च और संगठन दलितों के साथ उनकी एकता की सम्पुष्टि कर सकें। बिशप ने आगे यह भी कहा कि भारत सरकार 'पुलिस, कार्यपालिका और न्यायपालिका के माध्यम से दलितों को न्याय देने' में विफल रही थी।[48]

फिर भी 2009 के जेनेवा सम्मेलन में वर्ण को नस्ल के समतुल्य बनाने के प्रयास एक बार फिर विफल हो गये। टाइम्स ऑफ इण्डिया ने समाचार दिया : 'यह ह्यूमन राइट्स वॉच जैसे कुछ स्कैंडिनेवियाई देशों और समूहों को एक प्रमुख झटका था, जो माँग करते आ रहे हैं कि भारत का वर्ण आधारित भेदभाव एक अन्य नाम से नस्लवाद ही है'। रपट ने आगे उल्लेख किया कि दलित सक्रियातावादी और लेखक चन्द्रभान प्रसाद ने जेनेवा के परिणाम के लिए 'मूर्ख एन.जी.ओ. (गैर-सरकारी संगठनों)' पर दोषारोपण किया, यह कहते हुए कि वर्ण को नस्ल के समतुल्य बताना एक भूल थी।[49]

सम्मेलन ने उन संगठनों को भारत में दलित आन्दोलन के सच्चे प्रतिनिधि के रूप में आगे बढ़ाया जो दलित अलगाववाद और विद्रोह के नस्लवादी सिद्धान्त का समर्थन करते हैं। इस पर इसके बाद चर्चा की गयी है।

भारत में दलित असहमति से सम्बद्ध संगठन

दलित आन्दोलन, जो नस्लवाद का विरोध करने का इरादा रखता है, अनेक बार अपने ही नस्लवादी सिद्धान्तों को प्रोत्साहित करने तक सीमित रह जाता है। इसकी कुछ परिकल्पनाएँ अलगाववादी राजनीति की एक शैली को समर्थन देती हैं जो बड़ी आसानी से हिंसक हो उठती है। जैसा कि हमने पहले देखा है, अधिकांशत: अच्छे उद्देश्यों वाले शिक्षाविदों, चर्चों, और सरकारी संस्थाओं का एक जटिल नेटवर्क हिंसात्मक विद्रोह को वैध ठहराते हुए सीमित हो जाता है। पुस्तक में इसके बाद का भाग इन सम्पर्कों में से कुछ की जाँच करता है।

नेशनल कैम्पेन फॉर दलित ह्यूमन राइट्स (एन.सी.डी.एच.आर.)

पॉल दिवाकर, जो दिल्ली स्थित नेशनल कैम्पेन फॉर दलित ह्यूमन राइट्स (एन.सी.डी.एच.आर.) के संयोजक हैं, आई.डी.एस.एन. के सह-संयोजक भी हैं।[50] एन.सी.डी.एच.आर. के एक अन्य सह-संयोजक हैं मार्टिन मैकवान, एक आन्दोलनकारी जो जेसुइट विद्यालय से प्रशिक्षित हैं, और जो गुजरात में कई संगठन चलाते हैं, और साथ में दावा करते हैं कि वे दलितों के लिए बोलते हैं, लेकिन

स्थानीय दलित उन पर आरोप लगाते हैं कि वे अपने निहित स्वार्थों के लिए मुद्दों का राजनीतिकरण करते हैं।[51] सन 2003 में भारत के अछूतों पर प्रसारित 'नैशनल जियोग्राफिक' के एक कार्यक्रम में र्मािटन मैकवान (Martin Macwan) को प्रस्तुत किया गया, और उन्हें 'अम्बेडकर के बाद अछूतों को संगठित करने में सबसे अधिक नजर आने वाले' व्यक्ति बताया गया। आलेख में निष्कर्ष निकाला गया था कि वर्ण समस्याओं के समाधान के लिए हिन्दू धर्म को 'राजनीति और कानून को लागू करने में केन्द्रीय भूमिका निभाना बन्द कर देना चाहिए'।[52] दूसरे शब्दों में ईसाइयत को नागरिक समाज का नियन्त्रण अपने हाथ में ले लेना चाहिए।

सन 2009 में, मैकवान ने गुजरात में दलितों की स्थिति पर एक सर्वेक्षण किया और उनके विरुद्ध व्यापक भेदभाव की रपट दी। यह रपट गुजरात की आर्थिक सम्पन्नता के विपरीत स्थिति ग्रहण करते हुए समाचार माध्यमों में प्रचारित की गयी।[53] मैकवान के संगठन को इण्डियाना की यूनिवर्सिटी ऑफ नोत्रेदाम के क्रॉक इंस्टीटयूट फॉर इंटरनेशनल पीस स्टडीज का समर्थन प्राप्त हुआ। क्रॉक इंस्टीटयूट 'युद्ध, जनसंहार, आतंकवाद, जातीय और धार्मिक संघर्ष, और मानवाधिकार उल्लंघन' पर शोध संचालित करने वाला केन्द्र है और जिसका मिशन नोत्रेदाम का ही एक अभिन्न मिशन है, जो एक अन्तर्राष्ट्रीय कैथोलिक शोध विश्वविद्यालय है। यह केन्द्र स्वयं को उस 'समृद्ध परम्परा' पर आधारित रखता है जो चर्च की 'युद्ध, शान्ति, न्याय और मानवाधिकार पर शिक्षा का परिणाम रही है'।[54]

एन.सी.डी.एच.आर. सभी राष्ट्रों से भारत पर दबाव डालने का अनुरोध करने में अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर बहुत ही आक्रामक रुख अपनाने वाला संगठन है। इसके 'दलित गुट' ने 2001 में डर्बन में भारत के विरुद्ध गुट बना कर दबाव बनाया।[55] ऑस्ट्रेलिया के रेडियो नैशनल को दिये गये अपने साक्षात्कार में पॉल दिवाकर ने कहा :

> मैं अनुभव करता हूँ कि यह सब सम्पूर्ण विश्व में एक बड़े अभियान को आवश्यक बनायेगा जिसका ध्यान आप जानते हैं विशेष रूप से संयुक्त राष्ट्र संघ के तन्त्र—बहुपक्षीय और द्विपक्षीय संस्थाएँ जैसे यूरोपियन यूनियन और वर्ल्ड बैंक, पर केन्द्रित रहेगा—ये सभी संस्थाएँ यह सुनिश्चित करने पर ध्यान केन्द्रित करने वाली हैं, चाहे वह मानवाधिकार का मामला हो, या विकास में सहयोग का मामला, या व्यापार का—कि हम इस नृशंस अपराध के विषय से, जो मानव के विरुद्ध किया जा रहा है, निपटने का उत्तरदायित्व स्वयं पर लेते हैं।[56]

कार्यक्रम के उद्घोषक ने बताया कि भारत वर्ण प्रथा को क्यों नहीं समाप्त करना चाहता है : 'नि:सन्देह, भारत में वर्णगत भेदभाव को प्रतिबन्धित करने वाले कानून हैं, लेकिन एक अर्थव्यवस्था में, जो 18 करोड़ लोगों को दास बनाकर रखने पर निर्भर है, वे कानून व्यावहारिक असलियत नहीं रहे हैं'।[57]

एन.डी.टी.वी. की एक रपट इससे असहमत थी :

लेकिन क्या वर्ण आधारित भेदभाव को नस्लवाद के समतुल्य कहा जा सकता है? 'संविधान नस्ल और वर्ण के बीच एक अन्तर करता है। आरक्षण के लिए दोनों को समतुल्य बनाना सही नहीं है,' वरिष्ठ अधिवक्ता और संविधान विशेषज्ञ अशोक कुमार पाण्डा ने कहा। हालाँकि ऐसा नहीं लगता कि इस बहस को बहुत लोग गम्भीरता से लेंगे, यह पिछले पचास वर्षों से उठाये जा रहे भारत के सकारात्मक कदमों के समक्ष बाधा की तरह है। और कम-से-कम इतना तो कहा जा सकता है कि इसके दूरगामी परिणाम होंगे और भारतीय अर्थव्यवस्था की अग्रगामी गति को यह सीधे प्रभावित कर सकता है।[58]

दिवाकर ईसाई प्रचारक लुथेरन चर्च से बड़े निकट से जुड़े हैं, और यूरोपीय मुख्यालयों से अलग वह आधिकारिक चर्च नीतियों को आगे बढ़ाते हैं। उनकी नीतियों में अनेक विरोधाभासी तत्व हैं। वे बी.आर. अम्बेडकर की संकल्पना को अमान्य करते हैं जैसा कि भारत के संविधान में व्यक्त है, और इसके बदले दलितों को ईसाइयत में धर्मान्तरित करने के ईसाई एजेंडे को प्रस्तुत करते हैं। इसके साथ ही, वे भारत सरकार से वर्ण आधारित आरक्षण के लाभ देने की माँग करते हैं, उनको भी जो ईसाइयत में धर्मान्तरित हो गये, हालाँकि चर्चों द्वारा भेजे जाने वाला व्यापक विदेशी धन केवल ईसाइयों के लिए ही आबंटित रहता है।[59]

एक अन्य मानवाधिकार समूह ने स्थिति का विश्लेषण किया और यह निष्कर्ष निकाला कि एन.सी.डी.एच.आर. के मामलों में समाचार माध्यमों में प्रकाशन/प्रसारण और बढ़ा-चढ़ाकर की गयी प्रस्तुति का उल्टा असर पड़ा और उसके दलित विषय को कोई सहायता नहीं मिली। इस विफलता के कारणों की व्याख्या इस प्रकार की गयी :

> वर्णगत भेदभाव के अन्य शिकारों की, जैसे बुड़ाकू, पूरी तरह उपेक्षा कर दी गयी। वर्णगत भेदभाव से पीड़ित हो रहे अन्य विपन्न समुदायों की अपेक्षा दलितों को महत्व मिलने से यह भावना जागृत हुई है कि वर्णगत भेदभाव भारत-विशेष का विषय है। ... इससे भी बड़ी बात यह कि एन.सी.डी.एच.आर. का दलित अधिकारों पर अभियान चलाने का साम्प्रदायिक दृष्टिकोण व्यापक एन.जी.ओ. समुदाय को नहीं पचा। वर्ण के विषय पर डर्बन में होली सी के प्रतिनिधिमण्डल का भारत सरकार के प्रतिनिधिमण्डल के प्रति जो रवैया था उससे तो केवल भारत सरकार के सबसे बुरी आशंका की ही पुष्टि हुई कि वर्ण का विषय एक 'ईसाई प्रचारक एजेंडा' है। यह, और एन.सी.डी.एच.आर. के प्रतिनिधिमण्डल में एक ही धर्म विशेष के लोगों की व्यापक दिखाई दे रही उपस्थिति ने दलित विषय की सहायता नहीं की।[60]

सन 2006 में, एन.सी.डी.एच.आर. एक बार फिर भारत सरकार के आधिकारिक रुख के विपरीत चला गया, और भारत की वर्ण समस्याओं पर 'नस्ली भेदभाव

उन्मूलन आयोग’ (Comision for the Eradication of Racial Discrimination, सी.ई.आर.डी.) के लिए एक रपट तैयार करने में प्रमुख भूमिका निभायी।[61] सी.ई.आर.डी. वह संस्थान है जो नस्ल के आधार पर भेदभाव पर एक अन्तर्राष्ट्रीय संधि को लागू करता है, जो 1965 से लागू है और भारत भी उस पर हस्ताक्षरकर्ताओं में से एक है।[62] उसके बाद सी.ई.आर.डी. को 2007 में एक छाया रपट सौंपी गयी। सन 2008 में, इन छाया रपटों के आधार पर लुथेरन वर्ल्ड फेडरेशन, एन.सी.डी.एच.आर. और आई.डी.एस.एन. ने संयुक्त राष्ट्र द्वारा गठित की गयी यूनिवर्सल पीरियॉडिक रिव्यू कमिटी को एक रपट सौंपी जिसका शीर्षक था ‘भारत में वर्ण आधारित भेदभाव’ (Caste-based Discrimination in India)।[63] भारत के विरुद्ध उनकी चाल वर्ष प्रति वर्ष एक अन्तर्राष्ट्रीय मंच से दूसरे तक गति पकड़ती जा रही है।

नैशनल फेडरेशन ऑफ दलित विमेन (एन.एफ.डी.डब्ल्यू.)

नैशनल फेडरेशन ऑफ दलित विमेन (एन.एफ.डी.डब्ल्यू.) की स्थापना 1995 में रूथ मनोरमा के नेतृत्व में हुई। इससे पहले उन्होंने संयुक्त राज्य अमरीका के अफ्रीकी अमरीकियों की तुलना भारत के दलितों से करने के एक अध्ययन में भाग लिया था, जो अश्वेत महिलाओं और दलित महिलाओं के जीवन की पड़ताल करते हुए किया गया था। उन्होंने 1995 में बीजिंग में महिलाओं पर आयोजित चौथे संयुक्त राष्ट्र संघ विश्व सम्मेलन में दलित महिलाओं द्वारा सामना किये जा रहे विषयों का भी प्रतिनिधित्व किया था। एकेडमी ऑफ ईक्यूमेनिकल इण्डियन थियोलॉजी एण्ड चर्च एडमिनिस्ट्रेशन द्वारा ‘चर्च और समाज के लिए किये गये उल्लेखनीय योगदान के लिए’ उन्हें मानद डॉक्टरेट की उपाधि दी गयी है।[64]

श्रीलंकाई तमिल अलगाववादी समूहों के साथ उनकी निकटता के आरोप ने सन 2000 में एक विवाद पैदा कर दिया था।[65] सन 2001 के डर्बन सम्मेलन में भारत सरकार के प्रतिनिधिमण्डल के विरुद्ध वे एक प्रमुख स्वर बन गयी थीं और आई.डी.एस.एन. द्वारा सृजित दलित खेमा (कॉकस) का अंग थीं।[66] इस विवाद के बावज़ूद उनकी दलीलों ने उनके लिए उन एक हज़ार महिलाओं के समूह में स्थान अर्जित किया जिनका मनोनयन 2005 के नोबेल शान्ति पुरस्कार के लिए किया गया था, और उन्हें ‘राइट लाइवलीहुड अवार्ड’ दिया गया, जिसे कभी-कभी ‘वैकल्पिक नोबेल पुरस्कार’ भी कहा जाता है। वे नैशनल काउंसिल ऑफ चर्चेज इन इण्डिया के दलित टास्क फोर्स की एक सदस्य हैं।[67] उन्होंने व्यक्तिगत रूप से यूरोपीय संसद को आवेदन दिया कि वह भारत के विरुद्ध आर्थिक और राजनीतिक लाभ उठाने की शक्ति का उपयोग ‘व्यापार, विकास कार्यक्रमों या राजनीतिक बातचीत में’ करे।[68]

एन.एफ.डी.डब्ल्यू. समय-समय पर तैयार की जाने वाली रपटों के लिए नियमित रूप से जानकारियाँ उपलब्ध कराती हैं जिन्हें आई.डी.एस.एन. संयुक्त राष्ट्र की

विभिन्न संस्थाओं और यूरोपीय सरकारी एजेंसियों को समर्पित करता है।[69]

दलित पंचायत + दलितशास्त्र + दलित धर्मशास्त्र -->दलितस्तान

सन 2009 के बैंकॉक सम्मेलन में भाग लेने वाले प्रतिनिधियों में थीं एक भारतीय दलित आन्दोलनकारी डॉ. ज्योति राज, जो अपने पति के साथ मिलकर एक दलित संगठन चलाती हैं जिसका नाम है रूरल एड्यूकेशन फॉर डेवलपमेंट सोसाइटी (आर.ई.डी.एस.)। डॉ. राज ने सम्मेलन में दलित पंचायत आन्दोलन के बारे में बताया। यह आन्दोलन उस पर आधारित था जिसे उन्होंने 'दलितशास्त्र' के रूप में वर्णित किया, जिसे ईसाई महसूस करते हैं कि वह ईसाई दलित धर्मशास्त्र का पूरक है।[70] यहाँ इसे कुछ विस्तार से देखना उपयोगी होगा कि दलितशास्त्र क्या है और ईसाई दलित धर्मशास्त्र इसे अपना पूरक क्यों मानता है।

दलितशास्त्र ज्योति राज और उनके पति द्वारा विकसित किया गया है। यह द्रविड़ नस्ली सिद्धान्तों की तरह उन्हीं मनगढ़ंत बातों का उपयोग करता है जिसकी पड़ताल हमने इस पुस्तक के छठे और सातवें अध्याय में की है। दलितशास्त्र वर्ण-व्यवस्था का प्रारम्भ 'आर्य विजेताओं' से ढूँढ़ निकालता है जो 'भारत के विजित मूल निवासियों से रक्त और नस्ली वंशानुक्रम में भेदों द्वारा विभाजित' थे,[71] और यह अफ्रीकी-दलित रक्त-सम्बन्ध के साथ-साथ एक व्यापक षडयन्त्र के सिद्धान्त का प्रतिपादन करता है :

> अफ्रीका के काले लोग, एशिया के आदिवासी और दलित जनजातीय आधार पर संगठित नहीं थे। तब आर्य भारत में वर्ण-व्यवस्था क्यों लाये? क्योंकि उन्होंने पाया कि यह प्रथा समाज को अनन्त काल तक विभाजित अवस्था में रखने और उस विभाजन के माध्यम से वृहत्तर समाज में उनके दबदबे को निरन्तर बनाये रखने में उनके लिए सर्वोत्तम उपकरणों में से एक थी।[72]

महात्मा गाँधी के हरिजन शब्द के उपयोग को दलितों को और नीचे करने के एक धूर्त षडयन्त्र के रूप में देखा गया :

> हरिजन का अर्थ हरि (ईश्वर) के जन होता है। यह एक बड़ी अच्छी-ध्वनि वाला शब्द है। लेकिन वास्तविक अर्थ इसकी ध्वनि से भिन्न है। इसका अर्थ यह है कि दलित बच्चे मन्दिरों की वेश्यावृत्ति से पैदा हुए हैं, देवदासी प्रणाली से। वे अपने पिताओं के नाम नहीं जानते। न तो माताएँ ही वास्तविक पिता का नाम याद रख पाने में सक्षम हैं, क्योंकि अनेक ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और अन्य मन्दिर में दलित महिलाओं के साथ वेश्यावृत्ति करते हैं। चूँकि दलित बच्चे मन्दिरों में होने वाली यौन गतिविधियों से उत्पन्न होते हैं, और चूँकि वे नहीं जानते कि वे किस जाति के हैं, और चूँकि उनकी कोई जाति नहीं है उन्हें ईश्वर की ही सन्तान कहना चाहिए, हरि जन, हरिजन। इसी अत्यन्त अपमानजनकअर्थ में यह नाम दलित जनों को दिया गया था।[73]

गाँधी के इस शब्द 'हरिजन' को ऐसा विकृत मोड़ देने के बाद, दलितों की मुक्ति के लिए दलितशास्त्र की अपनी परिकल्पना है 'दलितस्तान', जो भारत को अनेक भागों में तोड़ने की एक योजना है, जिसमें एक अलग दलित राष्ट्र भी शामिल है। दलितस्तान की स्थापना में उन्होंने बैंकॉक सम्मेलन में स्पष्ट किया कि दलित पंचायत 'सरकारी विकास कार्यक्रमों के लाभकों का निर्णय करेगा और कि यह अश्वेत सेना का गठन करेगा, उसे प्रशिक्षित करेगा और उसे समर्थन देगा'।[74]

दलितस्तान के लिए की गयी संकल्पना में हिन्दुओं के लिए एक फासीवादी घृणा जुड़ी हुई है, और जिसके पास भारतीय लोकतन्त्र को नष्ट करने, वर्ण के आधार पर इसे टुकड़ों-टुकड़ों में करने, और एक माओवादी सरकार स्थापित करने की अन्तिम रूपरेखा है। यह स्पष्ट रूप से अपनी संकल्पना की व्याख्या करती है :

> ब्राह्मण समुदाय, और उन सभी को जिन्होंने ब्राह्मणवाद के समर्थन के माध्यम से दलितों का दमन किया है, सार्वजनिक रूप से क्षमा याचना करने के लिए विवश कर दिया जायेगा। उन्हें अपने वे सभी संसाधन दलितस्तान की सर्वोच्च परिषद को समर्पित कर देने होंगे जिन्हें उन्होंने मूल निवासी लोगों से हथिया लिए थे, जो फिर उन संसाधनों को विभिन्न समुदायों में बाँटेगी। ... दलितस्तान में प्रत्येक समुदाय को आन्तरिक रूप से स्वयं को शासित करने की स्वतन्त्रता होगी जिसमें दलितस्तान की सर्वोच्च परिषद का कोई हस्तक्षेप नहीं होगा बशर्ते कि वे अन्य समुदायों पर प्रभुत्व के सभी तन्त्रों और उपकरणों से दूर रहें। दलितस्तान सामुदायिक लोकतन्त्र द्वारा शासित होगा। दलितस्तान में कोई भी चुनाव नहीं होंगे। ...[75]

सर्वाधिकारवाद की अपनी अन्तिम रूपरेखा में दलितस्तान दलितों के श्रम को एक 'राष्ट्रीय सम्पदा' घोषित करेगा, जिसका स्वामी दलित व्यक्ति विशेष नहीं रह जायेगा, बल्कि राज्य द्वारा 'समुचित संरक्षण और प्रोत्साहन के कदमों' पर निर्भर करेगा।[76]

दलितस्तान में सभी प्राचीन हिन्दू मन्दिरों को 'विश्वविद्यालयों, अस्पतालों या स्मारकों' में बदल दिया जायेगा और वे 'गर्व और हेकड़ी के प्रतीक' के रूप में नहीं रह जायेंगे।[77]

यह कोई संयोग नहीं है कि ऐसे संगठन जो ऐसे सर्वाधिकारवादी लोकतन्त्र विरोधी सिद्धान्तों को प्रोत्साहित करते हैं और दलित मुक्ति के नाम पर भारत विरोधी रुख अपनाते हैं, वही हैं जिन्हें डब्ल्यू.सी.सी. और एल.डब्ल्यू.एफ. द्वारा चुना गया है और भारत के दलित आन्दोलन के झण्डाबरदार के रूप में अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर प्रस्तुत किया जा रहा है।

शैक्षिक दलित अध्ययनों का नेटवर्क

आइ.डी.एस.एन. विदेशी और भारतीय संस्थानों के एक सम्पूर्ण नेटवर्क में दलित अध्ययनों को प्रायोजित करता है और उनके साथ सहयोग करता है, और इसका उपयोग शैक्षिक शोध की आपूर्ति में करता है जो इसके राजनीतिक सक्रियतावाद को समर्थन देते हैं।

इण्डियन इंस्टीटयूट ऑफ दलित स्टडीज

इण्डियन इंस्टीटयूट ऑफ दलित स्टडीज (आई.आई.डी.एस.)[78] का गठन नई दिल्ली में किया गया जिसके लिए फोर्ड फाउण्डेशन से मिले 3,00,000 अमरीकी डालर के प्रारम्भिक अनुदान का उपयोग किया गया।[79] इसके भारत प्रमुख एन.सी.डी.एच.आर. के मार्टिन मैकवान नामक ईसाई हैं, जो इस नेटवर्क के नौ संस्थानों में से तीन का संचालन करते हैं। आई.आई.डी.एस. के भारतीय सम्बद्ध मुख्यत: ईसाई संगठन हैं, जिनके बहुधा हिन्दू नाम होते हैं लेकिन ईसाइयों द्वारा नियन्त्रित होते हैं। इसके विदेशी सहयोगी मुख्यत: ईसाई अन्तर्राष्ट्रीय संगठन हैं,[80] और साथ ही साथ डेनिश विदेश मन्त्रालय।

आई.आई.डी.एस. के न्यासी डी.एस.एन.-यू.के. को यूनाइटेड किंगडम में लेबर पार्टी के सांसदों के साथ गुट बनाकर दबाव डालने के लिए जानकारियाँ उपलब्ध कराते हैं।[81] आई.आई.डी.एस. ने भारत में दलितों के विरुद्ध उत्पीड़न पर एक रपट तैयार की है जिसे उसने संयुक्त राष्ट्र के विशेष दूत को उनके आई.डी.एस.एन. के धन पर किये गये भारत के दौरे में समय सौंपा।[82] इस अन्तर्राष्ट्रीय भूमिका से उत्साहित होकर, आई.आई.डी.एस. ने एक महत्वाकांक्षी शोध परियोजना अपने हाथ में ली ताकि 'उन देशों में वर्ण आधारित भेदभाव पर नये ज्ञान और अभिलेख तैयार किये जायें जहाँ इस विषय पर शोध और अभिलेख सीमित रहे हैं'।[83] इसके लिए नेपाल, पाकिस्तान, बांगलादेश और श्रीलंका तक आई.आई.डी.एस. का विस्तार किया गया जिसे डेनिश सरकार द्वारा धन दिया गया। इसके तहत तैयार रपटें उन देशों में नये आन्दोलन पैदा भी करने लगी हैं, जो सम्पूर्ण उपमहाद्वीप को और अधिक विखण्डित करने का ही एक मार्ग है।

आई.आई.डी.एस. ने स्वयं को एक विचार मंच में बदल लिया है जो अन्तर्राष्ट्रीय ग्राहकों के लिए प्रायोजित शोध उत्पादित करता है। उदाहरण के लिए, इसके पास ईसाई सहायता के लिए एक प्रशिक्षण पुस्तिका तैयार करने की परियोजना है ताकि शेष भारत के मुकाबले गरीबों का सशक्तीकरण हो और उनको ईसाइयत में धर्मान्तरित किया जा सके।[84] एक अन्य परियोजना है जर्मन लुथेरन चर्च को योजनाएँ उपलब्ध कराने की ताकि भारत में विशेष समूहों को लक्ष्य बनाया जा सके।[85]

अपनी ईसाई नींव को छिपाकर इसने पन्थ-निरपेक्ष ग्राहकों को आकर्षित करने में भी सफलता पायी है। ऐसा एक उदाहरण है इसका वाशिंगटन स्थित इण्टरनैशनल फूड

पॉलिसी रिसर्च इंस्टीटयूट के लिए किया गया सामाजिक-आर्थिक शोध। इससे सम्बद्ध कुछ लोग आई.आई.डी.एस. में निहित ईसाई रूढ़िवाद को नहीं जानना चाहते, क्योंकि यह जनता के समक्ष वामपन्थी के रूप में उनकी अपनी छवि के अनुकूल है। उदाहरण के लिए, न्यू यॉर्क यूनिवर्सिटी के स्कूल ऑफ लॉ में सेंटर फॉर ह्यूमन राइट्स एण्ड ग्लोबल जस्टिस की फैकल्टी डायरेक्टर, स्मिता नरूला, आई.आई.डी.एस. के विदेशी एसोसिएट में से एक हैं।[86] अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलनों में वे भारत के मानवाधिकार की निराशाजनक चित्रण प्रस्तुत करने में मार्टिन मैकवान के साथ सहयोग करती हैं।[87] उन्होंने संयुक्त राज्य कांग्रेस के समक्ष डी.एफ.एन. द्वारा वस्तुस्थिति की जानकारी देने के लिए की गयी बैठक में भी भाग लिया, जो दक्षिणपन्थी ट्रेन्ट फ्रैंक्स (जो डी.एफ.एन. के बोर्ड के सदस्य हैं) द्वारा प्रस्तुत किये गये प्रस्ताव के तहत आयोजित किया गया था, और जिसमें संयुक्त राज्य अमरीका की सरकार से अनुरोध किया गया था कि वह जातिगत भेदभाव के विषय पर भारत पर दबाव डाले।[88] फिर भी, यह उनके लिए महत्वपूर्ण है कि वे एक वामपन्थी के रूप में दिखें जो दक्षिणपन्थ से घृणा करती हैं।

आई.आई.डी.एस. ने प्रिंस्टन विश्वविद्यालय के सहयोग से भारत में शहरी श्रमिक बाज़ार में भेदभाव का अध्ययन करने के लिए अपनी शोध पद्धति देने के लिए एक त्रि-दिवसीय कार्यशाला का आयोजन किया।[89] अन्य पश्चिमी विश्वविद्यालय जो इसके ग्राहकों में हैं उनमें डेनमार्क यूनिवर्सिटी का धर्म विभाग; स्टॉकहोम यूनिवर्सिटी का समाजिक मानवशास्त्र विभाग; न्यू यॉर्क की सिटी यूनिवर्सिटी; और यूनिवर्सिटी ऑफ नॉर्थ करोलिना का इंस्टीटयूट ऑफ एफ्रिकन अमरीकन रिसर्च शामिल हैं।[90]

स्वीडिश साउथ एशियन स्टडीज नेटवर्क (एस.ए.एस.नेट.)

स्वीडिश साउथ एशियन स्टडीज नेटवर्क (एस.ए.एस.नेट.) को प्रभावी ढंग से आई.डी.एस.एन. के एक अंग के रूप में बदल दिया गया है। स्टॉकहोम एन्थ्रोपॉलॉजिकल रिसर्च ऑन इण्डिया (एस.ए.आर.आई.) भारत के अन्दर संघर्षों की छान-बीन करने के लिए एक विभाजनकारी ढाँचे के निर्माण के एस.ए.एस.नेट. के कार्यक्रम का एक अंग है। अच्छी तरह वित्त सम्पोषित इस कार्यक्रम की एक शोधकर्ता, ईवा-मैरिया हार्टमैन, आई.आई.डी.एस. की एक शैक्षिक शिक्षाविद के रूप में भी सूचीबद्ध हैं।[91] उनके शोध के विषयों में एक है 'हमारा क्रोध जल रहा है—दलित आन्दोलन में स्थानीय प्रथा और वैश्विक सम्पर्क' (Our Fury is Burning – Local Practice and GlobalConnections in the Dalit Movement)। इसके निकाले गये सारांश के अनुसार :

> यह अध्ययन समकालीन दलित आन्दोलन के अन्दर सांस्कृतिक के साथ-साथ सांगठनिक पक्षों पर ध्यान केन्द्रित करता है, ताकि पहचान के निर्माण से जुड़ी प्रक्रियाओं की पड़ताल की जा सके। ... यह भी प्रदर्शित किया जायेगा कि किस

प्रकार दलित गतिविधियाँ 'हिन्दुओं' और 'हिन्दू मूल्यों' के साथ उनके साझे मुख्य टकराव के सन्दर्भ में अनाभिव्यक्त ज्ञान की साझेदारी करने लगी हैं।[92]

'पहचान निर्माण से सम्बन्धित प्रक्रियाएँ' हार्टमैन के हस्तक्षेपों की ओर संकेत करती हैं, जैसा कि वे स्पष्ट करती हैं कि वे सूक्ष्म तरीकों से दलित पहचान को ईसाइयत की ओर मोड़ना चाहती हैं। उदाहरण के लिए, वे गाँधी के बारे में वी.टी. राजशेखर के अपमानजनक दृष्टिकोण को विशेष महत्व देती हैं, क्योंकि गाँधी ने समाधान के रूप में ईसाइयत में धर्मान्तरण को अमान्य कर दिया था।[93] हार्टमैन ने एस.ए.एस.नेट. द्वारा 2006 में आयोजित किये गये शैक्षिक विचार-विमर्श में भी भाग लिया था।[94] इसके भारत को विखण्डित करने के एजेंडे को 'वर्तमान भारत की विभिन्न छवियाँ' की अगुवाई करने के आवरण में ढँककर रखा गया था। स्वीडन के दलित सॉलिडैरिटी नेटवर्क ने चर्चा प्रारम्भ की और एक रपट भी साथ में रखी गयी जिसका शीर्षक था 'कोई छुटकारा नहीं—ब्रिटेन में वर्ण आधारित भेदभाव' (No Escape—Caste, Discrimination in the U.K.), जिसका उपयोग ब्रिटेन में प्रवासी भारतीय जनसंख्या को वर्ण-समर्थक प्रारूप में प्रस्तुत करने के लिए किया गया।[95]

यूनिवर्सिटी ऑफ कॉपेनहैगेन के क्रॉस-कल्चरल एण्ड रीजनल स्टडीज विभाग के पीटर बी. एण्डर्सन आई.आई.डी.एस. में एक शोध सहयोगी हैं जो ईसाई मिशन अध्ययनों पर काम करते हैं।[96] सन 2007 में, वह 'TELC (तमिल इवैंजेलिकल लुथेरन चर्च) अमंग कैथोलिक्स, पेंटेकोस्टलस एण्ड हिन्दूस' विषय पर बोले। उसी बैठक में, मुख्य वक्ता थे यूनिवर्सिटी ऑफ विस्कॉन्सिन, मैडिसन के प्रोफेसर रॉबर्ट एरिक फ्राइकेनबर्ग जिन्होंने 'भारत में मिशन और मिशन अभिलेख आधारित शोध' (Mision and Mision Archive related research in India), और 'राजनीतिक धर्म के रूप में हिन्दुत्व' (Hindutva as a political religion)पर शोध पत्र प्रस्तुत किये।[97] पूरा अभ्यास आक्रमण प्रारम्भ करने के पूर्व शत्रु के भू-भाग से जानकारियाँ ढूँढ़ने के सदृश ही अधिक दिखता है, न कि एक ऐसे शैक्षिक अभ्यास की तरह जिसका उद्देश्य सचमुच अन्य संस्कृति और समाज को समझना हो।

आई.डी.एस.एन. ने स्वीडन में गोष्ठियाँ भी आयोजित कीं, जिनमें इसके न्यासी एलोइसियस इरुदयम ने 'दलित स्त्रियाँ : सर्वाधिक उत्पीड़ित' (Dalit Women : The Most Opresed) जैसे विषयों पर व्याख्यान दिये। एक और स्टॉकहोम यूनिवर्सिटी गोष्ठी का आयोजन उपसला यूनिवर्सिटी के राजनीति विज्ञान के सहायक प्राध्यापक स्टेन विडमाल्म (Sten Widmalm) के सहयोग से किया गया, जो भारत में ग्रामीण शासन का अध्ययन करते हैं।[98] सन 2007 में भारत के निर्मला निकेतन नामक एक कैथोलिक संस्थान के विद्यार्थियों ने डॉ. अम्बेडकर के जन्म दिवस पर एक रैली आयोजित करने के लिए आई.डी.एस.एन. के साथ सहयोग किया,[99] इस तथ्य को छिपाते हुए कि आई.डी.एस.एन. ने अम्बेडकर लिखित भारत के संविधान के विरुद्ध स्वयं को अन्य विरोधी शक्तियों के साथ गठजोड़ में शामिल कर रखा था।

इस प्रकार आइ.डी.एस.एन. साउथ एशियन स्टडीज के विद्वानों और स्वयं के अपने भारतीय सहयोगियों के बीच गठबन्धन बनाते हुए एक शक्तिशाली गठजोड़ बन गया है। आई.डी.एस.एन. के अलावा, दलित झण्डा उठाये और भी ईसाई प्रचारक संस्थान हैं, जो पश्चिमी ग्राहकों के लिए गुप्तचर-सूचनाएँ इकट्ठा करने की गतिविधियों को चलाते हैं जिनकी रुचि में शैक्षिक, ईसाई प्रचारक और राजनीतिक उद्देश्य शामिल हैं।

तमिलनाडु थियोलॉजिकल सेमिनरी

यूनिवर्सिटी ऑफ एडिनबर्ग के एक समाजशास्त्री ह्यूगो गोरिंज 'दलितों की सामाजिक-राजनीतिक लामबन्दी' (Socio-Political Mobilization of Dalit) विषय पर दक्षिण भारत में काम करते हैं। वह दलितों के साथ तत्काल निकट सम्बन्ध बनाने में सहायता के लिए तमिलनाडु थियोलॉजिकल सेमिनरी को धन्यवाद देते हैं। 'राजसी सम्मान देने के अलावा, उन्होंने मुझे राज्य के उत्तरी भाग के दलित आन्दोलन और आन्दोलनकारियों से परिचय कराया जिसे मैंने अन्यथा उपेक्षित कर दिया होता'।[100] उन्हें सेमिनरी में ठहराने वाले दलित रिसोर्स सेंटर का मुख्य उद्देश्य भारत में विभिन्न दलित आन्दोलनों की गतिविधियों के बारे में सूचना संकलित करना है।[101]

तमिलनाडु थियोलॉजिकल सेमिनरी विभिन्न अन्तर्राष्ट्रीय ईसाई प्रचारक संगठनों के साथ सहयोग के लिए एक केन्द्रीय एजेन्सी के रूप में काम करती है और अपने आँकड़ों के प्रभावशाली कोष का उपयोग दलित विषयों को ईसाई ढाँचे में ढालने की रूपरेखा तैयार करने में करती है। उदाहरण के लिए, यह युवा नेताओं को प्रशिक्षण देने के लिए कार्यशालाएँ आयोजित करती है; इन कार्यशालाओं का आयोजन स्टूडेंट्स क्रिश्चियन मूवमेंट द्वारा किया जाता है और वर्ल्ड काउंसिल ऑफ चर्चेज उन्हें प्रायोजित करता है। ऐसी 'सशक्तीकरण कार्यशालाओं' का लक्ष्य युवा विद्यार्थियों में जुनून की लहर पैदा करना है और इस प्रकार उन्हें भारत में ईसाइयत के प्रसार के लिए काम कर रहे विभिन्न समूहों में शामिल कराया जाता है।[102] इस तरह 'शक्तिसम्पन्न युवाओं' से आशा की जाती है कि वे अन्तर्राष्ट्रीय शक्तियों के इशारे पर नाचें जो शक्तियाँ धन की थैलियों, विदेश यात्रा के अवसरों, सम्मानजनक नियुक्तियों, और निःसन्देह सामाजिक और राजनीतिक जीवन की धर्मशास्त्रीय व्याख्या को नियन्त्रित करती हैं। दबे-कुचले लोगों का कल्याण एक सुविधाजनक शीर्षक है जिसके तहत यह सब काम किया जाता है।

गुरुकुल लुथेरन थियोलॉजिकल कॉलेज एण्ड रिसर्च इंस्टीटयूट, चेन्नई

सन 1931 में स्थापित और 1953 में दर्जा बढ़ाये गये इस संस्थान का सम्बन्ध कुख्यात सेरमपुर कॉलेज से है, जिसका उपयोग कभी ब्रिटिश औपनिवेशिक शासन को सुगम बनाने के लिए किया गया था।[103] इसमें दलित धर्मशास्त्र का एक विभाग है, जिसके अध्यक्ष हैं एम. अजारिया, जो 1983 में वर्ल्ड काउंसिल ऑफ चर्चेज की आम सभा में दलित विषयों का प्रतिनिधित्व करने वाले पहले व्यक्ति थे। अजारिया डब्ल्यू.सी.सी. जैसे अन्तर्राष्ट्रीय ईसाई मंच में दलितों के विषयों को उठाने वाले प्रारम्भिक भारतीय ईसाइयों में से एक थे, और एक विदेशी सभा में 'आन्तरिक भारतीय मामलों' को उठाने के लिए शुरू-शुरू में साथी भारतीय ईसाई प्रतिनिधियों द्वारा उनकी आलोचना की गयी थी।[104] वे डर्बन सम्मेलन में भी भाग ले चुके हैं।[105]

अजारिया ने एडिनबर्ग विश्वविद्यालय में एड्रियन बर्ड के दलित धर्मशास्त्र पर पी-एच.डी. शोध प्रबन्ध के लिए अधिकांश आँकड़े दिये, जिसने निष्कर्ष निकाला कि 'हिन्दू धर्म से दलित बहिर्गमन' एक 'मुक्तिप्रदाता अनुभव' है।[106] दलित वॉयस में लिखने वाले अजारिया तर्क देते हैं कि हिन्दू सिद्धान्त दलितों को कैद करते हैं। एम.एम. टॉमस दलित वॉयस के एक अन्य प्रशंसक हैं और इसके समर्थन में धर्मशास्त्रों को उपलब्ध कराते हैं। यह हिन्दू धर्म के शैक्षिक अध्ययन का वह प्रकार है जिसे भारतीयों द्वारा बहुधा प्रस्तुत किया जाता है, जिसके लिए विदेशी संस्थानों द्वारा धन उपलब्ध कराया जाता है। इससे सृजित सामग्री की आपूर्ति पश्चिम के गुट बनाकर दबाव डालने वाले नेटवर्कों को की जाती है।

गुरुकुल कॉलेज वह आधार भी प्रदान करता है जिससे विदेशी ईसाई प्रचारक शिक्षण संस्थान विभिन्न लक्षित भारतीय समुदायों का अध्ययन करते हैं। इसका एक उदाहरण है गिंडा पी. हैराहाप का शोध प्रबन्ध, जिसे संयुक्त राज्य अमरीका की लुथर सेमिनरी में कॉन्ग्रिगेशनल मिशन ऐण्ड लीडरशिप पर डॉक्टर ऑफ मिनिस्ट्री की उपाधि के लिए प्रस्तुत किया गया था। शोध प्रबन्ध एक उदाहरण के रूप में गुरुकुल कॉलेज की रणनीतिगत भूमिका की जाँच करता है कि 'किस प्रकार भारतीय लुथेरन चर्चों ने धार्मिक बहुलतावाद और हिन्दू कट्टरपन्थ की चुनौतियों का उत्तर ''गरीबों और हाशिये पर मौजूद दलितों और आदिवासियों के बीच अपने मिशनरी कार्यों'' का लाभ उठाते हुए दिया है।[107] इस प्रकार, गुरुकुल भारतीय परम्पराओं के विरुद्ध ईसाई प्रचारक कार्यक्रमों के लिए जानकारी इकट्ठी करने के लिए एक केन्द्र के रूप में भी काम करता है।

सन 2006 में, भारत में जर्मनी के राजदूत ने लुथेरन मिशनरियों के आगमन की 300वीं वर्षगाँठ की अध्यक्षता की, और 2008 में जर्मनी के महावाणिज्य दूत इस अवसर पर सम्मानित अतिथि थे। गुरुकुल और गूर्ग-ऑगस्ट यूनिवर्सिटी, गॉटिन्जेन के बीच एक करारनामे पर हस्ताक्षर से जर्मन सम्पर्कों को और बढ़ावा मिला।[108] ऐसे सम्पर्क 'दलित धर्मशास्त्र' को प्रचारित करते हैं जैसा कि दलित वॉयस के पृष्ठों में व्यक्त किया गया है, और हिटलर के प्रशंसकों, यहूदियों के जनसंहार से इनकार करने

वालों, और चुनिन्दा षडयन्त्र सिद्धान्तकारों के साथ समान आधार की साझेदारी करते हैं।[109]

संस्थान का एक आयाम सामाजिक विकास भी है।[110] 'नयी अन्तर्राष्ट्रीय अर्थ व्यवस्था सम्बन्धी शोध केन्द्र' (Centre for Research on New International Economic Order, सी.आर.ई.एन.आई.ई.ओ.) की स्थापना 1979 में गुरुकुल कॉलेज में एक पन्थ-निरपेक्ष नाम से विकास सम्बन्धी एन.जी.ओ. के रूप में की गयी थी। सन 1998 के शैक्षिक वर्ष के बाद गुरुकुल, सी.आर.ई.एन.आई.ई.ओ. और फिनिश लुथेरन चर्च के विद्यार्थियों और कर्मचारियों का आदान-प्रदान कार्यक्रम चल रहा है। सी.आर.ई.एन.आई.ई.ओ. फिनिश और कनाडा की लुथेरन चर्चों के साथ विभिन्न कार्यक्रमों में भी भाग लेता है।[111]

गुरुकुल एम्सटर्डम स्थित फ्री यूनिवर्सिटी की फैकल्टी ऑफ थियोलॉजी द्वारा विकसित किये गये 'कंटेकस्चुअल ऐण्ड क्रॉस-कल्चरल थियोलॉजी' (Contextual and Cros-Cultural Theology) में स्नातकोत्तर उपाधि कार्यक्रमों में एक महत्वपूर्ण भागीदार है, जिसका सौम्य-ध्वनि वाला उद्देश्य है 'अन्तर-सांस्कृतिक धर्मशास्त्री मिलन की सम्पन्नता की फसल काटना'।[112] इसके एक अंग के रूप में यह एक स्नातकोत्तर स्तर के विद्यार्थी को उच्च शिक्षा के लिए प्रत्येक वर्ष एम्सटर्डम भेजता है। ऐसे सम्पर्क संयोग नहीं होते हैं। यूनिवर्सिटी ऑफ एम्सटर्डम के डॉ. मार्टिन बाविंक ने 'वन सी, थ्री कन्टेनडर्स : लीगल प्लूरलिस्म इन द इनशोर फिशरीज ऑफ़ द कोरोमण्डल कोस्ट, इण्डिया' विषय पर अपना पी-एच.डी. शोध प्रबन्ध प्रस्तुत किया।[113] वे डॉमिनिकन चर्च के एक सक्रिय सदस्य हैं, जो दक्षिण भारतीय मछुआरे समुदायों पर आधिकारिक जानकारी वाले व्यक्ति बन गये हैं, और जो भारतीय तटीय समुदायों के लोक नियमों और अधिकारों पर अध्ययनों का नेतृत्व करते हैं। सन 2009 में, बाविंक कमिशन ऑन लीगल प्लूरलिज्म के अध्यक्ष नियुक्त किये गये, जो इंटरनेशनल एसोसिएशन ऑफ लीगल साइंस (आई.ए.एल.एस.) से सम्बद्ध एक अन्तर्राष्ट्रीय समिति है। यह विभिन्न पश्चिमी संस्थानों और स्थानीय एन.जी.ओ., जैसे मूवमेंट फॉर द रिकॉग्निशन ऑफ इण्डिजेनस पीपल्स राइट्स, के बीच एक शक्तिशाली बिचौलिये का काम करती है।[114] यह चर्च को तमिलनाडु के तटीय क्षेत्रों में धर्मान्तरण गतिविधियों को नियोजित करने में न केवल सहायता प्रदान करती है, बल्कि पश्चिम को रणनीतिगत रूप से महत्वपूर्ण भारत के तटीय क्षेत्रों के विकास की गतिविधियों और साथ ही साथ स्थानीय समुदायों को नियन्त्रित करने की अनुमति देती है। दक्षिण भारत के ईसाई मछुआरों में कैथोलिक चर्च की शक्तिशाली राजनीतिक पकड़ है। यह राजनीति में अत्यधिक सक्रिय है, जिसके लिए वह लैटिन अमरीकी मुक्ति धर्मशास्त्री प्रारूपों का उपयोग करती है, जिसे भारत में रह रहे यूरोपीय पादरियों ने भारतीय ईसाई नेताओं को सिखाया है।[115] यह सब 'विकास' की आड़ में किया जा रहा है।

लेकिन एक शोधकर्ता की रपट में एक अलग वास्तविकता बतायी गयी जो लिखते हैं, 'तटीय सामाजिक संगठनों के केन्द्र में कैथोलिक चर्च की भूमिका है जिले के कृषि और शहरी समुदायों से अलग मछुआरे गाँव स्थापित करना जहाँ प्रतिस्पर्धी संस्थागत शक्तियाँ धार्मिक संस्थानों की शक्ति को सीमित कर देती हैं।'[116] इसने मछुआरे समुदाय को रणनीतिगत रूप से भारत की लम्बी समुद्री सीमा पर रखा है, जिसके विदेशी शक्तियों की चपेट में पड़ने का जोखिम है।

दलित अलगाववाद का प्रचार करने वाले व्यक्तिगत विद्वान

अनेक व्यक्तिगत विद्वान भी, जिन्हें रणनीतिगत रूप से यूरोपीय देशों के नीति-निर्माता संस्थानों या भारतीय शैक्षिक संस्थानों में बैठाया गया है, इस विभाजनकारी ज्ञान के विकास और उसे कार्यान्वित करने को सुगम बनाते हैं। वे एक राष्ट्र के रूप में भारत के बारे में वैसा दृष्टिकोण प्रदान करते हैं जो फासीवाद और नस्लवाद अपना रहा है। वे महात्मा गाँधी समेत सभी भारतीय समाज सुधारकों को, एक दमनकारी सामाजिक व्यवस्था का समर्थक, के रूप में प्रस्तुत करते हैं। उन प्रत्येक भारतीयों को जो देशभक्त हैं, नस्लवादी संकल्पनाओं या उद्देश्यों वाला बताया जाता है, जबकि उन लोगों को जो भारतीय समाज को नस्लवादी तरीके से व्याख्यायित करते हैं या जो अलगाववाद को प्रोत्साहित करते हैं, प्रबुद्ध मानवतावादी बताया जाता है। क्रिस्टोफी जाफ्रीलॉट और गेल ऑमवेट ऐसे विद्वानों के उदाहरण हैं जिनके कार्य इस स्वरूप को प्रदर्शित करते हैं। इस प्रक्रिया को चित्र 17.2 में चित्रित किया गया है।

Fig. 17.2 भारत के विखण्डन में दो विद्वानों की विश्वदृष्टियों का समावेश
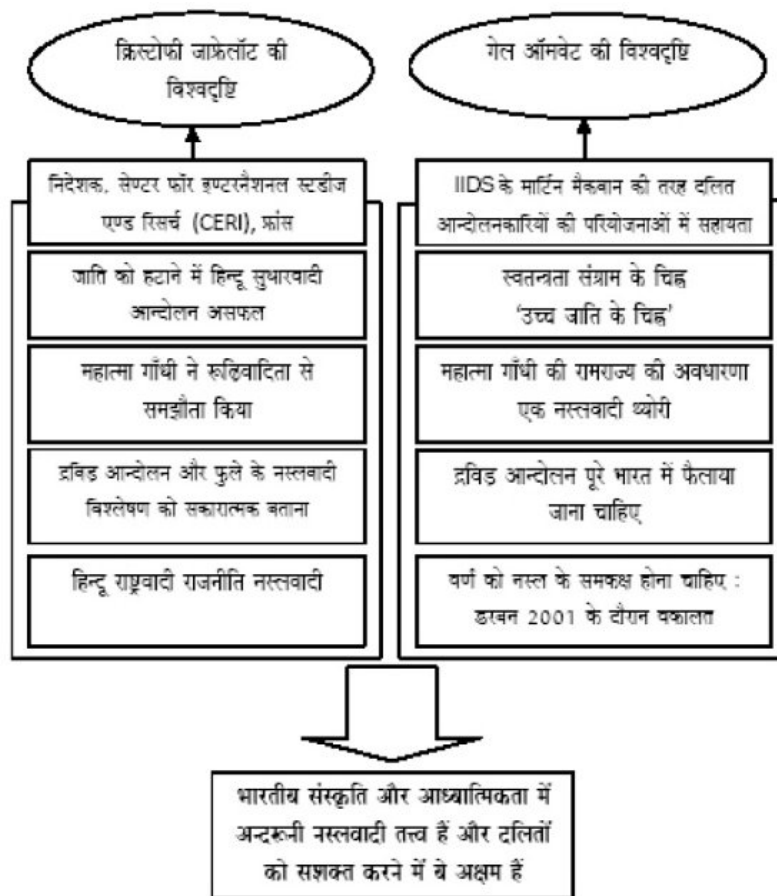
क्रिस्टोफी जाफ्रीलॉट (Christophe Jaffrelot)

क्रिस्टोफी जाफ्रीलॉट, 'अन्तर्राष्ट्रीय अध्ययन और शोध संस्थान' (Centre for International Studies and Research, meer., सी.ई.आर.आई.) के निदेशक, एक फ्रांसीसी विद्वान हैं जो दक्षिण एशिया के राजनीतिक विषयों का अध्ययन कर रहे हैं। वे यह कहते हुए ब्रितानी उपनिवेशवाद को भारत के दमित वर्गों के लिए एक मुक्तिदाता शक्ति के रूप में देखते हैं कि 'निचली जातियों की मुक्ति को सकारात्मक भेदभाव की एक व्यवस्था के माध्यम से प्रोत्साहित किया गया है जिसे अंग्रेजों ने बनाया था'।[117]

जाफ्रीलॉट हिन्दू धर्म और हिन्दू सामाजिक नेताओं को, जिनमें महात्मा गाँधी भी शामिल हैं, लगातार वर्ण-पूर्वाग्रहों से ग्रस्त नेताओं के रूप में चित्रित करते हैं। गाँधी को एक ऐसे व्यक्ति के रूप में चित्रित किया गया है जिन्होंने छुआ-छूत के विरुद्ध अपने संघर्ष में स्वयं से समझौता कर लिया और पीछे हटकर एक रूढ़िवादी हिन्दू पहचान अपना ली। जाफ्रीलॉट लिखते हैं :

> सन 1924 में ट्रावनकोर राज्य के वैखम दलितों ने एक स्थानीय मन्दिर में जा पाने या कम-से-कम मन्दिर से लगी सड़क का उपयोग करने के लिए सत्याग्रह प्रारम्भ किया। गाँधी ने इस जमावड़े का समर्थन किया और वैखम गये, लेकिन स्थानीय पुजारियों से उनकी बातचीत का कोई परिणाम नहीं निकला। पुजारियों ने उनके सभी समझौता प्रस्तावों को अस्वीकार कर दिया और उनके तर्कों ने उन्हें अस्पृश्यता के बारे में अपनी स्थिति पर पुनर्विचार के लिए उत्प्रेरित किया... वे वैखम आन्दोलन में रुचि खो बैठे और बाद में विभिन्न सार्वजनिक सभाओं में उन्होंने स्वयं को एक सनातनी घोषित किया, अर्थात् सनातन धर्म, रूढ़िवादी हिन्दुओं के अनुसार 'शाश्वत धर्म' का अनुयायी।[118]

यह विवरण पूरी तरह मनगढंत है, क्योंकि वास्तव में गाँधी ने स्वयं को वैखम सत्याग्रह के प्रारम्भ से पहले ही एक 'सनातनी हिन्दू' घोषित कर दिया था।[119] गाँधी प्रयास कर रहे थे (व्यापक सफलता के साथ) रूढ़िवाद से अपनाये गये सनातन धर्म और वर्णाश्रम शब्दों को एक अधिक समतावादी संकल्पना के उपयुक्त बनाने के। यह भी कि जाफ्रीलॉट द्वारा वैखम सत्याग्रह को एक विफल और सामाजिक समानता आन्दोलन की भावना को हतोत्साहित करने वाले के रूप में चित्रित करना एक भूल थी। केरल के प्रख्यात इतिहासकार, एस.एन. सदाशिवन, लिखते हैं :

> सत्याग्रह प्रगतिशील शक्तियों की जीत थी, एक सहसा उत्पन्न मानवीय उभार, सामाजिक पुनरुत्थान की एक बड़ी लहर और एक भँवर जिसने भारत भर के विकृत और हठी रूढ़िवाद को अन्तिम चेतावनी दी कि वे स्वेच्छा से अपनी युगों पुराने दमनकारी गतिविधियाँ समाप्त कर दें।...वैखम सामाजिक स्वतन्त्रता के लिए भारत में आयोजित होने वाले आन्दोलनों में सबसे बड़ा और सबसे लम्बा चलने वाला जनान्दोलन था और इसमें भाग लेने के लिए की गयी अपील पर सभी समुदायों के लोगों ने तत्काल अनुकूल प्रतिक्रिया व्यक्त की थी...[120]

वे और आगे ध्यान दिलाते हैं कि जाफ्रीलॉट के आरोपों के विपरीत, आन्दोलन का जोर कम होने के बदले वह वास्तव में केरल के अन्य मन्दिरों वाले शहरों तक फैल गया और विभिन्न पवित्र स्थानों के मन्दिरों की सड़कों पर दलित हिन्दू चले। सन 1927 में गाँधी भी पुन: केरल आये और सरकार को उसके वचनों की याद दिलायी। अन्तत: सरकार नरम हुई और प्रत्येक व्यक्ति द्वारा, चाहे उसका जन्म किसी भी समुदाय में क्यों न हुआ हो, बिना किसी रोक-टोक के मन्दिरों के आसपास की सड़कों के उपयोग करने के अधिकार को माना।[121]

जाफ्रीलॉट किसी भी सामाज सुधारक के सकारात्मक गुणों की माप इस पैमाने पर करते हैं कि उन्होंने स्वयं को हिन्दू समाज से कितना अलग किया है। इस प्रकार जोतिबा गोविन्दराव फुले (1827-90) की प्रशंसा 'निचली जातियों को एक वैकल्पिक मूल्य व्यवस्था देकर उन्हें संस्कृतमय करने के फन्दे' से बचाकर निकालने के लिए की गयी। पहली बार उन्हें एक जातीय समूह के रूप में प्रस्तुत किया गया था जिसे

एक प्राचीन स्वर्णिम युग की विरासत मिली थी और इसलिए जिसकी संस्कृति व्यापक हिन्दू समाज की संस्कृति से अलग थी'।[122] दूसरे शब्दों में, फुले की भारतीय समाज की विभाजनकारी व्याख्या ने जाफ्रीलॉट की योजना में उनके लिए एक विशेष स्थान अर्जित किया। जाफ्रीलॉट फुले के ईसाइयत और ईसा मसीह के प्रति सम्मोहन की प्रशंसा करते हैं :

> फुले के लिए ईसा मसीह समानता और भ्रातृत्व के प्रतीक हैं। वे उन्हें गरीबों का प्रवक्ता मानते हैं।... ईसाई मूल्यों और प्रतीकों को सामान्य लोगों के बीच उन्हीं की भाषा में बताते हुए लोकप्रिय बनाने के माध्यम से फुले ने लोगों को एक नयी, सकारात्मक पहचान से सम्पन्न किया।[123]

जहाँ जाफ्रीलॉट ने हिन्दू राजनीति में नस्लवाद का अविष्कार करने के लिए घुमावदार तरीके वाला रास्ता अपनाया, उन्होंने द्रविड़ पहचान गढ़ने में नस्लवाद के प्रचलन के प्रति आँखें मूँदे रखने वाला रवैया विकसित कर लिया। वे ई.वी. रामास्वामी की प्रशंसा एक 'पश्चिमी व्यक्तिवादी धारा में समतावादी' के रूप में करते हैं।[124] जाफ्रीलॉट ने इस तथ्य पर भी गुमराह किया कि कुड़ी अरसु, रामास्वामी के आन्दोलन की आधिकारिक शोध पत्रिका, खुले रूप से हिटलर की प्रशंसा करती है और यहूदियों तथा ब्राह्मणों के बीच समानान्तर ढूँढ़ निकालती है। कुड़ी अरसु व्यापक रूप से हिटलर के यहूदियों से घृणा करने के कारणों को उद्धृत करती है, जैसा कि मीन काम्फ में पाया जाता है और किस प्रकार उन्होंने जर्मन समाज में यहूदियों के वर्चस्व को समाप्त करने का संकल्प लिया था। यह प्रशंसात्मक ढंग से वर्णन करती है कि किस प्रकार हिटलर ने जर्मनी में यहूदियों के प्रभुत्व को समाप्त करने के अपने संकल्पित वचन को पूरा किया, और यह चेतावनी देती है कि दक्षिण भारत के ब्राह्मण वही ख़तरा उपस्थित करते हैं जो पूर्व-नाजी जर्मनी में यहूदी करते थे।[125] वे पेरियार के अफ्रीकी-द्रविड़ नस्लवाद की प्रशंसा 'निचली जातियों की पहचान की एक प्रत्यक्ष जातीय अवधारणा' के रूप में करते हैं। वे उनकी स्थिति की तुलना दक्षिण अफ्रीका के अश्वेतों से करते हैं।

जाफ्रीलॉट को पश्चिमी संस्थानों द्वारा हिन्दू राष्ट्रवादी आन्दोलन पर एक आधिकारिक व्यक्तित्व माना जाता है। उनके शोध ग्रन्थ 'भारत में हिन्दू राष्ट्रवादी आन्दोलन' (The Hindu Naूग्onaत्ग्ेू श्दनसहू in India) को 1996 में कोलम्बिया यूनिवर्सिटी प्रेस द्वारा प्रकाशित किया गया था। वे हिन्दू राष्ट्रवाद को निरन्तर एक जातीय राष्ट्रवाद के रूप में चित्रित करते हैं,[126] और इसे एक 'विशेष प्रकार का नस्लवाद' बताते हैं।[127] उनके शोध को उत्पीड़न साहित्य में व्यापक रूप से 'डहिन्दू समूहों के एक आधिकारिक अध्ययन' के रूप में उद्धृत किया गया था जिसकी गुजरात के दंगों के बाद पश्चिमी समाचार माध्यमों में बाढ़ आ गयी थी।[128] भारत से सम्बद्ध फ्रांस की विदेश नीति में जाफ्रीलॉट का प्रबल प्रभाव भी है। सी.ई.आर.आई.,

जहाँ वे काम करते हैं, एक विचार मंच है जो सी.ए.पी., फ्रांस के विदेश मन्त्रालय की नीति योजना ईकाई, के साथ मिलकर काम करता है।[129]

गेल ऑमवेट (उaग्त् ध्स्न्ू) : द्रविड़ों और दलितों को इकट्ठा करना

जोड़-तोड़ कर दलित अध्ययनों को एक स्वरूप देने वाले शिक्षाविदों में गेल ऑमवेट का एक अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है। वे बर्कले स्थित यूनिवर्सिटी ऑफ कैलिफोर्निया की एक समाजशास्त्री हैं, और सन 1983 में भारत की नागरिक बनीं। वे उन्नीसवीं शताब्दी की औपनिवेशिक श्रेणियों को मार्क्सवाद के अधीन संरचनाओं के साथ मिलाती हैं, और भारतीय संस्कृति को इस रूप में देखती हैं कि वह अगड़ी जातियों द्वारा निचली जातियों को हज़ारों वर्षों से अपने अधीन रखने के लिए रची गयी है। कोई भी चीज जिसने उपनिवेशवाद के विरुद्ध भारतीयों को उनके संघर्ष में एकजुट किया वे केवल 'उच्च-जाति के प्रतीक' हैं।[130] यहाँ तक कि वे आर्य श्रेष्ठता की प्रवृत्ति महात्मा गाँधी में भी बताती हैं, यह कहते हुए कि उन्होंने 'आर्यों को अपने पूर्वजों के रूप में देखा। उन्होंने जिसे उद्योगवाद की बुराई के रूप में देखा उसके विपरीत उन्होंने आदर्श, सामंजस्यपूर्ण ग्रामीण समाज की ओर वापस जाना चाहा जिसमें परम्पराएँ ही शासन करती थीं। इसे ही उन्होंने राम राज्य कहा'।[131]

ऑमवेट मध्यवर्गीय दलितों को फटकारती हैं जब वे स्वयं को शेष भारतीय समाज के साथ सफलतापूर्वक एकीकृत करते हैं, और कहती हैं कि वे अपनी जड़ों के प्रति लज्जित हैं।[132] इस प्रकार, ऑमवेट लॉर्ड रिस्ली की 'हिन्दू समाज से अनार्यों की बड़ी संख्या को अलग करने की ब्रिटिश औपनिवेशिक परियोजना' को पुनर्जीवित कर रही हैं।[133] इसके अतिरिक्त, यह दावा करते हुए वे हिन्दू धर्म को नस्लवाद से जोड़ने के प्रयास करती हैं कि 'लोगों को किसी-न-किसी कारण जैविक संरचना में नीच और सामाजिक रूप से ख़तरनाक के रूप में देखा जाता है'।[134]

वे दलित और द्रविड़ आन्दोलनों की परस्पर विरोधी धाराओं में सैद्धान्तिक तालमेल बिठाने के प्रयास करती हैं।[135] ऑमवेट द्रविड़ आन्दोलन के तमिल पहचान तक सीमित हो जाने को एक विफलता की तरह देखती हैं। इसके बदले वे सम्पूर्ण भारत में एक द्रविड़ उपस्तर की पहचान चाहती हैं। वह 'एक तथ्य' के रूप में कहती हैं कि 'द्रविड़ (या तमिल)-भाषी सिंधु घाटी सभ्यता पश्चिमोत्तर भारत में स्थित थी' और वे 'सभी स्थानों पर अनार्य (प्राय: द्रविड़, कभी-कभी ऑस्ट्रो-एशियाई या अन्य) लोकप्रिय धार्मिक पन्थों के मूल और सम्पूर्ण भारत में सांस्कृतिक प्रथाओं के साक्ष्य' देखती हैं।[136] इन 'तथ्यों' के आधार पर वे वैसे आन्दोलन शुरू करने के प्रयास कर रही हैं जो उसे नकारेगा जिसे वह 'वैदिक-आर्य विरासत' कहती हैं। उनके शैक्षिक शोध का स्पष्ट उद्देश्य भारतीय संस्कृति का दानवीकरण करना और सम्पूर्ण भारत के विखण्डन और विद्रोह को वैध ठहराना।

सन 2001 में डर्बन में वर्ण को नस्ल के समतुल्य बताने के अभियान में वे इसके समर्थन में दलीलें देने वाले ईसाइयों के साथ मिल गयी थीं। प्रमुख भारतीय समाजशास्त्री आन्द्रे बेटेल ने ऐसे प्रयासों को 'राजनीतिक रूप से शरारतपूर्ण' और 'इससे भी बदतर, वैज्ञानिक रूप से बकवास' कहा।[137] गेल ऑमवेट ने इसके उत्तर में दो भागों में एक आलेख लिखा जिसका शीर्षक था 'वर्ण, नस्ल और समाजशास्त्री' (Caste, Race and Sociologists), जिसमें उन्होंने विशेष रूप से केवल आर्य नस्ल के सिद्धान्त पर ही भरोसा किया जिसका उपयोग औपनिवेशिक भारतविदों ने वर्ण-व्यवस्था को व्याख्यायित करने के लिए किया था।[138] उनकी बेहद शान से की गयी अम्बेडकर की प्रशंसा और एक लोकप्रिय ठप्पे के रूप में अम्बेडकर के उपयोग के बावजूद उनके द्वारा कही गयी बातों का एक भी उद्धरण नहीं दिया गया, हालाँकि अम्बेडकर ने इस विषय विशेष पर कई खण्डों में लिखा था। ऐसा इसलिए किया गया क्योंकि अम्बेडकर को उद्धृत करने से उनकी अपनी स्थिति का खण्डन हो जाता, क्योंकि अम्बेडकर ने आर्यों द्वारा आक्रमण किये जाने के सिद्धान्त का दो-टूक खण्डन किया था।

ऑमवेट तो मैककिम मैरिऑट (McKim Mariot) रॉनल्ड इण्डेन (Ronald Inden)और निकोलस डर्क्स (Nicholas Dirks) जैसे समकालीन विद्वानों के शोधों का भी अवमूल्यन करती हैं, जिन्होंने वर्ण-व्यवस्था को मजबूत बनाने में ब्रितानी उपनिवेशवाद की भूमिका को दिखाया; वे इन विचारों को 'हिन्दुत्व के सर्वाधिक कट्टर तर्ककर्ताओं को प्रसन्न करने वाले' के रूप में देखती हैं।[139]

जहाँ वे भारतीय राष्ट्र के विरुद्ध तर्क देती हैं और भारतीय उद्योगपतियों की आलोचना करती हैं, वे भारतीय अर्थव्यवस्था के उस ढंग से वैश्वीकरण का समर्थन करती हैं, जो भारत को पश्चिम का अनुचर बना देगा। उनके पूर्व वामपन्थी सहकर्मी वैश्वीकरण पर उनके रुख का विश्लेषण करते हुए उनके लेखन में उल्लेखनीय निरन्तरता पाते हैं। वे इस बात पर ध्यान दिलाते हैं कि किस प्रकार वे ब्रिटिश शासन के लिए दलितों के मुँह में अंग्रेजी राज के लिए प्रशंसा के शब्द डालती हैं। इन आलोचकों के अनुसार :

> ऐसी स्थिति ऑमवेट के हाल के उदारवाद समर्थक रुख को आधिकारिक बनाती है : नव-उपनिवेशवाद और आर्थिक निर्भरता अमूर्त शैक्षिक अवधारणाएँ हैं, जो कृषि समुदाय के जीवन के लिए अप्रासंगिक हैं।[140]

ऑमवेट दलित मोर्चों का उपयोग करने वाले ईसाई प्रचारक आन्दोलनकारियों के साथ काम करती हैं। जहाँ संयुक्त राज्य अमरीका में डी.एफ.एन. और यूरोप में आई.डी.एस.एन. दलित कार्ड का उपयोग करते हुए भारत को दी जाने वाली अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक सहायता को नियन्त्रित करने के प्रयास कर रहे हैं, वहीं ऑमवेट ने ईसाई आन्दोलनकारी मार्टिन मैकवान और उनके आई.आई.डी.एस. सहकर्मी सुखदेव थोराट के साथ सन 2000 में 'सामाजिक न्याय परोपकारिता : धन उपलब्ध

कराने वाले संगठनों का नजरिया और रणनीतियाँ' (Social Justice Philanthropy: Approaches and Strategies of Funding Organizations)नामक पुस्तक प्रकाशित की है। इस पुस्तक का उद्देश्य है विश्व भर की धन दाता एजेंसियों को सुझाव देना, ताकि वे अपने धन वर्ण विभाजन की उनकी अवधारणा के समर्थन में दें।[141]

पराकाष्ठा

इस अध्याय में दिये गये कुछ संगठनों और व्यक्तियों के वर्णन के अलावा अनगिनत दूसरे भी हैं। उदाहरण के लिए, सन 2008 में एक मध्य यूरोपीय ईसाई नेटवर्क BosNewsLife के सदस्य विशाल अरोड़ा ने वॉशिंगटन के सेंटर ऑन धर्म एण्ड पॉलिटिक्स में एक शोध पत्र प्रस्तुत किया।[142] इस शोध पत्र ने हिन्दू धर्म को दलित अधिकारों के विरुद्ध के रूप में, तथा ईसाई राजनीतिक समूहों को उनके लिए संघर्षरत के रूप में चित्रित किया। विभिन्न भारतीय राज्यों में धोखाधड़ी से धर्मान्तरण को रोकने के लिए जो कानून लागू हैं उन्हें अरोड़ा द्वारा 'धर्मान्तरण-विरोधी' कानूनों के रूप में चित्रित किया गया। उनके शोध पत्र ने उत्पीड़न के आँकड़े दिये और सेंट टॉमस के (हिन्दुओं के हाथों) शहीद होने को भारत में ईसाइयत के प्रारम्भ के रूप में वर्णित किया।[143] उन्होंने अनेक ईसाई प्रचारक और मिशनरी संगठनों का वर्णन 'धार्मिक स्वतन्त्रता के क्षेत्र में सक्रिय रूप से संलग्न' के रूप में किया।[144]

> ये सब संस्थान और व्यक्ति एक अच्छी तरह संयोजित अन्तर्राष्ट्रीय अभियान के अंग हैं जो यूरोपीय एजेंसियों को हर उपलब्ध संसाधन के माध्यम से वर्ण समस्या के अन्तर्राष्ट्रीयकरण करने के लिए समर्थन देता है। सन 2009 में टाइम्स ऑफ इण्डिया में छपे एक समाचार के अनुसार भारतीय अधिकारियों ने भारत को 'यूरोपीय देशों' द्वारा एक नवीकृत भारत-विरोधी आक्रमण का मुकाबला करता हुआ पाया, 'जो भारत को इस आरोप पर पछाड़ना चाहते हैं कि वर्ण-व्यवस्था नस्लवाद का ही एक स्वरूप है' और कि 'स्कैंडिनेवियाई देशों ने वर्ण-व्यवस्था पर अपने पुराने रुख को पुनर्जीवित कर लिया है'। भारतीय अधिकारियों ने इसकी वजह इस क्षेत्र में स्थिरता पर पैदा होने वाले अन्तर्निहित ख़तरे को स्पष्ट कर दिया है, क्योंकि तब 'भारत का प्रत्येक वर्ण एक भिन्न नस्ल हो जायेगी'।[145]

18
भारत की ईसाई उम्मत

'भारत में अन्तर्राष्ट्रीय और साथ ही स्थानीय चैनलों का ईसाई प्रसारण का उद्‌भव राष्ट्रों की भौगोलिक सीमाओं से बहुत दूर तक जाकर एक ''ईसाई उम्मत'' के साथ पहचान स्थापित करने के लिए स्थान उपलब्ध कराता है।'

—प्रदीप नाइनन टॉमस, भारतीय ईसाई विद्वान[1]

हमने देखा है कि किस तरह विदेशी विद्वता का उपयोग लगभग दो शताब्दियों से भारतीय पहचान में हेर-फेर करने के लिए किया जाता रहा है, और किस तरह हाल के अन्तर्राष्ट्रीय हस्तक्षेप विभिन्न अलगाववादी समूहों को शक्तिसम्पन्न बनाते हैं। भारत के गरीब क्षेत्रों में ईसाई प्रचारक चैनलों के माध्यम से विदेशी धन की बहुत बड़ी राशि के आ जाने से चर्च और उनसे जुड़े मिशन कुकुरमुत्तों की तरह उग आने योग्य बन गये हैं। बहुधा, नये चर्च स्थानीय संस्कृतियों और परम्पराओं के विरुद्ध झड़पों में शामिल होते हैं, जिन्हें नये-नये धर्मान्तरित लोगों के मन में एक बुराई की तरह चित्रित किया जाता है। उदाहरण के लिए, तमिलनाडु के कन्याकुमरी जिले में इस गहन रणनीति ने एक ईसाई बहुसंख्यक वर्ग का सृजन कर भी दिया है, और अब सार्वजनिक उत्सवों, या उनकी परम्पराओं या प्रतीकों के प्रदर्शन के समय हिन्दुओं पर भारी दबाव डाला जाता है। वैसे प्रचार के माध्यम से, जो अन्य बहुलतावादी समाजों में घृणित साहित्य माने जायेंगे, नये धर्मान्तरित लोग भर्ती किये जाते हैं। हिन्दू धर्मस्थलों को बहुधा हिंसात्मक तरीकों से नष्ट किया जाता है और स्थानीय गाँवों के नाम ईसाई नामों में बदले जाते हैं। आदिवासी आध्यात्मिक और चिकित्सा प्रणालियों को विलुप्त किया जा रहा है, और विदेशी विकल्पों से उन्हें हटाया जा रहा है या उनका नाम बदलकर ईसाइयत में मिलाया जा रहा है।

यह आक्रामक धर्मान्तरण बहुधा स्थानीय लोगों में हिंसात्मक प्रतिक्रियाएँ उत्पन्न करता है जो अपनी संस्कृति और परम्पराओं को इन आक्रमणों से बचाने का प्रयास करते हैं। क्रोधित मूल निवासी बहुधा समर्थन के लिए हिन्दू राष्ट्रवादी संगठनों की ओर मुड़ते हैं, क्योंकि पन्थ-निरपेक्ष समूह ऐसे पचड़ों से अलग ही रहना पसन्द करते हैं या ईसाई पक्ष को ही सहायता देना पसन्द करते हैं। उसके बाद ऐसे गठबन्धनों को समाचार माध्यमों द्वारा ईसाइयत से संघर्षरत हिन्दू राष्ट्रवादियों के रूप में चित्रित किया जाता है, तब भी जब इन झड़पों में से अनेक उस समय प्रस्फुटित हुई होती हैं जब मूल निवासी अपनी ऐतिहासिक पहचान और संस्कृतियों की रक्षा करना चाह रहे होते हैं। आक्रामक ईसाई धर्मान्तरण ने इस हिंसा चक्र को भड़काया है।

ईसाई प्रचारक संगठनों द्वारा समर्थित अन्तर्राष्ट्रीय समाचार माध्यम ऐसे काण्डों को व्यापक रूप से प्रसारित करते हैं, लेकिन ईसाई प्रचारकों की प्रारम्भिक भड़काऊ

गतिविधियों की उपेक्षा करते हैं। इस प्रकार के समाचार माध्यमों द्वारा ध्यान केन्द्रित करने के परिणामस्वरूप उत्पीड़न साहित्य का उत्पादन होता है। पश्चिम में समाचार माध्यमों, शिक्षाविदों, और नीति निर्माताओं के बीच उत्पीड़न साहित्य के कुटीर-उद्योग का प्रसार होता है। संघर्ष वाले क्षेत्रों को अन्धकार वाले क्षेत्र के रूप में चित्रित किया जाता है जो सभ्य विश्व के हस्तक्षेप की बाट जोह रहा है। यह पश्चिम से ईसाई प्रचारक हितों के लिए और अधिक धन के लिए उत्प्रेरित करता है, और यह चक्र चलता रहता है।

चित्र 18.1 इन प्रक्रियाओं का एक सिंहवलोकन प्रस्तुत करता है, जिसका वर्णन और अधिक विस्तार से किया जायेगा।

Fig. 18.1 हिंसा के चक्र का सृजन
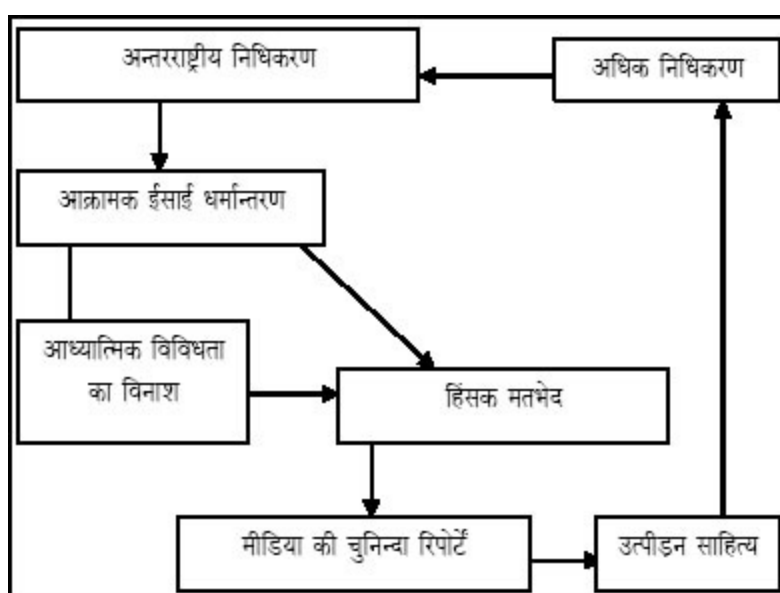
संस्थाओं को धन देना और उन्हें बनाना

यह अध्याय दिखायेगा कि अन्तर्राष्ट्रीय ईसाई प्रचारक संगठनों ने विकास जैसी पन्थ-निरपेक्ष अवधारणाओं के उपयोग के माध्यम से भारत के ईसाईकरण के लिए महत्वाकांक्षी योजनाएँ बनायी हैं। वर्ल्ड विजन जैसे संगठन ने, जिसने पश्चिमी गुप्तचर एजेंसियों के साथ भागीदारी कर ली है, सम्पूर्ण भारत में व्यापक अवसंरचना (नेटवर्क) सृजित करने के लिए भारी वित्तीय राशि का निवेश किया है। पश्चिम से सरकारी सहायताएँ, जैसे यू.एस.एड द्वारा धन देना भी, इन ईसाई प्रचारक संस्थानों के माध्यम से किया जा रहा है।

समाचार माध्यम

भारत में इसाइ प्रचारक सैटेलाइट टीवी चैनल कुकुरमुत्ते की तरह उग आये हैं ताकि वे ईसाइयत के रूढ़िवादी संस्करण का प्रसार कर सकें जो जनसमुदाय को संयुक्त राज्य अमरीका के दक्षिणपन्थी ईसाइयों से भावनात्मक रूप से जोड़ते हैं। हम यह प्रदर्शित करेंगे कि ऐसे खुल्लम-खुल्ला ईसाई प्रचारक चैनलों के अतिरिक्त ईसाई पत्रकारों ने सुनियोजित तरीके से भारत के पन्थ-निरपेक्ष समाचार माध्यमों में घुसपैठ की है, जहाँ वे दुनिया को भारत का उत्पीड़न साहित्य प्रदान करने के लिए अन्तर्राष्ट्रीय ईसाई मीडिया नेटवर्क (जैसे गेग्राफा और बॉसलाइफ) द्वारा तैनात किये जाते हैं।

गुप्तचरी

डेनवर स्थित प्रोजेक्ट जोशुआ जैसी बड़े पैमाने पर चलायी जा रही परियोजनाओं द्वारा, भारतीय समुदायों के व्यापक मानवशास्त्रीय अध्ययन कराये जा रहे हैं। ईसाई प्रचारक बिक्री और पश्चिमी गुप्तचर एजेंसियों के साथ आँकड़ों के आदान-प्रदान के लिए वे हर एक भारतीय समुदाय का विवरण तैयार करते हैं। वे अन्तर-राष्ट्रीय एजेन्सियों के मार्ग को सुगम बनाते हैं ताकि वे भारतीय समुदायों में अपने हस्तक्षेप का बन्दोबस्त दूर से ही कर लें। इसमें ईसाइयत के बारे में शिक्षित करने की आड़ में सामाजिक उथल-पुथल पैदा करना भी शामिल है जो लक्षित समुदायों को कमजोर बनाता है। ऐसे भी संस्थान हैं जो ईसाई प्रचारक उद्देश्यों के लिए भारत का शैक्षिक अध्ययन करते हैं और जिनके भारतीय ईसाई प्रचारक संस्थानों के साथ औपचारिक सम्बन्ध हैं।

ये सभी कारक मिलकर भारत में एक प्रबल जनाधार निर्मित करते हैं जो वित्तीय, सांस्थानिक और भावनात्मक स्तर पर पश्चिम के दक्षिणपन्थ पर निर्भर हो। चित्र 18.2 प्रदर्शित करता है कि किस प्रकार विभिन्न पश्चिमी एजंसियाँ—सरकारी और गैर-सरकारी दोनों प्रकार के खिलाड़ी—सामाजिक और राजनीतिक स्तरों पर प्रभावी नियन्त्रण के लिए भारत में संस्थागत ढाँचों को सहारा देने वाला तन्त्र निर्मित करने में निवेश कर रहे हैं।

Fig. 18.2 भारत में अन्तर-राष्ट्रीय नियन्त्रण और हस्तक्षेप लिए संस्थाओं का निर्माण
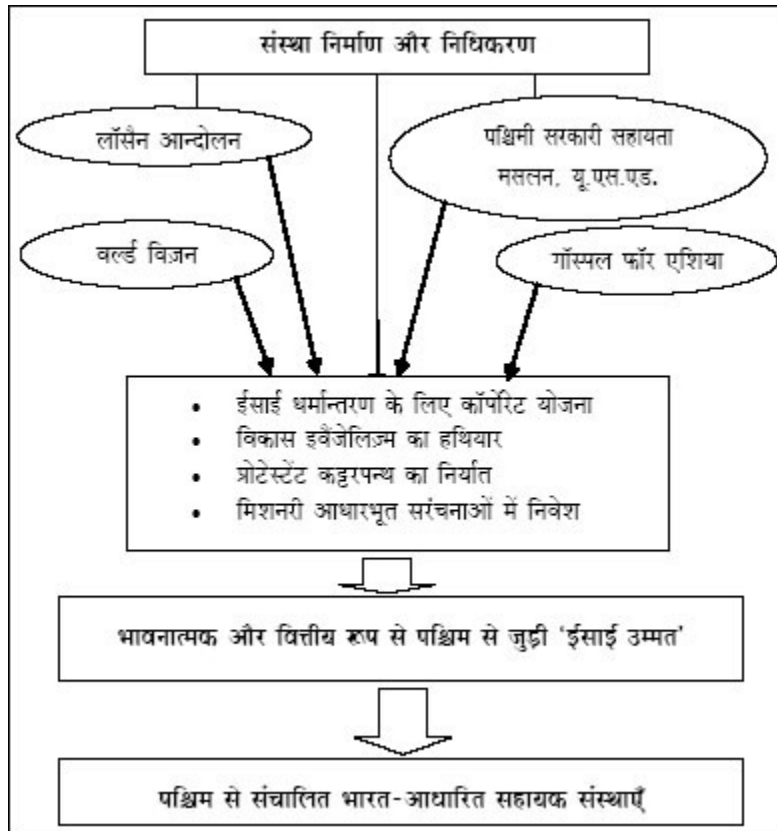
संयुक्त राज्य अमरीका आधारित भारतीय ईसाइयत का विस्तार

ईसाई प्रचारक संगठनों के माध्यम से भारत के अन्दर पश्चिमी प्रभुत्व के लिए प्रभावी ढंग से एक आधार निर्मित किया जा रहा है। उद्देश्य है एक रूढ़िवादी ईसाइयत का प्रसार और उसमें विश्वास करने वाले अनुयायियों की ऐसी जनसंख्या का निर्माण जिसका पश्चिम के प्रति प्रबल भावनात्मक सम्बन्ध और उस पर निर्भरता हो। संयुक्त राज्य अमरीका में ईसाई दक्षिणपन्थ विशेष रूप से सक्रिय है और इस मामले में महत्वाकांक्षी भी।

भारत के संविधान निर्माताओं ने ईसाई प्रचारक आक्रमण के विरुद्ध मूल निवासी समुदायों के धर्मों की रक्षा के लिए कानून बनाये थे। लेकिन भारत के अन्दर और बाहर की ईसाई प्रचारक शक्तियाँ इन कानूनों को हटाने के लिए मिलकर प्रयास कर रही हैं, जो संवेदनशील सीमाक्षेत्रों के राज्यों, जैसे अरुणाचल प्रदेश और हिमाचल प्रदेश, और भारत में अन्यत्र गलत हथकण्डे अपनाकर धर्मान्तरण करना प्रतिबन्धित करते हैं।

ऑस्ट्रेलिया के क्वीन्सलैण्ड विश्वविद्यालय के पत्रकारिता और संचार के प्राध्यापक, प्रदीप नाइनन टॉमस (Pradip Ninan Thomas), स्पष्ट करते हैं कि किस

प्रकार संयुक्त राज्य अमरीका का गठजोड़ तमिलनाडु की राजनीति में गहरी घुसपैठ कर चुका है :

> जहाँ पैट रॉबर्टसन, पॉल क्रोच और अन्य भारत में राजनीति को प्रभावित करने में सीधे संलग्न नहीं हैं, वे संयुक्त राज्य अमरीका में एक गुट के रूप में अवश्य ही काम कर रहे हैं। उनके भारतीय समकक्ष स्थानीय राजनीति में अत्यधिक संलग्न हैं। जहाँ एजरा सर्गुनम, जिन्होंने एव्री ट्राइब, एव्री टंग सम्मेलन का आयोजन किया था, डी.एम.के. से जुड़े हुए हैं (इसी कारण डी.एम.के. और कांग्रेस के बड़े प्रभावशाली नेता, जिनमें भारतीय वित्त मन्त्री पी. चिदम्बरम भी शामिल थे, उस सम्मेलन में उपस्थित रहे), एस.आई.एस.डब्ल्यू.ए. ट्रस्ट (साउथ इण्डिया सोल विनर्स एसोसिएशन) जो टी.बी.एन. के वितरण अंग के रूप में काम करता है, के डॉ. प्रकाश ए.आई.ए.डी.एम.के. के प्रबल समर्थक हैं और राज्य अल्पसंख्यक आयोग के अध्यक्ष भी। ईसाई प्रचारकों द्वारा धार्मिक सम्मेलनों और धर्मान्तरण के आयोजन के लिए अनुमति हेतु राजनीतिक सम्पर्क आवश्यक होते हैं, जैसे कि बेनी हिन का है, जिनका भारत में कुछ वर्गों द्वारा विरोध किया जाता है। इसके बदले में ये संगठन भारी मात्रा में विदेशी धन उपलब्ध कराने वाले भामाशाह बनते हैं, विशेषकर संयुक्त राज्य अमरीका से आने वाले धन के लिए, जो भारत के राजनीतिक सन्दर्भ में बहुत बड़े आयोजन करने के लिए आवश्यक है, जैसे बेनी हिन के क्रूसेड।[2]

इसके बाद, हम संयुक्त राज्य अमरीका स्थित प्रमुख खिलाड़ियों की एक दृष्टान्त सूची प्रस्तुत करेंगे।[3]

विशाल मंगलवादी : भारत के पैट रॉबर्टसन

विशाल मंगलवादी एक भारतीय अमरीकी ईसाई प्रचारक हैं जिनका सन्देश आश्चर्यजनक ढंग से यूरोप केन्द्रित ईसाइयत है। वे दावा करते हैं कि अंग्रेजों के अधीन उपनिवेशवाद भारत के लिए बहुत अच्छा था, और उन्होंने ब्रितानी औपनिवेशिक काल के सबसे दुष्ट ईसाई प्रचारक, विलियम कैरी (Wiliam Carey), की विशेष रूप से प्रशंसा करते हुए एक पुस्तक लिखी है।[4] उनका शोध यह है कि भारत के कष्ट इसके मूर्तिपूजक धर्म के कारण ही रहे हैं। भारत उन समाजों में से एक है जिसने 'अनेक स्थानीय और क्षेत्रीय देवताओं की ओर देखा है', या 'स्वयंसिद्ध प्रमाण मान लिया है कि जीवन का उद्देश्य परम शून्य के साथ एकाकार होना है जो अन्तिम सत्य है', या किसी तरह 'गूढ़ दार्शनिक और धार्मिक रहस्यों' में खो गया है। वहीं दूसरी ओर, 'एकमात्र सभ्यता जिसने अपनी प्रेरणा के लिए मुख्य रूप से बाइबल की ओर ही देखा, वह पश्चिम है, जो कि मानवीय क्रूरता, निराशा और पतन पर विजय पाने में सक्षम रहा है', और सभी भारतीयों के लिए यही अनुकरणीय प्रारूप होना चाहिए। वे खेद प्रकट करते हैं कि पश्चिम अपनी सफलता में आत्मतुष्ट हो गया है, यह

भूलते हुए कि बाइबल ही वह 'पुस्तक थी जिसने पश्चिम को विश्व अर्थव्यवस्था, राजनीति और संस्कृति में सबसे आगे रखा था'।[5]

मंगलवादी औपनिवेशिक ईसाई धर्मान्तरण को 'औपनिवेशिक शासन को सुधारने और भारत का भला करने के लिए' एक भद्र प्रयत्न मानते हैं। इतिहास की उनकी व्याख्या यह है कि जहाँ भारत की स्वतन्त्रता महात्मा गाँधी के आन्दोलन के परिणामस्वरूप आयी, वहीं वास्तव में भारत की स्वतन्त्रता ईसा मसीह के सन्देश द्वारा उत्पादित फल है। भारत का एक स्वतन्त्र और आधुनिक राष्ट्र में रूपान्तरण एक विशाल प्रयोग था जिसे बाइबल के विश्व दृष्टिकोण से संचालित नेताओं द्वारा परिकल्पित और कार्यान्वित किया गया था। ये महान नेता, उनके अनुसार, अंग्रेज़ ईसाई प्रचारक थे! दूसरे शब्दों में, अंग्रेज ईसाई प्रचारकों को ही भारत के सच्चे संस्थापक माना जाना चाहिए।

वे गाँधीवादी अहिंसा की ख्याति को भी झूठ मानते हैं जिसे 'फिल्म में किस्से की तरह गढ़ा गया' है।[6] वे सारे हिन्दू धर्म को हिन्दुत्व के समतुल्य, सारे हिन्दुत्व को 'सांस्कृतिक राष्ट्रवाद' और 'सांस्कृतिक फासीवाद' से युक्त बताते हैं। **भारतीय लोकतन्त्र विफल हो गया है**, वे आरोप लगाते हैं, और इसका कारण यह है कि इसने बाइबल का उपयोग अपने दिशा निर्धारण यन्त्र के रूप में नहीं किया। वे ऐसी भाषा में योग पर प्रहार करते हैं जो वस्तुनिष्ठ और बौद्धिक दिखती है, और इस तरह वे जो प्रदान कर रहे हैं उसे अधिकांश पश्चिमी लोग योग और हिन्दू धर्म के विभिन्न पन्थों का एक अत्यधिक विचारशील और सन्तुलित विश्लेषण मानेंगे।[7] लेकिन उनके निष्कर्ष पूर्वाग्रह से ग्रस्त और अपमानजनक हैं। उदाहरण के लिए, वे बल देकर कहते हैं कि सत्य तक पहुँचने के लिए तन्त्र पागलपन के उपयोग के बारे में नहीं हिचकता। तन्त्र मानता है कि स्वयं सृष्टि एक दिव्य पागलपन है; इसलिए, स्वस्थचित्तता को ईश्वर के मन्दिर के बाहर छोड़ ही देना होगा।

चूँकि वे इस परिकल्पना से प्रारम्भ करते हैं कि हिन्दू धर्म एक भ्रम है, विभिन्न गुरुओं और पन्थों का उनका विश्लेषण उन्हें इन दो सम्भावनाओं तक पहुँचाता है : 'प्रश्न है कि क्या वे मादक पदार्थों के कारण भ्रम में हैं, या क्योंकि उन्होंने अपनी आध्यात्मिक यात्रा का प्रारम्भ एक झूठे विश्व दृष्टिकोण से किया जिसे उन्होंने गलती से सत्य का मानचित्र मान लिया था?' हिन्दू धर्म की मौलिक समस्या नैतिकता है, जिसे केवल बाइबल ही सुलझा सकता है, वे बल देकर कहते हैं। यह दर्शन या योग सम्बन्धी प्रयासों द्वारा सुलझने योग्य नहीं है। नीचे उद्धृत अंश का पहला पैराग्राफ उनके रोगनिर्णय का सार प्रस्तुत करता है कि भारतीय संस्कृति हिन्दू धर्म के कारण पीड़ित है और उसके बाद का पैराग्राफ बाइबल के अनुसार उनका निदान प्रस्तुत करता है :

> भारतीय दार्शनिक परम्परा, अपनी सारी तेजस्विता के बावजूद, एक ऐसी संस्कृति को जन्म नहीं दे सकी जिसने मानवाधिकार और व्यक्तियों के

> अन्तर्निहित मूल्य को स्वीकार किया। न ही योग का एकेश्वरवाद भारतीय समाज को परम नैतिकता के लिए एक ढाँचा दे सका—सही और गलत, न्यायपूर्ण और अन्यायपूर्ण की एक प्रबल भावना। योग अभ्यासों ने हमारे शरीरों को लचीलापन प्रदान किया है, लेकिन दुर्भाग्यवश योग के दर्शन ने हमारी नैतिकताओं को कुछ अधिक ही लचीलापन ला दिया है—और हमें [अर्थात भारतीयों को] विश्व के सर्वाधिक भ्रष्ट राष्ट्रों में से एक बना दिया है।
>
> बाइबल सिखाती है कि मानव की समस्या जैविक या पराभौतिक नहीं बल्कि **नैतिक** है। ईश्वर ने मनुष्य की उत्पत्ति एक अच्छे जीव के रूप में की थी। (क्या आप एक सर्वशक्तिमान सृष्टिकर्ता से इससे अलग किसी और चीज की आशा करेंगे?) हमारे पहले माता-पिता [ऐडम और ईव] ने ईश्वर की अवज्ञा करने का मार्ग चुना और इसलिए पापी बन गये। वही प्रवृत्ति हम सभी तक चलती चली आयी... बचपन से ही हमारा रुझान बुराई की ओर है... हमारी केन्द्रीय समस्या, बाइबल के अनुसार, यह है कि हम पापी हैं। हमें एक दैवी त्राता की आवश्यकता है जो हमारे पापों को क्षमा कर दे और हमारे हृदयों को—हमारे अस्तित्व के मर्मस्थल को रूपान्तरित कर दे।[8]

मंगलवादी आगे दावा करते हैं कि ब्रितानी साम्राज्य के माध्यम से ईसाइयत के सभ्य बनाने वाले प्रभावों के पूर्व भारतीय धर्म मूलत: बर्बर था। वे बल देकर कहते हैं कि अंग्रेजी राज को हटाने से भारत फिर से फिसलकर वापस बर्बरता में चला गया :

> लेकिन अब जबकि भारत में ईसाई प्रभाव घट गया है, पुराना तान्त्रिक पन्थ खुले-आम सतह पर वापस आ रहा है। भारत में लगभग बावन ज्ञात केन्द्र हैं जहाँ तन्त्र की शिक्षा दी जाती है और उसका अभ्यास कराया जाता है। अपने सर्वाधिक अपरिष्कृत रूप में इसमें यौन अंगों की पूजा, यौन नंगे नाच भी शामिल होते हैं जिनमें रक्त और मानव वीर्य पीना, काला जादू, मानव बलि और शमशान भूमि में मृत व्यक्तियों के सड़ते शवों के माध्यम से दुष्ट आत्माओं से सम्पर्क भी शामिल हैं, आदि।[9]

उनके व्याख्यान और शोध पत्र विश्व भर के प्रमुख धर्मशास्त्रीय केन्द्रों में प्रस्तुत किये गये हैं। वे अमरीकी ईसाई प्रचारक और शैक्षिक समर्थन का उपयोग करते हुए भारत की धार्मिक राजनीति में भी अत्यधिक सक्रिय हैं।[10] पहले उन्होंने पन्थ-निरपेक्ष राजनीति भी आजमायी और वे सत्ता के पद तक पहुँचे। सन 1990 के दशक में, जनता दल के राष्ट्रीय मुख्यालय में कृषि सुधार के पर्यवेक्षण के प्रभारी भी बनाये गये, जो उस समय भारत की सत्तारूढ़ पार्टी थी।[11] उसके बाद उन्होंने मध्य प्रदेश में 'ग्रामीण विकास' के लिए एक ईसाई संगठन शुरू किया, दिल्ली में एक धर्मशास्त्री शोध संस्थान स्थापित किया, और कई दशकों तक भारत में विभिन्न अल्पसंख्यक राजनीतिक पार्टियों में भाग लिया। अब वे अपनी इन सभी विशेषज्ञताओं का उपयोग अमरीकी विश्वविद्यालयों के परिसरों में 'दक्षिण एशिया के लिए शैक्षणिक संसाधन' विकसित

करने, और साथ ही साथ अमरीकी सेमिनेरियों के लिए 'हिन्दू अध्ययन' विशेषज्ञता प्रदान करने में कर रहे हैं।[12]

हर प्रकार के ईसाई शास्त्रियों द्वारा व्यापक रूप से यह 'प्रमाणित' करने के लिए मंगलवादी को आधिकारिक रूप से उद्धृत किया जाता है कि हिन्दू धर्म श्रेष्ठता में ईसाइयत से नीचे है। उदाहरण के लिए, एक वेबसाइट उनकी आधिकारिकता का उल्लेख यह दावा करने के लिए करती है कि हिन्दुओं में 'ईसाई दान प्रवृत्ति को समझने में वास्तविक कठिनाई है क्योंकि हिन्दू धर्म में ऐसी कोई समान परम्परा नहीं है'।[13]

उनके लेखन भारत में साम्प्रदायिक गृह युद्धों और वर्ण-आधारित युद्धों की चर्चा विस्तार से करते हैं। माओवादी-ईसाई हत्यारों द्वारा एक अस्सी वर्षीय वृद्ध हिन्दू साधु की हत्या के बाद उड़ीसा में हुई हाल की साम्प्रदायिक हिंसा के आलोक में मंगलवादी ने एक फ्रांसीसी ईसाई पत्रिका *Journal Chretien* में एक लम्बा लेख लिखा। उन्होंने विस्तार से लिखा कि किस तरह ईसाइयों और माओवादियों का एक साथ होना खनिज सम्पदा से समृद्ध पूर्वी राज्य उड़ीसा में एक नयी सत्ता संरचना को जन्म दे सकता है :

> उड़ीसा में ईसाई समर्थक माओवादियों ने अनेक विशिष्ट हिन्दू नेताओं को, जो ईसाई विरोधी हिंसा के लिए जिम्मेवार हैं, पहले ही चेतावनी दे रखी है कि उनके ही नाम उनके अगले निशाने पर हैं। कुछ सौ 'ईसाई-माओवादी' गुरिल्ला उड़ीसा में सत्ता-समीकरण बदल देंगे।[14]

स्वाभाविक प्रसन्नता के साथ वे अपने पाठकों को सूचित करते हैं कि 'कम-से-कम एक अच्छे अमरीकी ईसाई (सम्भवत: जो ईसाई-माओवादी गठजोड़ से अनभिज्ञ हैं) ने अपने कांग्रेस सदस्य से पूछा है कि क्या उन्हें उड़ीसा में ईसाइयों को बन्दूकें खरीदने में सहायता देनी चाहिए'। भारत की बीमारियों के लिए 'हिन्दू धर्म के देवताओं, जिनके तुष्टिकरण की आवश्यकता है', पर आरोप लगाते हुए वे शोक व्यक्त करते हैं कि हिन्दुओं ने 'अंग्रेज ईसाइयों द्वारा निर्मित स्वच्छ संस्थानों' को भ्रष्ट कर दिया है। पन्थ-निरपेक्षता के एक कट्टर विरोधी, वे लिखते हैं :

> पन्थ-निरपेक्ष लोकतन्त्र विफल हो गया है, लेकिन भारत में कोई वैसा मंच नहीं है जो बाइबल के आर्थिक और राजनीतिक चिन्तन की शिक्षा देता है। चर्च को अपने युवाओं को सुधार के लिए प्रशिक्षित करना चाहिए और न्याय के संस्थानों को चलाना चाहिए जिसे हिन्दू पन्थ-निरपेक्षता ने भ्रष्ट कर दिया है। ईसा मसीह और माओ उड़ीसा में एक साथ हो गये हैं, क्योंकि हज़ारों वर्षों से दमित लोगों ने हिन्दू सामाजिक-आर्थिक व्यवस्था के विरुद्ध खड़े होने का निर्णय किया है।[15]

रवि जकारियाज इंटरनैशनल मिनिस्ट्रीज

सम्पूर्ण उत्तर अमरीका का एक शक्तिशाली ईसाई नेटवर्क, रवि जकारियाज अन्तर्राष्ट्रीय दूतालय (Ravi Zacharias Internatinal Ministries), राजनीतिक सिद्धान्त और धन दोनों प्रदान करने के लिए भारतीय समूहों के साथ दृढ़तापूर्वक जुड़ा हुआ है। उनमें से कुछ जोरदार ढंग से अन्तर्राष्ट्रीय अनुदानों की याचना करते हैं, जबकि अन्य व्यक्तिगत धर्मादा दान पर भरोसा करते हैं। कुछ अपने ईसाई प्रचारक सम्पर्कों का उल्लेख करते हैं, जबकि अन्य अपनी धार्मिक जड़ों के बारे में अधिक नहीं बताते। फिर भी सभी कुछ हद तक गोरों के अपराध बोध पर भरोसा करते हैं ताकि वे भारत के दबे-कुचले लोगों को बचाने में उनकी सहायता कर सकें।

मंगलवादी के ऐसे निकट सहयोग के उदाहरणों में एक हैं रवि जकारियाज।[16] सन 1984 में उन्होंने संयुक्त राज्य अमरीका में रवि जकारियाज इंटरनैशनल मिनिस्ट्रीज की स्थापना की, 'ईसाई धर्मान्तरण, ईसाई मण्डनवाद और प्रशिक्षण' के मिशन के साथ।[17] जकारियाज युवाकाल में उत्तर अमरीका चले गये थे, जहाँ अन्य लोगों के अलावा बिली ग्राहम द्वारा उनका पोषण किया गया था। वे सर्वाधिक प्रभावी पादरियों में से एक बन गये हैं जो धर्मशास्त्रियों, सरकारी नीति निर्धारकों और विद्यार्थियों को परामर्श देते हैं और जिनका विश्व भर में प्रभाव है।

उन्हें एक ऐसे व्यक्ति के रूप में स्थापित किया गया है 'जो हिन्दू धर्म में डूबे रह कर पले-बढ़े',[18] हालाँकि वास्तव में वह एक ऐसे परिवार से आते हैं जो कई पीढ़ियों से ईसाई रहे हैं।[19] हिन्दू धर्म का मूल 'दक्षिण के काली चमड़ी वाले द्रविड़ों, भारत के मूल निवासियों' और 'गोरी चमड़ी वाले अपनी ही मूर्तिपूजक धर्म के मिश्रण वाले आर्यों' के धार्मिक विश्वासों के मिलन में ढूँढ़ निकालते हुए,[20] वे द्रविड़ ईसाइयत को आगे बढ़ाते हैं, जिसके लिए वे दक्षिण भारतीय विद्वानों—आदि शंकर से लेकर डॉ. राधाकृष्णन तक—की परम्परा में सेंट टॉमस को भी घुसाते हैं।[21] मंगलवादी की तरह वे भी विकासशील देशों की सभी सामाजिक समस्याओं के लिए पूर्वी धर्मों को दोषी ठहराते हैं, जबकि उपनिवेशवाद के प्रभावों को पूरी तरह अनदेखा कर देते हैं। उनके द्वारा थाईलैंड में वेश्यावृत्ति की उच्च दर को बौद्ध धर्म से जोड़े जाने ने संयुक्त राज्य अमरीका के एक वर्ग में आक्रोश उत्पन्न किया और उनकी कड़ी आलोचना की गयी।[22]

जकारियाज, दक्षिणपन्थी राजनीतिक लेखक दिनेश डी'सूजा और राजनीतिज्ञ तथा लुईसियाना के गवर्नर बॉबी जिन्दल जैसे अन्य भारतीयों के साथ, अमरीकी ईसाइयों में महत्वपूर्ण हो गये हैं। हालाँकि डी'सूजा और जिन्दल कैथोलिक हैं, वे भी जकारियाज की तरह राजनीतिक रूप से दक्षिणपन्थी प्रोटेस्टेंट रूढ़िवादी शक्तियों के साथ मिले हुए हैं।[23] उदाहरण के लिए, सन 2008 में बॉबी जिन्दल ने वैज्ञानिकों के विरोध की उपेक्षा की और एक विधेयक को अनुमति दे दी (लुईसियाना साइंस एडच्यूकेशन ऐक्ट) जिसे व्यापक रूप से 'राज्य में सृष्टिवाद के द्वार खोलना' माना जाता है।[24]

इंटरनैशनल इंस्टीटयूट ऑफ चच मैनेजमेंट

भारतीय ईसाइयत फैलाने के लिए सर्वाधिक प्रबलता से अनुदान की याचनाओं में से एक का दृष्टान्त भारत स्थित इंटरनैशनल इंस्टीटयूट ऑफ चर्च मैनेजमेंट द्वारा दिया गया है,[25] जो अमरीकी संगठनों को याचना पत्र भेजता है। उनके पत्रों में से एक इस कथन के साथ प्रारम्भ होता है : 'हम निम्नलिखित परियोजनाओं के लिए 10 लाख डालर के अनुदान हेतु आवेदन करना चाहेंगे'। जिन गतिविधियों के लिए यह धन की याचना करता है वे इस प्रकार सूचीबद्ध हैं :

- भारत में एक चर्च खरीदना या निर्मित करना
- गरीब विद्यार्थियों के लिए छात्रवृत्ति जो धर्मशास्त्रीय महाविद्यालयों के शुल्क भुगतान नहीं कर सकते
- भारत और विदेशों में ईसाई नेतृत्व गोष्ठियाँ आयोजित करना; 'नेतृत्व' हिन्दू धर्म के बारे में नकारात्मक विचारों का प्रसार करने के लिए एक सभ्य शब्द है, जैसे 'मुक्ति' ईसाई धर्मान्तरण के लिए
- अनाथालयों, विधवाओं, वृद्धों, अपंगों और अन्य जरूरतमन्द लोगों के लिए जो आपदाओं से पीड़ित हैं
- बच्चों के लिए सहायता
- पुस्तकालयों के लिए पुस्तकें
- अवसादग्रस्त लोगों के लिए परामर्श
- धर्मशास्त्री अध्ययनों के लिए दिन में चलने वाले महाविद्यालय, सन्ध्या में चलने वाले महाविद्यालय और आवासीय महाविद्यालय के रूप में ईसाई पुरोहिताई के कार्यों का विस्तार
- भारत की विभिन्न भाषाओं और बोलियों में ईसाई पुस्तकों के अनुवाद
- ऑनलाइन इंटरनेट, टीवी, वीडीसी, डीवीडी, रेडियो, पुस्तकों और पत्रिकाओं के माध्यम से ईसा मसीह के सन्देश का प्रसार
- सुदूर क्षेत्रों में जिन लोगों तक पहुँच नहीं है, वहाँ तक पहुँचना

यह याचना पत्र सैकड़ों ईसाई धार्मिक, खैराती और सामाजिक कार्य परियोजनाओं की सेवा में पच्चीस वर्षों की मिनिस्ट्री के रिकार्ड का उल्लेख करता है। ऐसी याचना भारत और संयुक्त राज्य अमरीका दोनों देशों में शुद्ध रूप से वैध है। यह भारतीय ईसाई प्रचारक समूह अपने पत्र में सबसे ऊपर अपनी सम्बद्धताओं का उल्लेख करता है, और इनमें शामिल है : इंटरनैशनल इंस्टीटयूट ऑफ चर्च मैनेजमेंट ऑफ न्यू यॉर्क; अमरीकन एक्रेडिटिंग एसोसिएशन ऑफ थियोलॉजिकल इंस्टीटयूशन्स, नॉर्थ कैरोलाइना; एपोस्टॉलिक काउंसिल ऑफ एडच्यूकेशनल अकाउंटैबिलिटी, कोलोराडो;

और नैशनल एसोसिएशन फॉर थियोलॉजिकल एक्रिडिटेशन, बेंगलुरू। अहानिकारक दिखने वाले ये संस्थान भारतीय लोगों के बीच वास्तव में ईसाई रूढ़िवाद फैलाते हैं, जिसमें सृष्टिवाद का छद्मविज्ञान भी शामिल है।[26]

वर्ल्ड विजन (World Vision)

वर्ल्ड विजन सबसे बड़े ईसाई बहुराष्ट्रीयों में से एक है और धर्मान्तरण कराने की इसकी भूख अत्यन्त आक्रामक है। इसकी कुख्याति एक पश्चिमी विद्वान द्वारा दिये गये निम्न विवरण से ही स्पष्ट है :

> वर्ल्ड विजन ने अनेक अवसरों पर संयुक्त राज्य अमरीका की सरकार के एक गुप्तचर की तरह सूचनाएँ इकट्ठा करने वाले अंग के रूप में काम किया है। सन 1970 के दशक में वर्ल्ड विजन पर अभियोग लगाया गया था कि उसने सी.आई.ए. के लिए वियतनाम की भूमि के आँकड़े जुटाये थे। अमरीकी सैनिकों के क्षेत्र छोड़ जाने के बाद वर्ल्ड विजन ने शरणार्थी शिविरों के प्रबन्धन में एक प्रमुख भूमिका निभायी थी। ... वर्ल्ड विजन 'पीली वर्षा' अभियान में भी सोवियत संघ को बदनाम करने के लिए एक महत्वपूर्ण खिलाड़ी बना। इस षडचन्त्र में वर्ल्ड विजन का नाम तब आया जब बैंकॉक स्थित अमरीकी दूतावास ने अनुरोध किया कि राहत एजेन्सी शरणार्थियों से लिये गये चिकित्सकीय नमूने भेजे जिन्होंने 'पीली वर्षा' के विष से पीड़ित होने का दावा किया है। थाईलैंड में शरणार्थियों के साथ काम करने वाले एक मिशनरी के अनुसार अमरीकी अनुदान पर वर्ल्ड विजन की निर्भरता के कारण वह उस अनुरोध को मानने के लिए विवश था कि शरणार्थियों के रक्त के नमूने अधिक निरपेक्ष अनुसंधानकर्ताओं के बदले अमरीकी दूतावास को भेजे जायें।[27]

इसकी भारतीय वेबसाइट एक मानवतावादी छवि प्रस्तुत करती है, स्वयं को 'एक ईसाई मानवतावादी संगठन को रूप में' वर्णित करते हुए 'जो गरीबी और अन्याय के बीच गुजर-बसर करने वाले बच्चों, परिवारों और समुदायों के जीवन में टिकाऊ परिवर्तन लाने के लिए काम कर रहा है'।[28] इसकी अमरीकी वेबसाइट (जहाँ से इसके लिए अधिकांश धन एकत्रित किया जाता है) अपने मिशन के बारे में अधिक बेबाक है :

> 'वर्ल्ड विजन यूनाइटेड स्टेट्स' में कर्मचारियों की नियुक्ति के लिए सभी आवेदनकर्ताओं पर विचार उनकी ईसाई प्रतिबद्धता के आधार पर किया जायेगा। भर्ती के लिए विचार की प्रक्रिया में शामिल होगा : आवेदनकर्ताओं से ईसा मसीह के साथ उनकी आध्यात्मिक यात्रा और उनके सम्बन्धों पर चर्चा; ईसाई सिद्धान्तों की समझ; वर्ल्ड विजन के आस्था सम्बन्धी वक्तव्य को और/या ईसा के सन्देशवाहकों के धर्म-सिद्धान्त को स्वीकार करना और उनकी समझ।[29]

आज अमरीकी सरकार में एक अन्तर्राष्ट्रीय धर्मादा संगठन के रूप में वर्ल्ड विजन का जो दबदबा है, उसे गुप्तचर सूचनाएँ एकत्रित करने में उसकी भागीदारी और उसके साथ ही उन देशों में अस्थिरता लाने की गतिविधियों में उसकी संलग्नता द्वारा व्याख्यायित किया जा सकता है जिन्हें अमरीका अपने शत्रु के रूप में देखता है। 'केम्ब्रिज लातीनी अमरीका का इतिहास' (*Cambridge History of Latin America*) एक उद्धरण प्रस्तुत करता है कि वर्ल्ड विजन किस प्रकार काम करता है, जो उसके सामान्य तौर-तरीके का संकेत देता है :

> वर्ल्ड विजन और इसी तरह के मिशनरी समूह बाहरी कारकों के रूप में काम करते हैं, जो स्थानीय समुदायों के लिए उनकी सांगठनिक पहचान और धार्मिकता का सम्मान करते हुए काम नहीं करते।... इसका सैद्धान्तिक तन्त्र एक शक्तिशाली उपकरण है न केवल पूँजीवाद में कृषि अर्थव्यवस्थाओं को वास्तविक रूप में मिलाने की प्रक्रिया का साथ देने के लिए, बल्कि समुदाय को अचानक परमाणुओं की तरह छोटे-छोटे टुकड़ों में बँटने के लिए प्रेरित करने के लिए भी, ताकि उन परिस्थितियों में उत्पादन के पूँजीवादी सम्बन्धों की व्यापक रूप से त्वरित स्थापना हो जिसमें देश विशेष में पूँजीवादी प्रणाली का विकास वैसे ढंग से होगा जो कृषि से अलग कर दिये गये श्रम बल को कभी खपा नहीं पायेगा।[30]

दक्षिण अमरीकी देशों में विकास रणनीतियों पर किया गया एक अन्य अध्ययन यह उजागर करता है कि किस प्रकार वर्ल्ड विजन ने सामाजिक विद्वेष भड़काया था :

> सन 1979 से 1985 के बीच, वर्ल्ड विजन ने 47 लाख डालर से ज्यादा आर्थिक सहायता ईक्वाडोर को दी थी। ... सन 1980 के दशक में ईक्वाडोर (Ecuador) की सरकार ने पुनर्वनरोपण, जल, ग्रामीण विद्युतीकरण और छोटी उत्पादन परियोजनाओं के लिए इण्डियन लोगों की जमीनें ठेके पर वर्ल्ड विजन को दी थीं। ... राज्य के अधिकारियों ने शिकायत की कि वर्ल्ड विजन ने उनके कार्यक्रमों को पछाड़ा, उपस्थिति के एकाधिकार के आधार पर समुदाय की मनोदशा को एक विशेष स्वरूप दिया, और यहाँ तक कि स्पर्धी परियोजनाओं को नष्ट करने के लिए ग्रामीणों को भड़काया। ... धन सामान्यत: इण्डियन ईसाई प्रचारक जमावड़ों या उभरते हुए प्रोटेस्टेंट राजनीतिक संगठनों को वितरण के लिए दिया गया। अनेक मामलों में वर्ल्ड विजन के कर्मचारी नगरपालिका प्रशासन में एक ही साथ कई पदों पर आसीन रहे। इसने इण्डियन समुदायों के पारम्परिक और ईसाई प्रचारक घटकों को संघर्ष तक पहुँचा दिया, जिसमें परियोजना की सम्पत्ति को नष्ट करना और यहाँ तक कि कोष के व्यापक कुप्रशासन के साथ-साथ हिंसा भी शामिल थी।[31]

वर्ल्ड विजन का इससे भी अधिक गम्भीर व्यवहार साल्वाडोर के शरणार्थियों के मामले में था :

> वर्ल्ड विजन ने तीन साल्वाडोर (Salvador) शरणार्थियों की मृत्यु में भूमिका निभायी। वर्ल्ड विजन के शिविर-संयोजक उन्हें हॉण्डुरास (Honduras) की स्थानीय सैन्य चौकी पर ले गये, जहाँ उन्हें तत्काल गिरफ्तार कर लिया गया। कुछ समय बाद हॉण्डुरास के सैनिक शिविर में घुसे और दो अन्य शरणार्थियों को गिरफ्तार किया। वर्ल्ड विजन के प्रशासकों ने इस घटना के बारे में अन्य राहत एजेंसियों को कोई सूचना नहीं दी। दूसरे दिन, एक शरणार्थी को छोड़ दिया गया, लेकिन तीन दिनों बाद तीन अन्य के शव पाये गये, [जिन्हें] सीमा के पार साल्वाडोर की तरफ गोली मारकर मौत के घाट उतार दिया गया था। इन 'खराब सेबों' को छोड़, वर्ल्ड विजन—अपनी एक नीति के रूप में— आर्थिक सहायता प्राप्त करने वाले सभी साल्वाडोर शरणार्थियों के रिकार्ड रखता था और टेलिफोन और टेलेक्स के माध्यम से कोस्टा रिका (Costa Rica)स्थित वर्ल्ड विजन के कार्यालय को प्रतिदिन सूचनाएँ भेजता था। वर्ल्ड विजन की व्यापक गुप्तचर सूचना एकत्रीकरण की प्रक्रियाएँ इस अभियोग को बल देती हैं कि यह समूह सी.आई.ए. के साथ मिलकर काम कर रहा था।[32]

श्रीलंका में, वर्ल्ड विजन की गतिविधियों ने एक गहरा संकट खड़ा कर दिया। श्रीलंका के लेफ्टिनेंट कर्नल ए.एस. अमरशेखर लिखते हैं :

> जार्ज बुश जूनियर के संयुक्त राज्य के राष्ट्रपति बनने के बाद, उन्होंने एक भाषण दिया जिसमें उन्होंने कहा कि वे विकासशील तीसरे विश्व के देशों को उनकी सरकारों के माध्यम से अब समर्थन नहीं देंगे, बल्कि अमरीकी सहायता उन देशों में काम कर रहे अमरीकी ईसाई राहत संगठनों के माध्यम से दी जायेगी। वर्ल्ड विजन ऐसा ही एक संगठन है। 'राष्ट्रपति के ग़ैर-सरकारी संगठनों के जाँच आयोग' (Presidential Comision of Enquiry on non- Governmental Organizations) के समक्ष प्रस्तुत किये गये साक्ष्यों के आधार पर किसी भी तरह के तर्कसंगत सन्देह से परे यह प्रमाणित कर दिया गया था कि वर्ल्ड विजन अमरीकी धन से चलने वाला एक जोड़-तोड़ करने वाला ईसाई प्रचारक संगठन था, जो अपने एक कार्यक्रम के माध्यम से जिसकी पहचान 'द मस्टर्ड सीड परियोजना' के रूप में हुई थी, सिंहली बौद्धों को ईसाइयत में धर्मान्तरित करने का चुपके-चुपके प्रयास कर रहा था। इस प्रकार उनके कृत्यों के उजागर होने के बाद, उन्होंने परियोजना को समेट लिया और अनेक वर्षों तक चुप रहे, लेकिन ताजा उत्साह के साथ उन्होंने अपनी गतिविधियों को पुन: प्रारम्भ किया है।[33]

भारत में वित्तीय और संचालन दोनों रूपों में वर्ल्ड विजन की प्रबल उपस्थिति है। भारत में होने वाली प्रत्येक प्राकृतिक आपदा इसके लिए जमीनी स्तर तक गहरी घुसपैठ करने का एक अवसर प्रदान करती है। यहाँ तक कि भारतीय क्रिकेट आयोजनों पर दबाव डाला जाता रहा है कि वे वर्ल्ड विजन के लिए धन एकत्र करें।[34] अतीत का इसका रिकार्ड दिखाता है कि किस प्रकार एक तथाकथित राहत संगठन

पाश्चिमी सरकारों के लिए गुप्तचर सूचना एकत्रित करने वाली एजेन्सी के रूप में काम कर सकता है, और साथ ही भू-राजनीति के एक सक्रिय ऐजेंट के रूप में भी।

तहलका द्वारा प्रकाशित एक खोजी रिपोर्ट ने भारत में वर्ल्ड विजन के छल और उसके वित्तीय दबदबे को उजागर किया था। रपट वर्ल्ड विजन के जन सम्पर्क चेहरे और उसके वास्तविक उद्देश्य की तुलना के साथ प्रारम्भ होती है :

> भारत में वर्ल्ड विजन (डब्ल्यू.वी.) स्वयं को एक 'ईसाई राहत और विकास एजेन्सी के रूप में प्रस्तुत करता है जिसे बिना किसी नस्ल, क्षेत्र, धर्म, लिंग और वर्ण के भेदभाव के भारत के गरीबों में भी सर्वाधिक गरीबों के साथ काम करने का चालीस वर्षों से अधिक का अनुभव है'। लेकिन तहलका के पास संयुक्त राज्य अमरीका से चलाये जाने वाले डब्ल्यू.वी. का वित्तीय वक्तव्य है, जिसे 'घरेलू राजस्व सेवा' (Internal Revenue Service) में जमा कराया गया था, और जिसमें इसे एक चर्च मिनिस्ट्री के रूप में वर्गीकृत किया गया है। ...
>
> यह डब्ल्यू.वी. के भारत में 'विकास' की पहुँच का निम्न आकलन देता है :
>
> कन्फेडरेशन ऑफ इण्डियन इण्डस्ट्रीज (सी.आई.आई.) 2003 की अपनी वित्तीय रपट में कहती है कि 'असम सरकार के ग्रामीण विकास विभाग ने डब्ल्यू.वी. इण्डिया को राज्य में एक अग्रणी विकास एजेन्सी माना है और अनुशंसा की है कि डब्ल्यू.वी. द्विपक्षीय धन प्राप्त करने के लिए पसन्दीदा संस्थान बने। सरकार ने राज्य में विकास के कार्यों के लिए 800 लाख डालर के प्रस्ताव बनाने में डब्ल्यू.वी. से सहायता भी माँगी है'। तीस सितम्बर 2002 को समाप्त हुए वर्ष के लिए आय और व्यय का ब्योरा दिखाता है कि इसकी कुल आय 95.5 करोड़ रुपये थी, जिसमें विदेशी सहायता की 87.8 करोड़ रुपये की राशि शामिल थी। एक संगठन के लिए, जो दावा करता है कि वह केवल विकास और राहत कार्यों में ही संलग्न है, इसकी स्थिति और गतिविधियों की सही प्रकृति काफी कुछ छिपी हुई है।[35]

हालाँकि डब्ल्यू.वी. कई भारतीय राज्यों की अर्थव्यवस्थाओं में एक प्रमुख खिलाड़ी है, यह अपनी धर्मान्तरण गतिविधियों को किसी आड़ में छिपाकर रखने के प्रति अत्यधिक सतर्क है। तहलका रपट बताती है कि यह किस प्रकार किया जाता है :

> हालाँकि डब्ल्यू.वी. इण्डिया द्वारा प्रकाशित कोई भी साहित्य अपने ईसाई प्रचारक मिशन का उल्लेख भी नहीं करता, डब्ल्यू.वी. इण्डिया के विदेशी प्रकाशन बड़े गर्व से अपने 'आध्यात्मिक' घटकों की घोषणा करते हैं। ... मयूरभंज में, एक बार फिर उड़ीसा में, वर्ल्ड विजन (डब्ल्यू.वी.) नियमित रूप से आध्यात्मिक विकास के कार्यक्रम अपने एडीपी पैकेज के एक अंग के रूप में चलाता है। डब्ल्यू.वी. रपट कहती है : 'इस क्षेत्र में बीच-बीच में ईसाई कार्यकर्ताओं और संगठनों का विरोध भड़क उठता है, सामान्यत: उनके द्वारा जिनका निहित स्वार्थ

आदिवासी जनों के निरक्षर और शक्तिहीन बने रहने में है। डब्ल्यू.वी. पादरियों और चर्च नेताओं के लिए नेतृत्व पाठ्यक्रम चलाकर स्थानीय चर्चों को समर्थन देता है'। वर्ल्ड विजन इण्डिया भील जनजाति क्षेत्रों में सक्रिय है और खुले-आम अपने ईसाई प्रचारक इरादों को स्वीकार करता है : 'भील जन पूर्वजों की आत्माएँ पूजते हैं, लेकिन सभी हिन्दू त्योहार भी मनाते हैं। दुष्ट आत्माओं के बारे में उनके अन्धविश्वास उन्हें परिवर्तन के प्रति सशंकित करते हैं, जो सामुदायिक विकास को बाधित करता है। ए.डी.पी. के कर्मचारी उन्हीं भील जनों के साथ रहते हैं जिनके लिए वे काम करते हैं, और इस प्रकार गाँव वालों का विश्वास प्राप्त करते हैं, और लोगों के लिए अपने ईसाई प्रेम का प्रदर्शन अपने कार्यों और प्रतिबद्धता के माध्यम से करते हैं।[36]

इसके धनदाताओं में से अनेक अच्छे इरादों वाले हैं लेकिन वर्ल्ड विजन के सतह पर दिखने वाले सामाजिक कार्यों से परे उसकी गतिविधियों के बारे में भोले-भाले और अनभिज्ञ हैं। उदाहरण के लिए, सी.एन.एन.-आई.बी.एन. के प्रमुख सम्पादक राजदीप सरदेसाई, जिन्होंने वर्ल्ड विजन के माध्यम से इन शब्दों के साथ एक बच्चे को आर्थिक संरक्षण दिया : 'एक परिवार के रूप में हम एक बच्चे को आर्थिक संरक्षण देते हैं। एक जीवन को बदलने में सक्षम होना हमें बड़ा सन्तोष प्रदान करता है। हम आशा करते हैं कि अन्य लोग भी ऐसा ही करने को प्रेरित होंगे। जिन्हें आवश्यकता है उनके सशक्तीकरण से बढ़कर और कोई खुशी नहीं होती'।[37]

वर्ल्ड विजन की घुसपैठ ने इसे उच्च सरकारी अधिकारियों तक पहुँच प्रदान की है। उड़ीसा में इसके ठेठ उदाहरण हैं, राधाकान्त नायक भारतीय संसद के एक सदस्य जिन्हें उनके 'दलितों और आधिवासियों को ऊपर उठाने में योगदान' के लिए पुरस्कृत किया गया है।[38] हाल में, एक अस्सी वर्षीय हिन्दू साधु और एक साध्वी की हत्या (एक घटना जिसकी चर्चा उन्नीसवें अध्याय के भाग 'भारत से होते हुए माओवादी लाल गलियारा' शीर्षक के अन्तर्गत की गयी है) के मामले में नायक पर सन्देह किया जा रहा था। वे दोनों दलितों और आदिवासियों के बीच काफी लम्बे समय से काम कर रहे थे ताकि उनके लिए शिक्षण और चिकित्सा सेवाएँ स्थापित की जा सकें, और उन्हें इसलिए निशाना बनाया गया, क्योंकि उन्हें ईसाई प्रचारकों द्वारा प्रतिस्पर्धी के रूप में देखा जा रहा था। समाचार पत्रिका 'इण्डिया टुडे' ने समाचार छापा था कि 'भुवनेश्वर के राजनीतिक दायरे विश्वास करते हैं कि पुलिस या तो आर.के. नायक या उनके लोगों पर हाथ डाल सकती है'। पत्रिका ने उजागर किया कि नायक भारत की संघीय सरकार में सचिव के रूप में काम कर चुके हैं, और 1996 में उनका नाम संघीय कैबिनेट सचिव के पद के उम्मीदवार के रूप में आया था, लेकिन उन्हें 'विरुद्ध इंटेलिजेंस ब्यूरो रपटों' के कारण यह पद नहीं दिया गया था।[39] वर्ल्ड विजन के बारे में इन सभी परेशान करने वाले तथ्यों के बावजूद, संवेदनशील सीमा क्षेत्र के राज्य असम के ग्रामीण विकास विभाग ने न केवल डब्ल्यू.वी.-इण्डिया को राज्य में एक अग्रणी

विकास एजेन्सी के रूप में स्वीकार किया और अनुशंसा की कि डब्ल्यू.वी. को द्विपक्षीय धन प्राप्त करने के लिए वरीयता दी जाये, बल्कि सरकार ने राज्य में विकास कार्यों के लिए 800 लाख के प्रस्ताव तैयार करने के लिए डब्ल्यू.वी. की सहायता भी माँगी। जे.पी. राजखोवा, असम सरकार के एक पूर्व मुख्य सचिव, ने इसे 'सर्वाधिक परेशानी पैदा करने वाला' पाया।[40]

भारतीय निगरानी रखने वाले संगठनों ने सी.आई.ए. की संलग्नता की काली छाया का प्रश्न तत्परता से उठाया है। यह आरोप लगाया गया है कि भारतीय गुप्तचर सेवाओं के लिए चिन्तित करने वाले 'विदेशी ऐजेंट' वर्ल्ड विजन जैसे संस्थानों से आते हैं और ऐसी कुछ परियोजनाओं के बारे में आरोप है कि उनकी सम्बद्धताएँ वर्ल्ड विजन और सी.आई.ए. के बीच हैं।

गॉस्पल फॉर एशिया (Gospel for Asia)

गॉस्पल फॉर एशिया (जी.एफ.ए.) अच्छी तरह वित्तपोषित टेक्सास स्थित ईसाई मिशनरी संगठन है जिसका भारत में व्यापक ढाँचागत जाल (नेटवर्क) है। यह एक अध्ययन के विषय की तरह है कि एक ईसाई प्रचारक संगठन का उपयोग भारत को अधीन बनाने की चाह रखने वाली अन्तर्राष्ट्रीय शक्तियों के हाथों एक प्रभावी उपकरण के रूप में किस प्रकार किया जाता है। इसकी स्थापना के.पी. योहन्नान द्वारा की गयी थी, जिन्होंने एक किशोर के रूप में उस समय प्रशिक्षण प्राप्त किया जब वह रूढ़िवादी ईसाई समूह ऑपरेशन मोबिलाइजेशन के लिए काम कर रहे थे।[41] जी.एफ.ए. अपने अस्तित्व के लिए रूढ़िवादी धर्मप्रचारक डब्ल्यू.ओ. क्रिसवेल का ऋणी है, जो 1950 के दशक में अपने नस्लवादी दृष्टिकोण के लिए कुख्यात थे। तेल अरबपति एच.एल. हण्ट द्वारा समर्थित क्रिसवेल भेदभाव के सर्वाधिक प्रमुख बचावकर्ता बन गये, यह माँग करते हुए कि नस्लों और उसके साथ-साथ धर्मों को पृथक किया जाये। उन्होंने अफ्रीकी-अमेरिकियों और मेक्सिकी-अमेरिकियों से जुड़ी कचड़े और गन्दगी की छवि को उभारा, और मनुष्यों के सार्वभौमिक भ्रातृत्व तथा ईश्वर के पितृत्व की अवधारणा को एक नकली विचार माना।[42] योहन्नान ने क्रिसवेल्स बाइबल कॉलेज में ईसाई प्रचारक ग्रन्थ का अध्ययन किया था। क्रिसवेल को जी.एफ.ए. के आध्यात्मिक जनक के रूप में माना जाता है।[43]

उसी प्रकार की घृणा और अन्य लोगों के भयावह नमूना-चित्रण को योहन्नान की पुस्तक 'रिवोल्यूशंस इन वर्ल्ड मिशन्स' (,*Revolutions in World Missions*) के पन्नों में पाया जाता है, जिनमें घृणा का लक्ष्य भारत की मूल संस्कृति और इसके धर्म की ओर मोड़ दिया गया है :

> हमारा युद्ध ... गरीबी और बीमारी जैसे पाप के लक्षणों के विरुद्ध नहीं है। यह लुसिफर और अनगिनत दैत्यों के विरुद्ध निर्देशित है जो दिन-रात संघर्षरत हैं

> ताकि मानव आत्माओं को घसीटकर अनन्त काल तक बिना ईसा मसीह के रखा जा सके।[44]

वे भारत की आध्यात्मिक परम्पराओं को 'लुसिफर और अनगिनत दैत्यों' के रूप में पहचान करते हैं, और इन्हीं परम्पराओं को भारत की सामाजिक समस्याओं के लिए दोषी ठहराया जाता है। योहन्नान लिखते हैं :

> ...भारत पर मूर्तिपूजक (पेगन) धर्मों के प्रभाव को देखते हुए मुझे एहसास हुआ कि भारत के लोग भूख से पीड़ित हैं, क्योंकि वे पापों के दास हैं। भूख और गरीबी के विरुद्ध युद्ध वास्तव में एक आध्यात्मिक युद्ध है, भौतिक और सामाजिक नहीं, जैसा कि पन्थ-निरपेक्ष लोगों को हम विश्वास दिलाना चाहेंगे। एशिया में बीमारी, भूख, अन्याय और गरीबी के विरुद्ध युद्ध प्रभावी ढंग से जीतने के लिए जो एक ही हथियार होगा, वो है ईसा मसीह का सन्देश।[45]

यहाँ तक कि भारत की खाद्य समस्या के लिए भी हिन्दू धर्म को दोषी ठहराया गया :

> भारत की भूख की समस्या को समझने में मुख्य कारक—और सर्वाधिक उपेक्षित — है हिन्दू विश्वास [धर्म] व्यवस्था और खाद्य उत्पादन पर इसका प्रभाव। अधिकांश लोग 'पूजनीय गौ' के बारे में जानते हैं जो खुली घूमती हैं, टनों में खाद्यान्न खा जाती हैं जबकि पड़ोस के लोग भूखे रह जाते हैं। लेकिन एक कम ज्ञात और अधिक भयावह अपराधी एक अन्य पशु—चूहा है, जो धार्मिक मान्यताओं से संरक्षित है।... होना तो यह चाहिए था कि भारत में चूहे का विनाशकारी प्रभाव इसे तिरस्कार के योग्य वस्तु बना दे। इसके बदले, भारत के लोगों के आध्यात्मिक अन्धेपन के कारण, चूहा संरक्षित है।[46]

जब भारतीय ईसाई हिन्दू धर्म में वापस जाने का फैसला करते हैं, वे इसे 'शैतान के बन्धक के रूप में वापस जाने' जैसा देखते हैं।[47] योहन्नान घोषित करते हैं कि पश्चिम पूर्व से बेहतर क्यों है? उसका कारण यह है कि 'यूरोप की यहूदी-ईसाई विरासत ईश्वर की कृपा लायी है, जबकि झूठे धर्मों ने बैबिलॉन का अभिशाप एशिया के सभी राष्ट्रों पर डाला'।[48]

ऐसे मनमाने और रूढ़िवादी विश्व दृष्टिकोण के साथ,[49] आशा तो इस बात की रखी जायेगी कि योहन्नान को संयुक्त राज्य अमरीका की बाइबल पट्टी के नीम-अँधेरे ईसाई प्रचारक कोनों-अँतरों में धकेल दिया जायेगा। लेकिन इसके विपरीत, उन्हें पश्चिमी ईसाई धर्मान्तरण के लिए एक मूल्यवान सम्पदा के रूप में पहचाना गया है। पैट्रिक जॉनस्टोन, जो ऑपरेशन वर्ल्ड के लेखक और एक ईसाई प्रचारक रणनीतिकार हैं, जी.एफ.ए. को 'अत्यन्त महत्वपूर्ण अग्रणी मिशनरी एजेंसियों में से एक' मानते हैं।[50] लुई बुश, एडी 2000 के मुख्य कार्यपालक अधिकारी और 10/40 विण्डो रणनीति के नेपथ्य-आसीन द्रष्टा, तो उनसे भी अधिक स्पष्ट हैं और जी.एफ.ए. को ऐसे संगठन के रूप में देखते हैं जो '10/40 विण्डो के भेदन का संवाहक है'।[51] 10/40 विण्डो विश्व

के उस क्षेत्र को कहा जाता है जिसका चयन ईसाई धर्मान्तरण के मुख्य लक्ष्य के रूप में किया गया है, जिसमें मूर्तिपूजकों की सबसे बड़ी संख्या उपलब्ध कराने वाला क्षेत्र भारत ही है। इस पर इसी अध्याय में जोशुआ परियोजना उपशीर्षक वाले भाग में विस्तृत चर्चा की गयी है।

योहन्नान (Yohannan) ने जी.एफ.ए. की स्थापना अपनी जर्मन पत्नी के साथ मिलकर 1978 में भारत में काम कर रहे दस अमरीकी मिशनरियों के लिए एक वित्तीय समर्थक कार्यक्रम के रूप में की थी। सन 1981 में, उन्होंने जी.एफ.ए. का प्रारम्भ अपने गृह राज्य केरल में किया। सन 1983 में यह विदेशी, मुख्य रूप से अमरीका से, धन प्राप्त करने की उनकी गतिविधियों का भारतीय मुख्यालय बन गया।[52] सन 1986 में जी.एफ.ए. ने अपना रेडियो प्रसारण शुरू किया। आज यह 92 भारतीय भाषाओं में ईसाई प्रचारक प्रसारण करता है, जिसमें अनेक जनजातीय भाषाएँ हैं।[53] www.ministrywatch.com विभिन्न मिशनों के बारे में ईसाई धनदाताओं को जानकारियाँ देने वाली एक वेबसाइट, जी.एफ.ए. के रेडियो प्रसारणों की चर्चा 10/40 विण्डो को सफलतापूर्वक भेदने वाले के रूप में करती है।[54]

विश्व धर्मान्तरण (World Evangelization) पर 1997 में हुए 'वैश्विक परामर्श' (Global Consultation) में लुई बुश और योहन्नान ने रणनीतिगत सत्र आयोजित किये जिसमें योहन्नान ने जानकारी दी थी कि गॉस्पल फॉर एशिया ने किस प्रकार जोशुआ परियोजना की 'सम्पर्क से बाहर रह रहे सर्वाधिक लोगों' की सूची के एक सौ समुदायों के बीच चर्च खड़ी करने वाली टीमें तैनात की थीं। उन समुदायों में से तीस के बीच कम-से-कम तीस-तीस ईसाई प्रचारकों वाले चर्च पहले ही स्थापित किये जा चुके थे।[55] जी.एफ.ए. ने घोषणा की है कि 'एक मिनिस्ट्री के रूप में यह 10/40 विण्डो के 2.7 अरब लोगों तक, जिन्होंने ईश्वर के प्रेम के बारे में कभी नहीं सुना, पहुँच के लिए ध्यान केन्द्रित करता है और यही इसका लक्ष्य है। केवल भारत में पाँच लाख से अधिक गाँव हैं जहाँ ईसा मसीह के सन्देश लोगों ने नहीं सुने हैं'।[56]

उग्र पन्थ-निरपेक्ष विरोधी रुख की अनदेखी करते हुए, आर्थिक सहायता देने वाले पश्चिमी संगठन ऐसे धर्मान्तरण कराने वाले समूहों को प्रोत्साहित करते हैं ताकि तीसरे विश्व के देशों तक वे विकास सहायता पहुँचा सकें। उदाहरण के लिए, ऑस्ट्रेलिया स्थित 'उद्देश्य के लिए यात्रा' (Travel With a Cause) एक अन्तर्राष्ट्रीय पर्यटन एजेन्सी है जो अपने लाभ तीसरे विश्व और विकासशील देशों और अन्य 'मूल्यवान उद्देश्यों' के लिए खर्च करने का दावा करती है।[57] उनका मिशन वक्तव्य 'विश्व भर में गरीबों को खिलाने, अल्प-शिक्षितों के सशक्तीकरण, ईसाई मिशनों को समर्थन देने, गरीबी की कमर तोड़ने के निमित्त बनी परियोजनाओं को सहायता, आपदा राहत, स्वास्थ्य सेवाएँ, और अन्य मानवीय कार्यों के लिए धन देने की बात करता है'। यह भारत में जी.एफ.ए. की धर्मान्तरण गतिविधियों को समर्थन देता है।[58]

जी.एफ.ए. वर्ण-व्यवस्था का वर्णन 'आर्यों द्वारा स्थापित' के रूप में करता है, जो 'लम्बे, गोरी चमड़ी वाले लोग थे और जिन्होंने तीन हज़ार वर्ष पूर्व भारतीय उपमहाद्वीप पर आक्रमण किया था ... और जिन्होंने अपनी हैसियत को बनाये रखने— और मूल निवासियों को नीचे दबाये रखने के लिए इस व्यवस्था को बनाया था'।[59] योहन्नान अपनी पुस्तक में लिखते हैं :

> परिपक्व ईसाई समझते हैं कि बाइबल विश्व में केवल दो धर्मों के अस्तित्व में होने की बात सिखाती है। पहला तो केवल एक सच्चे ईश्वर की पूजा वाला है, और दूसरा प्राचीन ईरान में आविष्कृत दैत्य विकल्प की झूठी प्रणाली वाला। वहाँ से फारसी सेना और पुजारियों ने उनके धर्म को भारत तक फैलाया, जहाँ इनसे अपनी जड़ें जमायीं। फिर हिन्दू मिशनरियों ने इसे शेष एशिया में फैलाया। जीवात्मवादी धर्म, बौद्ध धर्म और अन्य सभी एशियाई धर्मों की साझी विरासत इसी एक धार्मिक व्यवस्था में है।[60]

जी.एफ.ए. संयुक्त राज्य अमरीका स्थित दलित फ्रीडम नेटवर्क (डी.एफ.एन.) के साथ मिलकर काम करता है।[61] इस पर 'इण्डिया रैशनलिस्ट ऑर्गनाइजेशन' (India Rationalist Organization) द्वारा 'धर्मान्तरण' गतिविधियों का आरोप लगाया गया है।

जी.एफ.ए. विदेशी धन पर ही बेहद निर्भर है। सन 2004 के लिए भारत सरकार की एक रपट में कहा गया है :

> [केन्द्रीय] गृह मन्त्रालय की वार्षिक रपट से एकत्र किये गये आँकड़े के अनुसार गॉस्पल फॉर एशिया, 98.9 करोड़ रुपये के साथ दूसरा सबसे बड़ा धन प्राप्तकर्ता है ... भारत में गॉस्पल फॉर एशिया के लिए धन का एक बड़ा भाग इसके संयुक्त राज्य अमरीका स्थित मूल संगठन से आता है, जो विदेशी धनदाताओं की सूची में 111.2 करोड़ रुपये देकर सबसे ऊपर है।[63]

वर्ष 2005-6 के दौरान, यह बढ़ कर 137.18 करोड़ रुपये हो गया था।[64] सन 2008 में केरल के गृह मन्त्री ने उद्घाटन किया कि जी.एफ.ए. ने पिछले पन्द्रह वर्षों में 1,044 करोड़ रुपये की विदेशी दानराशि प्राप्त की है। गृह मन्त्री ने कहा कि चर्च ने लगभग 2,800 एकड़ भूमि खरीदी थी, जिसमें 2,200 एकड़ रबड़ भू-सम्पत्ति शामिल है।[65] जब भारत सरकार ने वर्तमान विदेशी अंशदान नियमन अधिनियम (एफसीआरए) को और कड़ा करने का मन बनाया तो ऑल इण्डिया क्रिश्चियन काउंसिल (एआईसीसी) ने, जो संयुक्त राज्य अमरीका स्थित डी.एफ.एन. का भारत में सक्रिय सम्बद्ध संस्थान है, विदेशी धन के आप्रवाह पर प्रस्तावित निगरानी के विरुद्ध एक आलोचनात्मक वक्तव्य प्रसारित करना प्रारम्भ किया।[66]

जी.एफ.ए. मानवीय दुखों के प्रति अवैज्ञानिक दृष्टिकोण रखता है। उदाहरण के लिए, इसे गर्व है कि उसका एक कार्यकर्ता, जो तेज बुखार से पीड़ित बच्चों की सेवा में संलग्न रहता है, केवल प्रार्थना करता है, लेकिन 'किसी चिकित्सक को नहीं बुलाता,

या उनके लिए दवाएँ नहीं लाता या उनके लिए चिकन सूप नहीं लाता'।[67] इसने 2004 में भारत में आये सुनामी को 'सर्वाधिक बड़े अवसरों में से एक' के रूप में देखा। तमिलनाडु के तटीय गाँवों में इसकी गतिविधियों ने विरोध भड़काया। उदाहरण के लिए, अक्करईपेट्टई गाँव में जी.एफ.ए. ने एक अनधिकृत अनाथालय की स्थापना की, जिसमें सदमे के शिकार एक सौ से अधिक बच्चों को रखा गया, जिनमें अधिकांश हिन्दू बच्चे थे, और उनसे प्रतिदिन छह बार ईसाई प्रार्थनाएँ करवायी गयीं।[68]

जी.एफ.ए. पर भारत सरकार के सामाजिक कल्याण कार्यक्रमों का उपयोग करते हुए गलत ढंग से संसाधन प्राप्त करने का भी आरोप है। जब जी.एफ.ए. का एक कार्यकर्ता पकड़ा गया और उस भूमि से उसे बेदखल कर दिया गया जिसे उसने अपने धर्मान्तरण केन्द्र के लिए हथिया लिया था, तब ईसाई समाचार माध्यमों ने इस घटना को ईसाइयों के विरुद्ध उत्पीड़न के रूप में खूब उछाला।[69]

कुम्भ-मेला जैसे हिन्दू आध्यात्मिक त्योहारों को लक्ष्य बनाने के लिए जी.एफ.ए. का 'फेस्टिवल आउटरीच' (Festival Outreach) नाम से एक विशेष कोषांग है। सन 2007 के इलाहाबाद अर्धकुम्भ-मेले में जी.एफ.ए. ने अपने कर्मचारियों, स्थानीय चर्चों की महिलाओं, बाइबल महाविद्यालयों के विद्यार्थियों और कर्मचारियों, और इलाहाबाद के पादरियों की एक टीम गठित की। उनका काम था अपमानजनक सामग्री वितरित करना। प्रदीप नाइनन टॉमस इस ओर ध्यान आकर्षित करते हैं कि गॉस्पल फॉर एशिया ने शेखी बघारी कि उन्होंने कुम्भ मेले में हिन्दू तीर्थयात्रियों में 60 लाख पुस्तिकाएँ बाँटी, और इस आयोजन को 'उत्साहियों के हंगामे' के रूप में वर्णित किया।[70] इसने तनाव उत्पन्न किया और पुलिस ने जी.एफ.ए. की महिलाओं की टीम को उस स्थान को छोड़कर जाने को कहा। महिलाएँ पीछे हट गयीं, लेकिन जी.एफ.ए. की शेष टीम ने घृणा फैलाने वाली सामग्री का वितरण चालू रखा, जिसके कारण उन्हें गिरफ्तार किया गया, एक दिन तक रोके रखा गया और फिर छोड़ दिया गया। जी.एफ.ए. ने इस घटना को भारत में ईसाई उत्पीड़न के रूप में उछालने के लिए वैश्विक मीडिया तक अपनी पहुँच का उपयोग किया।[71]

जी.एफ.ए. राजनीतिक प्रचार में भी संलग्न होता है और व्यापक मिशनरी मीडिया नेटवर्क तक अपनी पहुँच के माध्यम से षडयन्त्र की कहानियों को बनाता और प्रसारित करता रहता है। नवम्बर में मुम्बई में हुए इस्लामी आतंकवादी हमले के बाद, जिसमें लगभग दो सौ लोग मारे गये थे, योहन्नान ने दुख व्यक्त किया और आतंकवादियों की भर्त्सना की।[72] लेकिन विश्व भर के ईसाई समाचार माध्यमों को दिये गये अपने साक्षात्कार में उन्होंने इस बात पर सन्देह व्यक्त किया कि क्या हमलावर मुस्लिम-परस्त ही थे या 'हिन्दू अतिवादी'। उन्होंने गलत दावा किया कि 2008 में भारत में सभी प्रमुख आतंकवादी हमलों को, जिन्हें प्रारम्भ में इस्लामी आतंकवाद के कारनामे बताया गया था, बाद में 'हिन्दू अतिवादियों' द्वारा किया गया पाया गया। उन्होंने इस बात की ओर संकेत किया कि मुम्बई में हुआ आतंकवादी

हमला विदेशी पूँजीनिवेश को भयभीत करने के लिए हिन्दू आतंकवादियों द्वारा 'किया गया एक षड्यन्त्र' हो सकता है, ताकि 'दलित गरीबी में ही रहें'।[73] योहन्नान को ईसाई समाचार माध्यमों में पश्चिम को इस बात के लिए सचेत करते हुए व्यापक रूप से उद्धृत किया गया कि मुम्बई हमले को इतना महत्व न दिया जाये जिससे भारत में हिन्दुओं द्वारा ईसाइयों के विरुद्ध किये जाने वाले हमले उसमें दब जायें।[74]

अतिसूक्ष्म तरीके से शिक्षण

एक अन्य परियोजना है जो विदेशी मिशनरियों को इस बात के लिए शिक्षित करती है कि किस तरह अतिसूक्ष्म तरीके से हिन्दुओं का धर्मान्तरण किया जाये। यह प्रशिक्षण बड़े पैमाने पर चलता है और बहुधा पन्थ-निरपेक्ष संस्थानों में सांस्कृतिक अध्ययन की आड़ में बड़ी सतर्कता से संचालित किया जाता है। यह उस समय अधिक स्पष्ट ईसाई प्रचारक हो जाता है जब ईसाई सेमिनरियों (ईसाई पादरियों के प्रशिक्षण विद्यालयों) और ईसाई महाविद्यालयों में संचालित होता है। उदाहरण के लिए, 'भारत के लोग' नामक एक पाठ्यक्रम एक ईसाई महाविद्यालय द्वारा चलाया जाता है, जिसका वर्णन इस प्रकार किया गया है :

> विश्व के सर्वाधिक रोचक और सर्वाधिक जनसंख्या वाले राष्ट्रों में से एक—भारत—की विभिन्न प्रथाओं, सामाजिक संरचना, धर्मों, कलाओं और इतिहास का एक अध्ययन। विश्व के सबसे बड़े समकालीन मिशन क्षेत्रों और जिन जन समूहों तक सबसे कम पहुँच सम्भव हो सकी है, उनमें सबसे बड़े समूहों के प्रति ईसाई जवाबी गतिविधियों पर विशेष बल दिया जायेगा। कुछ अतिथि वक्ता भी अर्धवार्षिक पाठ्यक्रम के दौरान अपने सबसे हाल के भारत दौरे पर कक्षाओं को सम्बोधित करेंगे।[75]

उनके स्वर सामान्यत: काफी विनम्र होते हैं और विद्यार्थियों को भारतीय जातीयता और संस्कृति के लिए सम्मान प्रदर्शित करने के लिए सिखाया जाता है। अध्यापक अक्सर साफ़-साफ़ पूर्वाग्रह प्रदर्शित नहीं करते, लेकिन सतर्कतापूर्वक चुने गये 'भारत से आये अतिथियों' और मिशनरी चलचित्रों को 'हीदन (ग़ैरईसाई, मूर्तिपूजक) धर्मों' के विरुद्ध वांछित आवेग भरने देते हैं।

मार्क्सवादी आड़

फिर भी इन सभी नर्म तेवरों के नीचे अमरीकी ईसाइयत की निर्यातित किस्म रूढ़िवादी ही है, और यह संयुक्त राज्य अमरीका के शैक्षणिक तन्त्र में भारतीय मार्क्सवाद समर्थकों को संकट में डाल देता है, क्योंकि वे ईसाई प्रचारकों का सहयोग करते हुए नहीं दिखना चाहते हैं। उनके तेवर विरोधाभासी और स्वयं अपना उद्घाटन करने वाले होते हैं। एक ओर ऐसे शिक्षाविदों को सैद्धान्तिक रूप से अपने गोरे वामपन्थी सहयोगियों का अनुसरण करना ही होता है, और इस नाते उनके लिए ईसाइयत को

दक्षिण-पन्थी, आर्थिक और सामाजिक रूप से पिछड़ा कह कर उस पर हमला करना ज़रूरी होता है। लेकिन दूसरी ओर, भारतीय उग्र परिवर्तनवादियों, ईसाइयों और मुसलमानों के बीच गठजोड़ का एक व्यावहारिक मूल्य है। अनेक भारतीय वामपन्थी ईसाई धन द्वारा पोषित और समर्थित हैं, जिसे स्वीकार करने में उन्हें मुश्किल होती है।

इस अन्तर्विरोध का समाधान जॉर्ज बुश वाली ईसाइयत पर दोष मढ़ने में पाया गया, जबकि मूल ईसाइयत को अधिकांशत: दोषमुक्त कर दिया गया। इसका अर्थ यह हुआ कि ईसाई दुरुपयोग की घटनाओं को अलग-थलग करने के लिए वामपन्थी बुश विरोधी तेवर अपना सकते हैं, जबकि सामान्यत: रणनीतिगत तौर पर वे ईसाई प्रचारकों की ईसाइयत का समर्थन करते रह सकते हैं। राष्ट्रपति बुश के चले जाने के बाद भी यह रणनीति काम करती है, जिसके तहत अमरीकी कट्टरपन्थियों के बीच अज्ञानियों और सांस्कृतिक रूप से पिछड़े तत्वों पर दोषारोपण किया जाता है। जो भी हो, तथ्य तो यही है कि भारत में ईसाई शिक्षा का जो ब्राण्ड फैलाया जा रहा है, वह वैसा नहीं जैसा कि अमरीका के उदारवादी ईसाई ग्रहण करते हैं, और यह तो वास्तव में ईसाइयत की वह किस्म है जिसकी वे भर्त्सना करते हैं। इस तथ्य को तो ढँककर ही रखना है ताकि ऐसे ईसाई संस्थानों से जुड़े वामपन्थियों की छवि को बचाकर रखा जाये।

इस रणनीति का दूसरा घटक है हिन्दू धर्म को दोषी के रूप में सामने लाना, ताकि भारतीय मार्क्सवादियों और ईसाइयत के बीच प्रेम और घृणा के अटपटे सम्बन्धों से लोगों का ध्यान हटाया जा सके, उस समय भी जब हाथ का मामला विशेष रूप से स्वयं ईसाइयत के बारे में ही होता है। ऐसे व्यावहारिक (लेकिन कम ईमानदार) तेवर का एक अच्छा उदाहरण हैं एक भारतीय अमरीकी विजय प्रसाद, जिनके बारे में पहले चर्चा की जा चुकी है। जब एक मुस्लिम देश में उन्हें घेरकर ऐसी स्थिति में ले जाया गया जहाँ उन्हें ईसाई धर्मान्तरण की निन्दा करनी पड़ी, तो वे अपने लक्ष्य पर सीमित रहने के प्रति सतर्क रहे, और उन्होंने लिखा : 'संयुक्त राज्य अमरीका का इवैंजेलिज़्म ईसाइयत का प्रतिनिधित्व नहीं करता, बल्कि वैश्विक दादागिरी के लिए बुश प्रशासन के एजेंडे का प्रतिनिधित्व अवश्य करता है'।[76] कोई भी आशा रखेगा कि विद्वान प्राध्यापक ने ईसाई प्रचारक अमरीकी चर्चों के दृष्टिकोणों की जाँच कर ली होती, जिनमें से सभी गहन रूप से विदेशी ईसाई धर्मान्तरण में लगे हुए हैं और इस स्थिति को वे एक जिम्मेवार ईसाई होने से अविभाज्य मानते हैं।

'केवल बुश-ईसाइयत' की आलोचना के तत्काल बाद प्रसाद ने विषय बदल दिया और उसी हिन्दू फासीवाद पर हमले की पुरानी लीक पकड़ते हुए उन्होंने लिखा : 'तहलका जैसी पत्रिका में और अन्यत्र ईसाई प्रचारक मिशनरियों के एजेंडे के बारे में उद्घाटनों ने भारत में ईसाई विरोधी शक्तियों को चारा उपलब्ध करा दिया है'। जहाँ उनके लेख का शीर्षक कुछ वैसा है जो उसे ईसाई विस्तारवाद की एक आलोचना

जैसा दिखता हुआ बना देता है, वे बड़ी चतुराइ से विषय बदलकर हिन्दू धर्म पर प्रहार करने पर उतर आते हैं, उस भीड़ की कठोर आलोचना करते हुए 'जिसने 1998 में गुजरात में ईसाई विरोधी हिंसात्मक अभियान को भड़काया और चलाया, तथा 1999 में ऑस्ट्रेलियाई मिशनरी ग्राहम स्टेन्स की हत्या की'।

दुर्भाग्यवश, ईसाई प्रचारक अभियान हिन्दू-मुस्लिम हिंसा का भी दोहन एक ईसाई प्रचारक अवसर के रूप में करता है। उदाहरण के लिए, एक्सेलरेटिंग इंटरनेशनल मिशन स्ट्रैटेजीज़ प्रार्थना करता है कि 'मुसलमानों और हिन्दुओं के बीच संघर्ष भ्रम को तोड़ देगा, उन्हें शान्ति के सच्चे राजकुमार तक ले जायेगा', अर्थात् ईसा हिन्दुओं और मुसलमानों को ईसा मसीह (शान्ति के सच्चे राजकुमार) की तलाश करनी चाहिए।[77]

ईसाई समाचार माध्यम

संयुक्त राज्य अमरीका स्थित और भारत स्थित अनेक मीडिया नेटवर्क हैं जो भारत में काम कर रहे हैं, और ये मिलकर काम करते हैं। उनकी कार्यप्रणाली चित्र 18.3 में दिखायी गयी है। यह इसके बाद आने वाले उदाहरणों के माध्यम से प्रदर्शित किया जायेगा।

Fig.18.3 ईसाई मीडिया द्वारा पश्चिम से जुड़ी हुई ईसाई उम्मत बनाना

मीडिया

सीधा इवैंजेलिकल तन्त्र | ईसाई समाचार माध्यम

- धर्मान्तरण के लिए अधिप्रचार
- उत्पीड़न साहित्य
- सेकुलर समाचार में ईसाई रंग

पश्चिम द्वारा प्रबन्धित नियन्त्रित भारत-आधारित संस्थाएँ

'ईसाई उम्मा' भावनात्मक और वित्तीय रूप से पश्चिम से जुड़ा हुआ
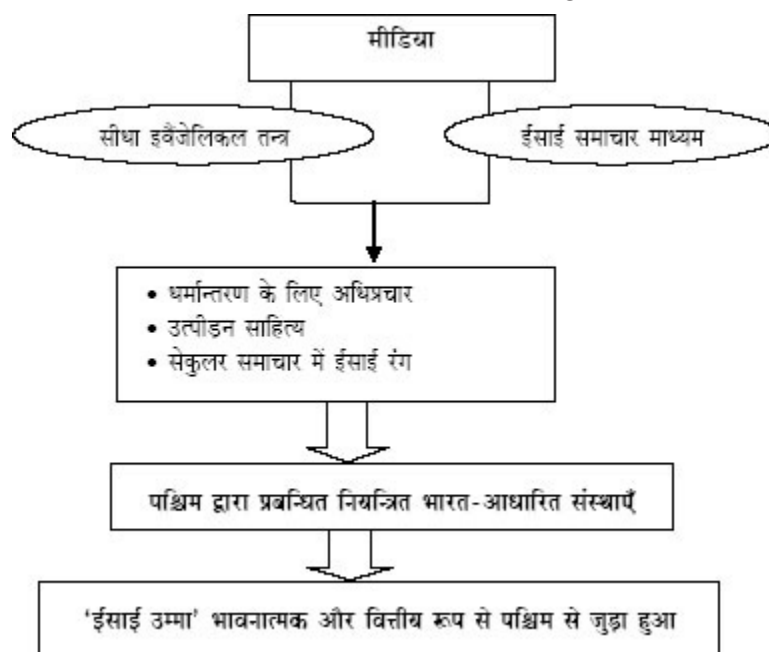
एसिस्ट न्यूज सर्विस (Assist News Service)

भारत के विरुद्ध दबाव डालने वाले अनेक अमरीकी समूह हैं जो अत्यन्त सुनियोजित हैं, और अपने भारतीय सहयोगियों को निरन्तर अपनी राय और प्रोत्साहन देते हैं। उदाहरण के लिए, एक ईसाई मिशनरी मीडिया सर्विस, एसिस्ट न्यूज सर्विस, ने घोषणा

की कि सन 2006 में अन्तर्राष्ट्रीय दबाव के अधीन उसे भारत के प्रधान मन्त्री से एक अनुसन्धान प्रारम्भ करवाने में सफलता मिली : 'हमारा पत्र लेखन अभियान काम कर रहा है', इसने एक अमरीकी ईसाई प्रचारक समूह के प्रमुख को उद्धृत करते हुए लिखा। 'हमें इस सप्ताह विरोध पत्र लिखने और फैक्स करने का काम अवश्य चालू रखना चाहिए'। यह समूह 'संयुक्त राज्य अमरीका में ईसाइयों से कह रहा था कि वे अपने सेनेटरों और कांग्रेस के सदस्यों को राजस्थान में ईसाई मानवीय कार्यों [कार्यकर्ताओं] के उत्पीड़न को रोकने के लिए इस सप्ताह लिखें'। वे नियमित रूप से उन्हें वाइट हाउस, विदेश विभाग, संयुक्त राष्ट्र और संयुक्त राज्य अमरीका और संयुक्त राष्ट्र संघ में भारतीय राजदूतों को पत्र और फैक्स भेजने के लिए कहते हैं।

यह 'भारत में ईसाई अल्पसंख्यकों के कथित उत्पीड़न के विरुद्ध सम्पूर्ण भारत और विश्व भर के ईसाइयों का नेतृत्व करने के लिए' फेडरेशन ऑफ इण्डियन अमरीकन क्रिश्चियन इन द यू.एस.ए. (FIOCON) की प्रशंसा करता है। समाचार माध्यमों की रपटों में यह व्याख्या प्रकाशित करते हुए निष्कर्ष निकाला जाता है कि किस प्रकार इस समूह का उद्देश्य एक शुद्ध मानवतावादी प्रयास है जिससे कि 'अनाथ और त्यागे हुए बच्चों, कुष्ठ रोगियों और दलितों की पीड़ा समाप्त की जा सके, और आपदाग्रस्त क्षेत्रों के लिए आपातकालीन राहत प्रदान की जा सके, जैसे कि पिछले वर्ष की सुनामी से प्रभावित क्षेत्र, मुम्बई की बाढ़, गुजरात के भूकम्प...'[78]

मिशन नेटवर्क न्यूज

ऐसे संगठनों द्वारा भारतीय राजनीतिक घटनाक्रम की गहरी निगरानी की जाती है और उनका मूल्यांकन उनकी ईसाई प्रचारक गतिविधियों पर होने वाले प्रभाव के आलोक में किया जाता है। जब 2004 में मनमोहन सिंह को भारत का प्रधानमन्त्री नियुक्त किया गया, तब एक ईसाई प्रचारक समाचार प्रसारण सेवा, मिशन नेटवर्क न्यूज (एम.एन.एन.), ने समाचार दिया कि यह ईसाई धर्मान्तरण के लिए अच्छा होगा, और यह कि 'बाइबल फॉर द वर्ल्ड' नामक समूह 'समुदायों तक पहुँचने के एक तरीके' के रूप में 'नई दिल्ली के आस-पास' तीन हज़ार ईसाई स्कूल शुरू करने की योजना बना रहा था।[79]

जब ईसाई भारतीय मुसलमानों की ओर से विद्वेष का सामना करते हैं, तब वे बड़ी सतर्कता से उसे कम महत्व देकर प्रसारित करते हैं ताकि इस्लाम/ईसाई तनाव को ढँका जा सके और उसे इस ढंग से प्रस्तुत किया जाता है मानो सभी समस्याएँ ईसाइयत के विरुद्ध हिन्दू विद्वेष से ही पैदा होती हैं। उदाहरण के लिए, कश्मीरी मुसलमानों ने बर्न हॉल स्कूल और सेंट जोजेफ्स स्कूल, श्रीनगर के प्राचार्य तथा गुड शेपर्ड मिशन स्कूल, श्रीनगर के संस्थापक पर हमला किया। एम.एन.एन. रपट में उन्हें केवल 'अज्ञात हमलावर' कहा गया जिन्होंने स्कूल में हथगोले फेंके जिसका कारण था उस आदमी द्वारा 'उस क्षेत्र में ईसाई प्रचारक कार्य', जिसमें नये सन्देश (न्यू

टेस्टामेंट) और प्रार्थनाओं (साल्म्स) को कश्मीरी में अनुवादित करना भी शामिल था। प्रकारान्तर से इसकी प्रस्तुति इस ढंग से की गयी कि यह घटना हिन्दुओं की करनी दिखायी दी, न कि मुसलमानों की। ग्लोबल काउंसिल ऑफ इण्डियन क्रिश्चियन्स ने इसका विरोध किया, और उसे तत्काल गॉस्पल फॉर एशिया ने हाथों-हाथ लिया, और व्यापक प्रसार के लिए कनाडा स्थित द वॉयस ऑफ द मार्टर्स को भेज दिया, जिसका मिशन 'केवल विश्व भर के उत्पीड़ित ईसाइयों की सेवा करने को समर्पित' है।[80] द वॉयस ऑफ द मार्टर्स वेबसाइट का समुचित शीर्षक रखा गया है www.persecution.net, और यह पश्चिमी ईसाइयों, मानवाधिकार समूहों और सरकारों को ईसाइयों के मुद्दों पर एकजुट करने के प्रति समर्पित है। यह उस तरीके का कोई उल्लेख नहीं करता जिसके सहारे कुछ ईसाई प्रचारक पुरानी रोमन परम्परा के तहत शहीद होने के लिए विद्वेष की पहल करते हुए टकराव भड़काते हैं।

पश्चिमी ईसाई प्रचारक तेजी से भारत में इलेक्ट्रॉनिक मीडिया नेटवर्क के ढाँचे और साथ ही पठन सामग्री तैयार कर रहे हैं। लेकिन वित्तीय नियन्त्रण और उपकरणों के जारी रहने की क्षमता मुख्यत: पश्चिमी स्रोतों पर निर्भर है। प्रदीप नाइनन टॉमस अनुभव करते हैं कि ईसाई प्रचारक सैटेलाइट टीवी चैनलों का अचानक विस्तार विदेशों से सीधे राजनीतिक हस्तक्षेप से भी अधिक बड़ा ख़तरा उपस्थित करता है।

स्थानीय चैनल किसी भी संख्या में उभरते टेलि-ईसाई प्रचारकों को स्थान देते हैं और उन्हें प्रसारित करते हैं। कोई भी पादरी जिसके पास पर्याप्त धन है स्थानीय ईसाई प्रोडक्शन हाउस द्वारा प्रसारण योग्य गुणवत्ता वाला प्रवचन कार्यक्रम तैयार करवा सकता है, जैसे गुड न्यूज टीवी, जिसने कार्यक्रम का प्रसारण करवाने के लिए राज टीवी और तमिलियन टीवी से आवश्यक सम्बन्ध बना रखे हैं। जहाँ इसे 'सिटिजन क्लर्जी' (नागरिक पादरी समूह) द्वारा 'स्थानीय श्रेणियों से मध्यस्थों को हटाने' के एक अवसर के रूप में देखा जा सकता है (Marteli and Capelo, 2005 : 253), वहीं यह कट्टरपन्थी प्रवचनकर्ताओं को एक अलगाववादी पहचान के लिए तर्क देने का स्थान भी उपलब्ध कराता है।[81]

टॉमस ध्यान दिलाते हैं कि अन्तर्राष्ट्रीय ईसाई चैनलों ने तमिलनाडु को भारत में घुसपैठ करने के लिए केन्द्र और प्रवेश द्वार बनाया है, जिसके लिए कार्यक्रम बनाने और ढाँचा तैयार करने, दोनों में भारी निवेश किया गया है। वे लिखते हैं कि भारत में सात अन्तर्राष्ट्रीय ईसाई चैनल और नौ स्थानीय भारतीय ईसाई चैनल चल रहे हैं, और इनके अलावा सभी पन्थ-निरपेक्ष चैनल भी ईसाई धर्मान्तरण के लिए समय देते हैं।[82] ये चैनल ईसाइयत का प्रचार करते हैं और साथ ही खुले-आम राजनीतिक सन्देश भी देते हैं। उदाहरण के लिए, ईसाई गायक विजय बर्नार्ड इन चैनलों में आते हैं और वे उस अन्दाज में गीत गाते हैं जिनको टॉमस 'इण्डिया फॉर क्राइस्ट' कहते हैं। उनके दृश्यों में भारत के झण्डे और 'एक ईसाई राष्ट्र के लिए उसके अभिषेक' भी शामिल होता है। टॉमस व्याख्या करते हैं :

> 'इसा मसीह के लिए राष्ट्र को बचाए रखना'—यह विषयवस्तु असंख्य पुनरुज्जीवन और धर्म-युद्धों में दिखाया जाता है और इसमें रस्म के तौर पर ईसा मसीह के लिए भारतीय तिरंगे और प्रकारान्तर से विस्तारित, ईसा मसीह के लिए भारतीय राष्ट्र का उद्धार भी शामिल है।[83]

क्रिश्चियन ब्रॉडकास्टिंग नेटवर्क

पैट रॉबर्टसन के क्रिश्चियन ब्रॉडकास्टिंग नेटवर्क ने 'प्रत्येक भारतीय घर तक पहुँचने' के मिशन के साथ भारतीय मीडिया जगत में प्रवेश किया है। इसने दयासागर, ईसा मसीह के जीवन पर आधारित एक सीरियल के साथ शुरू किया, जिसके बाद दूसरे ईसाई प्रचारक सीरियल आये, जिनमें संयुक्त राज्य अमरीका का अत्यन्त उग्र कट्टरवादी दक्षिणपन्थी कार्यक्रम, द 700 क्लब भी शामिल है, जिसका प्रसारण होम टीवी चैनल पर सप्ताह में छह दिन हो रहा है।[84] इसके मूल संयुक्त राज्य अमरीकी संस्करण (जिसे भारत के लिए परिवर्तित किया गया है) में रॉबर्टसन द्वारा दिया गया यह वक्तव्य था :

> हिन्दू धर्म और अनेक दूसरी तन्त्र-मन्त्र गतिविधियाँ, जो पूर्व से निकलीं, भूत-प्रेतों और भूत-प्रेतों की पूजा से प्रेरित हैं। ... यह संकल्पना है कि सभी धर्म एक हैं और सभी अच्छे हैं। वह सही नहीं है। शैतान की पूजा अच्छी नहीं है। [85]

पैट रॉबर्टसन की रिजेन्ट यूनिवर्सिटी भी भारतीय ईसाइयों को जन संचार में प्रशिक्षित करती है, और यहाँ से प्रशिक्षित अनेक स्नातक अन्तर्राष्ट्रीय समाचार माध्यमों में भारतीय संस्कृति और धर्म को नीचा दिखाने का काम करते हैं। उदाहरण के लिए, रूबेन डेविड ने रिजेन्ट यूनिवर्सिटी से स्नातकोत्तर किया और जन संचार तथा ईसाई विश्व दृष्टिकोण में विशेषज्ञता प्राप्त की। अब वे नॉर्थ सेंट्रल यूनिवर्सिटी के संकाय में काम करते हैं। पश्चिमी ईसाई प्रचारक पत्रिकाओं में एक के बाद एक लिखे अपने आलेखों में वे हिन्दू धर्म से जुड़ी किसी भी चीज का उपहास उड़ाने के लिए अल्पज्ञात जनजातीय अनुष्ठानों में से कुछ को चुनिन्दा रूप से प्रस्तुत करते हुए हिन्दू धर्म को नीचा दिखाते हैं। उदाहरण के लिए, वे एक अल्प प्रचलित संथाल जनजातीय प्रथा को प्रमुखता से सामने लाते हैं और उसे सब पर लागू करते हैं। वे निष्कर्ष में कहते हैं : 'भारत की सांस्कृतिक और मानवीय गरिमा को सँवारने में की गयी प्रगति डके उदाहरण थोड़े और क्षणभंगुर है, जिसमें से अधिकांश सर्वेश्वरवादी हिन्दू अवधारणा द्वारा निर्देशित है जो ग्रामीण, वास्तविक भारत पर बादल की तरह छायी हुई है'।[86]

भारत में एक अन्य उभरता हुआ अन्तर्राष्ट्रीय ईसाई माध्यम है बोस न्यूज लाइफ। यह इंटरनेट पर पहली मध्य यूरोपीय ईसाई समाचार एजेन्सी है।[87] इसके लेखकों में एक हैं विशाल अरोड़ा, जिन्होंने विभिन्न अग्रणी भारतीय राष्ट्रीय दैनिक समाचार-पत्रों में काम किया है। अरोड़ा ने 2005 में बोस न्यूज लाइफ के नई दिल्ली ब्यूरो प्रमुख के रूप में योगदान किया और उन्होंने भारत में ईसाई उत्पीड़न से जुड़े समाचारों को

फैलाने पर अपना ध्यान केन्द्रित किया है।[88] ऑक्सफोर्ड सेंटर फॉर रिलिजन एण्ड पब्लिक लाइफ (जिसका उल्लेख पहले के एक अध्याय में किया गया है) को उत्पीड़न साहित्य प्रदान करने के अलावा, वे वैसे समाचार भी प्रसारित करते हैं जिन्हें वे 'स्वास्तिक आतंकवाद' कहते हैं। वे बहुधा इस्लामी स्रोतों का उपयोग करते हैं यह दावा करने के लिए कि हिन्दू आतंकवाद सरकार के रणनीतिगत समर्थन के साथ बढ़ रहा है। वे इसकी तुलना इस्लामी आतंकवाद से करते हैं और इसे उससे भी कहीं अधिक ख़तरनाक घोषित करते हैं।[89]

'ईसाई दृष्टिकोण से समाचार'

भारत के प्रत्यक्षतः पन्थ-निरपेक्ष समाचार माध्यम भी विदेशी संगठनों से बहुत प्रभावित हैं, जो सच्चे ईसाई पत्रकारों को अपने हितों के लिए काम करने हेतु उनमें भर्ती करवाते हैं। ऐसे ही पत्रकारों का एक उदाहरण हैं जेनिफर अरुल, जिनका एक ऐसी पत्रकार के रूप में बहुत दबदबा है, जिनके पास एशिया में प्रसारण पत्रकार और मीडिया एक्जिक्युटिव के रूप में काम करने का तीस वर्षों से अधिक का अनुभव है।[90] वे बराबर पश्चिम के ईसाई प्रचारक शिक्षण संस्थानों में विद्यार्थियों को सम्बोधित करने जाती हैं। जब वे प्वाइंट लोमा नजारिन यूनिवर्सिटी (यू.एस.ए.) गयीं, जो स्वयं को 'देश के अग्रणी ईसाई विश्वविद्यालयों में से एक' बताती है, तो वहाँ के विद्यार्थियों ने उनकी चर्चा का केन्द्र 'वर्ण-व्यवस्था में हिंसा के विरुद्ध संघर्ष और महिलाओं तथा दुर्व्यवहार के शिकार बच्चों के अधिकारों के लिए खड़ा होना' बताया। उन्होंने 'अपने स्वदेश भारत को शिक्षित करने के अपने अभियान की चर्चा की, जिसमें उन्होंने दहेज मृत्यु के विरुद्ध जन जागरण की बात की; उनके शोध के अनुसार, दहेज मृत्यु ने एक ही वर्ष में बीस हज़ार भारतीय महिलाओं की ज़िन्दगी ले ली थी'। अरुल ने विद्यार्थियों को बताया कि दहेज मृत्यु की समस्या का समाधान उनके विचार में भारत में ईसाइयत को लाना था। उन्होंने कहा, 'मैं सोचती हूँ कि हमें अपने ईसाई धर्म का उपयोग लोगों को अपनी बातें कहने और सत्य बताने में सहायता करने के लिए करना चाहिए'। गौर किया गया कि वे जब भी रिपोर्ट करती हैं तब वे सलीब युक्त अपना हार उस ढंग से पहनती हैं ताकि लोग उसे देख सकें। वे स्पष्ट करती हैं : 'एक पत्रकार के रूप में, आप तटस्थ नहीं रह सकते। अगर मैं अपने समाचार में अल्प मात्रा में भी ईसाई रंग चढ़ा सकती हूँ, तो मैं ऐसा करूँगी'।[91]

वे जिस बात का उल्लेख करने से परहेज करती हैं, वह यह है कि दहेज मृत्यु सभी भारतीय धर्मावलम्बियों में समान रूप से व्याप्त है, जिनमें भारतीय ईसाई भी शामिल हैं। वास्तव में, यह अपराध सर्वाधिक ईसाई प्रभुत्व वाले राज्य केरल में विशेष रूप से अधिक होता है। जब उनके अपने समुदाय में इस समस्या की ओर ध्यान आकर्षित किया गया तो चर्च नेताओं ने इस दहेज प्रथा की निन्दा करने में झिझक दिखायी। इसके बदले, केरल के भिन्न प्रकार की प्रमुख चर्चों (साइरो-मालाबार, मार्थोमा और

जेकबाइट) ने अपने अनुयायियों से केवल यह कहा कि वे 'अपने विवाह खर्च कम करें',[92] लेकिन दहेज प्रथा की निन्दा नहीं की। दूसरी ओर, कांची के प्रमुख आचार्य, जिन्हें भारत के सर्वाधिक पुरातनपन्थी हिन्दू नेताओं में से एक माना जाता है, बार-बार दहेज प्रथा को भारतीय संस्कृति और परम्परा के विरुद्ध बताते हुए उसकी निन्दा करते हैं। जहाँ औपनिवेशिक काल से पहले भारत में दहेज की कुप्रथा और दहेज के लिए जोर-जबरदस्ती सामाजिक परिघटना नहीं थी, आधुनिक काल तक ईसाई देशों में इसका चलन था।[93]

गेग्राफा (Gegrapha) और भारतीय ईसाई पत्रकार

गेग्राफा एक अन्तर्राष्ट्रीय अर्ध-चर्च संगठन है जिसकी स्थापना डेविड एइकमैन ने की थी। वे एक ईसाई कट्टरपन्थी हैं जो क्रमबद्ध विकास के सिद्धान्त (एवल्यूशन)[94] के विरुद्ध संघर्षरत हैं और जिन्होंने यह भी घोषणा की थी कि ईसाइयत ने जॉर्ज बुश को एक बेहतर राष्ट्रपति बनाया।[95] गेग्राफा का आधिकारिक मिशन वक्तव्य है—'सभी पत्रकारों का उनके पेशेवर जीवन के हर चरण में आह्वान, जो ईसाई हैं—प्रोटेस्टेंट, कैथोलिक और पूर्वी रूढ़िवादी (Eastern Orthodox) ...'[96]

एइकमैन (Aikman) विस्तार से बताते हैं :

> विश्व भर के पत्रकारों की तरह, हममें से अनेक ऐसी संस्कृतियों के बीच कार्य करते हैं जो या तो सत्य के अस्तित्व को स्वीकार नहीं करतीं या उन लोगों के प्रति विद्वेष की भावना रखती हैं जो दावा करते हैं कि इसका अस्तित्व है और इसे जाना जा सकता है। इस माहौल में हमें स्वयं को यह याद दिलाने की ज़रूरत है कि हम एक राजा डअर्थात ईसा मसीह़ की सेवा करते हैं जो साक्षात सत्य और न्याय दोनों का रूप हैं, और जो सचमुच सत्य ही हैं (जॉन 14:6)।[97]

सन 1997 में एइकमैन ने भारत के बारे में ऐसा उत्पीड़न साहित्य सृजित किया जो पूरी तरह झूठ था।[98] भारत में 1999 के आम चुनाव के ठीक पहले, जेनिफर अरुल को इंगलैण्ड के गेग्राफा इंटरनैशनल कॉन्फरेन्स में प्रमुखता से सामने लाया गया, जिन्होंने कहा :

> मिशनरियों को जलाना, ननों से बलात्कार, चर्चों का विध्वंस, एक पादरी पर हमला, सभी सम्प्रदायों के ईसाइयों के लिए अशुभ संकेत हैं। ... भारत में ईसाइयों के विरुद्ध अपराध करने वालों में से कितनों पर कार्रवाई हुई है? जाँच आयोग गठित किये गये हैं, लेकिन उनसे बहुत कम ही परिणाम निकल पाते हैं। कार्रवाई? कभी कभार! एक सच्ची तस्वीर या विकृत, गढ़ी गयी रपट? इस पृष्ठभूमि में हमसे आशा की जाती है कि हम वस्तुनिष्ठ और भावनामुक्त, सही और निरपेक्ष समाचार दें। आश्चर्य नहीं कि जो अपने ईसाई कर्तव्यों का निर्वाह करने का प्रयास करते हैं, उन पर आन्दोनकारी होने का ठप्पा लगा दिया जाता है। आन्दोलनकारियों की बात करें तो, चेन्नई छोड़ने से तीन दिन पहले, मैं जॉन

> दयाल से मिली, जो दिल्ली के मिड डे समाचार पत्र के सम्पादक हैं। उन्होंने स्वयं को यूनाइटेड क्रिश्चियन काउंसिल की गतिविधियों से जोड़ रखा है, जो इस समय ईसाइयों को भारत भर में विभिन्न ईसाई-विरोधी गतिविधियों के बारे में बताने का काम कर रही है, ऐसी गतिविधियाँ जिनके बारे में वे एक पत्रकार के रूप में स्वाभाविक तौर पर जानकारी रखते हैं। हमारे यहाँ सितम्बर महीने में आम चुनाव होने वाले हैं, और उस मुलाकात में उन्होंने जो जानकारियाँ दीं वे काफी मूल्यवान थीं। मैंने उन्हें सुना और छह सौ संगठनों की, जिनका प्रतिनिधित्व किया गया था, प्रतिक्रियाओं को भी देखा। ... हमारे जैसे मीडिया में काम करने वाले ईसाइयों को अपनी शक्ति का उपयोग करके स्थिति को प्रभावित करना होगा।[99]

गेग्राफा की एक अन्य अन्तर्राष्ट्रीय सभा में अरुल एक गैर-ईसाई वातावरण में काम करने वाले ईसाई पत्रकारों की भूमिका पर फिर बोलीं। उन्होंने गैर-ईसाई भारतीय पत्रकारों को 'भिन्न मार्ग का अनुसरण करने वालों' के रूप में पेश किया, जबकि ईसाई पत्रकारों की प्रशंसा ऐसे पत्रकारों के रूप में की जिन पर 'सत्य को कहने का उत्तरदायित्व' है। सरकारी मीडिया चैनलों में ईसाई धर्मान्तरण पर लगायी गयी सीमाओं की आलोचना करते हुए उन्होंने हिन्दू समाज की समस्याओं पर विशेष रूप से रपट देने के लिए निजी सैटेलाइट चैनलों का उपयोग करने की अपनी क्षमता की भी प्रशंसा की। उन्होंने तर्क दिया कि 'ईसाई पत्रकारों को हर समाचार में एक परिप्रेक्ष्य प्रस्तुत करना होगा', और कहा कि वे 'हिंसा उकसाने और धार्मिक सहिष्णुता को प्रोत्साहित न करने के आरोपों' की परवाह नहीं करतीं। तालियाँ बजाने वाले अपने पश्चिमी ईसाई प्रायोजकों के सामने उन्होंने स्पष्ट किया कि उनकी ईसाई पहचान उनके पत्रकार होने से पहले आती है :

> क्या हम विश्वास करते हैं कि हम पहले और सबसे आगे पत्रकार हैं और उसके बाद ही ईसाई होने का ठप्पा लग सकता है? यह एक पेचीदा सवाल है और एक ऐसा सवाल जिसके बारे में हमें सोचने की जरूरत है। जहाँ तक मेरा प्रश्न है, मैं विश्वास करती हूँ कि एक ईसाई पत्रकार होना मुझे सत्य को, जैसा कि मैं देखती हूँ अपने 37 करोड़ 50 लाख दर्शकों के सामने लाने के लिए, जो नि:सन्देह सार्वजनिक जगत के हैं, एक अद्वितीय विशेषाधिकार की स्थिति में ला खड़ा करता है।[100]

गेग्राफा ईसाई पत्रकारों का मार्ग प्रशस्त करने वाला संगठन है जो अपने पेशेवराना काम-काज को व्यक्तिगत आस्था के आधार पर सम्पादित करते हैं और जो अपने अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों का उपयोग करते हैं। स्टीफेन डेविड रणनीतिगत तौर पर तैनात किए गये एक अन्य गेग्राफा सदस्य हैं, जो देश की सबसे बड़ी साप्ताहिक समाचार पत्रिका, इण्डिया टुडे में राजनैतिक और समकालीन मामलों के प्रमुख संवाददाता हैं। ऐसे पत्रकार अब सम्पूर्ण भारतीय मीडिया में तेजी से उभरते हुए एक समूह के रूप में हैं, जो समाचार बनाने में पर्दे के पीछे से काम कर सकते हैं। फिर भी,

जॉन दयाल, जॉनिफर अरुल और अन्य बड़े (हाई-प्रोफाइल) भारतीय ईसाई पत्रकार अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर वैसा आभास पैदा कर चुके हैं कि भारतीय समाचार माध्यम ईसाई-विरोधी हैं, और यह कि हिन्दू ईसाइयों को आतंकित करते हैं, और इसलिए, न्याय के लिए भारत में विदेशी हस्तक्षेप आवश्यक है। यह उनके प्रायोजकों के कानों के लिए तो संगीत ही है, जो स्वाभाविक रूप से अपनी जेबों की तरफ हाथ बढ़ाते हैं।

गुप्तचर सूचना एकत्रीकरण गतिविधियाँ

पश्चिम ने भारत में एक प्रभावशाली गुप्तचर सूचना एकत्रीकरण प्रणाली भी स्थापित कर ली है, जिसके लिए इनमें से कई संगठनों और उनके सहयोगियों द्वारा सेवाएँ दी जाती हैं। संस्थानों, व्यक्तिगत रूप से विद्वानों, जमीनी स्तर के मिशनों और मीडिया नेटवर्कों का जाल सामूहिक रूप से एक प्रभावी गुप्तचर सूचना एकत्रीकरण प्रणाली बन गया है। यह दूर से भारतीय समुदायों का नियन्त्रण सम्भव बनाता है और साथ में यह उन्हें लक्षित राजनीतिक हस्तक्षेप के योग्य भी बना देता है। परियोजना जोशुआ और बोस्टन थियोलॉजिकल इंस्टीटयूट के कार्य इस प्रक्रिया को प्रदर्शित करते हैं।

जोशुआ परियोजना : आत्माओं की फसल के लिए बाज़ार अनुसंधान

प्रचार सामग्री और बाज़ार के आँकड़े एकत्र करने की अब तक की विश्व की सबसे महत्वाकांक्षी और दूरगामी ईसाई परियोजना है डेनवर, यू.एस.ए. स्थित जोशुआ परियोजना। यह ईसाई बहुराष्ट्रीय कम्पनियों को उस प्रकार के बाज़ार अनुसंधान उपलब्ध कराती है जैसे कि कोका कोला या आई.बी.एम. जैसे वाणिज्यिक उद्यमों से उम्मीद की जायेगी। तहलका ने एक गहरा अध्ययन कर रिपोर्ट प्रकाशित की कि जोशुआ परियोजना एक समन्वित प्रयास से निकली है जिसका नाम है AD 2000 (ईसवी 2000) :

> जब भारत के लिए ईसवी 2000 की परिकल्पना की गयी थी, तब यह योजना फौजी नमूने पर आधारित थी, इस उद्देश्य के साथ कि यहाँ के लोगों पर आक्रमण किया जाये, कब्जा किया जाये, नियन्त्रित किया जाये या अधीन किया जाये। यह जमीनी स्तर से आने वाली ठोस गुप्तचर सूचना और चुनिन्दा जन समूहों के विभिन्न पक्षों पर अच्छी शोध से उपजी जानकारी के आधार पर बनी थी। विचार यह था कि धर्म और संस्कृति पर सूक्ष्म विवरण प्राप्त करने के लिए गुप्तचर मिशन भेजे जायें। विभिन्न भारतीय समुदायों में सामाजिक और आर्थिक विभाजनों का गहन अध्ययन किया गया था।[101]

तहलका में स्पष्ट किया गया है कि संयुक्त राज्य अमरीका के मुख्यालय को स्थानीय इकाइयों से मिलकर विश्व के किसी भी भाग में प्रभावी ढंग से सीधी स्थानीय कार्रवाई निर्देशित करने की क्षमता देने के लिए एक बहुराष्ट्रीय नेटवर्क तैनात किया गया है :

> अमरीका में एक एजेन्सी को लिखा गया एक पत्र तत्काल बेंगलुरू को पुनर्निर्देशित किया जाता है और फिर बेंगलुरू की एजेन्सी निकटतम ईसाई प्रचारक को ढूँढ़ निकालती है और उसे तलाश की रखने वाले नवीनतम व्यक्ति को ईसा मसीह का सन्देश देने के काम को सम्पादित करने के लिए निर्देशित करती है। वास्तव में मिशन का लक्ष्य है : 'हमें साइकिल से जा पाने तक की दूरी के अन्दर एक चर्च की जरूरत है, उसके बाद पैदल जा पाने तक की दूरी के अन्दर और अन्ततः उतनी दूरी पर जहाँ तक लोगों की आवाज सुनाई दे सके'। चर्चों की संख्या में वृद्धि के जो आँकड़े तहलका के पास हैं, वे स्पष्ट संकेत देते हैं कि मिशन को दिए गए उत्तरदायित्व का पालन पुरजोर तरीके से हो रहा है।[102]

जोशुआ परियोजना भारत में ईसाई प्रचारकों के और सरकारी आँकड़ों को समेकित कर रही है, और यह ईसाई प्रचारकों को स्थानीय संघर्ष प्रारम्भ करने या उनका प्रबन्ध करने में एक हत्था उपलब्ध करा सकता है, और फिर उनके समाचार अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर प्रसारित करवाये जा सकते हैं। इसका मिशन 'विश्व के उन लोगों के समूहों की पहचान करना और सामने लाना है जिनका ईसा मसीह के गॉस्पल से न्यूनतम सम्पर्क हुआ हो और उनके बीच ईसाइयों की न्यूनतम उपस्थिति हो'। सूचना के आँकड़ों के एक बड़े भण्डार का रख-रखाव करते हुए यह परियोजना 'प्रत्येक जातीय समूह में प्रमुख चर्च स्थापना अभियानों को प्रोत्साहित करने के लिए सूचनाओं का आदान-प्रदान' करती है।[103]

तहलका द्वारा प्रकाशित रपट दिखाती है कि किस तरह वैश्विक ईसाई धर्मान्तरण भारतीय आँकड़ों, जैसे 'भारत की नृतत्वशास्त्रीय समिति' (Anthropological Society of India) द्वारा तैयार की गयी पीपल ऑफ इण्डिया परियोजना का लाभ उठाता है। इस परियोजना ने पाँच सौ शोधकर्ताओं को भर्ती कर उनसे क्षेत्रीय कार्य में खर्च किये गये छब्बीस हज़ार से ज्यादा दिनों के अर्से में भारत भर से आँकड़े इकट्ठा करवाये। आँकड़ों के इस भण्डार का उपयोग करने के लिए ईसाइयों को प्रोत्साहित करते हुए, ग्लोबल कंसल्टेशन ऑन वर्ल्ड इवैंजेलाइजेशन की निदेशक, लुई बुश कहती हैं :

> पहले कभी ऐसा नहीं हुआ कि भारत पर इस प्रकार की जानकारी के लिए इतनी सतर्कता से सर्वेक्षण किया गया, तैयार किया गया और अच्छी तरह प्रकाशित और वितरित किया गया। ... हम नहीं मानते कि यह संयोग है। ईश्वर हमें 'इस भूमि की गुप्तचरी' की अनुमति दे रहा है, ताकि हम अन्दर जायें और उसके लिए इस भूमि और इसके लोग दोनों पर दावा ठोंक दें।[104]

जॉन दयाल लुई बुश को ही प्रतिध्वनित करते हैं और चाहते हैं कि सभी भारतीय धर्मान्तरण कराने वालों को ऐसे जनसांख्यिक आँकड़ा भण्डार का अध्ययन करना चाहिए :

> दयाल सुझाव देते हैं कि वे सभी जो किसी ईसाई संस्थान से संस्कारित या दीक्षित होना चाहते हैं, उनके लिए यह जरूरी कर देना चाहिए कि वे 'भारत का

नृतत्वशास्त्रीय सर्वेक्षण’ की ओर से सीगल बुक्स द्वारा प्रकाशित बहुश्रृंखला वाली पुस्तक ‘पीपल ऑफ इण्डिया’ के कम-से-कम पहले खण्ड—‘आमुख’—को पढ़ें और उसकी सामग्री पर एक सरल-सी परीक्षा में उत्तीर्ण हों।[105]

तहलका की रपट ध्यान दिलाती है कि किस तरह यह सब भारत को प्रभावित करता है :

दुर्भाग्यवश, बाइबल का ढोल पीटने वाले जीत रहे हैं और अमरीकी करदाताओं का सहयोग और समर्थन प्राप्त कर रहे हैं। जिस बात के प्रति वे सम्भवत: अनभिज्ञ हैं, वह यह है कि केरल जैसे राज्य के सुदूर गाँवों में सक्रिय भारत के मिशनरियों को बुश के मिशनरी उत्साह में शामिल कर लिया गया है। दुखद बात यह कि जहाँ पादरी प्रभात नायक केरल के गाँवों को ईसा मसीह के निकट लाने के लिए गम्भीरतापूर्वक प्रतिबद्ध हैं, वहीं वे इस बात से अनभिज्ञ हैं कि ईसाई प्रचारक धर्मशास्त्री और ह्वाइट हाउस द्वारा भेजी जा रही धनराशि भारत के सामाजिक ताने-बाने को चीरकर अलग कर देने का ख़तरा पेश कर रही है।[106]

विश्व भर में लगभग 16,300 जातीय समूह हैं, जैसा कि जोशुआ परियोजना द्वारा पहचान की गयी है, जिनमें से 6,700 को पहुँच से बाहर/अल्प पहुँच वाले की श्रेणी में रखा गया है, अर्थात् वे गैर-ईसाई हैं। इन ‘पहुँच से बाहर’ समूहों में सबसे ज्यादा भारत में रहते हैं, जो भारत को सबसे बड़े लक्ष्य वाला बाज़ार बना देता है। चित्र 18.4 इस सम्बन्ध में आँकड़े प्रदर्शित करता है।

चित्र 18.4 : ऐसे देश जिनमें ऐसे समूह सबसे अधिक हैं जो अभी तक बाकी विश्व द्वारा सबसे कम सम्पर्क में हैं

देश	सभी जातीय समूह	ऐसे समूह जो अभी धर्मान्तरित नहीं हुए हैं
भारत	2,596	2,283
चीन	504	415
पाकिस्तान	390	375
बांग्लादेश	402	355
नेपाल	335	312

स्रोत : विश्व ईसाई प्रचार की अवस्था, 2008 : जोशुआ परियोजना
(Source: Status of World Evangelization, 2008: Joshua Project)

10/40 विण्डो (Window) और आँकड़ा भण्डार की मार्केटिंग

भारत उस क्षेत्र में पड़ता है जिसे जोशुआ परियोजना द्वारा '10/40 विण्डो' कहा गया है, और जो विषुवत रेखा के उत्तर 10 डिग्री से 40 डिग्री अक्षांश के बीच फैला है। इस क्षेत्र को आत्माओं की फसल के व्यवसाय के लिए सबसे बड़े बाज़ार के रूप में लक्षित किया गया है। इस 10/40 विण्डो के अन्दर केवल भारत ही प्रमुख गैर-ईसाई देश है जो ईसाई धर्मान्तरण की अनुमति देता है। इस्लामी देशों और चीन ने इस तरह की गतिविधियों को रोकने या सीधे-सीधे प्रतिबन्धित करने के लिए कड़े कानून बनाये हैं, जिस वजह से सबसे बड़ा मौका जो उपलब्ध है, वह भारत ही है। जोशुआ परियोजना इस विण्डो में आने वाले क्षेत्रों का वर्णन 'शैतान के गढ़' के रूप में करती है।[107]

जोशुआ परियोजना का विश्व ईसाई प्रचारक दृष्टिकोण और सम्बन्धित सामग्री इसकी वेबसाइट से पावर-प्वाइंट प्रस्तुति के रूप में डाउनलो[की जा सकती है।[108] रणनीति को निगमित बहुराष्ट्रीय कम्पनियों की मार्केटिंग की भाषा के आवरण में रखा गया है। यह प्रकट रूप से कोका कोला की रणनीति और ईसाई प्रचार के बीच एक समानता पेश करती है, जिसके लिए ईसाइयत के बाज़ार में पहुँच पर आधारित विभिन्न भागों के विवरण तैयार किये गये हैं। इसके बाज़ार के प्रत्येक खण्ड को अलग रणनीतिगत दृष्टिकोण, धन की व्यवस्था, कार्यसंचालन, प्रबन्धन और अवस्था की जानकारी देने की प्रणाली दी गयी है।

चित्र 18.5 इस तरह की मार्केटिंग योजना का एक नमूना है, जिसमें इस तरह के विवरण वाले सैकड़ों पृष्ठ होते हैं। सावधानी से जाँच करने पर यह प्रदर्शित करता है कि किस तरह आँकड़े जमीनी स्तर की राजनीतिक स्थिति से सहसम्बन्ध रखते हैं। उदाहरण के लिए, यह दिखाता है कि अरुंथथियार दलित समुदाय ने ईसाई धर्मान्तरण के प्रति अनुकूल प्रतिक्रिया नहीं दिखायी। एक आश्चर्यजनक संयोग में, तिरुमवलवन ने, एक दलित नेता जिन्हें ईसाई प्रचारकों का भारी समर्थन प्राप्त है, उन्हें अनुसूचित जाति की सूची से हटवा दिये जाने की धमकी दी, जिसके परिणामस्वरूप भारतीय कानून के तहत उन्हें सभी सकारात्मक कार्रवाई के अधिकारों को खोना पड़ेगा। ऐसा इस तथ्य के बावजूद किया गया कि सामाजिक-आर्थिक स्थिति में यह समुदाय सबसे निचले दलित समूहों में है और इस प्रकार उसे सकारात्मक कार्रवाई की सर्वाधिक आवश्यकता है। तमिलनाडु सरकार द्वारा दलितों का पुन: आदि-द्रविडियार (आदिम-द्रविड़) के रूप में नामकरण करने के एक प्रयास का तिरुमवलवन ने भी समर्थन किया था, जबकि अरुंथथियार समुदाय ने उसका विरोध किया, जो इसे अपने समुदाय को हाशिये पर ढकेलने के एक सूक्ष्म षडयन्त्र के रूप में देखते हैं। तिरुमवलवन ने धमकी दी कि अरुंथथियार को केवल तमिलनाडु में रहने देना 'बर्दाश्त' किया जायेगा लेकिन उन्हें समुदाय के नेता बनने नहीं दिया जायेगा।[109] यह धमकी उन लोगों को दी जा रही है जो ईसाई नहीं बने हैं। इस प्रकार तमिलनाडु के

इसाइ नेतृत्व ने दलित मुक्ति आन्दोलन को अपहृत कर लिया है, इस हद तक कि जो दलित समूह ईसाई धर्मान्तरण का विरोध करते हैं, उनको भेदभाव झेलने के लिए विवश कर दिया जाता है, यहाँ तक कि अन्य दलितों की ओर से भी।

Fig. 18.5: तमिलनाडु के तीन प्रमुख दलित समुदायों के लिए जोशुआ परियोजना के आँकड़े स्रोत जोशुआ परियोजना 2000 : 2009 [Source: (Joshua Project 2000:2009)]

समुदाय		उन्नति का पैमाना			प्रतिशत		आध्यात्मिक आवश्यकता की क्रम सूची
नाम	जोशुआ परियोजना जातीय कोड	कम सम्पर्क की स्थिति	समुदाय में ईसाइयों की संख्या	समुदाय में मानने वालों की संख्या		हिन्दू	ईसाई
अरुंथथियार	CNN23d	हाँ [1.1]	ईसाइयों की संख्या लगभग शून्य	< 5 प्रतिशत	100	0	77
परैअर	CNN23c	नहीं [3.2]	ईसाई > 5% तेजी से बढ़ते हुए		75.41	24.56	< 25
पल्लर	CNN23d	नहीं [3.2]	ईसाई > 5% तेजी से बढ़ते हुए		85.30	14.70	<25

शैक्षिक संस्थानों का उदाहरण : बोस्टन थियोलॉजिकल इंस्टीटयूट

सूचना एकत्रीकरण का काम शैक्षिक शोध की आड़ में पाश्चात्य की मुख्यधारा के शैक्षिक संस्थानों द्वारा भी किया जाता है। हो सकता है कि इन संस्थानों में से कुछ इस बात से पूरी तरह अनभिज्ञ हों कि किसी दूर देश में जमीनी स्तर पर उनके बौद्धिक प्रयासों का किस प्रकार मंचन होता है।

इस प्रकार के शोध का एक दृष्टान्तमूलक नमूना है बोस्टन थियोलॉजिकल इंस्टीटयूट (बी. टी. आई.) जो अमरीका स्थित नौ संस्थानों का संघ है जिसे 'चर्च की एकता को बढ़ावा देने के लिए' और 'दृढ़ सार्वभौम प्रतिबद्धता के साथ चर्च नेता तैयार करने में योगदान देने के लिए और उनसे सम्बद्धित मिशनों और कार्यों के लिए उनके स्कूलों को मजबूत बनाने के लिए' भी गठित किया गया है।[110]

सन 2006 में बी.टी.आई. के दो सम्बद्ध संस्थानों (एण्डोवर न्यूटन थियोलॉजिकल स्कूल—ए.एन.टी.एस. और द इंटरनैशनल मिशन ऐण्ड इक्यूमेनिज़्म कमिटी) ने 'वर्ण, जनजातियाँ और धर्मान्तरण : भारत में आज ईसाई अस्मिताएँ' (Castes, Tribes and Conversions: Christian Identities in India Today) विषय पर मिशनों के लिए एक विचार-विमर्श सभा का आयोजन किया।[111] उसकी वार्ताओं में भारतीय समाज की समस्याओं को ईसाई प्रचारक अवसरों के रूप में प्रस्तुत किया गया। उनकी वार्ताओं के शीर्षक इस प्रकार थे—'भारत में मानवीयकरण का काम : वर्ण-आधारित अस्तिमताएँ और ईसाई-वित्त पोषित पहचानें', 'पूर्वोत्तर भारत में अस्मिता और जनजातीय धर्मान्तरण आन्दोलन' (Negotiating Humanization in India: Caste-founded Identities and Christ-funded Identifications', 'Identity and Tribal Conversion Movements in North-East India) आदि। उक्त सभा के बाद एक विडियो फिल्म दिखायी गयी जिसका नाम था 'ईसा के हिन्दू अनुयायी'(Hindu Followers of Christ) जो सेंटर फॉर द स्टडी ऑफ ग्लोबल क्रिश्चियैनिटी के निदेशक टॉड जॉनसन की पेशकश थी। जॉनसन के अनुसार, 'भारत उस जनसंख्या का सांख्यिकीय गुरुत्वाकर्षण केन्द्र है जिसने कभी ईसा मसीह के बारे में नहीं सुना है'।[112] सम्मेलन के पाँच आयोजकों में से एकमात्र भारतीय थे डैनियल जयराज, जो ए.एन.टी.ए. में वैश्विक ईसाइयत के व्याख्याता हैं।[113] उनका प्रकाशित शोध इस बात को रेखांकित करता है कि किस तरह औपनिवेशिक काल में तमिल ईसाइयों ने ईसाई प्रचारकों के रूप में तंजानिया और म्यांमार/बर्मा में प्रवासी तमिलों के बीच काम किया।[114] वे तर्क देते हैं कि भारत के बारे में औपनिवेशिक मिशनरियों द्वारा दिये गये विवरण पन्थ-निरपेक्ष विवरणों से अधिक विश्वसनीय हैं। वे डेनमार्क के एक औपनिवेशकालिक मिशनरी का उदाहरण देते हैं जो 'भारतीय ईसाइयों के लिए एक जीवित विरासत हैं जो आगे के विकास के लिए उत्साह और अवसरों से भरी है'।[115] वे कोलोन यूनिवर्सिटी के इण्डोलॉजी ऐण्ड तमिल स्टडीज इंस्टीटयूट से भी जुड़े हैं।

सन 1998 में, बी.टी.आई. ने हार्वर्ड के भारतविद माइकल विट्ज़ेल के व्याख्यान का आयोजन किया जिसका शीर्षक था 'आन्तरिक हिन्दुत्व? सनातन धर्म बनाम

जमीनी स्तर का हिन्दुत्व', जिसमें हिन्दू समाज के विखण्डन और इस विखण्डन द्वारा अस्मिता के संघर्ष के लिए उपस्थित किये जाने वाले अवसरों को दिखाने पर बल दिया गया था।[116]

सन 2006 में, बी.टी.आई., ए.एन.टी.एस. और 'ईक्यूमेनिकल एण्ड इवैंजेलिकल पार्टनर्स इन इण्डिया' ने 'वर्ण, जनजातियाँ और धर्मान्तरण : भारत में आज ईसाई अस्मिताएँ' (Castes, Tribes and Conversions : Christian Identities in India Today) विषय पर एक कार्यशाला आयोजित करने के लिए हाथ मिलाया। सेंट टॉमस की कहानी से शुरू करते हुए कार्यशाला ने 'पहली शताब्दी से केरल और मद्रास में सन्देशवाहकों द्वारा ईसाइयत के उद्भव और साक्ष्य' पेश किया, जिसका उद्देश्य यह खोज निकालना था कि भारत में कितने प्रकार की वैश्विक ईसाइयत प्रचलन में हैं। कार्यशाला ने यह खोजना चाहा कि 'वैश्वीकरण और पश्चिमीकरण की प्रक्रियाएँ भारतीय समाज को किस प्रकार प्रभावित करती हैं', ताकि समझा जा सके कि 'एक प्रभावी संस्कृति के सन्दर्भ में, जो आधुनिक पन्थ-निरपेक्ष भारत की पहचान एक ''हिन्दू'' बहुसंख्यक के रूप में करना चाहती है, चर्च होने का क्या अर्थ है'।[117] दूसरे शब्दों में, लक्ष्य उन तरीकों का पता लगाना था जिससे हिन्दू धर्म से पन्थ-निरपेक्षता हटाकर उसे ईसाइयत से जोड़ा जा सके।

इस कार्यशाला ने अमरीका के उन ईसाई प्रचारक विद्वानों को एक मंच पर पेश किया जिन्होंने भारत के विभिन्न स्थानों की यात्राएँ की थीं और ईसाई बने लोगों के सांस्कृतिक तथा सामाजिक मुद्दों के अध्ययन के लिए ईसाई प्रचारक संस्थानों के दौरे किये थे। उनकी यात्रा के दैनिक विवरण बी.टी.आई. की वेबसाइट में प्रकाशित किये गये हैं। ऐसी ही यात्रा का एक विवरण बताता है कि किस तरह ए.एन.टी.एस. के मिशन समन्वयक, जिम हिन्ड्स, ने युवाओं के एक दल का नेतृत्व किया जो भारत में ईसाई अस्मिता के मुद्दे से जूझ रहे थे 'जो उन पर आम नमूनों के अनुरूप व्यवहार करने के लिए भारी दबाव डालता है'। उन्होंने भारतीय ईसाई युवाओं को दिखाया कि 'ईसा मसीह ने हमें अनुरूप चलने के लिए नहीं कहा है'।[118] दूसरे शब्दों में यह शोध भारत में ईसाई होने के मुद्दों के समाधान का इरादा रखता है, जहाँ वे एक भारतीय पहचान रखने के दबाव का अनुभव करते हैं।

ऐसे निवेशों का दीर्घावधि प्रभाव होता है जनसंख्या के उप-समूहों का पोषण जो पश्चिम के हस्तक्षेप के लिए पात्रों का काम करेंगे। पश्चिमी ईसाई पहचान की ये 'कोशाएँ' न केवल पश्चिमी हस्तक्षेप का स्वागत करेंगी बल्कि सक्रिय रूप से सही समय पर हस्तक्षेप के लिए सही वातावरण तैयार करने में सहायता करेंगी। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए वे गुप्तचर सूचनाएँ और उत्पीड़न साहित्य की आपूर्ति करते हैं। इसका तत्कालिक प्रभाव है सामाजिक सौहार्द का भंग होना, धार्मिक तनाव और हिंसात्मक संघर्ष। अगला खण्ड इसकी और आगे जाँच करता है।

जमीनी सतह पर प्रभाव

ऐसी गतिविधियों का एक आयाम जिसकी रपट कम ही सामने आती है, वह है मूल निवासियों की धार्मिक प्रथा और संस्कृतियों के विरुद्ध फैलायी गयी हिंसा। ऐसी हिंसा का एक स्वरूप होता है, जिसे अच्छी तरह डॉक्यूमेंट किये जाने के बावजूद समाचार माध्यमों द्वारा नजरन्दाज किया गया है। जब उड़ीसा, असम, झारखण्ड और तमिलनाडु जैसे भिन्न स्थानों में हुई हिंसा की घटनाओं की जाँच की जाती है तब स्पष्ट हो जाता है कि हिंसा आक्रामक ईसाई धर्मान्तरण की मात्रा के सीधे समानुपात में होती है।

कन्या कुमारी का नाम बदलकर 'कन्नी मेरी' करना

सन 1982 तमिलनाडु के कन्या कुमारी जिले में हिन्दुओं और ईसाइयों के बीच दंगों की एक श्रृंखला की शुरुआत को रेखांकित करता है, जिनके कारण अनेक मौतें हुईं और सम्पत्ति का भारी नुकसान हुआ। तमिलनाडु के मुख्य मन्त्री ने सर्वोच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश के अधीन, जो द्रविड़ों के प्रति सहानुभूति रखने वाले थे, एक जाँच आयोग नियुक्त किया। आयोग ने 161 गवाहों की जाँच की, विभिन्न पक्षों द्वारा प्रदर्शित की गयी 323 वस्तुओं की पड़ताल की, और विभिन्न हिन्दू, ईसाई और मुस्लिम संगठनों के तर्कों को सुना जिनका प्रतिनिधित्व 16 अधिवक्ताओं ने किया था। **इसने दो-टूक निष्कर्ष दिया कि तनावों और झड़पों का मूल कारण हिन्दुओं के ईसाइयत में आक्रामक धर्मान्तरण और उसके लिए अपनाये गये प्रचार के तरीके थे।** न्यायाधीश ने यह लिखते हुए ईसाइयों की इस माँग पर भी गौर किया था कि कन्या कुमारी का नाम बदलकर 'कन्नी मेरी' (वर्जिन मेरी) कर दिया जाये कि :

> संविधान की धारा 25 को, जो किसी भी व्यक्ति को उसके धर्म के प्रचार का मौलिक अधिकार देती है, ईसाई मिशनरियों द्वारा विकृत करके हिन्दू धर्म की हिंसात्मक आलोचना में बदल दिया गया है, जिन्होंने हिन्दू धर्म और उनके देवों का उपहास उड़ाने और उन्हें छोटा दिखाने तथा हिन्दू धर्म की गलत व्याख्या के घातक तरीके अपनाने प्रारम्भ कर दिये थे। इसके उत्तर में हिन्दुओं द्वारा ईसाइयत पर समान रूप से विषाक्त आक्रमण और आलोचनाएँ की गयीं। शीघ्र ही हिन्दुओं और ईसाइयों, दोनों के बीच खुली धमकियों और चुनौतियों का आदान-प्रदान प्रारम्भ हो गया, जब प्रत्येक पक्ष ने अपने विरोधी पक्ष के पूजा स्थल को अपवित्र करने, गन्दा करने और नष्ट करने की धमकियाँ दीं।[119]

ऐसे ईसाई उकसावे का एक उदाहरण चित्र 18.6 में दिखाया गया है, जो भगवान कृष्ण का एक चित्र है, जिनका सर काट दिया गया है। जीजस आर्ट्स नामक एक स्थानीय ईसाई प्रचारक कला केन्द्र ने इसे ग्रीटिंग कार्ड के रूप में अनेक गाँवों के हिन्दू मन्दिरों के पुजारियों को भेजा जिसके साथ लिखा था 'जीसस इस द हेड ऑफ़ पुरुषोत्तम'। दूसरे शब्दों में, कृष्ण का कोई सिर नहीं था क्योंकि ईसा मसीह उनके सिर

हैं। यह पूर्ण मार्गी धर्मशास्त्र का फूहड़ जमीनी प्रचार है जिसे बहुधा ईसाई विद्वानों द्वारा परिष्कृत शब्दों में अभिव्यक्त किया जाता है।

Fig 18.6 कृष्ण का सर कटा चित्र : ईसाई घृणा का अधिप्रचार

सन 1981 में, दंगों के एक वर्ष पहले, स्थानीय चर्च डायोसीस ने हिन्दू सुधारवादी अय्या वैकुन्दर पर एक अत्यन्त अपमानजनक पुस्तक प्रकाशित की, जिसमें उनकी तुलना बाइबल में उल्लिखित मानव के शत्रु से की गयी थी (Matthew 13 : 25), और उन पर और उनके अनुयायियों पर अपमान के ढेर लगा दिये गये।[120] जिला प्रशासन ने उस पुस्तक को निन्दात्मक घोषित किया। इस सबके बावजूद संयुक्त राज्य अमरीका में ईसाई प्रचारकों ने कन्या कुमारी के दंगों का वर्णन 'ईसाइयों के उत्पीड़न' के रूप में किया, और संयुक्त राज्य अमरीका की सरकार से हस्तक्षेप करने के लिए गुट बनाकर दबाव डाला। क्रिश्चियैनिटी टुडे के सम्पादक को लिखे एक पत्र में कहा गया :

> दलितों द्वारा (विशेषकर कन्या कुमारी और अरुणाचल में) ईसाइयों के बढ़ते उत्पीड़न को भी हम प्रमुखता से प्रकाशित करें और माँग करें कि वॉशिंगटन इस प्रकार के सभी उत्पीड़नों, चर्चों को जलाने और इसी प्रकार की अन्य घटनाओं को रोकने के लिए दिल्ली पर दबाव डाले।[121]

धन और सहानुभूति की याचना करने के लिए इसी प्रकार के प्रचार का प्रभावी ढंग से उपयोग किया जा रहा है, अमरीकी हस्तक्षेप के निरन्तर ख़तरे का उपयोग करते हुए भारत की प्रभुसत्ता पर दबाव डालने के लिए भी।

बार-बार होने वाले ईसाई प्रचारक उकसावे

हिन्दू देवों, उनके पवित्र प्रतीकों और साहित्य पर ऐसे ईसाई प्रचारक हमलों को समाचार माध्यमों द्वारा जहाँ अधिकतर मामलों में नजरन्दाज कर दिया जाता है, वहीं दूसरे वक्तों पर इन उकसावों को मिशनरियों द्वारा भारी गर्व के साथ विज्ञापित किया जाता है। उदाहरण के लिए, एक प्रमुख ईसाई प्रचारक वेबसाइट हिन्दुओं की एक पावन नगरी, वाराणसी, के बारे में यह कहती है :

> वाराणसी हिन्दू धर्म के लिए सर्वाधिक पवित्र शहर है, जहाँ हज़ारों मन्दिर हैं जो शिव की पूजा पर केन्द्रित हैं, एक प्रतिमा जिसका प्रतीक लिंग है। अनेक इस शहर को शैतान का ही स्थान मानते हैं। हिन्दू विश्वास करते हैं कि वाराणसी में गंगा स्नान सभी पापों को धो डालता है। अनेक ईसाई कार्यकर्ताओं ने इस शहर के लिए प्रार्थना का बोझ उठाया और अपनी प्रार्थना-फेरियों के दौरान मूर्तियों के आगे साहसपूर्वक घोषित किया, 'तुम एक जीवित ईश्वर नहीं हो'।[122]

इसी तरह, बच्चों के लिए ईसाई प्रचारक कॉमिक्स, जैसे चिक पब्लिकेशन (यू.एस.ए.) द्वारा प्रकाशित 'गद्दार' (*The Traitor*), हिन्दू देवी-देवताओं का दानवीकरण रक्त पिपासु जीवों के रूप में करती है जो मानव बलि की माँग करते हैं, लेकिन ये ईसा मसीह के आगे शक्तिहीन बताये जाते हैं। भारतीयों को दानवी शक्तियों के साथ मिली-भगत कर दुष्ट पुरोहितों द्वारा बन्धक बनाकर रखा हुआ दिखाया गया है, और सरकारी अधिकारियों को मानवों की बलि को छिपाते हुए दिखाया गया है।[123]

असम में एक चर्च को क्षमा माँगनी पड़ी और भजनों के एक पूरे प्रकाशित सेट को नष्ट करना पड़ा जब स्थानीय लोगों ने उसमें शामिल नामघोष के अनुवाद में की गयी विकृति का विरोध किया, जो असम में वैष्णवों की सबसे पवित्र पुस्तक है। अनुवाद में मूल भजनों में राम और कृष्ण के नाम हटाकर उनके स्थान पर ईसा मसीह का नाम लिखा गया था।[124]

सन 2008 में, बाइबल के कुड़ुख (उरांव) में अनुवाद ने, जो एक जनजातीय भाषा है, एक बड़ा विवाद खड़ा कर दिया था। इस आदिवासी समुदाय ने बाइबल के एक अध्याय, 'डियुटरोनोमी' (Deuteronomy 12 : 2) के अनुवाद पर कड़ी आपत्ति की थी। 'सरना मन' शब्दावली, जिसका अर्थ हरे वृक्ष है, को विकृत कर ईसाई देव के एक निर्देश में बदल दिया गया था जिसमें कहा गया कि उन लोगों को नष्ट कर दो जो हरे वृक्ष की पूजा करते हैं। विरोध करने वालों ने चर्च पर अपने धर्म को नष्ट करने का षडयन्त्र करने का आरोप लगाया। यह विवाद चर्च की क्षमा याचना और अनुवाद को वापस ले लेने तक झारखण्ड राज्य में लगभग दो महीनों तक चला।[125] जो भी हो, इस घटना के बाद शीघ्र ही झारखण्ड के आदिवासियों ने शिकायत की कि गॉस्नर इवैंजेलिकल लुथेरन चर्च द्वारा प्रकाशित एक पाठचपुस्तक में एक आदिवासी समुदाय

के प्रमुख स्वतन्त्रता सेनानी का चित्रण नकारात्मक तरीके से किया गया है।[126] चर्च को यह पुस्तक विवश होकर वापस लेनी पड़ी।

उन लोगों द्वारा आत्महत्या की अनगिनत घटनाएँ हुई हैं जिन्हें आक्रामक ईसाई धर्मान्तरण का शिकार होना पड़ा था, विशेषकर तमिलनाडु और आन्ध्र प्रदेश की युवा लड़कियों को। ऐसी ही एक घटना में एक विश्वविद्यालय के कुलपति को हटा दिया गया, क्योंकि उन्होंने विश्वविद्यालय के छात्रावास के अन्दर आक्रामक ईसाई धर्मान्तरण की अनुमति दी थी,[127] जबकि एक अन्य मामले में एक लड़की ने आत्महत्या के पूर्व एक पत्र लिख छोड़ा जिसमें 'ईसाई गतिविधियों' पर उसके जीवन को नष्ट करने का आरोप लगाया गया था।[128] एक बारह वर्षीय लड़की ने, जिसने एक ईसाई स्कूल में धार्मिक प्रताड़ना का आरोप लगाया था, आत्महत्या कर ली जब उसे बाइबल के पद्य न पढ़ पाने के लिए सार्वजनिक रूप से अपमानित किया गया।[129] सन 2007 से 2008 तक तमिलनाडु के विभिन्न जिलों में अनेक मन्दिरों में तोड़-फोड़ की गयी, विशेषकर वहाँ जहाँ ईसाई बड़ी संख्या में हैं। उन गाँवों में जहाँ हिन्दू अल्पसंख्यक हो गये हैं, मन्दिरों को तोड़ कर गिरा दिया गया और हिन्दुओं को स्थान छोड़ने की धमकी दी गयी और गाँवों को 'हिन्दू मुक्त' बनाने को कहा गया।[130] सन 2009 में, पारम्परिक तमिल फसलों का त्योहार, पोंगल, कन्या कुमारी जिले के एक गाँव में ईसाई आन्दोलनकारियों के विरोध के कारण बन्द करा दिया गया है।[131]

देशज आध्यात्मिक परम्पराओं पर ऐसे आक्रमण और उकसावे कभी अन्तर्राष्ट्रीय समाचार माध्यमों में स्थान नहीं पाते या धार्मिक स्वतन्त्रता के बारे में तैयार की जाने वाली रपटों में भी। यह शारीरिक या भौतिक हिंसा, दानवीकरण का शास्त्र, और एक जातीय धार्मिक द्रविड़-ईसाई पहचान गढ़ने के लिए झूठे प्रचार का दुर्जेय तन्त्र है।

हिन्दू समाज पर ऐसे ईसाई प्रचारक आक्रमण के अलावा, विशेष रूप से कैथोलिक चर्च और सामान्य रूप से ईसाई प्रचारक संगठनों ने एक व्यापक नेटवर्क और संस्थागत साम्राज्य निर्मित कर लिया है। इसने भारत जैसे विकासशील देश को पादरियों द्वारा, भारतीय समाज के कमजोर वर्गों पर उनकी पकड़ के माध्यम से व्यापक दुरुपयोग के लिए विशेष रूप से निशाना बना दिया है।

सन 2010 में, पश्चिमी समाचार माध्यमों ने उजागर किया कि संयुक्त राज्य अमरीका के कानून से फरार एक कैथोलिक पादरी तमिलनाडु में एक डायोसीस में काम कर रहा था। मिनेसोटा के सरकारी वकील द्वारा बाल-बलात्कार के उस अभियुक्त को वापस अमरीका भेजे जाने के अनेक अनुरोधों और प्रयासों के बावजूद अभियुक्त पादरी ऊटाकामण्ड के शिक्षा आयोग के डायोसीस के सचिव पद पर बना रहा। उस पादरी के एक शिकार की ओर से न्यायालय में उपस्थित होने वाले अधिवक्ता के अनुसार उसके बलात्कारी होने के बारे में जानने वालों में केवल बिशप और वैटिकन हैं, और इसे गुप्त रखा गया था।[132] जब यह समाचार अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर सामने आया, भारतीय डायोसीस के बिशप ने, जिसमें वह पादरी काम करता था,

धीरता से प्रतिक्रिया व्यक्त की, मानो यह कोई गम्भीर अभियोग नहीं था।[133] भारतीय समाचार माध्यमों ने इस मामले में उदासीनता से समाचार प्रकाशित किया और कम-से-कम मुख्य धारा के एक पत्रकार ने दावा किया कि ऐसे आरोपों का कारण भारत-विरोधी/कैथोलिक-विरोधी पूर्वाग्रह है।[134]

लेकिन समाचार माध्यमों—भारतीय और अन्तर्राष्ट्रीय दोनों—ने जो समाचार नहीं प्रकाशित किया, वह यह कि ईसाई संस्थानों से जुड़े बाल दुराचारों के आरोपों के समाचार दक्षिण भारत की स्थानीय भाषाओं के समाचार माध्यमों में प्रकाशित होते रहे हैं। मार्च 2010 में केरल के एक कैथोलिक संस्थान में एक किशोरी की मौत हो गयी—जिसे चूहे मारने का विष खाकर की गयी आत्महत्या बताया गया। जो भी हो, उसके माता-पिता के दबाव में पुलिस ने उस मामले की जाँच की और दो पादरी उसकी यौन-प्रताड़ना के आरोप में गिरफ्तार किये गये।[135] फरवरी 2010 में, एक कैथोलिक पादरी द्वारा एक लड़के के साथ यौन-दुर्व्यवहार किया गया और जाँच से उजागर हुआ कि उस पादरी पर पहले भी ऐसे यौन-दुर्व्यवहार के आरोप थे, लेकिन जब इसकी सूचना चर्च के बड़े अधिकारियों को दी गयी तब आरोप लगाने वाले को चर्च द्वारा आर्थिक दण्ड दिया गया तथा अभियुक्त को तरक्की देकर ऐसे पद पर बैठा दिया गया जिस पर रहते हुए वह और अधिक विद्यार्थियों के साथ ऐसा यौन-दुर्व्यवहार कर सकता था।[136] वर्ष 2008 में, तमिलनाडु के एक प्रसिद्ध कैथोलिक तीर्थ के एक होस्टल के कमरे में एक कैथोलिक पादरी का शव पाया गया था, जिसकी हत्या कर दी गयी थी। बाद में एक समाचार पत्रिका द्वारा की गयी पड़ताल ने उजागर किया कि वह उस नेटवर्क का एक अंग था जो कैथोलिक अनाथालयों की लड़कियों के साथ यौन-दुर्व्यवहार करता था।[137] सन 2007 में, पॉण्डिचेरी के एक कैथोलिक कॉन्वेंट के अन्दर एक लड़की फाँसी लगी हुई मरी पायी गयी थी। लोगों ने उसके साथ यौन-दुर्व्यवहार और हत्या की आशंका व्यक्त की थी।[138] वर्ष 2006 में, तमिलनाडु की एक दलित लड़की रहस्यमय परिस्थितियों में एक कैथोलिक शिक्षण संस्थान के अन्दर मरी पायी गयी थी। उस परिसर के अन्दर निरोध (कंडोम) और शराब की बोतलें पायी गयी थीं।[139] बाद में मेडिकल रिपोर्ट ने प्रमाणित किया कि उस लड़की के साथ यौन दुर्व्यवहार हुआ था।[140]

दोनों देशों में चर्च ऐसे दुर्व्यवहारों के प्रति जो परस्पर विरोधी रवैये अपनाता है, वे स्वाभाविक रूप से दुखद हैं। संयुक्त राज्य अमरीका के ऐसे आरोप के मामले में भारतीय कैथोलिक बिशप ने अभियुक्त पादरी को अमरीका प्रत्यर्पित करना बड़ी नरमी से स्वीकार कर लिया। लेकिन एक दलित लड़की के साथ यौन-दुर्व्यवहार और उसकी हत्या के मामले में तमिलनाडु के शिक्षा मन्त्री द्वारा जनाक्रोश शान्त करने के लिए कैथोलिक डायोसीस से स्कूल कर्मचारी को केवल स्थानान्तरित करने का अनुरोध करने के बाद भी सम्बद्ध डायोसीस के बिशप ने ऐसा करने से दो टूक इनकार कर दिया। उन्होंने खुले-आम कहा कि अल्पसंख्यक शिक्षण संस्थान मन्त्री के

अधिकार-क्षेत्र में नहीं था, और किसी भी व्यक्ति का स्थानान्तरण नहीं किया जायेगा। राज्य के मन्त्री ने फिर हथियार डाल दिये।[141]

तमिलनाडु की राजधानी में 2008 में जारी एक प्रचार पुस्तिका का आवरण पृष्ठ (देखें चित्र 18.7) प्रदर्शित करता है कि द्रविड़ अलगाववाद कोई शैक्षिक अटकल नहीं है, बल्कि भारत को तोड़ने के लिए विद्रोह का आह्वान है। तमिलनाडु की एक सार्वजनिक सभा में विमोचित यह पुस्तक जनता से आह्वान करती है कि वे हथियार उठायें और एक अलग प्रभुता-सम्पन्न तमिलनाडु के निर्माण के लिए भारत को नष्ट कर दें। जमीनी सतह पर ऐसी लामबन्दी कोई सनकी घटना नहीं, बल्कि अन्तर्राष्ट्रीय नेटवर्कों द्वारा सावधानीपूर्वक नियोजित कार्रवाई है।

19
सभ्यताओं के टकराव में भारत

ऐसा नहीं है कि भारत कभी स्वतन्त्र देश नहीं रहा। बात यह है कि इसने अपनी स्वतन्त्रता खो दी जो इसके पास थी। क्या यह दूसरी बार इसे खोयेगा? यही वह चिन्ता है जो मुझे भविष्य के प्रति सर्वाधिक चिन्तित करती है। जो मुझे अत्यधिक व्याकुल करती है, वह यह तथ्य है कि भारत ने अपनी स्वतन्त्रता न केवल पहले एक बार खो दी, बल्कि इसने अपने ही कुछ लोगों के विश्वासघात और छल-कपट से खोयी। ... क्या इतिहास स्वयं को दुहरायेगा? यह वही विचार है जो मुझे दुश्चिन्ता से भर देता है। यह दुश्चिन्ता इस तथ्य को जानने के बाद और गहरी हो गयी है कि वर्ण और सम्प्रदाय रूपी हमारे पुराने शत्रुओं के अलावा हमारे पास परस्पर विपरीत और विरोधी राजनीतिक समुदायों वाली अनेक राजनीतिक पार्टियाँ होंगी। क्या भारत के लोग देश को अपने समुदायों से ऊपर रखेंगे या वे समुदायों को देश से ऊपर रखेंगे? मैं नहीं जानता। लेकिन इतना निश्चित है कि अगर पार्टियाँ समुदायों को देश के ऊपर रखेंगी तो हमारी स्वतन्त्रता दूसरी बार संकट में पड़ जायेगी और सम्भवत: हमेशा के लिए खो जायेगी। हम सब को दृढ़ता से ऐसा नहीं होने देने के लिए इसकी रक्षा करनी होगी। हमें अपने रक्त की अन्तिम बूँद तक अपनी स्वतन्त्रता की रक्षा के लिए कृतसंकल्प होना पड़ेगा।

—भारत की संविधान सभा में डॉ. बी.आर. अम्बेडकर का

समापन भाषण, 25 नवम्बर 1949[1]

आधुनिक काल में, सभ्यता की तीन शक्तियाँ वैश्विक विस्तार के लिए होड़ में हैं और इनमें से हर शक्ति भारत की विभाजनकारी शक्तियों को अपनाने और उनका पोषण करने में लगी हैं। ये हैं : माओवादी/मार्क्सवादी जिनका चीन के साथ गठबन्धन है, ईसाई प्रचारक जिनका पश्चिम से गठजोड़ है, और जिहादी जिनका इस्लाम से सम्बन्ध है। इनमें से हरेक ने ऐसे भारतीय समर्थकों और ढाँचों का एक आधार बना लिया है जो एक विभाजनकारी पहचान और सिद्धान्त अपनाते हैं।

जहाँ एक ओर वैश्विक स्तर पर इन तीनों सभ्यताओं में गम्भीर सैद्धान्तिक मतभेद और आपसी घृणा है, वहीं दक्षिण एशिया में अपने निहित स्वार्थों के क्षेत्रीय स्तर पर वे भारत को विखण्डित करने के लिए खुले-आम (और शायद अचेतन रूप में) सामान्य हितों की साझेदारी करते हैं। उदाहरण के लिए, यह अटपटा लगता है कि भारतीय माओवादी पश्चिमी ईसाई प्रचारकों के साथ सहयोग करते हैं, लेकिन यह उनके लिए रणनीतिगत समझदारी बनती है, क्योंकि एक कमजोर राज्य उनके लिए अधिक सम्भावनाओं के द्वार खोलता है। पारम्परिक सामाजिक ताने-बाने को कमजोर कर दोनों उसके स्थान पर अपने ही सिद्धान्तों को स्थापित करने की आशा रखते हैं। दोनों

समूह, इस प्रकार दलितों की वास्तविक शिकायतों से लाभ उठाते हैं और अपने एजेंडों को आगे बढ़ाने के लिए द्रविड़ पहचान तथा इतिहास में हेरा-फेरी करते हैं। जमीनी सतह पर व्यावहारिक कामचलाऊ व्यवस्था के तहत माओवादी गुरिल्ला अमरीकी मिशनरियों की मेजबानी करते हैं, और द्रविड़ राजनीतिज्ञ जिहादी बम विस्फोटों के बारे में सह-अपराधी बने रहते है।

भारत के अन्दर इन तीनों वैश्विक गठजोड़ों में से हरेक राजनीति, वित्त, समाचार माध्यम और सूचना इकट्ठी करने में स्पष्ट रूप से उपस्थित है। हर गठजोड़ भारत में व्यक्तियों और संस्थानों के अपने नेटवर्क को धन देता है, उन्हें प्रायोजित करता है, उनकी अगुवाई करता है, उन्हें प्रशिक्षण देता है और दूर से ही उनका प्रबन्धन करता है। ये भारतीय संसाधन, फिर अपनी प्रेरणा के स्रोत के रूप में, धन के लिए राजनीतिक समर्थन के लिए और सत्ता के लिए अपने विदेशी मुख्यालयों की ओर देखते हैं। फिर भी ऐसे परिदृश्य पर भारत के बुद्धिजीवियों, समाचार माध्यमों और नीति निर्माताओं के बीच पर्याप्त रूप से इस पर विचार-विमर्श नहीं हुआ है।

आवरण पृष्ठ का मानचित्र

इस पुस्तक के आवरण पृष्ठ पर जो मानचित्र प्रदर्शित किया गया है वह www.dalitstan.com नामक वेबसाइट पर जारी किया गया था,[2] जिसमें अनेक अलगाववादी समूहों के लेखन प्रकाशित किये गये थे और जिसमें भारत की प्रभुसत्ता को उखाड़ फेंकने के लिए पारस्परिक एकता का दावा किया गया था। इस पुस्तक के लेखक को पहली बार संयोग से ही यह मानचित्र मिला जब वे प्रिन्स्टन यूनिवर्सिटी के एक अफ्रीकी-अमरीकी शोधार्थी से साथ अनौपचारिक रूप से बात-चीत कर रहे थे, जिन्होंने उनको बताया था कि वह हाल ही में भारत से लौटा था, जहाँ वह कुछ अफ्रीकी-दलित विद्वानों से मिला था। इस लेखक ने यह जानने के लिए और आगे जाँच की कि उसका अर्थ क्या है, और उस बात-चीत में उन्होंने आन्दोलनकारियों के बीच इस मानचित्र के अस्तित्व के बारे में जाना। उसके बाद के वर्षों में लेखक ने पाया कि विभिन्न प्रकार के आन्दोलनकारियों द्वारा इसे उद्धृत किया जा रहा था जिनमें एकमात्र साझा तत्व था—एकताबद्ध राष्ट्र के आधार के रूप में भारतीय सभ्यता के प्रति उनकी घृणा ही।

हालाँकि यह मानचित्र हाल के वर्षों की एक वेबसाइट से है, इसमें अभिव्यक्त संकल्पना दशकों पुरानी है और ब्रितानी औपनिवेशिक काल तक चली जाती है जब उन्होंने उप-राष्ट्रीय समूहों को अपने लिए अलग देश की माँग करने के लिए प्रोत्साहित किया था और इस प्रकार भारत के राष्ट्रीय स्वतन्त्रता आन्दोलन को कमजोर करने के प्रयास किये थे। पाकिस्तान के निर्माण की मुसलमानों की माँग के साथ अन्य समूहों की ओर से इसी तरह की माँगें जुड़ गयी थीं, उदाहरण के लिए, एक अलग द्रविड़

राष्ट्र के लिए। ये अलगाववादी स्वर एक बार फिर तेज हो रहे हैं और भारत ख़तरे की एक नयी सीमा पर खड़ा इसका सामना कर रहा है।

Fig 19.1 वस्तारवादी सभ्यता की शक्तियाँ और भारत में उनके एजेंट

अखिल-इस्लाम
चीन
पश्चिम
जिहादी
माओवादी
इवैंजेलिस्ट

- ULFA को हथियारों की आपूर्ति
- भारत विरोधी राजद्रोह
- भारत भर में छुपे हुए सेल जो गतिविधि के लिए तैयार हैं
- दक्षिण भारतीय विद्रोहियों का तन्त्र (LTTE, PWG)

- नेपाल में सहयोग
- नागालैंड में विचारधारा के रूप में जुड़ना
- 'लाल कॉरिडोर' में ईसाई धर्मान्तरण के विरुद्ध मूल निवासियों के प्रतिरोध के विरुद्ध एकीकरण
- उत्तर-पूर्व, तमिलनाडु और आन्ध्र प्रदेश आदि को हथिया लेना

कुमुक के तन्त्र का समर्थन
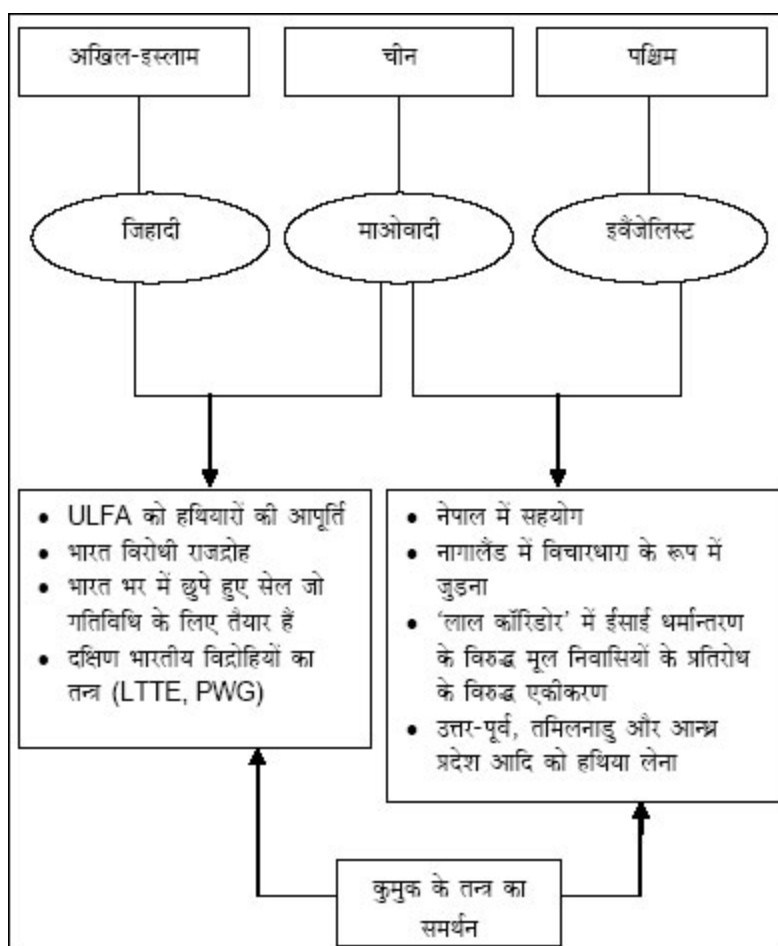
चित्र 19.1 इन तीनों शक्तियों और उनके अपने-अपने कुछ कार्यक्रमों का चित्रण करता है। अगले पन्नों में इन तीनों शक्तियों—ईसाई, माओवादी और इस्लाम की चर्चा की जायेगी।

भारत से होते हुए माओवादी लाल गलियारा

'कुछ सौ ''ईसाई-माओवादी'' गुरिल्ला उड़ीसा में शक्ति-समीकरण बदल देंगे'।

—विशाल मंगलवादी"

भारत के नागालैण्ड राज्य में एक माओवादी ईसाई राष्ट्र की परिकल्पना द्वारा संचालित विद्रोह अस्तित्व में है। नागा अलगाववादी गुरिल्लों ने अपने घोषणा-पत्र में घोषित किया है :

हमारे देश का सम्प्रभु अस्तित्व, ईसा मसीह में हमारे लोगों की आध्यात्मिक

Fig 19.2 नागालैंड प्रतिरूप का कार्यान्वन : वैश्विक और स्थानीय शक्तियों के बीच में गठजोड़

* Paul Freston, Evangelicals and Politics in Asia, Africa and Latin America, Cambridge University Press, 2004, p.88

> मुक्ति के साथ समाजवाद में उनकी मुक्ति निर्विवाद है। ... हम समाजवाद के पक्षधर हैं। ... हम ईश्वर में विश्वास के और क्राइस्ट ईसा में मानव की मुक्ति के पक्षधर हैं, अर्थात् 'ईसा मसीह के लिए नागालैण्ड' की खातिर। ... हम शान्ति के साधनों के माध्यम से नागालैण्ड को बचाने के भ्रम को एक सिरे से खारिज करते हैं। हथियार और केवल हथियार हैं जो हमारे राष्ट्र को बचायेंगे।[4]

चित्र 19.2 चित्रित करता है कि किस प्रकार वैश्विक और स्थानीय शक्तियाँ मिलकर काम करती हैं।

अध्याय छह से नौ तक, हमने देखा कि किस प्रकार उपनिवेशवादी ईसाई प्रचारकों ने पहले एक अलग द्रविड़ पहचान, इतिहास, और पीड़ित होने की एक भावना पैदा की थी जिसके साथ अन्य भारतीयों को दुष्ट दमनकारियों के रूप में चित्रित किया गया था। बाद में इसे ईसाई-द्रविड़ पहचान में बदल दिया गया जिसका संचालन विदेशी गठजोड़ों द्वारा किया जाने लगा। उसी प्रकार, अंग्रेज उपनिवेशवादियों ने शेष भारत से अलग एक नागा पहचान को सावधानीपूर्वक पोषित किया, और उसके बाद मिशनरियों ने इस पहचान को बाइबल के ढाँचे के अन्दर पोसा-बढ़ाया।[5]

वर्ल्ड काउंसिल ऑफ चर्चेज (डब्ल्यू.सी.सी.) ने अन्तर्राष्ट्रीय मंचों पर सक्रिय ढंग से नागालैण्ड के अलगाववादी मुद्दे की अगुवाई की।[6] आज नागा समाज कुल

मिलाकर बैप्टिस्ट चर्च द्वारा नियन्त्रित होता है, जिसका मुख्यालय संयुक्त राज्य अमरीका में है। नागालैण्ड में बैप्टिस्टों का जिस प्रकार का नियन्त्रण है उसकी तुलना केवल यूरोप के मध्यकालीन काले युग में कैथोलिक चर्च की शक्ति से ही की जा सकती है। वर्ष 1992 में, भारत सरकार ने एक ईसाई धर्मशास्त्री एम.एम. टॉमस को अलगाववादियों से शान्ति वार्ता के लिए नागालैण्ड का राज्यपाल नियुक्त किया था। एम.एम. टॉमस ने टिप्पणी की कि नागा चर्च 'भ्रष्टाचार, हिंसा और आपसी प्रतिशोध' में संलग्न थी।[7] सरकार ने पाया कि राज्य में चर्च का प्रभाव सर्वव्यापी था और उसके पास केवल एक विकल्प था चर्च द्वारा नियुक्त शान्ति परिषद (Peace Council) के माध्यम से समझौता वार्ता करना।[8] आज नागा विद्रोहियों ने अपनी गतिविधियों के क्षेत्र का विस्तार रणनीतिगत रूप से महत्वपूर्ण भारतीय राज्य अरुणाचल प्रदेश तक कर लिया है, जिस पर चीन भी अपना दावा करता है।[9]

नेपाल में नागालैण्ड प्रारूप और भारत का लाल गलियारा

चित्र 19.3 दिखाता है कि किस तरह माओवादी और ईसाई प्रचारक अपने साझे एजेंडे के लिए मार्ग में आने वाली पारम्परिक संस्कृतियों को नीचे करने में नेपाल और भारत में एक-दूसरे से सहयोग करते हैं।

Fig 19.3 नेपाल से उड़ीसा तक : मिशनरी-माओवादी कूटनीतिक गठजोड़
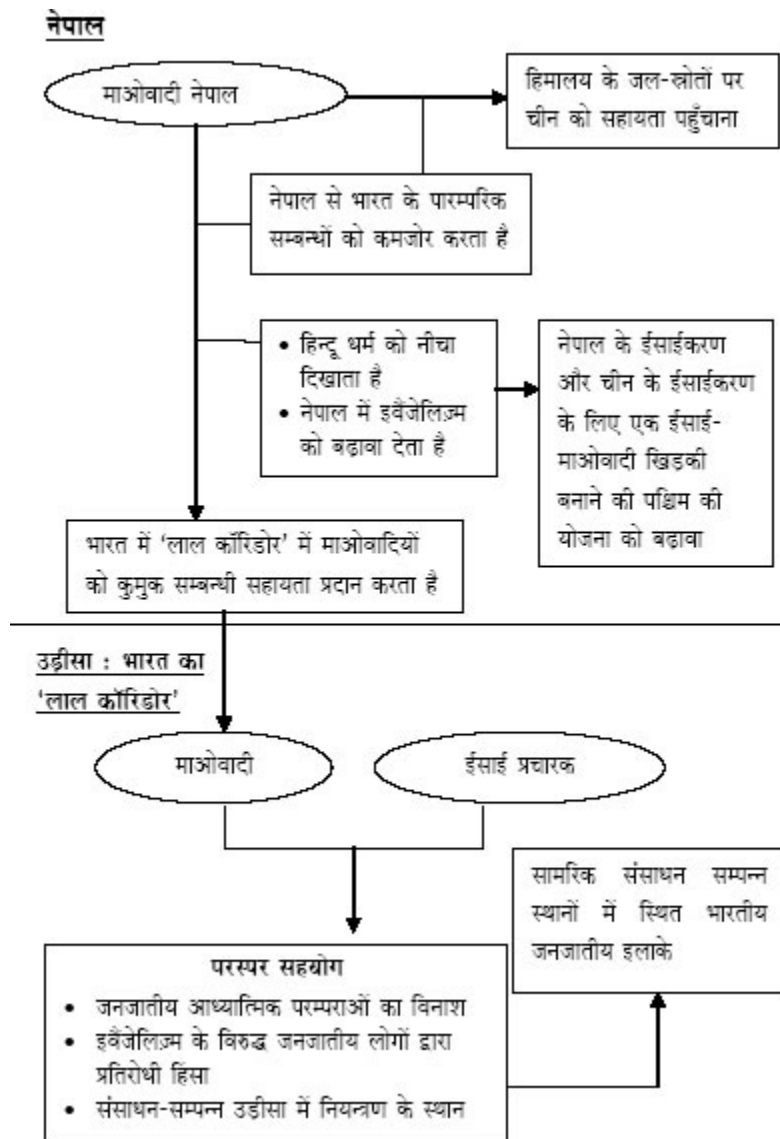
माओवादी विद्रोह, जो कुछ दशकों से भारतीय मुख्य भूमि में मुर्दे की तरह शिथिल पड़ा था, अचानक बड़े उत्साह के साथ पुनरुज्जीवित हो गया है। हाल-हाल तक, माओवादी जंगलों के कुछ छोटे क्षेत्रों (पॉकिटों) में ही सीमित थे। वर्ष 2004 में दो प्रमुख माओवादी समूहों—माओवादी कम्युनिस्ट सेंटर (बिहार में) और पीपल्स वॉर समूह (दक्षिण भारत में)—ने अखिल-भारतीय भाकपा (माओवादी) गठित करने के लिए आपस में हाथ मिला लिये।

इससे बारूदी सुरंग विस्फोटों, जेल तोड़ने और वहाँ से भाग निकलने, सत्तारूढ़ और सत्ता के बाहर के राजनीतिज्ञों की हत्या करने, और अराजकता तथा हिंसा की अन्य अतिवादी घटनाओं में तेजी आयी।

इस नयी गतिविधि ने एक नयी स्थिति के जन्म की तरफ़ इशारा किया जिसे लाल गलियारे के रूप में जाना जाता है—माओवादी उग्रवाद की एक बड़ी पट्टी जिसका

फैलाव नेपाल की सीमा से लेकर भारत के बीच से होते हुए दक्षिण में हिन्द महासागर तक है।[10] इस विद्रोह की शक्ति केवल छिटपुट आतंकवादी हमलों से कहीं अधिक है; चुनिन्दा इलाकों में उन्होंने क्षेत्रीय नियन्त्रण स्थापित कर लिया है जहाँ वे परोक्ष रूप से एक समानान्तर शासन चलाते हैं। सन 2007 में इण्डिया टुडे ने समाचार प्रकाशित किया था :

> कंगारू न्यायालयों में सुनवाई के बाद [माओवादी] शारीरिक यातना, अंग-भंग और हत्या जैसी कार्रवाई करते हैं। वे एक सामान्य सशस्त्र बल की तरह हैं जिनके दस्ते सेना की तर्ज पर गठित हैं। भारत में 15,000 माओवादी दस हज़ार हथियारों के साथ आन्तरिक सुरक्षा के लिए एक बड़ी चुनौती प्रस्तुत करते हैं। वे देश के 602 जिलों में से 170 में सक्रिय और प्रभावी हैं जो 33 राज्यों में से 16 से ज्यादा में फैले हैं। ... इन उग्र परिवर्तनवादियों द्वारा घुमन्तू गुरिल्ला युद्ध जैसी सैन्य क्षमताएँ विकसित करने के साथ ही सम्भावित निवेश के ठिकाने अलाभकारी हो सकते हैं—विशेषकर खनिज उत्खनन उद्योग के लिए—जो आन्ध्र प्रदेश और पश्चिम बंगाल के माओवादी प्रभुत्व वाले क्षेत्रों में स्थित हैं।[11]

तब से, हिंसा की घटनाओं की संख्या और उनकी मारक क्षमता में नाटकीय वृद्धि हुई है।

यह एक संयोग नहीं है कि लाल गलियारे के प्रमुख राज्य—छत्तीसगढ़, उड़ीसा और झारखण्ड—आक्रामक ईसाई धर्मान्तरण के प्रमुख केन्द्र भी हैं। माओवादी और ईसाई प्रचारक जनजातीय आध्यात्मिक परम्पराओं को नष्ट करने के लिए और मुख्य धारा की भारतीय संस्कृति के साथ उनके पारम्परिक जैविक सम्बन्धों को छिन्न-भिन्न करने के लिए मिलकर काम करते हैं। ईसाई प्रचारक नेता विशाल मंगलवादी एक ईसाई वेबसाइट में लिखते हैं :

> जीवात्मवाद या सर्वात्मवाद और हिन्दू धर्म के विरुद्ध जिहाद प्रारम्भ करने के अलावा माओवादी ईसाई प्रचारकों को समर्थन देने में भी सक्रिय हैं। समय-समय पर माओवादी ईसाई प्रचारकों को सुरक्षा कवच प्रदान करते हुए सुदूर गाँवों तक पहुँचाते हैं जहाँ पुलिस अधिकारी जाने में भय खाते हैं। वे सभी लोगों को ईसा मसीह के गॉस्पल सुनने के लिए आदेश देकर बुलाते हैं। ईसाई प्रचारक वहाँ 'जीजस फिल्म' जैसी फिल्म दिखा सकते हैं। फिल्म के आधा समाप्त होने पर बीच में ही माओवादी उसे रोककर माओवाद पर एक व्याख्यान देंगे। उसके बाद वे फिल्म दिखाना फिर प्रारम्भ करेंगे और एक ईसाई प्रचारक से कहेंगे कि वह अब धर्मान्तरण का आह्वान करें (आल्टर कॉल दें)। फिर सहभोज के बाद ईसाई प्रचारक को सुरक्षा कवच देकर उसके आधार स्थल पर पहुँचा दिया! मैंने कम-से-कम एक विश्वसनीय समाचार सुना है कि ईसाइयों और कुछ माओवादियों ने एक साथ उपवास और प्रार्थना करते हुए दो दिन गुजारे। ईसाई नेताओं ने ये सूचनाएँ अपने समर्थकों को नहीं दी हैं, क्योंकि (क) उनमें से बहुतों की समझ में

ही नहीं आ सकता कि वे क्या सुन रहे हैं, और (ख) वे इस तथ्य से स्वयं भी लज्जित हैं कि उनके मिशन को 'आतंकवादियों' द्वारा समर्थन दिया जाता है।[12]

उड़ीसा में ईसाई कॉमरेड

उड़ीसा लाल गलियारे का एक महत्वपूर्ण भाग है, क्योंकि यह कोयला, लौह अयस्क, मैंगनीज, बॉक्साइट, क्रोमाइट आदि जैसे खनिजों के विशाल भण्डार से सम्पन्न है। अखिल भारतीय खनिज संसाधन आकलनों के अनुसार उड़ीसा में क्रोमाइट, निकेल, कोबाल्ट, बॉक्साइट, लौह अयस्क खनिज भण्डार भारत में कुल भण्डार का क्रमशः लगभग 98.4, 95.1, 77.5, 52.7 और 33.4 प्रतिशत है।[13]

यह राज्य इस बात का एक उदाहरण प्रस्तुत करता है कि किस प्रकार माओवादी-ईसाई प्रचारक नेटवर्क हिंसात्मक संघर्ष प्रारम्भ करने के लिए एक घातक घोल बन सकते हैं। आक्रामक ईसाई धर्मान्तरण द्वारा सुदूर जिलों में आर्थिक रूप से गरीब समुदायों पर मनोवैज्ञानिक के साथ-साथ आर्थिक दबाव डाला जाता है, और यह साम्प्रदायिक दंगों में विस्फोटित हो सकता है। यहाँ तक कि एक दशक पहले भी इण्डिया टुडे ने हिंसा के क्रम पर इस प्रकार रिपोर्ट प्रकाशित की थी :

> इसमें कोई सन्देह नहीं कि मिशनरी, स्पष्ट रूप से उस आह्वान पर चलते हुए बढ़ती पर हैं, जो कटक में नवम्बर 1996 में राज्य के पादरियों की एक गोष्ठी में किया गया था और जिसमें 'सन 2000 तक उड़ीसा को ईसा मसीह के लिए जीतने' की बात कही गयी थी। हाल के वर्षों में राज्य के अधिकांश भागों में हर स्वरूप और आकार के चर्च उग आये हैं। राज्य इस बात के लिए शेखी भी बघारने लगा है कि वहाँ निन्यानबे ईसाई मिशन और अस्सी हज़ार से अधिक गिरजे हैं।... स्थानीय ईसाइयों द्वारा कृष्णपुर को (ईसा मसीह— क्राइस्ट—के नाम पर) क्रिष्टोपुर कहे जाने और जनवरी में भुवनेश्वर में एक सम्भावित धर्मान्तरण को रोकने के लिए हिन्दुओं द्वारा रात भर निगरानी रखने के साथ ही कट्टरवादी केन्द्रीय भूमिका में आ गये हैं। ... चूँकि मिशनरी उड़ीसा को ईसा मसीह के लिए जीतने का प्रयास कर रहे हैं, हिन्दू संगठनों ने अनेक स्थानों पर उनकी जड़ों को ही काटना शुरू कर दिया है।[14]

ईसाई प्रचारक हमलों की प्रतिक्रिया के रूप में, मूल निवासी समुदायों ने अपने रक्षात्मक कदम उठाने प्रारम्भ कर दिये हैं। उन्हें बहुधा हिन्दू राष्ट्रवादियों द्वारा सहायता दी गयी, जिन्होंने इसे ईसाई धर्मान्तरण के शिकार लोगों तक अपने राजनीतिक सन्देश पहुँचाने के एक अवसर के रूप में देखा। इससे हिन्दुओं और ईसाइयों के बीच संघर्ष प्रारम्भ हुआ, जिसे अन्तर्राष्ट्रीय समाचार माध्यमों द्वारा एक प्रभावी ईसाई पूर्वाग्रह के साथ प्रकाशित किया गया। उसके बाद, वर्ष 2010 में केन्द्र और राज्य सरकारों ने एक यूरोपीय यूनियन के प्रतिनिधि मण्डल को हाल के उड़ीसा के हिन्दू/ईसाई दंगों की जाँच के लिए आने की अनुमति दे दी, इसके बावजूद कि

स्थानीय आदिवासी नेताओं ने गहरी आशंका व्यक्त की थी कि अन्तर्राष्ट्रीय समूह स्थानीय जनसंख्या के एक वर्ग की तुलना में दूसरे का पक्ष लेगा।[15]

वर्ल्ड विजन उन संगठनों में से एक है जिस पर मूल निवासियों द्वारा मुख्य उकसाने वाला होने का आरोप लगाया गया है। वर्ष 2008 में एक हिन्दू साधु और चार अन्य को ईसाई धर्मान्तरण गतिविधियों के मुकाबले में काम करने के कारण एक हिन्दू त्योहार के दिन गोली मार दी गयी। माओवादियों ने एक वक्तव्य जारी किया जिसमें इन हत्याओं की जिम्मेदारी का दावा किया गया था, और उसमें कहा गया कि अस्सी वर्षीय हिन्दू साधु को समाप्त करने के लिए उन पर ईसाइयों का दबाव था।[16] इस साधु की हत्या के पहले ईसाइयों द्वारा भड़काऊ भाषण दिये गये थे जिनमें उनके विरुद्ध हिंसा के लिए उकसाया गया था। ईसाई प्रचारक-माओवादी सम्बन्धों ने हिन्दू-ईसाई हिंसा करवाई। इसने ईसाई प्रचारक तन्त्र को उत्पीड़न साहित्य रचने का एक बड़ा अवसर दिया ताकि उन्हें अन्तर्राष्ट्रीय मंचों पर उपयोग में लाया जा सके, और भारत में 'निर्दोष ईसाइयों को बचाने के लिए' पश्चिम में और अधिक धन एकत्र किया जा सके।[17]

मूल निवासियों के लिए ईसाइयों ने एक अलगाववादी जातीय पहचान का भी आविष्कार किया है, इसके बारे में दावा करते हुए कि यह जिले के 'मूलवासियों' को प्रतिबिम्बित करती है।[18] उड़ीसा के हिंसा-प्रभावित क्षेत्रों का दौरा करने वाले राष्ट्रीय अल्पसंख्यक आयोग के एक सदस्य ने कहा कि माओवादी उस क्षेत्र के ईसाई संगठनों के साथ मिलकर काम कर रहे थे।[19] पुलिस गुप्तचर सूचनाओं ने भी पुष्टि की कि ईसाई प्रचारक उन आदिवासियों पर माओवादियों से हमले करवा रहे थे जो ईसाई नहीं बने।

विशाल मंगलवादी, अमरीका स्थित ईसाई प्रचारक हैं, जिनके बारे में पहले बताया जा चुका है। उन्होंने भारत के ईसाई प्रचारकों से और संयुक्त राज्य अमरीका के ईसाई दक्षिणपन्थियों से अपील की कि वे माओवादियों के प्रति ईसाई पूर्वाग्रह पर विजय पायें और हिन्दू धर्म के विरुद्ध साझे संघर्ष में उनके साथ गठजोड़ करें। उन्होंने इस मौके को भाँपा कि माओवादियों को, जिन्होंने पहले ईसाइयों की हत्या की थी, अब ईसाइयों के लिए काम करने वाले औज़ार में ढाल दिया जाये। माओवादियों के साथ गठबन्धन ईसाइयत को चीन तक पहुँचाने का एक अन्य मार्ग भी प्रदान करता है। माओवादियों को स्वीकार करने की चर्च की रणनीति की तुलना उन्होंने गाँधी द्वारा भगत सिंह और सुभाष बोस जैसे उग्र परिवर्तनवादी भारतीय स्वतन्त्रता सेनानियों को स्वीकार किये जाने से की।[20]

इस प्रकार के ईसाई प्रचारक सुझाव केवल अनियन्त्रित अटकलें नहीं हैं जिन्हें दूर संयुक्त राज्य अमरीका की सेमिनरियों और थिंक टैंकों में दिया गया। भारत में, इसने विद्रोह की एक ख़तरनाक श्रृंखला के रूप में ठोस स्वरूप ग्रहण किया है, जो महत्वपूर्ण जनसमुदाय तक पहुँच रहा है। सन 2009 में, उड़ीसा प्रदेश पुलिस को

ईसाइयों द्वारा संचालित एक पुनर्वास केन्द्र में छिपाकर रखा हुआ असलहा मिला था। इससे सम्बन्धित समाचार में कहा गया था :

> असलहे में एक एस.एल.आर. और तीन एके-47 राइफलें थीं। ये हथियार नयागढ़ पुलिस शस्त्रागार से भयावह माओवादी हमले के दौरान फरवरी 2008 में लूटे गये थे। ... [पुनर्वास] केन्द्र में लगभग दो सौ धर्मान्तरित ईसाई रह रहे थे। पुलिस सूत्रों को दंगा पीड़ित कंधमाल जिले में माओवादियों और अल्पसंख्यक समुदाय के कुछ नेताओं के बीच सम्भावित सम्बन्ध होने का दृढ़ विश्वास है। पुलिस को सन्देह है कि मृतक प्रतिबन्धित भाकपा (माओवादी) के वंशधारा डिविजन का एक प्रमुख सदस्य था।[21]

नेपाल में ईसाई कॉमरेड

जहाँ हिन्दू धर्म के विरुद्ध ईसाई प्रचारक-माओवादी युद्ध कई राज्यों में चल रहा है, नेपाल में माओवादियों द्वारा एक निर्णायक युद्ध पहले ही जीत लिया गया है। माओवादियों ने नेपाल के हिन्दू राजतन्त्र को 2006 में समाप्त कर दिया और इसे एक पन्थ-निरपेक्ष राष्ट्र घोषित किया, और इस तरह विश्व के एकमात्र हिन्दू राज होने की इसकी आधिकारिक हैसियत समाप्त कर दी गयी। इसका एक महत्वपूर्ण परिणाम था भारत-नेपाल के दीर्घावधि विशेष सम्बन्धों को चरणबद्ध ढंग से समाप्त करना। माओवादियों ने 1950 की भारत-नेपाल संधि पर पुन: समझौता वार्ता करने की माँग करनी प्रारम्भ कर दी। नेपाली समाचार माध्यमों में उन्होंने कहना प्रारम्भ किया कि नेपाल में आर्थिक सम्पन्नता की कमी का कारण भारत-नेपाल के बीच खुली सीमा है।[22]

नेपाल के नये माओवादी प्रधान मन्त्री, प्रचण्ड (‘क्रान्तिकारी’ पुष्प कमल दहल के काल्पनिक नाम का उपयोग करते हुए), अपनी पहली विदेश यात्रा के रूप में दिल्ली की यात्रा न कर बीजिंग की यात्रा पर जाने वाले पहले नेपाली नेता हुए।[23] इन परिवर्तनों को सामान्य नेपालियों द्वारा स्पष्ट रूप से व्याकुलता के साथ अनुभूत किया गया। एक लोकप्रिय नेपाली पत्रिका में एक स्तम्भकार ने प्रश्न उठाया :

> चीन के साथ हम अपने सम्बन्धों को चाहे किसी भी तरह प्रस्तुत क्यों न करें, तथ्य यह है कि अब तक सांस्कृतिक अन्तर ही हैं जिन्होंने उसके साथ सांस्कृतिक-वैवाहिक सम्बन्धों को स्थापित करने से हमें रोक रखा है। हम चीन से सांस्कृतिक रूप से निकट कैसे हो सकते हैं जबकि भारत के साथ भी हम अपने सम्बन्धों को अक्षुण्ण रख रहे हैं?[24]

माओवादी शासन भारत और नेपाल के बीच सांस्कृतिक सम्बन्धों को नष्ट करने पर तुला था। ‘अन्तर्राष्ट्रीय मानवतावाद और नैतिकता संघ’ (InternationalHumanist and Ethical Union) को अगस्त 2008 में दिये गये एक साक्षात्कार में मुख्य माओवादी सिद्धान्तकार ने कहा कि माओवादी उद्देश्य ‘केवल

धर्म अथवा पन्थ और राज्य के बीच सम्बन्ध को समाप्त करने' से भी आगे का है, और नेपालियों में रामायण और महाभारत टेलिविजन कार्यक्रमों की लोकप्रियता को उन्होंने 'युवाओं के मस्तिष्क को दूषित करने' के रूप में वर्णित किया।[25]

ऐसे सैद्धान्तिक रुख युगों पुरानी प्रथाओं के हिंसात्मक विघटन में बदल जाते हैं। उदाहरण के लिए, माओवादी शासन ने उस तीन शताब्दी पुरानी परम्परा को समाप्त करने का प्रयास किया जिसके तहत काठमाण्डू स्थित देश के सर्वाधिक पवित्र हिन्दू मन्दिर पशुपतिनाथ में दक्षिण भारतीय पुजारी कार्यवाहक पुजारी होते हैं।[26] हालाँकि जनता के विरोध ने इस प्रयास को अस्थायी रूप से विफल कर दिया, यह कदम निश्चय ही उस दिशा की तरफ इशारा है जिस ओर माओवादी शासन द्वारा नेपाल को ले जाने का इरादा है। बाद के घटनाक्रम में माओवादी शासन का तख्ता पलट गया। नयी सरकार ने भारत से हिन्दू पुजारियों की पारम्परिक नियुक्ति को स्वीकार किया, लेकिन माओवादी उग्रवादियों ने कानून को अपने हाथों ले लिया। सितम्बर 2009 में, नव नियुक्त हिन्दू पुजारियों पर क्रूर हमले किये गये। टाइम्स ऑफ इण्डिया ने समाचार प्रकाशित किया :

> दोपहर बाद जैसे ही युवाओं के एक दल ने माओवादी झण्डे लहराते हुए पशुपतिनाथ मन्दिर परिसर से एक गुप्त कमरे पर धावा बोला, जहाँ दो पुजारी दो दिनों से उपवास कर रहे थे और शनिवार को होने वाले पूजा महोत्सव की तैयारी के लिए संकल्प ले रहे थे, पूरा क्षेत्र एक ख़तरनाक युद्धस्थल में बदल गया। लोहे के छड़ और डण्डे भाँजते हुए उन लोगों ने गुप्त दरवाजे का ताला तोड़ दिया और वहाँ से दोनों पुजारियों को खींचकर बाहर निकाला तथा उन्हें पीटने लगे। 'गन्दे भारतीय, वापस घर जाओ' के नारों के बीच उनके कपड़े फाड़ डाले गये और उनके जनेऊ तोड़ दिये गये। पूरी घटना का विडियो टेप भी तैयार किया गया। ... समाचार के अनुसार चार व्यक्तियों को गिरफ्तार कर लिया गया, जो माओवादियों के युवा संगठन, युवा कम्युनिस्ट लीग से सम्बद्ध बताये गये।[27]

नेपाल में इस प्रकार के परिवर्तन द्वारा उपस्थित अवसरों को शीघ्र ही चीन ने भाँप लिया। चीन और नेपाल ने नये गठबन्धन बनाने प्रारम्भ कर दिये। वर्ष 2008-2009 की अवधि में, बारह उच्चस्तरीय चीनी प्रतिनिधिमण्डल, जिनमें दो सैन्य दल भी शामिल थे, नेपाल के दौरे पर आये।[28] नेपाल के भविष्य का अन्दाजा लगाया जा सकता है अगर यह देखा जाये कि चीन ने किस प्रकार तिब्बत से आने वाले भारत के जल संसाधनों पर अपनी मजबूत पकड़ बना ली है। एक पश्चिमी विद्वान लिखते हैं :

> दक्षिण एशिया की सबसे बड़ी नदियाँ तिब्बत के पठार से नीचे बहती हैं। भारत की सर्वाधिक महत्वपूर्ण नदियाँ और इसके भूमिगत जल के स्रोत जो इस महाद्वीप को पोषित करते हैं, वे तिब्बत से ही निकलते हैं, जिनमें गंगा, ब्रह्मपुत्र, सिंधु, चनाब, रावी, यमुना, गण्डक और सप्तकोशी आदि कुछ नाम शामिल हैं। चीन ने इस प्रकार भारत की मुख्य जलापूर्ति पर मौत का शिकंजा हासिल कर लिया है।

> भारत के रणनीतिकार एक लम्बे समय से चिन्तित हैं कि चीन समय आने पर अपने बाँधों का मार्ग बदल सकता है या इस महत्वपूर्ण जलापूर्ति को रोक सकता है।[29]

चीन के तेज आर्थिक विकास, और साथ ही ऊर्जा की भारी कमी ने इसे ऊर्जा की वैश्विक खोज की ओर उन्मुख कर दिया है। नेपाल के पास विश्व के सबसे अधिक ताजे जल की आपूर्ति है जो हिमालय की बर्फ और भारी वर्षा से आती है, जो अब तक प्राकृतिक रूप से भारत में बहकर आती है, गंगा को पानी से भर देती है और उत्तर भारत को उपजाऊ बना देती है। लेकिन अब बिजली के उत्पादन के लिए, जिसे चीन अपने ऊर्जा आयात के एक हिस्से के तौर पर खरीदेगा, इस जल का उपयोग करने के नये चीन-नेपाल प्रस्ताव हैं; और बिजली उत्पादन के लिए जब एक बार पानी जमा हो जायेगा तो वह पम्प से चीन भेजे जाने के लिए उपलब्ध होगा जो उसके थ्री रिवर्स गोर्ज (तीन नदियों पर बाँध बनाने) की ढाँचागत विकास रणनीति का एक भाग होगा। नेपाल की राजनीति और समाचार माध्यमों में अब सक्रिय चीन-समर्थक तत्व हैं जो नेपाल में चीन की वृहत्तर और भारत की लघुतर भूमिका की माँग करते हैं।[30] हो सकता है, इन नदियों के माध्यम से भारत की कृषि और जलापूर्ति ख़तरे में पड़ जाये।[31]

चीन के पास नेपाल के राजनीतिज्ञों की भूख मिटाने और कुछ औद्योगिक तथा रोजगार-परियोजनाएँ चलाने के लिए धन है, जिसके माध्यम से नेपाल को प्रभावी रूप से तिब्बत जैसे एक अन्य उपनिवेश में बदला जा सकता है, सिवा इसके कि अपवादस्वरूप प्रत्यक्ष नियन्त्रण के बदले परोक्ष नियन्त्रण रहेगा।

इस बीच ईसाई प्रचारक शक्तियाँ नेपाल के माओवादियों में एक आश्चर्यजनक सहभागी पा रही हैं। वर्ष 1999 में, नेशनल काउंसिल ऑफ चर्चेज ऑफ नेपाल (एन.सी.सी.एन.) की स्थापना की गयी थी, उसी वर्ष जब माओवादी विद्रोह ने गति पकड़नी प्रारम्भ की। दस वर्ष बाद, जब माओवादी सरकार बनाने में जूझ रहे थे, तब एन.सी.सी.एन. कम्युनिस्ट पार्टी ऑफ नेपाल (माओवादी) की एक प्रमुख सहयोगी बन गयी।[32] इसके बदले, एन.सी.सी.एन. के महासचिव को नेपाल के राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग का आयुक्त बनाया गया।[33]

बाद के दिनों में ईसाई दबाव में नेपाल ने वर्णगत संघर्षों की निगरानी संयुक्त राष्ट्र संघ के तहत करने के मामले में अपने पहले के रुख को बदल दिया है। भारत सरकार ने संयुक्त राष्ट्र के मानवाधिकार प्रारूप में वर्ण को शामिल करने के प्रस्ताव को विदेशी हस्तक्षेप के रूप में देखते हुए उसका विरोध किया है, लेकिन आश्चर्यजनक ढंग से नेपाल के विदेश मन्त्री ने घरेलू वर्णगत संघर्षों में हस्तक्षेप करने की अन्तर्राष्ट्रीय पहल का स्वागत किया। नेपाल के इस कदम का दलित सॉलिडैरिटी नेटवर्क द्वारा स्वागत किया गया है। उदित राज ने, जो दलित फ्रीडम नेटवर्क और ऑल इण्डिया क्रिश्चियन काउंसिल के एक आन्दोलनकारी हैं, नेपाल के रुख का

स्वागत किया है, क्योंकि यह 'यूरोपीय यूनियन जैसे संस्थानों से संसाधन लायेगा। आर्थिक सहायता भारत बहकर चली आयेगी',[34] अर्थात् ईसाई एन.जी.ओ. तक, क्योंकि संयुक्त राष्ट्र संघ ने भारत से कहा है कि वह अब नेपाल के उदाहरण का अनुसरण करे।

अपने नये राजनीतिक दबदबे से प्रोत्साहित नेपाल के माओवादी भारत में माओवादी विद्रोह को सहायता प्रदान कर रहे हैं, विशेषकर उड़ीसा में जहाँ माओवादियों ने मूल निवासियों के प्रतिरोध को नष्ट करने के लिए ईसाई प्रचारकों से हाथ मिला लिया है।[35] शुरू-शुरू में नेपाली माओवादियों द्वारा भारतीय समाचार माध्यमों में आ रहे ऐसे समाचारों का खण्डन किया गया। लेकिन जब भारत के गृह मन्त्रालय ने माओवादी ख़तरे के विरुद्ध कठोर कार्रवाई करने का निर्णय किया, तब नेपाली माओवादी पार्टी की स्थायी समिति के एक वरीय सदस्य ने घोषणा की कि नेपाल के माओवादी 'भारतीय माओवादियों को, जो सशस्त्र विद्रोह चला रहे हैं, अपना पूरा समर्थन और सहयोग देंगे'।[36]

आज नेपाल में माओवादियों को राजनैतिक वैधता और दबदबा हासिल है, हालाँकि उन्हें चुनावों में सत्ता से बाहर कर दिया गया। अब वे बीस हज़ार माओवादी लड़ाकुओं को राष्ट्रीय नेपाल की स्थल सेना में भर्ती करवाने के प्रयास कर रहे हैं।[37] माओवादी अपने राजनीतिक मुद्दे को आधार के रूप में भारत विरोधी और चीन-पक्षधर माँगें कर रहे हैं।[38] ऐसी स्थिति में माओवादियों का सेना में व्यापक विलय एक नये ढाँचे और नये सोपानों को जन्म देगा जो सत्ता का सन्तुलन चीन-पक्षधर माओवादियों की ओर झुका देगा।

इस प्रकार, लाल गलियारा एक ऐसा युद्धक्षेत्र है जहाँ वैश्विक गठजोड़ों का मिलन एक गठबन्धन के रूप में होता है ताकि भारतीय सभ्यता और भारतीय राष्ट्र से लड़ा जा सके।

असम : माओवादी-उल्फा-आई.एस.आई.

इस विचार की शैक्षिक वैधता ने भी कि प्रत्येक भाषायी समूह एक उप-राष्ट्रीयता है, असम में एक विद्रोह को जन्म दिया है। पहले यह बांगलादेशी घुसपैठ की समस्या से साथ प्रारम्भ हुआ, लेकिन इसने स्वयं को भारत विरोधी अलगाववादी आन्दोलन में रूपान्तरित कर लिया है। इस अलगाववाद का नेतृत्व आतंकवादी समूह, 'युनाइटेड लिबरेशन फ्रण्ट ऑफ असम' (United Liberation Front of Assam, ULFA, उल्फा) कर रहा है, जिसने बेहद अजीबो-गरीब गठबन्धन किये हैं। राजनीतिक विश्लेषक निवेदिता मेनन और आदित्य निगम उल्फा सिद्धान्त के क्रमबद्ध रूपान्तरण को प्रदर्शित करते हैं, जिसने इसे माओवादियों और उनके साथ-साथ अखिल-इस्लामी शक्तियों का समर्थन प्राप्त करने की छूट दी :

> उल्फा ने क्रमिक रूप से स्वयं को घुसपैठ (आप्रवास) के मुद्दे से अलग कर लिया। ... इसने एक संघीय असम की परिकल्पना को प्रकट किया जहाँ विभिन्न 'राष्ट्रीयताएँ' अधिकतम स्वायत्ततायुक्त होंगी जो लगभग स्व-शासन जैसा होगा। ... कुछ लोग समझते हैं कि उल्फा ने माओवाद से प्रभावित होकर अपने में क्रान्तिकारी परिवर्तन किया है, और असमी राष्ट्रवाद को वामपन्थी दिशा देने का प्रयास कर रहा है। उल्फा की संकल्पना का एक नया पक्ष उभरा, लेकिन जब जुलाई 1992 में 'पूर्वी बंगाल के आप्रवासियों' को सम्बोधित एक प्रकाशन में उल्फा ने न केवल भारत राष्ट्र को बल्कि 'भारतीयों' को भी वास्तविक शत्रु के रूप में चिह्नित किया। ... 'भारतीयों' के विरुद्ध इस आन्दोलन के परिणामस्वरूप असम में रहने वाले उत्तर प्रदेश और बिहार के अनेक गरीबों को लक्ष्य बनाकर उनकी हत्या की गयी (उदाहरण के लिए, 2003 और 2007 की घटनाओं को लिया जा सकता है)।[39]

उल्फा के सिद्धान्त में आये इस परिवर्तन ने उसकी पहुँच भारत विरोधी विध्वंसकारी गतिविधियों के एक बड़े दक्षिण एशिया नेटवर्क तक बना दी, जिनमें द्रविड़ अलगाववादी भी शामिल हैं। गुप्तचर रपटों के अनुसार, आई.एस.आई. (पाकिस्तानी सेना की गुप्तचर सेवा) ने म्याँमार से होकर हथियारों की तस्करी के लिए उल्फा को लिबरेशन टाइगर्स ऑफ तमिल ईलम (लिट्टे) से मिलाया। अप्रैल 1996 में, चार तमिल जन दो जलपोतों में पाँच सौ से ज्यादा एके-47 राइफलों, अस्सी मशीनगनों, पचास रॉकेट लॉन्चरों और दो हज़ार हथगोलों की तस्करी करते हुए पकड़े गये।[40] अन्य विद्रोहियों के साथ, विशेषकर तमिलनाडु के, उल्फा की नेटवर्किंग क्षमता चिन्ताजनक ढंग से बढ़ी है। तमिलनाडु में एक उल्फा शिविर का पता चला था। राज्य के गुप्तचरों को जानकारी मिली कि कुछ वर्षों से लिट्टे और उल्फा का एक संयुक्त प्रशिक्षण शिविर अस्तित्व में था।[41]

सन 1990 के दशकान्त से माओवादियों ने भारत भर में स्थापित विभिन्न जिहादी गुटों के साथ गठबन्धन करना शुरू किया है। उदाहरण के लिए, लश्कर-ए-तोइबा के आतंकवादी आजम गोरी को सितम्बर 1999 में आंध्र प्रदेश के वारंगल और निजामाबाद जिलों में महत्वपूर्ण माओवादी नेताओं के साथ उसकी बैठक के बाद गिरफ्तार किया गया था।[42]

प्रसिद्ध बुद्धिजीवियों का उपयोग

जब भारत सरकार माओवादी ख़तरे के यथार्थ के प्रति अन्तत: जागी और उसने माओवादियों के विरुद्ध राष्ट्रव्यापी कार्रवाई प्रारम्भ की, तब प्रसिद्ध बुद्धिजीवियों ने, जिनका पोषण बहुधा पश्चिम द्वारा किया जाता है, सरकार की कार्रवाइयों का कड़ा विरोध किया। अन्तर्राष्ट्रीय समाचार माध्यमों में माओवादियों के लिए ऐसे समर्थन का एक उदाहरण हैं अरुंधती राय। इस बुकर पुरस्कार विजेता ने माओवादी विद्रोह का

वर्णन सम्पन्नों और विपन्नों के बीच के संघर्ष के रूप में किया, जिसमें भारत सरकार को 'एक शत्रु की आवश्यकता है—और इसने माओवादियों को इस रूप में चुन लिया है'।[43]

एक स्वतन्त्र विद्वान ने राय के ऐसे दावों का भण्डाफोड़ खुलेआम बोले गये झूठ के रूप में किया :

> इसका 'धनिकों की सेना के विरुद्ध गरीबों की एक सेना' का मामला होना मुश्किल ही है, जिसे राय सुझाती हैं। इसके विपरीत लगता है कि माओवादी बेहतर ढंग से हथियारों से लैस हैं, उनके पास बेहतर उपकरण हैं, और उनके पास गुप्तचर सूचनाएँ इकट्ठा करने की बेहतर सुविधाएँ हैं। ... सैकड़ों पुलिसकर्मी और दूसरे निहत्थे लोग माओवादी हमलों में मारे गये हैं जबकि राय समाचार माध्यमों पर माओवादियों के दानवीकरण का आरोप लगाती हैं और माओवादी हिंसा के मामले में वैसे आँकड़े लेकर सामने आती हैं जो पूरी तरह सही नहीं होते, यहाँ तक कि झूठ भी होते हैं।[44]

वास्तव में, माओवादी विभिन्न स्तरों पर, समाचार माध्यमों में प्रचार से लेकर धरातल पर हथियारों तक, जिस प्रकार के रणनीतिगत साधन तैयार कर रहे हैं, उसके लिए बहुत बड़ी राशि का आवश्यकता है। माओवादियों के धन के प्रवाह के बारे में एक अध्ययन बताता है :

> माओवादियों ने वर्ष 2007 में हथियारों की खरीद पर 1.75 अरब रुपये से अधिक खर्च किये, जिनमें एके-47, बारूदी सुरंगों के लिए सामग्री और रॉकेट लॉन्चर शामिल हैं। पुलिस के अनुसार, हथियारों के एक ऑस्ट्रेलियाई व्यापारी ने माओवादियों से एक सौदा किया था जिसके तहत वर्ष 2008 के अन्त तक उन्हें दो सौ एके-47 की आपूर्ति मलेशिया-पश्चिम बंगाल मादक पदार्थों की तस्करी वाले मार्ग से की जानी थी, जो एक रिकार्ड था। उनके खर्च के अन्य प्रमुख घटक हैं वाहन, वर्दी और दवाएँ। माओवादियों ने वैसी मोटरसाइकिलें प्राप्त की हैं जिनमें विशेष प्रकार के टायर लगे होते हैं ताकि घने जंगलों और दुर्गम पहाड़ी क्षेत्रों में यात्रा आसान हो। प्रकाशन और प्रचार एक और प्रमुख मद है जिस पर माओवादी एक बड़ी राशि खर्च करते हैं। वेबसाइटें चलाने, पार्टी की पत्रिकाएँ अवाम-ए-जंग (हिन्दी) और सीपीआई-माओइस्ट (अंग्रेज़ी) का प्रकाशन करने के अलावा वे पुलिस और प्रशासन के विरुद्ध अभियान चलाने के लिए जंगलों में लो फ्रीक्वेन्सी वाले रेडियो भी संचालित करते हैं। माओवादियों ने संचार के उपकरणों पर भी बड़ी राशि खर्च की, और मोबाइल तथा सैटेलाइट फोन बहुत ही सामान्य हो गये हैं। रायपुर पुलिस ने एक शहरी माओवादी नेटवर्क केन्द्र पर छापामारी कर लेखा खाते जब्त किये हैं जिसमें पाँच करोड़ रुपयों की उगाही और बँटवारे का हिसाब है।[45]

एक प्रचारात्मक लेख में राय गर्व से कहती हैं कि माओवादियों के पास अत्याधुनिक हथियार हैं : 'गम्भीर किस्म की राइफलें, आई.एन.एस.ए.एस., एस.एल.आर., और ... एके-47' और वे बाल सैनिकों की भर्ती करते हैं।[46] माओवादियों को विदेशी धन से चलने वाले एन.जी.ओ. से धन मिलता है। बिहार सरकार के एक अभिलेख में अनेक सन्देहास्पद एन.जी.ओ. की सूची है जो किसी दूसरे काम के लिए आया धन माओवादियों को देते हैं। ऐसे एन.जी.ओ. में से अधिकांश यहाँ आने वाले पर्यटकों या अन्तर्राष्ट्रीय दाता एजेंसियों से धन प्राप्त करते हैं। बिहार के पूर्व गृह सचिव अफजल अमानुल्लाह ने कहा कि 'गुप्तचर एजेंसियों ने रपट दी ही थी कि ऐसी चीजें सुनियोजित तरीके से हो रही हैं। अब हमें विदेशियों को चेतावनी देनी पड़ती है और काफी योजना बनानी पड़ रही है ताकि इस चिन्ताजनक रोग को फैलने से रोका जा सके'।[47]

जब भारत इस विद्रोह के विरुद्ध अपनी कार्रवाई तेज कर रहा था, माओवादी विद्रोहियों ने अरुंधती राय से राज्य के साथ मध्यस्थता करने को कहा। माओवादियों द्वारा जनता में अपनी बात रखने के लिए इस तरह के प्रसिद्ध व्यक्तियों का उपयोग जनसम्पर्क अभ्यास के रूप में किया जाता है, जो समझौते के लिए एक ईमानदार प्रयास से काफी दूर होता है। एक स्तम्भकार ने टिप्पणी की कि राज्य से बातचीत की प्रक्रिया को लाँघते हुए विद्रोही अपने मुद्दे को नागरिक समाज में आगे लाने के लिए प्रसिद्ध व्यक्तियों को अंगीकार करते हैं। मध्यस्थता करने वाले बुद्धिजीवी माओवादियों को नागरिक समाज में अपनी गहरी पैठ बनाने में सहायता करते हैं।[48]

माओवादी 'बन्दूकधारी गाँधीवादी' और गाँधी 'धार्मिक पाखण्डी' हैं

अरुंधती राय माओवादियों को मुख्यधारा के लोकतन्त्र में लाने से, जैसा कि उनके कुछ समर्थकों ने दावा किया है, बहुत दूर हैं और हिंसा की प्रवक्ता की तरह काम करती हैं। 'आउटलुक' (*Outlook*) पत्रिका में छपे अपने एक बहुचर्चित लेख में, जो एक प्रमुख माओवादी हमले के ठीक पहले छपा था, उन्होंने अपनी दोमुहीं बातों का दृष्टान्त दिया था। लेख पाठकों से पूछे गये एक पवित्र प्रश्न से प्रारम्भ होता है और उनसे माओवादियों को 'बन्दूकधारी गाँधीवादी' मानने को कहा जाता है। लेकिन भावनात्मक भाषाशैली में वे माओवादी हिंसा के संस्थापक और भारत में माओवादी आतंक के वास्तुकार, चारू मजुमदार का गौरवगान करती हैं, जिन्होंने 'एक विनाश अभियान' की वकालत की थी, जबकि गाँधीवादी अहिंसा को 'धार्मिक पाखण्ड' कहा गया है। उसके बाद वे भारत में चल रहे प्रत्येक अलगाववादी विद्रोह को उचित ठहराती हैं और भारत को 'मूलत: अगड़ी जाति के हिन्दुओं का राष्ट्र' बताती हैं, जो अपनी स्वतन्त्रता के दिन से ही 'क्षेत्रों को अपने में मिला लेने वाली एक औपनिवेशिक शक्ति' के रूप में 'मुसलमानों, ईसाइयों, सिखों, साम्यवादियों, दलितों, आदिवासियों और सबसे अधिक गरीबों के विरुद्ध ''युद्ध करता'' आ रहा है।'[49] भारत के गृह

मन्त्रालय ने भी 'भारत के अपने बुद्धिजीवियों के राष्ट्रहित के विरुद्ध' गलत रुख पर टिप्पणी की। इसने आरोप लगाया कि माओवादी विद्रोह से निपटने के मार्ग में 'विदेशों द्वारा प्रायोजित एजेंसियों की भूमिका' आड़े आ रही है।[50]

उभरते हुए गठजोड़

अप्रैल 2010 में छत्तीसगढ़ में हुए हाल के सर्वाधिक घातक माओवादी हमले में 76 भारतीय सैनिक मारे गये थे।[51] इस भयंकर घटना के बाद जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय में माओवादियों की प्रशंसा में एक सांस्कृतिक उत्सव का आयोजन किया गया। इस हत्याकाण्ड के बाद गुप्तचर एजेंसियों द्वारा देशव्यापी समन्वित तलाशी अभियान चलाया गया। पुलिस द्वारा गुजरात से तीन आन्दोलनकारियों को गिरफ्तार किया गया जिनके माओवादियों से सम्बन्ध थे।[52] जेसुइट मिशनरियों द्वारा इस गिरफ्तारी की निन्दा की गयी।[53] गिरफ्तारी के बाद माओवादियों और उनके फिलीपिनो कॉमरेडों के बीच के सम्बन्ध प्रकाश में आये और बाद में इसकी पुष्टि फिलीपिन्स की 'राष्ट्रीय गुप्तचर समन्वय एजेन्सी' (National Intelligence Co-ordinating Agency) द्वारा भी की गयी।[54] गुजरात के अलावा विख्यात जेसुइट सक्रियतावादी (Jesuit Activist) माओवादी विद्रोहियों को समाचार माध्यमों का प्रबन्ध करने में सहायता प्रदान करते हैं और माओवादियों से निकटता का आनन्द उठाते हैं। उदाहरण के लिए, भारत में काम कर चुके एक ऑस्ट्रेलियाई जेसुइट पादरी पर लिखे संस्मरण में एक अन्य ईसाई आन्दोलनकारी बताते हैं कि जब वे 'उत्तर भारत के एक गाँव से लौट रहे थे जहाँ हाल ही में माओवादी विद्रोहियों द्वारा क्षेत्र को मुक्त करा लिया गया था', तो माओवादियों के साथ उस ऑस्ट्रेलियाई जेसुइट पादरी के कैसे मित्रतापूर्ण सम्बन्ध थे, जिन्होंने उन्हें घेर लिया था, और जिन्हें उन्होंने (जेसुइट पादरी ने) बाद में 'महज बन्दूक उठाये बच्चे' कहा।[55]

माओवादियों के साथ इस प्रकार जमीनी स्तर पर मेलजोल रखने के अलावा ईसाई आन्दोलनकारी मुख्य धारा के समाचार माध्यमों में माओवादियों के लिए निरन्तर प्रचार सहायता प्रदान करते हैं। इण्डियन सोशल इंस्टीटयूट, नई दिल्ली के एक पूर्व निदेशक, और वर्तमान में सेंट जोजेफ्स कॉलेज बेंगलुरू के प्रिंसिपल, डॉ. एम्ब्रोज पिंटो एस.जे., मुख्यधारा के समाचार माध्यमों में माओवादियों के लिए भाव-भरे गुणगान वाले लेख लिखते हैं जिन्हें 'जेसुइट्स फॉल सोशल ऐक्शन' (जे.ई.एस.ए.) की वेबसाइट पर प्रमुखता से प्रकाशित किया जाता है।[56] 'हम ग्रीन हण्ट का विरोध क्यों करते हैं' (Why We Oppose Green Hunt) शीर्षक से छपे लेख में पिंटो रिस्ली के सिद्धान्त पर बल देते हैं कि आदिवासी हिन्दू नहीं हैं, और इस प्रकार चर्च के लोगों के लिए एक राजनीतिक स्थान बनाते हैं ताकि वे बिचौलियों के रूप में हस्तक्षेप कर सकें।[57] पिंटो 'दलित या आदिवासियों के जीवन के तौर-तरीकों और सभ्यता' की बात

करते हैं और कहते हैं कि उन्हें माओवादियों से ख़तरा नहीं है बल्कि भारत सरकार से है।

माओवादियों के लिए बात करने वाला एक अन्य प्रमुख ईसाई स्वर है जेवियर मंजूरन का, जिन्होंने कहा कि 'गुजरात में अपने कानूनी अधिकार की माँग करना और आतंकवादी होना एक ही बात है'।[58] मंजूरन द्वारा संचालित गुजरात आदिवासी महासभा भारत सरकार द्वारा योजनाबद्ध कार्रवाई के विरुद्ध जारी पत्र पर हस्ताक्षर करने वालों में से एक हैं, जिसे भाकपा-माओवादी की दिसम्बर 2009 के माओवादी सूचना-पत्र में प्रकाशित किया गया था। वर्ष 2003 में ही एक पाकिस्तानी पत्रिका को दिये गये अपने एक साक्षात्कार में मंजूरन ने शेखी बघारते हुए कहा था कि किस प्रकार उनका संगठन आदिवासियों को युद्ध प्रशिक्षण देता है और आर्य/द्रविड़ नस्ली सिद्धान्त से उनका परिचय कराते हुए उन्हें मुख्यधारा के भारतीय समाज से अलग करता है।[59]

ईसाई शक्तियों के अलावा पाकिस्तान ने भी माओवादी विद्रोह में प्रभावी निवेश किया है। गुप्तचर प्रोफेशनलों की एक वैश्विक टीम, स्ट्रैटफोर (STRATFOR), के एक विश्लेषक बेन वेस्ट लिखते हैं :

> भारत में स्ट्रैटफोर के सूत्र दावा करते हैं कि पाकिस्तानी गुप्तचर एजेन्सी ने हथियार और बारूद बेचने के लिए नक्सलियों से व्यावसायिक सम्बन्ध स्थापित कर लिये हैं, और हाल के दिनों में नक्सली अड्डों का उपयोग भारत विरोधी गतिविधियों के लिए करने के प्रयास किये हैं। इस बात के साक्ष्य हैं कि आई.एस.आई. धन और सेवाओं के बदले अधिकांशतः यूनाइटेड लिबरेशन फ्रण्ट ऑफ असम (उल्फा) या प्रकट रूप से बांग्लादेशी आतंकवादी नेता शैलेन सरकार जैसे तीसरे पक्षों के माध्यम से नक्सलियों को हथियार और बारूद दे रही है। ... भारत के नक्सलवादी नेता पाकिस्तान के साथ सहयोग से इनकार करते हैं, लेकिन उन्होंने बिलकुल सार्वजनिक रूप से भारत में अलगाववादी आन्दोलनों के लिए समर्थन का संकल्प अभिव्यक्त किया है।[60] विश्लेषक ने पुस्तक के इस मूल शोध की भी पुष्टि की है कि किस प्रकार वैश्विक स्तर पर प्रतिस्पर्धी सभ्यताएँ भारत में अपने साझे शत्रु के विरुद्ध एक साथ हो जाती हैं।

इस प्रकार, हम विभिन्न धाराओं की शक्तियों का संगम देखते हैं, जो विभिन्न स्तरों पर कार्य कर रही हैं और भारत के विभिन्न भागों में स्थित हैं, जो बहुलतावादी लोकतान्त्रिक भारत को एक विशेष प्रकार के सर्वसत्तात्मक सिद्धान्त और/या कट्टरपन्थी धर्मशास्त्र की शासन व्यवस्था में रूपान्तरित करने के लिए संगठित होकर काम कर रही हैं। इन नये गठजोड़ों के उभरने में उल्लेखनीय बात यह है कि किस तरह वैश्विक स्तर पर एक-दूसरे से लड़ने वाले कटु विरोधी सिद्धान्त (अर्थात, माओवादी और ईसाई) भारत के अन्दर एक साथ मिलकर काम करते हैं।

द्रविड़िस्तान का इस्लामी हिस्सा

स्वतन्त्रता के पहले भी अखिल-इस्लामी अभियान के प्रति द्रविड़ आन्दोलन का कुछ सैद्धान्तिक लगाव था। अनेक मुसलमानों ने एक अलग पाकिस्तान की माँग को यह कहते हुए उचित ठहराया था कि आर्य भारत से उसी तरह इस्लामी संस्कृति को हटाने के लिए षडयन्त्र कर रहे थे जिस तरह वे द्रविड़ संस्कृति को दबा रहे थे।[61] मोहम्मद अली जिन्ना ने उन शक्तियों को प्रोत्साहित करने की परिकल्पना की टोह ली जो पाकिस्तान के सृजन के लिए केवल भारत के बँटवारे से भी परे जाकर भारत को विखण्डित कर सकें। सन 1940 में मुस्लिम लीग द्वारा पाकिस्तान की माँग के प्रस्ताव को पारित किये जाने के शीघ्र बाद द्रविड़ सिद्धान्तकार ई.वी. रामास्वामी नायकर (ई.वी.आर. के नाम से लोकप्रिय) ने इसी तरह का एक प्रस्ताव पारित किया जिसमें द्रविड़िस्तान नाम से एक सम्प्रभुता सम्पन्न राज्य की माँग की गयी थी। सन 1941 में, मुस्लिम लीग के अट्ठाईसवें वार्षिक सत्र में जिन्ना और ई.वी.आर. एक ही मंच पर आये और जिन्ना ने भारत को तोड़कर द्रविड़िस्तान जैसा कुछ बनाने का पूरा समर्थन किया :

> मुझे पूरी सहानुभूति है और सहायता के लिए सब कुछ करूँगा, और आप द्रविड़िस्तान की स्थापना करें, जहाँ सात प्रतिशत मुस्लिम जनसंख्या मित्रता का अपना हाथ बढ़ायेगी और सुरक्षा, न्याय तथा निष्पक्ष व्यवहार के आधार पर आपके साथ रहेगी।[62]

समझौता यह था कि वे एक-दूसरे के अलगाववाद का समर्थन करेंगे।[63] जिन्ना ने भारत को पाकिस्तान, द्रविड़िस्तान और बंगालीस्तान में विखण्डित करने के लिए अपनी दृष्टि को और विस्तार दिया।[64] इसने द्रविड़ अलगाववादियों और अखिल-इस्लामी स्वरों, दोनों के लिए एक साझा मंच दिया। ई.वी.आर. ने तमिलनाडु में मुस्लिम राजनीतिक आन्दोलन और पाकिस्तान के सृजन के अभियान का समर्थन किया। वे मुस्लिम लीग की बैठकों के प्रमुख वक्ता बन गये और उन्हें पैगम्बर मोहम्मद के जन्मोत्सव में बोलने के लिए बुलाया गया जहाँ उन्होंने हिन्दू धर्म पर लगातार प्रहार किया।[65] डी.एम.के. उनके द्रविड़ आन्दोलन का राजनीतिक उत्तराधिकारी है, जिसने तमिलनाडु में राजनीतिक इस्लाम के साथ गठजोड़ बनाने की इस नीति को जारी रखा।[66] सन 1947 में स्वतन्त्रता प्राप्ति से 1974 तक, डी.एम.के. और मुस्लिम लीग इतनी निकटता से जुड़े थे कि एक राजनीतिक टिप्पणीकार ने टिप्पणी की कि 'उनके संगठनों को अलग-अलग पहचानना लगभग असम्भव हो गया है'।[67]

सन 1972 में, डी.एम.के. दो पार्टियों में विभक्त हो गयी, एक डी.एम.के. रह गयी और नयी पार्टी का नामकरण ए.आई.ए.डी.एम.के. (ऑल इण्डिया अन्ना द्रविड़ मुन्नेत्र कड़गम) किया गया। उसके बाद से अखिल-इस्लामी राजनीतिक पार्टियाँ इन दोनों द्रविड़ पार्टियों में से एक या दूसरी से गठबन्धन करती रही हैं। इन दोनों के बीच, तमिलनाडु में राजनीतिक इस्लाम की भूख को लगातार डी.एम.के. ही अधिक तृप्त

करती रही है और उसने सैद्धान्तिक रूप से द्राविड़ आन्दोलन को अखिल-इस्लामी अभियान से जोड़ दिया है।

कश्मीर, अफगानिस्तान, और फिलीस्तीन में राजनीतिक इस्लाम में उग्रता के समानान्तर उग्रतावाद की लहर तमिलनाडु भी पहुँच गयी है। जिहादी नेटवर्क दक्षिण भारत में चुपचाप ढाँचे बना रहे हैं, जहाँ उनको मिलने वाला राजनीतिक संरक्षण उन्हें सुरक्षित रखता है। राजनीतिक इस्लाम को दिये गये संरक्षण ने अक्सर जिहादी हिंसा के विरुद्ध कानून लागू करने वाली एजेंसियों के काम में रुकावटें डाली हैं। इसका कारण सिद्धान्त और वोट-बैंक की व्यावहारिकता का एक मेल है।

यह अध्याय द्रविड़ अलगाववाद और राजनीतिक इस्लाम के बीच हाल के अप्रचारित सम्पर्कों को ढूँढ़ेगा। यह दिखायेगा कि किस प्रकार अस्थिर करने वाली शक्तियाँ राजनीतिज्ञों द्वारा पोषित की जा रही हैं जो थोड़े समय के लाभ के लिए राष्ट्रीय सुरक्षा की कीमत पर ऐसा करते हैं। जहाँ तमिलनाडु में द्रविड़वादियों के इस्लामी अलगाववादियों के साथ सैद्धान्तिक लगाव और उनकी भारत विरोधी घृणा बढ़ती जिहादी शक्तियों की तरफ से आँखें बन्द करवा देती है, वहीं केरल में विभिन्न कारक सक्रिय हैं। वहाँ मार्क्सवादी इस्लाम को साम्राज्यवादी शक्ति के विरोधी के रूप में देखते हैं और अपने राजनीतिक विरोधियों के विरुद्ध एक प्रमुख वोट बैंक के रूप में भी।

Fig. 19.4 दक्षिण भारत में इस्लामिक आतंक का तन्त्र

चित्र 19.4 संक्षेपण करता है कि किस प्रकार तीन दक्षिणी राज्यों—तमिलनाडु, केरल, और कर्नाटक—में इस्लामी शक्तियाँ काम कर रही हैं। हम उनमें से हरेक के लिए कुछ घटनाओं को सार रूप में प्रस्तुत करेंगे।

तमिलनाडु

ऑल इण्डिया जिहाद कमेटी (ए.आई.जे.सी.)

पुलिस की गुप्तचर सूचना के अनुसार इस्लामी रूढ़िवादी समूहों ने तमिलनाडु में 1983 में काम करना शुरू किया।[68] सन 1986 में एक इस्लामी रूढ़िवादी उपदेशक अहमद अली उर्फ पलानी बाबा द्वारा ऑल इण्डिया जिहाद कमेटी (ए.आई.जे.सी.) का गठन किया गया जिन्हें उनके उग्रतावादी भाषणों के लिए जाना जाता था। गुप्तचर एजेंसियों ने

रिपोर्ट की कि वे ऑल इण्डिया मिली काउंसिल के साथ मिलकर, जिसके सऊदी-वहाबी सम्पर्क थे, अपनी गतिविधियाँ संयोजित कर रहे थे।[69]

1980 के दशक के दौरान विभिन्न हिन्दू आन्दोलनकारियों को, जिन पर इस्लाम को अपमानित करने का आरोप था, जिहादी समूहों द्वारा मार दिया गया था, विशेषकर कोयम्बटूर में, जो तमिलनाडु की वित्तीय राजधानी है।[70] बाद में, 1990 के दशकारम्भ में इजरायली गुप्तचरों ने एक फिलीस्तीनी छात्र को गिरफ्तार किया जो दक्षिण भारत में पढ़ रहा था, जहाँ से उसे आतंकवाद में शामिल होने के लिए इजरायल अधिकृत क्षेत्रों में भेजा गया था। इजरायल में उससे की गयी पूछताछ ने दक्षिण भारत, विशेषकर तमिलनाडु, में अन्तर्राष्ट्रीय सम्पर्कों और स्थानीय समर्थनों वाले इस्लामी इकाइयों की सम्भावित उपस्थिति का खुलासा किया। स्थानीय पुलिस और गुप्तचर एजेन्सी ने इजरायल की चेतावनी को यह कहते हुए अस्वीकार कर दिया कि वे अपुष्ट हैं।[71]

सन 1990 में पलानी बाबा का अप्रत्याशित उत्थान देखा गया जिन्हें द्रविड़ राजनीति द्वारा रणनीतिगत समर्थन दिया गया था। उनकी गतिविधियाँ एक छोटे शहर में केन्द्रित थीं, जहाँ एक विख्यात सूफी दरगाह है जिसमें सभी समुदायों के लोग जाते हैं। राज्य के पुलिस महानिदेशक के अनुसार ‘तथ्य यह है कि डी.एम.के. सरकार ने उनकी बोली पर लगाम कसने में समय लिया था। अगर इसने पहले ही कार्रवाई की होती तो हानि को अच्छी तरह टाल दिया गया होता।[72] द वीक की एक रपट ने द्रविड़ उत्साहियों और जिहादियों के बीच विचित्र तालमेल पाया :

> पलानी बाबा काफी समय से कट्टरपन्थ की आग में घी डाल रहे हैं, हालाँकि राज्य में जिहाद नामक उनके संगठन का सिर्फ़ एक छोटा-सा जनाधार है। ... [वे] मुख्य मन्त्री एम. करुणानिधि के साथ अपने निकट सम्बन्ध की शान दिखाते हैं। वे लिबरेशन टाइगर्स ऑफ तमिल ईलम के साथ अपने सम्बन्धों का दावा करते हैं और बहुधा शेखी बघारते हैं कि उनके कहने भर से बन्दूकें तैयार रहती हैं। ... पलानी बाबा के भाषण, जो सम्पूर्ण तमिलनाडु के मुस्लिम बहुल क्षेत्रों में जिहाद के प्रभाव को फैलाने का प्रयास करते रहे हैं, साम्प्रदायिक कड़ाह में अत्यन्त विस्फोटक सामग्री थे। उनके भाषण हिन्दुओं, उनके देवी-देवताओं और शंकराचार्य जैसे धार्मिक नेताओं के प्रति अश्लील सन्दर्भों से भरे
>
> पड़े थे।[73]

अल उम्मा और टी.एम.एम.के.

1993 में, अल उम्मा का गठन ए.आई.जे.सी. के एक बिरादराना समूह के रूप में किया गया, जिसकी संरचना ए.आई.जे.सी. से बेहतर थी और अधिक गुप्त भी। इसमें ग्यारह सम्भाग थे, प्रत्येक का नेतृत्व एक प्रशिक्षित अमीर (प्रमुख) द्वारा किया जाता था।[74] गुप्तचर ब्यूरो के एक वरिष्ठ अवकाश प्राप्त अधिकारी के अनुसार अल उम्मा

‘सर्वाधिक सक्रिय जिहादी शक्ति बन गया है जो तमिलनाडु, आंध्र प्रदेश, केरल, और कर्नाटक में सक्रिय है। इसके डायरेक्टरेट जनरल ऑफ फोर्सेज इंटेलिजेंस ऑफ बांग्लादेश (डी.जी.एफ.आई.), इंटर सर्विसेज इंटेलिजेंस (आई.एस.आई.), लश्कर-ए-तोइबा, हुजी, जैश-ए-मोहम्मद और सिमी से सम्पर्क हैं’।[75] उस वर्ष के अन्त में, अल उम्मा ने एक हिन्दू राष्ट्रवादी समूह, आर.एस.एस., के मुख्यालय में बमबारी की जिसमें ग्यारह लोग मारे गये थे। तमिलनाडु पुलिस ने अल उम्मा के नेता और पन्द्रह अन्य को आतंकवादी और विध्वंसक गतिविधियाँ (निरोध) अधिनियम के तहत गिरफ्तार किया।[76] छिटपुट घटनाएँ चालू रहीं और उन्होंने इस्लामी संगठनों की बम बनाने की बड़ी हुई क्षमता प्रदर्शित की।

सन 1995 में एक प्रमुख हिन्दू आन्दोलनकारी की पत्नी पार्सल बम विस्फोट से मारी गयी,[77] और एक विख्यात फिल्म निर्देशक मणि रत्नम के चेन्नई स्थित आवास पर पाइप-बम फेंके गये, जिसका कारण उनकी फिल्म में कथित रूप से मुस्लिम विरोधी पूर्वाग्रह का होना था। उसी वर्ष अल उम्मा के अनेक सदस्यों ने तमिल मुस्लिम मुन्नेत्र कड़गम (टी.एम.एम.के.) शुरू किया, जो उग्र परिवर्तनवादी सऊदी शैली के इस्लाम के करिश्माई उपदेशकों का एक सामाजिक-राजनैतिक मोर्चा है। एक विरोधी इस्लामी समूह के अनुसार टी.एम.एम.के. के एक प्रमुख रूढ़िवादी उपदेशक श्रीलंका गये, जहाँ उन्होंने पाकिस्तानी इंटर सर्विसेज इंटेलिजेंस के साथ सम्पर्क-सूत्र विकसित किये। उन्होंने सामुदायिक नेताओं की प्रतिमाओं को अपवित्र किया जिसकी वजह से तमिलनाडु में दलितों और अन्य पिछड़ी जातियों के बीच दंगे भड़के, और इसके लिए उन पर आर्थिक दण्ड भी लगाया गया।[78]

कोयम्बटूर में अपनी उपस्थिति पर जोर देने के लिए अल उम्मा आतंकवादियों ने एक पड़ोसी मुस्लिम बहुल क्षेत्र स्थित पुलिस चौकी पर पुलिस के साथ जमकर मुठभेड़ की। एक स्थानीय सांसद ने आतंकवादियों से वादा किया कि अगर वे जीतकर सत्ता में आये तो पुलिस चौकी को वहाँ से हटवा देंगे। जब उनकी पार्टी चुनाव जीत गयी, अल उम्मा सक्रियतावादियों ने पुलिस चौकी को स्वयं हटा दिया, जिसके बाद पुलिस के साथ और झड़पें हुईं।[79]

सन 1997 में, तमिलनाडु सरकार ने अल उम्मा के सक्रियतावादियों को, जिन्हें 1993 के बम विस्फोटों के सिलसिले में गिरफ्तार किया गया था, रिहा कर दिया। जेल से उन्हें विजय जुलूस की शक्ल में बाहर लाया गया ‘जिनके साथ असलहे दिखाते हुए आन्दोलनकारी चल रहे थे’।[80] उसी वर्ष आगे चल कर जिहादी समूहों ने एक आतंकवादी अभियान प्रारम्भ किया जिसमें एक ही दिन बेसिलसिलेवार तरीके से चुने गये पाँच हिन्दुओं की हत्या कर दी गयी।[81] फिर उसी वर्ष आगे चल कर हुए विस्फोटों ने दो दुकानें उड़ा दीं और उनमें तीन महिलाएँ मारी गयीं,[82] और अल उम्मा द्वारा सार्वजनिक रूप से एक यातायात पुलिसकर्मी की हत्या कर दी गयी। उसके बाद हुए दंगों के परिणामस्वरूप पुलिस ने गोलियाँ चलायीं और अट्ठारह मुसलमानों की मौत

हुइ।[83] पुलिस ने जिहादी समूह के दो सदस्यों को भड़काऊ पोस्टर लगाने के लिए गिरफ्तार किया,[84] लेकिन सरकार ने एक बार फिर अल उम्मा के प्रमुख को रिहा कर दिया।

सन 1998 में कोयम्बटूर में एक प्रमुख हिन्दू नेता के चुनाव प्रचार अभियान में पहुँचने के कुछ ही घण्टे पहले शहर के विभिन्न भागों में विस्फोट किये गये जिसमें 80 लोग मारे गये। द हिन्दू ने समाचार प्रकाशित किया कि राज्य के गुप्तचर संगठन ने शहर में आतंकी हमले की सम्भावना पर दो निश्चित चेतावनियाँ जारी की थीं, जिनमें से एक चेतावनी में बचाव के कदमों की सिफारिश भी शामिल थी, जैसे आतंकवादियों के गुप्त ठिकानों और उन स्थानों पर छापे मारना जहाँ विस्फोटक रखे गये थे, और संवेदनशील क्षेत्रों में वाहनों की तलाशी।[85] पर राजनीति ही हावी रही और अल उम्मा पर न तो प्रतिबन्ध लगाया गया और न ही कोई कड़ी कार्रवाई हुई।[86] अनगिनत आतंकवादी घटनाएँ हुई हैं जिन पर हल्की प्रतिक्रिया ही सामने आयी है।[87]

बम विस्फोट की इन घटनाओं के पहले सुरक्षा व्यवस्था में चाहे जो भी खामियाँ रहीं हों, तमिलनाडु पुलिस ने 1998 के कोयम्बटूर विस्फोटों के बाद उल्लेखनीय ढंग से कार्रवाई की। एक त्वरित कदम में अपराध शाखा के विशेष अनुसंधान दल ने 166 लोगों को आतंकवादी घोषित किया। उनमें से 145 लोगों को हिरासत में ले लिया गया और 8 लोग पुलिस के साथ बाद की मुठभेड़ों में मार डाले गये। उन अभियुक्तों में से 11 को केरल से, 3 को आन्ध्र प्रदेश से, 2 को कर्नाटक से और एक को कोलकाता से गिरफ्तार किया गया।

चित्र 19.5 तमिलनाडु में 1980 और 1990 के दशकों में इस्लामी आतंकवादियों के कुछ कारनामों को प्रदर्शित करता है, जिनमें से अधिकांश को समाचार माध्यमों में थोड़ा ही स्थान मिला।

चित्र 19.5 तमिलनाडु में जिहाद पीड़ित

1982-1990	तमिलनाडु में जिहादियों द्वारा हिन्दुओं की व्यापक हत्याएँ। आरोपितों में से अधिकांश रिहा और एक व्यक्ति ने, जिस पर हत्या के कई आरोप हैं, बाद में अल-उम्मा का गठन किया।	
21-01-1993	चेन्नई बम विस्फोट	11 मृत
14-04-1995	चेन्नई बम विस्फोट	2 मृत

20-04-1997	तूतीकोरिन : बंदरगाह	3 मृत
14-05-1997	तूतीकोरिन : बंदरगाह	7 पुलिसकर्मी घायल
15-05-1997	मदुरै माता के मंदिर के अन्दर विस्फोट	कोई क्षति नहीं
6-06-1997	थंजवुर : भारत के राष्ट्रीय टीवी स्टेशन में बम विस्फोट	1 घायल
17-06-1997	तूतीकोरिन	2 मृत
6-10-1997	कड्डलूर	1 मृत
1-11-1997	कोयम्बटूर	2 दुकानों को क्षति
3-12-1997	कोयम्बटूर	1 मृत; 5 घायल
6-12-1997	इरोड : ट्रेन में विस्फोट	2 मृत
6-12-1997	तिरुची : ट्रेन में विस्फोट	4 मृत
14-02-1998	कोयम्बटूर : श्रृंखलाबद्ध विस्फोट	70 मृत
28-	मदुरै में गांधीवादी प्रोफेसर की सरेआम हत्या; एक खास पार्टी के लिए	

03-1998	प्रचार अथवा वोट करने के खिलाफ चेतावनी

केरल

विडम्बना है कि केरल में अखिल-इस्लामी अलगाववाद को मार्क्सवादी शासन ने शुरू किया जिसने स्वयं को पन्थ-निरपेक्षता के लिए कृतसंकल्प घोषित किया था। प्रमुख सामाजिक प्रेक्षक नय्यर शम्सी स्पष्ट करते हैं :

> कम्युनिस्ट पार्टी ने, जिसने बड़ा शोर मचाते हुए कसम खायी थी और अब भी पन्थ-निरपेक्षता की कसम खाती है ... केरल में सत्ता हथियाने के लिए मुस्लिम लीग से प्रेम जताया। वह एक कदम और आगे गयी और 1968 में जब महापराक्रमी ई.एम.एस. नम्बूदिरीपाद मुख्य मन्त्री थे तब एक नये जिले मलप्पुरम का सृजन किया, जिसमें मुख्य रूप से मुस्लिम जनसंख्या है।[88]

बाद में मलप्पुरम जिला जिहादी गतिविधियों की क्यारी बनने वाला था, जैसा कि आगे विश्लेषण किया जायेगा। सन 1980 के दशक से केरल में स्टूडेंट्स इस्लामिक मूवमेंट ऑफ इण्डिया (सिमी) द्वारा जिहादी आन्दोलनों को पोषित किया जा रहा है।[89] उन्होंने एक तर्क तैयार किया जिसमें उन्होंने स्वयं को एक केरल निवासी, जइन-अद-दीन के उत्तराधिकारियों के रूप में देखा, जिनकी 1580 की पुस्तक, तुहफत अल-मुजाहिदीन, ने 'विश्वास करने वालों [मुसलमानों] से सलीब की पूजा करने वालों के खिलाफ़ जिहाद करने' का आह्वान किया था। इसने भारत के जिहाद को विश्व व्यापी सलफी-जिहादी आन्दोलन से जोड़ कर एक अन्तर्राष्ट्रीय एजेंडे का अंग बना दिया है।[90] सन 1997 में चेन्नई में विस्फोटकों के मिलने के बाद, केरल के मुख्य मन्त्री ने अपनी राज्य विधान सभा को बताया कि केरल में सक्रिय अतिवादी समूहों की संख्या आठ तक है जिन्होंने विदेशों से, जिनमें ईरान और अरब देश भी शामिल हैं, धन और अन्य समर्थन प्राप्त किया।[91]

उसी वर्ष आगे चल कर तमिलनाडु के जुड़वें एक्सप्रेस बम-विस्फोटों के साथ तालमेल बैठाकर किया गया एक बम विस्फोट केरल में एक एक्सप्रेस रेलगाड़ी में हुआ जिसमें चार लोग मारे गये और उन्चास घायल हुए थे। केरल के नवगठित इस्लामिक डिफेंस फोर्स (आई.डी.एफ.) ने उसकी जिम्मेदारी का दावा किया।[92] सन 1998 में, आई.डी.एफ. द्वारा तैयार की गयी पर्चियाँ (पैम्फ्लेट्स) एक बम विस्फोट स्थल पर पायी गयी थीं। जाँच ने उद्घाटित किया कि आई.डी.एफ. चेन्नई स्थित ऑल इण्डिया जिहाद कमिटी के परिसर में लुके-छिपे काम कर रहा था, जहाँ से केरल और तमिलनाडु की रेलगाड़ियों के जुड़वाँ बम विस्फोटों की योजना बनायी गयी थी।[93]

सन 1998 के कोयम्बटूर आतंकवादी हमलों के बाद हुई जाँच-पड़ताल ने उजागर किया कि रेलगाड़ी में बम विस्फोट की घटनाओं के पहले भी उत्तर केरल के कुछ

भाग एक उग्र परिवर्तनवादी इस्लामी मंडल में रूपान्तरित हो गये थे। समाचार पोर्टल www.rediff.com ने समाचार प्रकाशित किया कि सन 1993 से केरल के जिहादी और ताक़त हासिल कर रहे थे, जिसे उन्होंने पड़ोसी तमिलनाडु तक विस्तारित किया था।[94]

अब्दुल नासिर मदनी, दक्षिण भारतीय जिहाद के धर्म-पिता

सन 1998 के कोयम्बटूर विस्फोटों के सिलसिले में गिरफ्तार हुए लोगों में अब्दुल नासिर मदनी भी थे, जो एक प्रतिबन्धित उग्रवादी समूह इस्लामिक सेवक संघ (आई.एस.एस.) के संस्थापक हैं। इस समूह ने स्वयं को शीघ्र ही एक पन्थ-निरपेक्ष नाम वाली राजनीतिक पार्टी, पीपुल्स डेमोक्रैटिक पार्टी में बदलकर छद्मवेश अपना लिया। मदनी के आई.एस.एस. को प्रतिबन्धित करने के बाद केरल की मार्क्सवादी सरकार ने इसकी गतिविधियों की निगरानी बन्द कर दी। पुलिस ने पाया कि प्रतिबन्ध के बाद आई.एस.एस. के तत्वों ने स्वयं को तत्काल पुनर्गठित किया ताकि ध्यानाकर्षण से बचा जा सके और विभिन्न अनियोजित नामों वाले उग्र परिवर्तनवादी संगठनों के साथ हाथ मिला लिया ताकि गुप्तचर एजेंसियों को भुलावा दिया जा सके।[95] इन संगठनों की सदस्यता एक-दूसरे पर छायी होती है यानी सम्भव है एक संगठन का सदस्य इनमें से दूसरे किसी संगठन का भी सदस्य हो।[96] पुलिस ने जल्द ही पाया कि तमिलनाडु के आतंकवादियों को केरल के इन नये समूहों में से एक द्वारा प्रशिक्षित किया गया था।[97]

वर्ष 1999 में, भारतीय स्वतन्त्रता दिवस की पूर्व सन्ध्या को, केरल पुलिस ने 'एक इस्लामी कट्टरपन्थी संगठन' के तीन सदस्यों को गिरफ्तार किया, जिसने राज्य के मुख्य मन्त्री और अन्य प्रमुख नेताओं की हत्या के लिए 'मानव बम' भेजे थे ताकि मदनी की रिहाई सुनिश्चित करने के लिए दबाव बढ़ाया जा सके।[98] जब मदनी जेल में ही थे, उनकी पार्टी ने केरल के मुस्लिम युवाओं के बीच अपना विस्तार जारी रखा, और बाद में हुए चुनावों के दौरान केरल की दोनों प्रमुख राजनीतिक पार्टियों के साथ गठबन्धन किया।[99] पी.डी.पी. (पीपल्स डेमोक्रैटिक पार्टी) ने दलित-इस्लामी गठबन्धन बनाने का भी प्रस्ताव किया। हालाँकि वे जेल में थे, मदनी की पार्टी ने राज्य की राजधानी की ही दो सीटें जीत लीं, और अपनी वैधता को और बढ़ा लिया जब 2001 के राज्य विधान सभा चुनाव के समय कांग्रेस नेतृत्व वाले यूनाइटेड डेमोक्रैटिक फ्रण्ट ने गुप्त रूप से उसकी सहायता चाही।[100] यहाँ तक कि इण्डियन यूनियन मुस्लिम लीग के प्रदेश सचिव ने ध्यान दिलाया कि राजनीतिक पार्टियों ने 'पीडीपी जैसे समूहों को प्रोत्साहित किया था जिनके अतिवादी दृष्टिकोण थे' और किस तरह इसने राज्य में आतंकवाद के विस्तार में सहायता की है।[101]

मदनी की राजनीतिक पार्टी ने 2004 के संसदीय चुनावों के दौरान उनकी रिहाई के लिए दबाव बनाने की खातिर गुटबाजी की। केरल की दोनों प्रमुख राजनीतिक

पार्टियों ने तमिलनाडु की डी.एम.के. सरकार से उनकी रिहाई की अपील की। इस अभियान ने इस्लामी समर्थन के आधार को द्रविड़वादियों, उग्र परिवर्तनवादी वामपन्थियों, और मानवाधिकार आन्दोलनकारियों तक विस्तारित किया।[102] केरल राज्य विधान सभा ने उनकी रिहाई के लिए एक प्रस्ताव पारित किया।[103] उसके बाद, केरल के मुख्य मन्त्री तमिलनाडु के मुख्य मन्त्री से यह कहने के लिए वहाँ गये, कि मदनी के साथ विशेष बर्ताव किया जाये।[104] दलित वॉयस ने जेल में मदनी की अवस्था पर सहानुभूतिपूर्ण अंक प्रकाशित किया और उन्हें कैद रखने के पीछे एक षड्यन्त्र का आरोप लगाया।[105]

मराड नरसंहार

केरल में जिहादी घुसपैठ किस हद तक हुई इसका पता 2003 में मराड में लगा, जो एक सोया-खोया तटवर्ती मछुआरा गाँव है, जहाँ समुद्र तट पर मुस्लिम दंगाइयों की एक भीड़ द्वारा आठ हिन्दू मछुआरों को काटकर मार डाला गया। उसके बाद हत्यारे निकट की जामा मसजिद के अन्दर जा छिपे, जहाँ सैकड़ों स्थानीय मुस्लिम महिलाएँ हमलावरों को पकड़ने गयी पुलिस को मसजिद में घुसने से रोकने के लिए इकट्ठा हुईं। यह घटना मराड नरसंहार या दूसरे मोपला नरसंहार के नाम से जानी गयी।[106] इस नरसंहार की जाँच के लिए न्यायाधीश टॉमस पी. जोजेफ आयोग का गठन किया गया और वह केरल में जिहादियों द्वारा बनाये मजबूत ढाँचे के बारे में चौंकाने वाले विवरणों के साथ सामने आया। सहायक पुलिस आयुक्त ने आयोग के समक्ष गवाही दी और यह कहा कि नैशनल डेवलपमेंट फ्रण्ट अपने आतंकवादी प्रशिक्षण को चलाने के लिए अज्ञात देशों से बड़ी धनराशि प्राप्त करता रहा था।[107] आयोग ने अपनी रपट में कहा कि इतनी बड़ी मात्रा में हथियारों और सुसंयोजित हमलों के लिए धन के स्रोत की जाँच करने में अपराध शाखा विफल रही थी।

आयोग द्वारा सामने लाया गया एक और परेशान करने वाला पहलू था राजनीतिज्ञों, अधिकारियों और जिहादियों का गठबन्धन। सहायक आयुक्त ने जिस ढंग से मुख्य अभियुक्तों में से एक को बचाने का प्रयास किया, उस पर और गुप्तचर चेतावनियों के बावजूद एक सन्दिग्ध आतंकवादी पर निगरानी रखने में उनकी विफलता पर, उनकी कड़ी आलोचना की गयी। इस पुलिस अधिकारी को 'जन हित' में स्थानान्तरित कर दिया गया था, लेकिन उसके बाद भी उसने नरसंहार क्षेत्र की गतिविधियों में शामिल रहने का प्रयास किया। आयोग ने ध्यान दिलाया कि उसकी नियुक्ति 'सन्देहास्पद परिस्थितियों में डूबी हुई' थी और कि आतंकवादियों के साथ उसके सम्बन्धों के आरोपों की उपेक्षा नहीं की जा सकती। आयोग ने रपट में लिखा कि इस अधिकारी को पुलिस प्रमुख की जानकारी के बिना नियुक्त किया गया और ऐसा 'एक मुस्लिम नेता को कृतार्थ करने' के लिए किया गया था।[108]

इस प्रकार के राजनीतिक संरक्षण ने प्रतिबन्धित स्टूडेंट्स इस्लामिक मूवमेंट ऑफ इण्डिया को केरल में काफी मजबूत बना दिया। सिमी दर्जनों मोर्चा संगठनों की आड़ में काम करता है, जिनमें से कम-से-कम दो संगठन राज्य की राजधानी तथा अन्य रणनीतिगत स्थानों, जैसे प्रमुख बन्दरगाह, में स्थित हैं। केरल सरकार ने आधिकारिक रूप से 2006 में घोषित किया कि सिमी कार्यकर्ताओं ने पाकिस्तान के लश्कर-ए-तोइबा के साथ सम्बन्ध विकसित कर लिये हैं। पुलिस रपटें इंगित करती हैं कि सिमी मज़हबी अध्ययन, ग्रामीण विकास और अनुसंधान के आवरण में काम करता है। इन संगठनों में से कुछ केरल के युवाओं में 'व्यवहार परिवर्तन के लिए कार्यरत परामर्श और मार्गदर्शन केन्द्रों' के आवरण में 'अतिवादी मज़हबी आदर्श' फैला रहे हैं। समाचार ये भी हैं कि सिमी ने एक महिला इकाई भी स्थापित कर ली है। यह कुवैत और पाकिस्तान से उदार निधि प्राप्त करती है।[109]

केरल में आतंकवाद के बढ़ते स्तर के कारण एक अवकाश प्राप्त अधिकारी ने, जिन्होंने जम्मू और कश्मीर में सेवा की थी, कहा कि आतंकवाद के सँभाले न जा सकने वाले अनुपात तक पहुँचने के पहले कश्मीर में इसी प्रकार की स्थिति हावी हो गयी थी।[110]

तमिलनाडु—केरल जिहादी गठजोड़

तमिलनाडु में प्रभावी उग्र परिवर्तनवादी समूहों में से हरेक ने, जो सिमी और उनके सामाजिक मोर्चों से निकल कर गठित हुए हैं, दोनों द्रविड़ पार्टियों में से एक के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध बना लिये हैं।[111] इस तरह केरल और तमिलनाडु अपने रुख को ढीला करने पर मजबूर कर दिये गये हैं और वे जिहाद के प्रति नरम पड़ गये हैं। तमिलनाडु सरकार ने एक वरिष्ठ मुस्लिम सरकारी अधिकारी पर मदनी को गैरकानूनी ढंग से सहायता पहुँचाने का प्रयास करने का आरोप लगाया, और इस अधिकारी को निलम्बित कर दिया गया। लेकिन सत्ता में आयी अगली सरकार ने उनका निलम्बन वापस ले लिया और उन्हें मुख्य मन्त्री के मुख्य सचिव के रूप में पदोन्नत कर दिया गया।[112]

द इण्डियन एक्सप्रेस द्वारा की गयी पड़ताल ने उजागर किया कि जैसे ही डी.एम.के. सरकार सत्ता में आयी, उसने हिंसा में शामिल और अल उम्मा से सम्पर्क वाले बारह मुसलमानों के विरुद्ध मुकदमे वापस ले लेने का आदेश दिया। उस रपट में कहा गया कि वरिष्ठ पुलिस अधिकारियों को सरकार की उग्र परिवर्तनवादियों के लिए 'निर्लज्ज सहानुभूति' से सदमा लगा।[113]

सन 2004 में, तमिलनाडु पुलिस ने विदेशी धन प्राप्त कर रहे एक नये इस्लामी समूह के विरुद्ध कार्रवाई की।[114] तमिलनाडु के पूर्व सिमी अध्यक्ष द्वारा स्थापित यह संगठन, जाति-बहिष्कृत हिन्दुओं को उग्र परिवर्तनवादी इस्लाम में धर्मान्तरित करता

है और उसके बाद उन्हें आतंकवादियों के रूप में तैनात करता है।[115] सन 2006 में पुलिस ने इस संगठन के युवाओं को मानचित्रों और बम बनाने की सामग्री के साथ गिरफ्तार किया था। जिस पुलिस अधिकारी ने गिरफ्तार किया था उसे दण्ड के रूप में स्थानान्तरित कर दिया गया, और राज्य के अधिकारियों द्वारा उन्हें इन गिरफ्तारियों के लिए परेशान किया गया।[116] अल उम्मा के कार्यकर्ताओं को गिरफ्तार करने वाले पुलिस अधिकारियों पर हमले किये गये हैं और उन्हें मुस्लिम क्षेत्र में प्रवेश नहीं करने दिया गया, और इस प्रकार कुछ क्षेत्रों को 'केवल-मुस्लिम क्षेत्रों' में बदल दिया गया है जो सरकार के अधिकार क्षेत्र से बाहर हैं।[117]

उग्र परिवर्तनवादी इस्लाम द्वारा उदारवादी इस्लाम को आतंकित करना

1990 के दशक में, ऑल इण्डिया जिहाद कमिटी तमिलनाडु में कुछ पारम्परिक मुस्लिम इमामों की हत्या में शामिल थी, जिन्होंने वहाबी रूढ़िवाद को अस्वीकार कर दिया था।[118] तमिलनाडु और केरल दोनों सरकारों द्वारा नरम रुख अपनाये जाने से ए.आई.जे.सी. को इस्लामी समुदाय को आतंकित करने और उनमें नरमपन्थी तत्वों को नष्ट करने की शक्ति मिली। महिलाओं को बुर्का पहनने के लिए विवश कर दिया गया, एक ऐसी प्रथा जो दक्षिण भारतीय मुस्लिम समुदाय में नहीं थी। मुस्लिम महिलाएँ अगर गैर-मुस्लिमों के साथ घुलती-मिलतीं तो उन्हें धमकियाँ दी जातीं। इस फतवे के जारी होने के शीघ्र बाद तीन महिलाओं को, जिन्होंने इसे नहीं माना था, दिन-दहाड़े उत्सवी ढंग से मार डाला गया, जो समुदाय के सहमे हुए लोगों को उनके रास्ते पर जबरन ले आया। टी.एम.एम.के. के, जो डी.एम.के. सरकार का समर्थक है, एक अधिकारी ने माँग की कि भारत सरकार सम्पूर्ण भारत में 'अनैतिक' महिलाओं को पत्थर मारकर मार डालने को वैध बनाये।[119] पड़ोसी केरल में बुर्का पहनने वाली पुरानी पीढ़ी की महिलाओं का प्रतिशत युवा पीढ़ी को उसमें शामिल करते हुए 10.3 से एकाएक उछलकर 31.6 हो गया।[120]

भारत के वोट-बैंक आधारित लोकतन्त्र के रणनीतिगत जोड़-तोड़ के माध्यम से उग्र परिवर्तनवादी इस्लामी समूहों ने, दक्षिण भारत के उदारवादी पारम्परिक भारतीय मुसलमानों को, जिनकी एक जीवन्त उदारवादी विरासत रही है, हाशिये पर सरका दिया है। डी.एम.के. सरकार ने टी.एम.एम.के. के एक नेता को तमिलनाडु वक्फ बोर्ड का अध्यक्ष बनाया, जो सभी इस्लामी मज़हबी सम्पत्ति का प्रबन्धन करने वाली एक शक्तिशाली अर्ध-सरकारी संस्था है। वे टी.एम.एम.के. नेता पर दरगाहों को, जो सूफी-सन्तों से जुड़े सामंजस्यपूर्ण हिन्दू-मुस्लिम पूजा स्थल हैं, ध्वस्त करने के आरोप लगाये गये हैं, क्योंकि सूफीवाद वहाबीवाद का विरोधी है।[121]

मदनी की रिहाई और केरल को जिहाद की आउटसोर्सिंग

इस्लामी रूढ़िवादियों द्वारा तमिलनाडु सरकार के प्रभावित होने के साथ ही, उनके विरुद्ध चलाये जा रहे अनेक मुकदमे वापस ले लिए गये, उन्हें छोटे अपराधों में बदल दिया गया, या टाल दिया गया। कोई आश्चर्य नहीं हुआ जब मदनी को 2007 में दोषमुक्त कर दिया गया। उसके बाद उन्हें कोयम्बटूर से केरल तक एक लम्बे विजय जुलूस में ले जाया गया। उनके सम्मान में आयोजित एक समारोह में केरल के एक मन्त्री भी शामिल हुए। इस बीच, केरल में जिहाद निर्बाध रूप से जारी है। उदाहरण के लिए, 2007 में दुबई से आये एक जहाजी मालवाहक डिब्बे में संयोग से नये असलहे पाये गये जिन्हें केरल के एक इस्लामी कट्टरपन्थी समूह को भेजा जा रहा था। पुलिस पूछताछ में एक अड्डे का पता चला जहाँ से और हथियार बरामद किये गये।[122]

इस प्रकार मदनी की रिहाई ने जिहादियों की गतिविधियों में नया खून भर दिया। जो भी हो, संयुक्त राज्य अमरीका के विदेश विभाग द्वारा प्रकाशित 2007 की 'मानवाधिकार गतिविधियों पर देशगत सूचनाएँ' (Country Reports on Human Rights Practices) में उनकी रिहाई को मानवाधिकारियों की जीत के रूप में पेश किया गया।[123]

जब एक बार केरल की मार्क्सवादी सरकार ने इस्लामी कट्टरपन्थियों के पक्ष में अपना रुख बदल दिया, तब प्रदेश पुलिस एक सीमा से आगे जाकर जिहादी गतिविधियों का पीछा नहीं कर सकती थी। पुलिस रिकार्ड ने उजागर किया कि उन्हें दो सिमी प्रशिक्षण शिविरों की जानकारी थी जो 2006 और 2007 में लगाये गये थे। इन शिविरों में प्रत्येक के आयोजन के बाद पुलिस ने मुकदमे दर्ज किये। पहले शिविर के बाद पुलिस ने सिमी आन्दोलनकारियों को गिरफ्तार किया था, जिनमें से पाँच के नाम आपराधिक अभियोगों में दर्ज किये गये थे, लेकिन बाद में अपराध की जाँच को ही बन्द करके आन्दोलनकारियों को रिहा कर दिया गया। रिहा हुए लोगों में से दो ने तो दूसरे सिमी प्रशिक्षण शिविर में भी भाग लिया और बाद में उन्हें उत्तरी राज्य राजस्थान में जयपुर के श्रृंखलाबद्ध बम विस्फोट काण्ड में उनकी भूमिका के लिए गिरफ्तार किया गया। केरल के गृह मन्त्री ने स्वीकार किया कि सरकार पर सिमी के लोगों को छोड़ने का 'दबाव' था, और संवाददाताओं के सामने उन्होंने इसके लिए तर्क दिये :

> केरल में आतंकवादी सक्रिय हैं। लेकिन उनकी प्रमुख गतिविधियाँ राज्य के बाहर चल रही हैं। जब हमने उनमें से कुछ के विरुद्ध पुलिस कार्रवाई की तो मानवाधिकार आन्दोलनकारी यह कहते हुए शोर मचाने लगे कि अल्पसंख्यकों को निशाना बनाया जा रहा था।[124]

यह दिखाता है कि राजनीतिक परिवेश उन लोगों पर भारी बोझ और जोखिम लाद देता है जो सुरक्षा के मुद्दों से निपटने के प्रयास करते हैं, और जब किसी एक राज्य के आतंकवादी किसी दूसरे राज्य में जाकर अपनी गतिविधियाँ चलाते हैं तो उन्हें नजरअन्दाज कर देना आसान होता है।

किसी अन्य राज्य में ऐसे दुष्परिणामों का एक और उदाहरण 2008 का है, जब गुजरात राज्य में एक बम विस्फोट हुआ था, और गुजरात पुलिस द्वारा उजागर किया गया था कि उन विस्फोटों के पीछे जिन सिमी कार्यकर्ताओं का हाथ था, वे भी केरल के उसी शिविर में प्रशिक्षित हुए थे।

सन 2008 में, भारतीय सेना के जवानों ने पाकिस्तान से आकर कश्मीर में घुसने के प्रयास कर रहे कुछ जिहादियों को गोलियों से मार गिराया था, और पाया कि उनमें से कुछ युवक केरल के थे। आगे की जाँच ने उजागर किया कि वे युवाओं के उस दल के भाग थे जिन्हें सिमी द्वारा केरल में चलाये जाने वाले प्रशिक्षण शिविर से चुना गया था।[125] कश्मीर में केरल के और युवकों के सामने आने पर केरल पुलिस को दो भर्ती एजेंटों के यहाँ छापामारी करने पर विवश होना पड़ा, जिन्होंने साठ से सत्तर युवाओं को कश्मीर और पाकिस्तान के प्रशिक्षण शिविरों में भेजा था। नये-नये मुसलमान बने लोगों को जिहादी के रूप में तैनात करने की प्रवृत्ति स्पष्ट हो गयी।[126] केरल अब ऐसे जिहादियों का निर्यात कर रहा है जो अच्छे पढ़े-लिखे, कम्प्यूटर प्रेमी, और वैश्विक संगठनों से जुड़े हुए हैं।

कर्नाटक

कर्नाटक में आतंक का उदय

कर्नाटक में भी एक जिहादी आतंक का ढाँचा बनाया गया है। आतंक से दुष्प्रभावित होने की बेंगलुरू की सम्भावना 2005 में उस समय दिखी जब आतंकवादियों ने प्रख्यात इण्डियन इंस्टीटयूट ऑफ साइंस पर हमला किया और एक वैज्ञानिक को मार डाला।[127] इसकी जाँच ने उद्घाटित किया कि इसकी योजना मौलाना अब्दुल बारी ने बनायी थी, जो एक सऊदी मुल्ला और तमिलनाडु के लश्कर से जुड़े विभिन्न समूहों के वित्त पोषक हैं। जाँचकर्ताओं ने कम-से-कम तमिलनाडु के चार लोगों को उनकी सम्भावित भूमिका के लिए यह उजागर करते हुए गिरफ्तार किया कि तमिलनाडु में जिहादी भर्ती एक दशक पहले के स्तर पर आ गयी है।[128]

सन 2006 में, कर्नाटक पुलिस ने अल बदर के दो पाकिस्तानी नागरिकों को गिरफ्तार किया, जो कश्मीर में सक्रिय सबसे पुराने पाकिस्तानी जिहादी समूहों में से एक है।[129] गिरफ्तारी से पता चला कि तमिलनाडु, कर्नाटक, और कश्मीर के आतंकवादी समूहों के बीच कुमुक सम्बन्धी गँठजोड़ है, यानी वे एक-दूसरे को सामग्री आदि से सहायता देते हैं। शीघ्र ही, एक और संगठन, 'कर्नाटक फॉर डिग्निटी' (Karnataka for Dignity) को, इस जिहादी नेटवर्क के लिए एक सौम्य सार्वजनिक मोर्चे के रूप में शुरू किया गया। सन 2007 में सद्दाम हुसैन को फाँसी दिये जाने के विरुद्ध निकाली गयी एक रैली हिंसक हो उठी और मुस्लिम युवाओं ने हिन्दू घरों पर हमले किये और एक हिन्दू मन्दिर में तोड़-फोड़ की।[130] एक महीने बाद, तमिलनाडु,

कर्नाटक और केरल के तीन उग्र परिवर्तनवादी आन्दोलनों ने पॉपुलर फ्रण्ट ऑफ इण्डिया नाम से एक अखिल-इस्लामी आन्दोलन शुरू किया, जिसने अपना पहला सम्मेलन बेंगलुरू में आयोजित किया। यह नाम जाने-माने पॉपुलर फ्रण्ट ऑफ पैलेस्टाइन पर आधारित था। द इण्डियन एक्सप्रेस ने समाचार दिया :

> पुलिस को जो बात चिन्तित कर रही है, वह यह कि इस नये मोर्चे के अधिकांश नेता प्रतिबन्धित सिमी के हैं। ... गृह विभाग के सूत्रों ने बताया कि पी.एफ.आई. मुख्य रूप से तटीय कर्नाटक क्षेत्र और बेंगलुरू शहर में सक्रिय रहा था। पुलिस को सन्देह है कि मंगलूर और उडुपी जिलों में हुई हाल की हिंसा की घटनाओं में इस संगठन की भूमिका है।[131]

कर्नाटक के जिहादियों के अन्तर्राष्ट्रीय सम्पर्कों की जानकारी आगे तब और पक्के तौर पर हासिल हुई जब बेंगलुरू के एक इस्लामी अभियन्ता ने 2007 में ग्लासगो हवाई अड्डे पर हमला किया। इस घटना ने बेंगलुरू के रूढ़िवादी संगठन से उसके सम्बन्ध को उजागर किया जो आतंकवादियों के रूप में भर्ती किये गये लोग लश्कर-ए-तोइबा को भेजता है।[132] सन 2008 में बेंगलुरू में हुए बम विस्फोटों के बाद, आतंकवाद विरोधी गुप्तचरों की कार्रवाई में कई व्यक्तियों को गिरफ्तार किया गया जिनके सम्बन्ध केरल स्थित लश्कर-ए-तोइबा की शाखा से थे, जो युवाओं को कश्मीर और पाकिस्तान स्थित लश्कर-ए-तोइबा के प्रशिक्षण शिविरों में भेज रहा था।[133]

तमिलनाडु में हाल की स्थिति

तमिलनाडु जिहादी अड्डों के लिए एक खामोश पनाहगाह बन गया है जहाँ कानून लागू करने वाले स्थानीय अधिकारियों द्वारा अपर्याप्त कार्रवाई की जाती है। वर्ष 2006 में मैसूर में गिरफ्तार किये गये दो पाकिस्तानी आतंकवादियों में से एक ने चेन्नई से अपना वाहन चलाने का लाइसेन्स प्राप्त किया था।[134] सन 2007 में दिल्ली पुलिस ने दो लश्कर आतंकवादियों द्वारा बम विस्फोट करने के एक प्रयास को विफल कर दिया था, जो चेन्नई भागने की योजना बना रहे थे।[135] जाँच ने उजागर किया कि दोनों पाकिस्तान में प्रशिक्षित हुए थे और चेन्नई में रहे थे।[136] यह भी पता चला कि चेन्नई स्थित लश्कर के संचालकों ने श्रीलंकाई इस्लाम-परस्तों के साथ मिलने की योजना बनायी थी।[137]

कोयम्बटूर बम विस्फोट काण्ड में न्यायालय के फैसले में 83 जिहादियों को अलग-अलग अवधि तक की कैद की सजा दी गयी थी, लेकिन उन्हें छोड़ दिया गया, क्योंकि सुनवाई के दौरान वे उतने दिनों तक जेल में रह चुके थे। इसलिए वे दो संगठनों में फिर से तैनात होने के लिए वापस चले गये, जिनमें से एक संगठन सऊदी धन से चलता है और जिसने जेल में बन्द जिहादियों और उनके सहयोगियों के बीच सम्पर्क-सूत्र का काम किया था।[138] तमिलनाडु में बमों से हमले करने की घटनाओं में

शामिल होने के बाद बारह सर्वाधिक वांछित आतंकवादी छुट्टे घूम रहे हैं, जिनमें अफगानिस्तान और पाकिस्तान से प्रशिक्षित तीन आतंकवादी भी शामिल हैं।[139]

सन 2008 में तमिलनाडु पुलिस ने भारतीय स्वतन्त्रता दिवस की पूर्व सन्ध्या पर चेन्नई और अन्य जिलों में बम रखने की एक योजना को विफल कर दिया था। एक व्यक्ति को विस्फोटकों के साथ गिरफ्तार किया गया और यह ज्ञात हो गया कि चेन्नई जेल में बन्द जिहाद कमिटी के नेता ने यह षडयन्त्र रचा था, जो वहाँ हत्या और आतंकवाद के आठ मामलों में कैद करके रखे गये थे।[140] उस महत्वाकांक्षी षडयन्त्र में तीन-तरफा हमले की योजना थी : रेलगाड़ियों में बम रखना; सत्रह विभिन्न स्थानों में बम विस्फोट करना, जिनमें सम्पूर्ण राज्य में बिखरे सरकारी कार्यालय, अमरीकी वाणिज्य दूतावास, और हिन्दू पूजास्थल भी थे; और हिन्दू तथा मुस्लिम नेताओं को खत्म करना जो इस्लाम के देसी और उदारवादी रूपों को मानते थे और उन पर अमल करते थे। इसके परिणामस्वरूप कारावास प्रशासन में व्यापक परिवर्तन हुआ।[141]

वर्ष 2008 में, गुप्तचर ब्यूरो ने तमिलनाडु के पुलिस महानिदेशक को भारतीय सेना द्वारा आतंकवादियों की वायरलेस बातचीत को बीच में ही सुन लेने के बारे में सचेत किया था और बताया था कि लश्कर-ए-तोइबा मदुरै के प्रसिद्ध हिन्दू मन्दिर पर हमला करने की योजना बना रहा था।[142] भारत के स्वतन्त्रता दिवस की पूर्व सन्ध्या पर एक विचित्र संयोग था कि एम.एन.पी. ने मुस्लिमवादी जम्मू एण्ड कश्मीर लिबरेशन फ्रण्ट (जे.के.एल.एफ.) के झण्डे के साथ मशहूर मन्दिर के शहर मदुरै में एक जुलूस निकालने की योजना बनायी और तमिलनाडु के विभिन्न स्थानों में जे.के.एल.एफ. के झण्डे को चित्रित किया।

इन सबके बावजूद तमिलनाडु में एक छलावे वाली शान्ति बनी रही। पुलिस उच्चाधिकारियों ने स्वीकार किया कि 'मुस्लिम अतिवाद की गहरी अन्तर्धारा बह रही है'।[143] उन्होंने यह भी स्वीकार किया कि अधिकांश उग्र परिवर्तनवादी इस्लामी संगठनों ने, जिन्हें द्रविड़ राजनीतिक पार्टियों द्वारा राजनीतिक रूप से वैधता प्रदान की गयी है, कभी सिमी नहीं छोड़ा और उन्होंने भारत में इस्लामी शासन स्थापित करने के एकमात्र उद्देश्य से काम करना चालू रखा है।[144]

वोट बैंक राजनीति

2008 में हुए कर्नाटक के श्रृंखलाबद्ध बम विस्फोटों की जाँच करने वाली सरकारी एजेंसियों ने केरल के सूत्रों पर ध्यान केन्द्रित किया, विशेषकर मदनी की पत्नी पर। इस बीच, केरल में चल रही लश्कर-ए-तोइबा की गतिविधियों की स्वतन्त्र रूप से जाँच कर रही केरल पुलिस ने पाया कि हालाँकि मदनी जेल में थे, उनकी पत्नी केरल में लश्कर-ए-तोइबा की गतिविधियों के केन्द्र के रूप में उभर रही थीं, जहाँ केरल पुलिस द्वारा उन्हें गिरफ्तार किया गया।[145] राज्य की दोनों अग्रणी राजनीतिक पार्टियों

को लश्कर-ए-तोइबा और मदनी की पीपुल्स डेमोक्रेटिक पार्टी के इस प्रकार के कार्यकलापों के फैलने से शर्मिंदगी उठानी पड़ी। जहाँ कांग्रेस ने 2001 के चुनावों में पी.डी.पी. से समर्थन माँगा था, वहीं हाल के चुनावों में मार्क्सवादियों ने पी.डी.पी. का समर्थन माँगा। मुस्लिम मतों को रिझाने के लिए दोनों पार्टियों द्वारा जिहादी संगठन का समर्थन किये जाने के साथ, पी.डी.पी. लोकतान्त्रिक माहौल में ही, जिसने उसके विकास में सहायता की थी, सेंध लगाने के लिए कुमुक-तन्त्र विकसित करती रही है।[146]

उच्च पदों पर आसीन मार्क्सवादी राजनीतिज्ञों द्वारा सार्वजनिक रूप से पी.डी.पी. के साथ अपने सम्बन्धों के लिए खेद व्यक्त किये जाने के बावजूद उग्र परिवर्तनवादी इस्लामी संगठन ने मार्क्सवादी कार्यकर्ताओं के साथ मिलकर काम करना चालू रखा है। यह उस समय सामने आया जब मार्क्सवादी कार्यकर्ताओं ने केरल में नैतिक पुलिस की तरह काम करने के लिए उग्र परिवर्तनवादी मुस्लिमवादियों के साथ हाथ मिला लिया। एक अग्रणी साहित्यकार पर, जिन्होंने इसकी भर्त्सना तालिबानीकरण के रूप में की थी, मार्क्सवादी-पी.डी.पी. कार्यकर्ताओं द्वारा शारीरिक हमला किया गया।[147]

राज्य में ऐसे घटनाक्रम के विकसित होने और राजनीतिक तन्त्र के लगभग पूरी तरह समझौते का शिकार हो जाने के कारण, 2009 के अन्त में, नैशनल इन्वेस्टिगेटिंग एजेन्सी (एन.आई.ए.) ने केरल के आतंकवाद से सम्बन्धित मामले अपने हाथ में ले लिए। इसने राज्य के अधिकारियों पर लगभग कोई भरोसा न करने की बात कही, विशेषकर उस स्थिति के कारण जिसमें आतंकवादियों के साथ स्थानीय राजनीतिज्ञों की मिलीभगत स्पष्ट थी।[148] राज्य के मार्क्सवादी गृह मन्त्री ने माँग की है कि आतंकवादी गतिविधियों में जाँच करने के एन.आई.ए. के अधिकार-क्षेत्र में कटौती की जाये।[149]

मुख्यधारा की भारतीय राजनीतिक पार्टियों द्वारा आमूल परिवर्तनवाद को पोषित करने के साथ ही कुछ अल्पसंख्यक राजनीतिज्ञ और सामुदायिक नेताओं ने स्वयं को और भी अधिक उग्र परिवर्तनवादी के रूप में प्रस्तुत करना प्रारम्भ किया है। उदाहरण के लिए, नवम्बर 2009 में जमीयत-ए-उलेमा हिन्द ने देवबन्द में हुए अपने राष्ट्रीय सम्मेलन में एक प्रस्ताव पारित किया कि मुसलमानों को देशभक्ति का राष्ट्रगीत 'वन्दे मातरम्' नहीं गाना चाहिए, क्योंकि जमीयत ने कुछ पंक्तियों को इस्लाम के सिद्धान्तों के विरुद्ध पाया है।[150] मुख्यधारा के राजनीतिज्ञों ने इसमें बिना विरोध के हथियार डाल दिये, इस तथ्य के बावजूद कि ऐसे मदरसे हैं जहाँ छात्र भारतीय देशभक्ति के इस गीत को कट्टरपन्थियों से मिलने वाले फतवों से भयमुक्त रहकर दशकों से गाते रहे हैं।[151]

दिसम्बर 2009 में, इण्डो-जापान चेम्बर ऑफ कॉमर्स द्वारा आयोजित एक अन्तर्राष्ट्रीय गोष्ठी में रेलवे के केन्द्रीय राज्य मन्त्री ई. अहमद (मुस्लिम लीग के सदस्य) ने यह कहते हुए एक उत्सव दीपक जलाने से इनकार कर दिया, जो किसी शुभ अवसर को मनाने के लिए एक पारम्परिक तमिल प्रथा है, कि वैसा करना गैर-

इस्लामी था।[152] एक ईसाई आर्तोथे, विख्यात रिकार्डिंग स्टार के.जे. येसुदास ने, मन्त्री की हरकत के विरोध में गोष्ठी का बहिष्कार किया।[153] ये हाल के ताजा रुझान हैं। हाल तक, भारत के पूर्व राष्ट्रपति अब्दुल कलाम, जो इस्लाम के अनुयायी हैं, नियमित रूप से उत्सव के समय दीपक जलाते रहे थे।

बढ़े हुए हौसले वाले पॉपुलर फ्रण्ट ऑफ इण्डिया (पी.एफ.आई.) के कार्यकर्ताओं ने तालिबानी फरमानों पर काम किया है। शुरू में उन्होंने मुस्लिम समुदाय को शुद्ध इस्लाम का अनुकरण करने के लिए आतंकित किया। अब उनके तानाशाही आदेश अन्य समुदायों तक भी फैलने लगे हैं। एक घटना में, एक महाविद्यालय के प्राध्यापक को उनकी कार से खींचकर बाहर निकाला गया और उनके हाथ काट डाले गये, क्योंकि कथित तौर पर उनके द्वारा तैयार किये गये प्रश्न-पत्र में पैगम्बर को अपमानित किया गया था। उसके बाद केरल पुलिस ने उजागर किया कि हमलावर पी.एफ.आई. के थे।[154] पी.एफ.आई. के कार्यालयों में पुलिस की छापेमारी से 'वहाबी वाद और हवाला के एक मादक मिश्रण द्वारा सुपोषित अखिल-इस्लामी नेटवर्क का उद्घाटन हुआ। केरल के खाड़ी देशों के साथ गहरे सम्बन्ध भी पी.एफ.आई. के काम आये'।[155] द टाइम्स ऑफ इण्डिया ने समाचार प्रकाशित किया कि पी.एफ.आई. राज्य में निजी तालिबान न्यायालयों का एक नेटवर्क चला रहा था, और उसने मुस्लिम समुदाय को निर्देश दिया था कि वे सरकारी न्यायालयों से दूर रहें।[156] केरल के गृह मन्त्री ने स्वीकार किया कि पुलिस को राज्य में 'दारुल हुदा' नामक मज़हबी न्यायालयों के संचालित होने की सूचना है, यह अलग बात है कि इससे पहले राज्य सरकार द्वारा ऐसे समाचारों का खण्डन किया गया था।[157]

केरल के मुख्य मन्त्री ने पहले उग्र परिवर्तनवादी इस्लामी तत्वों से, जिनमें पी.डी.पी. भी शामिल है और जो पी.एफ.आई. का एक घटक है, मुस्लिम वोट लेने के लिए सहायता माँगी थी, यहाँ तक कि मदनी को रिहा करने के लिए भी तर्क दिये थे, जो उस समय बम-विस्फोटों के मामलों में तमिलनाडु के जेल में बन्द थे। जो भी हो, जब एक बार जुलाई 2010 में कानून और व्यवस्था की स्थिति नियन्त्रण से बाहर हो गयी, तब उसी मुख्य मन्त्री को एक पत्रकार सम्मेलन में यह स्वीकार करने के लिए विवश होना पड़ा :

> वे केरल को आने वाले बीस वर्षों में मुस्लिम बहुसंख्यक राज्य बनाना चाहते हैं। वे लोगों को मुसलमान बनाने के लिए रुपये और अन्य प्रलोभनों का उपयोग कर रहे हैं। यहाँ तक कि वे मुस्लिम जनसंख्या बढ़ाने के लिए अपनी बिरादरी से बाहर की महिलाओं से विवाह कर रहे हैं।[158]

रूढ़िवादी संगठन के सरगना के विरुद्ध किसी भी प्रकार की दण्डात्मक कार्रवाई का विरोध न्यायाधीश (अवकाशप्राप्त) वी.आर. कृष्णा अय्यर जैसे प्रख्यात बुद्धिजीवियों द्वारा किया जाता था,[159] और अय्यर को पी.डी.पी. द्वारा स्थापित 'मानवाधिकार और न्याय के लिए पुरस्कार' दिया गया था।[160]

2010 में नये घटनाक्रम

श्रीलंकाई लिट्टे नेता वेलुपिल्लई प्रभाकरण की मृत्यु के बाद तमिलनाडु के अलगाववाद को बढ़ावा मिला। एक तमिल फिल्म निर्देशक अचानक सुर्खियों में आ गये जब उन्होंने एक नया 'हम तमिल' आन्दोलन शुरू किया, जिसमें प्रतीक चिह्न के तौर पर लिट्टे के प्रतीक चिह्न का उपयोग किया गया था।[161] उन्हें कनाडा में तमिल समूहों द्वारा आमन्त्रित किया गया, जहाँ उन्होंने, जैसा कि समाचार है, कहा कि युद्ध का अन्त अलग ढंग से होता अगर विद्रोही श्रीलंकाई सेना द्वारा बमों से उड़ाये गये प्रत्येक तमिल स्कूल के बदले एक सौ सिंहली स्कूलों को बमों से उड़ा देते।[162] उन्हें कनाडा से प्रत्यर्पित कर दिया गया, और वे तमिलनाडु में सम्मेलनों की श्रृंखला चला रहे हैं जिनमें तमिलों के जातीय और भाषाई अलगाववाद पर बल दिया जाता है। उनकी वेबसाइट माओवादियों और कश्मीरी अलगाववादी मुद्दों को प्रचार देती है, जैसे उदाहरण के लिए, भारतीय स्वतन्त्रता दिवस पर लन्दन में माओवादी प्रदर्शन होगा, और कश्मीर अलगाववादी प्रदर्शन चेन्नई में।[163] देइवनयगम ने तमिल पहचान में और उग्र परिवर्तन लाने और उसके साथ-साथ इसके ईसाईकरण के लिए इस व्यक्ति से हाथ मिला लिया है।

देइवनयगम ने अलगाववादियों से मिलकर हाल में ही 'आत्म-सम्मान करने वाले सभी तमिलों का संघ' (Federation of All Self-respecting Tamils) नामक एक संगठन शुरू किया है। उन्होंने कपालीश्वर मन्दिर में पूजा करने और उसके गर्भ गृह में भी पूजा करने के प्रत्येक व्यक्ति के अधिकार की अगुवाई करने का झूठा दावा किया।[164] उन्होंने तमिलनाडु के मुख्य मन्त्री एम. करुणानिधि के विरुद्ध यह आरोप लगाते हुए एक आन्दोलन भी प्रारम्भ किया कि उन्होंने 2010 में आयोजित क्लासिकल तमिल कॉन्फरेंस में ब्राह्मण विद्वानों को शामिल कर तमिल नस्ल के साथ धोखा किया।[165]

और इसके साथ-साथ, कन्या कुमारी जिले में ईसाई प्रचारकों के लिए एक कार्यशाला आयोजित की गयी जिसका सेंट टॉमस मिथक का उपयोग करते हुए विषय था 'किस प्रकार भारत को एक ईसाई द्रविड़ राष्ट्र घोषित किया जाये'। कार्यशाला में येसुवादियान ने (जिनकी पुस्तक 'भारत एक ईसाई राष्ट्र है' की चर्चा पहले की जा चुकी है) ईसाइयों से राजनीतिक शक्ति प्राप्त करने को कहा, क्योंकि ईसाइयत उन्हें ऐसा करने का आदेश देती है। हिन्दुओं को उनके धर्मों से जुड़े मुद्दों पर भ्रमित करने के लिए अनेक रणनीतियों पर विचार किया गया, और फिर हिन्दू धर्म की बाइबल के आधार पर व्याख्या करते हुए इन विषयों का उत्तर दिया गया। उन्हें एक रणनीति यह सिखायी गयी कि वे हिन्दुओं को जानकारी दें कि ईसा मसीह असली करेंसी (मुद्रा) हैं, जबकि हिन्दू देवता उस करेंसी की नकली फोटोकॉपियाँ हैं, जिनका कोई मूल्य नहीं है।

हिन्दू भावनाओं के लिए ये सड़क-छाप भड़कावे ऐसे थे कि उनसे बड़ी आसानी से हिंसा भड़क सकती थी। ऐसे तनावों के बीच, क्लासिकल तमिल कान्फेरेंस ने हिन्दू विरोधी और द्रविड़ ईसाई स्वरों को प्रस्तुत किया। एक गैर-भारतीय तमिल पहचान पर बल देने के लिए एक सन्तुलित शैक्षिक लहजे का उपयोग किया गया, जिसके लिए भारत सरकार से पूरा समर्थन और एक बड़ी राशि मिली थी। उदाहरण के लिए, तमिलों की दार्शनिक परम्परा पर हुए एक सत्र में ढिंढोरा पीटा गया :

> आत्मा और कर्म की परिकल्पना आर्यों द्वारा द्रविड़ों को दास बनाने के लिए लायी गयी थी। ... द्रविड़ों के कर्म की परिकल्पना को दुष्ट आर्यों द्वारा वर्णाश्रम धर्म को उचित ठहराने के लिए तोड़ा-मरोड़ा गया। इस प्रकार वे भारत की शासक नस्ल हो गये और उन्होंने द्रविड़ों को दास बनाने और अपमानित करने को उचित ठहराया। ... जो कोई भी आर्य-द्रविड़ नस्ल के सिद्धान्त को जानता है, वह समझ जायेगा कि भाग्यवाद और आत्मा की परिकल्पना आदि, आर्यों द्वारा द्रविड़ों को अपने अधीन करने के एक चतुर षड्यन्त्र के रूप में लाई गयी थी। इसलिए, बुद्ध से लेकर ई.वी.आर. तक ने इन दुष्ट परिकल्पनाओं का विरोध किया। तमिल सामाजिक मुक्ति के लिए माओ की तर्ज पर तीन महान ज्ञानी (ई.वी.आर., अन्ना और करुणानिधि) मार्ग प्रशस्त कर रहे हैं।[166]

एक अन्य विद्वान ने टॉमस-ईसाई दावे को ही दोबारा नये ढंग से दुहराया कि संस्कृत और वेद ईसा बाद दूसरी शताब्दी में रचे गये थे।[167]

'तमिल और धर्म' विषय पर आयोजित एक अन्य सत्र की अध्यक्षता इवैंजेलिकल चर्च ऑफ इण्डिया के संस्थापक बिशप एजरा सर्गुनम ने की। इस सत्र ने संस्कृत का दानवीकरण किया, और अध्यक्ष ने घोषित किया कि संस्कृत का सृजन वर्ण-व्यवस्था और सामाजिक विषमता को बढ़ावा देने के लिए किया गया था। उन्होंने देइवनयगम के इस दावे का समर्थन किया कि तमिल आध्यात्मिक और नैतिक साहित्य ईसाइयत से प्रभावित था, और यह कि द्रविड़ आन्दोलन का प्रारम्भ और उसका पोषण मिशनरियों द्वारा किया गया। उन्होंने अपने भाषण का समापन इस आह्वान के साथ किया कि तमिल धर्मान्तरण करके या तो ईसाई बन जायें या मुसलमान, या डी.एम.के. में शामिल होकर 'द्रविड़ धर्म' का आलिंगन कर लें।[168] इस प्रकार, तमिलों की एक छद्म-वैज्ञानिक ईसाईकृत नस्ली पहचान के सृजन में प्रमुख भूमिका निभाने वाले सनकी सिद्धान्त केन्द्रीय सरकार की प्रबल सहायता के साथ प्रचारित किये जा रहे हैं।

तीन सभ्यताओं के केन्द्रीय निशाने पर

जहाँ इस पुस्तक ने मुख्य रूप से द्रविड़ आन्दोलन में पश्चिमी हस्तक्षेप पर ध्यान केन्द्रित किया है, वहीं वैश्विक गतिशीलता पर व्यापक दृष्टि डालना आवश्यक है। एक चित्र उभरकर सामने आता है कि द्रविड़ पहचान को एक वैश्विक ईसाई द्रविड़

आन्दोलन में मिला लेने के कदम यत्र-तत्र अकेली घटनाएँ नहीं, बल्कि एक बड़ी समस्या है जिसका सामना भारत कर रहा है।

आज वैश्विक दबदबा कायम करने के लिए तीन प्रमुख सभ्यताओं के बीच होड़ है : पश्चिम (विशेषकर संयुक्त राज्य अमरीका), चीन और इस्लाम। प्रत्येक ने प्रमुख विश्व प्रतिमान बनने की अपनी नियति को नहीं, तो कम-से-कम अपने दृढ़ संकल्प को स्पष्ट रूप से व्यक्त किया है। प्रत्येक प्रतिमान की होड़ बाकी दोनों से है, एक ऐसा तथ्य जिससे इनकार करना दिन-प्रतिदिन मुश्किल होता जा रहा है। जहाँ सम्पत्ति, सेना और बौद्धिक पूँजी में संयुक्त राज्य अमरीका/पश्चिम अग्रणी है, चीन आने वाले कुछ ही दशकों में उसकी बराबरी में आने और उससे आगे बढ़ जाने के लिए तैयार है। इस्लाम के पास आधुनिक प्रौद्योगिकी, शिक्षा और बाकी दोनों की-सी मुक्त चिन्तन करने वाली जनसंख्या का अभाव है, लेकिन वह बड़ी संख्या में लोगों को एक साथ जोड़ने वाली पहचान के आधार पर, जो राष्ट्रीय और जातीय सीमाओं को भी लांघती है, एकजुट करने की क्षमता में अग्रणी है। आधुनिकता में इसकी कमी उन तत्वों को पोषण प्रदान करती है जो दार-उल-इस्लाम (अखिल-इस्लाम) की आधुनिकता-पूर्व एकीकृत परिकल्पना पर फलते-फूलते हैं।

जहाँ संयुक्त राज्य अमरीका/पश्चिम अखिल-इस्लाम के साथ खुले युद्ध में भिड़ा हुआ है और चीन के साथ प्रचण्ड प्रतिस्पर्धा में लगा है (जो सैन्य तनावों में भी बदल सकता है), वहीं चीन/इस्लाम तनाव भी अन्तर्निहित है, हालाँकि आज यह अस्तित्वहीन प्रतीत होता है। लेकिन जैसे ही चीन अधिक शक्तिशाली बनकर उभरेगा, वैसे ही स्थिति बदल सकती है, और इस्लामी तत्वों के साथ उसका सीधा टकराव अपरिहार्य हो जायेगा। रणनीतिगत गठबन्धनों वाले मधुर सम्बन्ध, जहाँ चीन पूँजी देता है और खनिज तेल खरीदता है, खट्टे हो सकते हैं। सैद्धान्तिक रूप से, चीन का भौतिकवाद और जातीय राष्ट्रवाद लम्बे अर्से में अरबी/ईरानी प्रभुत्व वाले इस्लामी मज़हबी जूनून के साथ मेल नहीं खाता।

जैसे-जैसे विश्व की जनसंख्या बेहतर जीवनशैली की कामना करती जायेगी, जो अल्प संसाधनों के लिए वृहत्तर प्रतिस्पर्धा को जन्म देती है, वैसे-वैसे सभ्यताओं के इस टकराव के तेज होते चले जाने की ही सम्भावना है। एक वाहन के रूप में सामूहिक पहचान के और अधिक महत्वपूर्ण होने की सम्भावना है, जिसमें धर्म अथवा पन्थ और राष्ट्रवाद भी शामिल है, और जिसके माध्यम से सामूहिक हितों के लिए प्रयास किये जाते हैं।

इन असुविधाजनक मुद्दों से बचने के लिए भारतीयों ने कठिन प्रयास किये हैं, यह आशा करते हुए कि उनकी उपेक्षा कर देने से वे अपने आप समाप्त हो जायेंगे। वे आशा करते हैं कि एक ‘वैश्विक गाँव’ की कल्पना प्रतिभातन्त्र का एक ‘सपाट विश्व’ होगी, अर्थात्, पहचानों की उत्पाती अवस्था से मुक्त। लेकिन यह उत्तर-आधुनिक

कल्पनालोक ही एकमात्र ध्यान देने योग्य रुझान नहीं है। इसके साथ-साथ दो प्रतिस्पर्धी रुझान हैं :

1. उपभोक्तावाद, वैश्विक ब्राण्ड और श्रम तथा सामान के मुक्त प्रवाह का उत्तर-आधुनिक विश्व। यह पारस्परिक निर्भरताओं को जोड़ता और बनाता है।
2. वैश्विक पहचान जो व्यक्तिगत पहचान पर हावी होती है और एक रूखे, सख़्त और ओछे विश्व में एक शेयरधारक के रूप में होड़ बदती है जहाँ अत्यन्त महत्वपूर्ण संसाधनों की माँग आपूर्ति को पीछे छोड़ देती है।

अनेक आधुनिक धर्मनिरपेक्ष भारतीय यह मानकर स्वयं को सुरक्षित अनुभव करते हैं कि चीजें परिदृश्य-1 की ओर बढ़ेंगी, और कि परिदृश्य-2 सनसनीखेज है जो उग्र परिवर्तनवादी चिन्तन की उपज है। इस पुस्तक के शोध का निष्कर्ष यह है कि जहाँ परिदृश्य-1 सतह पर व्याप्त रह सकता है, परिदृश्य-2 की ओर उन्मुख रुझानों की उपेक्षा करना मूर्खतापूर्ण होगा, जो इतना स्पष्ट हैं कि उन्हें खारिज नहीं किया जा सकता।

तीनों वैश्विक सभ्यताओं द्वारा सम्भावित हस्तक्षेपों के आलोक में इन परिदृश्यों पर विचार करना महत्वपूर्ण है, जो आगे किया जा रहा है।

चीन

जैसा कि इस पुस्तक में एक पिछले अध्याय में लिखा गया है, चीन की रणनीतिगत रुचि वर्तमान में नेपाल से होकर गंगा नदी में आने वाले जल प्रवाह को अपने नियन्त्रण में लेने में है। इसके अतिरिक्त, भारतीय राज्य अरुणाचल प्रदेश पर इसके दावे का उद्देश्य ब्रह्मपुत्र जलस्रोत के एक बड़े भाग को दक्षिण-पूर्व चीन की ओर मोड़ने की क्षमता प्राप्त करना है। इस उपमहाद्वीप की तीसरी प्रमुख नदी सिंधु पहले से ही विवादित भू-भाग में है, वह भाग जो कश्मीर से होकर बहता है। भारत की जलापूर्ति पर रणनीतिगत प्रभाव की उपेक्षा नहीं की जा सकती।

इसके अतिरिक्त, चीन वैश्विक प्रभुत्व की ओर अपनी यात्रा में एकमात्र सम्भव खेल बिगाड़ने वाले के रूप में भारत से ही भय खाता है। विश्व बैंकर के रूप में अमरीका की प्रमुखता और बड़ी चालाकी तथा अप्रत्याशित तरीके से निवेश करने की उसकी योग्यता के आलोक में इसने पहले ही पश्चिम को, जिसमें संयुक्त राज्य अमरीका भी शामिल है, असुविधा में डाल दिया है। संयुक्त राज्य चीन का मुकाबला करने के लिए इच्छुक नहीं है, और समय के साथ उसकी इस आत्मसमर्पण जैसी स्थिति के बदतर होने की सम्भावना है। दूसरी ओर, भारत एक अन्य विशाल राष्ट्र है जो पश्चिम के लिए चीन का एक विकल्प है, और यह चीन के लिए एक गम्भीर ख़तरा प्रस्तुत करता है। भारतीय मानस की क्षमताओं, इसकी पुरातनता, जो बौद्ध धर्म के

माध्यम से चीन में बहुत अधिक सभ्यता लाया, और इसके बड़े (और युवा) श्रम भण्डार और विशाल बाज़ारों के प्रति चीन में एक श्रद्धायुक्त भय है।

चीन ने भारत के दोनों ओर पहले से ही सामरिक और रणनीतिगत समझौते कर रखे हैं। भारत की मंथर गति वाली विदेश नीति और म्याँमार को अलग-थलग करने की अमरीकी नीति का अनुसरण करने की भारतीय प्रवृत्ति की मेहरबानी से म्याँमार काफी कुछ एक चीनी उपग्रह जैसा हो गया है। म्याँमार की उत्तरी सीमा पर चीन ने बड़े-बड़े शहर बनाये हैं, और बंगाल की खाड़ी में उसकी नौसैनिक उपस्थिति भी है। इसने सड़क राजमार्ग, रेल और खनिज तेल पाइपलाइन के लिए म्याँमार होते हुए एक गलियारा भी लीज पर लिया है जो हिन्द महासागर को म्याँमार होते हुए चीन से जोड़ देगा। यह उसे खनिज तेल के आयात और चीन की बनायी वस्तुओं के निर्यात में लगभग दो हज़ार किलोमीटर की बचत कर देगा, क्योंकि तब हिन्द महासागर से चीन को जोड़ने के लिए मलक्का के जलडमरूमध्य से होकर यात्रा करने की आवश्यकता नहीं रह जायेगी।

एक समानान्तर स्थिति पहले से ही पाकिस्तान में है : चीन ने बलूचिस्तान में एक नौसैनिक अड्डा बनाया है, और उसके पास सड़क, रेल और खनिज तेल राजमार्ग हैं जो पाकिस्तान होते हुए तिब्बत और चीन तक जाते हैं। भारत के प्रति पाकिस्तान के अपने षडयन्त्र और उसकी हताशा की स्थिति के आलोक में चीन-पाकिस्तान सहयोग के और बुरे अभिप्राय हैं। चीन को भारत के विरुद्ध सीधी सैन्य कार्रवाई करने की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि पाकिस्तान चीन की ओर से ऐसा करने के लिए हमेशा तैयार है। चीन पहले से ही पाकिस्तान को वित्तीय पूँजी और प्रौद्योगिकी के साथ-साथ फौजी साज-सामान की आपूर्ति करता है। एक ऐसे परिदृश्य की कल्पना करना दूर की कौड़ी नहीं होगी कि भारत के विरुद्ध चीन की कार्रवाई अनाधिकारिक तौर पर पाकिस्तान स्थित आतंकवादियों को आउटसोर्स कर दी जाये। यह एक प्रकार का 'सौदा' भी हो सकता है जो चीन अपनी सीमा, विशेषकर अपने मुस्लिम बहुल इलाकों, में शान्ति सुरक्षित करने के लिए इस्लामी आतंकवादियों के साथ कर सकता है। विश्व इतिहास में ऐसे सौदे बहुज्ञात हैं, जिनमें शत्रु परस्पर सहयोग करते हैं, कम-से-कम अस्थायी तौर पर, ताकि वे पारस्परिक मतभेदों को किनारे करते हुए एक बड़े साझे शत्रु का पीछा कर सकें। उग्र परिवर्तनवादी इस्लाम के साथ चीन के विद्वेषपूर्ण सम्बन्धों की दिशा बदलने के लिए भारत एक आदर्श लक्ष्य प्रदान करता है।

अखिल-इस्लाम

यह तर्क देना इस पुस्तक के दायरे के बाहर है कि इस्लामी शिक्षा और मत की माँग है कि उसके अनुयायी उसे दुनिया भर में फैला दें और यह कि वह स्वयं को अन्तिम सामाजिक-राजनीतिक प्रणाली के रूप में मानता है जिसका सम्पूर्ण मानवता पर शासन होना ही चाहिए। यह ध्यान दिलाना पर्याप्त है कि इसका विस्तार का एक इतिहास रहा

है, जिस पर मुसलमान आपसी बातचीत में गर्व करते हैं। मस्जिदों में दिये जाने वाले मज़हबी प्रवचनों में अन्ततः इस्लाम की विजय को अवश्यम्भावी बताया जाता है। जहाँ एशिया, आसियान (ASEAN), अफ्रीका, अरब, ईरान और पश्चिम समेत विभिन्न जातियों में जहाँ इस्लाम फैला है, एक विशाल विविधता नजर आती है और इसके साथ-साथ सुन्नियों और शियाओं के बीच आन्तरिक झगड़े भी हैं, वहीं तथ्य यही है कि जब भी बाहरी मामले का प्रश्न होता है तो उस उद्देश्य के लिए उनके बीच भारी एकजुटता हो जाती है। चाहे वह पिछली शताब्दी का ख़िलाफ़त आन्दोलन हो, या फिलिस्तीन, कश्मीर या कोसोवो, विश्व भर के मुस्लिम एक होकर लामबन्द हो जाते हैं। वास्ताव में, कोई भी अनुमान लगा सकता है कि यह बहिर्मुखी एकजुटता विभिन्न आन्तरिक संघर्षों से ध्यान हटाने के काम आती है, क्योंकि शिकार होने का एक साझा मुद्दा और उसके लिए काम करने के एक साझे कार्यक्रम की पहचान इस्लामी भावनाओं को एक दिशा में ले जाने के लिए की जाती है।

हम विश्व भर में चल रहे विभिन्न उदारवादी मुस्लिम प्रयासों से भी पूरी तरह परिचित हैं जो उग्र परिवर्तनवादी इस्लाम का मुकाबला करना चाहते हैं। फिर भी वे जो सुधार लाने की आकांक्षा रखते हैं उसे लाने के बारे में आत्म-विश्वास से वे बहुत दूर हैं। उनमें से अनेक स्वीकार करते हैं कि मध्यकालीन युग में ईसाइयत में सुधार लाने में कुछ सौ वर्षों तक हिंसा का दौर चला और उसके बाद अन्ततः चर्च इस बात के लिए तैयार हुआ कि चर्च और राजसत्ता को एक-दूसरे से अलग रखा जाये, जिसने मुक्तचिन्तन और आधुनिकता को बढ़ावा दिया। वे भयभीत हैं कि उनका स्वर बहुत कम और अशक्त है, जबकि उग्र परिवर्तनवादी मुस्लिमवादियों ने गति पकड़ ली है और उनके धीमे पड़ने की सम्भावना नहीं है।

भारत की सुरक्षा का कोई भी परिदृश्य इस आशा में सामान्यतः इन वास्तविकताओं की उपेक्षा नहीं कर सकता कि उदारवादी पक्ष अन्ततः विजयी होगा। इस्लाम के भविष्य के लिए इस आन्तरिक संघर्ष का अन्तिम परिणाम अनिश्चित है। विश्व को भविष्य में, जहाँ तक दिखाई देता है, वहाँ तक इसी संघर्ष के बीच रहने के लिए अवश्य ही तैयार रहना चाहिए। इच्छा मात्र से इसके समाप्त होने की आशा रखना अनाड़ीपन और मूर्खतापूर्ण होगा।

जहाँ तक भारत में इस्लाम का प्रश्न है, इस बात पर ध्यान देते हुए ही विचार शुरू करना होगा कि भारतीय मुसलमान विश्व के सर्वाधिक उदारवादी मुसलमानों में हैं, जो शताब्दियों से हिन्दुओं के साथ सांस्कृतिक समानता के एक बड़े हिस्से की साझेदारी करते हैं। वे बहुत देशभक्त हैं और राष्ट्रवादी भी। उनमें से अनेक पन्थ-निरपेक्ष, सुशिक्षित और विभिन्न पेशों और उद्योग में सुस्थापित हैं।

फिर भी भारत में उन्तीस हज़ार से अधिक मदरसे हैं, जिनमें से अनेक को विदेशों से धन मिलता है—मुख्य रूप से सऊदी अरब और ईरान से। जैसा कि पहले उल्लेख किया गया है, कुछ मामलों में कश्मीर का आतंकवाद छलक उठा है और अन्यत्र भी

पहुँचा है। अनेक मुस्लिम समुदायों में गरीबी, युवाओं में बेरोजगारी, पन्थ-निरपेक्ष शिक्षा की कमी, और विदेशी इस्लामी प्रभाव की प्रचुरता को देखते हुए कहा जा सकता है कि इस समुदाय का भविष्य विभिन्न प्रतिस्पर्धियों द्वारा हथियाए जाने के लिए तैयार है। पाकिस्तान हमेशा ही इन प्रतिस्पर्धियों में शामिल रहा है। पाकिस्तान के लिए एक सफल एकताबद्ध भारत, जिसमें हिन्दू-मुस्लिम सौहार्द और सम्पन्नता हो, एक ख़तरा प्रस्तुत करता है, क्योंकि तब गाँधी का 'एक राष्ट्र का सिद्धान्त' सच्चा साबित हो जायेगा जिसमें सभी धर्म अथवा पन्थ एक साथ रह रहे हों। यह 'दो राष्ट्रों के सिद्धान्त' को खण्डित कर देगा जिसके आधार पर पाकिस्तान की स्थापना की गयी थी और जिस आधार पर आज वह जीवित है।[169]

संक्षेप में, भारतीय मुस्लिम युवाओं को भड़काने के लिए पाकिस्तान से हस्तक्षेप जारी रहने की सम्भावना है और किसी भी सुरक्षा विश्लेषण में इसे अवश्य ही एक कारक के रूप में सामने रखना होगा। इसकी अपनी परमाणु क्षमता और तालिबानियों के निर्यात करने की इसकी कूवत के अलावा पाकिस्तान का चीन के साथ एक शक्तिशाली गठबन्धन भी है।

अमरीकी बाज की दोहरी दृष्टि

इस सबके आलोक में अनेक भारतीय महसूस करते हैं कि संयुक्त राज्य अमरीका भारत का सर्वोत्तम सहयोगी है। यह सही हो सकता है, फिर भी भारतीयों को यह अवश्य समझना चाहिए कि सभी अमरीकियों का केवल एक ही दृष्टिकोण नहीं है। न ही भारत के प्रति अमरीकी रुख बीते समय में स्थिर और एक-सा रहा है। प्रत्येक जटिल मुद्दे पर अनेक प्रतिस्पर्धी दृष्टिकोणों के साथ अमरीकी राजनीतिक बयार बदलती रहती है।

भारतीय-अमरीकी आदान-प्रदान का विश्लेषण करने के पहले हमें चीन और इस्लामी राष्ट्रों के साथ संयुक्त राज्य अमरीका की समस्याओं की जाँच करनी चाहिए। संयुक्त राज्य अमरीका स्वयं को एक ईसाई प्रकृति और आचार और एक अत्यन्त आधुनिक प्रबुद्ध पन्थ-निरपेक्ष स्वभाव, दोनों का अनुयायी मानता है। यह इसे एक विभाजित व्यक्तित्व प्रदान करता है, और अब इन दोनों पहचानों के लिए अन्य सभ्यताओं से ख़तरा उत्पन्न हो गया है। इसकी व्याख्या नीचे की गयी है।

चीन के साथ इसके टकराव को आधुनिकताओं का टकराव कहा जा सकता है। यह प्रतिस्पर्धा धर्म, अब्राहमवादी पन्थ या सिद्धान्त पर आधारित नहीं है, बल्कि आधुनिक भौतिकवादी चिन्ताओं पर आधारित है, जैसे औद्योगिक अर्थ-व्यवस्था, सैन्य शक्ति, राजनीतिक शक्ति, और उपभोक्तावाद। चीनी खुले-आम दावा करते हैं कि कई तरीकों से वे अमरीकियों से भी अधिक अमरीकी बनने जा रहे हैं। अमरीकी कारखाना-उत्पादन क्षेत्र में गिरावट और अनेक अमरीकी काम-धन्धों की आटसोर्सिंग

का चलन अमरीका के आधुनिक औद्योगिक जटिल समाज के मर्मस्थल को खा रहा है। संयुक्त राज्य अमरीका दिनो-दिन एक कर्जदार देश बनता जा रहा है, और चीन ही इस कर्ज के एक बड़े भाग को उपलब्ध कराने वाला देश है। संयुक्त राज्य अमरीका ने चीन को उद्योग, प्रौद्योगिकी और मशीनें दीं तथा वहाँ से बने हुए सामान मँगाये। इस प्रकार संयुक्त राज्य अमरीका ने वास्तव में अपने लगभग पूरे औद्योगिक परिसर को प्रशान्त महासागर के पार चीन, जापान, और कोरिया तक प्रत्यारोपित कर दिया, जिसने उन्हें संयुक्त राज्य अमरीका की अर्थव्यवस्था के साथ प्रभावशाली ढंग से होड़ करने के काबिल बना दिया। यह संयुक्त राज्य अमरीका के लिए पहला सदमा है।

दूसरा सदमा रूढ़िवाद से टकराव है। चीन से ख़तरे के विपरीत इस्लामी रूढ़िवाद आधुनिकता की ओर नहीं देख रहा है। इस्लामी देश संयुक्त राज्य के साथ इसलिए नहीं टकरा रहे हैं, क्योंकि उनके पास बेहतर मशीनें, बेहतर फैक्ट्रियाँ, या अधिक उपभोक्ता निर्यात हैं। वे इन सब के लिए चिन्तित नहीं हैं। वे कट्टरपन्थी ईसाइयत से होड़ बद रहे हैं और ऐतिहासिक पैगम्बरों पर उनके परस्पर प्रतिस्पर्धी दावे हैं, जिसमें प्रत्येक पक्ष दावा कर रहा है कि उन्हें ही ईश्वर का अन्तिम शब्द दिया गया है। ईसाइयत और इस्लाम, दोनों दावा कर रहे हैं कि उन्होंने ईश्वर की फ्रेंचाइज, ईश्वर का एकाधिकार प्राप्त किया है और आरोप लगाते हैं कि सभी अन्य धर्म और पन्थ फर्जी हैं। एकाधिकार का दावा वैश्विक और विशिष्ट है। दिलचस्प है कि इस्लाम एक सन्तान और अनुवर्ती के रूप में ईसाइयत की ही कड़ी है, जो अब अपने ही अब्राहमवादी पूर्वज के मुकाबले आ खड़ा हुआ है।

एक ओर चीनी ख़तरे और दूसरी और इस्लामी ख़तरे के साथ अमरीका ने भारत के प्रति पागलपन (स्किजोफ्रेनिया) का व्यवहार विकसित कर लिया है, जिसे समझे जाने की आवश्यकता है। मूलत:, संयुक्त राज्य अमरीका भारत पर अपना दाँव लगा रहा है। यही कारण है कि भारत के प्रति अमरीकी रुख का चरित्र-चित्रण किसी एक या दूसरे रूप में अन्तिम ठोस रूप में करना असम्भव-सा हो गया है।

चित्र 19.6 संयुक्त राज्य के धर्मसंकट को प्रस्तुत करता है। बायाँ भाग भारत को निर्मित करने की लागत और उसके लाभ को दिखाता है, जबकि दायाँ भाग भारत को विखण्डित करने के लाभ और हानि को दर्शाता है। एक जटिल और लगातार परिवर्तनशील राजनीतिक नृत्य में अलग-अलग समयों पर संयुक्त राज्य अमरीका के अन्दर विभिन्न तत्वों द्वारा दोनों दृष्टिकोणों को अपनाया गया।

Fig 19.6 भारत के बारे में संयुक्त राज्य अमरीका की द्विविधा
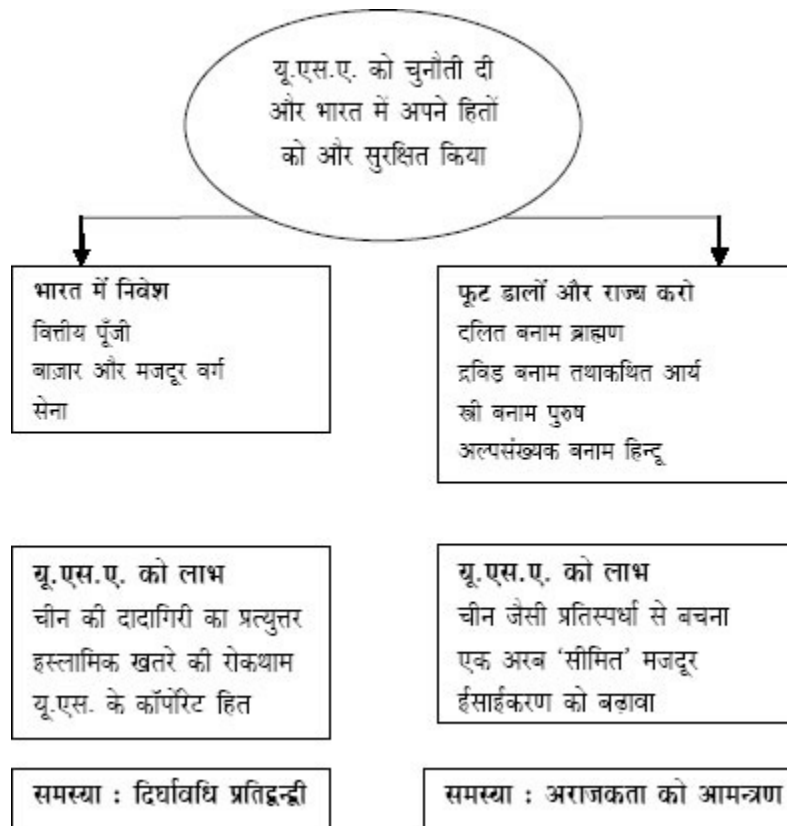
चित्र के बाएँ भाग में प्रस्तुत अमरीकी स्वर कहते हैं : हम भारत के बाज़ार, उद्योग और श्रम बल में निवेश करें; हमारा सैन्य गठबन्धन हो; हमारा क्षेत्रीय राजनीतिक गठबन्धन हो। यह चीन की दादागिरी का मुकाबला करेगा; यह इस्लामी ख़तरे को नियन्त्रित करेगा; यह संयुक्त राज्य अमरीका के निगमों के हितों के लिए अच्छा है; और तीसरे विश्व में भारत एक स्थिरता पैदा करने वाली शक्ति होगा। संयुक्त राज्य अमरीका की सरकार भारत के पक्ष में झुकी है और इसने अमरीकी, यूरोपीय, जापानी और चीनी बहुराष्ट्रीय कम्पनियों को भी भारत में प्रमुख निवेशक बनने के लिए प्रोत्साहित किया है। अगर भारत विखण्डित हो जाता है तो इसके बाज़ारों, आपूर्ति कड़ियों, और पूँजी प्रवाहों में बाधा के कारण ये दाँव ध्वस्त हो जायेंगे। अमरीकी व्यावसायिक स्कूलों में चिन्तन का एक नया, सकारात्मक भारतीय विवरण उभर रहा है, जिसने भारत के बारे में पुरानी धारणा को सन्तुलित करना प्रारम्भ कर दिया है। इस पुरानी धारणा के तहत भारत को रोचक विदेशी संस्कृतियों से भरे हुए महज एक सीमावर्ती क्षेत्र के रूप में देखा जा रहा था और ख़राब हालत में मानवीय उत्पीड़न के दुःस्वप्न के रूप में। अमरीकी व्यावसायिक जगत विश्वास करता है कि भारत का समय आ गया है।

लेकिन चित्र के बायीं ओर सबसे नीचे एक चेतावनी भी दर्शायी गयी है। अगर भारत अत्यधिक सफल हो जाता है, तब लम्बे दौर में संयुक्त राज्य अमरीका ने, चीन जैसा अपना एक और प्रतिस्पर्धी तैयार कर लिया होगा। उसके लिए एक ही चीन

पयाप्त रूप से हानिकारक है; क्या होगा जब एक अरब की जनसंख्या वाला एक और देश भारत भी, संयुक्त राज्य अमरीका से स्पर्धा में सफल हो जायेगा? अमरीका के लिए एक शक्तिशाली भारत लाभप्रद है, लेकिन बहुत शक्तिशाली नहीं।

चित्र के दायें ओर आने पर हम देखते हैं कि 'भारत का विखण्डन' स्वर बायीं ओर के 'भारत के निर्माण' के स्वर से बहुत पुराना है। यह एक विचार है जो शीत युद्ध काल से ही अमरीकी विदेश नीति का अंग रहा है। सन 1950 और 1960 के दशक में भारत के सन्दर्भ में संयुक्त राज्य अमरीका का व्यवहार बाँटों और दबाये रखो का रहा है। हमने देखा कि किस प्रकार उसने द्रविड़ आन्दोलन का समर्थन किया : जब नेहरू सोवियत के पक्ष में चले गये, संयुक्त राज्य अमरीका ने नेहरू के भारत को एकजुट करने के कार्यक्रम का मुकाबला करने के लिए द्रविड़ आन्दोलन का उपयोग किया। संयुक्त राज्य अमरीका के लिए भारत का विखण्डन एक बहुत पुरानी रणनीति रही है। यह किसी भी सम्भावित जातीय या राजनीतिक विभाजन की सम्भावना का, जो वह खोज या आविष्कृत कर सकती है, दोहन करना चाहती है। जैसा कि चित्र दिखाता है, इन विभाजनों में दलित बनाम ब्राह्मण; द्रविड़ बनाम तथाकथित आर्य; महिलाएँ बनाम पुरुष; और अल्पसंख्यक बनाम हिन्दू शामिल हैं। ये छवियाँ भारत को उन सीमाक्षेत्रों वाली छवियों में सटीक बैठाती हैं जो अधिकांश अमेरिकियों के अवचेतन में हैं। ईसाई प्रचारक ऐसी छवियाँ सामने लाने के लिए तथ्यों को बढ़ा-चढ़ाकर पेश करते हैं।

विखण्डन की इस नीति के अनेक लाभ हैं : संयुक्त राज्य अमरीका एक अन्य शक्तिशाली प्रतिस्पर्धी तैयार करने से बच निकलता है; अमरीकी कम्पनियाँ तब भी आउटसोर्स कर सकती हैं और भारतीय श्रमिकों का उपयोग कर सकती हैं; एक प्रभावी राष्ट्र की अनुपस्थिति में श्रमिक कभी उनके हाथ से बाहर नहीं जायेंगे जो उनकी ओर से संयुक्त राज्य अमरीका के लिए खड़े रह सकते हैं; और तब भी संयुक्त राज्य अमरीका भारतीय कामगारों को अपनी शर्त पर उपयोग में ला सकता है और उन्हें कमजोर बनाये रख सकता है। विभाजन की नीति ईसाई धर्मान्तरण को भी गति प्रदान करेगी क्योंकि जब राष्ट्र निर्बल होता है, तब ईसाई प्रचारक अपनी पैठ बना सकते हैं और उनके आक्रामक धर्मान्तरण का प्रतिरोध कम हो जायेगा। उससे जो संघर्ष उत्पन्न होंगे, वे पश्चिमी हथियारों के निर्यातकों के लिए बड़ा बाज़ार भी पैदा करेंगे।

जो भी हो, अगर भारत का यह विखण्डन वास्तव में गृह युद्ध को जन्म देता है, तो उसका जो परिणाम होगा वह अराजकता और अव्यवस्था के रूप में संयुक्त राज्य अमरीका का सर्वाधिक बुरा दुःस्वप्न होगा, ऐसे पैमाने पर जो ईराक या अफगानिस्तान-पाकिस्तान की तुलना में अधिक चुनौतीपूर्ण होगा।

भारत पर अमरीकी दोध्रुवीय रुख एक सम्पूर्ण राष्ट्र के रूप में समर्थन, और इसके विभिन्न घटकों के लिए समर्थन के बीच झूलता है। यह भारतीय मामलों में हस्तक्षेप और इस पर अपना नियन्त्रण रखने के लिए भारतीय आन्तरिक संघर्षों का

दोहन करना चाहता है। यह भारत को 'मानवाधिकार' सम्बन्धी, प्रलोभन और दण्ड की नीति के माध्यम से नियन्त्रित रखता है जो भारत के उस प्रकार की आर्थिक सफलता की उड़ान का मार्ग असम्भव बना देती है जैसा कि चीन के पास है, क्योंकि चीन ऐसे प्रतिबन्धों की बेड़ियों से नहीं बँधा है। हालाँकि एक लोकतान्त्रिक परिवेश में भारतीय अर्थव्यवस्था की तुलना केन्द्रीयकृत चीनी अर्थव्यवस्था से नहीं की जा सकती जहाँ घोर और अत्यधिक मानवाधिकार उल्लंघन होते हैं। ध्यान रहे कि वह चीन ही है, भारत नहीं, जिसे संयुक्त राज्य अमरीका द्वारा 'सर्वाधिक प्राथमिकता वाले राष्ट्र' का दर्जा प्राप्त है।

तब भी, अमरीकी नीतिनिर्माताओं को भारत को टुकड़ों में विखण्डित करने के परिणामस्वरूप निश्चित तौर पर होने वाले अस्थिरताजन प्रभाव को जानना ही चाहिए। हालाँकि ऐसा करना स्पष्ट रूप से अमरीकी हित में नहीं है, विडम्बना है कि वे भारतीय विखण्डन को प्रोत्साहित करने में सक्रिय रहे हैं, जैसा कि हमने पहले के अध्यायों में देखा। भारतीय रणनीतिकारों को स्वीकार करना ही चाहिए कि प्रत्येक राजनीतिक बिसात में अमरीकी दोनों पक्षों से खेलना जारी रखेंगे।

परिशिष्ट

परिशिष्ट क
प्रजातिवाद का संक्षिप्त इतिहास
नासिक तालिका से वाई-गुणसूत्र (Y-Chromosome) तक

डॉ. अम्बेडकर (1891-1956) इतिहास के एक विद्वान होने के साथ-साथ भारत के संविधान के वास्तुकार भी थे। उन्होंने यह प्रमाणित करने के लिए यूरोपीय नासिक तालिका के मानदण्ड का उपयोग किया कि यह सम्पूर्ण सिद्धान्त उनके शब्दों में 'एक झूठे आधार' पर खड़ा है।[1] चाहे जो हो, रिस्ली का भूत अब भी घात लगाये बैठा है, और शैक्षणिक संस्थानों में उनके उत्तराधिकारियों ने अनुवांशिकी और इतिहास की पूर्वाग्रहपूर्ण मान्यताओं का उपयोग करते हुए उसी प्रकार के षडयन्त्र के प्रयास किये हैं। अनुवांशिकी का सबसे नया शोध, हालाँकि, आर्य आक्रमण के सिद्धान्त को असत्य प्रमाणित करता है जो अलग नस्लें होने के द्रविड़ और दलित दोनों दावों, को रेखांकित करता है।

जाति गुणसूत्र

सन 2001 में, यूनिवर्सिटी ऑफ उटा के इंस्टीटयूट ऑफ ह्यूमन जेनेटिक्स के माइकेल बामशाद ने विशाखापत्तनम जिले से वर्णगत समूहों के अनुवांशिक चिह्नकों का अध्ययन किया और उनकी तुलना भारत के विभिन्न वर्णों और क्षेत्रीय समूहों के साथ-साथ अफ्रीकियों, एशियाइयों, और यूरोपीयों से की। बामशाद ने घोषणा की कि 'अगड़ी, मध्य और निचली जातियों में अनुवांशिक दूरियाँ बहुत सीमा तक उनके सामाजिक अनुक्रम से जुड़ी हुई है; उच्च वर्ण एशियाइयों की तुलना में यूरोपीयों के अधिक समान हैं; और उच्च वर्ण निचले वर्णों की तुलना में यूरोपीयों के काफी अधिक समान हैं'।[2]

इस बात ने रिस्ली की नासिक तालिका का स्मरण करा दिया, एक 'वैज्ञानिक प्रमाण' के रूप में कि आर्यों ने भारत में वर्ण-व्यवस्था शुरू की। इसने मानवाधिकार आन्दोलनकारियों के छद्मवेश में घूम रहे नस्ल वैज्ञानिकों में भारी उत्साह पैदा किया जो दबे-कुचले लोगों में आमूल-चूल अन्तर प्रमाणित करने को उत्सुक थे। अनिल अनन्तस्वामी ने इस निष्कर्ष को समूचे-का-समूचा ग्रहण किया, और 'खून से लिखी इबारत' (Written in Blood) शीर्षक से 'न्यू साइन्टिस्ट' (New Scientist) नामक प्रतिष्ठित शोध पत्रिका में एक भड़काऊ लेख लिखा, जिसमें उन्होंने बामशाद के निष्कर्षों को दुहराया : 'उच्च वर्ण के भारतीय अनुवांशिक रूप से यूरोपीयों के अधिक समान हैं, जबकि भारत के निचले वर्णों के सदस्य अन्य एशियाइयों के अधिक समान हैं, अनुसंधानकर्ताओं की एक अन्तर्राष्ट्रीय टीम का कहना है'।[3] एक वैज्ञानिक शोध

पत्रिका का लेख होने के बावजूद, यह लेख अपने कोटि निर्धारण में घाल-मेल वाला था और इसने मिशनरी पक्षधर विद्वान, रॉबर्ट हार्डग्रेव, को एक विशेषज्ञ रूप में उद्धृत किया था :

> ऐसे साक्ष्य के आधार पर, अधिकांश इतिहासकार विश्वास करते हैं कि लगभग पाँच हज़ार वर्ष पहले पूर्वी यूरोप और कॉकेशस से लहर की तरह भारतीय उपमहादेश में आये इण्डो-यूरोपीय भाषा-भाषी लोगों ने वर्ण-व्यवस्था की स्थापना की। 'जब आर्य यहाँ आये, वे अपने साथ एक सामाजिक वंशानुक्रम स्तर भी लाये,' हार्डग्रेव कहते हैं। 'हमारे पास कुछ ऐतिहासिक और पुरातात्विक साक्ष्य हैं जो सुझाते हैं कि जैसे ही आर्य आये, उन्होंने मूल निवासियों के साथ आपस में विवाह किया और उनमें से अनेक को अपने वर्गीकरण तन्त्र में खपा भी लिया'।[4]

भारत में, फ्रण्टलाइन ने परिणामों को राजनीतिक साँचे में रखा, और रपट प्रकाशित की :

> हाल में, 'हिन्दुत्व' सिद्धान्त के रूप में कर्णभेदी राष्ट्रवाद के उदय के साथ, जो इस अवधारणा को अस्वीकार करता है कि आर्य बाहर के थे, और उन्हें सिन्धु घाटी सभ्यता की सतत बहती धारा के अंग के रूप में देखता है, इसके एक सुस्पष्ट उत्तर का राजनीतिक प्रभाव हो सकता है। जहाँ प्राचीन इतिहास के भौतिक साक्ष्य इस मुद्दे को सुलझाने में सफल नहीं हुए हैं, वहीं आधुनिक जनसंख्या अनुवांशिकी के पास, जो जनसांख्यिक समुच्चयों के डी.एन.ए. में भिन्नताओं के अध्ययन पर आधारित है, एक अधिक आधिकारिक उत्तर देने के उपकरण हैं।[5]

इस अध्ययन को अचूक मानते हुए, फ्रण्टलाइन ने अतिरंजित निष्कर्ष निकाले :

> अनुवांशिक दूरियों का विश्लेषण प्रदर्शित करता है कि प्रत्येक वर्ण बहुत निकटता से पूर्व-यूरोपीय लोगों से सम्बन्धित है। इससे भी बड़ी बात यह कि पूर्वी यूरोप के लोगों और उच्च वर्णों के बीच अनुवांशिक दूरी मध्य और निचले वर्णों तथा पूर्व-यूरोपीय लोगों के बीच की दूरी की आधी है। लेखक इसकी व्याख्या भारतीय वाई-गुणसूत्र के रूप में करते हैं, विशेषकर उच्च वर्णों के वाई-गुणसूत्र,
>
> जो एशियाई वाई-गुणसूत्रों की तुलना में यूरोपीय गुण-सूत्रों के अधिक समान हैं।[6]

बामशाद के अध्ययन के बाद एक अन्य प्रमुख अध्ययन 2004 में छह वैज्ञानिकों की एक टीम द्वारा किया गया, जिनमें मैक्स प्लैंक इंस्टीट्यूट फॉर इवोल्यूशनरी ऐन्थ्रोपोलॉजी के रिचर्ड कॉर्डो भी शामिल थे। इसे हिन्दुओं के उद्भव के विशेष सन्दर्भ में तैयार किया गया था :

> भारतीय उपमहादेश में बसने वाले लगभग एक अरब लोगों के उद्भव और हिन्दू वर्ण-व्यवस्था के रीति-रिवाजों के स्रोत विवादास्पद हैं : क्या वे मुख्यत: भारतीय स्थानीय जनसंख्या (अर्थात् जनजातीय समूहों) से निकले हैं या हाल में भारत

आये आप्रवासियों से? पुरातात्विक और भाषा वैज्ञानिक साक्ष्य बाद वाली परिकल्पना का समर्थन करते हैं।[7]

अध्ययन ने 'अब तक के भारतीय वर्ण और जनजातीय वाई-गुणसूत्र के सर्वाधिक व्यापक आँकड़ा समुच्चय' को विश्लेषित करने का दावा किया। इसने स्पष्ट निष्कर्ष निकाला :

> हम निष्कर्ष निकालते हैं कि भारतीय वर्ण समूहों के पैतृक वंश मूल रूप से इण्डो-यूरोपीय भाषा-भाषियों से निकले हैं जो मध्य एशिया से 3,500 वर्ष पूर्व आये थे। इसके विपरीत, जनजातीय समूहों के पैतृक वंश मुख्य रूप से मूल भारतीय गुण-सूत्रभण्डार से निकले हैं। हम वर्ण और जनजातीय समूहों के बीच पुरुष गुण-सूत्रों के दो दिशाओं में प्रवाहित होने के साक्ष्य भी देते हैं। तुलनात्मक रूप से, वर्ण और जनजातीय समूह माइटोकॉन्ड्रियल डी.एन.ए. अन्तर के सन्दर्भ में सजातीय हैं, जो भारतीय वर्ण-आधारित समाज के सामाजिक-सांस्कृतिक चरित्रों को प्रतिबिम्बित कर सकते हैं।[8]

इकलौता विरोधी स्वर

इण्डिया टुडे ने भी इस अध्ययन पर रपट प्रकाशित की, लेकिन इसे 'एक विवादास्पद अनुवांशिक अध्ययन' के रूप में प्रस्तुत किया।[9] इस लेख ने वर्ण की नस्ली बुनियाद के बारे में रिस्ली के एक शताब्दी पूर्व के 'वैज्ञानिक प्रमाण' का समानान्तर प्रस्तुत किया। इस नये शोध पर इसके समर्थकों द्वारा दिये गये ढेर सारी प्रशंसाओं को प्रस्तुत करने के बाद पत्रिका ने इसके आलोचकों को भी स्वर दिया। इण्डिया टुडे ने केम्ब्रिज विश्वविद्यालय के एक पुरातत्ववेत्ता दिलीप चक्रवर्ती की टिप्पणी प्रकाशित की कि 'स्वयं नस्ल उतनी आसानी से परिभाषित नहीं है, विशेषकर जब समूचे महाद्वीपों की बात की जाती है। एशियाई, अफ्रीकी और यूरोपीय भौगोलिक शब्दावलियाँ हैं जो समरूप जनसंख्या को इंगित नहीं करतीं'।[10] दिल्ली विश्वविद्यालय के विख्यात अवकाशप्राप्त प्राध्यापक और अग्रणी समाजशास्त्री आन्द्रे बेटेल भी इस अध्ययन से उतनी ही असहजता महसूस कर रहे थे, उनके अनुसार, 'भारतीय जनसंख्या की अनुवांशिक विविधता के बारे में कोई प्रश्न नहीं है, लेकिन इसे नस्लों में विभक्त करना बिल्कुल अलग बात है'।[11] इण्डिया टुडे ने अध्ययन की गम्भीर सीमाओं और त्रुटियों को दिखाते हुए उसके शोध के तरीकों पर भी प्रश्न उठाये।[12] आलेख इस चेतावनी के साथ समाप्त हुआ :

> सौ वर्ष पहले, रिस्ली के नासिका आधारित वर्ण उद्भव के सिद्धान्त को अपने मुकाबले का एक सिद्धान्त बी.एन. दत्त के नासिका आधारित वर्ण-उत्पत्ति के सिद्धान्त के रूप में मिला। स्वामी विवेकानन्द के भाई, बी.एन. दत्त ने तब इस सिद्धान्त को असत्य प्रमाणित कर दिया था कि ऊँचे वर्णों की 'यूरोपीय' नाक हैं

केवल इसलिए कि उनके नाप अधिक पाये गये। समय बदल गया है, और उपकरण भी। अब अनुवांशिक परीक्षण होते हैं और उस विवाद का हल निकालने के लिए, जो सौ वर्षों तक स्थिर रहने के बाद फिर लौट आया है, और अधिक परीक्षण करने पड़ सकते हैं।[13]

रिस्ली के भूत से वाई-गुणसूत्र की मुक्ति

सन 2006 में, 12 वैज्ञानिकों के एक दल द्वारा भारतीय जनसंख्या का एक प्रमुख अनुवांशिक अध्ययन किया गया था, जिनमें नैशनल डी.एन.ए. एनालिसिस सेंटर, सेंट्रल फॉरेन्सिक साइंस लैबोरेटरी, भारत, के संघमित्र साहू और नैशनल इंस्टीटच्यूट ऑफ बायोलॉजिकल्स, नोएडा, भारत, के वी.के. कश्यप भी शामिल थे। इस अध्ययन के जो परिणाम सामने आये उन्होंने बामशाद के अध्ययन का खण्डन किया लेकिन उन्हें उस तरह का राजनीतीकरण और प्रचार नहीं मिला जैसा कि बामशाद के अध्ययन को मिला था :

> वाई-गुणसूत्र के आँकड़े भारतीय जाति समुदाय के मूलतः दक्षिण एशियाई उद्‌भव की ओर निरन्तरता से इंगित करते हैं, और इसलिए उन क्षेत्रों से, जो भारत के उत्तर और पश्चिम में मौजूद है, ऐसे लोगों के किसी प्रमुख आप्रवाह के विरुद्ध तर्क प्रस्तुत करते हैं, जो या तो कृषि के विकास से जुड़े हैं या इण्डो-आर्य भाषा परिवार के विस्तार से।[14]

इसके बाद एक और शोध पत्र 'द अमेरिकन जर्नल ऑफ ह्यूमन जेनेटिक्स' (*The American Journal of Human Genetics*) में प्रकाशित हुआ। इस शोध पत्र को जमा करने वाले पन्द्रह वैज्ञानिकों में स्टैनफोर्ड यूनिवर्सिटी के अनुवांशिकी विभाग के एल. ल्यूका कावाली-स्फोर्जा, और भारतीय सांख्यिकी संस्थान की मानव अनुवांशिकी इकाई के पार्थ मजूमदार शामिल थे। यह अध्ययन बहुप्रचारित बामशाद अध्ययनों और उसी के तरह के अन्य शोधों के प्रति उदार नहीं था। इसने आर्य आक्रमण/आप्रवास प्रारूप का खण्डन किया और इस विचार की असत्यता को भी उजागर किया कि आक्रमणकारी आर्यों द्वारा द्रविड़ों को सिंधु घाटी से भारत के प्रायद्वीपीय क्षेत्रों में धकेल दिया गया था। इसने निष्कर्ष निकाला : 'हमारे आँकड़े द्रविड़ भाषा-भाषियों के सिंधु घाटी से निकटता वाले स्रोत के मुकाबले उनके दक्षिण पठारी उद्‌भव के साथ ही अधिक तर्कसंगत बैठते हैं ...' और यह कि 'विशिष्ट दक्षिण एशियाई वाई-क्रोमोजोम परिदृश्य' को इण्डो-यूरोपीय आप्रवासियों द्वारा रूप नहीं दिया गया था।[15]

2001 के बामशाद अध्ययन का सन्दर्भ देते हुए, इसने इण्डिया टुडे द्वारा व्यक्त किये गये सन्देहों की पुष्टि कठोर शब्दों में की जैसा कि वैज्ञानिक शोध पत्रिका में बहुधा नहीं होता है। इसने कहा कि बामशाद का अध्ययन 'समकालीन सामाजिक अनुक्रम और/या विभिन्न समूहों की भाषाई तन्तुओं के सन्दर्भ में' तैयार किया गया

था। इसने आरोप लगाया कि बामशाद का अध्ययन दो प्रमुख त्रुटियों से दुष्प्रभावित हुआ : इसने 'जातीय रूप से त्रुटिपूर्ण ढंग से परिभाषित जनसंख्या, सीमित भौगोलिक नमूने, अपर्याप्त आण्विक वियोजन (molecular resolution),' और 'अनुचित सांख्यिकीय तरीकों' का उपयोग किया।[16] सन 2004 के रिचर्ड कोर्डो आदि के अध्ययन पर विचार करते हुए, इस शोध पत्र ने 'विशेष ऐतिहासिक घटनाओं' पर निर्भरता की आलोचना की, और आँकड़े की व्याख्या के कई वैकल्पिक तरीकों की ओर ध्यान दिलाया जिन्हें उपेक्षित कर दिया गया था। 'दूसरे शब्दों में, यह निष्कर्ष निकालने के लिए किसी भी प्रकार का कोई साक्ष्य नहीं है कि मध्य एशिया आर वन ए (R1a) वंशों का अनिवार्यत: हाल का दाता रहा है और प्राप्तकर्ता नहीं रहा'।[17]

2009 में एक और प्रयास

जाति के नस्ली आधार को इस तरह खण्डित कर दिये जाने के बाद भी, आधुनिक अनुवांशिकी अध्ययन ठीक विपरीत दावा करने के लिए तोड़े-मरोड़े जा रहे हैं। सन 2009 में 'नेचर' (Nature) पत्रिका में एक शोध पत्र प्रकाशित हुआ। हैदराबाद स्थित सेंटर फॉर सेल्युलर एण्ड मॉलिक्युलर बायोलॉजी (सीसीएमबी) के वैज्ञानिकों के नेतृत्व में एक दल ने हार्वर्ड मेडिकल स्कूल, हार्वर्ड स्कूल ऑफ पब्लिक हेल्थ और ब्रॉड इंस्टीटयूट ऑफ हार्वर्ड ऐण्ड एमआईटी, के अमरीकी अनुसंधानकर्ताओं के साथ मिलकर 500,000 अनुवांशिक चिह्नकों का अध्ययन किया जो 25 विभिन्न समूहों के 132 व्यक्तियों के जीनोमों से लिए गये थे। ये 13 राज्यों, सभी छह भाषा परिवारों, पारम्परिक रूप से 'ऊँचे' और 'निचले' वर्णों, और जनजातीय समूहों का प्रतिनिधित्व कर रहे थे।[18] टाइम्स ऑफ इण्डिया में छपी एक रपट ने घोषित किया कि शोध पत्र ने 'विवाह में वर्ण-भेद की प्राचीनता को स्थापित कर दिया है', और इसे संयुक्त राष्ट्र मानवाधिकार काउंसिल के 2009 के जेनेवा सत्र से जोड़ दिया, जिसने 'वर्ण-आधारित भेदभाव को मानवाधिकार उल्लंघन के रूप में' घोषित करने का सुझाव दिया था।[19]

जो भी हो, शोध पत्र के लेखकों में से एक (थांगराज कुमारास्वामी, सेंटर फॉर सेल्युलर एण्ड मॉलिक्युलर बायोलॉजी) ने इसे स्पष्ट रूप से अस्वीकार कर दिया :

> हमारा शोध पत्र मूलत: आर्य सिद्धान्त को खण्डित करता है। हमने अपने शोध पत्र जो विचार किया है, वह प्रागैतिहासिक घटनाएँ हैं। इस अध्ययन में शामिल किये गये आँकड़े ए.एन.आई. अधिवास के समय के आकलन के लिए पर्याप्त नहीं हैं। जो भी हो, एम.टी.डी.एन.ए. और वाई-गुणसूत्र चिह्नक का उपयोग कर किया गया हमारा पूर्व का अध्ययन इंगित करता है कि ए.एन.आई. लगभग चालीस हज़ार वर्ष पुराने हैं। हमने पूर्वानुमान लगाया था कि ए.एस.आई. अण्डमान निवासियों के प्रवजन का भाग है, इसलिए वे साठ हज़ार वर्ष पुराने हो सकते हैं। हमारा अध्ययन प्रदर्शित करता है कि भारतीय जनसंख्या अनुवांशिक

रूप से संरचित है, जो इस बात की ओर इंगित करता है कि वे हज़ारों वर्षों से सगोत्र विवाह करते रहे हैं। हर जनसंख्या समूह अनुवांशिक रूप से अद्वितीय है, लेकिन हम वैसी अनुवांशिक जानकारियाँ निर्धारित नहीं कर सकते जिसके आधार पर अन्तर कर यह बताया जा सके कि कोई व्यक्ति ऊँचे/निचले वर्ण का है या नहीं। जैसा कि हम जानते हैं, वर्ण-व्यवस्था काफी बाद हाल में लागू की गयी है।[20]

कुमारास्वामी आगे कहते हैं कि यह अध्ययन 'इस दृष्टिकोण का समर्थन करता है कि भारतीय समाज के बनने के समय वर्ण सीधे जनजाति-जैसे संगठनों से निकली'।[21] दूसरे शब्दों में, वर्ण संरचनाएँ तथाकथित आर्यों के भारत में किसी भी आगमन के दसियों हज़ार वर्ष पूर्व उभरीं। इससे भी अधिक यह कि यह वर्ण संरचना उच्च या नीच स्तरीकरण वाली नहीं थी, बल्कि सीधे-सीधे किसी भी समुदाय के अन्दर विवाह के लिए थी।

परिशिष्ट ख
संगम साहित्य में प्राचीन तमिल धर्म

सभी भारत विरोधी अलगाववादी शक्तियों में, तमिल राष्ट्रवादियों से लेकर वॉशिंगटन के हाई-प्रोफाइल आन्दोलनकारियों तक, एक साझा संकेतक है सामान्य हिन्दू समुदाय और उसकी संस्कृति से तमिल/जनजातीय/दलित समुदाय और संस्कृति की अलग विशिष्टता पर बल देना। जो भी हो, तमिलों को सांस्कृतिक रूप से शेष भारत से अलग राष्ट्र की तरह वर्णित करने के लिए अत्यधिक पेचीदा तर्कों, आधारहीन अवधारणाओं, और समयातीत हो गयी जानकारियों की आवश्यकता है। प्राचीन संगम साहित्य का एक अध्ययन उजागर करता है कि तमिलों की भूमि, इसके सबसे पहले गठन के समय से ही, अपनी आध्यात्मिकता में मुख्यत: वैदिक ही रही है। प्राचीन तमिल साहित्य न केवल वैदिक प्रतिमानों से भरा है, बल्कि यह वैदिक परिकल्पनाओं को इस प्रकार प्रस्तुत करता है मानो यह तमिल मानस के लिए बाहरी तत्व नहीं हैं।

संगम साहित्य में वैदिक सन्दर्श

तमिल में वह समग्र साहित्य संगम साहित्य कहलाता है जो बहुत ही प्राचीन काल से पुष्पित हुआ जिसमें 473 कवियों, जिनमें महिलाएँ भी शामिल हैं, द्वारा रचित 2279 कविताएँ हैं। उस काल का निर्धारण, जिसमें यह साहित्य विकसित हुआ, ईसा पूर्व 500 से ईसा बाद 500 के बीच किया गया है।[1] पारम्परिक रूप से, तमिल विद्वान इसके दो भागों, पट्टुपट्टु और इट्टुटोकाई, को स्वीकार करते हैं, जिनमें प्राचीन गाथागीत हैं।[2]

उदाहरण के लिए, पुरनान्नुरु वेदों का उल्लेख संख्या में चार और छह शाखाओं वाले आदि धर्म ग्रन्थ के रूप में करता है जो सदा जटा वाले आदि देव, अर्थात् शिव, के होंटों से कभी अलग नहीं होता।[3] वास्तव में, यह अनेक अवसरों पर चार वेदों का उल्लेख करता है।[4] 'आदि धर्मग्रन्थ', 'मूल्यवान धर्मग्रन्थ' आदि जैसी शब्दावलियों से उनकी प्रशंसा करने के अलावा, यह संस्कृत शब्द 'वेद' का भी उल्लेख उनके सन्दर्भ देने के लिए करता है।[5] यह एक ब्राह्मण के नाम के रूप में 'अन्थनार' शब्द का उपयोग करता है, जिसका सम्बन्ध जरथुष्ट्रवादियों और साथ ही क्रमश: वैदिक शब्द अथर्वन और अंगिरा से भी है।[6] वेदों का वर्णन 'ब्राह्मणों के चार धर्मग्रन्थों' के रूप में भी किया गया है।[7]

संगम साहित्य का एक अन्य उदाहरण है मदुरैकांची, जो वेदों के बारे में कहता है कि प्राचीन तमिल नगरों में ये ब्राह्मणों द्वारा गाये जाते थे।[8] कविताओं के एक संग्रह परिपटल्ल के अनुसार, प्राचीन तमिल समाज में ब्राह्मणों को अति सम्मान की दृष्टि से देखा जाता था क्योंकि वे वेदों की सेवा करते थे।[9] यह कहता है कि प्राचीन तमिल

समाज में मौखिक रूप से पारोषित वेदों का ब्राह्मणों द्वारा अध्ययन किया जाता था, जो कभी भी धर्म (न्याय के मार्ग) से हटते नहीं थे।[10] पेरुमपन्नत्रुपदई, जो एक अन्य प्राचीन संगम की एक तमिल कालजयी रचना है, ब्राह्मणों के घरों में तोतों के बारे में बताती है, जो लगातार वैदिक मन्त्रोच्चार सुनते रहने के कारण स्वयं वेदों का मन्त्रोच्चारण प्रारम्भ कर देते थे।[11] शताब्दियों बाद, दक्षिण भारत के आदि शंकर और उनके अनुयायी उत्तर भारत के मर्मस्थल वाराणसी में मण्डन मिश्र के घर पर तोतों द्वारा वैदिक ऋचाओं के पाठ के दृश्य का साक्षात्कार करेंगे।[12]

अपने दैनिक जीवन में ब्राह्मणों का अनुशासन का, जिसमें ब्रह्मचर्य का पालन करने की प्रथा भी शामिल है, संगम साहित्य द्वारा विशद् वर्णन किया गया है।[13] इसमें यह भी उल्लेख किया गया है कि कुछ ब्राह्मण ऐसे थे जिनकी निकटता राजाओं और विभिन्न समाजों के प्रमुखों से थी और राजदूतों तथा कूटनीतिज्ञों के रूप में उनकी भूमिकाओं ने उन्हें शराब और वासनात्मक गतिविधियों में प्रवृत्त कर दिया।[14] ऐसे 'ब्राह्मणत्व का पालन न करने वाले ब्राह्मण' कुछ ही पीढ़ियों बाद प्राचीन तमिल समाज में अन्य व्यवसायों में लगने लगे थे।[15]

वैदिक अग्नि अनुष्ठान या यज्ञ प्राचीन तमिलों के जीवन में बहुत सामान्य थे, जैसा कि संगम साहित्य में चित्रित किया गया है। ऐसे अग्नि अनुष्ठान बहुधा राजाओं द्वारा सम्पन्न किये जाते थे, हालाँकि साधु भी जंगलों में व्यक्तिगत रूप से ऐसे अनुष्ठान किया करते थे। वैदिक अग्नि अनुष्ठान में यह आवश्यक था कि राजा अपनी रानियों के साथ ऐसे अनुष्ठान करें, जैसा कि पुरनान्नुरु एक राजा के अग्नि अनुष्ठान का वर्णन अनुष्ठानिक स्तम्भ के वर्णन के साथ करता है।[16] एक अन्य कविता के अनुसार, एक वैदिक यज्ञ के लिए सत्रह प्रकार की गायों से घी तैयार किया गया, जिनमें से कुछ जंगली थीं और कुछ पालतू, और इस घी को एक अग्नि कुण्ड में पानी की तरह डाला गया, जिसके कारण उठे धुँए से पूरा नगर आच्छादित हो गया।[17]

परिपटल में विष्णु का एक सुन्दर वर्णन है, स्वयं वैदिक यज्ञ की संरचना और कार्य दोनों घटकों के रूप में निकले हुए की भाँति।[18] थिरुमुरकात्रुपटई संगम साहित्य का एक अन्य उदाहरण है जिसका रचयिता एक प्रसिद्ध तमिल कवि नक्कीरन को माना जाता है जो बाद के विवरणों में एक बागी की भूमिका में सामने आते हैं; यह रचना छह मुखों वाले मुरुगन की एक मुखाकृति के बारे में कहती है कि वे वैदिक अनुष्ठानों को पवित्र मन्त्रोच्चारण की विरासत से भटकने न देने के लिए संरक्षित कर रहे हैं।[19] एक काव्यात्मक अतिशयोक्ति में, परिपटल घोषित करता है कि प्राचीन तमिल भूमि में भ्रमण करने वाले गगनचारियों के नेत्र बड़ी संख्या में सम्पन्न किये जाने वाले यज्ञों से उठने वाले धुँओं से ढँक जाते थे।[20] एक तमिल प्रमुख की पहचान 'ब्राह्मणों द्वारा सम्पोषित हवन के शासक' के रूप में की गयी थी। तमिल राजाओं द्वारा अग्नि अनुष्ठान में हवन की जाने वाली अनुष्ठानिक सामग्री देवों द्वारा परिपोषित थी।[21]

पुरनान्नुरु तमिल राजा के पूर्वजों की चर्चा वैदिक अग्नि वेदी के कुण्ड से जन्मे हुए के रूप में करता है।[22]

जब साधु सन्त जंगलों में धार्मिक अनुष्ठान करते थे, तब जंगली पशु भी उनकी सहायता करते थे। कहा जा सकता है कि वैदिक यज्ञों का स्वरूप तमिल जीवन के सम्पूर्ण परिदृष्य में व्याप्त था इस प्रकार कि अतिथि सत्कार करना अपने आप में 'हवि' (यज्ञ की अग्नि में डाले जाने वाली सामग्री) कहा जाता था,[23] यहाँ तक कि युद्ध को भी 'युद्ध यज्ञ' का नाम दिया गया था।[24]

एक अन्य कविता संग्रह अहनन्नुरु, जो मुख्य रूप से तमिलों के प्रेम वाले जीवन का वर्णन बड़े आकर्षक ढंग से करता है, परशुराम के यज्ञ की अतुलनीय महानता को एक नायिका के पवित्र सौन्दर्य के वर्णन के लिए चुनता है।[25] ब्राह्मणों द्वारा तैयार की गयी पवित्र अग्नि की प्रकृति त्रिपक्षीय होती थी,[26] और उसके फेरे लगाये जाते थे।[27]

संगम साहित्य में अखिल-भारतीय विवरण

संगम साहित्य में वेदों में वर्णित देवों में से अनेक के नाम और उनके वर्णन, तथा उनके साथ-साथ उनके आवास स्थल हिमालय के वर्णन किये गये हैं। उदाहरण के लिए, इन्द्रधनुष की परिकल्पना इन्द्र के धनुष के रूप में किया जाना एक अखिल-भारतीय परिकल्पना है। हिन्दी भाषा में यह शब्द स्वयं इस परिकल्पना के अर्थ को धारण करता है। यह संगम साहित्य में पाया जाता है जहाँ इन्द्रधनुष का वर्णन 'वङ्का के स्वामी के धनुष' के रूप में किया गया है।[28] परिपटल उन घटनाओं का वर्णन करता है जो इन्द्र को ऋषिपत्नी की आकांक्षा रखने पर गौतम ऋषि द्वारा अभिशापित होने तक की अवस्था में पहुँचा देता है। इसने वर्णन किया कि यह दृश्य मदुरै के निकट एक प्राचीन मन्दिर की दीवारों पर चित्रित किया गया था और लोग उन चित्रों को देखने जाते थे।[29]

यह परिकल्पना कि हिमालय देवों का निवास स्थल है एक अन्य अखिल-भारतीय परिकल्पना है। संगम साहित्य हिमालय की चर्चा देवों के निवास स्थल के रूप में करता है[30] और ऐसे स्थान के रूप में भी जहाँ देव अपनी पत्नियों के साथ भ्रमण करते हैं।[31] परिपटल इन्द्र की चर्चा हिमालय के संरक्षक के रूप में करता है।[32]

तमिल राजाओं की जयकार विष्णु के वंशजों के रूप में होती थी और कभी-कभी तो उन्हें विष्णु का अवतार ही मान लिया जाता था—जो एक अन्य अखिल-भारतीय परिकल्पना है।[33] विष्णु के वर्णन में बताया गया कि हथियार के रूप में उनके एक हाथ में शंख और एक में सुदर्शन चक्र है, गरुड़ उनका वाहन है और वे गरुडध्वज वाले देव हैं।[34] एक अन्य स्रोत वर्णन करता है कि किस प्रकार विष्णु के सम्मान में चरवाहा औरतों द्वारा लोक-नृत्य नाटक किये जाते थे।[35]

संगम साहित्य में विष्णु के विभिन्न अवतारों और उनके उद्देश्यों का उल्लेख है। इनमें वाराह अवतार, जिन्होंने विश्व को बचाया;[36] वामन अवतार, जिन्होंने सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को अपने पैर से नापा;[37] श्री नरसिंह, एक अर्ध सिंह और अर्ध मानव स्वरूप वाले अवतार जिन्होंने एक दानव को मारा ताकि एक बालक के धर्म की रक्षा की जा सके, जो उस दानव ही का पुत्र था;[38] और परशुराम, एक संन्यासी जिन्होंने आततायियों का संहार किया,[39] शामिल थे।

रामायण और महाभारत से तमिल की सुभिज्ञता

रामायण और महाभारत दोनों के कथानकों के सन्दर्भ उजागर करते हैं कि किस सीमा तक ये दोनों महाकाव्य संगम काल के दौरान तमिल जीवन के अंग हो गये थे। संगम साहित्य में रामायण से सम्बन्धित दो कथानकों का उल्लेख है। गरीबी से पीड़ित एक तमिल कवि को जब एक राजा द्वारा संरक्षण दिया जाता है, तो इसके प्रति अनभिज्ञता प्रकट करते हैं कि उन्हें दिये गये मूल्यवान उपहारों का क्या करें और अपनी उस अवस्था की तुलना बन्दरों की अवस्था से करते हैं जो उन आभूषणों के मिलने पर किंकर्तव्यविमूढ़ हो गये जिन्हें सीता ने उस समय गिराया था जब उन्हें रावण द्वारा अपहृत किया जा रहा था।[40] एक और सन्दर्भ दिया गया है जो इससे भी अधिक मनोरंजक है। यह चर्चा करता है कि जब तमिलनाडु के पूर्वी तट पर स्थित लंका पर चढ़ाई करने की रणनीति पर विचार-विमर्श करने के लिए बैठक हो रही थी, तब राम उन पक्षियों के कलरव से बाधित हुए जो उस वृक्ष पर थे जिसके नीचे बैठक हो रही थी। उन्होंने पक्षियों को निर्देश दिया कि वे चुप रहें; उनके 'धर्म-ग्रन्थों के गुणों वाले शब्दों' को सुनकर पक्षी कृतार्थ हुए और चुप हो गये।[41] तर्क दिया जा सकता है कि वाल्मीकि के रचना संसार से बाहर भारतीय साहित्य में राम की दिव्यता की पुष्टि करने वाला यह सबसे प्राचीन सन्दर्भ है।

तमिल राजाओं में सबसे प्राचीन चेरा वंश, कौरवों और पाण्डवों दोनों की युद्धरत सेनाओं को सहयोग देने के लिए प्रसिद्ध है।[42] विद्वानों में यह भी विचार है कि तमिल राजा ने सेनाओं को सहायता नहीं पहुँचाई, लेकिन वे कुरु वंश को अपना पूर्वज मानते थे, और उन्होंने युद्ध में मारे गये पाण्डव और कौरव दोनों के लिए पितृकर्म (मृत्यु के बाद किये जाने वाले अनुष्ठान) किये।[43] एक अन्य तमिल राजा की विजय की तुलना महाभारत में पाण्डवों की विजय से की गयी।[44] किसी भी घटना की लोकप्रियता की तुलना कुरुक्षेत्र की प्रसिद्ध युद्धभूमि में पाँच राजकुमारों की विजय की लोकप्रियता से की जाती थी।[45]

संगम साहित्य में संयुक्त भारत की अवधारणा

संगम साहित्य में उजागर होने वाला एक और अत्यन्त महत्वपूर्ण पक्ष है इस भूमि की एकता की अवधारणा जो उत्तर में हिमालय से लेकर दक्षिण में कन्या कुमारी तक फैली है। कम-से-कम दो स्रोतों में, तमिल राजाओं की प्रशंसा उन सभी राजाओं/प्रमुखों से श्रेष्ठ के रूप में की गयी है जो उत्तर में 'देवों के निवासस्थल हिमालय' और दक्षिण में कुमारी तक की भूमि में शासन करते थे और उन भूमियों पर भी जिनकी सीमा समुद्र ही था।[46] इस सांस्कृतिक एकता की उत्तरी सीमा के रूप में बहुधा हिमालय की चर्चा की जाती थी।[47] गंगा में बाढ़, और गंगा में जलपोतों के आवागमन, संगम साहित्य में वर्णित दृश्यों में शामिल हैं। पवित्र स्नान के लिए सम्पूर्ण भारत से तीर्थयात्रियों के कन्या कुमारी और रामेश्वरम (कोटि) आगमन का उल्लेख भी संगम साहित्य में है।[48] हिमालय और कन्या कुमारी की चर्चा एक साथ करना अनेक संगम कविताओं की निशानी है।[49]

संगम कविताओं में वर्णित भारत की ऐसी आध्यात्मिक-सांस्कृतिक एकता के अलावा, कम-से-कम एक कविता ऐसी है जो भारत की राजनीतिक एकता का सन्दर्भ देती है। पुरनान्नुरु की यह कविता उस समय की चर्चा करती है जब सम्पूर्ण भारत 'कन्या कुमारी से हिमालय तक' एक राष्ट्र के रूप में शासित होता था, जिस दौरान 'पठारों, पहाड़ों, जंगलों और मानव निवास स्थलों' जैसे विभिन्न भौगोलिक क्षेत्रों को सूर्य वंश के राजाओं द्वारा एकीकृत किया गया था, और यह कविता तमिल राजाओं की पहचान इसी सूर्य वंश के वंशजों के रूप में करती है।[50]

संगम परम्परा से लेकर उन्नीसवीं शताब्दी तक के स्वदेशी तमिल साहित्य में आर्य शब्द का उपयोग किसी भी प्रकार की नस्ली अन्तर्ध्वनि प्रदर्शित नहीं करता। थिरु मुलार, जो अग्रणी सिद्धों में से एक थे, और जो शैव-तान्त्रिक ग्रन्थ थिरुमंथिरम के लेखक हैं, शिव या परम गुरु को 'आर्य कहते हैं जो आन्तरिक अशुद्धताओं को भस्म कर देते हैं'।[51] इसी प्रकार, सन्त मणिछवसागर अपने थिरुवसगम में शिव को 'आर्य बताते हैं जो (भक्तों को) बन्धन से मुक्त करते हैं तथा उन्हें सम्पोषित करते हैं'।[52] वेदान्त देशिका, एक महान वैष्णव टिप्पणीकार, थिरु पन आलवार की—जो उस वर्ण के भक्त थे जिस वर्ण को उस काल में अपवित्र माना जाता था—प्रशंसा इस बात के लिए करते हैं कि उन्होंने वेदों का सार दस पदों में ही गाया, और उन्हें वे 'वेदान्त आर्य' कहते हैं। उन्नीसवीं शताब्दी के एक रहस्यवादी सुधारक, रामालिंग वल्लरार, आर्य शब्द का उपयोग 'अन्त:करण के महान सत्य' के अर्थ में करते हैं तथा उस सन्त को आर्य कहते हैं 'जो अनुग्रह के प्रकाश की प्रशंसा करते हैं'।[53]

विपरीत साक्ष्यों के इस विशाल भण्डार के बावजूद, वैदिकेतर तमिल पहचान पर अकादमिकों द्वारा निरन्तर बल दिया जा रहा है। उदाहरण के लिए, एक संग्रह के अनुवाद का शीर्षक 'युद्ध और ज्ञान के चार सौ गीत : प्राचीन तमिल कविताओं का संकलन' (*The Four Hundred Songs of War and Wisdom: An Anthology of Poems from Classical Tamil*) रखा गया है, जिसके अनुवादक हैं जार्ज एल. हार्ट

(यूनिवर्सिटी ऑफ कैलिफोर्निया में दक्षिण और दक्षिण-पूर्व एशियाइ अध्ययन विभाग के प्राध्यापक), और इसके जैकेट पर हैंक हीफेट्ज द्वारा लिखित निम्न विवरण छापा गया है :

> चार सौ कविताओं के इस संग्रह की कविताएँ प्राचीन तमिलनाडु की साहित्यिक भाषा—पुरानी तमिल—के 150 से अधिक कवियों द्वारा आर्य प्रभाव के दक्षिण में जाने के पूर्व पहली शताब्दी से तीसरी शताब्दी के बीच रची गयी थीं; इस प्रकार यह आर्य-पूर्व भारत के अद्वितीय साक्ष्य हैं। ... प्राचीन कालजयी भारतीय रचनाओं में यह उन चन्द रचनाओं में एक है जो जीवन का साक्षात्कार बिना किसी दार्शनिक मुखौटे के करती है और कर्म तथा पुनर्जन्म के बारे में कोई मूलभूत अवधारणा नहीं बनाती। इस रचना, पुरनान्नरु, का सार्वभौमिक आकर्षण है।[54]

उपर्युक्त उद्धरण इस साहित्य का काल ईसा बाद का चुनता है, ताकि यह इस ईसाई सिद्धान्त में सटीक बैठे कि यह सेंट टॉमस से प्रभावित था और इसलिए यह ईसाइयत का विरलीकृत/कम गुणवत्ता वाला स्वरूप है। एक गैर-आर्य तथा शुद्ध द्रविड़ के रूप में संगम साहित्य की अवधारणा को समान रूप से सार्वजनिक समाचार माध्यमों में भी प्रचारित किया जा रहा है। उदाहरण के लिए, आसिफ हुसैन, एक लोकप्रिय पत्रिका में लिखते हुए संगम साहित्य के बारे में कहते हैं :

> ... सूचना की सोने की खान है, और हमें प्राचीन काल में आर्यों के प्रभाव में आने से पहले के तमिलों के रोमांस, विवाह, परिधान, आभूषण सज्जा, भोजन के व्यंजन और धार्मिक जीवन की एक झलक उपलब्ध कराता है।[55]

जैसा कि इस परिशिष्ट में स्पष्ट किया गया है, ये वर्णन उन व्यापक साक्ष्यों की अवहेलना करते हैं जो इस बात का समर्थन करते हैं कि प्राचीन काल के तमिलों का धार्मिक जीवन वैदिक परम्पराओं में ही मजबूत जड़ें जमाये था।

परिशिष्ट ग
अफ्रीका में समानान्तर उभार

हमने देखा है कि किस प्रकार शैक्षिक अध्ययनों, मिथकीय पहचानों, ईसाई प्रचारक महत्वाकांक्षाओं और प्रशासनिक परियोजनाओं ने मजबूत नस्ली पहचानों के सृजन और विभाजन के लिए एक साथ मिलकर काम किया। यही प्रक्रिया हमें जनसंहारों तक पहुँचा सकती है, जैसा कि इसने पहले ही रवाण्डा और श्रीलंका में किया। समानताएँ आश्चर्यजनक हैं, और कड़ी चेतावनी देती हैं। रवाण्डा के जनसंहार की जड़ हैम मिथक में ढूँढ़ निकाली जा सकती है। चित्र A.1 इस परिशिष्ट के प्रवाह का सार प्रस्तुत करता है।

हैम मिथक द्वारा अफ्रीका में भाषाई नृवंशविज्ञान को एक स्वरूप देना

हैम मिथक को, जिसने मूल रूप से काली-चमड़ी वाले लोगों को नूह के पुत्र हैम के अभिशप्त वंशजों के रूप में चिह्नित किया, फिर से चमकाया गया जब यूरोपीयों की भेंट नयी सभ्यताओं से हुई जो उनकी अपनी श्रेष्ठता की अवधारणा में सटीक नहीं बैठती थीं। जैसे ही यूरोपीय मिशनरी विद्वानों ने अफ्रीका की संस्कृति और सभ्यता का आकलन करना शुरू किया, उन्होंने एक बाहरी 'गैर-काले' तत्व के रूप में एक व्याख्या चाही जिसे मूल निवासी अफ्रीकियों से श्रेष्ठ अवस्था में प्रस्तुत किया जा सके पर वह गोरे यूरोपीयों से कम श्रेष्ठ हो। महान गैर-यूरोपीय सभ्यताओं की खोज के बाद भी यह तत्व यूरोपीय श्रेष्ठता को बनाये रखने में सहायता करेगा।[1]

ऐसी एक प्रमुख चुनौती नेपोलियन द्वारा 1798 में मिस्त्र पर आक्रमण करने के बाद सामने आयी। सॉल ड्यूबो स्पष्ट करते हैं कि यह 'हैमी मिथक के एक नये मोड़ के लिए उत्प्रेरक था : मिस्त्री सभ्यता यूनान और रोम के प्राचीन शास्त्रीय जगत से पहले की थी—इस खोज का मेल उस स्थापित दृष्टिकोण से बैठाने की ज़रूरत आन पड़ी कि मिस्त्री लोग 'नीग्रो' थे।[2] उन्नीसवीं शताब्दी का मध्य आते-आते, पश्चिम के अग्रणी नस्ल-वैज्ञानिकों ने यह प्रमाणित करना चाहा कि मिस्त्र निवासी 'नीच' नीग्रो से सम्बन्धित नहीं थे और श्रेष्ठ थे, मगर इसके बावजूद वे गुणवत्ता में यूरोपीयों से नीचे थे।[3]

Fig A.1 अफ्रीका में हैम के मिथक का विकास और उसके परिणाम
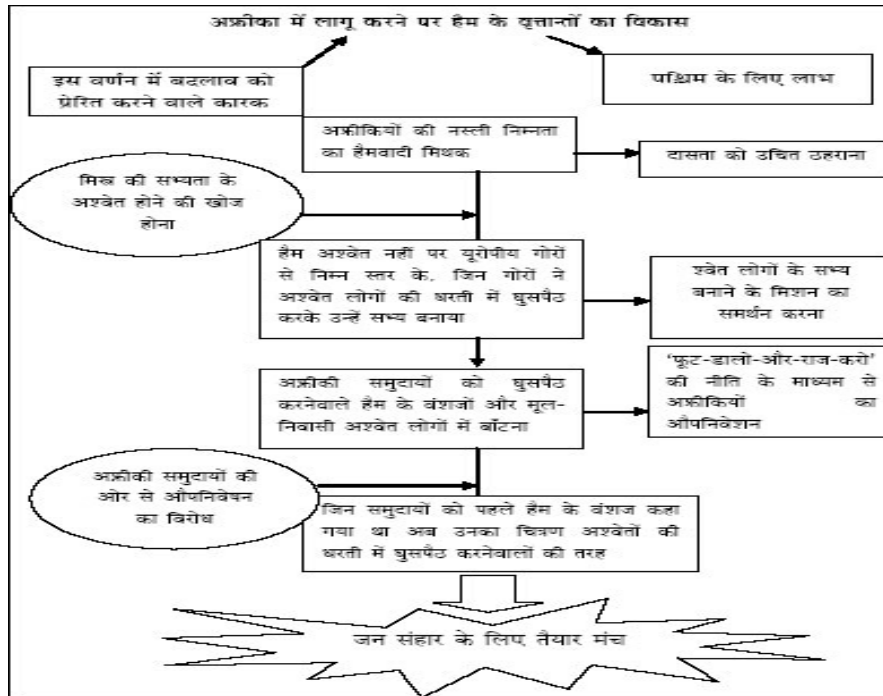
इसी प्रकार, 1867 में, यूरोपीयों ने दक्षिणी अफ्रीका के एक शहर के भव्य अवशेष खोज निकाले, जो आज जिम्बाब्वे में है, और उन्होंने इन अवशेषों को कुछ बाह्य प्रभावों से जोड़ने का प्रयास किया ताकि मूल अफ्रीकावासियों की भूमिका को कम करके बताया जा सके।[4] इसके आर्थिक और औपनिवेशिक उद्देश्य थे, जैसा कि ब्रूस जी. ट्रिगर स्पष्ट करते हैं :

> सेसिल रोड्स द्वारा इस प्रकार की अटकलों को सक्रिय ढंग से प्रोत्साहित किया गया था, [विशेषकर] उनकी ब्रिटिश साउथ अफ्रीकी कम्पनी द्वारा 1890 में मशोनालैंड, और तीन वर्ष बाद पड़ोसी मैटाबेलीलैंड पर जबरन कब्जा कर लेने के बाद, ताकि उस क्षेत्र की स्वर्ण सम्पदा का दोहन किया जा सके। शीघ्र ही वृहत् जिम्बाब्वे यूरोपीय औपनिवेशीकरण के न्याय का प्रतीक बन गया, जिसे इस ढंग से चित्रित किया गया मानो गोरी प्रजाति उस भूमि में वापस आ रही हो जिस पर उन्होंने पूर्व में शासन किया था।[5]

ब्रिटिश एसोसिएशन फॉर एड्वांसमेंट ऑफ साइंस और रॉयल जियोग्रैफिकल सोसाइटी ने शहर निर्माता के रूप में मूल अफ्रीकियों के योगदान को न्यूनतम करने के कठिन प्रयास किये। मूल निवासियों को निकृष्ट चित्रित करना उन पर यूरोपीयों के शासन को उचित ठहराता, और इस सिद्धान्त के लिए एक और नस्ल का गढ़ा जाना आवश्यक हो गया था। उनकी 'वैज्ञानिक' रपटों ने बाइबल के सन्दर्भ यह निष्कर्ष निकालने के लिए दिये कि 'वे अवशेष ''एक उत्तरी नस्ल'' द्वारा निर्मित किये गये थे जो बाइबल काल में अरब से होते हुए दक्षिणी अफ्रीका में आयी थी'।[6]

निकट अतीत तक 1971 में, दक्षिणी रोडेशिया के गोरे आप्रवासी नस्लवादी शासन ने एक गुप्त परिपत्र जारी किया जिसमें कहा गया था कि कोई भी आधिकारिक प्रकाशन इस बात का उल्लेख नहीं करेगा कि कालों ने उन विशाल स्मारकों को बनाया था। एक साक्षात्कार में पुरातत्ववेत्ता पॉल सिंक्लेयर ने इस मामले में आधिकारिक प्रकाशन-निषेध (सेंसरशिप) की व्याख्या इस प्रकार की :

> मैं वृहत् जिम्बाब्वे में तैनात पुरातत्ववेत्ता था। संग्रहालय और स्मारकों के संगठन के तत्कालीन निदेशक द्वारा मुझे [वृहत्] जिम्बाब्वे राज्य की उत्पत्ति के बारे में प्रेस से बात करने के सन्दर्भ में अत्यन्त सतर्क रहने के लिए कहा गया था। मुझे बताया गया था कि संग्रहालय सेवा एक कठिन परिस्थिति में थी, और सरकार सही सूचनाएँ रोककर रखने के लिए उन पर दबाव डाल रही थी। निर्देशिकाओं, संग्रहालय की वस्तुओं के प्रदर्शन, स्कूल की पाठ्यपुस्तकों, रेडियो के कार्यक्रम, समाचार पत्रों और फिल्मों की सेंसरशिप एक दैनिक घटना थी। एक बार, संग्रहालय के न्यास बोर्ड के एक सदस्य ने मुझे धमकी दी कि अगर मैंने सार्वजनिक रूप से कहा कि कालों ने जिम्बाब्वे को निर्मित किया था तो मैं नौकरी खो दूँगा। उन्होंने कहा कि यह कहना ठीक रहेगा कि पीले लोगों (Yellow people) ने इसे निर्मित किया था, लेकिन मुझे रेडियो-कार्बन तिथियों का उल्लेख करने की अनुमति नहीं थी। ... 1930 के दशक में जर्मनी के बाद ऐसा पहली बार हुआ जब पुरातत्व पर इतनी सीधी सेंसरशिप लगायी गयी।[7]

कालेपन के स्तर

स्पष्टतः, गैर-यूरोपीय सभ्यताओं को उस ढंग से व्याख्यायित करने का भारी दबाव था जो गोरों की श्रेष्ठता को संरक्षित करे, और साथ-साथ बिल्कुल वैज्ञानिक भी दिखे। इस प्रकार 'कालेपन के स्तर' की परिकल्पना का उदय एक आशाजनक समाधान के रूप में हुआ। वर्ष 1980 में, जर्मनी के मिस्त्रवेत्ता कार्ल लेप्सियस ने सुझाया कि अफ्रीका के मूल निवासी दो प्रमुख मानवसमूहों से बने थे : उत्तर में कम काली चमड़ी वाले हैमी-कॉकेशियन और दक्षिण में अधिक काली चमड़ी वाले हैमी-नीग्रो।[8] इससे 'सभ्यता के स्तरों' के रूप में व्याख्या करने की सुविधा हो गयी, जिसे इस मानदण्ड द्वारा मापा गया कि यूरोपीय रक्त किस हद तक उपस्थित था। जिन लोगों की चमड़ी हल्के रंग की थी उन्हें काली चमड़ी वाले पड़ोसियों से अधिक सभ्य बताया गया, क्योंकि उन्होंने सम्भोग के माध्यम से अधिक यूरोपीयता प्राप्त कर ली थी। 'हल्के रंग वाले (कम) कालों' और 'गहरे रंग वाले (अधिक) कालों' में यह विभाजन रंग वाले लोगों के बीच आज भी जारी है, जिसमें अफ्रीकी-अमरीकी और दक्षिण एशियाई शामिल हैं।

एक बार जब पड़ोसी मानव समूहों को शारीरिक संरचना प्रारूपों के आधार पर अलग पहचान के साथ परिभाषित कर दिया गया, तब यूरोपीयों के लिए अगला कदम

था उन्हें अलग इतिहास देना जिसके अनुसार एक समूह को दूसरे समूह के दमनकारी के रूप में दिखाया गया।

यह शैक्षिक तिकड़म अन्तत: भिन्न मूल निवासी समुदायों के बीच हिंसात्मक संघर्ष तक ले गया। तब ऐसे संघर्षों को एक आदिम सभ्यता के 'मानवाधिकार उल्लंघन' के रूप में दोषारोपित किया जा सकता था। उत्तर-औपनिवेशिक काल में पश्चिम की सरकारों और उनके एन.जी.ओ. द्वारा हस्तक्षेप करने के लिए इसने उन्हें ताजा मुद्दे उपलब्ध करा दिये हैं।

जनसंहार के लिए शिक्षाविदों द्वारा मंच तैयार करना

एक ऐसी ही ख़तरनाक श्रृंखलाबद्ध प्रतिक्रिया तब शुरू हुई जब एक प्रमुख ब्रितानी नृवंशविज्ञानशास्त्री, सी.जी. सेलिगमैन (1873-1940), ने प्रस्तावित किया कि बाइबल के हैमवंशी गोरे कॉकेशियाइयों के निचले स्तर के थे, जिन्होंने मेसोपोटैमिया से अफ्रीका में प्रवेश किया था, और धीरे-धीरे मूल निवासी कालों से घुल-मिल गये जिससे कालेपन के भिन्न स्तर बन गये। उनके अनुसार यूरोप से और निकट पूर्व से भी आक्रमण की 'लहरें' आयी थीं, और आक्रमण की हर नयी लहर अपने साथ गोरों का अतिरिक्त रक्त लायी, जो मूल निवासी अफ्रीकी जनसंख्या में यौन अन्तर-मिश्रण द्वारा मिल गया। इसके परिणामस्वरूप कुछ अफ्रीकी समूह अन्य समूहों की तुलना में अधिक भाग्यशाली हुए, क्योंकि उनके समूह में एक से अधिक यूरोपीय योगदान आये जिन्होंने उन्हें अधिक सभ्य बनाया।

इस सिद्धान्त के अनुसार, हैमवंशी किसी भी रंग की चमड़ी वाले हो सकते हैं। चाहे उनकी चमड़ी का वास्तविक रंग जो भी हो, वे सभी हैम के वंशज थे, और इसलिए यूरोपीयों से श्रेष्ठता में कम थे जो जाफेट के वंशज थे। पहले, सेलिगमैन ने श्रीलंका (सीलोन) में क्षेत्र-कार्य (फील्ड-वर्क) किया था और 1911 में एक अध्ययन प्रकाशित किया था।[9] उनके शोध का निष्कर्ष आर्य आक्रमण की परिकल्पना और विभिन्न जन समुदायों को नस्ली श्रेणियों में बाँटने की ब्रितानी परम्परा के निकट है। सेलिगमैन भारत और अफ्रीका में क्रमश: उपनिवेशवाद को समर्थन देने वाले नस्ली सिद्धान्तों के बीच की एक महत्वपूर्ण कड़ी हैं। वे एक महाद्वीप के सन्दर्भों से दूसरे का मानचित्र खींच सकते थे और उसे उस पर लागू भी कर सकते थे। जब सेलिगमैन ने अपनी विख्यात पुस्तक 'अफ्रीका की नस्लें' (Races of Africa) का प्रकाशन 1930 में किया तो उसे यूरोपीय शैक्षिक घेरों में एक महान मानवशास्त्रीय वैज्ञानिक शोध के रूप में तत्काल स्वीकार कर लिया गया।

सेलिगमैन का प्रभाव अन्य क्षेत्रों में भी फैला, और वे यूरोप के सर्वाधिक विख्यात नृवंशविज्ञानशास्त्रियों में से एक, 'संस्कृति की एक वैज्ञानिक परिकल्पना' (A Scientific Theory of Culture) के लेखक, लन्दन स्कूल ऑफ इकोनॉमिक्स के

ब्रोनिस्लॉ मैलिनोवस्की के संरक्षक थे। सेलिगमैन के सिद्धान्त को लोकप्रिय अफ्रीकी जन मानस में औपनिवेशिक शिक्षा के माध्यम से फैलाया गया था। इसने यूरोपीय नस्ली सिद्धान्तों के उन जनजातीय पहचानों के ऊपर स्थापित किया जो उस समय अस्तित्व में थीं, और इस प्रकार मूल निवासी समूहों के बीच सम्बन्धों को स्थायी रूप से रूपान्तरित कर दिया।[10]

अफ्रीका के लिए इसके प्रभाव और भारतीयों के बारे में व्यापक रूप से जो विश्वास किया जाता है, उसे देखते हुए सेलिगमैन के सिद्धान्त को कदम-दर-कदम समझना आवश्यक है जिनके माध्यम से उन्होंने व्याख्या की कि किस प्रकार बाहर से सभ्यता अफ्रीकियों तक आयी। उन्होंने लिखा :

> नीग्रो-हैमवंशी लोगों की उत्पत्ति के तन्त्र को तभी समझा जा सकता है जब इस बात का भान हो जायेगा कि आने वाले हैमवंशी गँवई 'यूरोपीय' थे—जो जत्थों में एक के बाद एक आये—काले कृषिकर्मी नीग्रो की तुलना में हथियारों से बेहतर ढंग से सुसज्जित और तेज-तर्रार, क्योंकि यह याद रखना होगा कि अफ्रीका में कांस्य युग कभी आया ही नहीं, और हम विश्वास कर सकते हैं कि नीग्रो लोगों ने, जो अब एक उत्कृष्ट लौह-कामगार हैं, यह कला हैमवंशियों से सीखी।[11]

ट्रैविस शार्प यहाँ यूरो-केन्द्रीयवाद की ओर ध्यान आर्किषत करते हैं :

> सेलिगमैन ने हैमवंशियों को पूरी तरह से गोरी नस्ल के सदस्य भी नहीं माना था। वास्तव में, हैमवंशियों को मूलत: मेसोपोटैमिया से पलायन कर अफ्रीका चले जाने के लिए विवश कर दिया गया था, क्योंकि वे गोरे समाज की तलछट थे।[12]

एक अन्य विद्वान, ओले ब्योर्न रेक्डाल, के शब्दों में, 'यूरो-एशियाइयों में से अभिशप्त लोग भी अपनी चमक में अफ्रीका के मूलवासियों को पूरी तरह से पीछे छोड़ने में सक्षम थे'।[13]

सन 1932 में, सी.जी. सेलिगमैन और ब्रेंडा सेलिगमैन ने दक्षिणी सूडानी मानव भूगोल (ethnography) के अपने सर्वेक्षण का प्रकाशन 'द पेगन ट्राइब्स ऑफ द नीलोटिक सूडान' (*The Pagan Tribes of the Nilotic Sudan*) शीर्षक से किया। एक सिद्धान्त का उपयोग करते हुए, जो आश्चर्यजनक ढंग से भारत के आर्य आक्रमण के सिद्धान्त के समान था, उन्होंने व्याख्या की कि किस प्रकार वर्तमान अफ्रीकी समाज में भिन्न नस्ली जनसंख्या अस्तित्व में आयी :

> सबसे पहले हैमवंशी (Hamites), या कम-से-कम उनके अभिजात वर्ग ने हैमी (Hamites) महिलाओं से विवाह करने के प्रयास किये होंगे, लेकिन यह बहुत दिनों तक नहीं चला होगा और नीग्रो तथा हैमी रक्त के मिश्रण वाले लोगों की श्रृंखला खड़ी हो गयी होगी : ये शुद्ध नीग्रो से श्रेष्ठ थे, और उसके बाद आने वाले हैमवंशियों से निकृष्ट माने गये होंगे, और उन्हें और भीतरी अफ्रीकी भागों में नीग्रो

जनों के साथ आनेवाले अभिजात वर्ग की भूमिका निभाने के लिए धकेल दिया गया होगा, जिनके साथ वे टकराये होंगे।[14]

पीटर रिग्बी स्पष्ट करते हैं कि किस प्रकार अफ्रीकी समुदायों के इस नस्ली चित्रण ने अन्तर-सामुदायिक सम्बन्धों को पूरी तरह से ख़राब कर दिया, जबकि इस बीच औपनिवेशिक रणनीतिकारों द्वारा एक समूह का उपयोग उसके पड़ोसी दूसरे समूह के विरुद्ध करने में सहायक बना।[15] ऐसे शैक्षिक गलत निरूपण के दुर्भाग्यजनक राजनीतिक प्रभाव सम्पूर्ण अफ्रीका के मूल निवासियों पर अब भी चालू हैं।

रिग्बी अंग्रेज़ी में उपलब्ध रवाण्डा पर सर्वाधिक व्यापक रूप से ज्ञात मानवशास्त्रीय शोध का उद्धरण देते हैं, और जनसंहार का मार्ग प्रशस्त करने के लिए उसके लेखक की ख़बर लेते हैं। यह शोध है जैक्स मैक्वेट का 'रवाण्डा में गैर बराबरी का आधार' (*The Premise of Inequality in Rwanda*, 1961)। रिग्बी इस विद्वान पर उस बात को स्थायी बनाने का आरोप लगाते हैं :

...जिसे वे स्वयं 'शारीरिक या नस्ली प्रारूप' कहते हैं—उस ढंग से फोटो खींचकर कि बटुट्सी 'लम्बे' दिखें और बहुटी (कृषिकर्मी नीग्रो) 'छोटे' दिखें'। [मैक्वेट] और आगे तर्क देते हैं कि हुटु और टुट्सी के बीच शारीरिक अन्तर को उपनिवेशवादियों द्वारा बढ़ा-चढ़ाकर बताते हुए उन्हें 'नस्ली' श्रेणियों में बाँटा जाना शुद्ध रूप से एक राजनीतिक जरूरत थी ताकि (अप्रत्यक्ष रूप से!) उनमें फूट डालते हुए राज किया जा सके, जहाँ आसानी से विभिन्न 'जनजातियों' का अविष्कार किया जा सकता था और उन्हें एक-दूसरे के विरुद्ध खड़ा किया जा सकता था।

रिग्बी आगे और स्पष्ट करते हैं :

औपनिवेशिक प्रशासकों, मिशनरियों और स्थानीय भावी-ईसाई-सम्भ्रान्तों के लिए टुट्सी 'सर्वोत्तम, सर्वाधिक तेजस्वी, सर्वाधिक ऊर्जावान, प्रमुख, प्रगति को समझ सकने की सर्वाधिक योग्यता वाले, और लोगों में सर्वाधिक स्वीकार्य हैं'। इसलिए उन्हें हर तरह के विशेषाधिकार दिये गये, 'सभी स्तरों पर प्रशासन में नियुक्ति के लिए विशेष रूप से शिक्षा के अवसर दिये गये, जबकि हुटु खानों और वनरोपण में काम कर सकते थे'। ... इससे भी अधिक यह कि जब हुटु और टुट्सी के बीच उत्तर-औपनिवेशिक काल के राज्यों रवाण्डा और बुरुण्डी में दुखद संघर्ष उभरे—जिस कारण भारी संख्या में लोगों की जानें गयीं और यह अब भी जारी है, और पूर्वी अफ्रीका में एक प्रमुख शरणार्थी समस्या भी पैदा हुई—तो इन संघर्षों के लिए पश्चिमी पर्यवेक्षक 'आदिम जाति' और 'जनजातीय' विद्वेष पर दोष मढ़ सकते थे, औपनिवेशिक काल, राजनीति और सरकार को पूरी तरह अपराधमुक्त करते हुए।

रवाण्डा का पूर्व-औपनिवेशिक और प्रारम्भिक औपनिवेशिक काल का इतिहास इस बात की ओर इंगित करता है कि उस दौरान चरवाहे समुदाय (जो बाद में टुट्सी कहे गये) और कृषिकर्मी समुदाय (जो बाद में हुटु कहे गये) के बीच विभाजन और संघर्ष था, कभी-कभी हिंसक भी। हम भारतीय इतिहास में इसके अनेक समानान्तर देख सकते हैं, उन तरीकों में जिसमें विद्यमान विभाजनों को नस्ली श्रेणियों में रूढ़ बनाया गया। उदाहरण के लिए, 1933 में बेल्जियनों द्वारा एक जनगणना की गयी[16] जिसने पहचान पत्र निर्गत करने तक की स्थिति में पहुँचा दिया था। उसके बाद से सभी रवाण्डा वासी या तो टुट्सी हैं या हुटु, एक अभ्यास जो तब तक जारी रहा जब तक कि जनसंहार के आलोक में ऐसे पहचान पत्र समाप्त नहीं कर दिये गये। यह स्मरण दिलाता है कि किस प्रकार रिस्ली ने एक जनगणना का उपयोग भारतीय वर्ण को रूढ़ बनाने में किया, जो पूर्व-औपनिवेशिक काल में अधिक लचीला रहा था।

क्रान्ति, स्वतन्त्रता, विभाजन, संघर्ष

उपनिवेश-विरोधी आन्दोलन 1950 के दशक में उभरे, जिसकी वजह से उपनिवेश का विभाजन करके रवाण्डा और बुरुण्डी बनाये गये, और 1962 में वे स्वतन्त्र देश हो गये। रवाण्डा ने एक हुटु-प्रभुत्व वाली सरकार का निर्वाचन किया। क्रान्ति की अवधि में अधिक शक्तिशाली टुट्सियों और अधिक संख्या वाले हुटुओं के बीच बारम्बार संघर्ष होते रहे। इनमें 1959 का एक महत्वपूर्ण हुटु विद्रोह भी शामिल है, जिसमें हज़ारों टुट्सी मारे गये और उससे बहुत अधिक देश छोड़कर चले गये। देश छोड़कर जाने का क्रम अनेक लहरों में चलता रहा—कभी हुटु, तो कभी टुटु—जिसने अनेक क्षेत्रीय संघर्षों को हवा दी। उनमें 1963 का टुट्सी आक्रमण और उसके बाद हुटु प्रतिक्रिया हुई जिनमें हज़ारों लोग मारे गये, जिस घटना को कभी-कभी 'प्रथम रवाण्डा जनसंहार' के नाम से भी जाना जाता है।

चर्च-शैक्षिक धुरी

कैथोलिक चर्च ने टुट्सी और हुटु को अलग-अलग नस्लें मानने की औपनिवेशिक सरकार की नीति का समर्थन किया। जो भी हो, 1959 की रवाण्डा क्रान्ति के साथ ही टुट्सियों को दिया जा रहा चर्च का समर्थन नाटकीय ढंग से घट गया। स्वयं हैमी (Hamitic) मिथक पलट गया। एक राजनीतिक वैज्ञानिक रेनी लेमार्शाण्ड ने, जिन्हें रवाण्डा में नृजातीय संघर्ष और जनसंहार पर उनके शोध के लिए जाना जाता है, ध्यान दिलाया :

> उन्मत्त टुट्सी-विरोधी, राजतन्त्र-विरोधी सिद्धान्त के लेन्स से छन कर निकलती हुई हैमी अवधारणा आश्चर्यजनक ढंग से रूपान्तरित हो गयी। जिसे यूरोपीयों ने अनाड़ी की तरह मानवता के एक श्रेष्ठतर ब्राण्ड के रूप में देखा, उसे ही मानव

> प्रकृति में सबसे बुरे अवगुणों के साकार रूप में अधिक बेहतर ढंग से देखा गया : दुष्टता और धूर्त्तता, विजय और दमन। जहाँ मिशनरियों ने सामी मूल की अवधारणा को नस्ली श्रेष्ठता के स्रोत के रूप में लागू किया, हुटु सिद्धान्तकारों ने उसे विदेशी होने के प्रमाण के रूप में देखा। ... जिसे अधिकांश यूरोपीयों ने स्त्रैण सौम्यता के रूप में देखा उसकी ही अब हुटु जनों को अधीन करने के एक और षडयन्त्र की चाल के रूप में निन्दा की गयी।[17]

जैसे ही अफ्रीका में राष्ट्रवादी भावना का विस्तार शुरू हुआ, कई टुट्सी बुद्धिजीवियों ने कैथोलिक चर्च को आलोचनात्मक दृष्टि से औपनिवेशिक शक्ति के एक उपकरण के रूप में देखना शुरू किया, जिसने रवाण्डा के मामलों में अत्यधिक हस्तक्षेप किया था। **चर्च ने, जो टुट्सी जन समुदाय को नस्ली रूप में श्रेष्ठ चित्रित करने में मुख्य भूमिका निभाती रही थी, अब पाला बदल लिया और हुटु जन समुदाय से हाथ मिला लिया।** अब मिशनरियों ने 'चर्च स्कूलों और चर्चों की नियुक्तियों में हुटु जनों के लिए अवसर बनाने शुरू किये और एक हुटु प्रति-सम्भ्रान्त वर्ग को पोषित किया। चर्च के गोरे पादरियों ने तो सन 1957 में 'बहुटु घोषणा पत्र' का प्रारूप तैयार करने में भी भाग लिया'।[18] शीघ्र ही, घटनाएँ हुटुओं में टुट्सियों के विरुद्ध नस्ली घृणा के मजबूत होने की दिशा में खिसकती चली गयीं।

दूसरे शब्दों में, चर्च ने एक श्रेष्ठ नस्ल के रूप में पहले एक मूल निवासी समूह (टुट्सी) का समर्थन किया था, और इन विभाजनकारी पहचानों को रूढ़ बनाने में सहायता की थी, और उसके बाद पद-दलित (हुटु) की अपनी पहचान को प्रबल बनाने तथा मूल निवासी 'शत्रु' समूह (टुट्सी) के विरुद्ध संघर्ष करने में सहायता करने के लिए पाला बदल लिया था। अकादमिकों के एक दल द्वारा किये गये अध्ययन में हाल में एक मूल निवासी ईसाई विद्वान ने जनसंहार लाने में चर्च की भूमिका को इस प्रकार निर्धारित किया है :

> स्विस बिशप आन्द्रे पेराउदिन इस नीतिगत परिवर्तन में सबसे प्रमुख चर्च व्यक्तित्व थे। जब उन्हें काबगयी डायोसीस में नियुक्त किया गया तब उन्होंने चर्च द्वारा धर्मान्तरण के विभाजनकारी तरीकों पर प्रश्न नहीं उठाये। हालाँकि उन्होंने दावा किया कि वे अपने अनुयायियों में परोपकार को प्रोत्साहित करते थे, उन्होंने उन्हीं विभाजनकारी तिकड़मों पर चलना जारी रखा। सन 1950 वाले दशकान्त में पेराउदीन और बेल्जियम के औपनिवेशिक प्रशासन ने हुटु रिपब्लिकन आन्दोलन को समर्थन देने का निर्णय किया, जो कैथोलिकों द्वारा प्रशिक्षित हुटु बुद्धिजीवियों के नेतृत्व में एक अतिवादी राजनीतिक पार्टी थी। औपनिवेशिक और चर्च समर्थन के साथ, यह हुटु रिपब्लिकन पार्टी जिसे हुटु मुक्ति आन्दोलन कहा जाता था, 1959 का चुनाव जीत गयी और सत्ता में आयी। लेकिन एकता और सामाजिक न्याय पुनर्स्थापित करने के बदले, पार्टी ने बिना सोचे-विचारे उपनिवेश की सभी बुराइयों के लिए टुट्सियों पर दोषारोपण किया, और बेल्जियम के औपनिवेशिक

प्रशासन की सहायता से इसने बीस हज़ार से अधिक टुट्सियों की हत्या कर प्रथम रवाण्डा जनसंहार किया, जबकि अन्य बीस हज़ार भागकर पड़ोसी देशों या विदेशों में चले गये या उन्हें निकाल दिया गया। जो देश में रह गये उन्हें उनके मूलभूत मानवाधिकारों से भी वंचित रखा गया। सन 1994 के जनसंहार से पूर्व टुट्सियों का दानवीकरण किया गया। हालाँकि यह स्पष्ट और गम्भीर मानवाधिकार उल्लंघन था, बिशप पेराउदिन और उनके वरिष्ठ सहयोगियों ने इन घटनाओं को सामाजिक अन्याय को दूर करने की एक सामाजिक क्रान्ति के रूप में माना तथा उसके बुरे होने की

बातों का खण्डन किया। तीस वर्षों तक इन दृष्टिकोणों पर प्रश्न नहीं उठाया गया।[19]

सन 1994 में, हुटुओं द्वारा टुट्सियों का जनसंहार विश्व मानवता के विवेक में विस्फोट की तरह आया। नील्स कास्टफेल्ट कहते हैं कि **'हालाँकि चर्च ने हमेशा जनसंहार को स्पष्ट रूप से वैध नहीं ठहराया, उसने हुटु समूहों से निकट के सम्बन्ध बनाये, जिन्होंने ऐसा जनसंहार किया और इस प्रकार इसके लिए संस्थागत जिम्मेदारी का भागीदार बनी'**।[20]

एलन थॉम्पसन विस्तार से बताते हैं :

कैथोलिकों और एंग्लिकन चर्चों के हुटु नेतृत्व ने, जिसमें कुछ उल्लेखनीय साहसिक अपवाद हैं, इन महीनों में स्पष्ट रूप से भर्त्सना-योग्य भूमिका निभायी, बहुधा सीधे तौर पर जनसंहार करने वालों की सहायता करने में मिली-भगत की, बहुत अच्छा व्यवहार रहा तो चुप रहकर या विशेष रूप से तटस्थ रहकर। सामान्य ईसाइयों द्वारा इस व्यवहार को आसानी से हत्याओं के अनुमोदन के रूप में व्याख्यायित किया गया, विशेषकर जनसंहार के नेताओं के साथ चर्च नेताओं के निकट सम्बन्धों को देखते हुए। सम्भवत: यह जनसंहार के बारे में सबसे बड़े रहस्य को स्पष्ट करने में सहायता करता है : उतने अधिक सामान्य लोगों को जनसंहार में भागीदार बनाने में हुटु सत्ता की भयावह सफलता।

किसी भी अन्य तरीके से इतनी तेजी से इतने अधिक लोगों की हत्या नहीं की

जा सकती थी।[21]

हाल-हाल में, बुरुण्डी के डोमिनिकी फादर ईमैन्युएल नटाकारुटिमाना ने ध्यान दिलाया कि 'एक अफ्रीकी देश जितना अधिक ईसाई है, वहाँ उतना ही अधिक मारे जाने का ख़तरा है'।[22] यह, उन्होंने कहा, संकेत देता है कि चर्चों को अपने धर्मान्तरण के तरीकों पर पुनर्विचार करना चाहिए।

अपनी हाल की पुस्तक, 'रवाण्डा में ईसाइयत और नरसंहार' (*Christianity and Genocide in Rwanda*, केम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस), में बोस्टन विश्वविद्यालय के टिमोथी लौंगमैन दिखाते हैं कि ईसाई शास्त्र के विभिन्न आयाम उपनिवेशवाद के ही

रूपान्तरित संस्करण हो गये थे। वे दिखाते हैं कि किस प्रकार चर्च के अपने सांगठनिक ढाँचे और उसमें भी भाँति-भाँति के चर्चों की प्रतिस्पर्धा ने रवाण्डा के जनसंहार में योगदान दिया और अक्षरशः उसे गति दी।[23] चर्च स्वयं को अपनी औपनिवेशिक गठरी से मुक्त प्रस्तुत करती है, लेकिन लौंगमैन दिखाते हैं कि यह असत्य है, क्योंकि वह जनसंहारी महाविनाश की ओर ले जाने वाली स्थानीय जातीय राजनीति में जिस ढंग से भाग लेती है उससे यही प्रमाणित होता है। हालाँकि अन्य संस्कृतियों पर दोषारोपण करते हुए उत्पीड़न साहित्य के सृजन में चर्च दक्ष है, इसने स्वयं 1990 के दशक में विभिन्न स्थानीय हत्याओं और जनसंहारों में अपनी भूमिका को कम करके बताया या सेंसर कर दिया है। चर्च इस बात से सन्तुष्ट थी कि रवाण्डा शासन पूरी तरह उसके धर्मान्तरण एजेंडे के अनुरूप था, और यहाँ तक कि प्रशासन को विभिन्न मानवाधिकार संधियों के चर्च संस्करणों को समर्थन देने के लिए और 'यथासम्भव उन्हें लागू करने के लिए काम करने का' निर्देश दिया।[24]

लौंगमैन ध्यान दिलाते हैं कि चर्चों ने जनसंहार के दौरान, उस शासन को जो एक जातीय समूह को दूसरे के निष्कासन के लिए और हिंसा को बढ़ावा दे रहा था, प्रबल समर्थन देकर हिंसा में पतित होने की आसान करने की एक मूलभूत भूमिका निभायी।[25] जनसंहार के बाद की प्रतिक्रियाओं में, ईसाइयत ने एक बार फिर बढ़-चढ़कर एक नकारात्मक भूमिका निभायी। विभिन्न प्रकार की सभी चर्चों ने ईसाई राज्य को जनसंहार के लिए जिम्मेदार न ठहराने की प्रवृत्ति दिखायी।[26] वास्तव में, ईसाई चर्चों में दिये जाने वाले उपदेशों ने सामान्य जनों में यह विचार बैठा दिया कि बढ़ती हिंसा ईसा मसीह के दूसरी बार आने के संकेत हैं।[27]

भारत के साथ समानता

रवाण्डा में बाइबल के हैम मिथक की व्याख्या ईसाई प्रचारक मन्तव्यों से की गयी, यूरोपीय शिक्षाविदों ने उसका समर्थन किया, औपनिवेशिक और उत्तर-औपनिवेशिक बाहरी शक्तियों ने उसे इस्तेमाल किया और उसका अन्त उन समुदायों के बीच जनसंहारों का पोषण करने में हुआ जो हज़ारों वर्षों से नस्ली नफ़रत के बिना एक साथ रहते आ रहे थे। भारत में एक नस्ली मिथक के विकास के साथ यह प्रक्रिया जिन समानताओं की सहभागी है, वे आश्चर्यजनक हैं, और एक ऐसी चेतावनी देती है जिनकी हम उपेक्षा नहीं कर सकते। भारत में, औपनिवेशिक विद्वानों ने पहले एक आर्य मिथक गढ़ा और भारत के तथाकथित आर्यों का गर्व बढ़ाया, उन्हें अपने ही दूर के सम्बन्धियों के रूप में देखते हुए जिन्हें अब एक बार फिर 'सभ्य' बनाया जा रहा था। उसके बाद उन्होंने तथाकथित द्रविड़ पहचान निर्मित करने के लिए पाला बदला, यह दावा करते हुए कि वे अलग और आर्यों से पीड़ित हैं।

एक और चिन्ताजनक समानता है कैथोलिक चर्च द्वारा अपने मतावलम्बियों के क्षेत्रों में बड़े पैमाने पर सामाजिक वर्चस्व का सृजन करना। रवाण्डा में, सामाजिक-आर्थिक परियोजनाओं में चर्च के भारी निवेश ने प्रबल सम्भ्रान्त वर्गों को निर्मित करने में सहायता की, जिन्होंने बाद में जनसंहार करवाने में प्रमुख भूमिका निभायी।[28] जस्टिन दिवाकर, कैथोलिक मछुआरा समुदाय के एक नेता, दक्षिण तमिलनाडु में कैथोलिक डायोसीस के एक अध्ययन में समुदाय के सामाजिक-आर्थिक ढाँचे पर चर्च की वैसी ही पकड़ का उद्घाटन करते हैं।[29]

अब चर्च द्वारा प्रायोजित आन्दोलनकारियों के लिए आर्य के रूप में वर्णित चीजों के विरुद्ध द्रविड़ हमले की अगुवाई करने के लिए मंच तैयार है। इस मिली-भगत में, संस्कृत और हिन्दू धर्म को इस रूप में चित्रित किया जा रहा है कि वे आर्यों द्वारा शुरू किये गये, जबकि तमिल और तथाकथित तमिल धर्म को एक द्रविड़ अस्मिता के रूप में। अब द्रविड़ पहचान और धर्म का वर्णन इस रूप में किया जा रहा है कि सन्त टॉमस के माध्यम से उनके स्रोत मूलतः ईसाई हैं। हिन्दू धर्म और संस्कृत को, इसलिए, ऐसी अशुद्धता के रूप में दिखाया जा रहा है जिसे नस्ली और सांस्कृतिक शुद्धता को पुनर्स्थापित करने के लिए मटियामेट कर देने की बेहद ज़रूरत है।

परिशिष्ट घ
मूलवासी अमेरिकियों को टॉमस चकमा

सेंट टॉमस मिथक के भारत में आने से बहुत पहले, यह मिथक विकसित किया गया था कि सेंट टॉमस अमरीका गये थे और इसे मूलवासी अमरीकियों को उनके अपने मूल के बारे में ही धोखा देने के लिए एक तरीके के रूप में परिष्कृत किया गया। इतिहासकार वुल्फगैंग हैस और मेयर राइनहोल्ड स्पष्ट करते हैं कि किस तरह मिशनरियों द्वारा मूलनिवासी अमरीकी परम्पराओं को अपने में समायोजित करके नष्ट करने, और उनका धर्मान्तरण कर उन्हें ईसाई बनाने के लिए सेंट टॉमस के मिथक का उपयोग किया था।

> उस समय, सेंट टॉमस की उपस्थिति के असंख्य चिह्न खोज निकाले गये, विशेषकर दक्षिण अमरीका में, जहाँ परिस्थितियाँ इस कहानी के विकास के अनुकूल थीं। पहले ईसाई मिशनरियों के उकसावे पर मिलाने की एक उल्लेखनीय प्रक्रिया प्रारम्भ हुई ... 'जूम' (Zume) शब्द को 'टॉम' (Tome) (Thomas) शब्द के अपभ्रंश के रूप में देखा जाना आसान था और इस मूल निवासी मसीहा को एक ईसाई प्रचारक में रूपान्तरित करना भी। सेंट टॉमस की नयी दुनिया (New World) की यात्रा की कहानी बहुत सफल रही। लेक टिटिकाका के आसपास के क्षेत्र में, वहाँ के देवता विराकोचा के साथ इसका विभ्रम पैदा किया गया जिसके कुछ चिह्न अब भी शेष हैं।[1]

ईसाई मिशनरियों ने लोकप्रिय स्थानीय मूल निवासी अमेरिकियों के हर देवता को सेंट टॉमस से मिला दिया, ऐसे तरीके के रूप में जिससे कि सेंट टॉमस को जन मानस में प्रत्यारोपित किया जा सके, जिसके बाद वे मूलवासियों के देवताओं को स्थानापन्न या पूरी तरह उनका उन्मूलन कर सकें। आज भी, गोरे ईसाइयों द्वारा बताया जा रहा इतिहास इस प्रकार है :

> इन सिद्धान्तों के अनुसार, मेक्सिको में मूल निवासी इण्डियनों के देवता क्वेट्ज़ाल्कोआट्ल और पेरू में इंका-पूर्व संस्कृति वाहक अन्य देवताओं के अलावा विरकोचा से जोड़े जाने वाले ईसाई प्रचारक सन्त टॉमस ईसा मसीह को सलीब पर लटकाये जाने के बाद शीघ्र ही अमरीकी इण्डियनों के बीच आये थे, और उन्होंने नयी दुनिया (New World) के प्रथम ईसाई युग का प्रारम्भ किया था। ... सोलहवीं शताब्दी की परिकल्पना को व्यापक रूप से अलंकृत करते हुए, कुछ चर्च पादरियों और यहाँ तक कि स्वतन्त्रता काल के साधारण भक्तों ने भी मूल निवासी अमरीकी ईसाइयों की फलती-फूलती संस्कृति के वैभव की परिकल्पना की, जिसे लालच, व्यक्तिवाद और भौतिकवाद द्वारा विकृत ईसाइयत की आइबेरियाई शाखा की विजय के समय बुझा दिया गया था।[2]

परिशिष्ट ङ
न्यू यॉर्क कान्फ्रेंस 2005 में प्रस्तुत शोध-पत्र

1. लेखक : डी. देवकला

शोध-पत्र का शीर्षक : 'प्रारम्भिक भारतीय ईसाइयत और प्रतिभा विज्ञान' (Early Indian Christianity and Iconography)

चुनिंदा अंश / सारांश : ईसा-पूर्व काल में बुद्ध के चित्रों/मूर्तियों, तीर्थंकर के चित्रों/मूर्तियों और छह प्रकार की धार्मिक मूर्तियों की अनुपस्थिति स्पष्ट रूप से इंगित करती है कि मूलभूत सिद्धान्त जो इन मूर्तियों के विकास के मूल कारण हैं वे उस समय अस्तित्व में नहीं थे। शैव मत और वैष्णव मत के उद्‌भव और विकास में वेदों ने भूमिका नहीं निभायी। अस्तित्व-त्रयी (Trinity) का सिद्धान्त ही, ईसा मसीह-अवतार आदि, जो ईसाइयत का आधारभूत सिद्धान्त है, शैव मत और वैष्णव मत का मूलभूत डत्रिमूर्ति/त्रिदेव़ सिद्धान्त है; इसलिए, वे प्रारम्भिक भारतीय ईसाइयत या सेंट टॉमस द्रविड़ ईसाइयत से ही निकले हैं ... त्रिमुखी शिव की तुलना 'होमोइउसियस' की संकल्पना और सोमस्कन्द तथा मुमुर्थी की तुलना होमोइउसिस से की जा सकती है। नटराज शब्द और एकेश्वरवाद (यूनिटेरियनिज़्म) के बीच तुलना की गयी है।

2. लेखक : पी. लजारस सामराज

शोध-पत्र का शीर्षक : 'तिरुकुरल पर बाइबल का प्रभाव' (The influence of Bible on Thirukural)

चुनिंदा अंश / सारांश : बाइबल का तिरुकुरल पर प्रभाव का निर्धारण दोनों ग्रन्थों में समान रूप से पाये जाने वाले सिद्धान्तों के तुलनात्मक तथा समालोचनात्मक मूल्यांकन के माध्यम से किया गया है।

3. लेखक : पी. त्यागराजन

शोध-पत्र का शीर्षक : 'ईसाइयत और शैव सिद्धान्त' (Christianity and Saiva Siddhanta)

चुनिन्दा अंश / सारांश : भारतीय भूमि पर प्रारम्भिक ईसाइयत के उदय के काफी पहले, 'उर' शहर पर आधारित बैबिलॉन की विरासत के साथ प्राचीन तमिलों के सक्रिय सांस्कृतिक और वाणिज्यिक सम्बन्ध थे। बाइबल के 'पुराना सन्देश' (ओल्ड टेस्टामेंट) और अन्य सम्बन्धित स्रोतों में पाये जाने वाले इसके प्रासंगिक सन्दर्भ तमिल संगम समाज और प्राचीन ईसाइयत के बीच सांस्कृतिक सम्पर्क के साक्ष्य हैं, जो भारत में प्रारम्भिक ईसाइयत का एक अंग है ... सेंट टॉमस भारत में प्रारम्भिक ईसाइयत के बीज बोने वाले पहले डधर्मदूत थे ... उन्होंने ईसा मसीह के उपदेश की

शिक्षा दी और इस्वी सन 72 में शहीद होने तक वह तमिलकम में रहे। सेंट टॉमस का आगमन भारत में प्रारम्भिक ईसाइयत के विकास का एक उत्प्रेरक स्रोत बना, विशेषकर तमिलनाडु में ... संगम समाज में ईसाई चिन्तन के प्रभाव को सत्यापित करने के लिए साक्ष्य उपलब्ध हैं।

4. लेखक : एम. देइवनयगम और डी. देवकला

शोध-पत्र का शीर्षक : 'ईसाइयत और शैव सिद्धान्त' (Christianity and Saiva Siddhanta)

चुनिन्दा अंश / सारांश : ईसा बाद की प्रथम शताब्दी में 'एशियाई ईसाई आध्यात्मिक आन्दोलन' ईसा मसीह के जीवन के आधार पर खड़ा हुआ (न केवल उनकी शिक्षा के आधार पर, बल्कि उनकी मृत्यु और पुनर्जीवित होने के आधार पर) ... एक प्राचीन सेंट टॉमस तमिल/द्रविड़ ईसाइयत ने 'शैव मत' और 'वैष्णव मत' के विकास के लिए मार्ग प्रशस्त किया। 'शैव सिद्धान्त' (बारहवीं शताब्दी से चौonवीं शताब्दी तक) सेंट टॉमस द्रविड़ ईसाइयत की एक धर्मशास्त्रीय व्याख्या है और यह उन शैव सिद्धान्तियों की संकल्पना से अलग है जिन्होंने जैन धर्म से आकर शैव मत को अपनाया। ... चौon शैव सिद्धान्त शास्त्रों के आधार ग्रन्थ, शिवज्ञानपोतम, का विश्लेषण स्पष्ट रूप से उजागर करता है कि यह 'सेंट टॉमस द्रविड़ ईसाइयत' की धर्मशास्त्रीय व्याख्या है।

5. लेखक : एम. देइवनयगम और डी. देवकला

शोध-पत्र का शीर्षक : 'शिवज्ञानपोतम में त्रयी का सिद्धान्त' (Doctrine of Trinity in Sivagnanapotam)

चुनिन्दा अंश / सारांश : एक ही व्यक्तित्व के आधारभूत विभूति होने की ईसाई संकल्पना और उसकी व्याख्या शिवज्ञानपोतम में दी गयी ईश्वर की संकल्पना में देखी जा सकती है। ईश्वर प्रेम के रूप में, ईश्वर गुरू के रूप में, ईश्वर उद्धारक के रूप में, तमिआरुल के माध्यम से शिव सट्टु और तमिआरुल शिव सट्टु का गुरु बनना, ईसाइयत की त्रयी की संकल्पना को प्रतिबिम्बित करता है।

6. लेखक : एम. देइवनयगम और डी. देवकला

शोध-पत्र का शीर्षक : 'तिरुकुरल में त्रयी का सिद्धान्त' (Doctrine of Trinity in Thirukural)

चुनिन्दा अंश / सारांश : प्रथम प्राचीन सेंट टॉमस तमिल/द्रविड़ साहित्य, तिरुकुरल जिसमें 133 अध्याय और 1330 पद हैं, त्रयात्मक ईश्वर को स्पष्ट रूप से आलोकित करता है। ... निट्टर पेरुमई : तीसरे अध्याय की तुलना आइरेनियस (ईस्वी सन 115—190) की पुष्टि और पाप-स्वीकार से की जा सकती है, जो कहते हैं, 'पुत्र में

जो अदृश्य है वह पिता है और जो पिता में अदृश्य है वह पुत्र है। खीस्तशास्त्रीय पुष्टि, द्वयात्मक पुष्टि, और त्रयात्मक पुष्टि पयिरम 'इयलबुडाया मुवर'— 'सहशाश्वत', 'सहसम', 'एकसारत्व', और 'सिद्धान्तैकता' (इप्ब्ेग्े)—में उल्लेखनीय है।

7. लेखक : मोजेज माइकल फैराडे

शोध-पत्र का शीर्षक : 'ईसाइयत और सिद्ध साहित्य' (Siddha Literature and Christianity)

चुनिन्दा अंश / सारांश : तमिल सिद्ध अपनी देशज दवाओं, रसायन, यौगिक दक्षता, और कूट कविताओं के लिए विख्यात हैं ... उनकी कविताओं में अन्तर्निहित कूट लक्ष्यार्थों को ईसाई संकल्पनाओं और शिक्षाओं के उपकरणों द्वारा प्रकट करना होगा, जो सिद्ध साहित्य पर ईसाइयत के प्रभाव को भी उजागर करेगा।

8. लेखक : जोशुआ सिरोमोनी

शोध-पत्र का शीर्षक : 'ईसाइयत और इतिहास' (Christianity and Ithihasa)

चुनिन्दा अंश / सारांश : ईसा मसीह के धर्मोपदेश के आलोक में महाकाव्य रामायण का एक वस्तुनिष्ठ अध्ययन; विशेषकर रामायण के रामावतार अंश का, जिसमें कम्बन स्वर्ग का राज अवतारी राजा के अधीन प्राप्त करने की सम्भावना का वर्णन करते हैं।

9. लेखक : जे.डी. भास्कर दोस

शोध-पत्र का शीर्षक : 'ईसाइयत और ब्रह्मसूत्र' (Brahmasutras and Christianity)

चुनिन्दा अंश / सारांश : ब्रह्मसूत्र ईश्वर, आत्मा, तथा आत्मा के बन्धन और उसकी मुक्ति का गहन विश्लेषण करने के प्रयास करते हैं। ... ब्रह्मण अर्थ को प्रकट करने वाले विभिन्न नाम ईसा मसीह के विभिन्न नामों से तुलनीय हैं : 'जीसस के साथ ईश्वर', 'लाइट के साथ ज्योति', 'वर्ड के साथ अक्षरम', 'आमीन के साथ ओम', 'ट्रूथ के साथ सत्य ब्रह्म' और 'लाइफ के साथ प्राण'। उसी प्रकार आत्मा के आवरण के अर्थ को ध्वनित करने वाले शब्द, जैसे 'बंधम्' और 'तिरोकितम्' को 'मूल पाप' (Original Sin) और 'व्यक्तिगत पाप' (Individual Sin) की अवधारणा से जोड़ा जा सकता है। वेदान्तिक सिद्धान्त 'अहमेव यज्ञ:' भी ईसा मसीह के बलिदान से जुड़ा हुआ है। ... वर्ण-व्यवस्था की समस्या पर विचार किया गया है और यह भी कि किस प्रकार निचली जातियों को ब्रह्म विद्या तक पहुँच से वंचित रखा गया, और इसके साथ ही यहूदी परम्पराओं के सन्दर्भ इसी सिलसिले में दिये गये हैं।

10. लेखक : रामानाथन पलनिअप्पन

शोध-पत्र का शीर्षक : 'इसाइयत और आदि शंकर' (Christianity and AdiSankara)

चुनिन्दा अंश / सारांश : सार और सामग्री में वेदान्त वेदों से भिन्न है। ... आदि शंकर का अद्वैत सिद्धान्त और वेदान्तिक सन्दर्भ में उसकी व्याख्यात्मक भूमिका का विश्लेषण किया गया। सेंट टॉमस द्रविड़ ईसाइयत ही मौलिक सिद्धान्त है जिससे वेदान्त और दर्शनशास्त्र के षड् दर्शन निकलकर अस्तित्व में आये।

11. लेखक : एम.जी. मैथ्यू

शोध-पत्र का शीर्षक : 'ईसाइयत और वेदान्त पर एक संक्षिप्त टिप्पणी' (A short note on Christianity and Vedanta)

चुनिन्दा अंश / सारांश : 'अहम् ब्रह्मास्मि' (मैं ईश्वर हूँ) कथन अनीश्वरवाद से अधिक पापपूर्ण है। वेदान्त मानव की मुक्ति के लिए निश्चित और स्पष्ट मार्ग दिखाता हुआ प्रतीत नहीं होता। दूसरी ओर, बाइबल की शिक्षा द्वैध रहित और स्पष्ट है। यह इस ब्रह्माण्ड और मानव के भविष्य के बारे में एक इतिहास और भविष्यवाणी है।

12. लेखक : जे. डी. भास्कर दोस

शोध-पत्र का शीर्षक : 'ईसाइयत और षडदर्शन' (Six Darshanas and Christianity)

चुनिन्दा अंश / सारांश : द्रविड़ सन्त, वेद व्यास ने ईसा बाद दूसरी शताब्दी में उपनिषदों का संकलन किया ... वेद और वेदान्त के बीच उनके सिद्धान्तों के आधार पर अन्तर किया गया, जैसे बलि पूजा डयज्ज्ञ और यज्ञ के फल की अवधारणा ... लेखक ने यह स्थापित करने का प्रयास किया है कि आत्मा के बन्धन की प्रकृति और उसके कारण का उत्तर दर्शन की भारतीय प्रणाली की तुलना में बाइबल और कुरान के तुलनात्मक अध्ययन द्वारा बेहतर ढंग से दिया जा सकता है।

13. लेखक : मर्सी राजादुराइ

शोध-पत्र का शीर्षक : 'ईसाइयत और शक्तम' (Saktham and Christianity)

चुनिन्दा अंश / सारांश : देवी पूजन को मुख्य रूप से प्रारम्भिक द्रविड़ों से जोड़ा गया है। ... जैसे भारतीय ईसाई धर्मशास्त्र भारतीय स्रोतों से उपलब्ध भाँति-भाँति के प्रतीकों का उपयोग एक रचनात्मक तरीके से करता है, वैसे ही भारतीय ईसाई लेखक शक्ति, मातृ देवी के स्त्रोत का उपयोग पवित्र आत्मा से जोड़ने के लिए करते हैं।

14. लेखक : येसुपथम जोन्सन थगैया और डी. देवकला

शोध-पत्र का शीषक : 'इसाइयत और कौमारम' (Christianity and Kaumaram)

चुनिन्दा अंश / सारांश : कुमारक्कुदवुल या ईसा मसीह का जन्म जैसा कि बाइबल में उद्घाटित किया गया है ... इजरायल के पितृपुरुष, अब्राहम, यहूदी धर्म और ईसाइयत का इतिहास; पिता, पुत्र और पवित्र आत्मा की संकल्पना; गुरु की स्थिति, ज्ञान, बलि डयज्ञ़, सलीब पर मृत्यु, पुनरुज्जीवन और पापमुक्ति आदि पर विचार किया गया है ... यह लेख यवनों के विश्वास पर आधारित धर्म और शैव मत पर आधारित है, तथा इसमें आर्य प्रणाली या धर्म व्यवस्था को बाहर रखा गया है।

15. लेखक : एम. देइवनयगम और डी. देवकला

शोध-पत्र का शीर्षक : 'ईसाइयत और शैव मत' (Christianity and Saivism)

चुनिन्दा अंश / सारांश : वेदों में प्रकृति की पूजा अपरिहार्य भूमिका निभाती है। वैदिक रुद्र आँधी और वर्षा के देव हैं, जबकि शैव मत के शिव सर्वोच्च देव ... शैव मत के मूलभूत सिद्धान्त, जैसे, त्रिमूर्ति, अवतार आदि, ईसा-पूर्व के काल की भारतीय पूजाओं और धर्मों में नहीं पाये जाते। ये सिद्धान्त ईसाइयत के हैं और इसलिए ये शैव मत में दृष्टिगोचर हुए।

16. लेखक : एम.जी. मैथ्यू

शोध-पत्र का शीर्षक : 'ईसा बनाम कृष्ण—अवधारणा और मिथक निर्माण'

(Christ versus Krishna–Concept and Mythmaking)

चुनिन्दा अंश / सारांश : लेखक ईसा मसीह के सद्गुणों की तुलना कृष्ण के कर्मों से करते हैं जो उतने-सदाचारी-नहीं (not-so-virtuous) हैं। ईसा मसीह को एक हमेशा-दयालु, एक कृपालु मुक्तिदाता और मार्ग दिखाने वाले प्रकाश के रूप में दिखाया गया है, और कृष्ण को अप्रभावी मुक्तिदाता और एक आत्म-खण्डन करने वाले के रूप में। ईसा मसीह द्वारा स्वयं को नष्ट करके भी मानव को बचाने के कार्य कृष्ण की संकल्पना को धूमिल करते हैं और कृष्ण को एक मिथक के रूप में दिखाया गया है। कृष्ण नहीं, ईसा मसीह ने पुन: आने का वचन दिया है।

17. लेखक : जॉली सेबैस्टियन

शोध-पत्र का शीर्षक : 'प्रजापति और जीसस—एक तुलनात्मक अध्ययन'

(Prajapathy and Jesus – A Comparative Study)

चुनिन्दा अंश / सारांश : विश्व साहित्य में प्रजापति के लिए साहित्यिक प्रारूप हैं, जैसे प्रोमेथियस (ग्रीक), मिथ्र (फारसी), प्रजापति (भारतीय) और ईसा मसीह (हिब्रू),

जिनमें केवल ईसा मसीह ही ऐतिहासिक व्यक्तित्व हैं और अन्य पौराणिक या मिथकीय। वेद व्यास द्वारा वेदों की रचना वेदान्तिक युग में जाकर की गयी। वेदों में प्रजापति के यज्ञ का उल्लेख बलिदान के परिणाम की ओर इंगित करता है, जो कैलवरी पर्वत पर सन 30 में ईसा मसीह के प्रजापति यज्ञ के माध्यम से हुआ। यहाँ इस सन्दर्भ में स्वामी विवेकानन्द का यह वक्तव्य ध्यान देने योग्य है जिसमें उन्होंने कहा था— 'ईसा मसीह के माध्यम के अलावा कोई भी पिता को नहीं देख सकता'।

18. लेखक : डी. देवकला और डी. देवमाला क्रिस्टी

शोध-पत्र का शीर्षक : 'प्रजापति और जीसस—एक तुलनात्मक अध्ययन'

(Prajapathy and Jesus – A Comparative Study)

चुनिन्दा अंश / सारांश : बौद्ध धर्म की महायान शाखा की त्रिकाया—धर्म काया, सम्भोग काया और निर्माण काया—ईसाइयत की त्रयात्मक संकल्पना की व्याख्या करती है, अर्थात्, ईश्वर पुत्र, ईश्वर पिता, और ईश्वर पवित्र आत्मा।

19. लेखक : एम. देइवनयगम और डी. देवकला

शोध-पत्र का शीर्षक : 'प्रारम्भिक भारतीय ईसाइयत की पुनर्स्थापना' (Restorationof Early Indian Christianity)

चुनिन्दा अंश / सारांश : तिरुकुरल, भक्ति आन्दोलन, शैव मत, वैष्णव मत और बौद्ध धर्म की महायान शाखा को सेंट टॉमस द्रविड़ ईसाइयत से ही निकली शाखाओं की तरह माना जाता है। प्रस्थानत्रय—अर्थात ब्रह्म सूत्र, भगवद् गीता और उपनिषद्— संस्कृत में लिखी गयी सेंट टॉमस द्रविड़ ईसाइयत की ही पुस्तकें हैं। शैव सिद्धान्त को भी सेंट टॉमस द्रविड़ ईसाई संकल्पना के रूप में श्रेणीबद्ध किया जा सकता है। आर्य/ब्राह्मण संस्थानों, जैसे वर्णाश्रम धर्म और गलत व्याख्या के प्रभाव के कारण सेंट टॉमस द्रविड़ ईसाइयत को जैसी मान्यता मिलनी चाहिए थी, वैसी नहीं मिल पायी।

20. लेखक : एम.एस. वेंकटचलम

शोध-पत्र का शीर्षक : 'बाइबल और तमिल भक्ति काव्य में विवाह के रूपक—एक तुलनात्मक अध्ययन' (Marriage Metaphors in Bible and Tamil DevotionalPoetry – A Comparative study)

चुनिन्दा अंश / सारांश : ईसाई वधू सम्बन्धी रहस्यवाद के गीतों और तमिल भक्ति परम्परा के गीतों में मूलभूत सम्बन्ध तमिल भक्ति काव्य पर ईसाई परम्पराओं के गहरे प्रभाव को उजागर करते हैं।

21. लेखक : राघवन सुपैया और देवकला

शोध-पत्र का शीर्षक : 'सन्त टॉमस द्राविड़ ईसाइयत और वर्णाश्रम धर्म' (St.Thomas Dravidian Christianity and Varnashrama Dharma)

चुनिन्दा अंश / सारांश : तिरुकुरल को सेंट टॉमस द्रविड़ ईसाई साहित्य के रूप में देखा जाता है और तमिल भक्ति आन्दोलन तथा इसकी किरणें शैव मत तथा वैष्णव मत, तिरुकुरल से निकली शाखाएँ हैं। भारतीय संस्कृति की मूल मूल्य-प्रणालियों, जैसे बिरादरी और भाईचारा, के स्थान पर आक्रमणकारी आर्य शक्तियों द्वारा वर्णाश्रम धर्म की सामाजिक प्रणालियाँ लायी गयीं। वर्णाश्रम धर्म रंग पर आधारित था, न कि पेशे पर, और वर्ण-व्यवस्था को कार्य तथा वंश के सिद्धान्त के आधार पर कायम रखा गया। अग्नि-पूजक आर्य सर्वोच्च शासक बने तथा उनसे नीचे द्रविड़ों को दास बनाकर रखा गया। आदि शंकर के कार्यों ने इस प्रथा को और अधिक बुरी स्थिति में ला दिया।

22. लेखक : एस. पैनर्सेल्वम

शोध-पत्र का शीर्षक : 'भारत में प्रारम्भिक ईसाई मिशनरी और शहीद' (EarlyChristian Missionaries and Martyrs in India)

चुनिन्दा अंश / सारांश : तिरुवल्लुवर, वेद व्यास, तिरसठ शैव नयनमार, बारह वैष्णव आलवार, मेकन्दर, तिरुमूलर, नन्थनार और तिरुप्पनड़वार जैसे भारतीय सन्त और मिशनरियों के कार्य चूँकि ईसाई शिक्षा को प्रतिबिम्बित करते हैं, इसलिए वे सेंट टॉमस द्रविड़ ईसाई मिशनरी हैं।

23. लेखक : ई. जेम्स आर. डैनियल और एम. सुन्दर येसुवादियान

शोध-पत्र का शीर्षक : 'भारत में प्रारम्भिक ईसाइयत के विशेष लक्षण'

(Characteristic features of early Christianity in India)

चुनिन्दा अंश / सारांश : भारत में प्रारम्भिक ईसाइयत सेंट टॉमस और सेंट बारथॉलोम्यू द्वारा सीधे स्थापित की गयी थी। ईश्वरवादी शैव मत और वैष्णव मत, जैन धर्म और बौद्ध धर्म, जो अनीश्वरवादी और अज्ञेयवादी (सन्देहवादी) हैं, से आगे बढ़ गये। ईसाई चिन्तन के प्रभाव के कारण जैन धर्म और बौद्ध धर्म के बीच खाई बढ़ी। तिरुकुरल, शैव मत और वैष्णव मत प्रारम्भिक ईसाइयत से निकली शाखाएँ हैं। वेद और वेदान्त में ईसाइयत की संकल्पनाएँ हैं। इस प्रकार हम आन्तरिक और बाह्य साक्ष्यों के उपयोग के माध्यम से एक अखिल ईसाई छवि डया परिदृश्य़ तक पहुँचते हैं।

24. लेखक : जोएल एस. ज्ञानराज

शोध-पत्र का शीषक : 'गंगा नदी और पाप क्षमा का सिद्धान्त' (River Gangesand the Doctrine of the Forgiveness of Sins)

चुनिन्दा अंश / सारांश : जिस पवित्रता के भाव के साथ गंगा नदी को सम्मान दिया जाता है उसका वर्णन इस शोध पत्र में ऐतिहासिक दृष्टिकोण से किया गया है ... पवित्र जल की इस अवधारणा की तुलना जब पवित्र आत्मा और पापों से मुक्ति की अवधारणाओं से की जाती है, जो मूलत: ईसाई धार्मिक परिकल्पनाएँ हैं, तो यह निष्कर्ष निकलता है कि गंगा की पवित्रता को बाद की अवधारणा माना जा सकता है, जो प्रारम्भिक भारतीय ईसाइयत या सेंट टॉमस द्रविड़ ईसाइयत के हिन्दू धर्म पर प्रभाव को प्रदर्शित करता है।

25. लेखक : एम. देइवनयगम और डी. देवकला

शोध-पत्र का शीर्षक : 'हिन्दू धर्म में त्रयी का सिद्धान्त' (Doctrine of Trinity in Hindu religion)

चुनिन्दा अंश / सारांश : सेंट टॉमस द्रविड़ ईसाइयत ही हिन्दू धर्म, अर्थात् 'शैव मत' और 'वैष्णव मत', का मूल स्रोत है, जो इसी तथ्य से प्रमाणित होता है कि उनमें कुछ मूलभूत सिद्धान्त जैसे त्रिदेव (Trinity), अवतार, पाप के लिए क्षमा, और विश्वास से मोक्ष के सिद्धान्त शामिल हैं। ये सिद्धान्त हिन्दू धर्म के अद्वितीय सिद्धान्त हैं, जो ईसाइयत से ही निकले हैं। सभी प्राचीन द्रविड़ पूजाओं ... को पिता, पुत्र और पवित्र आत्मा की अवधारणा के रूप में पढ़ा जा सकता है ... इसलिए हिन्दू पुराकथाओं के पारिवारिक ढाँचे को ईसाइयत से निकला माना जा सकता है।

स्रोत : सारांश, भारत में आरम्भिक ईसाइयत के इतिहास पर प्रथम अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन 2005 की स्मारिका; एशियाई अध्ययन संस्थान, 2005, 145-178

परिशिष्ट च
त्याज्य पुरालेखवेत्ता का मामला

सिंधु घाटी की लिपि और प्रारम्भिक तमिल के विशेषज्ञ, इरावथम महादेवन, ऐसे विद्वान के उदाहरण हैं जो पश्चिमी हेरा-फेरी के शैक्षिक सिपाही के रूप में सेवा करने के लिए अपना लिये गये। वे इण्डियन काउंसिल ऑफ हिस्टॉरिकल रिसर्च के राष्ट्रीय फेलो (शोधकर्ता) बने। उनकी पुस्तक, 'सिंधु लिपि : पाठ, संगति और तालिकाएँ' (The Indus Script: Texts, Concordance and Tables, 1977) को सिंधु घाटी की लिपि पर अनुसंधान करने के लिए अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर एक प्रमुख स्रोत-पुस्तक के रूप में स्वीकार किया जाता है। उन्होंने तमिल-ब्राह्मी लिपि के विभिन्न पक्षों पर अनेक शोध पत्र लिखने के अलावा 'तमिल-ब्राह्मी लिपि का भण्डार' (Corpus of the Tamil-Brahmi Inscription, 1966) नामक पुस्तक भी प्रकाशित की है। उन्होंने इंटरनेशनल एसोसिएशन ऑफ तमिल रिसर्च में भी दस वर्षों तक समन्वयक, एपिग्रैफिकल सोसाइटी ऑफ इण्डिया की वार्षिक कांग्रेस के अध्यक्ष, और इण्डियन हिस्ट्री कांग्रेस के सामान्य अध्यक्ष के रूप में काम किया है। सन 2003 में, हार्वर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस ने उनकी चिरस्मरणीय पुस्तक 'आरम्भिक काल से छठी शताब्दी ईस्वी तक प्रारम्भिक तमिल पुरालेख विधा' (*Early Tamil Epigraphy from the Earliest Times to the Sixth Century* AD) का प्रकाशन किया।

सन 1970 में, जब वे जवाहर लाल नेहरू के फेलो (शोधार्थी) थे,[1] महादेवन एक परिकल्पना लेकर सामने आये कि हड़प्पा लिपि 'एक ऐसी भाषा है जो सामान्यत: दक्षिण द्रविड़ (जिनमें तेलुगू भी शामिल है) से मिलती-जुलती है और विशेष रूप से पुरानी तमिल से'। यह उन लोगों के लिए एक मधुर राग सरीखा था जो द्रविड़ अलगाववाद की आग सुलगाने में लगे थे। इसने भारत की विभाजित पहचानों के लिए सामाजिक और आर्थिक सिद्धान्त दिये यह दावा करते हुए कि आद्य-भारतीय और पुरानी तमिल राजनीति के श्रेणीबद्ध ढाँचों के बीच आश्चर्यजनक समानताएँ हैं'। उन्होंने सिद्धान्त दिया कि महाभारत की कथा हड़प्पा सभ्यता में एक पुरोहिती कुलीनतन्त्र और सामान्य लोगों के बीच वर्ग-संघर्ष की कथा है—भारतीय मार्क्सवादियों के लिए एक उपहार, जो यथा-सम्भव विभिन्न स्थानों में वर्ग-संघर्ष के अवसरों की खोज में थे।[2]

वैदिक बिम्बविधान के साथ सिंधु घाटी की लिपियों और प्रतीकों की महादेवन की विद्वतापूर्ण व्याख्या ने अन्तर्राष्ट्रीय प्रशंसा अर्जित की। उन्होंने हार्वर्ड के माइकल विट्जेल और सर्व (SARVA) परियोजना के साथ, जिसकी पहचान हमने भारत को छोटी-से-छोटी जनजातीय पहचानों में तोड़ने के लिए एक गठजोड़ के रूप में पहले की है, मिलकर काम किया। विट्जेल की 'वैदिक अध्ययन की इलेक्ट्रॉनिक पत्रिका'

(*Electronic Journal of Vedic Studies*, EJVS) के लिए वह एक महत्वपूर्ण लेखक रहे हैं।

महादेवन दोहरे मानदण्ड अपनाते हुए चलने वाले व्यक्ति लगते हैं, जैसा कि इस तथ्य से पता चलता है कि वे एस. मथिवान्नन की द्रविड़ कपोल-कल्पनाओं के केवल हल्के-फुल्के आलोचक थे, जो संस्कृत विरोधी द्रविड़ सिद्धान्तकार हैं, जिनका सिद्धान्त कुमारी कन्दम/लिमुरिया के विलुप्त हो गये महादेश पर आधारित है। महादेवन ने नकली चित्रों के फोटोग्राफों पर आधारित दावों की प्रामाणिकता पर प्रश्न अवश्य उठाये, लेकिन विद्वानों पर धोखेधड़ी का आरोप नहीं लगाया, जबकि उन्होंने एन.एस. राजाराम की छोटी-सी चूक के लिए एक अन्तर्राष्ट्रीय छल के रूप में उनकी कड़ी निन्दा की और इसे 'भारतीय विद्वता के लिए एक दुख-भरा दिन' कहा।[3]

जब महादेवन एक बार द्रविड़ अलगाववाद से जुड़ गये, उन्होंने बहुधा कुछ दावों को अन्य की तुलना में अधिक कठोरता से लागू करना शुरू किया। उदाहरण के लिए, 2002 में, नैशनल इंस्टीटयूट ऑफ ओशन टेक्नोलॉजी (NIOT) के भारतीय वैज्ञानिकों द्वारा कैम्बे की खाड़ी की खोज के मामले में, जिसमें वैज्ञानिकों ने सुझाया कि सम्भव है कि टोहते-टटोलते वे विश्व की सबसे पुरानी सभ्यता पर आ टिके होंगे,[4] महादेवन ने सतर्कता बरतने की अपील की और अन्तर्राष्ट्रीय विशेषज्ञों को बुलाने का सुझाव दिया। लेकिन ऐसी, खोजों के मामले में जिनमें दूर से भी किसी द्रविड़ परिकल्पना की ओर संकेत हो, महादेवन ने बिल्कुल अलग दृष्टिकोण अपनाया। सन 2006 में, तमिलनाडु में कुछ नवपाषाण युग के उपकरण मिले थे जिन पर कुछ चिह्न भी अंकित थे। जब पेशेवर पुरालेख विशेषज्ञ यह विचार कर ही रहे थे कि क्या वे चिह्न जानबूझकर उत्कीर्ण किये गये थे या संयोग से किसी तरह बन गये थे,[5] उसी समय महादेवन एक अविश्वसनीय व्याख्या के साथ सामने आये। उन्होंने उनकी पहचान 'प्राचीन सिंधु लिपि में चार चिह्नों वाली लिपि' के रूप में कर दी।[6] कैम्बे की खोज के मामले में जिस सतर्कता से चलने की उन्होंने वकालत की थी, उसके विपरीत यहाँ यह स्वीकार करते हुए भी कि विशेषज्ञों द्वारा अभी खोजों की पुष्टि नहीं की गयी है, उन्होंने स्पष्ट रूप से घोषित किया :

> क्रम सुनिश्चित करता है कि तमिलनाडु में मिले नवपाषाण युग के औजार पर खुदी लिपि न केवल सिंधु लिपि में है बल्कि हड़प्पा भाषा में भी है। मैं यहाँ जोड़ सकता हूँ कि यह तमिलनाडु में इस शताब्दी की सबसे बड़ी पुरातात्विक खोज है।[7]

उन्होंने आगे यह भी टिप्पणी की कि इस खोज ने इस बात के लिए एक अत्यधिक प्रबल साक्ष्य उपलब्ध कराया है कि तमिलनाडु के नवपाषाण युग के लोगों और सिंधु घाटी के लोगों की 'एक ही साझी भाषा थी, जो केवल द्रविड़ ही हो सकती है, इण्डो-आर्य नहीं'।[8] इस प्रकार की अतिशयोक्तिपूर्ण टिप्पणी ने गम्भीर शोध या विद्वता को नीचा किया, लेकिन शीघ्र ही द्रविड़वादियों और अफ्रीकी-द्रविड़ विद्वानों

द्वारा इसे प्रतिध्वनित किया गया। विशेषकर तमिलनाडु में, द्रविड़ राजनीतिक भाषणों में ऐसे बयानों को राजनीतिक विवादों में रूपान्तरित कर दिया गया और तमिलों के लिमुरियाई मूल के दावे को प्रबल बनाने के लिए इसका उपयोग किया गया। पुरातत्ववेत्ता सी.एम. पाण्डे ने 1971 में ही ऐसे राजनीति-आवेशित शैक्षिक कार्यों के ख़तरों के प्रति सचेत किया था :

> राजनीतिक उद्देश्यों के लिए इस शुद्ध शैक्षिक मामले का दोहन किया जा रहा है। उदाहरण के लिए, हड़प्पा लिपि (और भाषा) तथा संस्कृति के बारे में ये परिकल्पनाएँ डी.एम.के. द्वारा तथ्य के रूप में स्वीकार कर ली गयी हैं, जिसने पहले ही इन व्याख्याओं को तमिलनाडु के विद्यालयों में पढ़ायी जाने वाली पाठ्य पुस्तकों में शामिल कर लिया है। इन व्याख्याओं की मान्यता, जिनमें से कुछ साभिप्राय हैं, गम्भीर और दुर्भाग्यपूर्ण है, और यह श्रेष्ठता की अहंकारी भावना और दूसरों के प्रति झगड़ालूपन की भाषा का ही संकेतक है जो भारत के अनेक क्षेत्रों में व्याप्त है।[9]

इस चेतावनी के बाद भी यह रुझान बना रहा है। पश्चिम से आयातित विद्वता के आधार पर इस विचार ने जड़ पकड़ ली है कि आक्रमणकारी/आप्रवासी आर्यों ने उच्च प्रौद्योगिकी, धर्म और 'द्रविड़ सिंधु घाटी' के आनुष्ठानिक तत्वों को अपने धर्म में मिला लिया। अफ्रीकी दलित राजनीति में यह प्रतिध्वनित किया जाता है कि आर्य 'बर्बर' गोरे थे जिन्होंने वर्ण-व्यवस्था के माध्यम से और द्रविड़ों की सभ्यता की चोरी करके मूल 'काले' द्रविड़ों को अपने अधीन बना लिया।[10]

जो भी हो, महादेवन की अमरीकी प्रशंसा कुछ ही समय तक जीवित रही। हार्वर्ड विश्वविद्यालय के भारतविद माइकल विट्ज़ेल और उनके सहयोगी स्टीव फार्मर ने आगे यह परिकल्पना सामने रखी कि हड़प्पा सभ्यता निरक्षर थी। जब महादेवन ने इस पर प्रश्न उठाया, तो फार्मर द्वारा उन पर आरोप लगाया गया कि उन्होंने सिंधु घाटी के संकेतों को विकृत किया था ताकि वे किसी भाषा के अक्षर सदृश दिखें।[11] सन 2009, एक भारतीय और अमरीकी दल ने महादेवन से प्राप्त जानकारियों के साथ हड़प्पा लिपि का एक अभिनव गणितीय विश्लेषण किया और गणित के माध्यम से स्थापित किया कि ये चिह्न संकेतों में एक भाषा हैं। यह शोध पत्र एक सम्माननीय शोध पत्रिका 'विज्ञान' (Science) में प्रकाशित हुआ।[12] फार्मर और विट्ज़ेल से जो प्रतिक्रिया मिली वह अत्यधिक विवादास्पद थी, जिसमें महादेवन के शोध कार्यों पर 'कचरा अन्दर, कचरा बाहर'[13] जैसी टिप्पणियाँ लागू की गयी थीं। इसकी प्रतिक्रिया स्वरूप महादेवन ने फार्मर पर 'एक निरन्तर आक्रामक शैली' अपनाने का आरोप लगाया।[14]

स्टीव फार्मर ने एक बार एक अन्य भारतीय पुरातत्ववेत्ता बी.बी. लाल के बारे में, जो भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण के पूर्व महानिदेशक हैं, उसी उपहास से कहा था कि वे एक 'दक्षिण-पन्थी पुरातत्ववेत्ता' हैं, और उनके जीवन भर के चिरस्मरणीय कार्यों को यह कहते हुए अमान्य बताया कि 'लाल के किसी भी शोध को जो हाल में किया गया

है, किसी भी अग्रणी पश्चिमी पुरातत्ववेत्ता द्वारा स्वीकार नहीं किया गया है'।[15] उसी प्रकार, महादेवन द्रविड़वादियों के प्रिय से एक कलंकित विद्वान हो गये, लेकिन भारतीय विद्वता को बदनाम करते हुए पश्चिमी प्रतिष्ठान की सेवा कर चुकने के बाद। भारतीय विद्वता पर यह आक्रमण और भारतीय विद्वानों की सत्यनिष्ठा पर सन्देह जड़ना एक अपशकुनी प्रवृत्ति का संकेत हो सकता है, जैसा कि केम्ब्रिज के एक पुराने अनुभवी पुरातत्ववेत्ता दिलीप के. चक्रवर्ती द्वारा सुझाया गया है :

> अगर कोई मिस्त्र और मेसोपोटामिया पर पुरातात्विक साहित्य को पढ़ता है, [विशेषकर] उन क्षेत्रों के साहित्य को जहाँ पुरातात्विक अनुसंधान के प्रारम्भ से ही पश्चिमी विद्वानों का दबदबा रहा है, तो यह ध्यान में आता है कि उस साहित्य में मिस्त्र और ईराक के मूल निवासी पुरातत्ववेत्ताओं के योगदान की पूरी तरह उपेक्षा की गयी है। मिस्त्र, मेसोपोटामिया और उनके बीच के क्षेत्र के बीते कांस्य युगों को पश्चिमी विद्वानों द्वारा पूरी तरह समायोजित किया गया है। यह भी कि जब पश्चिमी पुरातत्ववेत्ता पाकिस्तानी पुरातत्व के बारे में लिखते हैं, वे स्वयं मूल पाकिस्तानी पुरातत्ववेत्ताओं द्वारा किये गये योगदान का उल्लेख कभी-कभार ही करते हैं। इसके अपवाद हैं, लेकिन वे अत्यन्त विरले ही होते हैं। स्वतन्त्रता के बाद, भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण ने सापेक्षिक अलगाव की नीति अपनायी, जिसने देश में एक विषय के रूप में पुरातत्व को विकसित हो पाने योग्य बनाया और भारतीय पुरातत्ववेत्ताओं को पैर जमाने में सहायता दी। यह नीति अब बदलती हुई लग रही है। ... प्रथम विश्व के देशों के पुरातत्व के उस भाग में अत्यधिक अक्खड़पन और श्रेष्ठता का भाव आ गया है, जिसकी तीसरे विश्व के देशों के मामले में विशेषज्ञता है। जब तक प्रथम विश्व के पुरातत्व का यह भाग अपना तरीका और रवैया नहीं बदलता है, तीसरे विश्व में इसे अत्यधिक सतर्कता से लेना चाहिए।[16]

परिशिष्ट छ
विदेशी धन की निगरानी

भारत के विदेशी योगदान नियमन अधिनियम (एफ.सी.आर.ए.) को, जिसे 1976 में बनाया गया था, अनेक सम्बद्ध अधिकारियों द्वारा वर्तमान परिस्थितियों में पुराना पड़ गया महसूस किया जाता है। वर्षों से, भारत जानता रहा है कि विदेशी धन से चलने वाले [अनेक] संगठन विध्वंसकारी गतिविधियों में लगे रहे हैं। कारगिल संकट के बाद, भारत सरकार ने राष्ट्रीय सुरक्षा प्रणाली की समीक्षा के लिए मन्त्रियों का एक दल नियुक्त किया था। सन 2001 में जारी मन्त्री-दल की रपट ने, यह टिप्पणी करते हुए कि विदेशी धन से चल रही गतिविधियाँ आन्तरिक सुरक्षा के लिए ख़तरों में से एक थी, एक पुनर्समीक्षा के प्रस्ताव का वर्णन किया :

> ...विदेशी योगदान प्राप्तकर्ताओं का निबन्धन और उनकी निगरानी (मॉनिटरिंग) जिला स्तर पर की जायेगी। यह भी प्रस्ताव किया जाता है कि बैंकों को आँकड़े एकत्र करने और निगरानी रखने के एक स्वतन्त्र माध्यम के रूप में शामिल किया जाये। केन्द्रीय गृह मन्त्रालय नीति बनाने, सीमावर्ती और तटीय क्षेत्रों में विदेशी योगदान की प्राप्तियों को, जिसमें धार्मिक संगठनों द्वारा प्राप्तियाँ भी शामिल हैं, सीधे नियन्त्रित करने, और कलेक्टरों को दिये गये अधिकारों का उपयोग उनके द्वारा जिस ढंग से किया जाता है उस पर नियन्त्रण रखने का काम करेगा।[1]

फिर भी ऐसे संगठनों के विरुद्ध कार्रवाई करने का उद्देश्य अब तक पूरा नहीं किया गया है, क्योंकि भारत में काम कर रहे ईसाइयों के विश्वव्यापी गठजोड़ द्वारा ऐसा करने को 'धार्मिक उत्पीड़न' की शक्ल में पेश किया जायेगा। पुराने पड़ गये 1976 के एफ.सी.आर.ए. में संशोधन करने के प्रयास का प्रतिरोध शक्तिशाली ईसाई संस्थानों द्वारा किया गया,[2] जिन्होंने भारत सरकार के विरुद्ध अन्तर्राष्ट्रीय आयोग में शिकायत भी दर्ज करायी। सन 2003 की बीबीसी की एक रपट ने संक्षेप में इस प्रकार उस दुविधा को स्पष्ट किया जिसका सामना कानून लागू करने वाली एजेन्सियाँ कर रही थीं :

> भारत के गृह मन्त्रालय ने पूर्वोत्तर भारत के आठ सौ से अधिक गैर-सरकारी संगठनों (एन.जी.ओ.) को अलगाववादी समूहों के साथ उनके सम्पर्कों के आरोपों के आधार पर काली सूची में डाला है। गृह मन्त्रालय के अधिकारी ने कहा कि राज्य सरकारों को काली सूची में डाले गये एन.जी.ओ. के विरुद्ध आतंकवाद विरोधी कानूनों के तहत कानूनी कार्रवाई शुरू करनी चाहिए जब उनके पास पर्याप्त साक्ष्य हो जायें। ... लेकिन विश्लेषक कहते हैं कि चूँकि उन काली सूची वाले एन.जी.ओ. में से अनेक धार्मिक अल्पसंख्यक समूहों के हैं, जैसे मुस्लिम और ईसाई, इसलिए उनके विरुद्ध किसी भी कठोर कार्रवाई से शोर मच सकता है। पूर्वोत्तर भारत में अनेक गरमा-गरम स्थान हैं जहाँ अलगाववादी

सरकार के शासन के विरुद्ध संघर्ष कर रहे हैं, जिनमें नागालैण्ड, मेघालय, त्रिपुरा और असम शामिल हैं।[3]

जो भी हो, जब वर्तमान (2010) संप्रग सरकार ने सत्ता सँभाली तो अन्तर्राष्ट्रीय धर्मान्तरण कराने वाली एजेंसियों द्वारा इसे एक अच्छे समाचार के रूप में देखा गया; उन्होंने चुनाव को आक्रामक धर्मान्तरण गतिविधियों के लिए और अधिक धन भेजे जाने के संकेत के रूप में देखा।[4] एन.जी.ओ. लॉबी के आगे सरकार झुक गयी। द फाइनांशियल एक्सप्रेस के अनुसार,

> सरकार द्वारा कड़े मानदण्ड अपनाये जाते थे जिसके कारण बहुधा एन.जी.ओ. द्वारा विदेशी धन प्राप्त करने में रुकावटें आती थीं। अब स्वयंसेवी संगठनों द्वारा निरन्तर गुट बनाकर दबाव डालने पर और संप्रग सरकार के सकारात्मक दृष्टिकोण की कृपा से इस बहुत पुरानी प्रणाली में परिवर्तन किया जायेगा।[5]

हाल के वर्षों में विदेशी धन के आगम का प्रतिशत नाटकीय ढंग से बढ़ा है, जैसा कि गृह मन्त्रालय की वेबसाइट से प्राप्त आँकड़ों से उजागर होता है।[6]

विदेशी धन प्राप्तकर्ताओं में वर्ल्ड विजन इण्डिया 2 अरब 56 करोड़ रुपये प्राप्त कर सबसे ऊपर रहा जबकि कैरिटास इण्डिया (विदेशी आर्थिक सहायता और विकास के लिए एक कैथोलिक एजेन्सी) 1 अरब 93 करोड़ प्राप्त कर दूसरे स्थान पर। चर्चस ऑक्जिलियरी फॉर सोशल ऐक्शन ने 96 करोड़, और बिलीवर्स चर्च इण्डिया (केरल) ने 77 करोड़ रुपये प्राप्त किये। दिलचस्प यह कि भारतीय सामाजिक सेवा आन्दोलन में शामिल संगठनों में दो सर्वाधिक विदेशी धन प्राप्त करने वाले संगठन थे श्री सत्य साई सेंट्रल ट्रस्ट और माता अमृतानन्दमयी मठ, और अगर इन दोनों द्वारा प्राप्त धन को जोड़ भी दिया जाये तो वह दोनों सबसे बड़े ईसाई प्रचारक संस्थानों में से प्रत्येक को प्राप्त विदेशी धन से बहुत कम था।

विदेशी धन और अलगाववादी और/या हिंसात्मक ईसाई प्रचारक गतिविधियों के बीच एक सम्बन्ध है। इस तरह, सबसे अधिक 1609 करोड़ 64 लाख रुपये (2003-04 में प्राप्त 800 करोड़ 22 लाख रुपये के दोगुने से अधिक) विदेशी धन प्राप्त कर तमिलनाडु सभी राज्यों से आगे रहा, और 'सर्वाधिक आदिवासी जनसंख्या वाले राज्यों तथा केन्द्र शासित प्रदेशों' में विदेशी धन प्राप्त करने वालों में उड़ीसा 128 करोड़ 95 लाख रुपये प्राप्त कर सबसे आगे रहा, जहाँ हाल में हिंसा की घटनाएँ काफी बढ़ी हुई हैं।[7] अन्ततः अब सरकार यह सुनिश्चित करने के प्रति जाग रही है कि विदेशों से धर्मादा के नाम पर आने वाले 70 अरब रुपयों से अधिक धनराशि का उपयोग 'राष्ट्रविरोधी उद्देश्यों के लिए न हो, जिनमें आतंकवादी नेटवर्क को धन उपलब्ध कराना भी शामिल है'।[8]

सुनामी के बाद ईसाई प्रचारक संगठनों में बहुत बड़ी विदेशी धनराशि का आगम हुआ। उसमें से बहुत थोड़ा-सा उस समय नजर आया जब संयुक्त राज्य अमरीका

स्थित एपिस्कोपल रिलीफ एण्ड डेवलपमेंट को चर्च ऑफ साउथ इण्डिया (सी.एस.आई.) के अधिकारियों द्वारा 7.5 करोड़ रुपये का दुरुपयोग करने का सन्देह हुआ। जाँच के बाद प्रकट हुआ कि चेन्नई स्थित एक ही चर्च ने संयुक्त राज्य अमरीका से 17.63 करोड़ रुपये प्राप्त किये।[9]

सम्पूर्ण राजनीतिक परिदृश्य में चिन्ता बढ़ रही है कि स्थिति लगातार बिगड़ती जा रही है। सन 2003-04 में 57 संगठनों और 2004-05 में 70 संगठनों की तुलना में 2005-06 में 99 संगठनों ने 10 करोड़ रुपये से अधिक की विदेशी सहायता प्राप्त की थी। वरिष्ठ कांग्रेसी नेता वीरप्पा मोइली के नेतृत्व वाली प्रशासनिक सुधार समिति (ए.आर.सी.) ने दस लाख रुपये से अधिक के सभी विदेशी अंशदान पर निगरानी रखने का सुझाव दिया था और विदेशी अंशदान नियमन अधिनियम में संशोधन करना प्रस्तावित किया था।[10]

केन्द्रीय गृह मन्त्रालय का विदेशी प्रभाग इस तथ्य को स्वीकार करता है कि 70 अरब रुपये का विदेशी अंशदान तो सिर्फ हाँडी का एक दाना है। हो सकता है कि अधिक नहीं तो कम-से-कम उतनी ही धनराशि सरकार को बतायी गयी हो, क्योंकि आधे संगठन जाँच-पड़ताल के लिए अपने रिकार्ड जमा करने में विफल रहे हैं'। इण्डिया टुडे की एक रपट ने ध्यान दिलाया है कि 2008 तक लगभग 9,000 एन.जी.ओ. ने पिछले तीन वर्षों से अपनी लेखा-पुस्तिकाएँ जमा नहीं करवायी थीं।[11] अन्ततः, एफ.सी.आर.ए. ने 44 एन.जी.ओ. को काली सूची में डाल दिया। जो भी हो, उन पर कठोर कार्रवाई किये जाने पर संयुक्त राज्य अमरीका द्वारा उसकी निन्दा की जायेगी और भारत को यू.एस.सी.आई.आर.एफ. में उल्लिखित उन राष्ट्रों की सूची में डाल दिया जायेगा जिन पर निगरानी रखी जानी है, क्योंकि विदेशी धन के आगम पर नियन्त्रण को उसके तहत धार्मिक स्वतन्त्रता की कमी के समान मान लिया जाता है।[12]

वर्ष 2007-08 के सामान्य रुझान भी लगभग वैसे ही रहे।

तीन सबसे बड़े धन प्रदाता संगठन थे—वर्ल्ड विजन यू.एस.ए.; गॉस्पल फॉर एशिया इनकॉरपोरेटेड, यू.एस.ए.; और फाउण्डेशन विसेंट फेरर, स्पेन। सबसे बड़े 15 दाता संगठनों में से 8 प्रत्यक्ष रूप से ईसाई थे, जबकि इसके पहले वाले वर्ष में इनकी संख्या मात्र 4 थी। तमिलनाडु की प्राप्तियाँ पिछले वर्ष की तुलना में 108 प्रतिशत बढ़ीं। दिल्ली की प्राप्तियाँ 100 प्रतिशत, आंध्र की 70 प्रतिशत, कर्नाटक की 68 प्रतिशत, केरल की 89 प्रतिशत और उड़ीसा की 90 प्रतिशत बढ़ीं। सर्वाधिक विदेशी धन प्राप्त करने वाले 15 जिलों में 9 दक्षिण भारत में हैं (जिनमें से पाँच तो तमिलनाडु में ही हैं)। इन जिलों में आदिवासी क्षेत्र भी शामिल हैं।

परिशिष्ट ज
लुथेरन वर्ल्ड फेडरेशन ने बनाया भारत को निशाना

उपनिवेशवाद और धर्मान्तरण को एक-दूसरे के साथ मिलाने के मामले में लुथेरन वर्ल्ड फेडरेशन (एल.डब्ल्यू.एफ.) का एक लम्बा इतिहास रहा है।[1] एल.डब्ल्यू.एफ. भारत में व्याप्त वर्ण विभाजन का उपयोग अपने मुख्य वाहन के रूप में करते हुए यूरोप और संयुक्त राष्ट्र में भारत विरोधी आन्दोलन की गतिविधियों में संलग्न है। भारत में लुथेरन संस्थानों के एक व्यापक नेटवर्क को एल.डब्ल्यू.एफ. द्वारा आँकड़ों के संकलन के लिए धन दिया जा रहा है, जिसका उपयोग वह वर्ण को आधिकारिक नस्लवाद के रूप में प्रस्तुत करने के अपने अभियान में करता है। ऐसा प्रस्तुत हो जाने पर यह एल.डब्ल्यू.एफ. को भारत के विरुद्ध अन्तर्राष्ट्रीय कानूनों को लागू करने योग्य बना देगा जिससे ईसाई धर्मान्तरण अभियान में उसे बढ़त मिल जायेगी, जैसा कि चित्र A.2 में दिखाया गया है।

सन्दिग्ध तरीकों का उपयोग करते हुए आक्रामक ईसाई प्रचारक रुख अपनाने के अलावा, भारत में सक्रिय ये लुथेरन संगठन विभिन्न कमजोर समूहों के बारे में गुप्तचर सूचनाएँ एकत्रित करते हैं। उनकी पहचानों को पुन: एक स्वरूप देने के लिए बाइबल के ढाँचे को उन पर कुछ इस ढंग से थोपा जाता है जिससे उनमें आन्तरिक सामाजिक संघर्ष को बढ़ावा मिलता है। उसके बाद संघर्षों की रपटें इकतरफा ढंग से प्रकाशित की जाती हैं ताकि उत्पीड़न साहित्य रचा जा सके, जिसका उपयोग एल.डब्ल्यू.एफ. द्वारा अपने अन्तर्राष्ट्रीय राजनीतिक अभियानों में किया जाता है। भारत स्थित लुथेरन समूह सम्भावित उम्मीदवारों की पहचान करते हैं, जो अलगाववादी सिद्धान्तों वाले समूह या व्यक्ति होते हैं, और अन्तर्राष्ट्रीय मंचों में उन्हें ही दलितों के असली प्रतिनिधियों के रूप में प्रस्तुत करने के लिए नियुक्त किया जाता है।

ऐतिहासिक रूप से, भारत में लुथेरन मिशन हिंसक धर्मान्तरण में संलग्न रहा है और वर्ण तथा सामाजिक संस्तरीकरण पर आधारित भेद-भाव को स्वीकार करता रहा है।

लेकिन अब उन्होंने अपने इतिहास को संशोधित किया है ताकि लगे कि उन्होंने हमेशा ही वर्ण के विरुद्ध संघर्ष किया है, और इस प्रकार वर्ण संघर्ष को मुख्यधारा से पृथक हिन्दू घटनाक्रम के रूप में प्रस्तुत किया है। वे यूरोप स्थित अपने अकादमिक संस्थानों का उपयोग करते हुए एक वैश्विक तमिल पहचान भी निर्मित कर रहे हैं।

Fig A.2 अन्तर-राष्ट्रीय लुथेरन तन्त्र और उनकी भारतीय गतिविधियाँ

भारत में प्रारम्भिक लुथेरन मिशन का इतिहास

दक्षिण भारत से साथ लुथेरन सम्पर्क अट्ठारहवीं शताब्दी में उस समय प्रारम्भ हुआ जब बार्थोलोमॉज जिगेनवाग (1682-1719) भारत आये, जिन्होंने डेनमार्क के राजा फ्रेडरिक चतुर्थ द्वारा ईसा मसीह के उपदेश के प्रसार का आह्वान करने पर ऐसा किया। भारत में पहले प्रोटेस्टैंट मिशनरी के रूप में वे 1706 में दक्षिण भारत के ट्रेंकेबार नामक एक छोटी-सी डेनिश बस्ती में आये, जहाँ उन्होंने एक स्थानीय विद्वान से तमिल सीखी। उन्होंने अपना काम इस अत्यन्त सरल स्वीकारोक्ति के साथ शुरू किया कि हिन्दू 'अत्यन्त शान्त, ईमानदार और धर्मसम्मत जीवन जीते हैं और इस प्रकार हमारे झूठे ईसाइयों और सतही रूप से एक अधिक अच्छे धर्म के अनुयायी होने का स्वांग रचने वालों को अपने सामने अनन्त रूप से फीका कर देते हैं'।[2]

फिर भी उन्होंने मूर्ति पूजा को नष्ट करना अपना कर्तव्य समझा, और लिखा कि किस प्रकार उन्होंने एक प्रमुख देवी मन्दिर में मूर्तियों को नष्ट किया था। उन्होंने

हिन्दुओं का वर्णन 'ईश्वरों के एक अत्यन्त तुच्छ समूह के दृश्य से गम्भीर रूप से प्रभावित' के रूप में किया, और उन्होंने बड़े गर्व से 'उनमें से कुछ को नीचे धरती पर फेंक दिया, और कुछ के सर तोड़ दिये'। उन्होंने 'भ्रमित' हिन्दुओं के समक्ष यह प्रदर्शित करना चाहा कि 'उनकी प्रतिमाएँ और कुछ नहीं, बल्कि शक्तिहीन और मूर्ति मात्र हैं, और उनकी पूजा करने वालों की बात तो दूर, वे अपनी भी रक्षा करने में सक्षम नहीं हैं'। इस घटना का सर्वाधिक उल्लेखनीय भाग यह है कि जो हिन्दू वहाँ विनाश के दृश्य वाले स्थल पर उपस्थित थे, वे उत्तेजित हो गये, लेकिन उन्होंने अपनी उत्तेजना को हिंसा में बदलने नहीं दिया। एक व्यक्ति, जिन्हें उन्होंने एक 'मूर्तिपूजक विद्यालय शिक्षक (उपाध्याय)' के रूप में वर्णित किया, बड़े शान्त चित्त होकर उनके साथ धर्मशास्त्रीय शास्त्रार्थ करने लगे और मिशनरी को उनकी करनी की मूर्खता दिखाने के लिए आगे आये। उन्होंने शास्त्रार्थ का समापन मिशनरी को यह निष्कर्ष बताते हुए किया कि परम पुरुष के दृष्टिकोण से पदार्थ के सभी स्वरूप माया द्वारा निर्मित हैं, और जिन प्रतिमाओं को मिशनरी ने तोड़ा, वे प्रतीक मात्र ही थीं।[3]

एक हिंसक मिशनरी को द्रविड़-दलित हीरो बनाना

आज जिगेनबाग को द्रविड़ विद्वानों द्वारा एक मिशनरी हीरो के रूप में प्रस्तुत किया जाता है जिन्होंने तमिल भाषा की सेवा की। उनकी विरासत का नये ढंग से अविष्कार एक ऐसे व्यक्ति के रूप में किया जा रहा है, जिसने दक्षिण भारत में प्रिंटिंग प्रेस का प्रारम्भ किया और सबसे पहले तमिल में प्रकाशन किया; यह वर्णन इस तथ्य को छिपा लेता है कि गैर-मिशनरी सामग्री को छपने से रोका जाता रहा।[4] लेकिन उनके लेखन के आधुनिक मिशनरी अनुवादक उन्हें 'धार्मिक और सांस्कृतिक आदान-प्रदान के एक तेजस्वी, ईमानदार तथा आकर्षक साक्षी' के रूप में चित्रित करना पसन्द करते हैं।[5] जिगेनबाग द्वारा 'हीदन' (Heathen) और 'हीदनिज्म' (Heathenism) शब्दों को जिन अर्थों में प्रयोग किया गया था उनकी पुनर्व्याख्या की जा रही है, ताकि गैर-अपमानजनक ढंग से दक्षिण भारतीय जीवन पद्धति का हवाला दिया जा सके :

> जिगेनबाग का शब्द Heyde (heathen)एक ऐसे व्यक्ति से सम्बन्ध रखता है जो ईसाई नहीं था, लेकिन एक दक्षिण भारतीय था। ... यह किसी भी ऐसे व्यक्ति पर लागू किया गया जो ईसाई नहीं बना। इसका अर्थ अधर्मी या असभ्य व्यक्ति नहीं था। ... एक मिशनरी के रूप में, जिगेनबाग विश्वास करते थे कि परम सत्य के बारे में दक्षिण भारतीयों की समझ बाइबल में उद्घाटित ईश्वर की परिकल्पना से मेल नहीं खाती। अत:, उन्होंने इस शब्द का प्रयोग दक्षिण भारतीयों और उनके समाज दोनों को प्रतिध्वनित करने के लिए किया। उसी तरह, जिगेनबाग द्वारा प्रयुक्त शब्द Heydenthum का उपयोग heathenism से अधिक समाज को इंगित करने के लिए किया गया, क्योंकि इस शब्द के उनके वर्णन में न केवल दक्षिण

> भारतीयों की धर्म-व्यवस्थाएँ बल्कि उनकी जीवन-शैली भी शामिल है। इसलिए इस शब्द का अनुवाद दक्षिण भारतीय समाज के रूप में किया गया है।[6]

लेकिन अनेक पश्चिमी विद्वान इन शब्दों के पीछे के असली उद्देश्य के बारे में अधिक स्पष्टवादी हैं :

> धर्म की अन्तिम श्रेणी के लिए, जिगेनबाग ने 'heathen' शब्द का उपयोग 'pagan' या 'gentile' के समानार्थक किया। यह गैर-एकेश्वरवादी लोगों को प्रतिध्वनित करता है और इससे 'अनभिज्ञ' तथा 'असभ्य' की अन्तर्ध्वनि निकलती है। सभी हीदन, जिगेनबाग ने कहा, शैतान के शासन में हैं, जिसे वे ईश्वर के रूप में पूजते हैं। वह उन्हें मूर्तिपूजा और अन्धविश्वासी अनुष्ठानों की ओर ले जाता है। शैतान ही उन सबों का पिता है, लेकिन उन्होंने स्वयं को अनेक पन्थों में बाँट रखा है, और अफ्रीका, अमरीका, तथा ईस्ट इण्डिया में वे अपने देवताओं और उनकी शिक्षाओं में एक-दूसरे से अलग हैं।[7]

आधुनिक मिशनरी प्रचार जिगेनबाग को भारतीय सामाजिक बुराइयों के विरुद्ध एक धर्मयोद्धा के रूप में प्रस्तुत करता है। उदाहरण के लिए, चेन्नई के एक ईसाई प्रचारक केन्द्र, गुरुकुल लुथेरन सेमिनरी, का एक प्रकाशन लिखता है :

> जो भी हो, जिगेनबाग का सबसे बड़ा योगदान ट्रैंकेबार में और उसके आस-पास के सामाजिक और धार्मिक रूप से हाशिये पर के लोगों के साथ उनका प्रभावी सम्पर्क है। गरीब लोगों की सेवा करने के प्रति उनकी प्रतिबद्धता और उनके साथ सहयोग करने की उनकी इच्छा के परिणामस्वरूप एक नया तमिल ईसाई समुदाय बना जो आज भी चल रहा है। उन्होंने उनको सिखाया कि उन्हें अन्यायपूर्ण सामाजिक प्रथाओं के अधीन, जैसे अछूत प्रथा और वर्ण आधारित श्रेणीबद्धता, श्रम करने की आवश्यकता नहीं है।[8]

जो भी हो, जिगेनबाग के लिखित इतिहास में ऐसा कुछ नहीं है जो ऐसा कोई समतावाद प्रदर्शित करता हो। जिगेनबाग द्वारा निर्मित द न्यू जेरूशलम चर्च ने वर्णों को पृथक किया, और इससे भी बढ़कर यह कि इसने नस्लवाद को स्थापित किया। ईसाई मिशनों के एक इतिहासकार डेनिस हडसन जिगेनबाग को उद्धृत करते हुए लिखते हैं कि जिस चर्च को उन्होंने निर्मित किया उसमें 'जो पुरुष और महिलाएँ यूरोपीय वस्त्र पहनते थे वे बेंचों और स्टूलों पर बैठते थे, लेकिन जो पुरुष और महिलाएँ भारतीय वस्त्र पहनते थे वे चटाइयों और पक्के फ़र्श पर बैठते थे'। हडसन यह भी जोड़ते हैं कि 'उच्च वर्ण के सदस्य चटाइयों पर बैठते थे जबकि निम्न वर्णों के सदस्य सीधे पक्के फ़र्श पर बैठते थे', यह निष्कर्ष निकालते हुए कि ईसाई प्रचारकों ने शुरू से ही वर्णगत विशिष्टता को माना।[9] लुथेरन ट्रैंकेबार मिशनरियों ने अट्ठारहवीं शताब्दी में केवल उन तमिलों को ही विधिवत पादरी बनाया जो भूपति अभिजात वर्ग के वर्णों से थे।[10]

आधुनिक गुणगान जिगेनबाग को 'भारत और भारत के बाहर तमिल जनों और उनकी संस्कृति के उत्थान में उनकी उत्प्रेरक भूमिका' के माध्यम से अन्तर्राष्ट्रीय तमिल पहचान सृजित करने में अग्रणी के रूप में प्रदर्शित करता है।[11]

भारत के स्वतन्त्रता आन्दोलन काल में लुथेरन संकल्पना

सन 1919 में, तमिल लुथेरन इवैंजेलिकल चर्च (टी.एल.ई.सी.) का गठन किया गया। इसके बिशप जोहानेस सैण्डिग्रेन 1946 में महात्मा गाँधी से मिले थे। गाँधी ने उनसे कहा था कि अगर उनके पास कानून बनाने की शक्ति होती तो वे सभी धर्मान्तरण गतिविधियों को रोक देते।[12] सैण्डिग्रेन ने हिन्दू समाज में सामाजिक सुधार और भारत में ईसाई धर्मान्तरण गतिविधियों के प्रति गाँधी के रुख की आलोचना की।[13] वे सनातनी और पन्थ-निरपेक्ष हिन्दुओं के बीच गठजोड़ से भयभीत थे, और अछूत जातियों को सामाजिक ढाँचे में एकीकृत करने के डॉ. अम्बेडकर के प्रयासों को अपने मिशन के लिए एक समस्या के रूप में देखते थे। सैण्डिग्रेन ने लिखा कि एक वर्ण-व्यवस्था उतनी ही ईसाई है जितना कि समाज का एक व्यक्तिवादी या साम्यवादी स्वरूप। उन्होंने 1946 में आशा व्यक्त की थी कि अम्बेडकर प्रोटेस्टेंट ईसाइयत का चयन करेंगे, लेकिन अम्बेडकर ने ईसाइयत को अस्वीकार कर दिया, क्योंकि वे ईसाई चर्चों के अन्दर वर्ण संघर्ष के प्रति सचेत थे, और साथ ही वर्ण-व्यवस्था को स्वीकार करने वाले लुथेरन मिशन की सामान्य स्थिति की भी जानकारी उन्हें थी।

भारत के प्रति लुथेरन संकल्पना बाइबल की श्रेणियों से निकाली गयी थी और बाद में ये संघर्ष और ईसाई धर्मान्तरण के लिए दरारें बन गयीं। सेडरलोफ स्पष्ट करते हैं कि सैण्डिग्रेन की रचनाएँ :

> ... अपने अर्थ उत्तर यूरोपीय राष्ट्रवाद और एक लोक-चर्च के अलग-अलग और आपस में जुड़ते सन्दर्भों से निकालते हैं। इस पर ध्यान देना विशेष रूप से रुचिकर होगा कि किस तरह ब्रितानी भारत में स्वीडन के मिशनरियों ने स्वयं को विदेशी सरीखा महसूस किया। ... उनकी 'जर्मन-समर्थित सहानुभूतियाँ' ब्रिटेन के शत्रु राष्ट्र से साथ पारिवारिक सम्बन्धों से अधिक थीं। ... इसी सन्दर्भ से जन-समूह और राष्ट्र की अवधारणा—भारत में तमिल लोक-चर्च को भी—समझा जा सकता है, जहाँ चर्च आत्मा थी जिसने राष्ट्रों को साथ लेकर एक बड़ी एकता बनायी। उस सीमा तक, 'तमिल ईसाई राष्ट्र' को बहुधा 'भारतीय धर्मनिरपेक्ष राष्ट्र' के साथ संघर्षरत रूप में देखा जाता था।[14]

लुथेरन मिशन ने स्वतन्त्र भारत राष्ट्र को 'खतरा उपस्थित करने वाले प्रतियोगी और लुथेरन ईसाइयत के लिए मुक्ति, दोनों रूपों में देखा' तथा 1940 के दशक में भी लुथेरन मिशनरी अनिर्णय की स्थिति में थे कि वे कौन-सा मार्ग अपनायें।

स्वतन्त्रता के बाद भारत में लुथेरन चर्च

आज भारत में कइ लुथेरन संगठन सक्रिय हैं। सन 1975 में, यूनाइटेड इवैंजेलिकल लुथेरन चर्च (यू.ई.एल.सी.) की स्थापना की गयी। उनके महत्वपूर्ण घटकों में टी.ई.एल.सी., आंध्र इवैंजेलिकल लुथेरन चर्च, गॉस्नर इवैंजेलिकल लुथेरन चर्च, जयपुर [उड़ीसा] इवैंजेलिकल लुथेरन चर्च, नॉर्दर्न इवैंजेलिकल लुथेरन चर्च, इण्डिया इवैंजेलिकल लुथेरन चर्च, आर्कट इवैंजेलिकल लुथेरन चर्च, साउथ आंध्र इवैंजेलिकल लुथेरन चर्च, और इवैंजेलिकल लुथेरन चर्च ऑफ मध्य प्रदेश शामिल हैं।[15]

दक्षिण भारत में काम कर रहे लुथेरन संगठनों में सर्वाधिक सक्रिय है गुरुकुल लुथेरन थियोलॉजिकल कॉलेज एण्ड रिसर्च इंस्टीटयूट, चेन्नई।[16] यह आधिकारिक रूप से स्वयं को 'ईसा मसीह के मुक्ति देने वाले धर्मोपदेशों को बताने वाले एक सार्वभौमिक धर्मशास्त्रीय समुदाय' के रूप में परिभाषित करता है।[17] उसकी इस भूमिका में द्रविड़ पहचान को एक विशेष रूप देना भी शामिल है। इसके निदेशक आंध्र प्रदेश सरकार द्वारा स्थापित द्रविड़ विश्वविद्यालय की कार्य समिति के सदस्य हैं।[18]

गुरुकुल लुथेरन दलितों को उनकी पहचान को एक विशेष स्वरूप देने के लिए उनके साथ काम भी करता है ताकि उसे बाइबल के मिथक में सटीक बैठाया जा सके। उनके धर्मशास्त्रियों में से एक दलितों की पहचान बाइबल के एबल से करते हैं, जिनकी हत्या कर दी गयी थी, और जिन्हें वे 'प्रथम शहीद दलित' बताते हैं। इसे स्पष्ट करते हुए वे कहते हैं कि ऐसा इसलिए किया गया था, क्योंकि एबल मवेशियों से जुड़े थे, जो सब-के-सब, इन धर्मशास्त्री के अनुसार, भारतीय वर्ण-व्यवस्था के भीतर प्रदूषित करने वाले या प्रदूषित माना जाता है।[19] इस प्रकार दलित विरासत को, जो विविध रूपों में और अपने ही मिथकों और देवताओं से सम्पन्न है, मिटा दिया गया और उसकी जगह अब्राहम से जुड़ी एक पहचान सामने लायी गयी, जो ऐतिहासिक रूप से विभाजनकारी है।

गुरुकुल लुथेरन द्रविड़वादी-दलित विभाजन को पाटने के लिए भी कार्य करता है, ताकि हिन्दू धर्म के विरुद्ध एक संयुक्त मोर्चा बनाया जा सके। इस उद्देश्य को प्राप्त करने की दिशा में, यह दलित नेता तिरुमावलवन को प्रोत्साहित करता है, जो दलित नस्लवाद को द्रविड़वाद से जोड़ते हैं और सामाजिक न्याय की वेश-भूषा में अलगाववाद को आगे बढ़ाते हैं। उदाहरण के लिए, वे प्रस्ताव देते हैं कि विदुथलाई चिरथईगल (लिबरेशन पैंथर्स) के पास 'तमिल राष्ट्रवाद नामक हथियार उठाने के अलावा कोई मार्ग नहीं है'।[20] सन 2009 में गुरुकुल लुथेरन ने तिरुमावलवन को 'डॉक्टर ऑफ डिविनिटी' का सम्मान दिया,[21] इसके बावजूद कि उसी वर्ष सम्पूर्ण राज्य में पोस्टर चिपकाये गये थे जिसमें उन्हें लिट्टे के दिवंगत नेता प्रभाकरण के साथ दिखाया गया था।

पश्चिमी एल.डब्ल्यू.एफ. अधिकारी अपने भारतीय अनुषंगी संगठनों में आते हैं, ताकि वे 'दलित मुक्ति, महिला सशक्तीकरण, मानवाधिकार, जनजातीय विकास और दलित युवाओं में बेरोजगारी' जैसे मुद्दों पर जानकारी प्राप्त कर सकें।[22] भारतीय शाखाएँ अपने यूरोपीय मुख्यालयों के लिए गुप्तचर सूचनाएँ इकट्ठा करने वाली एजेंसियों की तरह काम करती हैं। यू.ई.एल.सी. भारतीय समाज को दलितों और गैर-दलितों में ध्रुवीकृत करने के लिए काम करता है। शिक्षा की आड़ में यह दलित युवाओं को संघर्ष की राजनीति में प्रवेश करवाता है। उदाहरण के लिए, लुथेरन बड़े बड़बोलेपन से कहते हैं कि यू.ई.एल.सी. द्वारा एक गाँव में चलाया जा रहा कम्प्यूटर केन्द्र :

> ... केवल एक तकनीकी प्रशिक्षण केन्द्र नहीं बनने वाला है, बल्कि दलित और आदिवासी युवाओं के लिए एक संसाधन केन्द्र के रूप में काम करेगा, जहाँ उन्हें दलित सच्चाइयों के प्रति जागरूक किया जाता है और दलित मुक्ति के व्यापक लक्ष्य को हासिल करने के लिए उन्हें दलित संघर्ष में लगाया जाना है।[23]

सन 2008 में, यू.ई.एल.सी. ने चेन्नई में ऐंग्लिकल-लुथेरन इंटरनैशनल कमीशन की मेजबानी की, जो एल.डब्ल्यू.एफ. और ऐंग्लिकन कंसल्टेटिव काउंसिल की एक संयुक्त कार्रवाई थी। गुरुकुल के शिक्षकों ने 'अन्याय के आलोक में, जिसका सामना दलित आज भी कर रहे हैं, ईसाई चर्चों के साक्ष्य' प्रस्तुत किये।[24]

यू.ई.एल.सी. ईसाई धर्मान्तरण संगठनों को हिन्दू नाम देकर अपनी गतिविधियों को आवरण में रखता है, जैसे कि सेवा भारत। लुथेरन का समाचार-पत्र सूचित करता है कि 'इंस्टीटयूट ऑफ कम्युनिटी ट्रांस्फॉर्मेशन (आई.सी.टी.), वयस्क शिक्षा और बाल विकास कार्यक्रम ऐसे तरीके हैं जिनके माध्यम से सेवा भारत ने ईसा मसीह के उपदेशों को सर्वाधिक सुदूरवर्ती लोगों तक पहुँचाया है'।[25] अनेक अनाड़ी माता-पिता इस बात से अनभिज्ञ हैं कि उनके सरलता से प्रभावित होने वाले बच्चे ऐसे हिन्दू नाम वाले संगठनों के पीछे ईसाई प्रचार से होते हुए गुजरते हैं। उदाहरण के लिए, सन 2007 में कोयम्बटूर के ग्रामीणों ने सेवा भारत द्वारा ग्रीष्मकालीन कक्षाएँ चलाने के लिए एक भवन का प्रबन्ध किया। लेकिन बच्चों के माता-पिता उस समय सशंकित हो गये जब उनके बच्चों ने हिन्दू देवी-देवताओं को अपशब्द कहना और ईसाइयत की प्रशंसा करना प्रारम्भ किया। ग्रामवासियों ने माँग की कि उन्हें वे पाठ दिखाये जायें जो उनके बच्चों को पढ़ाये जा रहे थे, और वे उन्हें देखकर हतप्रभ हो गये कि वे पूरी तरह ईसाई प्रचार सामग्री थे। उसके बाद माता-पिताओं ने स्थानीय थाने में शिकायत दर्ज करायी।[26]

यू.ई.एल.सी. ने एल.डब्ल्यू.एफ. द्वारा मई 2009 में जेनेवा संयुक्त राष्ट्र सम्मेलन में की गयी गुटबाज़ी के लिए भी जानकारी और समर्थन दिया, और इसकी तैयारी के लिए बैंकॉक में मार्च 2009 में जो तैयारी बैठक हुई थी उसके लिए भी।[27] इस गुटबाज़ी का उद्देश्य वर्ण की तुलना नस्ल से करके भारत को एक नस्लवादी राष्ट्र घोषित करवाना था।

कर्नाटक में बेंगलुरू स्थित यूनाइटेड थियोलॉजिकल कॉलेज एक अन्य महत्वपूर्ण धर्मशास्त्रीय केन्द्र है जिसके प्रबल लुथेरन सम्बन्ध हैं। यूनाइटेड थियोलॉजिकल कालेज के साथ गुरुकुल लुथेरन थियोलॉजिकल कालेज एण्ड रिसर्च इंस्टीटयूट के विलय के बाद अनेक लुथेरन चर्च और मिशन संगठन [आंध्र इवैंजेलिकल लुथेरन चर्च, साउथ आंध्र लुथेरन चर्च, चर्च ऑफ स्वीडन मिशन, द लुथेरन चर्च ऑफ अमरीका, द अमरीकन लुथेरन चर्च (वर्तमान में दोनों का विलय इवैंजेलिकल चर्च ऑफ अमरीका में हो गया है), इण्डिया इवैंजेलिकल लुथेरन चर्च, और द लीपजिग इवैंजेलिकल लुथेरन मिशन] इस कॉलेज के सहयोगी संगठन हो गये हैं। अक्तूबर 2009 में, युनाइटेड थियोलॉजिकल कॉलेज ने 'दक्षिण एशिया में मानवाधिकार उल्लंघन' विषय पर एक सम्मेलन की मेजबानी की, जिसमें श्रीलंका में जातीय संघर्ष, 'पूर्वोत्तर भारत के राज्यों में मानवाधिकार उल्लंघन', और 'कश्मीर का इतिहास और उनके मानवाधिकार उल्लंघन' जैसे विषय भी वार्ता के लिए शामिल किये गये थे।

लुथेरन चर्च माओवादियों के गुटों को धन देते हुए उनका पोषण करते रहे हैं। यह 1980 के दशकारम्भ में ही प्रकाश में आया था जब आपस में झगड़ रहे माओवादी गुटों ने एक-दूसरे पर लुथेरन चर्च से धन प्राप्त करने का आरोप लगाया था। ऐसे ही एक मामले में, माकपा के प्रमुख, प्रकाश करात, ने सार्वजनिक रूप से कहा था कि भारत के माओवादियों ने 'एक विदेशी स्वयंसेवी ऐजेंसी से सम्पर्क स्थापित कर लिए हैं और एक स्वदेशी स्वयंसेवी ऐजेंसी पश्चिमी एकाधिकारवादी पूँजी द्वारा वित्तपोषित हो रही है', और यह कि वे 'इसे छिपाकर रख रहे हैं'। उन्होंने यह भी ध्यान दिलाया कि स्वयं माओवादियों के एक गुट ने इस आरोप को स्वीकारा था : 'यह हमारे भी ध्यान में आया है कि हमारे नेताओं में से कुछ लुथेरन चर्च से धन ले रहे थे'।[28]

भारत स्थित लुथेरन संगठन स्वयं को औपनिवेशिक तथा ईसाई धर्मान्तरण निहित स्वार्थों के साथ मिलकर रहने के अपने इतिहास को कायम रख रहे हैं। आज, वे भारत में अस्मिताओं और दरारों को कुछ इस प्रकार से तोड़-मरोड़कर उपयोग में ला रहे हैं जिससे कि संघर्ष बढ़ जाते हैं। वे भारत की घिसी-पिटी नकारात्मक छवि और गुप्तचर सूचनाएँ देने के लिए अपने पश्चिमी शासक-संगठनों के साथ नेटवर्क में काम करते हैं, जिनका पश्चिमी शक्तियाँ भारत में हस्तक्षेप के लिए उपयोग करती हैं। उपर्युक्त तथ्य यह भी प्रदर्शित करते हैं कि लुथेरन मिशन भी अलगावादी स्वरों के साथ, जो भारत को टुकड़ों में विभाजित करने का आह्वान करते हैं, गठजोड़ करने से नहीं हिचकते।

अन्तिम टिप्पणी

अध्याय 1

1. सुमन गुहा मजुमदार ने 19 अक्टूबर, 2006 को छपे अपने एक आलेख में विख्यात पत्रकार पी. साईनाथ को उद्धृत किया, जिन्होंने न्यू यार्क की एक सभा को बताया कि जहाँ एक ओर भारत के बड़े शहरी मॉलों में सर्वत्र भोजन की दुकानें तेजी से खुल रही हैं, जिनमें सम्पन्न भारतीयों के स्वाद का खयाल रखा जा रहा है, ''आज का औसत ग्रामीण परिवार छह-सात वर्ष पहले की तुलना में लगभग 100 ग्राम कम भोजन खा रहा है, और खाद्यान्नों की औसत प्रति व्यक्ति उपलब्धता तेजी से गिर गयी है। सन् 1991 में जब सुधार की प्रक्रिया शुरू हुई थी तब प्रति व्यक्ति खाद्यान्न की उपलब्धता 510 ग्राम थी; आज यह घटकर 437 ग्राम हो गयी है''। उन्होंने कहा, ''ऐसे समय जब हमारे वर्ग के लोग वैसा खाना खा रहे हैं जैसा कि जीवन में पहले कभी नहीं खाया हो, भारतीय कृषि क्षेत्र ध्वस्त होने की स्थिति में है''। उन्होंने कहा कि जहाँ एक ओर भारत में आठ अरबपति और सैकड़ों लखपति हैं, देश मानव विकास सूचकांक की रपट में 127 वें स्थान पर है। ''इस तरह एक ओर हमारे पास बाघ की-सी विस्मयकारी शक्ति और गति से उभरती अर्थव्यवस्था [टाइगर-इकॉनॉमी] है ... [तो दूसरी ओर] यह याद रखा जाना चाहिए कि विस्मयकारी टाइगर-इकॉनॉमी एक अत्यन्त लज्जापूर्ण मानव विकास सूचक उत्पन्न कर रही है,'' साईनाथ ने कहा। ''भारतीयों की सम्भाव्य औसत आयु मंगोलिया या ताजिकिस्तान के लोगों से कम है''। उन्होंने कहा कि महाराष्ट्र के विदर्भ क्षेत्र में 968 किसानों को आत्महत्या करते देखा गया है, जिनमें पिछले तीन महीनों में औसतन 120 आत्महत्या प्रतिमाह भी शामिल है। मार्च 2006 में संसद को केन्द्रीय कृषि मंत्री शरद पवार ने बताया कि पिछले दस वर्षों में भारत में 1,20,000 से अधिक लोगों ने आत्महत्या की। ''किसानों द्वारा आत्महत्या वास्तव में आज भारत के कृषि क्षेत्र में व्याप्त एक बड़े संकट का लक्षण मात्र है,'' साईनाथ ने कहा, और यह छोटे परिवारों में प्रचलित कृषि परम्परा से कार्पोरेट फार्मिंग की ओर योजनाबद्ध और सुव्यवस्थित चाल का परिणाम था और साथ ही अन्धाधुन्ध नियमन समाप्ति का, जिसने किसान समुदाय को बर्बाद कर दिया है। उन्होंने आगे और कहा, ''यह दावा कि भारत चमक रहा है, सही है। मुझे यह विश्वास है, हालाँकि ऐसा सिर्फ 10 प्रतिशत आबादी के लिए ही हो रहा है''। (देखें : http://ia-rediff-com/money/2006/oct/19bspec-htm)
2. Information Warfare Monitor and Shadowserver Foundation 2010, 43
3. वास्तव में, भारत के चारों ओर के लगभग सभी राष्ट्र कार्नेगी इण्डाउमेंट फॉर इन्टरनेशनल पीस द्वारा जारी विफल राज्य सूचकांक (फेल्ड स्टेट इन्डेक्स) 2009

की सूची में प्रथम 25 स्थानों पर हैं : अफगानिस्तान 7 वें; पाकिस्तान 10 वें; बर्मा 13 वें; बांगलादेश 19 वें; श्री लंका 22 वें; और नेपाल 25 वें स्थान पर।
4. नृशंस साहित्य एक तकनीकी शब्दावली है जो पश्चिमी निहित स्वार्थी तत्वों द्वारा सृजित साहित्य को इंगित करता है, जिसका स्पष्ट उद्देश्य है लक्षित गैर-पश्चिमी संस्कृति के लोगों को इस रूप में दिखाना कि वे पश्चिमी संस्कृति के लोगों पर अत्याचार कर रहे हैं, और इसलिए पश्चिमी हस्तक्षेप की उन्हें आवश्यकता है। इस पर बाद के एक अध्याय में विस्तृत चर्चा की जायेगी।
5. [Oldenburg, 2002]
6. उदाहरण के लिए देखें [Dirks, 2004]
7. [Digby, 1969, 33]
8. [Bagchi, 1984, 81]

अध्याय 3

1. [Jones, 1799]
2. [Schwab, 1984, 17]
3. लन्दन में तीन खण्डों में प्रकाशित यह पुस्तक 'जेन्टुओं' ('जेन्टाइल' शब्द से उत्पन्न एक अपमानजनक शब्द) के 'पुराण-शास्त्र, ब्रह्माण्ड विज्ञान, उपवासों और त्योहारों' की चर्चा करने का दावा करती है। भारत के सम्बन्ध में वोल्टेयर की धारणाओं का मूल स्रोत यही पुस्तक है।
4. वर्ष 1781-82 में, हर्डर और वॉन स्लोजर पहले ऐसे विद्वान हुए जिन्होंने भाषाओं के एक समूह को 'सामी' संज्ञा दी। नूह के पुत्र शेम के नाम से इसका नामकरण किया गया था, जैसा कि जेनेसिस 5:32 में वांछित था।
5. रेनान के 'आर्य' गुणों की प्रशंसा के साथ उनके ईसाई एकेश्वरवाद को प्राथमिकता के विस्तार से प्रस्तुतीकरण के लिए देखें [Katz, 1980, 136]
6. ईश्वर का अदृश्य हाथ मार्क्सवाद में द्वंद्वात्मकवादी प्रक्रिया बन गयी, उतनी ही रहस्यमयी धारणा जिसका उपयोग यूरोपीय उपनिवेशवाद को उचित ठहराने के लिए किया गया था।
7. [Olender, 1992, 7]
8. रॉनाल्ड टेलर विभिन्न रूपकों की सूची पेश करते हैं जो यूरोपीय बन गये, लेकिन उद्भव एवं प्रेरणा में भारतीय थे, जैसे : पुष्पों और पशुओं से प्यार की कविताएँ, पुष्पित कमल का पंथ, गंगा का पवित्र रहस्य, अलौकिक और चमत्कारपूर्ण जगत के प्रतिनिधि के रूप में जादूगर, और नैतिक दर्शन की व्यापक बाढ़।
9. देखें [A.L. Wilson, 1964]
10. जोन्स विश्वास करते थे कि तीनों भाषाई परिवार मध्य पूर्व में नूह के तीन पुत्रों से निकले थे, जहाँ से वे विश्व के विभिन्न भागों में फैल गये। [Jones, The Origin

and Families of Nations 1993]

11. उनके शिक्षक, जो सम्भवत: यूरोपीय महाद्वीप में संस्कृत पढ़ाने के योग्य अकेले व्यक्ति थे, हैमिल्टन नाम के एक स्कॉट थे, जिन्हें फ्रान्सीसियों ने भारत में बन्दी बना लिया था और वे पैरिस में युद्धबन्दी के तौर पर रखे जा रहे थे। भारत के बारे में श्लेगेल के विचारों के विकास को Wichman,2006, 28 में लक्षित किया गया है।
12. नव-पुरातनवाद अथवा नव-श्रेण्यवाद सजावट और दृश्य कला, साहित्य, रंगमंच, संगीत और स्थापत्य कला में उन विशेष आन्दोलनों को इंगित करता है जो पश्चिमी प्राचीन कला और संस्कृति से प्रेरित हुए, सामान्यत: प्राचीन ग्रीस और प्राचीन रोम की। इन आन्दोलनों का दबदबा अट्ठारहवीं शताब्दी के मध्य और उन्नीसवीं शताब्दी के अन्त तक रहा।
13. [Schlegal, 1860, 514]
14. [Schlegal, 1860, 509-11]
15. Sir H.S. Maine, ‘The effects of observation of India on modern European thought’, 1875 Rede lecture [Trautman, Aryans and British India, 2004,2, में उद्धृत
16. रेनान पर इस भाग में Olender, 1992, 53-54, 63-71, 73, 76-79 से काफी कुछ लिया गया है।
17. [Olender, 1992, 66]
18. [Olender, 1992, 70]
19. जैसा कि Halbfass, *India and Europe: An Essay in Understanding*, 1988, 133 में उद्धृत किया गया है।
20. अपने जीवन के अन्तिम समय में उन्होंने अपने अति प्रचलित तुलनात्मक भाषाशास्त्र द्वारा उपस्थित किये गये नस्लवाद के ख़तरों के प्रति पाठकों को सावधान किया।
21. मैक्स मूलर ने भाषाओं के उद्‌गम की व्याख्या करने के लिए डार्विन के सिद्धान्तों का विरोध किया, जिनके बारे में उन्होंने अनुभव किया कि वे पशु मूल के नहीं थे। उनका यह कथन विख्यात है कि प्राकृतिक चयन की ऐसी कोई प्रक्रिया नहीं हो सकती जो कभी पक्षियों के कलरव या पशुओं की पुकार से महत्वपूर्ण शब्दों को छान निकाले। [Max Muller, 1869, 354]
22. [Muller, 1902, 346]
23. पिक्टेट ने यूरोपीय ईसाइयों के आर्य पूर्वजों का वर्णन निम्न प्रकार से किया : ‘सभी ऐतिहासिक दस्तावेजों से पहले के एक युग में, जो समय के अन्धकार में ढँका था, एक नस्ल जिसकी नियति में विधि के विधान से एक दिन पृथ्वी पर दबदबा कायम करना लिखा था, धीरे-धीरे उस क्षेत्र में विकसित होकर वयस्क हुई

जो उसके चकमते भविष्य के लिए प्रशिक्षण का मैदान बनने वाला था। जन्मजात सौन्दर्य और बुद्धिमत्ता के उपहारों में अन्य सभी को पछाड़ते हुए, एक विशाल परन्तु कठोर प्राकृतिक परिवेश द्वारा पोषित, जो उदार था लेकिन अपनी सम्पदा को मुक्तहस्त नहीं बाँटता था, इस नस्ल की नियति में शुरू से ही विजयी होना लिखा था... इसलिए इसने मस्तिष्क के उपहार को योजना बनाने के लिए और ऊर्जा को उसे लागू करने के लिए शीघ्र ही विकसित कर लिया। एक बार जब प्रारम्भिक कठिनाइयों पर काबू पा लिया गया, तब इसने एक पितृसत्तात्मक अस्तित्व की शान्तिपूर्ण सुव्यवस्था का आनन्द उठाया। इस प्रकार प्रसन्नचित्त होकर संख्या और सम्पन्नता में विकसित हो रही इस उर्वर नस्ल ने अपने लिए एक शक्तिशाली औजार बनाया, एक भाषा जो अपनी सम्पन्नता, शक्ति, समरसता, और स्वरूप की पूर्णता के लिए प्रशंसनीय थी; एक भाषा जो इस नस्ल के सभी विचारों, इसकी कोमलतम संवेदनाओं, इसकी सर्वाधिक निष्कपट प्रशंसाओं को ही नहीं, बल्कि उच्चतर संसार की इसकी चाह को अनायास ही प्रतिबिम्बित करती थी; एक भाषा जो छवियों और स्वाभाविक तौर पर उपजे ज्ञान से परिपूर्ण थी, जिसमें भविष्य की सम्पन्नता के श्रेष्ठतम काव्य और गूढ़तम विचारों के बीच थे'। [Olender, 1992, 95-96]

24. पिक्टेट ने सभ्यता रूपी सम्पदा के सामी/आर्य विभाजन की व्याख्या इस प्रकार की— 'दैवी योजना में शुद्ध एकेश्वरवाद के श्रद्धालु अभिभावकों—हीब्रू जनों—की महान भूमिका थी, लेकिन मन में अचरज होता है कि अगर वे मानव के एकमात्र नेता बने रहते तो न जाने दुनिया आज कहाँ होती। तथ्य यह है कि जहाँ उन्होंने बड़ी निष्ठा से सत्य के सिद्धान्त को सुरक्षित रखा जिससे एक दिन उच्चतर प्रकाश निकलने वाला था, नियति ने पहले से ही मानवों की एक अन्य नस्ल को आगे की प्रगति के नेता के रूप में चुन लिया था। यह आर्यों की नस्ल थी, प्रारम्भ से ही उन गुणों से धन्य हुई नस्ल जिनकी कमी के कारण हीब्रू विश्व को सभ्य बनाने वाला समुदाय नहीं बन सका ... दोनों नस्लों के बीच इतनी विषमता है जितनी सम्भव हो सकती है। हीब्रू में वह सत्ता है जो संरक्षित करती है; आर्यों में वह स्वतन्त्रता है जो विकास होने देती है। हीब्रू असहिष्णुता दिखाते हैं, जो ध्रुवीकृत और अलग-थलग करता है; आर्यों में ग्राह्यता है जो विस्तारित और आत्मसात करती है; हीब्रू अपनी ऊर्जा एक ही लक्ष्य की ओर लगाते हैं; आर्य सभी दिशाओं में सक्रिय रहते हैं। एक ओर एक ही ठोस राष्ट्रीयता है, दूसरी ओर एक विशाल नस्ल अनेकानेक समुदायों में विभक्त। दोनों में हम वही पाते हैं जो दैवी योजना को सम्पन्न करने के लिए आवश्यक था'। डध्तह्ी, 1992, 102] लेकिन फर्डिनाण्ड डी सॉसर (1857-1913) ने पिक्टेट के शोधग्रंथ के बारे में गम्भीर सवाल उठाये, भले ही पिक्टेट उनके पहले बौद्धिक दिशानिर्देशक थे। सॉसर ने पूछा : 'इण्डोयूरोपियन लोगों की नस्ल और उनके इतिहास, उनके वतन और उनकी यात्राओं के बारे में कोई निष्कर्ष निकालने के लिए क्या कोई सचमुच तुलनात्मक भाषाविज्ञान पर भरोसा

कर सकता है?' उन्होंने एक खोयी हुई भाषा की पुनर्संरचना के आधार पर प्रागैतिहासिक मानवशास्त्र के बाहरी आकलन के दृष्टिकोण का विरोध किया।

25. [Olender, 1992, 103-4]
26. [Olender, 1992, 112]
27. [Caine and Slug, 2002, 87]
28. [Halbfass, 1988, 139]
29. [Halbfass, 1988, 139]
30. डार्विन की 1871 की पुस्तक, *The Descent of Man and Selection in Relation to Sex* से। यद्यपि डार्विन की इस पंक्ति का उपयोग सुजनन वैज्ञानिकों द्वारा उनके अपने अभियान को वैज्ञानिक विश्वसनीयता प्रदान करने के लिए किया गया होगा, डार्विन ने स्वयं 'नस्लों' शब्द का उपयोग, मानव की नस्लों के अर्थ में नहीं बल्कि 'विविधताओं' के अर्थ में किया। [www-talkorigins-org, 2002] जहाँ एक ओर इस बात में कोई सन्देह नहीं कि जिन लोगों ने सुजनन विज्ञान का समर्थन किया उनमें से कुछ ने डार्विन के विकास-क्रम के सिद्धान्त को एक प्रेरणा या औचित्य प्रदान करने के लिए उद्धृत किया, सुजनन विज्ञान के अभियान को, जिसके कारण अनिवार्य बन्ध्याकरण जैसी नीतियों को जन्म दिया, प्रोत्साहन देने वालों में अधिकांश ईसाई प्रचारक थे। [Lepage, 2008]
31. थियोसोफिकल सोसाइटी ने उसके बाद अनेक बयान प्रकाशित किये जो 'आर्य' शब्द के नाजी प्रयोग के प्रति अत्यन्त आलोचनात्मक थे।
32. ट्यूटॉनिक शब्द जर्मन, स्कैंडिनेवियन और ब्रिटेन के पूर्वजों को इंगित करता है, और इसका उपयोग आज जिसे 'श्वेत' जनों के रूप में जाना जाता है, उनके स्थान पर किया जाता रहा।
33. [Steigmann & Gall, 2003, 39]
34. [Redesdale, 2003, xiii]
35. [Chamberlain, 1911; 2003, 292]
36. [Chamberlain, 1911; 2003, 227]
37. [Chamberlain, 1911; 2003, 184, ईसाई साहित्य में बुद्ध के ऐसे चित्रण आज भी जारी हैं, हालाँकि अधिक धर्मशास्त्रीय अन्तर्ध्वनियों के साथ। पाठक यदि चेम्बरलेन द्वारा बुद्ध के चित्रण और पोप जॉन पॉल की बुद्ध की समालोचना की पुस्तक 'धर्म की onलीज़' (*Threshold of Faith*) की तुलना करेंगे तो स्थिति स्पष्ट हो जायेगी।
38. [Redesdale, 2003, xxx]
39. [Chamberlain, 1911; 2003, 174, चेम्बरलेन 'The Revelation of Christ' नामक अध्याय की शुरुआत इस उद्धरण से करते हैं : By the virtue of One all have been truly saved'।'One' को बड़े अक्षरों में लिखा गया (जो संस्कृत में

नहीं है) ताकि यह आभास दिया जा सके कि यह ईसा मसीह के आने का पूर्व संकेत है।

40. [Domenico and Hanley, 2006, 108-9]
41. [Chamberlain, 1911; 2003, 266]
42. [Kennedy, 1995, 37]
43. [Levy, 2005, 113]
44. [Bhattacharya, 1999, 194]
45. [Halbfass, 1988, 139]
46. [Cohen, 1997, 202-3]
47. [Gillette, 2002, 63]
48. [Pollock, 1993, 77 & 78]
49. पोलोक के बारे में चौonवें अध्याय में फिर से चर्चा की जायेगी
50. [Nicholls, 1993, 204-6]
51. [Halbfass, Research and Reflection, Beyond Orientalism, 2007, 17]

अध्याय 4

1. Genesis 9:22-27
2. [Haynes, 2002]
3. सन 1546 में लूथर ने *Von den Juden und Ihrn Lugen (On the Jews andTheir Lies)* लिखी जिसमें कहा गया कि यहूदी 'शैतान के मल से भरे हैं ... जिसमें वे सुअर की तरह लोटते हैं', और उनको किसी भी तरह का अधिकार देने से इनकार कर देना चाहिए। चार सौ वर्ष बाद, हिटलर के 'तीसरे साम्राज्य' ने लूथर के इस यहूदी-विरोधी वक्तव्य का उपयोग प्रचार के एक स्रोत के रूप में किया ताकि उनके नस्लवाद को वैध बताया जा सके।
4. [Goldenburg, 2003, 168-9]
5. [Goldenburg, 2003, 169]
6. कर के उद्देश्य से, दासों को घरेलू पशुओं के साथ सम्पत्ति के रूप में गिना जाता था। चूँकि संयुक्त राज्य अमरीका के अनेक संस्थापक दासों के स्वामी थे, दासता प्रथा को संयुक्त राज्य अमरीका के मूल संविधान में लिख लिया गया, इस बात का स्पष्ट उल्लेख करते हुए कि हर अश्वेत की गिनती प्रत्येक राज्य की जनगणना के उद्देश्य के लिए एक मनुष्य के 3 बटा पाँचवें हिस्से [3/5th] के बराबर की जायेगी।
7. [Haynes, 2002, 66], कई दासता समर्थकों ने अश्वेत नस्ल को अभिशप्त केन की सन्तानों के रूप में ढूँढ़ निकाला, जो बाइबल के इतिहास में पहला हत्यारा था।
8. [Goldenburg, 2003, 178]

9. [Priest, 1852, 94]
10. [Haynes, 2002, 247]
11. [Taylor, 1895, 20&1]
12. [Trautman, Aryans and British India, 2004, 9] बाद में इसी तरह विकास की अवधारणाओं के आधार पर एक 'पन्थ-निरपेक्ष' श्रेणीबद्ध मानचित्र बनाया गया।
13. पहले के इस्लामी विद्वानों ने निष्कर्ष निकाला था कि भारतीय हैम के काले वंशज थे, लेकिन वे ऐसे पहले राष्ट्र थे जिन्होंने विज्ञान को विकसित किया, और इसलिए अल्लाह ने उन्हें कुछ श्वेत और भूरे लोगों से ऊपर रखा। इसके उदाहरणों के लिए देखें : (i) ग्यारहवीं शताब्दी की पुस्तक जिसे अन्दालुई 1991 में अनूदित किया गया (ii) फिरिश्ता की 1768 में छपी पुस्तक में शेम के नाम का उल्लेख अरब और फारसी लोगों के पूर्वज के रूप में, हैम का भारतीयों के पूर्वज, और जाफेथ का तुर्कियों, चीनियों और रूसियों के पूर्वज के रूप में किया गया है (iii) बाद की एक कृति में अकबर को जाफेथ का वंशज बताया गया, जिन्हें इस पुस्तक ने नूह की सन्तानों में सर्वाधिक न्यायी माना गया है, जबकि हैम के हिन्द और सिन्ध नाम के पुत्र थे। देखें [Beveridge 1977, 167]
14. [Trautman, Aryans and Brtish India 2004, 42]
15. सन् 1728 की अपनी पुस्तक,The Chronology of Ancient Kingdoms, में आइजक न्यूटन ने भी प्राचीन मिथकों के आधार पर नस्लों का अनुक्रम विकसित किया था। बाद में, 1774-6 में ब्रायन्ट ने तीन खण्डों में प्रकाशित अपनी पुस्तक-श्रृंखला Analysisof Ancient Mythology में इसे और आगे तक विकसित किया। हैम के पुत्रों में मिस्त्र के निवासी, ग्रीक, रोमन और भारतीय शामिल किये गये। जैसा कि माना गया, हैम के इन वंशजों ने कला का आविष्कार किया था, लेकिन बाद में वे पतित होकर मूर्तिपूजक बन गये।
16. सामान्यत: स्वीकार किये गये बाइबल के मानक अंग्रेजी संस्करण नूह के उनके 'परिवार' को नाव में ले जाने का उल्लेख करते हैं। शताब्दियों के दौरान इस कहानी में अनेक चिकनकारियाँ हुईं और क्षेपक घुसाये गये।
17. एशियाटिक सोसाइटी में जोन्स द्वारा उनके निधन से सिर्फ दो वर्ष पहले दिये गये व्याख्यान आगे और उद्घाटित करते हैं कि उन्होंने इस विषय में क्या सोचा था : '...हम मोजेज के इतिहास में दर्ज चौथे महत्वपूर्ण तथ्य की ओर बढ़ते हैं : मेरा आशय है मानव की पहली उत्पत्ति और अलग-अलग परिवारों में अलग-अलग निवास स्थलों की ओर प्रारम्भिक छितराव ... यफेट की सन्तानों ने, ऐसा लगता है ... स्वयं को दूर-दूर तक फैला दिया और उन नस्लों को जन्म दिया जिन्हें किसी सही नाम के अभाव में हम टार्टारियन कहते हैं; हैम और शेम के पुत्रों ने जो कालोनियाँ बसायीं वे लगभग एक साथ ही बसायी गयी लगती हैं; और शेम की शाखाओं में हम अरब में निर्विवाद रूप से सुरक्षित इतने सारे नाम पाते हैं, कि हमें

यह घोषित करने में कोई झिझक नहीं हो सकती कि वे वही लोग थे, जिन्हें आज हम अरबी लोग कहते हैं; जहाँ पहले वाली शाखा, जो सर्वाधिक शक्तिशाली और जोखिम उठाने वाली थी, और जिनसे कुश, मिसर और राम (ये नाम संस्कृत में अपरिवर्तित रहे और हिन्दुओं द्वारा ये अत्यधिक सम्माननीय हैं) जैसी सन्तानें आयीं, जिसके बारे में पूरी सम्भावना है कि यह वही नस्ल थी जिसे मैं भारतीय कहता हूँ'। [Jones, Discourses delivered before the Asiatic Society, 1807, 8-9]
18. [Sugirtharajah, 2005, 148, 150]
19. [Trautman, Aryans and British India, 2004, 60]
20. [Jones, 1970, 847]
21. ट्राउटमैन सेंट पॉल के गिरजे में सर विलियम जोन्स की प्रतिमा पर के प्रमुख प्रतीकों का वर्णन करते हैं : 'दृश्य ... गैर-ईसाई मूर्तिपूजकों को दिखाने के उद्देश्य के तहत नहीं प्रदर्शित किया गया है बल्कि सर्वव्यापी जलप्लावन की बाइबल की कथा के सत्य के एक सौम्य और स्वतन्त्र अभिलेख के रूप में छायांकित किया गया है'। [Trautman,Aryan and British India, 2004, 80]
22. उदाहरण के लिए, एक योग्य संस्कृतज्ञ कैप्टन विल्फोर्ड ने, जिन्होंने विलियम जोन्स का अनुसरण किया, दावा किया कि पौराणिक भूगोल का श्वेत-द्वीप इंग्लैण्ड ही था। [Trautman, Aryan and British India, 2004, 91]
23. देखें [Vallancey, 1786, 506]
24. [Trautmann, 1997, 134]
25. [Errington, 2008]
26. [Errington, 2008, 4]
27. [V. Smith, 1958, 3, 32]
28. भारत में अपने एजेंडे के साथ जहाँ कैथोलिक चर्च भी कार्य कर रहे थे, प्रोटेस्टेंट मत प्रचारक और उनके व्यावसायिक सहयोगियों की अधिक रुचि यूरोप केन्द्रित विशाल विवरण निर्मित करने और उनके समर्थन के लिए शैक्षणिक संस्थानों की स्थापना के साथ एक टिकाऊ साम्राज्य के निर्माण में थी।
29. एलेग्जेंडर हैमिल्टन संस्कृत के सबसे पहले प्राध्यापकों में से थे। उन्होंने कलकत्ता में एकत्र किये ज्ञान को पेरिस तक और फिर जर्मनी के कई विश्वविद्यालयों तक पहुँचाने के लिए एक पुल के रूप में काम किया। यूरोपीय महाद्वीप में पेरिस संस्कृत का एक केन्द्र बन गया, पर बाद में जर्मनी इससे आगे हो गया और अन्त में इंग्लैण्ड सबसे आगे हुआ।
30. [W. Monier, 1899, ix]
31. [Parsons, 1997, 197]
32. [W. Monier, 1891, 262]

33. उदाहरण के लिए देखें *Dialogue and History* by Eugene F. Irschick [Universityof California, Paperback Print on Demand, 1994] ट्राउटमैन लिखते हैं कि एडवर्ड सईद ने यह गलत दावा किया कि सिर्फ उपनिवेशवादियों ने ही ज्ञान को एक स्वरूप दिया। इसको गढ़ने और इसकी विकृति में मूल निवासियों ने भी, जो बड़ी तस्वीर और इसके दूरगामी रणनीतिगत महत्व से अनभिज्ञ थे, अत्यन्त केन्द्रीय भूमिका निभायी, अधिकांशत: व्यक्तिगत लाभ के प्रभाव में आकर या अपनी सरलता के प्रभाव में।

अध्याय 5

1. वर्ण व्यवस्था मूलत: सामाजिक विभाजन का एक चार-स्तरीय साँचा था जिसका आधार सामाजिक कार्यकलापों का जातिगत वर्गीकरण था : बुद्धिजीवी, शासक, व्यापारी और कारीगर। यह जन्म पर आधारित नहीं था और ऊर्ध्वाकार से अधिक क्षैतिज था, प्रत्येक वर्ण मूलत: एक सामाजिक विशिष्ट गठन तैयार करता था जिसमें भारतीय इतिहास की जटिल सामाजिक-आर्थिक गत्यात्मकता के अनुरूप जातियाँ प्रवेश करती थीं और छोड़ कर चली जाती थीं।
2. [Dubey, 1975, 78]
3. [M.K. Gandhi, 1946]
4. F. Max Muller quoted in [Dirks, 2004, 133]
5. F. Max Muller quoted in [Inden, 2000, 60]
6. F. Max Muller quoted in [Inden, 2000, 61]
7. [Inden, 2000, 60]
8. उनकी प्रभावशाली कृतियों में शामिल थे : [H.H. Risley, 1891], [H. Risley, *Tribes and Castes of Bengal*. Four Volumes, 1892], [Risley and Crooke, *The People of India*, 1915]
9. [H.H. Risley, 1891, 247]
10. [H.H. Risley, 1891, 259]
11. [H.H. Risley, 1891, 253]
12. [MacDonnell and Keith, 1912. भारत में दो खण्डों में पुन: प्रकाशित, 1100 pages, 2007]
13. [Trautman, Aryans and British India, 2004, 207-8]
14. [Risley and Crooke, The People of India, 1915, 9]
15. [van der Veer, 2001, 149]
16. [Risley and Crooke, The People of India, 1915, 45]
17. [Risley and Crollke, The People of India, 1915, 272-73]

18. [H. Risley, Tribes and Castes of Bengal. Four Volumes I, 1892, xxxxviii]
19. [Risley and Crooke, The People of India, 1915, 275]
20. [H. Risley, Tribes and Castes of Bengal. Four Volumes I, 1892, xxxxviii]
21. सामाजिक डार्विनवाद पश्चिम में एक लोकप्रिय विचारधारा थी। इसका कहना था कि सबसे ताकतवर को जीवित बचना और फलना-फूलना चाहिए जबकि अयोग्य को मर जाने देना चाहिए। हर्बर्ट स्पेन्सर इसके प्रमुख प्रस्तावक थे, और हालाँकि उनकी विचारधारा डार्विन के पहले आयी, स्पेन्सर ने अपने सिद्धान्तों को बल देने के लिए स्वाभाविक चयन के डार्विन की परिकल्पना को शीघ्र ही व्यवहार में शामिल कर लिया। उन्होंने दावा किया कि धनी और शक्तिशाली सामाजिक रूप से अधिक अनुकूलित थे, और इसलिए सबलों के लिए यह स्वाभाविक और नैतिक है कि निर्बलों के मूल्य पर वे फलें-फूलें। बाद में इस सिद्धान्त का उपयोग उपनिवेशवाद को उचित ठहराने के लिए किया गया।
22. [Inden, 2000, 58]
23. [Risley and Crooke, 1915, 111]
24. [Risley and Crooke, 1915, 109]
25. [Risley and Crooke, 1915, 109-10]
26. [Risley and Ctooke, 1915, 275-6]
27. [HeRert Risley, quoted in [van der Veer, 2001, 149] इससे भी आगे, रिस्ली ने नासिक तालिका का उपयोग करने के लिए निम्नलिखित तर्क दिया : 'कोई भी व्यक्ति [आर्यों के साहित्य और विशेषकर आर्यों के आगे बढ़ते जाने के वैदिक वर्णनों पर उन लोगों की नासिकाओं के बार-बार आये सन्दर्भों को पढ़े बिना सरसरी नजर भी नहीं डाल पाया होगा, जिन्हें आर्यों ने भारत के मैदानी क्षेत्रों के स्वामी के रूप में पाया। अपने शत्रुओं की नसिकाओं की कमियों से आर्य इतने प्रभावित थे कि वे प्राय: उन्हें 'नासिकाहीन लोग' कहा करते थे और उनकी इस विशिष्टता के महत्व के बारे में उनकी उत्सुकतापूर्ण धारणा ऐसी लगती है मानो वे डॉ. कॉलिंगनन के विचारों का पूर्वाभास करा रही हों कि शारीरिक बनावट या यहाँ तक कि स्वयं शीर्ष तालिका की तुलना में नासिक तालिका सुस्पष्ट विशिष्टता के मामले में ऊँचे स्थान पर है। तब हम उनकी नाकों को हमारे वर्तमान विश्लेषण के लिए प्रारम्भ बिन्दु के रूप में लेकर तत्काल सबसे प्राचीन और सबसे आधुनिक तथा नस्ली मुखाकृति विज्ञान के आधिकारिक डविचारों् का अनुकरण करने का दावा कर सकते हैं।'[H.H. Risley, 1891, 249-50, quoted in (Trautman, *Aryans and British India*, 2004, 202)]् इस पर ट्राउटमैन कहते हैं : 'ऐसा कर उन्होंने नि:सन्देह वैदिक साक्ष्य को अत्यधिक बढ़ा-चढ़ाकर बताया; आदिम

नाक का रिस्ली द्वारा बारम्बार उल्लेख करना, जिसके बारे में वह कहते हैं कि आर्य प्राय: चर्चा करते थे, ... एक परिच्छेद में सिमट जाता है। रिस्ली और मैक्स मूलर दोनों प्राचीन भारतीय साक्ष्य में नाकों के महत्व को बढ़ा-चढ़ाकर बताने की प्रवृत्ति का प्रदर्शन करते हैं।' [Trautman, *Aryans and British India*, 2004, 202]

28. [van der Veer, 2001, 149]
29. क्लेयर एण्डरसन ऐसा ही एक उदाहरण देते हैं : 'उस समय रिस्ली के विचारों का कुछ विरोध हुआ, उनके द्वारा भी जो मानवशास्त्रीय शोध प्रणाली के प्रति सहानुभूति रखते थे। क्रुक ने लिखा कि जब जाति पर मानवमिति लागू की गयी, तो उच्च और निम्न वर्णों के बीच बहुत थोड़ा अन्तर ही आया। इसने यह प्रदर्शित नहीं किया कि मानवमिति में कोई त्रुटि थी, बल्कि यह कि 'भारत की वर्तमान नस्लें व्यावहारिक रूप में एक ही थीं'। क्रुक के अनुसार रिस्ली की नासिका सूचकांक तालिका ने ब्राह्मणों और तथाकथित निचली जातियों के बीच कोई उल्लेखनीय अन्तर प्रदर्शित नहीं किया। वास्तव में, रिस्ली के अपने आँकड़ों के अनुसार, उत्तर-पश्चिम प्रान्त में निचले वर्ण राजपूतों की तुलना में नासिका के आधार पर ज्यादा परिष्कृत थे। नि:सन्देह, क्रुक ने वर्ण को व्यावसायिक अन्तरों से जोड़ा न कि विशिष्ट नस्ली मूलों से। यह भी संकेत मिलता रहा है कि रिस्ली के साथ विवाद के परिणामस्वरूप क्रुक को पेशेवर जीवन में नुकसान हुआ'। [ClareAnderson, 2004, 61]
30. पीटर वैन डर वीर लिखते हैं : 'रिस्ली के कार्य की व्यापक महत्ता को भारतीय मानवशास्त्र के पुरोधा एस. घुर्ये द्वारा विधिवत गौर किया गया, जिन्होंने नस्ल और वर्ण के बीच रिस्ली द्वारा सम्बन्ध स्थापित करने की कड़ी आलोचना की। घुर्ये के दृष्टिकोण में नस्ली विलयन के लम्बे इतिहास ने इस तरह के सम्बन्धों की स्थापना को असम्भव बना दिया है। घुर्ये की दृष्टि वर्णों के राजनीतिकरण के प्रति स्पष्ट थी जो जनगणना प्रक्रिया के परिणामस्वरूप उभरा था : 'इसका सकल परिणाम रहा, जैसा कि हमने देखा है, वर्ण-भावना का फिर से उभार'। उनका ध्यान और उनकी मुख्य चिन्ता थी उनके अपने राज्य महाराष्ट्र और तमिलनाडु में ब्राह्मण विरोधी आन्दोलनों का उभार। आर्यों और अनार्यों के बीच सैद्धान्तिक विभाजन द्वारा इन आन्दोलनों को हवा दी जा रही थी, ऐसा विभाजन जिसे रिस्ली के निष्कर्षों द्वारा वैज्ञानिक ढंग से समर्थन मिल रहा था'। [van der Veer,2001, 150]
31. अमरीकी दास प्रथा के सन्दर्भ में, इसमें न सिर्फ पाशविकता, क्षमता से अधिक कार्य और स्वतन्त्रता की कमी थी, बल्कि श्वेत पुरुषों में उनकी महिला दासियों से सन्तानें उत्पन्न करना भी आम बात हो गयी थी। मिश्रित नस्ल के बच्चे सामान्यत: अश्वेत जैसे ही माने जाते थे, और इस तरह वे जन्म से ही कानूनी रूप से दास थे। इस बीच, यदि किसी अश्वेत ने श्वेत महिला के साथ तनिक भी यौन रुचि दिखायी

तो उसकी शीघ्र ही हत्या कर दी जाती थी। किस तरह भारत में 'नस्लों' में मिलन हुआ इस पर रिस्ली की व्याख्या का यही स्मृति अवशेष है।

32. [Risley and Crooke, 1915, 275]
33. [Ambedkar, 1948] Chapter Six.

अध्याय 6

1. फिलिप वैगनर, ट्राउटमैन के अनुसार, ने तर्क दिया है कि मैकेन्जी परियोजना ने आर्कट के नवाब के अधीन काम करने वाले तेलुगू ब्राह्मणों पर विश्वास किया, और यह कई भाषाओं तथा लिपियों में उनकी निपुणता ही थी जिसने इस औपनिवेशिक सफलता को सम्भव बनाया। इससे भी आगे, उन्होंने बल देकर कहा कि भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण द्वारा वर्तमान में उपयोग की जा रही पुरालेख सम्बन्धी अनेक प्रथाओं के स्रोत उसी परियोजना में खोजे जा सकते हैं। [Trautman, 2006, 211]
2. यूरोपीय नस्ल विज्ञान की जटिलताएँ और अन्तर्विरोध इस अध्ययन की परिधि से बाहर हैं। फिर भी, कॉल्डवेल द्वारा द्रविड़ों को सिथियनों के साथ चिह्नित करना कोई बिना सोची-समझी अटकल नहीं थी। यह भारत को लोगों में विभिन्न बाइबल सम्बन्धी नस्लों की औपनिवेशिक नृवंशवैज्ञानिक पहचान की प्रक्रिया के तहत ही था। उदाहरण के लिए, पश्चिम भारत में खुदाई में निकली बौद्ध प्रतिमाओं को हामी नमूना माना गया और स्वयं बुद्ध के बारे में कहा गया कि वह 'हामी शक' श्रेणी के ही थे, और भारत आने वाले सबसे पुराने लोगों को 'शक मूल' का खोज निकाला गया। [Rev Dr Wilson, 1857,679]
3. स्कॉटिश मिशनरी सोसाइटी द्वारा भेजे गये वह भारत में रहते हुए संस्कृत के विद्वान बन गये। वे रॉयल एशियाटिक सोसाइटी की बॉम्बे शाखा के अध्यक्ष भी बने। बाद में उन्होंने द्रविड़ परिकल्पना को विस्तारित किया ताकि उसमें मराठी को भी शामिल किया जा सके।
4. कॉल्डवेल ने प्राचीन तमिल समाज के सभ्यता के उच्चतर स्वरूपों के साथ सम्पर्क पर प्रश्न उठाये, और उन्होंने ब्राह्मणों के आने के पूर्व (118) कला, विज्ञान या धर्म के ऐसे किसी प्रकटीकरण के अस्तित्व पर सन्देह किया; उदाहरण के लिए, द्रविड़ धर्म, ब्राह्मणों के अभ्युदय के पूर्व एक तरह से प्रेत-पूजा या आदिम ओझागिरी रहा था (579-97)। जो भी हो, कॉल्डवेल ने निष्कर्ष निकाला कि यद्यपि ब्राह्मणों के आने के साथ सभ्यता आयी, ज्ञान की उस उच्चतर प्रणाली का लाभदायी प्रभाव पत्थर बना देने वाली वर्ण-व्यवस्था के जवाबी-सन्तुलन प्रभाव द्वारा कुछ अधिक ही नकार दिया गया (119)। उसके बाद कॉल्डवेल ने एक व्यापक मामला बनाया कि भारत की गैर-संस्कृत भाषाओं के दो परिवार थे : द्रविड़; और मुण्डा की

भाषाएँ और उनकी भाषाएँ जिन्हें उन्होंने 'मध्य भारत और बंगाल की अन्य अशिष्ट जनजातियाँ' कहा (42)।[Caldwell, 1856;2009]

5. ट्राउटमैन दावा करते हैं कि एलिस ने इस सिद्धान्त को बहुत पहले ही गढ़ लिया था, लेकिन कॉल्डवेल की पुस्तक ने उसे ग्रस लिया था, आंशिक रूप से भारत में उनके असामयिक निधन के कारण एलिस के शोध सम्बन्धी काग़ज़ात खो गये थे। [Trautmann,1997, 150] एक अन्य कारण जिसके बारे में ट्राउटमैन द्वारा स्पष्टत: कुछ नहीं कहा गया था, वह यह है कि एलिस और कैम्पबेल ब्राह्मणों से उतना विद्वेष नहीं रखते थे जितना कि प्रोटेस्टेंट मिशनरी विद्वान् रखते थे। ट्राउटमैन यह अवश्य कहते हैं कि ब्राह्मणों के लिए जैसा ठेठ प्रोटेस्टेंट विद्वेष था, वह एलिस और कैम्पबेल में अनुपस्थित है [Trautman, 2006, 210]। जो भी हो, एलिस ने भी मोजेइक नृवंश वैज्ञानिक ढाँचे के भीतर रहकर कार्य किया और तमिल को हीब्रू से जुड़े हुए के रूप में वर्गीकृत किया, जिसे उस समय सामी कहा जाता था, जो संस्कृत के विपरीत था, और जो जोन्स के वर्गीकरण के अनुसार हामी मूल की थी। [Trautmann, 1997, 154]
6. [Caldwell, 1856; 2009, 3-6]
7. मानवों में नस्ली अन्तर का आविष्कार सोसाइटी फॉर प्रोपेगेशन ऑफ द गॉस्पल (एझ्उ) की रणनीति का हिस्सा बना रहा लगता है, जिसके साथ कॉल्डवेल ने स्वयं को जोड़ लिया था। पूर्व में एस.पी.जी. ने दासता का पक्षधर होने के कारण अपने लिए एक कुख्याति अर्जित की थी। इसके अतिरिक्त, जब 'उनका सामना इन बढ़ते साक्ष्यों से हुआ कि इसके कार्य व्यापक धर्मान्तरण नहीं कर पा रहे थे, सोसाइटी ने मानव जनसंख्याओं के बीच मूलभूत अन्तर के साक्ष्य के रूप में अपने मिशनरी इतिहास की अधिकाधिक दुर्व्याख्या की'। [Glasson, 2005]
8. निकोलस डक्र्स के शब्दों में : 'तमिलों की अनिर्भरता का दावा करने के क्रम में, डकॉल्डवेल़ ईसाई धर्मान्तरण के लिए उनकी आत्मा का दावा करते हुए भी लगे।' (1995, 128) quoted in डझते, 1999, 83]
9. [Brook and Schmid, 2000, 55, टी. बरो और एम.बी. ईमेनो की Dravidian Etymological Dictionary का प्रकाशन द्रविड़ भाषाविज्ञान में एक अन्य मील का पत्थर था।
10. [Mallampalli, 2004, 108]
11. [Brook and Schmid 2000, 56]
12. Caldwell quoted in [P. Srinivasan 2006, 231-2]
13. [Brook and Schmid 2000, 57]
14. [Brook and Schmid 2000, 58]
15. डॉ. जी.यू. पोप (1820-1908) उन्नीस वर्ष की आयु से लगभग पैंतीस वर्ष तक दक्षिण भारत में रहे। वे (रॉबर्ट कॉल्डवेल के पदचिह्नों का अनुसरण करते हुए), द सोसाइटी फॉर द प्रोपेगेशन ऑफ द गॉस्पल से तिरुनेलवेली में जुड़े, जहाँ उन्होंने

पहले तमिल भाषा और साहित्य का अध्ययन किया। बाद में वे एक पादरी के रूप में वापस ऑक्सफोर्ड चले गये।

16. [Sugavaneswaran 1992, 4334]
17. [Pope 1886: 1958, iii]
18. [Pope, 1886: 1958, iv]
19. टॉमस की ईसाइयत एक चाल है जो मिशनरियों और सनकी शिक्षाविदों द्वारा विकसित की गयी थी। यह वर्तमान हिन्दू धर्म को सेंट टॉमस द्वारा भारत लाये गये ईसाई मतों के परिणाम के रूप में देखती है। नेस्टोरियन ईसाइयत एक ईसाशास्त्रीय पाखण्ड है जो पाँचवीं शताब्दी के चर्च से निकली। यह सातवीं शताब्दी में फारस होते हुए चीन पहुँची। मेरी की दिव्यता का खण्डन करने में यह ईसाई प्रचारक प्रोटेस्टैंटिज़्म से मिलती जुलती है। वास्तव में, प्रोटेस्टेंट मत के अनुयायियों की आलोचना करने वाले कैथोलिकों ने उन्हें 'क्रिप्टो-नेस्टोरियन्स' कहा। इसलिए, प्राचीन तमिल संस्कृति पर नेस्टोरियन प्रभाव की पहचान करने में ऐंग्लिकन प्रोटेस्टेंट मिशनरी अपनी ही ईसाई प्रचारक गतिविधियों के साथ सम्पर्क-सूत्र ढूँढ रहे थे।
20. उदाहरण के लिए, ईसाई इतिहासकार स्टीफन नील भी पोप के कपटी दावे को एक सहानुभूतिपूर्ण स्वर में खारिज करते हैं : 'डॉ. पोप की कुशाग्र परिकल्पना ने एक सुन्दर रोमांस उत्पन्न किया है। ऐतिहासिक न्याय का संयमी निर्णय तो यही होना चाहिए कि तमिल साहित्य पर इस तरह के किसी भी प्रभाव की सम्भावना नहीं है... हिन्दू चिन्तन पर ईसाई प्रभाव की किसी व्यापक घुसपैठ को पूरी तरह से अस्वीकार करना ही होगा, क्योंकि ऐसी सम्भावना दूर की कौड़ी से ज्यादा कुछ भी नहीं है। यहाँ, और अन्य स्थानों पर भी, जो हमें दिखायी देता जान पड़ता है, वह यह कि विभिन्न स्थानों पर समर्पित मस्तिष्कों द्वारा समान समस्याओं पर कार्य किया जाता रहा है और स्वतन्त्र रूप से वे तुलनीय परिणामों पर पहुँचे'।[Neill 2004, 62]
21. [Zvelebil, The Smile of Murugan on Tamil Literature of South India 1973,157]
22. [Tambyah T., 1985, viii]
23. Caldwell quoted in: [Pels 1999, 83]
24. [Brook and Schmid 2000, 60]
25. [Zvelebil, The Smile of Murugan on Tamil Literature of South India 1973,157]
26. [Pope 1886: 1958, xiii]
27. जैन कोष (इन्साइक्लोपीडिया) विशेष रूप से कृषि और जुताई के खिलाफ इस निषेध की व्याख्या करता है : जीवधारियों के विनाश से जुड़े हुए सभी कार्य या जिनसे उनको क्षति पहुँचती है, वर्जित माने गये थे। इसलिए जैन इसे अस्वीकार

करते हैं, उदाहरण के लिए, कृषि, यह मानते हुए कि जब खेतों में जुताइ की जाती है तो अनेक जीवधारियों को व्यापक क्षति पहुँचाती है ... स्वाभाविक रूप से यह धार्मिक शिक्षा मुख्यत: प्रचारित हुई ... प्राचीन काल में भी।' (N. Jatia 2001, 1491) यहाँ तक कि कुछ विरले जैन समुदायों से परहेज किया गया जो कृषि जुताई और कोड़ाई के कार्य में लगे थे। देखें : [Padmakumar n.d.] सामान्य रूप से कृषि और विशेष रूप से जुताई के प्रति ऐसी जैन विमुखता के विरोध में तिरुकुरल में दस दोहे पूरी तरह कृषि की प्रशंसा में हैं, उस भाग में जिसका शीर्षक ही 'कृषि' है और पहला ही दोहा विशेष रूप से जुताई करने वाले की प्रशंसा करता है। [देखें : *Thirukural*, 104, HuWandry 104: 1031 verses1-10 (1031-1040) praise agriculture: Bharathiar 1968]

28. *Thirukural* 55:10 [550]. [Bharathiar 1968]
29. उदाहरण के लिए, 'संन्यासियों के गुण' [The Merit of Ascetics] नामक शीर्षक वाले भाग में वे कहते हैं : 'स्वयं इन्द्र के कथन में था यह भाव/कितना शक्तिशाली होता है संन्यासियों का प्रभाव'[Indra himself has cause to say/ How great the powerascetics' sway] [3:5(25)]

   'महान को आहत न करो' [Offend Not The Great] शीर्षक अध्याय में भी वे कहते हैं : धर्मात्मा सन्त को जब आये क्रोध/इन्द्र के साम्राज्य में उपजे प्रतिरोध [Before theholy sage's rage/ Ev'n Indra's empire meets damage.] [Thirukural 90:9[899], [Bharathiar 1968]
30. *Thirukural* 61:10 [610], [Bharathiar 1968]
31. *Thirukural* 9:4 [84], [Bharathiar 1968]
32. *Thirukural* 62:7 [617], [Bharathiar 1968]
33. *Thirukural* 56:10 [560], [Bharathiar 1968]
34. *Thirukural* 55:3 [543], [Bharathiar 1968]
35. *Thirukural* 14:4 [134], [Bharathiar [1968]
36. *Thirukural* 69:4 [684], [Bharathiar 1968]
37. [Pope, *The Sacred* Kural *of Thiruvalluvar* 1886, quoted and refuted by [Zvelebil, *The Smile of Murugan on Tamil Literature of South India* 1973,126]
38. [Zvelebil, *The Smile of Murugan on Tamil Literature of South India* 1973,125-6]
39. [Basu 2005]
40. [Lochan 2003]
41. [Hudson 1995, 98]

42. [Hudson 1992, 27]
43. [Pope 1900:2002,xxxiii]
44. उदाहरण के लिए, यहाँ एक प्रसिद्ध तमिल विद्वान (एम.पी. सोमू) की प्रतिक्रिया उद्धृत की जा रही है जो 1961 में जी.यू. पोप के मकबरे में गये थे (चार हजार अन्य मकबरों में से उनके मकबरे को खोजते हुए, जिसे उन्होंने झाड़ियों के बीच पाया जिसकी कोई सुध नहीं ली गयी थी) : [हमने तमिलों की तरह ही मकबरे की परिक्रमा करते हुए तमिलों की ओर से श्रद्धांजलि अर्पित की। हमें देखते हुए वहाँ देखभाल करने वाले में भी श्रद्धा जाग गयी। उन्होंने भी ईसाई परम्परा में श्रद्धांजलि दी। ''मेरे मित्र! कृपया इस मकबरे पर झाड़ियाँ न फैलने दें। यह हमारे पूर्वजों में से एक का मकबरा है। उनकी हजारों सन्तानें हैं जो दक्षिण भारत में रहती हैं। भविष्य में जो भी आगन्तुक यहाँ आये उन्हें वैसी परेशानियाँ न हों जैसी हमें हुईं। समय-समय पर तेल से इसे पोंछें और इन अक्षरों को चमका कर रखें। आपको इस सुकर्म का सुफल मिलेगा। हमारे देश के लोग आभारी होंगे''। इन शब्दों के साथ हमने उनकी प्रशंसा भी की quoted in I Shanmuganathan, *A Tamil Student's Headstone in a Cemetery, (Nathan) Former Editor, Thinathanthi* (a Tamil daily), 1999, http://www.tamilnation.org/literature/pope.htm.
45. रोचक बात है कि पोप यहाँ शैव शब्द के लिए वैकल्पिक वर्तनी का प्रयोग करते हैं जिसका उपयोग द्रविड़वादियों और मिशनरियों द्वारा तमिल पर संस्कृत के प्रभाव को कम करने के लिए किया जाता था।
46. [Pope 1900:2002, viii, xii]
47. [Pope 1900:2002, xxxiii]
48. [Appasamy 1942, 262] : पारम्परिक शैव सिद्धान्त के विद्वानों ने ऐसी विकृत तुलनाओं का खण्डन किया और दिखाया कि किस प्रकार शैव सिद्धान्त शेष भारतीय आध्यात्मिक परम्पराओं की संगति में है और ईसाइयत से मूलत: भिन्न है : 'ईसाइयत आने वाले समय में सदा के लिए केवल एक ही ईश रहस्योद्घाटन की बात करता है, लेकिन सिद्धान्त का ईश्वर समय आने पर प्रत्येक आत्मा के सामने स्वयं को उद्घाटित करता है। ईसाइयत में, ईश्वर की अनुकम्पा मानव के पाप से मुक्ति के लिए है, लेकिन सिद्धान्त में ईश्वर की अनुकम्पा आत्मा की नियति की पूर्णता है। यातना स्थल (purgatory) या स्थायी नरक या स्वर्ग जैसी कोई चीज शैव सिद्धान्त में नहीं है... प्रत्येक आत्मा को ईश्वर तक पहुँचना ही है'। [Mudaliar 1968, 157]
49. [Blackburn, 2004, 51]
50. [P.M. Pillai 1904:1994, 76]
51. [P.M. Pillai 1904:1994, 112]
52. [P.M. Pillai 1904:1994, 154-55]

53. [P.M. Pillai 1904:1994, 254-55]
54. वैष्णवों द्वारा रचित तमिल के अनेक साहित्यिक इतिहास भी थे जिन्होंने वैष्णव साहित्य के 'तमिलपन' पर बल दिया था, लेकिन वे तमिल क्षेत्रों में तुलनात्मक रूप से कम संख्या में थे और अगड़ी-जातियों के माने जाते थे। इस प्रकार, वैष्णव, बौद्ध, जैन और बाद का इस्लाम जब तमिल में लिखा भी गया तो उन्हें 'गैर-तमिल' या विदेशी धर्म की श्रेणी में रखा गया। इसने धार्मिक साहित्य में शैव प्रभाव को सुदृढ़ किया।
55. [Yesuvadian 2002]
56. [Yesuvadian 2002, 93-4]

अध्याय 7

1. स्क्लैटर ने इस सिद्धान्त को 'The Mammals of Madagascar' नामक शीर्षक से एक आलेख में *The Quarterly Journal of Science* में प्रकाशित किया था। दोनों महाद्वीपों की वनस्पतियों और पशुओं के बीच समानताओं की उनकी यह व्याख्या थी।
2. एंगेल्स के आलेख का शीर्षक था 'The Part played by Labour in the Transitionfrom Ape to Man'. देखें : (Engels 1876)
3. [Blavatsky, Theosophical Gleanings 1890, 502] रोचक बात यह है कि ब्लावात्सकी के सिद्धान्त ने दावा किया कि लिमुरिया निवासी मानसिक रूप से विकसित नहीं थे और क्रोधित देवताओं ने लिमुरिया को महासागर में डुबो दिया। लिमुरिया के बाद उसका स्थान अटलांटिस ने लिया जहाँ एक अधिक श्रेष्ठ नस्ल निवास करती थी। द्रविड़वादी अन्धराष्ट्रवादियों ने इन सभी पक्षों की उपेक्षा कर दी और कट-पेस्ट विद्वता का उपयोग कुछ चीजों का चयन कर श्रेष्ठता का अपना ही मिथक गढ़ने में किया।
4. [C. Wilson 1988, 435] ब्लावात्सकी पहले हिन्दू समाज सुधारक और आर्य समाज के संस्थापक स्वामी दयानन्द सरस्वती से मिलीं, और उन्होंने उनसे थियोसॉफिकल अभियान चलाने के लिए समर्थन माँगा। लेकिन स्वामी जी ने ब्लावात्सकी के अनाड़ी होने और तंत्र-मंत्र में अत्यधिक रुचि रखने के कारण उनके इस अनुरोध को अस्वीकार कर दिया। उसी के बाद वे दक्षिण भारत गयीं।
5. [Blavatsky, 1893, 249]
6. [Blavatsky 1917, 723]
7. अपने The Manual of the Administration of the Madras Presidency, (1885), शीर्षक नियमावली में मैक्लीन ने लोगों को तीन नस्ली श्रेणियों में वर्गीकृत किया— आर्य, द्रविड़ और कोलारी, और उन्हें 'बर्बर जंगली' से 'सभ्य' के बीच के पैमाने पर रखा।

8. [Ramaswamy 2005, 101-2]
9. [P.M. Pillai 1904:1994, 4]
10. [Abbas 2000] संयोगवश, घृणा फैलाने वाले पहले के एक वेबसाइट dalistan.org को अब्बास भारतविद्या के आँकड़ों के लिए एक आधिकारिक स्रोत मानते हैं।
11. [Iyengar 1925:2004, 23]
12. [T van yan 1966, vkeq[k esa
13. [Ramaswamy 2005, 120]
14. [Nandhivarman 2003] नांधीवर्मन द्रविड़ आन्दोलन से निकले एक दल द्रविड़ पेरवै के महासचिव हैं। उनके द्वारा यह शोध पत्र 28 सितम्बर 2003 को 'सिंधु घाटी पर राष्ट्रीय संगोष्ठी : हाल के अनुसंधानों की पुनर्समीक्षा' विषय पर पौंडिचेरी इन्सटीटयूट ऑफ लिंग्विस्टिक्स एण्ड कल्चर (PILC) द्वारा आयोजित सेमिनार में प्रस्तुत किया गया था। पौंडिचेरी के शिक्षा मंत्री के. लक्ष्मीनारायणन द्वारा सेमिनार का उद्घाटन किया गया था। इस शोध पत्र ने कुछ अन्य सन्देहास्पद विद्वानों को भी उद्धृत किया था। उदाहरण के लिए, जेम्स चर्चवार्ड (1851-1936) वास्तव में एक चाय की बागवानी करने वाले तथा एक तंत्र-मंत्र लेखक थे जिन्होंने दावा किया कि एक भारतीय जंगल के मन्दिर में उन्होंने एक प्राचीन मृत भाषा को पढ़ लिया है और उन्होंने बल देकर कहा कि इसने उन्हें मू के बारे में जानकारी दी है, जो मानव की जन्म स्थली थी, जो अब समुद्र में डूब गयी है। उन्होंने *The Lost Continent of Mu Motherland of Man* [1926], *Cosmic Forces of Mu* [1934], *Second Book of Cosmic Forces of Mu* [1935] जैसी पुस्तकें लिखीं। फिर भी, संगोष्ठी में स्वीकृत इस 'शोध पत्र' में चर्चवार्ड की तंत्र-मंत्र सम्बन्धी अटकलों को विद्वातापूर्ण शोध के रूप में इन शब्दों में वर्णित किया गया : 'श्री जेम्स चर्चवार्ड ने विभिन्न प्राचीन ग्रंथों का अध्ययन कर, [जैसा कि] दावा किया गया,एक अतिविकसित सभ्यता वाले बहुत समय पहले खो गये महाद्वीप के अस्तित्व का पता लगाया जो 60,000 वर्ष पूर्व प्रशान्त महासागर में एक प्रलयंकारी भूकम्प के बाद डूब गया था। इस तरह डूबने से 640 लाख लोग मरे थे, और जिसकी काल गणना 50,000 वर्षों से पहले की है'।
15. [Aravannan 1980, र्45]
16. [A.J. Wilson 1988, 27]
17. [Dharmadsa 1992, 55, 56] ये टिप्पणियाँ अनेक कारणों से दिलचस्प हैं। इससे पता चलता है कि कितनी तेजी से श्रीलंका के अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त लोगों ने पश्चिम के शिक्षाविदों के नस्लवादी सिद्धान्तों को अपना लिया था। जेम्स डी. आल्विस (1823-78), जिन्होंने ये टिप्पणियाँ की थीं, औपनिवेशिक अंग्रेजी शिक्षा की उपज थे और उन्होंने सिंहली भाषा को अंग्रेजी में शिक्षित एक मूल निवासी के लिए एक

'अनिवार्य बुराई' माना जिसका उद्देश्य 'अपने देशवासियों के साथ बातचीत करना बरकरार रखा था'। [Dharmadsa, 1992, 38]

18. [Grant 2009, 59]
19. [A.J. Wilson 1988, 32]
20. [A.J. Wilson 1988, 28]
21. [Obeyesekere 1976, 234]
22. [Bartholomeusz and De Silva 1992, 172]
23. [Tambiah 1992, 131]
24. [Tambiah 1992, 131]
25. [Obeysekere 1992, 152]
26. [Obeysekere 1992, 152]
27. [Blavatsky 1893, 439]
28. [ReuterxIndia 1 March 2008]
29. [Korn 1999, 28]
30. [Bonner 7 March 1998]
31. [Fund for Peace and Carnegie Endowment for International Peace 2008]
32. [Philip 29 May 2009, श्रीलंका सरकार ने इस आँकड़े को अस्वीकार कर दिया है, और दावा करती है कि नागरिकों के हताहत होने की संख्या 6500 है, हालाँकि अधिकांश सहायता प्रदान करने वाली एजेंसियों और संयुक्त राष्ट्र मिशन श्रीलंका सरकार सरकार के दावों पर सन्देह करते हैं।

अध्याय 8

1. बाइबल में टॉमस के नाम का उल्लेख ईसा मसीह के बारह अनुयायियों, या अग्रदूतों, में से एक के रूप में किया गया है। ईसाई विश्वास के अनुसार उनकी शिक्षा के प्रचार-प्रसार के लिए उनके इन अनुयायियों में से कई विश्व के अन्य हिस्सों में गये। टॉमस के भारत पहुँचने के पारम्परिक मिथकीय विश्वास के तहत उनके यहाँ आने का काल सन् 52 निर्धारित किया गया है।
2. [Young, 1979, 117-8]
3. [Thakurtha and Raghuraman, 2004, 230]
4. [der Veer, 1996, 119-20]
5. [der Veer, 1996, 119-20]
6. [der Veer, 1996, 119-20]
7. [Deivanayagam, M, Was Thiruvalluvar a Christian?, 1969:1970]

8. देइवनयगम द्वारा प्रारम्भ में प्रकाशित की गयी पुस्तकों में सम्मिलित थे : *Is Thiruvalluvara Christian? [1969], Who is Thiruvalluvar's 'One Who Won the Five Senses'? [1970], Who is the Renounced of Thiruvalluvar? [1971], Who are 'the noble ones' in Thiruvalluvar? [1972], The Seven Births [1972], Who are the Three whom Thiruvalluvar praises? [1974], Thirukural and Bible [1980] and Bible, Thirukural and SaivaSiddhanta [PhD dissertation, 1983], India in Third Millennium [2000].*
9. [Deivakala. D, 2003, 15]
10. [Rasamanikkam.. ए व्, 1974, 92-3]
11. [K. Srinivasan, 1979]
12. [Satyam. T S, 1979, 192-3]
13. अपने अनेक प्रकाशनों में देइवनयगम द्वारा दावा किया गया। उदाहरण के लिए, शैव सिद्धान्त ग्रंथ 'Siva Gyana Botham'पर उनके आलेखों/टिप्पणियों की पुस्तक के कवर पर देखें। [Deivanayagam. M, 2007]
14. [Mudaliyar, 1991]
15. संगोष्ठी के ग्यारह वक्ताओं में से छह निचले वर्णों के संगठनों के नेता थे, एक उनकी अपनी ही पुत्री थीं, एक अन्य ईसाई मिशनरी थे, और एक और धर्मान्तरित ईसाई थे जो स्वयं को देइवनयगम का अनुयायी बताते हैं : [Data from the invitation to 'Rebuttal to the book refuting Deivanayagam and Symposium on 24-1-1992' held at Chennai]
16. [Deivanayagam. M and Devakala D, 2005, 61]
17. [Sunil. K P, 1987] आलेख में लिखा गया था : 'आर्चबिशप को तब तक सन्देह क्यों नहीं हुआ जब तक कि उन्होंने 13,49,250 रुपये की विशाल राशि (रिकार्ड के अनुसार, यद्यपि अय्यर दावा करते हैं कि उन्होंने इससे अधिक धन प्राप्त किया था) एक नकली शोध परियोजना के लिए उन्हें नहीं दे दी? आर्चबिशप ने अय्यर द्वारा प्रस्तुत दस्तावेज की पुष्टि सम्बद्ध संग्रहालयों और अन्य संस्थानों के साथ मिलकर करने के सीधे प्रयास क्यों नहीं किये थे? उन्होंने इस बात की आवश्यकता क्यों नहीं समझी कि जिस स्थान पर शोध हो रहा था वहाँ वे अय्यर के साथ जाते जबकि उन्हें उनके साथ रोम, वैटिकन, जर्मनी, फ्रांस, स्पेन और संयुक्त राज्य जाने का समय मिल गया? ... इससे भी विस्मयकारी बात यह है कि जब एक दण्डाधिकारी के न्यायालय में अय्यर के विरुद्ध आपराधिक मुकदमा चल ही रहा था, मद्रास उच्च न्यायालय में समझौते के लिए एक सिविल मामला दाखिल किया गया। ... दूसरे शब्दों में, अय्यर को, जिन्होंने आर्चबिशप को 14 लाख रुपये का चूना लगाया था, आगे बिना किसी दण्ड के छोड़ दिया गया। ...

समझौते के अंग के रूप में अय्यर को विशाल बँगले को रख लेने दिया गया जिसे उन्होंने आर्चबिशप के रुपयों से खरीदा था।

18. [*Hinduism Today*, 1983]
19. [India Today, 15 June 1983: quoted in *Hinduism Today*, 1983]
20. [Matthew, C.P. 1983] [Emphasis added]
21. [*Hinduism Today*, 1983]
22. [Isaak, C.I. 2006]
23. [Sampath, 2008]
24. [www.stthoma.com, 2002]
25. [Goodman, 2002, 73]
26. ऐसे दावों के विपरीत प्रारम्भिक ईसाई इतिहास में ईसाई कलात्मकता के एक प्रतीक के रूप में सलीब का उपयोग छठी शताब्दी के मध्य से ही सामने आया जिस पर कोई प्रश्न नहीं उठाया जा सकता। [Metzger, B.M. and Coogan, M.D. 1993, 57]
27. [Bhaskaran, 2007, 63]
28. [Polo, 2004, 311-2] आज इस बात पर सशक्त विवाद चल रहा है कि क्या मार्को पोलो वास्तव में भारत और चीन की यात्रा पर आये थे, या वे केवल उन कथाओं को ही यात्रा वृतान्त के रूप में प्रस्तुत कर रहे थे जिनको उन्होंने अपने ही ईसाई विश्व में से इकट्ठा किया था। उदाहरण के लिए देखें : [Lord, 2000] 'विवाद 1995 की एक पुस्तक Did Marco Polo Go to China? में फूट पड़ा जिसे ब्रिटिश लाइब्रेरी के चीनी विभाग के अध्यक्ष फ्रांसिस वु[ने लिखा था। वु[पोलो द्वारा छोड़ दी गयी चीजों का उल्लेख करते हैं और तर्क देते हैं कि सम्भवत: वे कभी फारस से आगे नहीं गये'।
29. [Hunter, 2001, 237, 238-9]
30. [Rocher, 1984, 41]
31. H. Heras, quoted in [Neill, 2004, 35]
32. H. Heras, quoted in [Joseph, T K., 1955, 28]
33. [Rajasekharan, S, 1989, 287-8, 291]
34. [Tamil Nadu Archaeological Survey, 1967, 242]
35. [Tamil Nadu Textbook Society, 1989, 98-9]
36. [Martin, K.A., 2008]
37. [Kumutham Reporter, 2008]
38. [Deivanayagam, M., 2000, 32-3]
39. [Deivanayagam, M., 2000, 34, [Emphasis added]
40. [Deivanayagam, M., 2000, 45]

41. [Institute of Asian Studies, 2002]
42. [Institute of Asian Studies, 2002]
43. [Zvelebil, 1985, 2]
44. [Zvelebil, 1985, 13-14]
45. [Zvelebil, 1985, 13-14]
46. [Zvelebil, 1985, 13-14]
47. [Zvelebil, 1985, 15]
48. [Chakravarti, 1986, 62]
49. [Sivaramamurti, C., 1976, 169, Fig. 4]
50. [Zvelebil, 1991, Introduction]
51. [Zvelebil, 1991, 9]
52. [Zvelebil, 1991, 11]
53. [Zvelebil, 1991, 89]
54. [Zvelebil, 1991, 89]
55. [Zvelebil, 1991, 89]
56. उदाहरण के लिए : [Harrigan, Living Heritage 2000:2009] और [Harrigan, Home 2005:2009]
57. [Harrigan, 2001] हैरिगन को विश्व भर में तमिल अध्ययन पर एक महत्वपूर्ण अधिकारी के रूप में देखा जाता है, जैसा कि इस तथ्य से भी प्रमाण मिलता है कि उन्होंने 1999 में आई.ए.एस. के लिए एक रपट लिखी थी और सरकार को तमिल वर्चुअल यूनिवर्सिटी के लिए प्रस्ताव दिया था। उनकी रपट में संयुक्त राज्य अमेरिका के आठ विश्वविद्यालयों का सर्वेक्षण शामिल था जहाँ तमिल अध्ययन की व्यवस्था थी।
58. वे शिव के पुत्र हैं और एक सैन्य देवता के साथ-साथ प्रज्ञान के भी देव हैं। इस पूजा पद्धति को तमिलनाडु में भारी लोकप्रियता प्राप्त है जिसके कारण इसे ईसाई समायोजन के लिए विशेष रूप से रेखांकित किया गया है। चर्च द्वारा इस पूजा परम्परा को समायोजित करने के प्रयास बार-बार होते रहे हैं।
59. [*Hinduism Today*, May-1999, murugan.org, 2001] में इसे सुधारकर प्रकाशित किया गया था।
60. [Samuel, 2001, 58-60], translated and quoted in Deivanayagam, M. and Devakala, D. 2005, 6-7]
61. [Rocher, 1984, 7]
62. [Rocher, 1984, 13]
63. [Rocher, 1984, 35]
64. [Vasanthakumar, M S. 2000, 5-20]

65. [Prajapathi.net, Prajapathi Alleluia Prayer Fellowship, About us, 2007]
66. [Prajapathi.net, 2007]
67. Testimony – Sadhu Chellappa: http://www-agniministries-org/Testimony-aspÛ
68. Christian Hoax: Police action http://www.youtube.com/watch?v=eYCCbU1kyB4
69. [IANS 9 October 2008]
70. [Jeyamohan., B., 2009]
71. [Arundale, 2004, 12]
72. सम्पूर्ण भारतीय उपमहाद्वीप में विविध आदिवासी समुदायों ने, जिनके अपने ही पवित्र नृत्य परम्पराएँ थीं (काफी कुछ अमेरिण्डियन जैसा), स्वयं को सहजता से इस परिष्कृत और लिखित स्वरूप से जोड़ लिया, जिसे बाद में भरत नाट्यम में संपृक्त कर दिया गया, और जिसने मणिपुरी, कथकली आदि नृत्य परम्पराओं जैसे अद्वितीय समन्वय को जन्म दिया। काठमाण्डू घाटी के नेवारों में बौद्ध माली जाति के लोग वार्षिक भैरव नृत्य करते थे ताकि नेपाली राज के नवीकरण के लिए उनके संरक्षक देव नासा-द्याह (नटराज) की पूजा सम्पन्न की जा सके। यहाँ कहने का अर्थ है कि जानबूझकर किये जा रहे ऐसे अनुकूलन भारतीय मुख्यधारा में धार्मिक-राजनीतिक एजेंडे को सम्पन्न बनाने और विस्तारित करने में सहायक होते हैं—वह भी बिना योजनाबद्ध ढंग से उन्हें नीचा दिखाये या विकृत किये।
73. [Coomaraswamy, 1985, 94-95]
74. [Capra, 2000, 245]
75. [Sagan, 1980, 214]
76. [Arundale, 1954]
77. इस प्रणाली के उन्मूलन के सर्वाधिक मुखर चौम्पियनों में से एक थीं डॉ. मुथुलक्ष्मी रेड्डी (1886-1968) जो मद्रास प्रेजिडेन्सी की पहली महिला डॉक्टर, महिला अधिकारों की एक पक्षधर, महात्मा गाँधी की एक सहयोगी, और विधायिका की एक सदस्य थीं जिन्होंने देवदासी प्रणाली के 1929 में उन्मूलन के लिए काम किया था।
78. उद्धरण के अंश [*Hinduism Today* Archives, 1993] से लिए गये हैं। यह सत्य है कि राजाओं और अन्य तरीकों से प्राप्त सामाजिक संरक्षण के ब्रितानी काल से (कई क्षेत्रों में उसके भी पहले से) समाप्त हो जाने के साथ ही इनमें से अनेक संस्थान विपन्नता की ऐसी स्थितियों तक गिर गये कि वेश्यावृत्ति और उनके बीच भेद कर पाना मुश्किल हो गया (विकृति के सम्भावित तत्वों के साथ, जो हमारे पितृसत्तात्मक सामाजिक ढाँचे में सम्भव था)। जो भी हो, यह चहुँओर आम हो गये पतन का ही अंग था, जिसे समान रूप से संरक्षण के समाप्त हो जाने के कारण

तीर्थाटन केन्द्रों के मन्दिरों के पुजारियों के लालची व्यवहार में भी देखा जा सकता है। ठीक उसी प्रकार जैसे कि भरत नाट्यम ने उसके बाद काफी समय से विश्व भर में अपनी हैसियत को पुन: हासिल कर लिया है, अच्छी तरह प्रशिक्षित पुजारियों ने भी अब विश्व भर में फैले हिन्दू प्रवासियों के मन्दिरों और भारत के बेहतर रख-रखाव वाले मन्दिरों में भी अपनी हैसियत हासिल कर ली है।

79. [*Hinduism Today* Archives 1993]
80. [Rao, Ramamirthammal and Kannabiran, 2003, 210]
81. उदाहरण के लिए, पश्चिमी मानवशास्त्रियों (जैसे फ्रेडेरिक ऐपफेल मार्गलिन) ने न केवल हिन्दू शास्त्रीय नृत्य सीखा (इससे निकट सम्बन्ध वाला ओडिसी रूप) बल्कि देवदासियों के साथ रहे भी, और देवदासियों के दैनिक जीवन और मूल्यों के अत्यन्त सहानुभूतिपूर्ण विवरण भी दिये। इन नृत्य परम्पराओं के पीछे की तान्त्रिक प्रेरणा, जो पहले उतनी अधिक ईसाई प्रेरित निन्दा का विषय था, अब एक सम्मान सूचक चिह्न बन गया है।
82. डॉ. फ्रांसिस बारबोजा को, जिन्होंने बाद में भरत नाट्यम में ईसाई मुद्राओं का अविष्कार किया, इस नृत्य में दो हिन्दुओं, गुरु कुबेरनाथ तंजोरकर और प्रो. सी.वी चन्द्रशेखर, द्वारा प्रशिक्षित किया गया था। (Barboza, 2003) एक ईसाई पुजारी फादर साजू जॉर्ज को श्री के. राजकुमार, खगेन्द्र नाथ बर्मन, पद्मश्री लीला सैमसन, नादब्रह्मम प्रो. सी.वी. चन्द्रशेखर (सभी कलाक्षेत्र, चेन्नई के हैं) और पद्मभूषण कुलनिधि नारायणन तथा कलाईममानी प्रियदर्शिनी गोविन्द द्वारा शिक्षा मिली थी। इन गुरुओं में लीला सैमसन ईसाई हैं। (Kalai Kaveri 2006) लीला थॉम्पसन को तो स्वयं कलाक्षेत्र की संस्थापक रुक्मिणी अरुण्डेल और कलाक्षेत्र के ही एक अन्य तेजस्वी भरत नाट्यम गुरु शारदा ने शिक्षा दी थी। एक ईसाई प्रचारक रूढ़िवादी की पुत्री रानी डेविड श्री शन्मुगासुन्दरम द्वारा तंजोर शैली में शिक्षित की गयीं, और बाद में कलाक्षेत्र की श्रीमती रुक्मिणी अरुण्डेल की शिष्या श्रीमती मैथिली राघवन द्वारा। बाद में उन्होंने श्री सीताराम शर्मा और श्री 'आद्यार' लक्ष्मण से नट्टुवांगम सीखा। [R. David, 2004]
83. [Barboza, 2003]
84. [Barboza, 2003]
85. 2004 की कलाई कावेरी में भरत नाट्यम के प्रतिनिधि के रूप में मुद्रा की तुलना (बारबोजा, 2002) में 'नई ईसाई मुद्रा' से।
86. [Tamil Nadu Govt., 2003-2004]
87. [KalaiKaveri, 2004:2005]
88. [Stephen, A., 2004]
89. [Stephen, A., 2004]
90. [ख्aत्aग्ख्aन्ीग्, 2006]

91. [Arangetram Brochure, 1999]
92. [Arangetram Brochure, 1999]
93. [R. David, 2004: Dead Link]
94. [R. David, 2004: Dead Link]
95. इस प्रकार, भारत में सूफी-प्रेरित समन्वयवाद ने रस और ध्वनि सिद्धान्त पर अपना ध्यान केन्द्रित किया है जैसा कि यह कविता और संगीत में लागू होता है न कि नृत्य में, जिसे व्यापक संरक्षण प्राप्त करने के लिए कत्थक स्वरूप में 'पन्थ-निरपेक्ष' बनाना पड़ा था। (बेसुध आनन्द या ट्रांस में, जिसमें समा नृत्य भी सम्मिलित है, भारतीय शास्त्रीय नृत्य के प्रतिरूपण या सौन्दर्य के आयाम अत्यल्प होते हैं।) जो भी हो, मुस्लिम श्रोताओं और दर्शकों तथा संरक्षकों में से अनेक (उदाहरण के लिए अवध में) आनन्द उठा सकते थे (कम-से-कम सौन्दर्य के स्तर पर), और विरोधाभास तथा हिन्दू पौराणिक पृष्ठभूमि के बावजूद, इसके अनेक देवताओं (विशेष रूप से, पहले से ही पन्थ-निरपेक्ष बना दिये गये कृष्ण) के साथ। पहले से ही मान ली गयी इस असंगति के कारण, कत्थक के इस्लामीकरण (पन्थ-निरपेक्ष करने के विपरीत) की कोशिश नहीं की गयी है।
96. [R. David, 2004: Dead Link]
    2009 के मध्य से यह वेबसाइट मृत हो गयी है। जो भी हो, रानी डेवि[द्वारा भरत नाटयम के ईसाइकरण के लिए छद्म ऐतिहासिक विवरण प्रस्तुत करने के प्रयास किये गये जिन्हें अनुमोदित करते हुए एक प्रमुख भारतीय नृत्य पोर्टल ॆ.हar◌ूप्aव्ग्.म्दसेa में प्रदर्शित किया गया है, जिसे एक प्रमुख नर्तकी अनीता रत्नम चलाती हैं।
97. [www.narthaki.com, 2007]
98. [Arundale, 2004, 20]
99. [Sruthi] [Jan 1996, 2005, 56]
100. [AnanthaVikatan, 20 Decemberr 2006]
101. [Deivamuthu, P., 2007]
102. [Prakriti Foundation 2006]
103. [Arundale, 2004, 185]
104. [Arundale, 2004, 148-9]
105. [Deivamuthu, P., 2007]
106. [Samson, 2004]
107. [Arundale, 2004, 186]
108. [Arundale, 2004, 117]
109. [Arundale, 2004, 147]
110. [Lourdu, S.D., 1997, 152]

111. [Lourdu, S.D., 1997, 165]ईसा मसीह और मुरुगन की तुलना का यह प्रयास केवल लॉर्डू तक सीमित एक छिट-पुट प्रयास नहीं है। कैथोलिक चर्च द्वारा अद्वितीय हिन्दू प्रतीकों को समायोजित करने का एक सुनियोजित प्रयास चल रहा है, ताकि लोकप्रिय हिन्दू देवताओं के बारे में ईसा मसीह के साथ विभ्रम पैदा किया जा सके। उदाहरण के लिए, चेन्नई में सैन टॉम चर्च की वेदी में ईसा मसीह को एक कमल के फूल पर खड़ा दिखाया गया है जिनके दोनों ओर दो मोर हैं। तमिल हिन्दू मूर्तिकला में एक देवता के बगल में मोर भगवान मुरुगन के बारे में अद्वितीय है।
112. [Lourdu, S.D., 1997, 165]
113. [Lourdu, S.D., 1997, 321] इस पुस्तक का प्रकाशन सन्त जेवियर कॉलेज के लोकगीत विभाग द्वारा किया गया था, जिसके लिए फोर्ड फाउण्डेशन द्वारा धन दिया गया था। भारतीय स्वतन्त्रता का स्वर्ण वर्ष समारोह मनाने के नाम पर ऐसा किया गया था।

अध्याय 9

1. [Tamil.net, 2000]
2. [Deivanayagam, M., and Devakala, D., 2001]
3. [Deivanayagam, M., and Devakala, D., 2001, 23]
4. [Deivanayagam, M., and Devakala, D., 2003, 10-11]
5. [Devakala, D., 2004, 400]
6. [Devakala, D., 2004, 230-1]
7. [Devakala, D., 2004, 255]
8. [John, 2005]
9. [IAS, 2005]
10. कुडुमी भारत में प्राचीन केश विन्यास की शैलियों में से एक है। प्राचीन काल में यह हिन्दुओं का संकेत चिह्न था। दक्षिण भारत के ब्राह्मणों में यह आज भी लोकप्रिय है।
11. ‘St Thomas in discussion with the greatest Tamil sage-poet Thiruvalluvar’and ‘Martyrdom of St. Thomas’, [John, 2005]
12. [Clinton, 2005]. [Emphasis added] क्लिंटन अब अमेरिका के विदेश सचिव हैं जिन पर सभी यू.एस. विदेश नीति की जिम्मेवारी है। निर्वाचित अधिकारियों के कर्मचारियों द्वारा इस तरह के सन्देश लिखना एक सामान्य प्रथा है जब उनके घटकों द्वारा ऐसा करने को कहा जाता है। यह अमेरिकी ‘सामान्य राजनीति’ है और हमें इसे इस अर्थ में नहीं लेना चाहिए कि सम्मेलन में जो विचार रखे गये उनका क्लिंटन पूरी तरह अनुमोदन करती हैं। फिर भी, यह सन्देश जब ‘भारत के

राजनीतिक परिवेश' का उल्लेख करता है तब वह सामान्य अभिनन्दन से आगे चला जाता है। इससे संकेत मिल सकता है कि क्लिंटन अमरीकी नीति के एक उपकरण के रूप में ईसाई धर्मान्तरण की उपयोगिता को समझती हैं।
13. [Gnanashikamani, V. and Francis, 2005, 59]
14. [Bryant, Krishna: A Sourcebook, 2007, 4-7]
15. [Bryant, 2007, 4-7]
16. [Gnanashikamani, V. and Francis, 2005, 61]
17. [John, 2005]
18. [John, 2005]
19. [Jesudhas, 2005, 149]
20. [Jeyamohan, B., 2008]
21. उदाहरण के लिए देखें : हे ईश्वर, हमारे चढ़ावे को ग्रहण करें, प्रशंसा के उन गीतों को स्वीकार करें जिन्हें हम गाते हैं, उनकी तरह जो शोकमग्न होकर भी अपनी दुल्हन को स्वीकार कर लेते हैं। *Rig Veda, 3:LII.3*]
अनुग्रह के साथ मेरे इस गीत को स्वीकार करें, सच्चे चिन्तन पर कृपा करें, वैसे ही जैसे दुल्हा अपनी दुल्हन पर करता है। [*Rig Veda, 3:LXII.3*]
22. [Venkatachalam, 2001, 82-3]
23. [Venkatachalam, 2001, 84-5]
24. [Venkatachalam, 2001, 89] ईसाइयत से प्रभावित तमिल कवियों में वे जिनका नाम गिनाते हैं वे हैं : अन्तल, कुलसेकारा आलवार, नम्मालवार, तिरुमनकाई आलवार, ज्ञान सम्बन्दर, मणिक्कवचाकर, और रामलिंग अदिगलार।
25. [Venkatachalam, M S. 2005, 168]
26. George Iype interviewing Pazha. Nedumaran for Rediff describes him as'A firebrand separatist, pro-Liberation Tigers of Tamil Elam leader,hardcore Tamil nationalist' [Iype, 2000]
27. [Dravidian Religion July, 2006]
28. [Ninan, M M, 2004]
29. [Olasky, 2007]
30. [Olasky, 2007]
31. [Olasky, 2007]
32. [NILT, 2004,Friendly Associates]
33. [NILT, 2004, About us]
34. [Doss, 2004]
35. [Rajan, 2004]
36. [Times News Network 2006]

37. [Sargunam, 2007, 31]
38. [Jesudason, 2007, 78]
39. [Doss, 2007, 109]
40. [Faraday, 2007, 117]
41. [ICSCI: IAS, 2007, 93, 104, 119]
42. [ICSCI: IAS, 2007, 368]
43. [Lysebeth, 2002, 229-30]
44. [Griffiths and Fox, 1996, 328]
45. [Consiglio, 2004-2005, 1]
46. [Berry, 1974]
47.[Berry, 1974]
48. [Devakala, M, 2008]
49. [Deivanayagam, M. 2008]
50. Inaugural session address of Varkey Cardinal Vithayathil at FirstInternational Conference on the religion of Tamils, Pastoral Center Archdiocese of Madras on 14 August 2008
51. इंस्टीटयूट ऑफ एशियन स्टडीज ने स्वयं को इस सम्मेलन से अलग रखा था, लेकिन देइवनयगम की इसमें प्रमुख भागीदारी थी।
52. [Victor, Ma- So, 2008, 33-6]
53. [Sekaran, 2008, and the question answer sessions on 15 August 2008: First session
54. [Deivanayagam, M, 2007]
55. [Trautmann, 1997, 124]
56. [Trautmann, 1997, 124]
57. [Trautmann, 2004, 53]
58. [Deivanayagam, M, 2008]
59. M Deivanayagam, Speech at the concluding function session on 17 August2008
60. [Thangaiah and Samson, A, 2008] Morning session of 16 August 2008:First International Conference on the religions of Tamils, Chennai
61. देइवनयगम ने 16 अगस्त 2008 के पूर्वाह्न सत्र के प्रश्नोत्तर काल में उल्लेख किया कि हिटलर द्वारा महाविनाश यहूदियों के प्रति एक दैवी दण्ड था, क्योंकि वे अपने पापों से मुक्ति हासिल करने में अक्षम रहे थे।
62. [Richard, 1997, 12]
63. [Pagels, 1989, xxi]
64. [S. Pillai, 1896]

65. [S. Mudaliyar, 1920:2001, x]
66. [Irajacekaran. Ira, 2003, 217-8]
67. [Irajacekaran. Ira, 2003, 220]
68. [Variyar, 1973]
69. [Murugan, 2009]
70. [Murugan, 2008]

अध्याय 10

1. भारत से येल विश्वविद्यालय का सम्बन्ध उस समय से प्रारम्भ होता है जब विश्वविद्यालय प्रारम्भिक अवस्था में नाम मात्र का ही था और यह सम्बन्ध विश्वविद्यालय को लाभ पहुँचाने वालों में प्रमुख था। एलिहू येल (1649-1721) उस समय मद्रास स्थित फोर्ट ऑफ सेंट जार्ज के अध्यक्ष थे। वे अत्यधिक कर, स्वदेशी बागियों के अत्यन्त बलपूर्वक दमन और अपने नाम पर भारतीयों की सम्पत्ति हथिया लेने के लिए कुख्यात थे। ब्रिटेन लौटने पर वे बहुत धनवान व्यक्ति बन गये थे, और भारत में उन्होंने जो सम्पत्ति बनायी थी उसमें से कुछ दान के रूप में इस अमरीकी महाविद्यालय को अपने नाम पर उसका नाम रखने के बदले में दे दी। [A Gandhi, 2005]
2. [Andrew and Hart, 2005]
3. [Emeneau, 1956]
4. [Burrow and Emeveau, 1966, 1968]
5. [www.linguistics.berkeley.edu 2005]
6. Emeaneau [1980] quoted in [Bryant, 2004, 88]
7. Emeaneau [1980] quoted in [Krishnamurti, 2003, 37]
8. [T van yan 1966, Preface] द्रविड़ आन्दोलन की एक वेबसाइट में 2007 में प्रकाशित एक ‘Dravidian Origin of Sanskrit’ शीर्षक लेख कहता है कि ईमेनो और बरो ने 500 द्रविड़ शब्द पाये हैं जिसे संस्कृत ने लिया है, और इं[ो-आर्य भाषाओं में द्रविड़ से लिए गये चिह्नित शब्दों की संख्या बढ़कर 750 तक पहुँच जाने की आशा है। [Nandhivarman. Na 2007]
9. [Southworth, 1979, 204]
10. [T. Burrow, 2001, 31-32]
11. [Sharada, B.A. and Chetana, M. 2008] एक ऐसे विद्वान से, जिनके कार्य के लिए 1950-59 के बीच मात्र 10 उद्धरण थे, बढ़कर ईमेनो के उद्धरणों की आवृत्ति नाटकीय रूप से बाद के दशक (1960-69) में 175 हो गयी, और 1970-79 की अवधि में 287 उद्धरणों के साथ अपने चरम पर पहुँच गयी।

12. लियोपोल्ड सेडर संगोर बाद में सेनेगल के प्रधानमंत्री बने, परन्तु 'नीग्रेटयूड' की परिकल्पना आज स्वयं अफ्रीकी बुद्धिजीवियों द्वारा एक 'पश्चगामी नस्लवाद' माना जाता है। इस विषय पर अधिक जानकारी के लिए देखें [Nascimento 2007]
13. [Young, 1976, 120]
14. [Annadurai, C.N. and Nalankilli, 2005]
15. [Kutty, 1994] quoted in [Kumar, 1997, 448]
16. [The Telegraph, 16 October 1994]
17. [Annadurai, C.N. and Janarthanam, A.P., 1970, 63]
18. See: http://news.chennaionline.com/newsitem.aspx?NEWSID=1fa3dfe2-f995-4781-a190-331e10eb55b8-CATEGORYNAME=CHN [Accessed March 2010]
19. ऐसी जीवनी सी.आई.ए. की भागीदारी का संकेत दे सकते हैं, लेकिन निःसन्देह इसका कोई निर्णायक साक्ष्य नहीं है।
20. माईकल विट्जेल के साथ साउथवर्थ सर्व [SARVA] [South Asia Residual Vocabulary Assemblage] परियोजना का निर्देशन करते हैं। परियोजना एक शब्दकोष का आकार ग्रहण करती है उसी प्रकार का शब्दकोष जैसा कि बरो और ईमेनो द्वारा व्युत्पत्तिशास्त्रीय शब्दकोष बनाया गया था।
21. [Bryant, 2001]
22. इस महत्वकांक्षी परियोजना की परिकल्पना दक्षिण और मध्य एशिया की जातीय उत्पत्ति पर आयोजित चौथे हार्वर्ड राउं[टेबल के दौरान मई 2002 में की गयी थी।
23. [Southworth, 2005]
24. वर्ष 1999 से ही विट्जेल के भाषाशास्त्रीय उपस्तरीय विश्लेषण ने एक तरह से कॉल्[वेल के शोध को पूरी तरह संशोधित किया है ताकि द्रविड़ों को उतना ही विदेशी दिखाया जा सके जितना कि आर्य हैं; इन परिकल्पनाओं के अनुसार, 'द्रविड़ों ने ईरानी उच्च मैदानी इलाकों से भारत में प्रवेश किया। उनका सबसे पुराना शब्द भण्डार (साऊथवर्थ और मैकआल्पिन) अर्ध-घुमन्तू, चारवाहे समूहों का था न कि कृषि समुदाय का'। [Witzel, 1999, 27] मध्य प्रदेश की मुण्डा जनजाति की चर्चा करते हुए उन्होंने घोषणा की है कि 'ऋगवेद काल के पूर्व के सिंधु सभ्यता की भाषा, कम-से-कम पंजाब में, अर्ध-आस्ट्रियाई एशियाई [Para-] Austro Asiaticप्रकृति की थी' [Witzel, 1999, 17] और यह कि 'हरियाणा और उत्तर प्रदेश में कभी अर्ध-मुण्डा [Para-Munda]जनसंख्या थी जिन्हें इं[ो-आर्य लोगों द्वारा सभ्य बनाया गया'। [Witzel, 1999, 46] यद्यपि विट्जेल ने बल देकर कहा कि वे ही मूल हड़प्पा निर्माता थे, और इस अवधारणा को एक लगभग स्थापित तथ्य की तरह प्रचारित किया, वास्तव में वह अपने शैक्षिक शोध पत्रों में एक बचाव भी जोड़ देने के प्रति सतर्क हैं। उदाहरण के लिए, वे बचाव में अपने शैक्षिक शोध पत्र में यह जोड़ते हैं यद्यपि वह अपनी प्रिय परिकल्पना के इस

अप्रमाणित स्थिति का सार्वजनिक व्याख्यान में कभी-कभार ही उद्धरण देते हैं; 'इस पर अवश्य ही बल देना चाहिए कि न तो सामान्यत: पाये जाने वाले द्रविड़ और न ही मुण्डा व्युत्पत्तिशास्त्र भाषावैज्ञानिक विश्लेषण के वर्तमान स्तर तक पहुँचते हैं जहाँ मूल और सभी शब्द-युग्म [affixes] दोनों की व्याख्या की जाती है। इसलिए बाद की सभी व्युत्पत्तियों को प्रारम्भिक ही मानना होगा'। [Witzel, 1999] पेन्सिलवेनिया विश्वविद्यालय के एक प्रख्यात भाषा विज्ञानी जॉर्ज गॉर्डन इस बात की ओर ध्यान आकर्षित करते हैं कि वैदिक भाषा में मुण्डा उपस्तर पर विट्जेल के प्रिय सिद्धान्तों के सन्दर्भ में 'निष्कर्ष और दावे पर सन्देह किया जा सकता है' और फिर व्याख्या करते हैं कि '... यद्यपि विट्जेल वैदिक शब्दों की एक लम्बी सूची देते हैं जिसमें वे अर्ध-मुण्डा उपसर्गों को देखते हैं, वे पूरे शब्दों का उदाहरण नहीं देते, जहाँ तक मैं देख सकता हूँ कि किस तरह मुण्डारी से लिये गये शब्दों को दिखाया जा सके, और किस तरह उन शब्दों ने उपसर्गों की उत्पत्ति के आधार के रूप में सहायता की होगी। इससे भी बड़ी बात यह कि भाषणशैली में प्रश्न पूछते हुए, ''क्या इसलिए सिंधु भाषा एक प्रकार की आद्य-मुण्डा भाषा नहीं है?'', विट्जेल स्वीकार करते हैं, ''इसके विपरीत सबसे पहले कहा जा सकता है, जैसा कि कुपियर कहते हैं, कि ऋक् वैदिक उपस्तर में मुण्डा जैसे अन्तर्शब्द [infixex नहीं हैं''। [Cardona, 2003, 31]

इस प्रकार यहाँ इसकी रूपरेखा येल के भारतविदों के ही अवशेष जैसे हैं; जो एक जातीय परिकल्पना को विश्वसनीयता प्रदान करती है जिसकी भारतीय समाज में नृजातीय तनाव उत्पन्न करने की सम्भावित क्षमता है, यद्यपि यह परिकल्पना शैक्षिक दृष्टिकोण से कमजोर या संदिग्ध हो सकती है।

25. [India Post, 2009]
26. [Joshua Project, 2000:2009]
27. [Witzel, 2008]
28. रिचर्ड स्प्रोट 'नेम्ड एण्टिटी रिकोग्निशन एण्ड ट्रांसलिटरेशन फॉर 50 लैंग्वेजेज' परियोजना के लिए मुख्य अनुसंधानकर्ता (पीआई) थे जिसे सेंट्रल इंटेलिजेन्स एजेंसी द्वारा 377,930 डालर वित्तीय सहायता दी गयी थी (NBCHC040176, 30 September 2004, 29 September 2006) 'लैंग्वेज अडेप्टेशन फॉर कोलोक्वियल अरबिक' नामक परियोजना के लिए भी वह मुख्य अनुसंधानकर्ता थे, जिसे नेशनल सिक्योरिटी एजेंसी से पूरक एन.एस.एफ. अनुदान भी मिला था, सितम्बर 2004—अगस्त 2005) [Farmer, WZaumen, et al., 1998: 2009]
29. [Farmer, W. Zaumen, et al., 1998: 2009]
30. [Farmer, 1998: 2009]
31. [Mahadevan, 2009]
32. [Pfaffenberger, 1982, Preface]
33. [www.tamilnation.org, 1991: Dead Link]

34. [www.tamilnation.org, 1991: Dead Link]
35. उदाहरण के लिए, अपने शोध पत्र में जॉर्ज हार्ट ने प्राचीन काल के तमिलों को सर्वाधिक साक्षर लोगों में बताया जिनकी तुलना केवल प्राचीन ग्रीक जनों से ही की जा सकती है। ध्यान रहे कि तमिलों के इतिहास ने उन्हें दिखाया है कि भारत के अन्य लोगों के साथ ही साथ उनका इतिहास मिला-जुला है और भाषा या संस्कृति के मामले में उन्होंने कोई अलग से राष्ट्रीय पहचान नहीं बनायी थी। यहाँ जॉर्ज हार्ट तमिलों को शेष भारत से न केवल श्रेष्ठतर दिखाते हैं, बल्कि प्राचीन इतिहास के ग्रीक जनों के समान एक अलग राष्ट्रीय समूह के रूप में भी प्रस्तुत करते हैं।
36. [Hodgin, 1991]
37. [www.tamilnation.org, 2004: Dead Link]
38. [Hart, 1987, 467-492]
39. [Amazon, 1999]
40. [tamil.berkeley.edu, 2000]. Also see for more detailed analysis of FeTNA and its suspected links to LTTE.
41. [Ilakkuvanar, 2008]
42. [[Ilakkuvanar, 2008, ‘Rice, Wheat and Hindi’ शीर्षक से छपी एक टिप्पणी, यहाँ वह लेखक से सहमत होते हैं कि भारत सरकार अपने तमिल नागरिकों के प्रति भेद-भाव का व्यवहार करती है और उत्तर भारत का अनावश्यक पक्ष लेती है।
43. [Ilakkuvanar, 2008]
44. [Ilakkuvanar, 2008]
45. [G Hart, 2000]
46. [University of Chicago Chronicle, 2002]
47. [Hart, 2006]
48. [ls.berkeley.edu, 2005]
49. [Global Telugu Christian Ministries, 2008, 34]
50. [FeTNA, 2001]
51. [Chicago Tribune 23 August 2006]
52. [CNN, 2006]
53. दलित सशक्तीकरण और द्रविड़ अलगावादी उद्देश्यों में सामान्यत: संघर्ष की स्थिति भी हो जाती है, क्योंकि द्रविड़ राजनीति ऐसी पहचानों का उपयोग करती है जो ब्राह्मण विरोधी भी हैं और दलित विरोधी भी। हाल के दिनों में दलित कार्यकर्ताओं के एक वर्ग और द्रविड़वादियों को एक साथ लाये जाने का एक बड़ा अभियान चलाया जा रहा है जिसका केवल एक ही उद्देश्य है हिन्दुत्व को पराजित करना।

54. उदाहरण के लिए, इसने एक पूजा-पद्धति के तहत वेश्यावृत्ति और बाल यौनाचार पर एक डॉक्यूमेंटरी का प्रदर्शन किया जो कथित तौर पर तमिलनाडु के एक विशेष दलित समुदाय में व्याप्त है। [www.kanavuppattarai.com, 2009] [Downloaded: October 2009. This domain name expired in December 2009] यह फिल्म पूरे संयुक्त राज्य अमेरिका में इण्डियन मुस्लिम काउंसिल की शाखाओं में दिखायी गयी। इस डॉक्यूमेंटरी की प्रामाणिकता अत्यन्त विवादित रही है। यह वास्तव में एक इकतरफा प्रचार सामग्री है जिसके साथ को विरोधी दृष्टिकोण प्रस्तुत नहीं किया गया। एक दलित संगठन अरुन्धतियार लिबरेशन फ्रण्ट के दयलान के अनुसार सीडी के कवर पर और वेबसाइट में जिस लड़की को मथम्मा के रूप में प्रस्तुत किया गया है, वह वास्तव में अमुथा नाम की एक लड़की है जो उस समय नौवीं कक्षा में पढ़ती थी। इस समुदाय के नेताओं और तमिलनाडु के प्रमुख दलित नेताओं ने डॉक्यूमेंटरी के स्थान की जाँच की और डॉक्यूमेंटरी की प्रामाणिकता को चुनौती दी। उन्होंने अपनी रपट में लिखा कि जहाँ दलित समुदाय गरीबी और बीमारियों से पीड़ित है, वहीं कुछ एन.जी.ओ. इस स्थिति का दुरुपयोग करने और यहाँ तक कि उनके देवी-देवताओं को वेश्याओं के रूप में बदलकर प्रस्तुत करने की कोशिश कर रहे हैं। [Puthia-Kodangi 2004]
55. [Chicago Tribune, 23August 2006]
56. [Associated Press, 24 August 2006]
57. [Kumaran , 2006]
58. [Kumaran, 2006]
59. [Viswanathan, S 1998]
60. [Malten, 17 March 1998]
61. [Malten, 17 March 1998]
62. [Institute of Asian Studies, 2002]
63. उनके शोध पत्रों के कुछ उदाहरण हैं : [Bergunder, 2004], [Bergunder, 2001]
64. [Dharma Deepika: Online Journal 2003]
65. [Schalk, 2002-2003]
66. [Lund University, 2004]
67. [Schalk, 2007]
68. [Schalk, 2007]
69. [Asian Tribune, 2008]
70. [Lund University, 2007]
71. [Andersen and Schonbeck, 2008]

अध्याय 11

1. उत्पीड़न साहित्य एक तकनीकी शब्दावली है जो पश्चिमी हितों द्वारा रचे गये साहित्य को इंगित करता है, जिसका स्पष्ट उद्देश्य यह दिखाना है कि लक्षित गैर-पश्चिमी संस्कृति अपने ही लोगों पर अत्याचार कर रही है, और इसलिए उन्हें पश्चिमी हस्तक्षेप की आवश्यकता है। इस अध्याय में इसे विस्तार से बताया जायेगा।
2. उदाहरण के लिए, बर्कले स्थित तमिल अध्ययन के विद्वान जॉर्ज हार्ट द्वारा तमिल प्राचीन कालजयी साहित्य के अनुवाद के बारे में जो उत्पाद विवरण [product description] दिया गया है उसमें इसे 'दक्षिण में आर्य प्रभाव के आने के पहले रचित' बताया गया है और यह इसे 'किसी दार्शनिक मुखौटे के कवच के बिना', जीवन का सीधे सामना करने वाले के रूप में भिन्न बताता है, और इसकी प्रशंसा इसे सार्वभौमिक आकर्षण वाला मानते हुए करता है क्योंकि 'यह कर्म तथा जीवन के बाद के जीवन की कोई मूलभूत परिकल्पना नहीं करता'। [Amazon, 1999]
3. अमरीकी सरकार द्वारा उत्पीड़न साहित्य का उपयोग 'अपराध-बोध' से मुक्त होकर अपने हस्तक्षेप को उचित ठहराने के लिए किया जाता रहा है। उत्पीड़न साहित्य और जिन अश्वेत संस्कृतियों से श्वेत अमेरिकियों का सम्पर्क हुआ उन पर उनके विनाशकारी प्रभाव के ऐतिहासिक विश्लेषण के लिए देखें : [Malhotra, 2009]। सांस्कृतिक हिंसा के सैद्धान्तिक ढाँचे के लिए देखें : [Gatlung, 1990]। वे सांस्कृतिक हिंसा को इस रूप में परिभाषित करते हैं 'किसी संस्कृति का कोई भी पक्ष जिसका उपयोग प्रत्यक्ष या ढाँचागत रूपों में हिंसा को वैध ठहराने के लिए किया जा सकता है'।
4. उत्पीड़न साहित्य की शक्ति का एक बहुत अच्छा उदाहरण है उपनिवेशवाद द्वारा भारतीय सन्दर्भ में गढ़ी गयी बटमारों अर्थात ठगों की कथा जिसने ठगी की एक विशेष परिघटना का सृजन किया। शोधकर्ता मार्टिन वैन वोर्केन्स ने ठगी की इस परिघटना का विस्तार से विश्लेषण किया और अपनी मौलिक शोध पुस्तक *The Strangled Traveler* में उजागर किया कि जहाँ एक ओर यह सच है कि 'ठगों के अनेक भिन्न समूह वास्तव में सदियों से थे, अंग्रेजों ने उनको जो दैत्य स्वरूप दिया उसका वास्तविक ठगों की बजाय भारत के प्रति औपनिवेशिक परिकल्पनाओं से ज्यादा लेना-देना है'। [Woerkens and Tihanyi, 2002]
5. ईराक पर हमला करने के पहले उसे एक 'जंगली युद्ध' के रूप में प्रस्तुत करने के लिए अमरीकी सरकार ने जिस प्रचार के तरीके का उपयोग जनता में उबाल लाने के लिए किया, उसकी आलोचना अनेक अमरीकियों ने की। मानवाधिकार के विद्वानों ने अरब महिलाओं और अन्य जनता की दुर्दशा के बारे में उत्पीड़न साहित्य संकलित किया, चाहे ईराक को छोड़कर अन्य अरब देशों में अरब महिलाओं की स्थिति उससे भी कहीं अधिक खराब क्यों न हो। इन विद्वानों की

प्रचारात्मक सूची को व्यापक रूप से अभी स्वीकार नहीं किया गया है। इस प्रचार की महत्वपूर्ण सेवा विद्वानों द्वारा की जाती है और समाचार माध्यम उन्हें शैक्षिक क्षेत्र में आगे के विद्वतापूर्ण आत्मालोचन के लिए प्रोत्साहन देते हैं और उत्पीड़न साहित्य के सृजन में सहयोग करते हैं, जो अमेरिकी विदेश नीति को सीधे प्रभावित करते हैं। यह अन्य विद्वानों के आत्मालोचन का कारण बन जाते हैं। महत्वपूर्ण बात यह है कि जंगलियों के साथ क्या किया जाये इस बात पर बहस के दौरान आदि से अन्त तक बौद्धिक खेल चलता है जिसका उद्देश्य यह दिखाना होता है कि एक उचित और न्यायपूर्ण प्रक्रिया अपनायी जा रही है। एक अश्वेत विद्वान मरिम्बा अनि इसे 'वक्तृता का नीतिशास्त्र' [rhetorical ethics]़ कहते हैं — नैतिक पाखण्ड का एक स्वरूप जिसका आशय उसे लागू करना नहीं होता है; यह जटिल प्रक्रियाओं को सम्पादित करने का केवल एक बहाना होता है।

6. अमरीकी सन्दर्भ में सकारात्मक कार्रवाई की इन नीतियों को अफ्रीकी अमरीकियों, अन्य अल्पसंख्यकों और महिलाओं को नियुक्त करने और विश्वविद्यालय में प्रवेश देने आदि में ऐतिहासिक विषमताओं से निपटने के लिए बनाया गया है। सन् 1970 के दशक में विकसित इन नीतियों की आलोचना अति-दक्षिणपंथियों द्वारा लगातार की जाती रही है, और इन्हें चरणबद्ध ढंग से हटाया जा रहा है। उदाहरण के लिए, दक्षिणपंथी कांग्रेस सदस्य ट्रेन्ट फ्रैंक्स को अन्तर्राष्ट्रीय संगठनों ने दलित झण्डे तले तैयार किया है, जिसने उन्हें उत्पीड़न साहित्य की आपूर्ति की है। संयुक्त राज्य अमरीका की कांग्रेस में उन्होंने एक विधेयक प्रस्तुत किया जो भारत की वर्ण समस्या में संयुक्त राज्य अमरीका द्वारा हस्तक्षेप करने के कदम उठाने की माँग करता है। जो भी हो, संयुक्त राज्य अमरीका के एक प्रमुख नागरिक अधिकार गुट, नैशनल एसोसिएशन फॉर द ए[वांसमेन्ट ऑफ कलर्ड पीप्ल द्वारा ट्रेन्ट फ्रैंक्स को एक सशक्त सकारात्मक कार्रवाई विरोधी अंक दिया गया है; दूसरे शब्दों में नस्ली न्याय और आर्थिक समानता की उनकी चिन्ता उनके अपने देश के लोगों तक नहीं जाती।
7. समस्या विदेशी ईसाई हस्तक्षेपों तक सीमित नहीं है। भारत में अट्ठाईस हजार से ज्यादा मदरसे हैं जो अपने मूल पाठ्यक्रम के रूप में कुरान पढ़ाते हैं, कभी-कभी थोड़ा विज्ञान या धर्मनिरपेक्ष शिक्षा भी देते हैं जो आधुनिक पेशों के अनुकूल हो। इन मदरसों में से अनेक के संरक्षक सऊदी हैं, जो धन, शिक्षकों के प्रशिक्षण और पाठ्यक्रम विकास के स्रोत हैं। आम धारणा के विपरीत, सम्पूर्ण दक्षिण एशिया के मुसलमानों में वर्ण-व्यवस्था एक लम्बे समय से अच्छी तरह घुसी हुई है जिसमें उच्च वर्णों को अशराफ और निम्न जातियों को अजलाफ कहा जाता है। अशराफ वे हैं जिनको अरब या ईरान से आया हुआ माना जाता है जबकि अजलाफ धर्मान्तरित भारतीयों के वंशज हैं। इन वर्णों के बीच भारी तनाव है, बार-बार अजलाफ अशराफ के विरुद्ध बगावत कर देते हैं जो निर्बाध रूप से अजलाफ की 'शुद्धता' का 'स्तर ऊँचा उठाने' के लिए कार्य कर रहे हैं। इसलिए अशराफ अगड़े वर्णों के

मुसलमानों द्वारा चलाये जा रहे मदरसे उर्दू और अरबी भाषाओं में पढ़ाते हैं ताकि एक अखिल-इस्लामी पहचान बनायी जा सके जो स्थानीय समुदायों को उनके पूर्वजों की पहचान से अलग कर देती है। अजलाफ निम्न वर्णों के मुसलमानों और अन्य अधिक भारत-केन्द्रित मूल वाले भारतीय मुसलमानों द्वारा चलाये जा रहे मदरसों का रुझान स्थानीय भाषा का उपयोग करने का होता है और पहचान के अलगाववाद की दलील देने की प्रवृत्ति उनमें कम ही होती है। भारतीय मुसलमानों को 'अशराफ' बनाने की परियोजना को प्रभावी स्थानों से समर्थन मिलता है। आइशा जलाल, जो हार्वर्ड के दक्षिण एशिया कार्यक्रम के सह-निर्देशकों में से एक हैं, स्थानीय सांस्कृतिक साँचे (matrix) में भारतीयों के इस बहुलतावादी भारत-केन्द्रित मूल की अनदेखी करती हैं, लेकिन उस अभियान की अगुवा बनी हुई हैं जिसे वे सम्पूर्ण दक्षिण एशिया में 'मुस्लिम पहचान' और 'भारत के अन्दर गैर-मुसलमानों से अलग' कहती हैं। इस 'अच्छी तरह कसी हुई' मुस्लिम पहचान के बारे में दावा किया जा रहा है कि यह अन्तर्निहित रूप से ही अन्य सभी भारतीयों से अलग है और अविभाज्य रूप से पाकिस्तान और बांगलादेश से जुड़ी हुई है। यह खतरनाक रुझान है। इससे भी आगे जलाल जैसे शिक्षाविद मुस्लिम सम्प्रदायवाद को सैद्धान्तिक औचित्य और वैधता प्रदान करने के लिए सिद्धान्त विकसित कर रहे हैं जबकि वे भारतीय धर्मनिरपेक्षता की वैधता को समाप्त कर रहे हैं और इसकी हिन्दू संस्कृति को एक खतरे के रूप में चित्रित कर रहे हैं। एक तोड़-मरोड़कर दिये गये तर्क से साथ वे भारतीय धर्मनिरपेक्ष राष्ट्रवाद में गड़बड़ियाँ खोज निकालती हैं कि यह मुस्लिम पहचान को स्वीकार करने में अक्षम है। वे भारतीय मुस्लिम समुदाय का चित्रण बहुसंख्यक समुदाय के एक कृतसंकल्प वर्ग की धर्मांधता और संगठित हिंसा झेल रहे समुदाय के रूप में करती हैं। यहाँ तक कि भारतीय मुस्लिम विद्वान मुशीरुल हसन पर, जो हिन्दुत्व किस्म की राजनीति से सहानुभूति नहीं रखते, पर वे 'राष्ट्रवाद और बहुसंख्यकवाद के बीच खपरैल-सरीखे निकट सम्बन्ध' की उपेक्षा करने का आरोप लगाती हैं। (जलाल, 2000, 573) विभाजन के प्रति उनके दृष्टिकोण को, जिसे हाल में भारतीय समाचार माध्यमों में काफी लोकप्रिय बनाया गया है, डैनिश इतिहासकार एण्डर्स हैन्सेन द्वारा ''संशोधनवादी'' कहा गया है और विभाजन पर निश्चयात्मक रूप से तीन खण्डों में भारतीय इतिहासकार बिमल प्रसाद द्वारा लिखे गये इतिहास द्वारा गलत प्रमाणित किया गया है। (हैन्सेन, 2002, 10, 11)

8. मार्था नसबॉम ऐसे लड़ाकू का एक प्रमुख उदाहरण हैं जो विभिन्न भारतीय समुदायों के बीच टकरावों को बढ़ावा दे रही हैं।
9. [Thomas, 2008]

अध्याय 12

1. [Longman, 2010]
2. [Swann, 1997]
3. [Caldwell, 1856:1998, 101, 112]
4. वे कई अन्य नामों से भी जाने जाते हैं, जिनमें रामास्वामी, थन्थाई पेरियार, या ई.वी. रामास्वामी नायकर—अन्तिम शब्द उनकी जाति का नाम है—शामिल हैं। उनके द्रविड़ अनुयायी उनको पेरियार (महान आदमी) कहते थे, जैसा कि भारत में गाँधी को महात्मा (महान आत्मा) कहा जाता है। ई.वी.आर. संक्षिप्त नाम उनके मूल हिन्दू नाम से उन्हें अलग करने का एक प्रयास था, क्योंकि वे बड़ी सक्रियता से हिन्दुओं का दानवीकरण कर रहे थे। सहजता के लिए, यह वर्तमान खण्ड उन्हें रामास्वामी या ई.वी.आर. सम्बोधित करेगा।
5. [Ramasamy, E.V., 1940:2007, 6]
6. [Pandian, 1987, 63]
7. [Rudolph, 1979, 413, 417]
8. [Devanesan, A, 2004, 8-12]
9. [Parker 1918: 1978]
10. [Houston, 1926:2007, 170, 171-2] Note that Cushiteswere descendants of Ham. [Bromiley, 1994, 1059]
11. [Hope, 1968, 34]
12. [ACCES 2002, 1], Published by Chuma promotion, distribution and consultancy service, c/o 23, Glentworth Road, Radford, Notingham NG7 SQN, Tel: 0115 847 7323, Supported by: ACCESS African Caribbean Cultural Education Services [Nottingham] Tel: 0115 847 7232
13. [ACCES, 2002, 20]
14. [Arewa, 1997]
15. [ACCES, 2002, 42]
16. [ACCES, 2002, 7, 66, 72]
17. [ACCES, 2002, 50]
18. यह एक उपनिवेशवादी शोध संस्थान है जिसे एक एफ्रो-केन्द्रित शोध केंद्र के रूप में पुनर्स्थापित करना पड़ता है। (विकिपीडिया, 2008)
19. [Winters, 1979]
20. [Winters, 1980]
21. [Winters, 1984]
22. [Winters, 1985]
23. [Winters, 1985]
24. [Winters, 1985]

25. उदाहरण के लिए, भाषाविज्ञानियों के एक इंटरनेट फोरम में क्लाइड विन्टर्स ने लिखा : 'मानवशास्त्रीय/पुरातात्विक साक्ष्यों के अतिरिक्त अन्य शोधकर्ता द्रविड़ और अफ्रीकी भाषाओं के बीच एक अनुवांशिक सम्बन्ध का उल्लेख करते हैं'। उसके बाद उन्होंने Journal of Tamil Studies में छपे अरवनन के शोध पत्र का उल्लेख किया। कॉर्नेल विश्वविद्यालय के एक ऐतिहासिक भाषाविज्ञानी पीटर टी. [ैनियल्स ने, इस पर लिखा : 'सम्पादक का लेख एक डूबे हुए महाद्वीप के बारे में तमिल कथाओं को और उन तमिल शैक्षिक व्यक्तित्वों को जो डूब गये थे एकत्र करता है। सबसे लम्बे दो लेख पुनर्मुद्रण हैं। पहला, माइल होमबर्गर के लेख का, जिनकी मूर्खता को 1950 के दशकारम्भ में उजागर किया गया था, और दूसरा खो गये महाद्वीप लिमुरिया और मू पर एक निबन्ध का। सेनेगल के राष्ट्रपति लियोपोल्ड सेन्गोर की एक लम्बी परिचयात्मक भूमिका है, और भौतिक मानवशास्त्र पर कई लेख, और भाषाओं पर केवल एक लेख है'। डैनियल ने दो अन्य लेखकों, पी. उपाध्याय और एस.पी. उपाध्याय के शोध पत्र की प्रकृति का भी विवेचन किया, जो अफ्रीकी द्रविड़ सिद्धान्त का पक्ष लेते हैं और उन्हें प्राय: अफ्रीका केन्द्रित विद्वानों द्वारा अधिकारियों के रूप में उद्धृत किया जाता है : 'उपाध्याय (पी) और उपाध्याय (एस. पी.) केवल तीन अफ्रीकी भाषाओं — वोलोफ, सेरर और फुलनी — की तुलना एक विशेष द्रविड़ भाषा के साथ करते हैं, और इस क्रम में (अप्रासंगिक) लिपि समानता और अनेक मिलते-जुलते शाब्दिक समानता की ओर इंगित करते हैं, जो किसी भी प्रकार से नियमबद्ध ढंग से प्रदर्शित नहीं किया गया है। ऐसी शाब्दिक समानताएँ तो किन्हीं भी दो भाषाओं की जोड़ी में पायी जा सकती हैं'। [Daniels, 2005]
26. उदाहरण के लिए, 1905 में जोजेफईलियास हेन, एक अफ्रीकी-अमेरिकी पादरी, चिकित्सक, और लेखक, ने एक विस्तृत विवादास्पद लेख लिखा जिसका शीर्षक था 'The Amonian or Hamitic origin of the ancient Greeks, Cretans, and all the Celtic races'.
27. James Cone quoted in [William R Jones, 2003, 856]
28. [Kamau, 2004]
29. [Kamau, 2004]
30. [Hindu Press International Archives, 2004]
31. [Yesuvadian, 2002, 78, 79, 81, 82-3]
32. [Yesuvadian, 2002, 82-83]
33. [Yesuvadian, 2002, 115]
34. [Dalit Voice Archives, 2006] डोनाल्ड मैकगैवरन दलित ईसाई आन्दोलन में एक अग्रणी प्रोटेस्टेंट मिशनरियों में एक थे जिन्होंने राजशेखर का सहयोग किया।
35. उदाहरण के लिए, African Presence in Early Asia नामक पुस्तक दलित वॉयस के बारे में इस प्रकार कहती है : 'अंग्रेजी भाषा का पाक्षिक समाचार पत्र दलित

वॉयस, जो प्रसिद्ध सक्रियतावादी, लेखक और पत्रकार द्वारा सम्पादित है, भारत के संघर्षरत अश्वेत अछूतों पर नियमित रूप से प्रकाशित होने वाला सबसे अच्छा प्रकाशन है। [Sertima 1988, 245]

36. [Dalit Voice, 2007, 25] and [Rajshekar V.T., 2007]
37. [Dalit Voice, 2007]
38. [Shariff, 2005]
39. राजशेखर महात्मा गाँधी की भी आलोचना करते हैं। उदाहरण के लिए, तमिलनाडु भारत, निवासी, वेलु अन्नामलाई, पी-एच.डी., द इंटरनेशनल दलित सपोर्ट समूह के अध्यक्ष और *Sergeant-Major M.K. Gandhi* के लेखक हैं जिसका प्रकाशन बेंगलुरू में दलित साहित्य अकादमी (वी.टी. राजशेखर समूह), भारत द्वारा 1995 में किया गया था। वे वर्तमान में न्यू ओरलीन्स, लुईसियाना में रहते हैं। उन्होंने यह 'उजागर' करने के लिए लिखा है कि गाँधी किस प्रकार अफ्रीकियों-दलितों के विरुद्ध थे और वे चाहते हैं कि अश्वेत 'मोहनदास के गाँधी के मिथक' को अस्वीकार कर दें।
40. उन्होंने अनुशंसा की : 'उत्तर की सभी सरकारें, गैर-सरकारी विकास के लिए आर्थिक सहायता देने वाली एजेंसियों, बहुपक्षीय और द्विपक्षीय एजेंसियों और अन्य समूहों को, जो भारत को गरीबी उन्मूलन कार्यक्रम के लिए आर्थिक सहायता देते हैं, अपनी नीतियों और रणनीतियों पर पुनर्विचार करना चाहिए, ताकि उनके अभिलेखों में दलित मुद्दे स्पष्ट रूप से प्रतिबिम्बित हों। हम यह भी अनुशंसा करते हैं कि गरीबी उन्मूलन कार्यक्रमों को दी जाने वाली आर्थिक सहायता का कम-से-कम 50 प्रतिशत उन कार्यक्रमों को आबंटित करना चाहिए जो दलितों पर केन्द्रित हैं। यह इसलिए कि 3450 लाख भारतीय गरीबों में ही दलितों की 90 प्रतिशत जनसंख्या आती है और बँधुआ तथा बाल श्रमिकों में से अधिकांश भी दलित ही हैं। उत्तर में जब दक्षिण एशिया या भारतीय विभाग के लिए कर्मचारियों की नियुक्ति की जाती है तो उसका आधार है—उम्मीदवार का भारतीय या दक्षिण एशियाई विकास मुद्दों के बारे में अच्छा ज्ञान होना। एक अन्य सामान्य आवश्यकता लिंगभेद के प्रति संवेदनशीलता है। हम अनुशंसा करते हैं कि भारत या दक्षिण एशिया डेस्क पर उत्तर में किसी भी नियुक्ति के लिए, मुख्य व्यक्ति की नियुक्ति के आधार के अतिरिक्त, दलित मुद्दों के प्रति अच्छा ज्ञान और संवेदनशीलता को चयन का मुख्य आधार बनाया जाये। हम यह भी अनुशंसा करते हैं कि उत्तर में सभी कर्मचारियों को जो भारत आर्थिक सहायता कार्यक्रम के प्रति निर्णय लेने के स्तर पर जिम्मेवार हैं, दलित मुद्दों का विशेष प्रशिक्षण लेना चाहिए या उनका प्रत्यक्ष अनुभव लेना चाहिए'।[Leo Bashyam, 2001]
41. ISDN के भारत विरोधी समूह पर भारत में यूरोपीय हस्तक्षेप वाले अध्याय में विस्तार से चर्चा की गयी है।

42. [The Hindu, 4 March 2003]
43. [Prashad, 2000]]
44. उदाहरण के लिए, ग्लासगो विश्वविद्यालय में मानवशास्त्र के प्रोफेसर, साइमन चार्सली, ने एक सम्मेलन में, जिसमें राजशेखर मुख्य वक्ता थे, अपना उद्घाटन भाषण दिया था। उस सम्मेलन में, राजशेखर की घृणा का लक्ष्य महात्मा गाँधी थे, जिन्हें उन्होंने 'धूर्त बनिया' कहा। अवसर था 'Dr. Ambedkar's ideologies: Revision and Vision' विषय पर आयोजित दो दिवसीय राष्ट्रीय सम्मेलन, जिसका आयोजन SPMVV Centre for Ambedkar Studies द्वारा किया गया था। [*The Hindu* 2 March 2007, वी.टी. राजशेखर का भाषण ऑनलाइन उपलब्ध है :[Rajshekar, V.T., 2007].दिलचस्प बात है कि यह तिरुपति तिरुमलाई देवस्थानम का एक शिक्षण संस्थान है, जो एक महत्वपूर्ण हिन्दू तीर्थ है। ये लाखों कठिन परिश्रमी हिन्दुओं का चढ़ावा ही है जिससे इस शैक्षणिक संस्थान को चलाया जाता है। एक ईसाई प्रचारक वीणा नोबल दास को इसका कुलपति बनाया गया था, और उस आयोजन की उन्होंने अध्यक्षता की जिसमें राजशेखर को सम्मानित किया गया था। [*The Hindu*, 2007]
45. उदाहरण के लिए : वर्ष 2007 में, एलन हार्ट, जो कभी बीबीसी में प्रमुख व्यक्तित्व रहे थे, ने 'Empower India' कॉन्फरेन्स में एक सम्मेलन का उद्घाटन किया था, जिसमें राजशेखर ने कहा : 'हमारे शोध ने इस बात को उजागर किया है कि यहूदी और ब्राह्मण दोनों एक ही भौगोलिक क्षेत्र मध्य पूर्व से निकले हैं और दोनों का डी.एन.ए. एक ही है। दोनों की जीवनमूल्य प्रणाली एक ही है। यह तथ्य कि दोनों ही आतंकवाद (मुस्लिम आतंकवाद पढ़ें) से मुकाबले के लिए एक-दूसरे से निकट सहयोग और योगदान कर रहे हैं, इनके बीच के निकट ऐतिहासिक रुचि और उनकी घृणा फैलाने वाली मानसिकता को प्रमाणित करता है'। [Available online at: RajShekar, V.T., 2007]
46. [Carr, 2008]
47. उदाहरण के लिए : डॉ. केरन कार को क्रिशन काक के सन्देश में, 22 अक्टूबर 2008 का और कार का 23 अक्टूबर 2008 के उत्तर में, और आगे के भी ई-मेल।
48. [Grant Duff, 2009, 345]
49. [Hart, 1997]
50. [Ramachandran, S, 2008]
51. [Hindustan Times, 23 September 2007]
52. [Weekly journal of Thanthai Periyar Dravidian Kazhagam, July 2005]

अध्याय 13

1. नवसंरक्षणवादी एक त्रुटिपूर्ण और उभरती हुई पारिभाषिक शब्दावली है। हम इसका उपयोग यहाँ कुछ अमरीकी बुद्धिजीवियों, ईसाई प्रचारकों और/या रूढ़िवादी चर्चों और रिपब्लिकन पार्टी के दक्षिणपंथियों के गठजोड़ के लिए करते हैं। सितम्बर 11, 2001 के हमले के बाद नवसंरक्षणवादी विदेश नीति के विचार व्यापक रूप से एक ऐसे दर्शन के रूप में देखे गये, जिसने संयुक्त राज्य अमरीका को ईराक के साथ युद्ध में धकेला। इसमें यह विचार भी सम्मिलित है कि संयुक्त राज्य अमरीका को विश्व भर में 'स्वतन्त्रता' को प्रोत्साहित करना चाहिए, उदाहरण के लिए, सद्दाम हुसैन जैसे लोगों का सफाया करके। स्वतन्त्रता पर इस प्रकार का बल उन तानाशाहों पर विरले ही लागू होता है जो अमरीकी हितों के साथ सहयोग करते हैं।
2. [Lausanne website, 1997: 2009]
3. [Lausanne website, 1997: 2009]
4. [Thomas, 2008]
5. [Lausanne website, [1980] 1997: 2009]
6. [Lausanne website, [1980] 1997: 2009]
7. [Lausanne website, [1980] 1997: 2009]
8. [Lausanne website, 2000]
9. [Francis, 2003]
10. [Francis, 2000]
11. [Francis, 2000]
12. [Elliston and Burris, 1995, 182]
13. [Elliston and Burris, 1995]
14. [Meyers, 2005]
15. [Longman, 2010, 234-5]
16. [Ferguson, 2004, 22]
17. रॉबर्टसन पिता-पुत्र युगल के उद्धरण *Hinduism Today* Archives, 1995 से लिए गये हैं।
18. [*Hinduism Today* Archives, 1995]
19. Dr Pederson quoted in, [*Hinduism Today* Archives, 1995]
20. Dr Pederson quoted in, [*Hinduism Today* Archives, 1995]
21. [*Hinduism Today* Archives, 1995]
22. [International Mission Board, 1999]
23. [DFN, 2003:2010]
24. [Ricks, 2007]

25. इसके अन्तराष्ट्रीय अध्यक्ष डॉ. जोजेफ डी'सूजा के आधिकारिक जीवन परिचय में कहा गया है कि वे 'भारत में रहते हैं और लन्दन और डेनवर से बाहर कार्य संचालन करते हैं'। जोजेफ डी'सूजा अमरीका स्थित दलित फ्री[म नेटवर्क (डी.एफ.एन.) चलाते हैं। महत्वपूर्ण बात यह है कि गॉस्पल ऑफ एशिया के वेबपेज पर भी उनका विवरण भारत में ऑपरेशन मोबिलाइजेशन के कार्यपालक निदेशक के रूप में है। (देखें उइA, 1996 : 2009) डी.एफ.एन. के अन्य निदेशकों में सम्मिलित हैं :

    Peter Dance (India Director-OM USA, Operation Mobilization, Tyrone, GA), Melody Divine, J D (Former Judiciary Counsel and Foreign Policy Advisor, Rep. Trent Franks, Rep-AZ Denver), Bob Beltz (advisor to the chairman, The Anschutz Corporation, Denver), Richard Sweeney (chief operating officer, Dalit Freedom Network, Greenwood Village), Gene Kissinger (chairman of the Board, Interim President and CEO, DFN Outreach Pastor, Cherry Hills Community Church Highlands Ranch), Cliff Young (lead singer, Caedmon's Call Houston, TX), Ken Heulitt (VP and chief financial officer, Moody Bible Institute, Chicago), Kumar Swamy (South India Regional Director, OM India Bengaluru, Karnataka, India).
26. [Fahlbusch, Bromiley and Barrett, 1999, 642]
27. [www.omusa.org 2002]
28. [Cademon's Call, 2004]
29. [DFN, 2003: 2010]
30. [www.ccu.edu]
31. [Shashikumar, VK, 2004]
32. [www.maclellan.net] वि[म्बना यह है कि गिलमैन कहते हैं कि 'कभी-कभी स्थानीय हिन्दू पुजारी उन्हें उनके मन्दिर के आगे पर्दा लगाने और बिजली का प्लग लगाने के लिए बुलाते हैं,' और इस तरह वे उसी मूर्तिपूजक संस्कृति के आतिथ्य-सत्कार की प्रशंसा करते हैं जिन्हें वह नष्ट करने के लिए कटिबद्ध हैं।
33. [Mooney 2006, 183]
34. [www.antiochnetwork.org] लॉसैन अभियान के बारे में विस्तार से अध्ययन के लिए अन्तर्राष्ट्रीय ईसाई मत प्रचारक अभियान वाले भाग को देखें।
35. [Gilman, 2006]
36. [Golden, 2006]
37. [DFN, 2003: 2010]
38. [Farmer, 2006]
39. [Marsh, 2006]

40. [Farmer, 2006]
41. बाद में फार्मर ने अपने व्यक्तिगत अनुमोदन को वापस ले लिया, लेकिन उन्होंने अपने विचार मंच से हानिकारक सामग्री को नहीं हटाया। [Marsh, 2006]
42. गुट बनाकर दबाव डालने के ऐसे कदमों में वास्तव में परिणामों को साकार करने की अन्तर्निहित क्षमता होती है, क्योंकि संयुक्त राज्य अमेरिका में एक अधिनियम है जिसे इंटरनेशनल रिलिजियस फ्री[म ऐक्ट के नाम से जाना जाता है, जिसके बारे में बाद के एक अध्याय में विस्तार से चर्चा की जायेगी।
43. [indianchristians.in, 2001]
44. [Edamaruku, 2001]
45. [Edamaruku, 2001]
46. http://indianchristians.in/news/content/view/937/48/
47. [Franks, 2007]
48. (दलित सॉलिडेरिटी, 2007) हो सकता है कि यह भ्रम शायद समझने योग्य है और यह भी हो सकता है कि जानबूझ कर किया गया हो। 'साझे संकल्पों' में ईराक युद्ध की अनुमति देने जैसे बहुत महत्त्व के विषय आते हैं। समवर्ती संकल्पों में मुख्यत: जनसम्पर्क के हित आते हैं।
49. [*The Hindu*, 2004]
50. [Elst, 1999]
51. [*The Indian Express*, 2001]
52. [Ilaiah, 2006] आई.आई.टी. इण्डियन इंस्टीटच्यूट ऑफ टेक्नोलॉजी और आई.आई.एम. इण्डियन इंस्टीटच्यूट ऑफ मैनेजमेंट के संक्षिप्त नाम हैं। इन्हें उच्च शिक्षा के अत्यन्त महत्वपूर्ण संस्थान माना जाता है जो भारत में नयी अर्थव्यवस्था के अनेक नेताओं को पैदा करते हैं।
53. [Ilaiah, 2005]
54. [Ilaiah, 2005]
55. [GFA, 1 October 2002]
56. [Ilaiah, 2009]
57. [Ilaiah, 2009, 204-5]
58. [Ilaiah, 2009, 206]
59. [Ilaiah, 2009, 208]
60. [Ilaiah, 2009, 234]
61. [Ilaiah, 2009, 236]
62. [Ilaiah, 2009, 238]
63. [Ilaiah, 2009, xv]
64. [US Commission Global Human Rights, 2005]

65. [asianews.it, 2006]
66. [The AICC Update, 11 July 2006]
67. [Christianity Today, 11 Oct 2006]
68. [Le Journal Chretin, 2 May 2007]
69. [www.omccindia.org, 2002:2009]
70. [www.omccindia.org, 2002:2009]
71. [D'souza, 2003:2010]
72. [AICC, 1998:2010]
73. [indianchristians.in, 2001]
74. [CSW, 2001, 14]
75. See the section on US Commission on International Religious Freedom for AICC/John Dayal testimonies against India
76. *Asia Times*, February 5, 2000
77. [Towns, 2 August 2001, 18 March 2003]
78. [Assistnews, 11 May 2007]
79. [AICC, December 2007]
80. [AICC, October 2007]
81. [AICC, December 2007]
82. [100, Huntley Street, 2009] ऐसा दुष्प्रचार भारत में मिशनरी नेटवर्क की कुछ सचमुच चिन्तनीय गतिविधियों को ढँक देता है, उदाहरण के लिए, जनवरी 2010 में तमिलनाडु पुलिस ने बच्चों की तस्करी के एक नेटवर्क का खुलासा किया था जिसमें मणिपुर और असम से लड़कियों को लाया जाता था। इन लड़कियों को ईसाई प्रचारकों द्वारा तमिलनाडु लाया गया था और उनका यौन और अन्य प्रकार से शोषण किया जा रहा था। मणिपुर में, जहाँ अलगाववादियों द्वारा शैक्षणिक ढाँचों को नष्ट कर दिया गया है, ईसाई प्रचारकों के बिचौलियों द्वारा अच्छी शिक्षा देने के वचन देकर माता-पिताओं को लुभाया जाता है। बिचौलियों द्वारा बच्चों को 10,000 से 15,000 रुपयों की दर से बेच दिया जाता है। उसके बाद उन्हें बन्द जगहों में कैद रखा जाता है; उनका शोषण किया जाता है; और ईसाई प्रार्थनाओं में उन्हें भाग लेने के लिए विवश कर दिया जाता है। [*The Telegraph*, 10 February 2010]; [*Deccan Chronicle*, 23 January 2010]; [*The Sangai Express*, 11 February 2010] जहाँ एक ओर अच्छे ईसाई मिशनरी और अच्छे हिन्दू सेवा संगठन हैं जो दबे-कुचले लोगों की सच्ची सेवा करते हैं, वहीं विदेशी धन का लालच और सामाजिक समस्याओं का सहारा लेकर भारत के दानवीकरण की प्रवृत्ति का परिणाम बहुधा ऐसे अनियंत्रित अनाचारी नेटवर्कों के उदय के साथ सामने आता है। हालाँकि डी'सूजा जैसे लोग शक्तिशाली पश्चिमी समाचार माध्यमों

में भारत का चित्रण काली-सफेद छवियों—अच्छी मुक्तिदाता ईसाई शक्तियों और जंगली दमनकारी देशी संस्कृति के बीच—करते हैं, जमीनी सच्चाई इससे बिल्कुल भिन्न होती है।
83. यह मीडिया समूह फण्डामेंटलिस्ट क्रिएशनिस्ट वेबसाइट में इसके प्रोग्राम्स अगेन्स्ट इवोल्यूशन के लिए एक स्रोत के रूप में सूचीबद्ध है।[Creation Resource Library, 2005] 100 हण्टली स्ट्रीट द्वारा 1984 में एक टॉक शो प्रसारित किया गया था जिसमें एक मूर्तिपूजक शिक्षक पर शैतानी दुर्व्यवहार का आरोप लगाया गया था। जब न्यायालय में यह प्रमाणित हो गया कि वह आरोप मनगढ़न्त था, 100 हण्टली स्ट्रीट ने एक अज्ञात राशि पर न्यायालय के बाहर मामले को सुलटा लिया। [Cuhulain, 2002]
84. [AICC March, 2008]
85. [AICC and CSW (UK) joint release welcoming UN report]
86. [www.indiancatholic.in, 2008]
87. [*The Earth Times*, 2002]
88. [MNN, 2004]
89. एक दक्षिणपंथी विचार-मंच जिसकी गतिविधियों पर अगले पृष्ठों में विस्तार से चर्चा की गयी है।
90. [Pitts, 2002]
91. [*The Times of India*, 4 September 2001]
92. [Haniffa, 22 July 2003]
93. [www.votesmart.org]
94. [DFN, 2003:2010]
95. [*Washington Post*, 2005]
96. [EPPC, 2007]
97. [PIFRAS, 2004]
98. [www.ontheissues.org, 2008]
99. [www.rightwingwatch.org, 2008]
100. [DFN, 2003:2010]
101. [www.ccu.edu, 1999:2010]
102. [www.ccu.edu, 1999:2010]
103. [United Methodist News Service, 23 July 2002]
104. [Sharlett, 2008, 260-72] ये पृष्ठ सिनेटर ब्रऊनबैक का खुलासा करने वाला चित्रण प्रस्तुत करते हैं।
105. [Towns, 2 August 2001, 18 March 2003]
106. [Towns, Extensions of Remarks, 15 February 2005]

107. [Anthony, 2001]
108. [PIFRAS website, 2003 [updated]]
109. [Raman, B, 2005]
110. [Raman, B, 2005]
111. [PIFRAS, 2002]
112. इसके कारण संयुक्त राज्य अमरीका में भारतीय प्रवासियों ने शिकायतें कीं। यह उस समय हुआ जब डिक चेनी की पत्नी लिन चेनी यहूदी-ईसाई मूल्यों को फैलाने की गहरी रणनीतिक प्रतिबद्धता के साथ संयुक्त राज्य नेशनल एण्डाउमेंट ऑफ ह्यूमैनिटीज की अध्यक्ष थीं। विस्तार से आगे की जानकारी के लिए देखें :
http://www.infinityfoundation.com/ECITnehletterframeset/htm
113. [New Media, 23 July 2002]
114. [Shashikumar, V.K., 2004]
115. [John, P.D., 2002]
116. [Marshall, 2003]
117. [Marshall, First Freedom 2007]
118. [The Times of India, 5 March 2002]
119. [Yajee, 1988, 122]
120. जो भी हो, आशुतोष वाष्र्णेय, एक प्राध्यापक जो गुजरात हिंसा से निपटने में भारत सरकार की भूमिका के आलोचक हैं, और जो एक महत्वपूर्ण शोध *Ethnic Conflict and Civic Life: Hindus and Muslims in India* के लेखक हैं, लखनऊ की एक मुस्लिम महिला जेबा रहमान [गगर से असहमत हुए और कहा कि गुजरात के दंगे एक विकृति थे और भारत फासीवादी राज्य बनने की दिशा में नहीं बढ़ रहा है। वर्ल्ड म्यूजिक इन्स्टीटच्यूट के अध्यक्ष रहमान ने कहा कि गुजरात की हिंसा 'एक कृत्रिम स्थिति थी, वोट बटोरने के लिए सरकार द्वारा रचा गया एक हथकण्डा जो अन्ततः स्वयं शक्तिहीन हो जायेगा'। उन्होंने कहा कि भारतीय लोकतन्त्र जीवित है। परन्तु [गगर ने कहा, '...मैंने मुस्लिम बच्चों के जले हुए शवों से लदा एक ट्रक देखा। हिन्दुओं ने कहा कि यह ट्रेन की घटना में मारे गये हिन्दुओं में से केवल आधे का बदला लेने की भरपाई करता था'। [*India Abroad*, 4 April 2003]
121. [PTI, 10 August 2005]
122. सम्मेलन 7-9 फरवरी 2002 के बीच आयोजित किया गया था। बाद में जॉन मैकगायर (कर्टिन यूनिवर्सिटी ऑफ टेक्नोलॉजी से सम्बद्ध) द्वारा इसकी कार्रवाई को प्रकाशित किया गया। मैकगायर ने जर्नल में स्वीकार किया कि 'बड़ी उदारता से सम्मेलन के लिए आर्थिक समर्थन दिया गया था। कर्टिन यूनिवर्सिटी ऑफ टेक्नोलॉजी ने कुलपति और डिविजन ऑफ ह्यूमैनिटीज के साथ आस्ट्रेलिया के

साउथ एशियन स्टडीज एसोसिएशन के माध्यम से सुनिश्चित किया कि ऑस्ट्रेलिया और सिंगापुर के दक्षिण एशियाई विद्वान उसमें भाग ले सकें। फोर्ड फाउण्डेशन, नई दिल्ली ने हमें पाँच प्रख्यात भारतीय विद्वानों को सम्मेलन में लाने में सफल बनाया'। [McGuire, 2002]

123. उदाहरण के लिए, तीस्ता सीतलवाड़, एक आन्दोलनकारी हैं, जिन्होंने हिन्दू दंगाइयों द्वारा एक गर्भवती मुस्लिम महिला का पेट चीरकर भ्रूण को आग में डालने की घटना के विवरण को लोगों में प्रचारित किया था; उन्होंने अपने व्याख्यान देने के लिए संयुक्त राज्य अमरीका का दौरा किया था [MeriNews, 2008], और संयुक्त राज्य अमरीका आयोगों के समक्ष अपनी गवाही भी दी थी। जो भी हो, भारत के सर्वोच्च न्यायालय द्वारा दंगों की जाँच के लिए नियुक्त विशेष अनुसंधान दल (एस.आई.टी.) ने अपनी रपट में ऐसी भयानक घटना के घटित होने पर सन्देह व्यक्त किया है।[March 2009]
124. [Pitts, 2002]
125. [EPPC, 2003]
126. [Mangalore an Star 2004]
127. [Prakash, 2002]
128. [Shah, 2003]
129. [www.bu.edu, 2009]
130. [www.cfr.org, 2008]
131. [Shah, 2004]
132. [Kurtz, 2003]

अध्याय 14

1. [Marsh, 2008]
2. [Marsh, 2008]
3. [Marsh, 2008]
4. [www.borenawards.org, 2007]
5. उदाहरण के लिए देखें : [Blank, 2000, 213]
6. [Belief Net, 2000]
7. [Shah, 2003]
8. [Cromwell Trust, 2007]
9. Jonah Blank in [Shah, 2003, 8]
10. [www.saixjhu.edu]
11. [Nanda, 2000]

12. [Nussbaum, 2001] इस मुद्दे पर कि क्या यूरोप के लुथेरन चर्च 'सौम्य' हैं, सत्रहवें अध्याय और परिशिष्ट ''ज'' में चर्चा की गयी है और भारतीय संस्कृति के प्रति उनके विद्वेष पर भी।
13. उन्होंने सेन के लिए संयुक्त राष्ट्र के वर्ल्ड इंस्टीटयूट फॉर डेवलपमेंट इकोनॉमिक्स रिसर्च, हेलसिंकी में काम किया।
14. [Nussbaum, 2001]
15. [Nussbaum, 2005&2006]
16. [Nussbaum, 2007]
17. [Nussbaum, 2007, 217]
18. [Nussbaum, 2007, 220]
19. [Leach, 1990, 236&7]
20. [Shaffer and Lichtenstein, 1995, 126]
21. [Nussbaum, 2007, 30]
22. [Nussbaum, 2007, 46]
23. [Nussbaum, 2007, 66] यह पूरी तरह पर्दाफाश किया हुआ झूठ है, क्योंकि पाकिस्तान की आई.एस.आई. ने 1980 के दशक से ही मुस्लिम युवाओं को प्रशिक्षण देने का काम प्रारम्भ कर दिया था ताकि कश्मीर को 'मुक्त कराने' के साथ-साथ भारत के अन्य भागों में विद्रोह पैदा किया जा सके। [Raman, B. 2002]
24. [Nussbaum and Myers, 2007]
25. [Nussbaum, 2007]
26. [Nussbaum, 2008]
27. [Nussbaum, 2008]
28. पियर्सन ने रंगभेद, अन्य लोगों पर श्वेतों के प्रभुत्व की प्रत्यक्षीकृत नियति, प्रजातीय पृथक्करण, और मानवों के 'शुद्धिकरण' के एक तरीके के रूप में सम्पूर्ण जन-समूहों को अधिकाधिक श्वेत बनाने के लिए सुजनन विज्ञान के उपयोग का समर्थन किया था। वह विक्लिफ ड्रेपर (1891-1972) के नजदीकी बन गये, जो कि एक धनी अमरीकी थे और जिन्होंने कु क्लक्स क्लान की 1960 के दशक में मिसिसिप्पी में आतंकवाद जैसी गतिविधियों और एक क्लान पुस्तक वाइट अमेरिका को प्रायोजित किया था। 'सभी ट्यूटॉनिक (जर्मन मूल के) राष्ट्रों के हितों, मित्रता और एकता का पोषण करने के लिए' उन्होंने नॉर्दर्न लीग की स्थापना की। उन्होंने हैन्स एफ.के. गुन्थर, जिन्होंने नाजी शासनकाल में नस्ल पर अपने काम के लिए पुरस्कार प्राप्त किये थे, कु क्लक्स क्लान के अर्नेस्ट सेविअर कॉक्स जिन्होंने वाइट अमेरिका नामक पुस्तक लिखी थी, और नाजियों के एक पूर्व एसएस अधिकारी डॉ. विल्हेम केसरो को नियुक्त किया। पियर्सन 1963 में

यूजिनिक्स सोसाइटी में सम्मिलित हुए और 1977 में उसके फेलो बने। वे *The Journal of Indo-European Studies* के संस्थापक सम्पादक थे जिसका सौम्य ध्वनि वाला उद्देश्य है 'इण्डो-यूरोपीय भाषा-भाषी लोगों से सम्बन्धित मानवशास्त्र, पुरातत्व, पुराण या मिथक, भाषाशास्त्र, और सामान्य सांस्कृतिक इतिहास के बारे में सूचनाओं के आदान-प्रदान तथा मिलान के लिए एक माध्यम' बनना। वह *Mankind Quartely* के भी संस्थापक सम्पादक हैं, जो सहकर्मियों द्वारा ही समालोचित एक शैक्षिक जर्नल (शोध पत्रिका) है और जो भौतिक और सांस्कृतिक मानवशास्त्र के प्रति समर्पित है। वर्तमान में इसका प्रकाशन काउंसिल फॉर सोशल एण्ड इकॉनोमिक स्टडीज़ (सी.एस.ई.एस.) द्वारा वाशिंगटन डी.सी. में किया जाता है। यह जर्नल स्कूलों को एकीकृत करने के संयुक्त राज्य के सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय के विरुद्ध एक स्वर बना। एक अन्य निरपेक्ष ध्वनि वाली शैक्षिक पत्रिका है *The Journal for Social, Political and Economic Studies* पियर्सन जिसके जनरल एडिटर (प्रधान सम्पादक) हैं। इसे भी सी.एस.ई.एस. द्वारा प्रकाशित किया जाता है। इन 'शोध' कार्यक्रमों के लिए अधिकांश धन ड्रेपर के पायोनियर फण्ड से आया जिसे बहुत-से लोग एक फासीवादी घृणा समूह के रूप में सूचीबद्ध करते रहे हैं। पियर्सन अनेक पहचानों के माध्यम से काम करते हैं ताकि वह भाँति-भाँति के तीसरे पक्षों के साथ काम कर सकें। एक तरफ वे सबसे बुरे प्रकार के नस्लवाद को प्रोत्साहित करते हैं, और साथ ही दूसरी तरफ अपना प्रभाव बढ़ाने के लिए वे मुख्यधारा के संस्थानों में भी घुसपैठ करते हैं। कुछ, फिर इन अधिक मुख्यधारा के विद्वानों में से वह सब कुछ लिखते हैं जो 'उदारवादी' लगे।

29. [McKean, 1996, 308]
30. [McKean, 1996, 313]
31. [McKean, 1996, 272]
32. [McKean, 1996, 287]वे सुझाती हैं कि यद्यपि नेहरू का आशय अच्छा था, 'हिन्दू गुरुओं और हिन्दू राष्ट्रवाद के प्रस्तावकों' ने सामाजिक सेवा की नेहरूवादी अवधारणा को समायोजित कर लिया, इस प्रकार उनका आशय था कि हिन्दू शब्दावली का किसी भी प्रकार का उपयोग अपने आप में ख़तरों से लदा है।
33. [PIFRAS, 2002]
34. [McKean, 2002]
35. [History Coalition, 2008]
36. जवाहर लाल नेहरू विश्वविद्यालय में *The Aryan Question Revisited* विषय पर अपने व्याख्यान में रोमिला थापर ने कहा : 'भारतीय राष्ट्रवादियों की ओर से यह तर्क दिया जा सकता है कि उच्च वर्णों के भारतीय जिन्हें हमेशा से परम भारतीय माना जाता रहा है, ही आर्य हैं तथा भारतीय सभ्यता के जनक हैं और वे वास्तव में भारत को उपनिवेश बनाने वाले अंग्रेजों से सम्बन्धित हैं। एक और वक्तव्य है जिसे

उद्धृत करना मुझे अत्यन्त प्रिय है। मैं जो भी लिखती हूँ उन सबमें इसे उद्धृत करती हूँ, जो अंग्रेजों के भारत में आने के बारे में केशव चन्द्र सेन का वक्तव्य है कि ''दो बिछुड़े हुए भाइयों'' का वह मिलन था, जो एक प्रकार से, आपको उन कारणों के एक अंश के बारे में जानकारी देता है कि इस सिद्धान्त में रुचि क्यों है''। यह एक शैक्षिक हाथ की सफाई है जो एक उन्नीसवीं शताब्दी के समाज सुधारक की अगम्भीर टिप्पणी को भारतीय राष्ट्रवाद के अग्रणी चरणों के साथ जोड़ती है, तथा यह इस तरह दिखने लगती है मानो सेन की नस्लवादी और वर्ण-व्यवस्था समर्थक दोनों सैद्धान्तिक जड़ें थीं। इस टिप्पणी के बावजूद, केशव चन्द्र सेन न तो राष्ट्रवादी ही थे और न ही वर्ण-व्यवस्थावादी। एक सामाजिक सुधारक के रूप में वे वर्ण-व्यवस्था के विरुद्ध थे। भारतीय राष्ट्रवाद के अन्य अगुवे, जिनमें श्री अरविन्द और स्वामी विवेकानन्द भी शामिल थे, आर्य नस्ल के सिद्धान्त के आलोचक थे। विवेकानन्द ने वर्तमान भारतीय समाज पर नस्ल के सिद्धान्त को लागू करने की निन्दा की (Vivekanand 1970, 479) जबकि श्री अरविन्द ने बिना किसी समझौते के वर्ण-व्यवस्था की लोकतंत्र विरोधी प्रकृति की निन्दा की। [Ghosh 1907]

37. [Thapar,, 2004, 486] भारतीय इतिहास को सर्वांगीण रूप से समझने के विकसित शोध उपकरणों से दूर, इन्हें अन्तर्राष्ट्रीय ईसाई प्रचारक संगठनों के लिए काम करने वाले कांचा इलाइया जैसे सिद्धान्तकारों द्वारा कब्जे में करके व्याख्यायित किया गया है। 'Subalterns and Christian theology in India' जैसे शीर्षक के तहत विख्यात ईसाई शास्त्री सत्यनाथन क्लार्क व्याख्या करते हैं कि किस प्रकार इलाइया 'हिन्दू वर्ण समुदाय बनाम दलित-बहुजन की तर्ज पर भारतीय समाज को ध्रुवीकृत करते हैं'। यह स्वीकार करते हुए कि 'भारतीय समाज की (ऐसी) आसान द्विआधारी अवधारणाओं' की 'अनेक समस्याएँ' हैं, क्लार्क पाते हैं कि 'हमारे उद्देश्यों के लिए' ऐसे ध्रुवीकरण 'प्रासंगिक उपहार' हैं'। [Clarke, 2008, 282]
38. [Barnes (SJ), 2002, 163] सभी उद्धरणों में, वे आगे रोमिला थापर को ही सन्दर्भ के रूप में देते हैं।
39. [Barnes (SJ), 2002, 163]
40. [Barnes (SJ), 2002, 163]
41. [Frykenberg, 1991, 237]
42. [Thapar, 1989, 229]
43. उदाहरण के लिए : [Thapar, 1990, 305] : वह चैतन्य महाप्रभु के धार्मिक अनुभव को 'एक विचित्र उन्मादी मदहोशी' के रूप में चित्रित करती हैं।
44. [Thapar, 2004] यहाँ इस बात पर ध्यान देना चाहिए कि भारतीय साहित्य, ऋग वैदिक काल से लेकर सम्पूर्ण इतिहास में (उदाहरण के लिए ऋग वेद अध्याय-10, ऋचा 146) अरण्यानी का वर्णन जंगल में रहने वाली एक सौम्य देवी के रूप में

करता है, दुष्ट के रूप में नहीं। इसने जंगल की आत्माओं को सौम्य के रूप में तथा जंगल के लोगों को उच्च सम्मान देते हुए प्रकृति के उत्कट रूप से स्वतन्त्र माना है, कभी-कभी तो भारतीय नगरों में रहने वाले लोगों से अधिक सभ्य और छलमुक्त के रूप में रूमानी चित्रण भी किया गया है (जैसा कि बारहवीं शताब्दी में वैष्णव साहित्य थिरुवारंगा कलम्बगम में उपलब्ध होता है, जो एक वनवासी मुखिया की वीरता की प्रशंसा करता है, उसका दानवीकरण नहीं करता, जिसने एक राजा द्वारा दिये गये विवाह के प्रस्ताव को ठुकरा दिया था)। इस प्रकार थापर की अटकल अनुभवजन्य साक्ष्य के आधार पर झूठी प्रमाणित होती है, फिर भी वे उन लोगों के लिए एक शक्तिशाली दुष्प्रचार के हथियार के रूप में काम आ सकते हैं जो भारत का चित्रण आदिवासियों और उनकी संस्कृति के लिए ऐतिहासिक रूप से दमनकारी के रूप में करने की इच्छा रखते हैं।

45. [Thapar, 1990, 134-5]
46. [Thapar, 2007] वे पुरातात्विक अवशेषों के मिलने की भी उपेक्षा करती हैं जो रामायण की घटनाओं के ऐतिहासिक मूल की ओर संकेत करते हैं। उदाहरण के लिए देखें : [Lal, B., 1981, 1990]
47. [Thapar and Witzel, 2006]
48. [Library of Congress, 2003]
49. [Library of Congress, 2008]
50. [*Times of India*, 27 January 2005]
51. Jaroslav Pelikan, as quoted in [Noll, 2004] क्लग धर्मादा ईसाई पक्षधर मानसिकता वाले विद्वानों के प्रति प्राथमिकता प्रदर्शित करता है। उदाहरण के लिए, मार्क S. नोल को भी, जिन्हें टाइम पत्रिका ने 'संयुक्त राज्य अमरीका में पच्चीस सर्वाधिक विशिष्ट ईसाई प्रचारकों में से एक' कहा है, कांग्रेस के पुस्तकालय स्थित जॉन डब्ल्यू. क्लग सेंटर द्वारा सन् 2004 में सम्मानित किया गया था। [TIME, 2005] पुरस्कार की हिस्सेदारी करने वाले थे जारोस्लाव पेलिकन, जिनकी उपलब्धि यह थी कि उन्होंने 'ईसाई परम्परा का एक इतिहास उस परिमाण में लिखा जितना कि बीसवीं शताब्दी में किसी अन्य ने लिखने के प्रयास नहीं किये'। [Noll, 2004] नोल भी ह्विटन कॉलेज के, जो एक ईसाई प्रचारक संस्थान है, ईसाई चिन्तन पर स्थापित मैकमेनिस पीठ पर विराजमान हैं। सन् 2005 में क्लग सेंटर ने 'The Bible in American Public Life, 1860— 2005' विषय पर मार्क नोल का एक व्याख्यान आयोजित किया था। [Library of Congress 2005] क्लग में उनका महत्व इस तथ्य द्वारा भी रेखांकित होता है कि वह कांग्रेस के पुस्तकालय के जॉन डब्ल्यू. क्लग सेंटर के सम्मानजनक अमेरिकी इतिहास और नीतिशास्त्र के चेयर पर भी विराजमान हैं।

52. एक आधिकारिक पुस्तक *A Dictionary of the Marxist Thought* में थापर को Hinduism के लिए शब्दकोष प्रविष्टि में एक मार्क्सवादी इतिहासकार के रूप में प्रस्तुत किया गया है। [Bottomore, T.B., 1991, 232]
53. रोमिला थापर के अनुसार, भारतीय वैराग्य 'बदलते हुए समाज में असुरक्षा से पलायन करने की इच्छा द्वारा ... प्रेरित था ... जादू और शक्ति के क्षणों तक पहुँचने में सामुदायिक प्रयासों की प्रभावहीनता को स्वीकार करते हुए भी'। [Thapar, 2006, 44]
54. [Nanda, 2000]
55. [Nanda, 2004]
56. [Nanda, 2004]
57. टेम्प्लटन की वेबसाइट में प्रकाशित एक साक्षात्कार में जैक टेम्प्लटन ने घोषणा की कि एक ईसाई प्रचारक के रूप में वे फाउण्डेशन के उद्देश्यों के साथ किसी भी प्रकार से हितों का संघर्ष नहीं पाते हैं। [ऊास्ज्तूon इदल्ह्aूग्on, 2006] मीरा नन्दा की इस विषय पर चुनिन्दा तौर पर चुप्पी को रेखांकित करता है एक अन्य विज्ञान पर लिखने वाले पत्रकार का कथन, जिन्होंने टेम्प्लटन फाउण्डेशन को उन दृष्टियों का समर्थन करते हुए पाया जो 'स्पष्टत: पंथ और ईसाइयत के पक्ष में झुकी हुई थीं'। [Horgan, 2006]
58. [Sheldrake, 1997]
59. [Nanda, 2005]
60. [Mitra, 2009]
61. प्रसाद जॉर्ज एं[मार्था केल्नर पीठ पर बैठे हैं जिसे वाल स्ट्रीट माल बेच कर हासिल मुनाफों में से धन दिया जाता था।
62. [Prasad, 2000] यद्यपि प्रसाद अपनी समालोचना में जिसे वी.टी. राजशेखर के 'बाहरी चमड़ी के नियतिवाद' के रूप में वर्णित करते हैं, उसी को तोड़-मरोड़कर उसका बचाव सामाजिक न्याय के लिए एक हथियार के रूप में करते हैं।
63. [Prasad, 2000, 9र्78]
64. ['Plawiuk', 2006]
65. [George, 2002]
66. [www.ciis.edu, 1999:2009]
67. [www.fides.org, 2004]
68. [www.proxsa.org, 2002]
69. [*Frontline*, 25 March 2005]
70. [AICC, 19 December 2008]
71. [Franks, Cleaver and Pitts, 2008]

72. देखें, उदाहरण के लिए, *India Today*, 30 March 1998 की रपट। इस रपट के अनुसार, अनेक ईसाई उकसावे थे जैसे एक गाँव के मन्दिर को अपवित्र किये जाने को लेकर विवाद, ईसाइयों द्वारा अफवाह फैलाना कि हिन्दू 'गाँव के कुओं में विष डाल रहे थे' — संयोग से यह वैसी ही अफवाह थी जैसी कि मध्यकालीन ईसाई साम्राज्यों द्वारा यहूदियों के विरुद्ध फैलायी जाती थी, गाँवों के नाम बदलना जैसे कृष्णपुर को क्रिस्तोपुर कहना, और 'मिशनरियों का कुछ अधिक ही सक्रिय होना'।
73. प्रेस ट्रस्ट ऑफ इण्डिया ने 5 अक्तूबर 2008 को समाचार प्रसारित किया था कि माओवादी नेता ने स्वीकार किया कि वे ईसाइयों से समर्थन प्राप्त करते हैं और ईसाइयों की ओर से हिन्दू साधू को समाप्त कर देने का दबाव था।
74. [Indianchristians.in, 2008]
75. [www.ciis.edu, 1999:2009]
76. [Al-Jazeerah, 30 October 2006]
77. [Sadiq, 2008]
78. [Duin, 2008]
79. इनफिनिटी फाउण्डेशन ने दक्षिण एशियाई अध्ययन सम्मेलनों के, जो हर वर्ष मैडिसन स्थित यूनिवर्सिटी ऑफ विस्कॉन्सिन में आयोजित किये जाते हैं, पिछले पैंतीस वर्षों के आयोजनों में उपस्थित पूर्वाग्रहों का विश्लेषण किया है। उनमें हिन्दू और मुसलमानों की समस्यों के क्षेत्रों के प्रति अपनाये गये रवैये की विषमताओं को स्पष्ट और नाटकीय पाया। यह विश्लेषण एक भावी खण्ड में प्रस्तुत किया जायेगा।
80. [Kawaja, 2002]
81. उदाहरण के लिए, आई.एम.सी., कोलिशन अगेन्स्ट जेनोसाइ[के संस्थापक सदस्य के रूप में, नरेन्द्र मोदी को संयुक्त राज्य की वीजा देने से इनकार करने के अपने अभियान में सफल रही। (The Milli Gazette, 2005) यहाँ यह ध्यान देना चाहिए कि संयुक्त राज्य द्वारा वीजा देने से इनकार करने को भारतीय प्रधान मंत्री मनमोहन सिंह द्वारा 'व्यथा, चिन्ता और खेद' के साथ देखा गया था यद्यपि श्री सिंह मोदी की राजनीति के धुर-विरोधी थे। [झ्ऊघ्, 19 March 2005]
82. [K. Kawaja, 1999]
83. [IMC&USA, 7 October 2005]
84. House Resolution 160, introduced by Representative Joseph Pitts [R-PA, and Representative John Conyers [D-MI, on 16 March 2005]
85. तरुण तेजपाल के इस सम्मेलन में भाग लेने के बाद, उनकी पत्रिका तहलका ने स्टुडेंट्स इस्लामिक मूवमेंट ऑफ इण्डिया (सिमी) का, जिसे भारत में अनेक संहारक बम हमलों में एक ख़तरनाक संगठन के रूप में अभियुक्त बनाया गया है,

बचाव करते हुए आलेखों की एक श्रृंखला चलायी। सन् 2001 में, भारतीय गुप्तचर अधिकारियों ने सिमी और शिकागो स्थित कन्सल्टेटिव कमिटी ऑफ इण्डियन मुस्लिम्स के बीच सम्बन्धों का पता लगा लिया था। [*The Times of India*, 23 August 2008] सन् 2002 में, आई.एम.सी.-यू.एस.ए. का शिकागो में गठन किया गया था।

86. [NRIInternet.com, 2008]
87. [*The Times of India*, 14 April 2009] and also [*The Times of India*, 16 April 2009]
88. [IMC-USA, 27 November 2008]

अध्याय 15

1. राजनीतिक अवसरवादिता के अलावा, उदारवादियों के लिए उन स्थितियों के साथ जाने के और भी कारण हैं, जो ईसाई दक्षिणपंथियों से जुड़ी हैं। उदाहरण के लिए, जिमी कार्टर, सर्वाधिक उदारवादी राष्ट्रपतियों में से एक, एक धर्मनिष्ठ ईसाई प्रचारक थे। राष्ट्रपति पद से मुक्त होने के बाद उन्होंने लिखा कि उनकी ईसाई अवधारणा उनके नीति-निर्धारण में पथप्रदर्शक सिद्धान्त रही थी, उस समय भी जब उनके लिए इसे सार्वजनिक रूप से स्वीकार करना राजनीतिक रूप से गलत था। हिलेरी क्लिंटन के ईसाइयत में गहरे विश्वास के बारे में भी ऐसा कहा जा सकता है। दूसरी बात यह कि उनमें भी जो निजी रूप से ईसाई नहीं हैं, पश्चिमी सभ्यताजन्य श्रेष्ठता की भावना उत्कीर्ण है। इसलिए विदेशों में ईसाइयत के विस्तार को उनकी सभ्यता के मूल्यों के विस्तार के रूप में देखा जाता है ताकि अन्य लोगों की सहायता की जा सके। फिर भी, हो सकता है कि अन्य गैर-पश्चिमी, गैर-ईसाई पक्ष के लिए अच्छे सुरक्षाकर्मी जैसा व्यवहार करने वाले लोग हैं, परन्तु अन्ततः उनका यह रुख बुरे सुरक्षाकर्मियों के आगे नहीं टिक पाता, जो खुले-आम श्रेष्ठतावादी हैं और जो अन्ततः अपना दबदबा स्थापित कर लेते हैं।
2. [Hertzke, 2006]
3. [Fore, 2002]
4. [www.unhchr.ch, 1998]
5. Intervarsity Press, Robert A Seiple, https://www-ivpress-com/title/ata/seiple.pdf, 10 November 2008
6. [Foucherau, 2001]
7. http://www.uscirf.gov/index.php\option=com_content-task=view-id=227- Itemid=1
8. [www.gordonconwell.edu, 2001:2009]
9. [www.gordonconwell.edu, 2001:2009]

10. [www.gordonconwell.edu, 2001:2009]
11. कैम्पस क्रुसे[फॉर क्राइस्ट की भारत में गतिविधियों का एक उदाहरण है कि यह अमरीकी जादूगरों [illusionists को गरीब भारतीयों को ठगकर ईसाई बनाने के लिए नियुक्त करता है। देखें [www.ccci.org] यह भी देखें, [Christianity Today, 1999]
12. [Watson, 3 August 2008]
13. [Walsh, 1998]
14. [www.uscirf.gov]
15. [Gray, 2000]
16. [Catholic World News Service, 14 September 2000]
17. [Catholic World News Service, 14 September 2000]
18. [Catholic World News Service, 14 September 2000]
19. [USCIRF 2000, Section III]
20. [USCIRF 2000, Section I]
21. Incidents involving National Liberation Front of Tripura: [www.satp.org 2003]
22. [USCIRF, 2001, 70]
23. [USCIRF, 2001, 52-3]
24. Incidents involving National Liberation Front of Tripura: [www.satp.org 2003]
25. [Dayal, 1999, 7]
26. [BBC, 17 May 2003]
27. [BBC, 17 May 2003]
28. [FIACONA, 8 August 2003] बिशप सर्गुनम तमिलनाडु राज्य के अल्पसंख्यक आयोग के पूर्व अध्यक्ष और इवैंजेलिकल चर्च ऑफ इण्डिया के पीठासीन बिशप हैं।
29. [The Times of India, 10 January 2004]
30. [The Times of India, 10 January 2004]
31. [www.ivarta.com, 2004]
32. [*The Assam Tribune*, 23 August 2004]
33. [USCIRF, 2005, 126&139]
34. [Kulkarni, 2005]
35. [UNHCR, 2005]
36. [Raman, 2004]
37. [USCIRF, 2006, 1]

38. [in.crossmap.com, 2006]
39. [USCIRF, 2006, 3]
40. [*The Indian Express*, 25 March 2006]
41. [Muthuswamy, 2006]
42. [Muthuswamy, 2006]
43. [USCIRF, 2007, 253]
44. चूँकि यहाँ जिस चीज की चर्चा हो रही है उसमें इस पर और अधिक लिखना भटकाव हो जायेगा, इसलिए इतना उल्लेख करना पर्याप्त होगा कि पाठक Elst, 2007, 9-17 अध्ययन में विस्तार से इसे पा सकते हैं जिसमें यह बताया गया है कि किस प्रकार गुजरात की पाठ्यपुस्तकों की गलत व्याख्या नाजी महिमा-मण्डन की ओर इंगित करने के लिए की गयी और किस प्रकार वे वास्तव में नाजियों के प्रति आलोचनात्मक थीं।
45. [Chatterji, 10 December 2008]
46. [www.uscirf.gov, 2009]
47. [CSF, 2009]
48. [Rediff News, 2009]
49. [www.uscirf.gov, 2009]
50. [Pew Research Center, 2009]
51. [Pew Research Center, 2009] विभिन्न देशों, जिन पर रपटें लिखी जाती हैं, से सूचनाओं का एकमात्र स्रोत उनके संविधान होते हैं।
52. 52. [AICC, March 2008, 2-3]
53. [Pew Research Center, 2009]
54. [Marshal, 2004]
55. [pewforum-org, 2009] and [Shah, 2003]
56. [*The Economic Times*, 22 December 2009]
57. सभी मामलों के उदाहरणों के आँकड़े इसी अभिलेख से लिए गये हैं।
58. हिन्दू मूर्तिपूजा के विरुद्ध बहुधा शेखी बघारने के एक ईसाई प्रचारक तरीके का उदाहरण यहाँ दिया जा रहा है जिससे हिन्दुओं के विरुद्ध घृणा उत्पन्न होती है : 'यह एक बहुज्ञात तथ्य है कि मेरा देश भारत मूर्तियों से भरा पड़ा है और वह मूर्तिपूजा, रक्त के चढ़ावे, और अनेकानेक प्रकार की दुष्टतापूर्ण गतिविधियों को बढ़ावा देता है। भारत दुष्टता के सागर में डूब रहा है, जो ईश्वर के विरुद्ध पाप करता है जैसा कि हमारा ग्रंथ रोमन नामक अध्याय में बताता है 1 : 21 से 32 तक। परन्तु ईश्वर उसे विनाश से बचाना चाहता है। इस क्रोध में ईश्वर ने मूर्तिपूजा की भूमि को साफ कर देने का निर्णय किया है।' [http://education.vsnl.com/missionary/] अनेक ईसाई प्रचार सामग्री जो लक्षित स्थानों के लोगों के बीच बाँटी जाती है बहुधा

भड़काऊ और हिन्दुओं के लिए अपमानजनक होती है — एक ऐसा कारक जिस पर संयुक्त राज्य अमरीका स्थित अध्ययन समूहों द्वारा ध्यान नहीं दिया जाता।

59. [www.usaid.gov]
60. [Shashikumar, VK, 2004]
61. [Lindsay, 2007, 44]
62. [Monsma, 2001, 203-4]
63. [www.usaid.gov, 2001]
64. [www.usaid.gov, 2002]
65. [www.usaid.gov, 2002, slide 9/15]
66. [Lindsay, 2007, 214]
67. [Deikun, 2005]
68. [www.usaid.gov, 2005]
69. [Deikun, 2006]
70. [www.unaid.gov, 2008]
71. [facebook.com, 2010]
72. [www.eficor.org, 2000:2009]
73. [www.eficor.org, 2000:2009]
74. [PTI, 25 July 2007]
75. इस परिषद के जिन सदस्यों का यहाँ वर्णन किया गया है जिन्होंने पहले एक वर्ष का कार्यकाल मार्च 2009 से प्रारम्भ होने वाली अवधि में पूरा किया। इसके पहले वर्ष की सम्पूर्ण रपट की प्रति इस लिंक से डाउनलो[की जा सकती है :http://www.whitehouse. gov/sites/default/files/microsites/ofbnp-council-final-report.pdf [valid as of April 2010] इस भाग में सभी उद्धरण मताधारित पहलकदमियों पर सरकारी वेबसाइट से लिये गये हैं।

अध्याय 16

1. Winston Churchill, speech at Harvard University, 6 September 1943
2. [*Times of London*, 26 May 1991]
3. [Hoyos, 1995]
4. [www.countercurrents.org, 2009]
5. [Wikipedia]
6. [Pallister, 2007]
7. [CSW, 2001, 16]
8. [www.andyreedmp.org.uk, 2006]
9. [Hindu Forum of Britain, 2007, 29]

10. [CSW, 2006]
11. [CSW, 2007]
12. [CSW, 2006/07, 7]
13. [Assistnews, 11 May 2007]
14. [*The Independent*, 30 March 2008]
15. [CSW, 2008]
16. [Human Rights Commission, 2008, 3]
17. [CSW, November 2007, 6]
18. [Sahni, 2004]
19. [DSN-UK, 2003-2004]
20. क्रिश्चियन एड ने एक बाहरी पड़ताल में बताया : 'हमने गर्व के साथ दलित सॉलिडैरिटी नेटवर्क — यू.के. को वर्ण-भेद के मुद्दों को उठाने के लिए समर्थन दिया ... [2009 के सम्मेलन के लिए। हम एक बार फिर इंटरनेशनल दलित सॉलिडैरिटी नेटवर्क या उसी तरह के सहभागियों के शामिल होने के लिए धन उपलब्ध करा सकते हैं'। [www.ngomonitor.org, 2008]
21. [DSN-UK] (पहले ही उल्लिखित तीन प्रमुख ईसाई संगठनों के अलावा, सेंट क्लेयर और सेंट फ्रैंसिस ट्रस्ट चौथा ईसाई संगठन है जो डी.एस.एन.-यू.के. को धन प्रदान करता है।)
22. इसके पहले के संगठन को एस.पी.जी. कहा जाता था, जिसने 1820 में अपने मिशनरी भारत भेजे थे। एस.पी.जी. संगठन 'अट्ठारहवीं और उन्नीसवीं शताब्दी में बार्बा[ोस में दासों का स्वामी था, जिसके कॉडरिंग्टन बगान पर कई सौ दास थे। क्रिस्टोफर कॉडरिंग्टन द्वारा 1710 में इस स्थल को अपनी वसीयत में सोसाइटी को दे दिया गया था, और उसके बाद चर्च ऑफ इंग्लैण्ड की ओर से प्रबन्धकों द्वारा इसे संचालित किया जाता था। चर्च ऑफ इंग्लैण्ड का प्रतिनिधित्व कैंटरबरी के आर्चबिशप और बिशपों की एक समिति करती थी। यह पश्चिम अफ्रीका से दासों की नयी खेपों के नियमित आगम पर भरोसा करता था, क्योंकि 1740 तक, चर्च द्वारा इसे अपने अधीन करने के तीस वर्ष बाद, खेती के लिए लाये गये प्रत्येक 10 में से चार दासों की तीन वर्ष के अन्दर मृत्यु हो जाती थी। यह संयुक्त राज्य अमरीका के दक्षिणी प्रान्तों के कुछ बगानों के विपरीत था जहाँ मृत्यु दर अपेक्षाकृत कम थी, जो एक जानबूझकर 'मृत्यु तक काम' की नीति के लागू रहने की ओर इंगित करता है, जैसा कि वेस्ट इण्डीज और दक्षिण अमरीका के मामलों में बहुधा होता था। [see: Wikipedia]
23. [Wikipedia]
24. उदाहरण के लिए, सन् 2000 में ग्लास्गो के सोशल केयर सेक्टर के कैथलिक आर्च डायोसीस ने यूनिसन [UNISON] के साथ एक समझौता किया कि यही

एकमात्र मान्यता प्राप्त यूनियन होगा जो आर्च डायोसीस की सामाजिक देख-भाल की परियोजनाओं के लिए काम करने वाले कर्मचारियों का प्रतिनिधित्व करेगा। [Unison 2000] Also see [Amoore 2005, 312]
25. [DSN-UK, July 2006, 11]
26. [www.hinducounciluk-.org, 2007]
27. [DSN-UK, 23 March 2007]
28. [DSN-UK, 23 March 2007]
29. [www.tamilnet.com]
30. [www.liberationorg.co.uk]
31. संयुक्त राष्ट्र संघ की बैठक में असमी आतंकवादी संगठन के एक नेता को, जिसके खिलाफ़ दिल्ली की इण्टरपोल ने चेतावनी जारी कर रखी थी, प्रायोजित करने में लिबर्टी की प्रमुख भूमिका रही थी। लिबरेशन ने इस उल्फा [ULFA] नेता को दो नामों से प्रायोजित किया था : एक उसके मूल नाम 'अनूप चेटिया' और दूसरे उसके ईसाई नाम 'जॉन डेवि[सलोमर' के नाम से। [Ghose, 2001, 92]
32. [www-parliament.uk, 2007]
33. [www.khalistan-affairs.org, 2002]
34. [*The Hindu*, 16 September 2006]
35. [LISA, 2005:2010]
36. [LISA, 2005:2010]
37. [Khalid, 2007] and [Khalid, Musharaff, Beginning to End, 2007]
38. [Shariff, 2005]
39. षडयन्त्र के अधिकांश सिद्धान्तों की तरह, इन सम्बन्धों को समझना यह माँग करता है कि यहूदी नरसंहार [Holocaust] खण्डन के अत्यन्त गँदले क्षेत्र में एक संक्षिप्त यात्रा की जाये। उदाहरण के लिए देखें : [Sharif, 2006]
40. [Dalit Voice, 2009]
41. [LISA, 2009]
42. [EPPC, 2002] सन् 2005 में इन्फेमिट ने इस्लामी राज्यों पर, उन्हें पश्चिमी ईसाई जगत के बरक्स रखते हुए, एक अध्ययन पर ई.पी.पी.सी. के साथ भी काम किया था।

 [EPPC, 2005]
43. [OCRPL, 2008]
44. सेंटर के एक फेलो और संयुक्त राज्य अमरीका से एकमात्र, डॉ. पॉल मार्शल ह[सन इंस्टीटयूट के हैं। [.Hudson.दर्ु ह[सन इंस्टीटयूट के दक्षिणपंथी रुख के लिए देखें [EPPC, 2005]
43. [OCRPL, 2008]

अध्याय 17

1. [Abdullah, 2001]
2. [IDSN, 2009]
3. प्रमुख निधिकरण स्रोतों के उदाहरण हैं : Comite Catholique contre la Faim et Pour le Development (Catholic Committee against Hunger and for Development – CCFD), DanChurchAid, Cordaid, ICCO and Christian Aid- [IDSN, 2005, 33]
4. [NCCI, 2006]
5. [NCCI, 2006]
6. [IDSN, 2009]
7. [www.focnou.com, 2007]
8. [NCCI, 2006]
9. [CIDSE, 1998, 4]
10. उदाहरण के लिए, एम्नेस्टी (स्वीडिश प्रभाग) के भारत के लिए सह-संयोजक के रूप में हैन्स मैग्नुसन भारत सरकार के इस कथन को अस्वीकार करते हैं कि आतंकवाद ग्रस्त कश्मीर में युवा नियन्त्रण रेखा पार कर चले जाते हैं, जो उनके लापता हो जाने का एक कारण है। (कश्मीर मानवाधिकार वेबसाइट, 2008)

    आई.डी.एस.एन. के जेरार्ड ऊंक भी इण्डिया कमिटी ऑफ द नीदरलैंडस [I.C.N.] के प्रमुख हैं, जिस पर 'साइबर अपराध, नस्लवादी और विदेशियों के प्रति दुर्भावना की प्रवृत्ति वाले कार्य, और आपराधिक मानहानि' के आरोप थे और जिसके विरुद्ध एक भारतीय वस्त्र निर्माता फैक्टरी की ओर से दायर मुकदमे में एक भारतीय न्यायालय ने नोटिस भी जारी किया था, लेकिन फैक्टरी प्रबन्धन के साथ आई.सी.एन. समर्थित प्रचारकों ने न्यायालय के बाहर समझौता करने का रास्ता अपनाया। [www.indianet.nl, 2007] 2007]
11. [Wikipedia, 2008]
12. [Thekaekara, 2005]
13. [IDSN, 2005, 6]
14. यह जापान में पूर्णत: मान्यताप्राप्त ईसाई प्रचारक विश्वविद्यालय है जो धर्मशास्त्र में एक स्नातक स्तर तक का पाठ्यक्रम चलाता है [Japan Student Services Organization 2006] जहाँ से योजो योकोटा ने स्नातक किया है। [Project Elenor, 2004]
15. वे कोरियन नेशनल काउंसिल ऑफ चर्चेज [KNCC] के जन सम्पर्क विभाग में एक कर्मचारी थीं, और वाई.डब्ल्यू.सी.ए. की नीति समिति में सलाहकार। [United States Human Rights] 2007]
16. [IDSN, 2005, 9]

17. [IDSN, 2006, 6]
18. [IDSN, 2006, 8]
19. [IDSN, 2006, 11&12]
20. [IDSN, 2006, 6]
21. [IDSN, 2005, 16]
22. [IDSN, 2005, 16]
23. [Wikipedia]
24. [IDSN, 2006, 15]
25. [Wikipedia] and [Wikipedia 2009]
26. [www.europarl.europa.eu, 2006]
27. [IDSN, 2006, 20]
28. [www.europarl.europa.eu, 2006]
29. [One World South Asia, 2006]
30. [IDSN, 2006, 48]
31. [IDSN, 2006, 24]
32. [Human Rights News, 2007]
33. [www.nerve.in, 2007]
34. [www.nerve.in, 2007]
35. [*The Times of India*, 3 February 2007]
36. [www.ahrchk.net, 2006]
37. [DSN&UK, 24 September 2008, 2]
38. भारतीय सभ्यता को नीचा दिखाने में लुथेरन चर्च की ऐतिहासिक और वर्तमान भूमिका पर और विस्तार से जानने के लिए देखें परिशिष्ट ज।
39. [Dalit Network, 2008]
40. [उrाहः Eल्rदजर्ीह इrाा Aत्त्ग्aहम, 2008] यहाँ यह ध्यान देना रुचिकर होगा कि माइकल कैशमैन, यू.के. से एक एम.ई.पी., जिन्होंने दलितों के विरुद्ध भेदभाव को समाप्त करने के लिए यूरोपीय हस्तक्षेप का यह कहते हुए जोरदार समर्थन किया था कि 'इस बर्बरता को समाप्त होना ही है', [http://www.neurope.eu/articles/87378.php]़, यूरोपीय कामों को भारत समेत विकसित देशों मे करवाने (आउटसोर्सिंग) के प्रबल विरोधी भी रहे हैं। [IANS, 20 February 2004]
41. [Lutheran World Federation 2009]
42. [WCC, 2009]
43. [WCC, 2009]

44. कनेल वेद प्रकाश कहते हैं कि जेनेवा स्थित वर्ल्ड काउंसिल ऑफ चर्चेज अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर नागा विषय पर जनजागरण करता है। [V. Prakash 2007, 1945] जे.पी. राजखोवा, असम के पूर्व मुख्य सचिव, कहते हैं कि एन.एस.सी.एन., एक माओवादी-ईसाई विद्रोह आन्दोलन, 'वर्ल्ड काउंसिल ऑफ चर्चेज से वित्तीय सहयोग प्राप्त करता है'। [Rajkhowa, JP, 2008]
45. [Christianity Today, 21 March 2009]
46. [Global Ecumenical Conference, 21-24 March 2009]
47. [www.lutheranworld.org, 2009]
48. [WCC, 2009]
49. [*The Times of India*, 26 April 2009]
50. [IDSN, 2006, 6]
51. [Merrinews.com, 2008]
52. [O'Neill, 2003]
53. उदाहरण के लिए, टाइम्स ऑफ इण्डिया ने इस अध्ययन को एक सनसनीखेज शीर्षक से प्रकाशित किया था। [*The Times of India*, 8 December 2009]
54. [kroc.nd.edu, 2008] समर्थन देने वाले अन्य हैं यूनिवर्सिटी ऑफ मिशिगन का डार्टमाऊथ कालेज और वाशिंगटन स्थित रॉबर्ट एफ. केनेडी सेंटर फॉर सोशल जस्टिस एण्ड ह्यूमन राइट्स। इन दोनों उदारवादी संस्थानों को भी, जिनके मानवाधिकार मामलों से सच्चे अर्थों में लेना-देना है, निहित स्वार्थों वाले चर्च आधारित संस्थानों के साथ-साथ खींच लिया गया है।
55. डर्बन से लौटने के बाद अपने एक साक्षात्कार में कांचा इलाइया ने स्वीकार किया कि जहाँ बहुसंख्यक दलित 'गैर-ईसाई' थे, 'दलित गुट के नेतृत्व में' पॉल दिवाकर, रूथ मनोरमा, ज्योति राज, मार्टिन मैकवान थे — जो सभी चर्च से सम्बद्ध व्यक्तित्व हैं और उन्होंने 'एन.सी.डी.एच.आर. के माध्यम से दलित एन.जी.ओ. के लिए संयुक्त राष्ट्र संस्थाओं के अन्दर स्थान बनाने की अपनी योग्यता का प्रदर्शन किया'। [Illaiah, 2001]
56. [P. Divakar, 2002]
57. [P. Divakar, 2002]
58. [NDTV, 12 November 2006]
59. [NDTV, 12 November 2006]
60. [www.hrdc.net, 2001]
61. [NCDHR, 2006]
62. Article One, International Convention on the Elimination of All Forms of Racial Discrimination [ICERD]
63. [IDSN, 2008]

64. http://www.rightlivelihood.org/ruth-manorama.html]
65. एक आरोप कि एक रहस्यमय महिला, जिनके श्रीलंकाई तमिल समूहों के साथ सम्बन्ध हैं, अलगाववादी तमिलनाडु लिबरेशन आर्मी के लुटेरे वीरप्पन से बातचीत कर रही हैं, रूथ मनोरमा से जुड़ा था, जिस पर एक प्रमुख अंग्रेजी के समाचार-पत्र में समाचार छपा था [*The Hindu*, 17 November 2000] और उसके बाद मनोरमा द्वारा उसका खण्डन किया गया था। [*The Hindu*, 18 November 2000]
66. [Associated Press, 2001]
67. [NCCI, 2006]
68. [Manorama, 18 December 2006, 2-3]
69. [IDSN 2008, 6]
70. [WCC, 2009]
71. [Raj, M C, 2001]
72. [Raj, M C, 2001, 4]
73. [Raj, M C, 2001, 12, 13]
74. [Raj and Raj, 2008, 9]
75. [Raj and Raj, 2008, 9]
76. [Raj and Raj, 2008, 10]
77. [Raj and Raj, 2008, 10]
78. [IIDS, 2008]
79. [Macwan, 2007, 1]
80. Including Christian Aid, Cordaid [a Netherlandxbased Catholic aid organization, see: (Reuters 2008)], Germany-based ‘Bread for World’, a Lutheran initiative, and IDSN.
81. [DSN-UK, 2004-5, 3]
82. [IDSN, 2006, 9]
83. [IDSN, 2007]
84. [Macwan, 2007, 39]
85. [Macwan, 2007, 53]
86. [IIDS, 2008]
87. [Macwan and Narula, 2001]
88. [Aloys, 2007]
89. [Macwan, 2007, 47]
90. [IIDS, 2008]
91. [IIDS, 2008]

92. [Swedish South Asian Studies Network, 2006]
93. [Business Standard, 4 December 2008]
94. [Swedish South Asian Studies Network, 2006]
95. [DSN-UK 2006, 7]
96. [IIDS, 2008]
97. [Swedish South Asian Studies Network, 2007]
98. [Swedish South Asian Studies Network, 2007]
99. [Swedish South Asian Studies Network, 2007]
100. [Gorringe, 2005, Acknowledgement]
101. [DRC, 2009]
102. [Student Christian Movement India, 2006-2007]
103. [www.gltc.edu, 2005]
104. [nativenet.uthscsa.edu, 2008]
105. [www.gltc.edu, 2005]
106. [Adrian Bird, February 2008, 50]
107. [Asian Lutheran News, 2005]
108. [http://www.gltc.edu/, 1998:2008]
109. See for example: [Jamanadas, K, 2006]; [Shariff, 2005]; [Sharif, 2006]and [Rajshekar, V T, 2008]
110. [Elliston and Burris, 1995, 182]
111. [www.gltc.edu, 2004]
112. [www.gltc.edu, 2004]
113. [Bavinck, 1998]
114. [University of Amsterdam, 2009]
115. [Subramanian, 2003, 279]
116. [Subramanian, 2003, 280]
117. [Jaffrelot, 2003, 18]
118. [Jaffrelot, 2003, 16-17]
119. [M.K. Gandhi, 1921] यहाँ गाँधी ने वर्णाश्रम धर्म में अपने विश्वास का स्पष्ट उल्लेख भी किया था, जिसके बारे में उन्होंने कहा 'पूर्णत: वैदिक, परन्तु वह नहीं जो वर्तमान में स्थूल रूप से लोकप्रिय है'।
120. [Sadasivan, N.S., 2000, 522-4]
121. [Sadasivan, N.S., 2000, 522-4]
122. [Jaffrelot, 2003, 155]
123. [Jaffrelot, 2003, 153]
124. [Jaffrelot, 2001]

125. उदाहरण के लिए देखें : [Kudi Arasu, 29 August 1937], इ.वी.आर. के नेतृत्व में द्रविड़ आन्दोलन द्वारा नस्लवाद के नाजी प्रारूप को इस प्रकार खुले-आम उधार ले लेने के बावजूद, जाफ्रीलॉट द्रविड़ आन्दोलन को 'मानवीय गरिमा की अवधारणा' पर आधारित पाते हैं।
126. [Jaffrelot, 1996, 25]
127. [Jaffrelot, 1996, 55] यहाँ जाफ्रीलॉट आरोप लगाते हैं कि गोलवलकर ने अपने प्रारम्भिक राजनीतिक चिन्तन को एक स्वरूप देने में हिटलर के प्रभाव का दावा किया था। जहाँ यह पुस्तक हिन्दुत्व आन्दोलन की राजनीति और कार्यप्रणाली से अनिवार्यत: सहमत नहीं है, उपर्युक्त विशेष आरोप को बेल्जियम के एक भारतविद एल्स्ट द्वारा पूरी तरह असत्य प्रमाणित कर दिया गया है। [Eslt, 2001, 2-1&5]
128. [*New York Times*, 13 May 2002]
129. [McGann and Weaver, 2002, 162]
130. [Omvedt, 2006, 63] इसमें वे आर्य समाज, रामकृष्ण और विवेकानन्द को शामिल करती हैं, हालाँकि यह तथ्य कि आर्य समाज निश्चित रूप से वर्ण-विरोधी था और प्रारम्भिक दलित मुक्तिप्रदाताओं में से कई उसी आन्दोलन से आये थे और यही पहला संस्थान है जिसने दमित जातियों को ऊपर उठाने के लिए दलित शब्द का प्रयोग किया। विवेकानन्द ने समाज के कमजोर वर्गों के लोगों के प्रति अमानवीय व्यवहार के लिए उच्च वर्णों वाले समुदायों पर कठोर टिप्पणियाँ कीं, और रामकृष्ण ने, जन्म से एक ब्राह्मण, दलितों के पखाने साफ कर तथा यज्ञोपवीत त्यागकर, जो ब्राह्मणों का एक वर्णगत चिह्न है, वर्ण-सम्बन्धी बन्धनों को तोड़ा।
131. [Omvedt, 2002]
132. [Omvedt, 2001]
133. [H. Risley, 1892]
134. [Omvedt, 2003]
135. गेल ऑमवेट दलित-द्रविड़ शत्रुता का कारण तत्कालीन लोकप्रिय दलित नेता एम.सी. राजा की हिन्दू प्रकृति बताती हैं : 'द्रविड़ आन्दोलन की प्रमुख समस्या दलित समर्थन प्राप्त करने में कठिनाइयाँ ही बनी रही... तमिलनाडु में, आमूल परिवर्तनवादी अम्बे[कर नहीं थे, बल्कि हिन्दू महासभाई एम.सी. राजा थे जो सर्वाधिक जाने-माने दलित नेता थे, और द्रविड़ आन्दोलन से उनका अलगाव दलितों से स्वयं आन्दोलन के दूर होने का एक दूसरा पक्ष था'। [Omvedt, 2006, 62]यह ऑमवेट की रणनीति का एक प्रारूप है — दलितों पर नकारात्मकता जड़ देना जब वे उनके दृष्टिकोण में सटीक नहीं बैठते। दलित-द्रविड़ शत्रुता का कारण द्रविड़ आन्दोलन से एम.सी. राजा के अलगाव से कहीं ज्यादा गहरा था। एम.

वेंकटेशन, एक युवा दलित शोधकर्ता, द्रविड़ चिन्तक इ.वी. रामास्वामी द्वारा जारी विद्वेषपूर्ण दलित विरोधी वक्तव्यों को गिनाते हैं, और यह भी कि किस प्रकार द्रविड़ आन्दोलन अपनी स्थापना के समय से ही दलित विरोधी था। एक विस्तृत अध्ययन में [Venkatesan, M., 2004, 138-58], वे इस बात की ओर ध्यान दिलाते हैं कि 1968 में, जब डी.एम.के. सत्तारूढ़ पार्टी थी, भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी ने दलितों को उनकी दैनिक मजदूरी बढ़ाने के लिए भूपतियों के विरुद्ध एकजुट किया था। उसके बाद, तमिलनाडु के ग्रामीण क्षेत्रों में बयालीस दलितों को भूपतियों ने जलाकर मार डाला था। द्रविड़ आन्दोलन के तत्कालीन मुख्य सिद्धान्तकार, ई.वी.आर., ने दलितों को आन्दोलित करने के लिए कम्युनिस्ट पार्टी की निन्दा की थी और माँग की थी कि कम्युनिस्ट पार्टी को प्रतिबन्धित कर दिया जाना चाहिए। [Viduthalai, dated 20 January 1969 quoted in [Venkatesan, M, 2004]

136. [Omvedt, 2001]
137. [Beteille, 2001]
138. [Omvedt, 2001]
139. [Omvedt, 2001]
140. [Natrajan, Faolain and Philip, 1998]
141. [Macwan, Sukhadeo and Omvedt, 2009, [Rawat Publication, 2002:2009]
142. [BosNewsLife, 2006]
143. इस विषय पर हम एक अन्य अध्याय में विस्तार से चर्चा करेंगे। मूलतः, एक पुराने मिथक को भारत में चलायी जा रही अनेक सन्देहास्पद ईसाई परियोजनाओं को तर्कसंगत ठहराने के लिए पिरोया जाता रहा है।
144. [Arora, 2008]
145. [*The Times of India*, 18 April 2009]

अध्याय 18

1. [Thomas , 2008, 125]
2. [Thomas, 2008, 122]
3. नीचे जिनकी चर्चा की गयी है उनके अलावा संयुक्त राज्य अमरीका से चलाये जा रहे आक्रामक ईसाई धर्मान्तरण का एक अन्य उदाहरण है गॉस्पल फेलोशिप ट्रस्ट इण्डिया, यू.एस.ए.। जॉर्जिया स्थित यह ट्रस्ट भारत में चलायी जा रही गतिविधियों के लिए 2.29 अरब रुपये की अपनी वार्षिक आर्थिक सहायता के बारे में निम्न प्रकार से स्पष्टीकरणदेता है : आने वाले 10 वर्षों के भीतर 300 अन्य बैप्टिस्ट चर्च स्थापित करने, 10 ईसाई स्कूल प्रारम्भ करने, और 3 बाईबल कॉलेज स्थापित

करने के लिए। यह गर्वपूर्वक शेखी बघारते हुए कहता है कि उसने 156 ग्रेस बैप्टिस्ट चर्च की स्थापना कर भी दी है और 20,000 लोगों का धर्मान्तरण किया है। 'हम दो समूहों में चर्च स्थापना के प्रयास पर ध्यान केन्द्रित करते हैं — वैसे लोगों के समूह जिन तक पहुँच नहीं है, और जो 500,000 बिना पहुँच वाले गाँवों में रहते हैं और शहरों की झोपड़पट्टियों में रहने वाले गरीबों के समूह। घर या गाँव में चर्च स्थापित किये जाते हैं, या तो विश्वासी (ईसाई) की व्यक्तिगत गवाही, गॉस्पल धावों के माध्यम से, या वयस्क शिक्षा केन्द्रों के माध्यम से, क्योंकि वहाँ लोगों को पाठ्यपुस्तक के रूप में बाइबल के उपयोग के माध्यम से पढ़ना सिखाया जाता है'। इसकी वेबसाइट को नेट से हटा दिया गया है [http://gospelfellowshipindia.net/flash/gfi.swf]। जो भी हो, मिशन वक्तव्य को अनेक अन्य वेबसाइटों में पुनर्प्रकाशित किया गया है [*Hinduism Today*, July/August/ September 2008]। भारत के गृह मंत्रालय ने इस मिशन को विदेशी धन के सबसे बड़े प्राप्तकर्ताओं में से एक के रूप में सूचीबद्ध किया है। [MHA, 2005-2006]

4. [www.vishalmangalwadi.com, 2000:2009]
5. [www.vishalmangalwadi.com, 2000:2009]
6. [Mangalwadi, 1998]
7. [Mangalwadi, 2001]
8. [Mangalwadi, 2001]
9. [Mangalwadi, 1977]
10. वे बी.ओ.एस. इंटरनैशनल के माध्यम से अपनी मिशनरी गतिविधियों के लिए धन माँगते हैं, जो पासाडेना, कैलिफोर्निया में स्थित है [www.vishalmangalwadi.com, 2000:2009]। वे शैक्षिक केन्द्रों से भी नेटवर्क बनाते हैं। उदाहरण के लिए, उनकी वेबसाइट के उस भाग में जिसमें विभिन्न संस्थाओं के लिंक दिये गये हैं यूनिवर्सिटी ऑफ मिनेसोटा के मैकलौरिन इंस्टीटयूट का लिंक भी दिया गया है जो 'शैक्षिक जगत में ईसाई धर्म को समेकित करने के लिए एक मंच प्रदान करता है'। [www.vishalmangalwadi.com, 2000:2009]
11. [Mangalwadi, 1998]
12. उदाहरण के लिए देखें : [www.intervarsity.org, 2005]
13. Mangalwadi quoted in [Kuruvachira J, 2002]
14. [Mangalwadi, 2008]
15. [Mangalwadi, 2008]
16. [www.vishalmangalwadi.com, 2000:2009]
17. [www.rzim-org, 1997:2008]

18. [The Washington Times, 6 December 2008]
19. [www.cbn.com, 2001]
20. [Zacharias and Sawyer, 2006, 48]
21. [Zacharias and Sawyer, 2006, 33]
22. [Banerjee, 2004]
23. [Time-CNN, 2007]
24. [NCSE, 2010]
25. http://www-geocities-com/iicmonlineindia- नवम्बर 2005 में याचना पत्र संयुक्त राज्य की अनेक धन दाता एजेंसियों को भेजे गये थे, और यह इसी तरह के प्रयासों का एक प्रारूप है जो अत्यन्त सामान्य तरीकों में से है।
26. उदाहरण के लिए, इन संगठनों में से एक 'इंटरनैशनल इंस्टीटयूट ऑफ चर्च मैनेजमेंट' के एक पाठ्यक्रम में एक पाठ है जिसका शीर्षक है General Theological/Bible Courses – 92 और जिसमें सृष्टिवाद के लिए तर्क दिये गये हैं।
27. [Diamond, 1989, 220-1]
28. http://www.worldvision.in
29. http://worldvision.org/content.nsf/about/hr-requirements
30. [Bethell, 1984]
31. [Brysk, 2004, 38-9]इस चर्चा में 'इण्डियन' शब्द मूल निवासी अमेरिकी जनसंख्या को इंगित करता है।
32. [Diamond, 1989, 222]
33. Lt Col A.S. Amarasekera, Manipulative Christian evangelism, URL: http://www.lankaweb.com/news/items01/081201-2.html
34. http://cricket.deepthi.com/tsunami&-world-asian-XI.html
35. All sections quoted from [Shashikumar, VK, 2004]
36. All sections quoted from this report: [Shashikumar, V K, 2004]
37. http://www.worldvisionindia.org/?185
38. [New England College, 2008]
39. [Ahmed, 17 October 2008]
40. [Rajkhowa, JP, 2008]
41. [W C Smith, 2009, 193]
42. [Philips, 2006, 134] क्रिसवेल ने बाद में अलगाव पर अपने रुख को बदला — लेकिन संयुक्त राज्य अमरीका के सर्वोच्च न्यायालय के अलगाव के विरुद्ध दिये गये फैसले के बाद ही।
43. [W C Smith, 2009]
44. [Yohannan, K P, 1986:2004, 109]

45. [Yohannan, K P, 1986:2004, 29]
46. [Yohannan, K P, 1986:2004, 141] योहन्नान का यह वक्तव्य, उनके जैसे अनेक दूसरों की तरह, एक स्पष्ट झूठ है। उदाहरण के लिए, भारत की हरित क्रान्ति के वास्तुकार, डॉ. एम.एस. स्वामीनाथन कहते हैं कि वे हिन्दू ही बने रहना पसन्द करते हैं, क्योंकि वह इसे विज्ञान के साथ सामंजस्यपूर्ण मानते हैं। [Swaminathan, M S, 1982, 9]
47. [Yohannan, K.P., 1986:2004, 135]
48. [Yohannan, K.P., 1986:2004, 138]
49. रोचक बात है कि इस रूढ़िवादी और घृणा से भरे हुए विश्व-दृष्टिकोण को दलित फ्री[म नेटवर्क जैसे संगठनों द्वारा प्रयोजित अकादमिकों द्वारा शैक्षिक जामा पहनाया जा रहा है। उदाहरण के लिए, कांचा इलाइया, जो डी.एफ.एन. के सलाहकार बोर्ड में हैं, हिन्दू धर्म को 'आध्यात्मिक फासीवाद' कहते हैं और भारत में सभी समस्याओं का मूल हिन्दू धर्म में ढूँढ़ निकालते हैं। जी.एफ.ए. के धर्मशास्त्र और कांचा इलाइया के शोध में सम्पर्क सूत्र डी.एफ.एन. के माध्यम से है, जो इलाइया को प्रायोजित करता है और जैसा कि ऑपरेशन मोबिलाइजेशन जी.एफ.ए. को अनुमोदित करता है।
50. [Eternity, Biz, 2010]
51. [GFA, 1996:2009] एक और अनुमोदन जोजेफ डी'सूजा की ओर से आया, जो संयुक्त राज्य स्थित दलित फ्री[म नेटवर्क (डी.एफ.एन.) चलाते हैं।
52. [Bergunder, 2008, 54]
53. [Thomas, 2008, 106]
54. [Ministry, Watch 2008]
55. [www.ad2000.org, 1997]
56. [GFA, 1996:2009]
57. [Travel with a cause, 2005:2009]
58. [Travel with a cause, 2005:2009]
59. [GFA, 1996:2009]
60. [Yohannan, K.P., 1986, 99] बाद के संस्करणों में बौद्ध धर्म का नाम रणनीतिगत तौर पर हटा दिया गया ताकि उसे अब इस प्रकार पढ़ा जाये 'जीवात्मवादी धर्म और अन्य सभी एशियाई धर्मों की साझी विरासत इसी एक धार्मिक व्यवस्था में है'। [2004 का संस्करण
61. [DFN, 2006], Also see: [GFA, 1996:2009]
62. [Edamaruku, 2001]
63. [*The Economic Times*, 20 January 2004]
64. [MHA, 2005&2006, 4]

65. [*The Telegraph*, 13 July 2008]
66. [The AICC Update February, 2007, 3]
67. [GFA, 1996:2009]
68. [*Chicago Tribune*, 22 January 2005]
69. [www.indianchristians.us, 2007] इस घटना के हिन्दू पक्ष के लिए देखें : [www.christianaggression.org, 2007]
70. [Thomas, 2008, 144]
71. [www.christianpersecution.info, 2007]
72. [GFA, 2008]
73. [*Christian Telegraph*, 2008]
74. [*Christian Today*, 11 December 2008]
75. सन् 2009 के मध्य से यह वेबपेज वेब ए[मिन द्वारा उस क्षेत्र में ले जाया गया है जो बाहरी लोगों के लिए निषिद्ध है http://people.biola.edu/faculty/georgea/Peoplesofindia.htm
76. All quotes by [Prashad, 2005]
77. http://www.ad2000.org/uters4.htm
78. [Ireland, 20 March 2006]
79. [Maranatha Christian Journal, 2004]
80. http://www.persecution.net
81. [Thomas, 2008, 125]
82. [Thomas, 2008, 114]
83. [Thomas, 2008, 126] राष्ट्रीय प्रतीकों के ईसाई समायोजन के बारे में केरल के कुछ कैथोलिक संस्थान एक कदम आगे हैं और उन्होंने पोप को सम्बोधित एक वैकल्पिक [राष्ट्र] गान बनाया, लेकिन उसे भारत के राष्ट्रगान की धुन पर तैयार किया गया है। इसके 2006 के संस्करण में यह पोप जॉन पॉल II को सम्बोधित था [Prabhan, 2006]। सन् 2009 में इसने बेनेडिक्ट XVI को सम्बोधित किया [Prabhan, 2009]। केरल के एक अन्य लोकप्रिय वीडियो ईसाई प्रचारक भारत के राष्ट्रीय झण्डे की साम्प्रदायिक व्याख्या देते हैं। ये ईसाई प्रचारक दावा करते हैं कि चूँकि श्वेत भाग ईसाइयत का प्रतिनिधित्व करता है, श्वेत पृष्ठभूमि पर केन्द्र में स्थित चक्र एक भविष्यवाणी है कि भारतीय राज्य की सत्ता अन्तत: ईसाइयों के पास चली जायेगी। [J.S. George, 2009]
84. [www.cbn.com, 2008]
85. [Robertson, 1988]
86. [David, 2005]
87. [BosNewsLife, 2006]

88. [BosNewsLife, 2006]
89. [Arora, 2008]
90. वे न्यू डेल्ही टेलिविजन लिमिटे[के लिए चेन्नई स्थित स्थानीय सम्पादक और दक्षिण भारत ब्यूरो प्रमुख हैं। वे एक इण्डोनिशियाई समाचार और सूचना चैनल, ऐस्ट्रो अवनी की मुख्य संचालन अधिकारी भी हैं, जिसे अपने संचालन के पहले वर्ष ही सर्वोत्तम करेंट अफेयर्स कार्यक्रम के लिए सम्मानित किया गया था (जेनिफर अरुल का जीवन परिचय जैसा कि बेथेल यूनिवर्सिटी के 'जर्नलिज़्म थ्रू द आईज़ ऑफ़ फेथ' प्रभाग में प्रस्तुत किया गया है : URL: http://www.bethel.edu/special-events/jtef/bios, में, उन्होंने मलेशिया में भी उसी तरह की एक ऐस्ट्रो सर्विस प्रारम्भ की। ChennaiTVNews.com के अनुसार '*The Hindu*' समाचार-पत्र के साथ एक नये चैनल में जेनिफर अरुल को प्रबन्ध सम्पादक बनाया गया है।
[ChennaiTVNews.com 2008]
91. [Ebrahimi and Schweizer, 2007]
92. [NDTV, 28 November 2004]
93. उदाहरण के लिए, जब सोलहवीं शताब्दी में विख्यात वैज्ञानिक गैलिलियो अपनी बहन के लिए वांछित दहेज नहीं दे सके तो उनके बहनोई ने उन्हें गिरफ़्तार करवाने की धमकी दी थी [Discovery] [8, 1987, 117]
94. [Creation, 1997]
95. [Aikman, 2004]
96. [Gegrapha, 1998:2007]
97. [Aikman, 1998:2007]
98. [Elst, 2007, 516]
99. [Arul, 1999]
100. [Arul, 1998]
101. [Shashikumar, V.K., 2004]
102. [Shashikumar, V.K., 2004]
103. [Joshua Project, 2000:2009]
104. [Joshua Project, 2000:2009]
105. [Arora, 2007]
106. [Shashikumar, VK, 2004]
107. [Joshua Project, 2001]
108. [Joshua Project, 2001:2009]
109. [*The New Indian Express*, 4 March 2007]
110. [BTI, 1999:2008]

111. [BTI, 2006]
112. [Christian Post, 2007]
113. [BTI 2006, 4]
114. [Daniel, 2002]
115. [Daniel, 2006, See also [Robert, 2007, 8]
116. [BTI, 1998, 3] यहाँ 'मिशन' शब्द का अर्थ अनिवार्यत: मिशनरी कार्य, या ईसाई धर्मान्तरण नहीं है। इस भाग में वर्णित संस्थान, जैसे हार्वर्ड डिविनिटी स्कूल और ऐण्डोवर थियोलॉजिकल स्कूल, उच्च वर्ग के बुद्धिजीवी/प्रतिष्ठान गँठजोड़ की तरह काम करते हैं जो दक्षिणपंथी मिशनरी रूढ़िवाद से बिलकुल भिन्न है, जिसका विवरण इस अध्याय में अन्यत्र दिया गया है। फिर, जैसा कि हमने अन्यत्र देखा है, अमरीकी, जो अपने देश में मुश्किल से ही आपस में बात करते हैं, भारत में एकजुट होने का साझा मुद्दा पा सकते हैं।
117. [BTI, 2006]
118 . [BTI, 2002]
119. [Venugopal, P, 2004]
120. [Jeevaraj, V, 1981]
121. [McGavran, 1983]
122. http://www.ad2000.org/uters4.htm : quoted in [Thomas, 2008, 144]
123. [Chick Publications, 1990]
124. [*The Hindu*, 8 January 1999]
125. [IANS, 2008]
126. सहदेव एक स्वतन्त्रता सेनानी थे और झारखण्ड के लोगों द्वारा उनको पूज्य माना जाता है। उनकी प्रतिमाएँ राज्य भर के अनेक स्थानों पर स्थापित की गयी हैं। उक्त पुस्तक ने उन्हें एक दमनकारी के रूप में चित्रित किया है।
127. [*The Hindu*, 2007]
128. [Nitharsanam.net, 29 February 2008]
129. [Nagarajan, R, 26 February 2009]
130. [HinduHumanist, 2006]

    हिन्दुओं के लिए घृणा और ईसाई बहुसंख्या वाले गाँवों को हिन्दुओं से मुक्त कराने के हिंसात्मक अभियान आश्चर्यजनक रूप से 'Judenfrei' की संकल्पना के समान है — यहूदी नरसंहार से पहले [pre-Holocaust] की जर्मनी में यहूदियों से मुक्त ईसाई शहर या गाँव। [Stackelberg, 2007, 279]

131. वर्ष 2007 से 2008 तक दिनाकरण और तमिल मुरासु — दोनों डी.एम.के. समर्थक समाचार-पत्रों — के स्थानीय संस्करणों द्वारा कन्या कुमारी जिले में अनेक मन्दिरों में तोड़-फोड़ किये जाने के समाचार प्रकाशित किये गये हैं।

132. [Oberman, 5 April 2010]
133. [*The Times of India*, 6 April 2010]
134. [Shetty 2010]
135. [Kerala Kaumudi, 2010] इस दक्षिण भारतीय राज्य में जहाँ चर्च राजनीति में एक मुख्य खिलाड़ी है, दुराचार के अनेक मामलों को रफा-दफा कर दिया जाता है। सबसे चर्चित मामला अभया का है — जिसकी 1992 में हुई मृत्यु को राज्य पुलिस द्वारा आत्महत्या घोषित कर दिया गया था, परन्तु बाद में केन्द्रीय जाँच ब्यूरो (सी.बी.आई.) द्वारा 1998 में उसे हत्या पाया गया, और चर्च की शक्ति ऐसी थी कि फोरेन्सिक रपटों में भी छेड़-छाड़ पायी गयी। सन् 2008 में जाकर अभियुक्त पादरी और नन को गिरफ्तार किया गया — वह भी केरल उच्च न्यायालय द्वारा राज्य की जाँच एजेंसी पर जाँच में धीमी प्रगति के लिए दोषारोपण करने, और सी.बी.आई. की केरल इकाई को मामला अपने हाथ में लेने के आदेश देने के बाद। [Asianet India, 2008]
136. [Junior Vikatan, February 2010]
137. [Kumutham Reporter, 2008]
138. [Dinamalar, 23 October 2007]
139. [Dinamalar, 22 November 2006]
140. [Tuglaq, 25 July 2007]
141. [Dinamalar, 22 November 2006]

अध्याय 19

1. [Ambedkar and G, 2001]
2. हालाँकि इस वेबसाइट को हटा दिया गया है, यह मानचित्र और इसके भिन्न रूप विभिन्न भारत-विरोधी वेबसाइटों में 1990 के दशकान्त में पहली बार प्रकाशित किये जाने के समय से ही प्रचारित हो रहे हैं।
3. [Mangalwadi, 2008]
4. Quoted in [Freston, 2004, 91]
5. पॉल फ्रेस्टन लिखते हैं : '(ईसाइयत) ने उन पहचानों को रचने में सहायता की जिनका उपयोग आज नारों के रूप में हो रहा है। ... नागा राष्ट्रवाद धर्म द्वारा समर्थित जातीय 'अविष्कार' का उत्कृष्ट उदाहरण है — यहाँ तक कि सम्भवत: इजरायली प्रारूप पर आधारित ''जनजातियों'' के एक संघ (यूनियन) के रूप में'। [Freston, 2004, 88-9]
6. असम के पूर्व मुख्य सचिव के अनुसार, एन.एस.सी.एन. — मुख्य माओवादी-ईसाई विद्रोह आन्दोलन 'वर्ल्ड काउंसिल ऑफ चर्चेज से वित्तीय समर्थन' प्राप्त करता है। [Rajkhowa, JP, 2008]

7. Quoted in [Freston, 2004, 89]
8. [Frontline, 19 June 1992, p.50]
9. [April 2005, 352]
10. [BBC, 21 June 2006]
11. [India Today, 20 December 2007]
12. [Mangalwadi, 2008] रोचक बात है कि भारत सरकार द्वारा यह घोषित करने के साथ ही कि माओवादी आतंकवाद हाल के वर्षों की उसकी प्रमुख चिन्ता रही है, यह सम्पर्क (लिंक) लुप्त हो गया है और उसके बाद यह नये स्वरूप में सामने आया जिसमें माओवाद का उद्धरण हटा दिया गया। जो भी हो, विशाल मंगलवाड़ी का लेख एक अन्य ईसाई प्रचारक वेबसाइट पर उपलब्ध है। [Mangalwadi, 2008]
13. [GIS Development, 2008]
    उड़ीसा में खनिज उत्खनन गतिविधियों ने बहुधा आन्दोलनकारियों के विरोध को जन्म दिया है, और बहुराष्ट्रीय शक्तियों ने स्वयं को इस संघर्ष के दोनों पक्षों से साथ रखा। उनका अपना एजेंडा रहा है स्थानीय जनसंख्या को अपनी कठपुतलियाँ बनाकर रखना। इस प्रकार जब एक विवादास्पद कम्पनी, वेदान्ता, ने एक जनजातीय क्षेत्र में उत्खनन के अधिकार प्राप्त कर लिए तो एक एन.जी.ओ. ऐक्शनए[द्वारा मामले को यूरोप के मंचों पर ले जाया गया। इसके बाद इंग्लैण्ड की चर्च ने घोषणा की कि वह वेदान्ता में अपने शेयर बेचेगा, जो उजागर करता है कि बहुराष्ट्रीय शक्तियों की भारतीय संसाधनों में कैसी रुचि है और किस प्रकार बहुराष्ट्रियों और एन.जी.ओ. द्वारा निर्णय की सम्पूर्ण प्रक्रिया के केन्द्र को भारत के बाहर ले जाया गया। [*The Economic Times*, 8 February 2010]
14. [*India Today*, 30 March 1998]
15. [PTI, 6 February 2010]
16. [PTI, 5 October 2008]
17. उदाहरण के लिए : [Barnabas Fund, 2009]
18. [Mahapatra, 4 September 2008]
19. [www.nerve.in, 2008]
20. [Mangalwadi, 2008]
21. [*The Economic Times*, 1 October 2009]
22. [A Bhattacharya, 2008]
23. [*The Times of India*, 24 August 2008]
24. [www.telegraphnepal.com, 2009]
25. [Gumaste, 2009]
26. [Daily News Agency, 4 January 2009]

27. [*The Times of India*, 5 September 2009]
28. [Nayak, 2009]
29. [Margolis, 2000, 213]
30. [www.telegraphnepal.com, 2009]
31. [The Wall Street Journal, 3 October 2009]
32. [Golder, 2008]
33. [NCCN, 2007]
34. Telegraph [UK], 29 September 2009
35. [*The Indian Express*, 28 July 2008]
36. [*The Times of India*, 3 November 2009]
37. [*Asia Times*, 6 February 2010]
38. [PTI, 5 February 2010]
39. [Menon and Nigam, 2007, 144]
40. [Capie, 2004, 204&5]
41. [Karim, 1993, 64&5]
42. [Maitra, 2003]
43. [Roy, 2009]
44. [Parashar, 2009]
45. [Singh and Diwan, 2010]
46. [Roy, Walking With the Comrades, 2010]
47. [Singh and Diwan, 2010]
48. [Devji, 2010]
49. [Roy, 2010]
50. [*The Hindu*, 20 February 2010]
51. [*Hindustan Times*, 7 April 2010]
52. [PTI, 30 March 2010]
53. [Cath News India, 2010]
54. [*The Times of India*, 2010]
55. [Crotty, 2005]
56. उदाहरण के लिए, भारत सरकार द्वारा माओवादियों के विरुद्ध कार्रवाई की निन्दा करते हुए एम्ब्रोज पिंटो नें एक लेख लिखा जिसका शीर्षक था ‘Why We Oppose Green Hunt?’, जो पहले दिल्ली की एक वामपंथी पत्रिका Mainstream में प्रकाशित हुआ और जिसे बाद में जे.ई.एस.ए. की वेबसाइट में प्रकाशित किया गया। [Pinto, 2010]
57. [Pinto, 2010]

58. [Cath News India, 2010]
59. [Manjooran, 2003] एशिया में मुक्ति के धर्मशास्त्र के साम्राज्यवाद विरोधी रुख के बावजूद संयुक्त राज्य अमरीका की एजेंसियों से इसके गहरे सम्बन्ध हैं। उदाहरण के लिए, जब फिलीपिन्स में पन्थ-निरपेक्ष-वामपंथी विद्रोहियों ने भ्रष्ट मार्कोस शासन को कुचलने की धमकी दी, चर्च द्वारा वाम आमूल परिवर्तनवादी आन्दोलन में प्रवेश करने और उस पर नियंत्रण स्थापित करने के लिए मुक्ति के धर्मशास्त्र का उपयोग किया गया। संयुक्त राज्य अमरीका के धन से चलने वाले रेडियो वेरिटाज ने मुक्ति धर्मशास्त्री के मुद्दे के लिए काम किया और सी.आई.ए. ने मुक्ति धर्मशास्त्री जेसुइट कार्डिनल जेम सिन को मार्कोस को उखाड़ फेंकने और एक्विनो के चुनाव में सहायता पहुँचाने में सक्रिय भूमिका निभायी। इससे पादरियों को पन्थ-निरपेक्ष राजनीति में उनके हस्तक्षेप और वामपंथियों को सत्ता प्राप्त करने से वंचित रखने के लिए अपनी शक्ति विस्तारित करने में सहायता मिली। [Pomeroy, 1992, 280] एक एशियाई मुक्ति धर्मशास्त्री बस्तन विलेंगा स्पष्ट करते हैं कि इससे 'एक ऐसी राजनीतिक स्थिति उत्पन्न हुई जिसमें माओवादी विचार के वामपंथी अपने प्रभाव का एक भाग खो बैठे और अब वे एक विभाजन का सामना कर रहे हैं। इसने सम्भवत: ''संघर्ष के धर्मशास्त्र'' के प्रति आकर्षण को कम कर दिया, जहाँ तक सशस्त्र संघर्ष को समर्थन का प्रश्न है। [Wielenga, 2007, 72] स्वाभाविक तौर पर ऐसे धर्मशास्त्री रूप से उत्प्रेरित आमूल परिवर्तनवादी कार्यकर्ताओं के लिए भारत जैसा देश एक निकास और रणनीतिगत खेल का मैदान बन सकता है। जैसा कि विलेंगा स्पष्ट रूप से कहते हैं, 'लोकतांत्रिक अधिकारों के लिए संघर्ष उसी प्रकार पर्याप्त नहीं हैं जैसे कि भारत या श्रीलंका में संसदीय चुनावों के माध्यम से सरकारों का बदलना। प्रश्न केवल हिंसा या अहिंसा के साधनों द्वारा एक दमनकारी सरकार को उखाड़ फेंकने का नहीं है। प्रश्न है कि किस प्रकार और किसके द्वारा ... समाज के मुक्तिदायी रूपान्तरण की पहल हो'। [Wielenga, 2007, 72] आशय यह कि एशियाई देशों के लिए धर्मनिरपेक्ष लोकतंत्र पर्याप्त नहीं है और विकासशील देश जिन सामाजिक समस्याओं का सामना करते हैं उनका उपयोग 'समाज के मुक्तिदायी रूपान्तरण' की पहल के अवसर के रूप में करना चाहिए, जो नि:संदेह 'हिंसक या अहिंसक साधनों के उपयोग' के माध्यम से गैर-ईसाई देशों में ईसाइयत ही है।
60. [Ben, 2010]
61. [P. More, 1997, 176]
62. [Mahomed Ali Jinnah] quoted in [Johari J C, 1993, 198]
63. [R. Rao, 2009]
64. [Menon, V.P., 1998, 106]
65. [P. More, 1997, 179]

66. DMK is an abbreviation of Dravida Munnetra Kazhakam, or Dravidian Upliftment Association.
67. [Subramaniam, 1993, 271]
68. [CBCID, 1999]
69. [Shourie, 1994]
70. [Ludra, 2000]
71. [Raman, B, 2002]
72. [The Week, 12 August 1990]
73. [The Week, 12 August 1990]
74. [CBCID, 1998]
75. [Dhar, 2008]
76. जनता के बीच टाडा के नाम से जाना जाने वाला यह कानून भारत की संघ सरकार द्वारा पहला और एक मात्र वैधानिक प्रयास था, जिसे आतंकवाद को परिभाषित करने और आतंकवादी गतिविधियों का मुकाबला करने के लिए लाया गया था। यह अधिनियम, जिसे 1987 में लाया गया था, मानवाधिकार संगठनों और राजनीतिक पार्टियों द्वारा आलोचना का शिकार हुआ और इसे मई 1995 में कालातीत हो जाने दिया गया।
77. [Dinamani, 4 July 1995]
78. [Tmpolitics.blogspot.com, 2007]
79. [*India Today*, 15 December 1997]
80. [*India Today*, 15 December 1997]
81. [Dinamani, 19 September 1997]
82. [Malaimurasu, 9 December 1997]
83. [PTI, 31 December 1998]
84. [Dinamani, 15 December 1997]
85. [*The Hindu*, 19 February 1989]
86. [Subramanian, T.S., 1998]
87. उदाहरण देखें : मदुरै के एक प्रसिद्ध हिन्दू मन्दिर के अन्दर एक बम विस्फोट हुआ, जिसके लिए टी.एम.एम.के. के एक नेता की गिरफ्तारी हुई।[Dinamani, 22 May 1996 राज्य की राजधानी में एक अन्य विस्फोट हुआ जिसमें एक व्यक्ति की जान गयी, और उसके बाद भी मद्रास रेलवे स्टेशन पर एक बम विस्फोट हुआ जिसमें बारह लोग जख्मी हुए। यहाँ तक कि तमिलनाडु राज्य के उच्च न्यायालय के ठीक सामने मौजूद एक लॉज पर बम से हमला हुआ जिसमें दस लोग जख्मी हुए। [Malaimurasu, 28 January 1997] कुल सात घटनाएँ हुईं जिसमें कई मौतें हुईं, जिनमें से दो हमले पुलिसकर्मियों और एक पुलिस थाने पर हुए। अल उम्मा

आन्दोलनकारियों ने जेल के ठीक सामने एक जेल अधिकारी को काटकर मार डाला। [tnpolice.gov.in, 2008] एक घटना में, दो अलग-अलग एक्सप्रेस रेलगाड़ियों पर बम विस्फोट किये गये जिसमें छह लोग मारे गये। [*The Week*, 1998] इसके पूर्व राज्य पुलिस ने एक जानकारी मिलने पर कार्रवाई करते हुए चेन्नई के एक घर पर छापामारी कर वहाँ से भारी मात्रा में विस्फोटक बरामद किये थे। अल उम्मा के दो उग्र परिवर्तनवादियों को, जिनमें इसके नेता का भाई भी शामिल था, गिरफ्तार किया गया। [Subramanian, TS, 1998]

88. [Shamsi, 2004, 359]
89. [www-satp-org, 2002]
90. [*The Hindu*, 9 March 2008]
91. [Frontline, 20 March 1998]
92. [UNI, 6 December 1997]
93. [tnpolice-gov-in, 2008]
94. रेडिफ ने समाचार प्रकाशित किया : 'मलप्पुरम जिले में 1993 और 1994 में पन्द्रह सिनेमाघरों में आग लगा दी गयी थी। विश्वास किया जाता है कि इसके लिए विस्फोटकों से युक्त सिगरेटों का उपयोग किया गया। पुलिस को आई.एस.आई. सम्पोषित अल उम्मा पर इन घटनाओं में शामिल होने का सन्देह है। ... एक बम बनाने वाले स्थल में हुए विस्फोट में एक व्यक्ति के मारे जाने के बाद 1995 में मलप्पुरम में बड़े स्तर पर पाइप बम बनाने वाली इकाई मिली थी। इस्लामिक डिफेंस फोर्स जैसे कई इस्लामी अतिवादी समूहों पर सन्देह है ... सन् 1996 में मलप्पुरम जिले के क[लुण्डी नदी से इक्यानबे पाइप बम बरामद किये गये थे। इस घटना के पीछे इस्लामिक दावा मिशन का हाथ होना माना जाता है ... सन् 1995 और 1996 में त्रिसुर, पलक्कड़ और मलप्पुरम जिलों में अलग-अलग घटनाओं में चार हिन्दू आन्दोलनकारी मारे गये थे। सन्देह के घेरे में थे : अल उम्मा, जमा इय्यातुल इहसानिया और सुन्नी टाइगर फोर्स। पुलिस ने पी.ए. मुहम्मद शरीफ, अब्दुल खादर, अल उम्मा के सैयद अलवी और सुन्नी टाइगर फोर्स के हुसैन मुसलियार और पी. सुबैर को गिरफ्तार किया। देखें : [Rediff News 2000]
95. एन.डी.एफ. या तो नेशनल डिफेंस फोर्स या नेशनल डेमोक्रेटिक फ्रण्ट का संक्षिप्त रूप है। यह नाम उस समय बदल दिया गया जब इस समूह ने कुछ अधिक ही ध्यान आर्किषत किया।
96. [Frontline, 20 March 1998]
97. उदाहरण के लिए देखें : [tnpolice.gov.in, 2008]
98. [*The Indian Express*, 15 August 1999]
99. यह प्रदर्शित करता है कि किस प्रकार अस्थिर करने वाली शक्तियाँ वोट-बैंक की राजनीति की कमियों का उपयोग करती हैं। वोट-बैंक की राजनीति के आगे

राष्ट्रीय सुरक्षा चिन्ताओं को बोले चढ़ाने वाली राजनीतिक पार्टियों के साथ, अलगाववादी और अस्थिरकारी शक्तियाँ लोकतंत्र का ही उपयोग करते हुए शक्ति हासिल करती हैं, जिसे वास्तव में वे नष्ट करना चाहती हैं। इस मामले में और अधिक दिल तोड़ने वाली बात यह है कि केरल के मामले में अलगाववादी शक्तियों को लाड़-प्यार करने का काम राष्ट्रीय पार्टियों, मा.क.पा. और भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस द्वारा ही किया जाता है।

100. [Iype, 2001]
101. [*The Economic Times*, 30 October 2008]
102. [Puthiya Kaatru, 2006]
104. [*The Hindu*, 11 June 2006] द इण्डियन एक्सप्रेस ने भी उजागर किया कि इसके बाद डी.एम.के. सरकार द्वारा मदनी को 35 दिनों की आयुर्वेदिक अंग-मर्दन चिकित्सा उपलब्ध करवायी गयी जिसकी कीमत 50,000 रुपये आयी और जिसका भुगतान तमिलनाडु सरकार द्वारा किया गया। [*The Indian Express*, 23 July 2006] एक विडियो साक्षात्कार में बम विस्फोट में शिकार व्यक्ति के पिता ने, जिन्हें एक सरकारी अस्पताल में मदनी की सेवा में तैनात किया गया था, आरोप लगाया कि वह चिकित्सा जेल में बन्द जिहादियों को बाहर के उनके साथियों से मिलवाने का महज़ एक बहाना थी। [Webber, 2007]
103. [PTI, 15 March 2006]
105. See [DV Editorial, 2001] [DV Editorial, 2002] and [DV Editorial, 2004]
106. [Wikipedia, 2003]
107. [The Pioneer, 27 September 2006]
108. [Krishnakumar, R. 2006]
109. [www.satp.org, 2002]
110. [*The Hindu*, 16 March 2006]
111. उदाहरण के लिए, वह पूर्व क्षेत्रीय सिमी अध्यक्ष ही थे जिन्होंने एम.एन.पी. की स्थापना की; टी.एम.एम.के. के नेता, जिनके वर्तमान डी.एम.के. शासन के साथ अत्यधिक निकट सम्बन्ध हैं, सिमी के प्रदेश अध्यक्ष थे। तमिलनाडु सिमी की एक इकाई के अध्यक्ष अब तमिलनाडु तौहीद जमात के महासचिव हैं, जो S.आई.ए.डी.एम.के. नजदीक है। [Frontline, 21 December 2007]
112. [*The Indian Express*, 23 July 2006]
113. [*The Indian Express*, 8 August 2006]
114. [*The Hindu*, 29 October 2004]
115. [*The Indian Express*, 27 July 2006]
116. [Dinamalar, 4 September 2006]

117. [Dinakaran, 20 July 2006]
118. For example, see: [tnpolice.gov.in, 2008]
119. [*The Indian Express*, 26 March 2007]
120. [Aravindan, K P, 2006, 135]
121. [Kumutham Reporter , 23 November 2008]
122. [Dinakaran, 10 January 2007]
123. [www.state.gov, 2007]
124. [*The Economic Times*, 18 August 2008]
125. [*The Hindu*, 10 October 2008]
126. [V. Kumar, 2008]
127. [Rediff News, 2005]
128. [*The Hindu*, 10 January 2006]
129. [Raman, B, 2006]
130. [Dinathanthi, 20 January 2007]
131. [*The Indian Express*, 17 February 2007]
132. [*The Hindu*, 8 July 2008]
133. [*The Indian Express*, 7 February 2009]
134. [*The Indian Express*, 4 November 2006]
135. [*The Hindu*, 1 January 2007]
136. [*The New Indian Express*, 8 January 2007]
137. [Dinamalar, 9 January 2007]
138. [Frontline, 21 December 2007] यह आगे चौरिटबल ट्रस्ट ऑफ माइनॉरिटीज के सम्सुनिशा अंसारी के 7 जून 2006 के एक पत्र से और स्पष्ट होता है जो इस पुस्तक के लेखकों के पास है।
139. [*The Times of India*, 6 December 2008]
140. [*The New Indian Express*, 28 July 2008]
141 [Frontline, 16 August 2008]
142. [Rediff News, 2008]
143. [Frontline, 21 December 2007]
144. [Frontline, 21 December 2007]
145. [*The Times of India*, 18 December 2009]
146. [*The Pioneer*, 19 December 2009]
147. [*The Peninsula*, 11 January 2010]
148. [*The Economic Times*, 30 December 2009]

149. [*Deccan Herald*, 27 December 2009]
150. [*Headlines Today*, 3 November 2009]
151. [*Deccan Herald*, 12 November 2009]
152. [*Deccan Chronicle*, 13 December 2009]
153. [*Deccan Chronicle*, 13 December 2009]
154. [CNN-IBN, 6 July 2010]
155. [*The Times of India*, 18 July 2010]
156. [*The Times of India*, 18 July 2010]
157. [*The Indian Express*, 28 July 2010]
158. [Radhakrishnan, MG, 2010]
159. [*The Hindu*, 15 July 2010]
160. [*The Indian Express*, 31 July 2008]
161. [Naam Tamilar, 2010]
162. [*The Hindu*, 27 November 2009]
163. [Naam Tamilar, 2010]
164. [*The New Indian Express*, 3 May 2010]
165. [*Chennai Times*, 13 June 2010]
166. Session on Tamil Philosophy [24 July 2010: World Classical Tamil Conference] Paper by Professor V Siva Prakasam [WCTC10 2010]
167. Session on Tamil Philosophy [24 July 2010: World Classical Tamil Conference] Paper by Professor A Karunandham [WCTC10 2010]
168. Session on Religion and Tamil [24 July 2010: World Classical Tamil Conference] Paper by Bishop Ezra Sargunam [WCTC2010 2010]
169. एक बनाम दो राष्ट्र के सिद्धान्त पर अधिक विवरण के लिए देखें :: ‘*The Roots of India-Pakistan Conflicts’*, by Rajiv Malhotra, posted at http://rajivmalhotra.sulekha.com/blog/post/2002/02/the-root-of-india-pakistanconflicts. htm

परिशिष्ट क

1. [Ambedkar, 1948]
2. [Bamshad, et al, 2001]
3. [Ananthaswamy, 2001]
4. [Ananthaswamy, 2001]
5. [Ramachandran, R., 2001]

6. [Ramachandran, R., 2001]
7. [Cordaux, 2004]
8. [Cordaux, 2004]
9. [Bezbaruah and Samrat, 2001]
10. [Bezbaruah and Samrat, 2001]
11. [Bezbaruah and Samrat, 2001]
12. [Bezbaruah and Samrat, 2001] लेख में कहा गया, 'विभिन्न वर्णों के लिए एकत्र रक्त के सभी नमूने आन्ध्र प्रदेश के एक विशेष भौगोलिक क्षेत्र से थे, और कुछ जातियों में नमूने का आकार बहुत छोटा—दस—तक था। ''यदि अधिक नमूनों का अध्ययन होता तो परिणाम भिन्न हो सकता था,'' श्रीवास्तव ध्यान दिलाते हैं। स्वयं वर्ण भी अत्यधिक लचीला है। जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, दिल्ली के प्राचीन इतिहास के प्राध्यापक बी.एन. चट्टोपाध्याय, आन्ध्र प्रदेश की बोया जनजाति का उदाहरण देते हैं। वे योद्धा हो गये और उन्होंने क्षत्रिय होने का दावा किया। उनमें से जिन्होंने धार्मिक अनुष्ठान किये, वे ब्राह्मण भी बन गये। सन् 1960 के दशक में मानवशास्त्रियों कर्वे और मल्होत्रा ने चार ब्राह्मण उपवर्णों की तुलना चार किसानों के उपवर्णों से की। उन्होंने पाया कि ब्राह्मण उपवर्णों में अन्तर ब्राह्मण और किसान वर्णों के बीच के अन्तरों से अधिक थे। वर्ण गतिशीलता आज भी होती है, यद्यपि मण्डल आयोग के आने के बाद ऐसी आवाजाही दो दिशा वाली हो गयी है।
13. [Bezbaruah and Samrat, 2001]
14. [Sahoo, et al, 2006]
15. [Sengupta, et al, 2006]
16. [Sengupta, et al, 2006]
17. [Sengupta, et al, 2006]
18. [Reich, et al, 2009]
19. [*The Times of India*, 2009] इस रपट को संयुक्त राष्ट्र में भारत के विरुद्ध अभियान चला रहे एन.जी.ओ. द्वारा व्यापक रूप से वितरित किया गया था, जैसा कि इनमें उद्धृत है: [samatha.in, 2009]. [indianchristians.in, 2009], और [dalitnetwork.org, 2009]
20. [Kumarasamy, 2009]
21. [Science Daily, 2009]

परिशिष्ट ख

1. [Sen, 1999, 204]

2. (संगम साहित्य के इन दो भागों में प्राचीन तमिल साहित्य के आहा नन्नुरु, पुरा नन्नुरु, पट्टिनाप्पलई, मटुरैकांची, परिपदल, थिरुमुरुकर्रुप्पटई) जैसी मूलभूत रचनाएँ हैं। [S. Pillai, 1996]
3. *Purananuru* quoted in [S. Pillai, 1996, verse:166:1]
4. *Purananuru* quoted in [S. Pillai, 1996, verse:26:13; 93:7; 362]
5. *Purananuru* quoted in [S. Pillai, 1996, verse:2:18; 15:17]
6. [Ramachandraan, S., 2007, 94]
7. *Purananuru* quoted in [S. Pillai, 1996, verse:363:8, 9]
8. *Maduraikanchi* quoted in [S. Pillai, 1996, verse: 655-6]
9. *Paripatal* quoted in [S. Pillai, 1996, verse: 9:12-13]
10. *Paripatal* quoted in [S. Pillai, 1996, verse: 2: 24-5]
11. *Perumpannatrupadai* quoted in [S. Pillai, 1996, verse: 300-1]
12. [Madhava and Tapasyananda, 1996, 81]
13. *Thirumurkattrrupatai* quoted in [S. Pillai, 1996, verse: 179-80]; *Perumpannatrupattai* quoted in [S. Pillai, 1996, verse: 297, 310]
14. *Purananuru* quoted in [S. Pillai, 1996, verse: 113]
15. *Ahananuru* quoted in [S. Pillai, 1996, verse: 24: 1&3]
16. *Purananuru* quoted in [S. Pillai, 1996, verse: 224:5 9]
17. *Purananuru* quoted in [S. Pillai, 1996, verse: 384:15 18]
18. *Paripatal* quoted in [S. Pillai, 1996, verse: 2:60 68]
19. *Thirumurkattrrupatai* quoted in [S. Pillai, 1996, verse: 94 98]
20. *Paripatal* quoted in [S. Pillai, 1996, verse: 17:28 32]
21. *Purananuru* quoted in [S. Pillai, 1996, verse: 377: 5 6]
22. *Purananuru* quoted in [S. Pillai, 1996, verse: 201: 8 12]
23. *Pathirtupathu* quoted in [S. Pillai, 1996, verse: 21:13]
24. [S. Pillai, 1996, 11]
25. *Ahananuru* quoted in [S. Pillai, 1996, verse: 220: 5 9]
26. *Purananuru* quoted in [S. Pillai, 1996, verse: 2:22, 367:13]
27. *Kalithogai* quoted in [S. Pillai, 1996, verse:69:5]
28. *Paripatal* quoted in [S. Pillai, 1996, verse:18:38 39]
29. *Paripatal* quoted in [S. Pillai, 1996, verse:19:50 53]
30. *Pathirtupathu* quoted in [S. Pillai, 1996, verse:143:6 8]

31. *Natrtinai* quoted in [S. Pillai, 1996, verse: 356:3 4]
32. *Paripatal* quoted in [S. Pillai, 1996, verse:9:1 3]
33. *Perumpannatrupadai* quoted in [S. Pillai, 1996, verse:29 30]
34. *Paripatal* quoted in [S. Pillai, 1996, verse:29 30]; [S. Pillai, 1996,verse:3:15 18]
35. *Kalithogai* quoted in [S. Pillai, 1996, verse:103:74 75]; [S Pillail, 196,verse: 104: 78]
36. *Paripatal* quoted in [S. Pillai, 1996, verse:2:16 19]
37. *Mullai* quoted in [S. Pillai, 1996, verse:3]
38. *Paripatal* quoted in [S. Pillai, 1996, verse:4:10 21]
39. *Ahanannuru* quoted in [S. Pillai, 1996, verse:220:5 9]
40. *Puranannuru* quoted in [S. Pillai, 1996, verse:378:9 22]
41. *Ahanannuru* quoted in [S. Pillai, 1996, verse:70:13 15]
42. *Puranannuru* quoted in [S. Pillai, 1996, verse:2:13 16]
43. [Ramakrishnan, S. 1971, 210]
44. *Perumpannatrupadai* quoted in [S. Pillai, 1996, verse:415 420]
45. *Kalithogai* quoted in [S. Pillai, 1996, verse:104:57 9]
46. *Maduraikanchi* quoted in [S. Pillai, 1996, verse:70 74]; Pathitrupathu quoted in [S. Pillai, 1996, verse:43:6 11]
47. *Ahanannuru* quoted in [S. Pillai, 1996, verse:265:1 3, and also Puranannuru quoted in [S. Pillai, 1996, verse:2:24]
48. *Ahanannuru* quoted in [S. Pillai, 1996, verse:70:13 14]
49. *Puranannuru* quoted in [S. Pillai, 1996, verse:67:6 7; 380:12]; Pathitrupathu quoted in [S. Pillai, 1996, verse:11:23 25; 43:6 8]
50. *Puranannuru* [S. Pillai, 1996, verse:17:18]
51. *Thirumanthiram* 1-118
52. *Thiruvasagam: Sivapuranam*
53. [Swamigal, verses 281&2]
54. [Amazon, 1999]
55. [Hussein, 2002]

परिशिष्ट ग

1. जर्मन मिशनरी जोहान ल[विग क्राफ (1810-81) भाषाओं के एक वर्ग को सम्बोधित करने के लिए हैमी [Hamitic] शब्द का प्रयोग करने वाले पहले व्यक्ति थे, और उन्होंने सम्पूर्ण अफ्रीका में काले लोगों द्वारा बोली जाने वाली अफ्रीकी भाषाओं को हैमी के रूप में वर्गीकृत किया। उन्होंने अफ्रीकी समुदायों के बीच श्रेष्ठता का निर्धारण उनकी भाषाओं को उनकी चमड़ियों के कालेपन के स्तर के साथ मिलाकर किया। देखें : [Krapf and Ravenstein, 1860, 144]]
2. [Dubow, 1995, 84]
3. [Dubow, 1995, 84]
4. यही प्रक्रिया मिसीसिपी घाटी में एक महान सभ्यता के अवशेषों की व्याख्या करने के प्रयासों में अपनायी गयी, जो उस क्षेत्र में पाये गये थे जो आज संयुक्त राज्य अमेरिका में है। 'इजरायल की एक खो गयी जनजाति' गढ़ी गयी, क्योंकि मूल अमेरिकीवासियों ने निश्चित तौर पर ऐसी विशाल मिट्टी से निर्माण कार्य को सम्पन्न नहीं किया होगा। एक संक्षिप्त विवरण के लिए देखें : [Hirst, 2005]
5. [Trigger, 1989, 197]
6. [Trigger, 1989, 131]
7. [Frederikse, 1990, 10-11]
8. [Trigger, 1989, 130]
9. [Seligman and Seligman, 1911]वेद्धा श्रीलंका में एक मूल निवासी जनजाति समूह है। उनमें तमिल और सिंहली, दोनों भाषा-भाषी लोग शामिल हैं। उनका धर्म मूलत: जीवात्मवादी है, जिस पर बौद्ध और हिन्दू दोनों धर्मों का प्रभाव है, परन्तु अब उन्हें ईसाई इंजीलवादियों द्वारा लक्ष्य बनाया जा रहा है। वे अपने बीच भी विवाद कर रहे हैं कि किस समूह के सदस्य मूल निवासी हैं। देखें : http://vedda.org/ पर प्रकाशित विभिन्न लेख।
10. [Rigby, 1996, 68]
11. [Seligman, Races of Africa, 1996, 100-1]
12. [Sharp, 2004]
13. [Rekdal, 1998, 20, quoted in [Sharp, 2004]
14. [Seligman and Seligman, 1932, 4] quoted in [Rigby, 1996, 68] आक्रमण का सिद्धान्त इस प्रकार था : 'नीग्रो हैमी लोगों को तब समझा जा सकेगा जब यह भान हो जायेगा कि आने वाले हैमवंशी गँवई कॉकेशियन थे, जो एक के बाद एक लहरों में आये, जो कृषिकर्मी नीग्रो की तुलना में बेहतर ढंग से हथियारों से सुसज्जित और कठोर चरित्र वाले थे।'
15. आने वाले सभी उद्धरण यहाँ से लिए गये हैं : (Rigby, 1996, 69, 70) भाषा को सरल बनाने के लिए हमने नाम के रूप में हुटु और टुट्सी का प्रयोग किया है न कि मूल पाठ में उपयोग में लाये गये विभिन्न शब्दों का।

16. पहले विश्व युद्ध के बाद बेल्जियम ने जर्मनी से रवाण्डा को अपने अधीन ले लिया था।
17. [Lemarchand, 1999, 10-11]
18. [Longman, 2005, 87]
19. [Elisse, 2006, 176]
20. [Kastfelt, 2005, 16]
21. [Thompson and Annan, 2007, 28]
22. उनकी टिप्पणियाँ जैसा कि एक कैथलिक पत्रकार, जॉन एल अलेन जूनियर द्वारा सार रूप में तैयार किया गया था। [Allen Jr, 2009]
23. [Longman, 2010]
24. [Longman, 2010, 151-2]
25. [Longman, 2010, 161]
26. [Longman, 2010, 175]
27. [Longman, 2010, 175-76]
28. [Longman, 2010, 232-7]
29. [Divakar, 2007, 38-42]

परिशिष्ट घ

1. [Haase and Reinhold, 1994, 217]
2. [McManners, 2001, 425]

परिशिष्ट च

1. ये फेलोशिप भारत सरकार द्वारा प्रायोजित किये जाते हैं।
2. [Mahadevan, 1970]
3. [Mahadevan, 2002]
4. [Chengappa, 2002]
5. [Ramachandran, S., 2006]
6. [Mahadevan, 2006]
7. [Mahadevan, 2006]
8. [The Hindu, 1 May 2006]
9. [Pande, B.M., 1971, 21]
10. [Rajshekar, V.T., and Rashidi, 1988]
11. [Farmer, Undated]
12. [Rao, P.N., 2009]
13. [Callaway, 2009]

14. [Mahadevan, 2009]
15. [S. Farmer, 2006]
16. Chakrabarti, 2009]

परिशिष्ट छ

1. [रक्षा मंत्रालय, 2001, 45]
2. [The Hindu, 17 November 2001]
3. [BBC, 18 June 2003]
4. [Maranatha Christian Journal, 2004]
5. [The Financial Express, 18 October 2006]
6. [MHA, 2005-2006]
7. [MHA, 2005-2006]
8. [Aurora, 2008]
9. [The Indian Express, 12 October 2009]
10. [Daily News and Analysis, 5 November 2008]
11. [Aurora, 2008]
12. [MHA, 2007-08]

परिशिष्ट ज

1. लुथेरन वर्ल्ड फे[रेशन और डब्ल्यू.सी.सी. भारत के विरुद्ध अपने युद्ध में किस प्रकार दक्षिणपंथी और वामपंथी शक्तियों को जोड़ते हैं उस पर 17वें अध्याय में विस्तार से चर्चा की गयी है। फिर भी, यहाँ हम भारत में लुथेरन चर्च के धर्मशास्त्रीय और औपनिवेशिक विकास की, तथा भारत में जहाँ भी लुथेरन चर्च की भागीदारी इसे अस्थिर करने वाली गतिविधियों में है, उसकी चर्चा करेंगे।
2. [Hudson, 2000, 17]
3. [Hudson, 2000, 18]
4. मिशनरियों द्वारा स्थापित प्रिंटिंग प्रेस के एक व्यापक नेटवर्क के बावजूद उन्होंने केवल मिशनरी साहित्य का ही प्रकाशन किया तथा पन्थ-निरपेक्ष सार्वजनिक कल्याण के लिए कुछ भी प्रकाशित करने की परवाह नहीं की। भारतीय कागज उत्पादन 1760 के दशक से प्रारम्भ हुआ, लेकिन किसी भी हिन्दू या मुसलमान को प्रिंटिंग प्रेस का स्वामी होने ही नहीं दिया गया। जो भी हो, एक पूर्ण भारतीय स्वामित्व वाले प्रिंटिंग प्रेस द्वारा तमिल की पहली पुस्तक का प्रकाशन 1819 में कांची के एक तमिल हिन्दू द्वारा किया गया। जनता के लिए एक सरकारी प्रेस तो 1857 में ईस्ट इण्डिया कम्पनी के शासन के समाप्त होने पर ही अस्तित्व में आया।

प्रिंटिंग प्रेस के प्रारम्भिक स्वदेशी अगुओं की इस विरासत को जिगेनबाग को महिमा-मण्डित करने के लिए दबाया जा रहा है। देखें[More, 2004, 81]

5. Daniel Jeyaraj in Preface, [Ziegenbalg, 2005]
6. Daniel Jeyaraj in Preface, [Ziegenbalg, 2005]
7. [Hudson, 2000, 54]
8. [www.gltc.edu, 2006]
9. [Hudson, 2000, 50] इस पादटीका में, ह[सन इस ओर भी ध्यान आर्किषत करते हैं कि 1956 के जिगेनबाग के क्रिश्चियन लिटरेचर सोसाइटी अनुवाद में चटाइयों और फर्श पर बैठने वालों के बीच अन्तर को हटा दिया गया और सभी को चटाइयों पर बैठने वालों के रूप में चित्रित किया गया।
10. [Kent, 2004, 24]
11. [www.gltc.edu, 2006] इस पुस्तक का अध्याय 10 (भारत के बाहर द्रविड़वादी शैक्षणिक संस्थान-कार्यकर्ता नेटवर्क) स्पष्ट करता है कि किस प्रकार इस मिशनरी स्वरूप का उपयोग यूरोप में तमिल पहचान को समर्थन देने के लिए एक अकादमिक नेटवर्क निर्मित करने के लिए किया गया है।
12. [Cederlof, 2009, 197]
13. [Cederlof, 2009, 197]
14. [Cederlof, 2009, 215]
15. [Fahlbusch and Bromiley, 2003, 357]
16. गुरुकुल लुथेरन थियोलॉजिकल कॉलेज के अकादमिक दलित अध्ययन नेटवर्क, जो भारत में महाद्वीपीय यूरोपीय हस्तक्षेप का मार्ग प्रशस्त करता है, का एक भाग होने के सन्दर्भ में विस्तार से अध्ययन के लिए अध्याय 17 देखें।
17. [www.gltc.edu, 2006]
18. [Dravidian University, 2008-2009, 2]
19. [Devasahayam, S, 1992, 8-12]
20. [Thirumaavalavan, 2004, 171]
21. [Thiruma.net, 2009]
22. [www.uelci.org, 2007, 2]
23. [www.uelci.org, 2007, 2]
24. [www.uelci.org, 2008, 1]
25. [www.uelci.org, 2008, 3]
26. [Junior Vikatan, 2007]
27. [www.uelci.org, 2009, 1] एल.डब्ल्यू.एफ. के बैंकॉक सम्मेलन में किस प्रकार खाड़कू दलित अलगाववाद और नस्लवादी दलित पहचानों को प्रोत्साहित किया गया था, इसके वर्णन के लिए देखें अध्याय 17 (उपशीर्षक : दलित पंचायत + दलितशास्त्र + दलित धर्मशास्त्र > दलितस्तान)।

28. ‘Our differences with Nandy Rana group’, PCC CPI (ML), 29, Quoted in [Karat, 1985]

भारत विखण्डन
द्रविड़ और दलित दरारों में पश्चिमी हस्तक्षेप

राजीव मल्होत्रा एक भारतीय-अमरीकी शोधकर्ता और समसामयिक मामलों, विश्व की धार्मिक परम्पराओं और पूर्व तथा पश्चिम के आपसी सांस्कृतिक टकरावों पर विचार करने वाले बुद्धिजीवी हैं। वे कॉरपोरेट जगत में वरिष्ठ कार्यकारी पदों पर और नीतिगत सलाहकार की हैसियत से काम कर चुके हैं और सूचना संचार तथा मीडिया के क्षेत्र में एक सफल उद्यमी हैं। व्यापक पाठक और श्रोता वर्ग में लेखक और वक्ता के रूप में जाने-माने राजीव मल्होत्रा ने 'ब्रेकिंग इण्डिया' और 'इनवेडिंग द सेक्रेड' जैसी पुस्तकों में अपने विचार व्यक्त किये हैं और मैसाचुसेट्स विश्वविद्यालय में भारतीय अध्ययन कार्यक्रमों के बोर्ड ऑफ़ गवर्नर्स के सदस्य हैं और न्यू जर्सी राज्य की ऐशियाई अध्ययन शिक्षा समिति के अध्यक्ष पद पर कार्य कर चुके हैं।

हार्पर हिन्दी
(हार्परकॉलिंस पब्लिशर्स इंडिया)

हार्पर हिन्दी हार्पर कॉलिंस पब्लिशर्स इंडिया का हिन्दी सम्भाग है
पता : ए-75, सेक्टर-57, नौएडा—201301, उत्तर प्रदेश, भारत

ISBN : 978-93-51365-97-6

ISBN : 978-93-51365-97-6

टाइपसेटिंग : निओ साफ़्टवेयर कन्सलटैंट्स, इलाहाबाद

मुद्रक : थॉम्सन प्रेस (इंडिया) लि.